वैदिक दर्शन

मधुच्छन्दा ऋषिका दर्शन

अध्ययन की पद्धति

वेदका अध्ययन करना वैदिक धर्मियोंके लिये अत्यंत आवश्यक है। वेदका अध्ययन दो रीतियोंसे होना संभव है और आवश्यक भी है।

(१) एक देवतानुसार मंत्रोंका अध्ययन । और

(२) दूसरा ऋषिके अनुसार मंत्रोंका अध्ययन।

देवताके मंत्रोंका अध्ययन करनेकी सुविधा करनेके उद्देश्यसे " दैवत-संहिता " बनायी है और देवतानुसार मंत्रोंके अनुवाद प्रकाशित किये जा रहे हैं। इस समयतक " मरुद्देवता "के मंत्रोंका अनुवाद प्रकाशित हुआ है और " अश्विना " देवताके मंत्रोंका अनुवाद छप रहा है। आगे अन्यान्य देवताओंके मंत्रोंके अनुवाद इसीतरह प्रकाशित किये जायेंगे।

दैवत और आर्षेय मंत्रसंग्रह

ऋषिके क्रमानुसार मंत्रोंका संग्रह ऋग्वेदमें है। अतः ऋग्वेद संहिता ' आर्षेय संहिता ' ही है। केवल नवम मण्डलमें सोमदेवताके मन्त्र ऋषिक्रममें संमिलित होना आवश्यक है।

यह पुस्तक ' आर्षेय संहिता ' का प्रथम भाग है। इसमें मधुच्छन्दा ऋषिके मंत्रोंका अनुवाद है। इसीतरह आगे अन्यान्य ऋषियोंके मंत्रोंका अनुवाद प्रसिद्ध किया जायगा। इससे एक एक ऋषिके मंत्रोंका भाव पाठक सहज हीसे समझ जायेंगे।

मन्त्रोंके द्रष्टा

ऋषि ' मंत्रोंके द्रष्टा ' होते हैं। इसलिये ' ...ऋषिका दर्शन ' ऐसा इसका नाम रखा है। इस पुस्तकका नाम ' मधुच्छन्दा ऋषिका दर्शन ' है। आगेका ग्रन्थ ' मेधातिथि ऋषिका दर्शन ' इस नामसे प्रकाशित किया जायगा और इसी क्रमानुसार आगे ऋग्वेदका अनुवाद क्रमपूर्वक प्रकाशित होता रहेगा।

यथार्थ ज्ञान

' आर्षेय-संहिता ' और ' दैवत-संहिता ' इन दोनों क्रमोंके अनुसार वेदका अध्ययन हुआ तो यथार्थ रीतिसे वेदाध्ययन हुआ ऐसा समझना योग्य है। आशा है कि यह प्रयत्न वेदकी विद्या वैदिक धर्मियोंके अन्दर प्रसृत करनेके लिये सहायक होगा और वेदका ज्ञान फैलानेके लिये इससे योग्य सहायता होगी।

निवेदनकर्ता
श्रीपाद दामोदर सातवलेकर
अध्यक्ष, स्वाध्याय-मण्डल
औंध (जि० सातारा)

नीरोग, सुदृढ और दीर्घायु होगा। आयुर्वेदमें ऋतुचर्या लिखी है, वह यहां देखनी योग्य है। मनुष्यके जीवनमें भी बाल्य, कौमार, तारुण्य, वार्धक्य, जीर्ण, क्षीण ऐसे अवस्था के ऋतु होते हैं। इनके अनुसार मनुष्यको अपनी दिनचर्या रखनी योग्य है। इससे नीरोगिता सिद्ध होगी। प्रतिदिन उषःकाल, सूर्योदय, मध्याह्न, उत्तराह्न, सायंकाल, रात्रि ये ऋतु होते हैं। इनके अनुसार दैनंदिनका व्यवहार करना योग्य है। इस तरह ऋतुसंधियोंमें जो परिवर्तन होते हैं, उस कारण नाना रोग उत्पन्न होते हैं, उस समय योग्य पान करनेसे रोगोंका शमन होता है। ऋतुके अनुसार विलासपूर्वक भोजन, यापन, तथा अन्यान्य व्यवहार करनेसे मनुष्यका स्वास्थ्य होता है। ऋतुके अनुकूल दिनचर्या करनेवाला पुरुष आदर्श पुरुष है, इसीलिये वह स्तुतिके [illegible] है।

देवो दानाद्वा द्योतनाद्वा (निरुक्त) देव दान देता है दान देनेसे प्रकाशता भी है। अग्नि प्रकाशका दान करता धनदाता है, 'द्रविणो-दा' अर्थात् धनका दाता अग्निका नाम है। इसलिये यह जो अपने पास इतना धन रखता है वह अनुयायियोंको दान करनेके लिये ही निर्दिष्ट है। अग्नि धन प्राप्त करता है और उसका दान भी करता है। यही उसका महत्त्व है। मानवोंको भी धन प्राप्त कर उसका दान करना उचित है।

जो अग्रभागमें रहता है, प्रथमसे सबका हित करता है, शुभ कर्मोंका प्रवर्तन करता है, ऋतुके अनुसार यज्ञ करता है, देवोंको बुलाता है, अपने पास धनका संग्रह कर उसका जो दान करता है, उसीका वर्णन करना योग्य है।

अर्थात् जो पीछे रहता है, सत्कर्मोंका प्रवर्तन नहीं [illegible]

होकर मुखमें प्रविष्ट हुआ है। अर्थात् वाणी अग्निका रूप है। यह वाणी ब्राह्मणोंमें रहती है, इसलिये ब्राह्मण अग्निके रूप हैं। उन ब्राह्मणोंमेंसे 'पुरोहित, ऋत्विज्, होता' ये तीन नाम इस मन्त्रमें कहे हैं। इसी सूक्तमें 'कवि' नाम अग्निके लिये आया है (मं. ५)। यह कवि भी वाणी का ही प्रभावी रूप है। इस मन्त्रका 'रत्न-धा-तम' पद भी धनवान्का वाचक है। धनवान् मानव भी अग्नि-रूप है। यह पद यहां यजमानका वाचक है। आगे यजमानको अनेक मंत्रोंमें धनवान् कहा है। यजमान धनधान्य संपन्न होनेसे ही वह उस धनसे तथा धान्यसे यज्ञ करता है। अतः 'रत्नधातम' पद धनी लोगोंका वाचक मानना योग्य है। इस तरह समाजमें कौन अग्नि हैं, इसका ज्ञान हो सकता है।

'रत्न-धा-तम' पद अग्निका भी वाचक है, क्योंकि भूमि-गत अग्निकी उष्णतासे ही तो नाना प्रकारके रत्न हीरे, लाल, पन्ने आदि बनते हैं। भूमिगत उष्णता न होगी तो कोई रत्न नहीं बनेगा। इस तरह अग्निका रत्नोंकी उत्पत्तिके साथ सम्बन्ध है। इस मन्त्रके सब पद अग्निवाचक तो हैं ही। ऐसे होते हुए सामाजिक मानवरूप अग्निके भी वाचक हैं।

'तत् एव अग्निः' (बा० य० ३२।१) वह ब्रह्म ही अग्नि है। यह जो अग्नि जलता है वह ब्रह्मका प्रकट रूप है। एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति अग्निं यमं०। (ऋ. १।१६४।४६) एक ही सत् है, उसका वर्णन ज्ञानी लोग अनेक प्रकारसे करते हैं, उसीको अग्नि, यम, इन्द्र आदि कहते हैं। इस तरह यह 'अग्नि' ब्रह्मका, आत्माका, परब्रह्मका, परमात्माका अथवा परमेश्वरका रूप है। 'अग्निं यज्ञस्य आस्यं' (अथर्व १०।७।३३) अग्नि परमेश्वरका मुख है। इस तरह अग्निको परमात्माका रूप कहा है। परमात्माका स्वरूप समझकर ही अग्निकी ओर देखना चाहिये।

यह परमात्माका स्वरूप अग्नि है, यह उपासकोंको अग्र-मार्गमें-कल्याण मुक्तिमें पहिलेसे ले जाता है, सामने रहकर पूर्ण रीति करता है, हमेशा सहायी सिद्ध करता है, अनुकूल अनुभव सदैव देता करता है, शुभ देता है, सब देवताओंको लाता है। सृष्टिमें नाना रमणीय पदार्थों को अपने सान्निध्यसे प्राप्त करता है। यह परमात्मास्वरूप वर्णन इसी मन्त्रमें है। व्यक्तिके शरीरमें रहनेवाले जीव आत्माका भी यही वर्णन अंशरूपसे-थोडे संक्षेपसे हो जाता है।

अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत।
स देवाँ एह वक्षति ॥ २ ॥

अन्वयः- पूर्वेभिः ऋषिभिः उत नूतनैः ईड्यः अग्निः (अस्ति)। सः देवान् इह आ वक्षति ॥ २ ॥

अर्थ- प्राचीन ऋषियोंद्वारा तथा नवीन ऋषियों द्वारा स्तुति करने योग्य यह अग्निदेव है। वह अन्य देवोंको यहां ले आता है।

अग्निदेव तथा अग्नी जिसके गुण पूर्व मन्त्रमें कहे गये हैं, वह प्राचीन तथा नवीन ज्ञानियों द्वारा प्रशंसाके योग्य है। सर्व कालोंमें उक्त गुणोंवाला प्रशंसित होता है, क्योंकि वह सब देवोंको अपने साथ लाता है और अपना निवास-स्थान देवतामय करता है। परमात्मा सूर्य, चन्द्र, इन्द्र, वायु, आदि देवताओंके साथ ही इस विश्वमें विराजता है। जीवात्मा इस देहमें देवतांश नेत्र, कर्ण, नासिका त्वचा, मुख, आदि अवयवोंके साथ रहता है, यह भी गर्भमें अपने साथ इन देवांशोंको लाता है और यथास्थान रखता है। इस शरीरमें यह जीव शतवर्षात्मक यज्ञ करता है। देह इसका कार्यक्षेत्र है और ३३ देवताओंके अंश इसके साथ रहते हैं। राष्ट्रमें अग्नि जैसा तेजस्वी राजा अपने साथ नाना प्रकारके कोहदेदारोंको, विद्वानोंको, शूरोंको, धनियोंको और कर्मवीरोंको रखता है और इनके द्वारा राज्य-शासन चलाता है। ज्ञानी जन अनेक दिव्य गुणवानोंको अपने साथ लाता और यहांका संसार सुखमय करता है। इस तरह देवोंको साथ लानेका सर्वत्र बडा ही महत्त्व है। जो अपने साथ देवोंको लाता और रखता है, वही प्राचीनों और अर्वाचीनों द्वारा प्रशंसित होता है।

यहां प्राचीनों और अर्वाचीनोंद्वारा प्रशंसित होनेकी बात कही है। यह बडे महत्त्वकी है। दोनों गुण किसी एक व्यक्तिमें प्रशंसित हो सकता है, परन्तु यह प्रशंसा साथ नहीं है। किसकी प्रशंसा प्राचीन और अर्वाचीन, पूर्व और पश्चिमों द्वारा भी होती है, यही सच्ची प्रशंसा है। [illegible] सच्ची प्रशंसा समझना चाहिये।

अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवे-दिवे ।
यशसं वीरवत्तमम् ॥ ३ ॥

अन्वयः- अग्निना रयिं, दिवे दिवे पोषं, वीरवत्तमं यशसं अश्नवत् ॥

अर्थ— अग्निसे धन, प्रतिदिन पोषण और वीरता युक्त यश प्राप्त होता है ।

परमात्मासे विश्वमें और जीवात्मासे व्यक्तिके शरीरमें शोभा, पुष्टि और यशकी प्राप्ति होती है, यह सबोंके ध्यानमें आसकता है । धन, रयि, ये पद धन्यता, शोभा आदिके वाचक पद हैं । शरीरमें शोभा तो जीवके रहनेसे ही है, पोषण भी जीवके रहनेतक ही होता है और वीरता भी जीवके रहनेतक ही रहती तथा बढती है । शरीरमें जीवात्मा न रहा तो न शोभा, न पोषण और नाही वीरता ही होगी।

समाजमें पुरोहित और कवि राष्ट्रके जीवनरूप हैं । वे ही समाजमें तथा राष्ट्रमें नवचैतन्य निर्माण करते हैं । समाज में धन, शोभा, पुष्टि और वीरतायुक्त यश बढानेवाले कविरूप अग्नि ही हैं । लेखक, कवि, वक्ता, उपदेशक पुरोहित ब्राह्मण ही समाज और राष्ट्रमें धन पोषण और वीरतायुक्त यश बढाते रहते हैं ।

यहां 'वीरवत्तमं यशसं पोषं रयिं' ये पद महत्त्वपूर्ण हैं; धन, पोषण और यश मानवोंको चाहिये, पर ये तीनों 'वीर-वत्-तमम्' वीरतासे अत्यंत परिपूर्ण चाहिये ! जिसके साथ वीरता नहीं है, ऐसा धन भी नहीं चाहिये, कमजोरी उत्पन्न करनेवाला पोषण भी नहीं चाहिये, और निर्बलताको बढानेवाला यश भी नहीं चाहिये । वीरतारहित धन किस कामका है ? उस धनकी रक्षा कौन करेगा ? इस लिये धनके साथ वीरताका बल अवश्य चाहिये । शरीर बडा पुष्ट रहता है, पर वीरता नहीं है, ऐसा पोषण धनवान् सेठोंका होता है । यह किस कामका ? जिस पुष्टिसे वीरतायुक्त बल बढता है वही पुष्टि हमें चाहिये । यश भी बल और वीरत्वके साथ चाहिये । नहीं तो कई लोग बहुत ज्ञान प्राप्त करते हैं, पर शरीरसे मरियल, रोगी और निर्बल रहते हैं । ऐसी विद्या किस कामकी ? अतः धन, पुष्टि और यशके साथ वीरता भी अवश्य चाहिये । यहां तीनोंके साथ वीरता चाहिये यह भाव समझना उचित है । यहां 'वीर' का अर्थ 'सुपुत्र, सुसंतान' मान कर अर्थ करना भी योग्य है । धन, पोषण और यशके साथ सुसंतान भी चाहिये ।

नहीं तो मनुष्य धनवान् तो रहता है, पुष्ट भी रहता और विश्वमें यशस्वी भी होता है, परंतु संतान नहीं हो ऐसा पुत्ररहित घर किस कामका है ? घरमें पुत्र पौत्र और वे सब धनी हृष्ट पुष्ट और यशस्वी भी हों।

पुत्रके लिये वेदमें 'वीर' पद आता है । इस आशय यह है कि (वीरयति अमित्रान्) जो शत्रुओं दूर भगानेका सामर्थ्य रखता है, वह वीर कहलाता है । वीर संतान हो । पुत्र पौत्र कैसे होने चाहिये इसका यह स्पष्ट निर्देश है कि पुत्र शत्रुको परास्त करनेवाले वी होने चाहिये ।

हम देखते हैं कि धनवान् स्वयं कमजोर निर्बल होते उनको प्रायः संतान भी नहीं होता । परंतु वेदने यहां क है कि धनके साथ बल, बलके साथ पुष्टि, और पुष्टिके स वीरपुरुषों और वीरपुत्रोंके साथ मिलनेवाला यश प्र करना चाहिये ।

अपने पास क्या है इसकी परीक्षा मनुष्य करे और ज दोष हों वहांका आवश्यक सुधार करे । इस मन्त्रने आ मानव अग्निके वर्णनसे बताया है । प्रत्येक मनुष्य इस आ से अपनी परीक्षा करे ।

अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि ।
स इद्देवेषु गच्छति ॥ ४ ॥

अन्वयः- हे अग्ने ! यं अ-ध्वरं यज्ञं (त्वं) विश्व परिभूः असि, सः (यज्ञः) इत् देवेषु गच्छति ॥ ४

अर्थ- हे अग्ने ! जिस हिंसा रहित यज्ञको (तू) च ओरसे सफल बनानेवाला है, वह (यज्ञ) निःसन्दे देवोंके पास पहुंचता है ॥

यज्ञ वह कर्म है कि जिसमें श्रेष्ठोंका सत्कार, जनता संगठन और निर्बलोंकी सहायता होती है । यह कर्म ऐ होना चाहिये कि जिसमें (अ-ध्वरः) कुटिलता, कपट, टे पन, छल, हिंसा न हो । हिंसा या कुटिलता कायिक, वाचि और मानसिक सब प्रकारकी यहां समझनी चाहिये । अ अग्निसे जो यज्ञ होता है उसका नाम 'अ-ध्वरः यज्ञ' है अर्थात् इसमें सत्कार-संघटन-दानरूप त्रिविध कर्म अवश्य ही होगा, परन्तु इसमें लेशमात्र हिंसा, कुटिल

ध या कपट नहीं होगा। यहां अ-ध्वर पदसे यज्ञमें हिंसा । कुटिलताका सर्वथा निषेध किया है। यह वेदमें सर्वत्र रण रखने योग्य महत्त्वकी बात है। अग्नि जो यज्ञ करता वह (अ-ध्वर) हिंसारहित होनेवाला कर्म है। कायिक ाचिक और मानसिक कुटिलता भी उसमें होनेकी संभावना हीं है। किसीकी हिंसा अर्थात् प्राणवियोगकी संभावना ी यहां नहीं है। इसीलिये अग्नि ऐसे हिंसारहित कर्मों ो चारों ओरसे सफल बनानेका यत्न करता है और निर्विघ्नतया परिपूर्ण करता है।

'परि-भूः' का अर्थ शत्रुका पराभव करना, विजय प्राप्त करना, शत्रुका नाश करना, शत्रुको घेरना, चारों ओरसे घेरना, साथ रहकर परिपूर्ण करना, सम्भालना, ख्यालसे सुरक्षित रखना, चलाना, अपने स्वामित्वसे जारी रखना, ठीक मार्गसे चलाकर योग्य रीतिसे समाप्त करना है।

अग्नी शत्रुका पराभव करके निर्विघ्नता पूर्वकयज्ञकर्म सफल और सुफल करता है। यह भाव यहां 'परि-भूः' में है।

जो यज्ञकर्म देवोंतक जाकर पहुँचता है, देवता जिसका ीकार करते हैं वह यज्ञकर्म हिंसा कुटिलता तथा छल पदसे रहित ही होना चाहिये। यह इस मंत्रका आशय है। अग्नी अपने अनुयायियोंसे ऐसेही हिंसारहित और कुटिलता हित कर्म करावे। येही कर्म दिव्य विबुधोंको प्रिय होते ं। पुरोहित, ऋत्विज् और होता यजमानसे ऐसे ही हिंसारहित कर्म करावे और जहां ऐसे हिंसारहित कर्म होते ं वहा उन कर्मोंकी सहायता भी करें।

अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः ।
देवो देवेभिरा गमत् ॥ ५ ॥

अन्वयः- होता कविक्रतुः सत्यः चित्रश्रवस्तमः देवः अग्निः देवेभिः आ गमत् ॥ ५ ॥

अर्थ- हवन करनेवाला अथवा देवोंको बुलानेवाला, कवियों या ज्ञानियोंकी कर्मशक्तिका प्रेरक, सत्य अधिकारी, अत्यंत विलक्षण यशसे युक्त, यह दिव्य अग्निदेव अनेक देवोंके साथ आता है।

'कवि-क्रतु' पद ज्ञान और कर्म शक्तिका बोधक है। 'कवि' पद ज्ञानीका वाचक और 'क्रतु' पद कर्मकुशल कर्मवीरका वाचक है। ज्ञानपूर्वक कर्म करनेवाला, ज्ञानका उपयोग कर्ममें करनेवाला, यह भाव यहां प्रतीत होता है। मनुष्यको प्रथम ज्ञान प्राप्त करना चाहिये और उस ज्ञानका उपयोग करके सुयोग्य कर्म करना चाहिये। ज्ञानपूर्वक किये कर्मसे ही मनुष्यकी उन्नति होती है।

मनुष्य (होता) दाता, हवनकर्ता तथा यज्ञकर्ता बने, और (कवि-क्रतुः) ज्ञानपूर्वक कर्म करनेवाला बने, कवि बने, ज्ञानी बने और सुयोग्य कर्म भी करे। मनुष्यकी पूर्णता होनेके लिये ज्ञान, कर्मप्रावीण्य और दातृत्व इन गुणोंकी आवश्यकता है।

'चित्र-श्रवस्-तमः' यह भी गुण उत्तम है। 'श्रवस्' का अर्थ 'यश, प्रशंसनीय कर्म, धन' है। प्रशंसनीय कर्मसे यश और धन मिलता है। अत्यंत विलक्षण, आश्चर्यकारक, प्रशंसनीय कर्म करनेवाला, यश प्राप्त करनेवाला और धन प्राप्त करनेवाला। 'श्रवस्' का अर्थ श्रवण करना भी है। 'बहु-श्रुत' जैसा अर्थ इस पदमें है। जो अग्नी अनुयायियोंकी सब बातें ध्यानपूर्वक सुनता है वह 'चित्रश्रवस्तम' है। जो श्रेष्ठ पुरुष होते हैं,वे सबकी बातें सुनते हैं और विचारपूर्वक जो करना योग्य है, वही किया करते हैं।

हवन करनेवाला, ज्ञान प्राप्त करके योग्य कर्म करनेवाला, सत्यनिष्ठ, अत्यंत ध्यानपूर्वक श्रवण करनेवाला दिव्य तेजस्वी देव अपने साथ अन्य दिव्य विबुधोंको ले आता है। ज्ञानी के साथ अन्य ज्ञानी सदा रहते हैं।

'देवो देवेभिः आगमत्' अनेक देवोंके साथ एक देवका आना यहां लिखा है। एक देव शरीरमें आत्मदेव ही है। यही जीवात्मा है। यह अपने साथ ३३ देवताओंको ले आता है और उनको शरीरमें यथास्थान रखता है तथा स्वयं उनका अधिष्ठाता होकर रहता है। आंखमें सूर्य, कानमें दिशाएँ, नाकमें वायु तथा अश्विदेव, मुखमें अग्नि, त्वचामें वायु, पेटमें अग्नि (जाठर), बालोंमें औषधियनस्पति, जिह्वामें जल इस तरह सब ३३ देवताओंके अंशदेव इस देहमें यथास्थान रहे हैं और इन सबका अधिष्ठाता आत्मा हृदयमें रहा है। अनेक देवोंके साथ एक देवका आना इस तरह शरीरमें होता है। मृत्युके समय यह जीव आत्मा इन देवांशोंके साथ चला जाता है और पुनः

शरीरमें, गर्भमें, आनेके समय पुनः उन ३३ देवोंके साथ आता है। यह है देवका देवोंके साथ आना।

विश्वमें परमात्मा महान् तैंतीस देवोंके साथ विश्वरूपमें ही विराजमान है। इनके ही ३३ अंश जीवके साथ आते हैं। इस तरह देवोंका देवके साथ आना होता है।

इसीका स्वरूप यज्ञमें बताया जाता है। जैसा भूप्रदेशोंका नकशा कागजपर खींचा जाता है, वैसा ही विश्वभरमें जो है और देहमें जो बनता है, उसका चित्र यज्ञभूमिमें बताया जाता है। यहां मुख्य अग्निदेव रहता है और बाकीके ३३ देव यथास्थान सत्कारपूर्वक रहते हैं, पूजे जाते हैं। देवोंका देवके साथ आना इस तरह हरएक मनुष्य देख सकता है और इसका अनुभव भी कर सकता है।

यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि।
तवेत्तत्सत्यमङ्गिरः ॥ ६ ॥

अन्वयः— हे अङ्ग अग्ने! दाशुषे त्वं यत् भद्रं करिष्यसि, हे अङ्गिरः, तत् (कर्म) तव इत् सत्यम् ॥ ६ ॥

अर्थ— हे प्रिय अग्ने! दान करनेवालेके लिये तू जो कल्याण करता है, हे अङ्गिरः अग्ने वह (कर्म) निःसन्देह तेरा ही सत्य कर्म है।

यहां अग्निके दो विशेषण आये हैं। अङ्ग और अङ्गिरः। 'अङ्ग' का अर्थ – तत्काल, पुनः, हर्षप्रिय अर्थवाला संबोधन अर्थात् किसीको पुकारनेके लिये प्रयुक्त होनेवाला पद। हे प्रिय! हे अङ्ग! अर्थात् हे अपने अंगके समान निज! अपने शरीरका भाग। अपने शरीरका भाग ही अत्यंत प्रिय होता है। 'अङ्गिरः, अङ्गिरस्, अङ्गिय-रस' अंगों अवयवों और इंद्रियोंमें जो जीवनरस होता है, वही अंगिरस् कहलाता है। आंगिरसोंने इस अंगरस-विद्याकी खोज की थी, इसलिये इस जीवनरसको यह नाम मिला है। शरीरमें जो जीवनरस है उस संबंधकी विद्या अंगरस विद्या है। जो अग्नि अंगप्रत्यङ्गोंमें जीवनरस बनकर रहा है वह अंगिरस अग्नि है। इसीसे अंगसौष्ठव सुस्थिर रहता है।

जो अन्न जितना आग्नेय गुण शरीरमें बढाता है, वह अन्न उतना अंगीय रस शरीरमें उत्पन्न करता है। अग्नि प्रदीप्त करके उसमें आहुतियाँ देनेका अर्थ प्रदीप्त जाठर अग्निमें अन्नकी आहुतियोंका प्रदान करना ही है।

'यह अग्नि दाताका कल्याण करता है और यही इसका सत्य कर्म है' ऐसा यहां कहा है। इसका अनुभव [illegible] प्रदीप्त जाठराग्निमें जो उत्तम अन्नकी आहुतियाँ दे उसका कल्याण यही जाठर अग्नि करता है। उस उत्तम पचन होता है और उसका अङ्गीय रस बनता उत्तम अंगरस बनना ही मनुष्यका सच्चा कल्याण है। अंगरससे मनुष्यका शरीर सुंदर, बलवान्, वीर्यवान्, दीर्घजीवी, उत्साही, कार्यक्षेम, और ओजस्वी बनता है। लिये इस अंगीय-रसका महत्त्व मानव जीवनमें अधिक है।

अखिल मानव समाजके हितके लिये अपने भीतर मान ज्ञान बल और धन तथा कर्म शक्तिका प्रदान वालोंका कल्याण होता है। राष्ट्रमें यही यज्ञसे सिद्ध वाला महान् कार्य है। यह यज्ञकर्म अग्निसे ही होता है। बस, यही अग्निका महत्त्व है।

उप त्वाग्ने दिवे दिवे दोषावस्तर्धिया वयम्
नमो भरन्त एमसि ॥ ७ ॥

अन्वयः- हे अग्ने! दिवे दिवे दोषा वस्तः वयं नमः भरन्तः त्वा उप आ इमसि ॥ ७ ॥

अर्थ— हे अग्ने! प्रतिदिन, रात्रीमें और दिन सब अपनी बुद्धिसे, मनः पूर्वक, नमस्कार करते हु समीप पहुँचते हैं, अथवा अन्न लेकर तुझे अर्पण लिये तेरे समीप आते हैं।

'दोषा' रात्रीका नाम है, क्योंकि रात्रीमें ही अनेक अनेक अपराध होते हैं, अन्धकार रहनेके कारण चोर दि बडा उपद्रव होता है। 'वस्तः' दिनका नाम है, यह मनुष्योंके लिये बसने योग्य समय है। रात्रीमें एक और दिनमें एक बार ऐसे प्रतिदिन दो बार मनुष्य अन्न अग्निके पास जाते हैं और नमनपूर्वक उस अग्निमें आहुतियां समर्पण करते हैं। (धिया नमः भर बुद्धिपूर्वक नमन करते हुए, जानबूझकर ज्ञानपूर्वक पात करके सब हम मिलकर अग्निके पास पहुँचते हैं उसकी उपासना करते हैं। यहां दोबार उपासना कही

जाठर अग्निमें भी दिनमें दो बार अन्नकी आहुतियें योग्य है। प्रतिदिन दो बार भोजनका सेवन करना है। अधिकबार खाना योग्य नहीं है।

हैं, प्रयत्नपूर्वक यहां आइये, क्योंकि ये रस आपके लिये रखे हैं। हे वीर और हे राजन्! तुम दोनों अन्नोंके साथ ाका निवास करनेवाले हो और रसोंका स्वाद तुम दोनों नते हो, इसलिये यहां शीघ्र आओ। हे वीर और हे ाजन्! यह सोमरस बुद्धिकी कुशलतासे तैयार करके आपके ये ही रखा है इसलिये तुम दोनों यहां आओ और इसका ीकार करो।'

यह सूक्त राजा और सेनापतिके सम्मानके लिये है ऐसा धिभूत अर्थमें कहा जा सकता है। अतः इससे इनके निम्न खित कर्तव्य प्रगट होते हैं-

(इन्द्रः - इन् + द्रः) शत्रुका नाश करनेवाला, राजा ष्ट्रके शत्रुका नाश करनेका उत्तम प्रबंध करे। (वायु- । गतिगन्धनयोः) शत्रुपर गतिसे हमला करना और शत्रु ा नाश करना। वीर शत्रुपर हमला करे और उसका नाश रे। (प्रयोभिः आगतं) प्रयत्न, अन्न और यत्नके साथ दोनों आवें। प्रयत्न करके राष्ट्रमें अन्न उत्पन्न करें और सके प्रदानसे यज्ञ करें। राष्ट्रमें पर्याप्त अन्न उत्पन्न करना ोर सबको अन्न प्राप्त करा देनेका यत्न करना ये इनके र्तव्य हैं। वीर सबकी सुरक्षा करें और राजा प्रजाद्वारा ाय्य प्रबंध करें, इस तरह दोनों राष्ट्रमें अन्नोंकी पर्याप्त माणमें उत्पत्ति करावें। राष्ट्रमें भरपूर अन्न उत्पन्न हो। (वाजिनीवसू) अन्नके साथ जनताको बसानेहारे, बल- र्धक अन्नोंके साथ प्रजाको रखनेवाले, सेनाके साथ प्रजाकी ुरक्षिततासे बस्ती बढाने वा अन्नके द्वारा सबको सुस्थिर खनेवाले। 'वाजिनी' के अर्थ बल, बलवर्धक अन्न, ेना ये हैं। इनसे प्रजाको बसानेवाले राजा और सेनापति ं। ये (नः-रौ) अपने भोगोंमें ही न रमनेवाले हों और नरौ) जनताके नेता हों, जनताको आगे उन्नतिकी ओर ानेवाले हों।

इन कर्तव्योंको निभानेवाले राजा और सेनापतिका म्मान सब प्रजाजन करें और प्रजाकी सहायता और सुरक्षा करें। यहां सोमरस ही अन्न कहा है, इसमें दूध, दही, ृत, सत्तूका आटा मिलाकर यह रस पिया जाता है। इस ियका वर्णन आगे आनेवाला है।

इन्द्र-वायू, विद्युत् और वायु-से वृष्टि होती है, और ृष्टिसे अन्न होता है। 'पर्जन्यात् अन्न-संभवः।' (गीता ३।१४।१) यह अन्न शाकाहारका ही द्योतक है। यह अन्न धान्य, सोमरस आदि ही है।

मित्रावरुणौ

(२।७-९) मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः।
७-९ मित्रावरुणौ। गायत्री।

मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम्।
धियं घृताचीं साधन्ता ॥ ७ ॥
ऋतेन मित्रावरुणावृतावृधावृतस्पृशा।
क्रतुं बृहन्तमाशाथे ॥ ८ ॥
कवी नो मित्रावरुणा तुविजाता उरुक्षया।
दक्षं दधाते अपसम् ॥ ९ ॥

अन्वयः- पूतदक्षं मित्रं, रिशादसं वरुणं च हुवे, घृताचीं धियं साधन्ता ॥ ७ ॥ मित्रावरुणौ ऋतावृधौ ऋतस्पृशा, ऋतेन बृहन्तं क्रतुं आशाथे ॥ ८ ॥ कवी तुविजाता उरुक्षया मित्रावरुणा अपसं दक्षं नः दधाते ॥ ९ ॥

अर्थ- पवित्र बलसे युक्त मित्रको, और शत्रुका नाश करनेवाले वरुणको मैं बुलाता हूँ, ये स्नेहमयी बुद्धि तथा कर्मको संपन्न करते हैं ॥ ७ ॥ ये मित्र और वरुण सत्यसे बढनेवाले तथा सत्यसे सदा युक्त हैं, वे सत्यसे ही बडे यज्ञ को संपन्न करते हैं ॥ ८ ॥ ये ज्ञानी, बलशाली और सर्वत्र उपस्थित रहनेवाले मित्र और वरुण कर्म करनेका उत्साह देनेवाला बल हमें देते हैं ॥ ९ ॥

'मित्रावरुणौ' ये दो राजा हैं, सम्राट् हैं, ऐसा निम्न लिखित मन्त्रमें कहा है- 'राजानौ अनभिद्रुहा... सदसि... आसाते ॥ ५ ॥ ता सम्राजा... सचेते अनवह्वरम् ॥ ६ ॥ (ऋ. २।४१) ये दो राजा परस्पर द्रोह नहीं करते, क्योंकि...ये सभामें...बैठते (और सभा की संमतिसे राज्य करते हैं)। ये दो सम्राट् हैं...ये छल-कपट रहित आचरण करनेवालेकी सहायता करते हैं। ऐसे ये दो सम्राट् हैं।

एकका नाम 'मित्र' है जो मित्रवत् सबसे प्रेमपूर्ण व्यवहार करता है, दूसरा 'वरुण' है जो निष्पक्ष व्यवहार करता है। यह मित्र (पूत-दक्षः) पवित्र कार्यमें ही अपना बल लगाता है, अपने बलसे कभी अपवित्र कार्य नहीं करता, सदा शुभ कार्य ही करता है। दूसरा वरुण (रिश-

अन्वयः—हे दर्शत वायो! आ याहि, इमे सोमाः अरंकृताः, तेषां पाहि, हवं श्रुधि ॥ १ ॥ हे वायो! सुतसोमाः अहर्विदः जरितारः उक्थेभिः त्वां अच्छ जरन्ते ॥ २ ॥ हे वायो! तव प्रपृञ्चती उरूची धेना सोम-पीतये दाशुषे जिगाति ॥ ३ ॥

अर्थ- हे सुन्दर दर्शनीय वायो! यहां आओ, ये सोम-रस अलंकृत करके तुम्हारे लिये यहां रखे हैं, उनका पान करो, और हमारी प्रार्थना सुनो ॥ १ ॥ हे वायो! सोमरस निकालनेवाले, दिनका महत्त्व जाननेवाले, स्तोता लोग स्तोत्रोंसे तुम्हारे महत्त्वका अच्छी तरह वर्णन करते हैं ॥ २ ॥ हे वायो! तुम्हारी हृदयस्पर्शी विस्तृत वाणी सोमरसपानके लिये दाताके पास पहुंचती है॥ ३ ॥

यहां वायुको परब्रह्मका रूप समझकर वर्णन है। 'तत् वायुः' (वा० य० ३२।१) वह ब्रह्म वायुरूपसे यहां है। यह वायु 'दर्शत' (दर्शनीय, सुन्दर) कैसा माना जा सकता है, यह विचारणीय विषय है। वायुका रूप शरीरमें 'प्राण' है यह भी दीखता नहीं, वायु भी अदृश्य है। जो अदृश्य है वह सुन्दर कैसे हो सकेगा? विचार करनेपर इस बातका पता लगता है कि वायुका रूप प्राण है और यह प्राण जहां तक शरीरमें रहता है तबतक ही वहां सौंदर्य रहता है। प्राणके चले जानेपर वहां सौंदर्य नहीं रहता, इस लिये सौंदर्य प्राणका रूप है और वही विश्व-प्राण-वायुका सौंदर्य है, ऐसा मानना स्वाभाविक है और इस दृष्टिसे प्राण-रूप यह वायु सुन्दर माना जाना स्वाभाविक है।

सोमरस अलंकृत करके रखे हैं अर्थात् रस छान कर, उसमें दूध मिलाकर तैयार करके रखे हैं, सुन्दर बनाये हैं। सोमरसको एक बर्तनसे दूसरे बर्तनमें इसलिये उण्डेला जाता है कि उसमें वायु मिले। यही वायुका सोमरस सेवन होता। वायुका शब्द इस सोमरससम्पर्कके लिये, सोमरसमें मिलनेके लिये सब सोमरस निकालनेवाले सुनते हैं और वे उसकी प्रशंसा करते हैं।

इन्द्रवायू

(४-६) मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः। ४-६ इन्द्रवायू। गायत्री।

इन्द्रवायू इमे सुता उप प्रयोभिरा गतम्।
इन्दवो वामुशन्ति हि ॥ ४ ॥

वायविन्द्रश्च चेतथः सुतानां वाजिनीवसू।
तावा यातमुप द्रवत् ॥ ५ ॥
वायविन्द्रश्च सुन्वत आ यातमुप निष्कृतम्।
मक्षिवित्था धिया नरा ॥ ६ ॥

अन्वयः— हे इन्द्र-वायू! इमे सुताः, प्रयोभिः उप आ गतम्। इन्दवः हि वां उशन्ति ॥ ४ ॥ हे वायो! इन्द्र च, (युवां) वाजिनीवसू सुतानां चेतथः, तौ (युवां) द्रवत् उप आ यातम् ॥ ५ ॥ हे वायो इन्द्रः च, हे नरा इत्था धिया मक्षु सुन्वतः निष्कृतं उप आ यातम्। ॥ ६ ॥

अर्थ- हे इन्द्र और वायु! ये सोमके रस यहां हैं, प्रयत्नके साथ यहां आइये, क्योंकि ये सोमरस ही चाहते हैं ॥ ४ ॥ हे वायो और हे इन्द्र! (तुम दोनों) अन्नके साथ रहनेवाले सोमरसों (की विशेषता) जानते हो, वे (तुम दोनों) शीघ्र ही यहां आओ ॥ ५ ॥ हे वायो और हे इन्द्र! हे नेता लोगो! इस बुद्धिकौशल्यसे सत्वर रस निकालनेवालेने तैयार सोमरसके समीप आइये ॥ ६ ॥

यह सूक्त इन्द्र और वायुका मिलकर है। इन्द्र विद्युत्का है और वायु यही वायु है। वृष्टिकालमें विद्यु और वायु वृष्टिके पूर्व अपना कार्य दिखाते हैं। विद्युत् मेघ कडकती हुई धडाकेके साथ चमकती है और वायु मेघों इधर उधर ले जाता है। इस समयके ये दो-इन्द्र वायु-नेता हैं, धुरीण हैं, प्रमुख हैं, मुख्यकार्यका भ करनेवाले हैं। इसीलिये इनको (नरौ) नेता कहा है।

ये 'वाजिनी-वसू' अर्थात् अन्नसे युक्त हैं। ये अ के उत्पादनकर्ता हैं। अन्नको बसानेवाले हैं। मेघस्था रहनेवाला विद्युद्गि और वायु ये दोनों नाना प्रकारके उत्पन्न करते हैं। इसीलिये कहा है कि (प्रयोभिः आ नाना प्रकारके अन्नोंके साथ आओ। जब ये दोनों आकाशमें संचार करने लगते हैं, तब वृष्टि होती है वृष्टिसे अन्न उत्पन्न होता है, इस तरह ये दो देव अ साथ लाते हैं।

इन्द्र राजाका नाम है। नरेन्द्र राजाको कहते हैं। म मरुतोंका अर्थात् इन्द्रके वीर सैनिकोंका नाम है। इस त यह सूक्त 'नरेन्द्र और वीर सैनिकोंका' है। हे रा और हे सेनापते! आपके लिये ये सोमरस यहां तैयार क

(८-असत्या) कभी असत्यका अवलंबन न करने- (९-रुद्र-वर्तनी) शत्रुका नाश करनेके लिये ोंका अवलंबन करनेवाले हैं। ये (यज्वरीः ः) यज्ञीय पवित्र अन्न खाते हैं, पवित्र अन्न रते हैं, (शवीरया धिया गिरः वनते) अपनी से अनुयायियोंके भाषण सुनते हैं और (युवा- हिषः सुताः) दूध आदि मिलाये, छानकर ाले सोमरसोंका पान करनेके लिये याजकोंके ं।

पद मानवोंको निम्नलिखित बोध दे रहे हैं। (१) ालन करो और घोडोंपर सवार हो जाओ, (२) ओंका बल बटाओ, (३) शुभ कार्योंकोही करो, पने हाथोंसे करने योग्य कार्य जल्दीसे परन्तु ाओ, (५) अनेक कार्य करनेकी क्षमता अपने ाओ, (६) बुद्धि और धैर्य अपने अन्दर बटाओ, ता बनो, अनुयायियोंको उत्तम मार्गसे ले जाओ, शत्रुका पूर्ण नाश करो, (९) कभी असत्यका अव- रो, (१०) शत्रुका नाश करनेके लिये भयानक भी आवश्यक हुआ तो अवश्य अवलंब करो, (११) सका भोजन करो, (१२) जिसके साथ भाषण ं उसका भाषण शांतिसे सुनो, (१३) सोमरसका रना हो तो उसमें दूध दही शहद सत्तू आदि जो ा हो वह मिला दो, उसको अच्छी तरह छान लो और उसका पान करो। हरएक रसके पानके विषयमें नेयम है।

र सूक्तका प्रत्येक पद मानवोंको महत्वपूर्ण उपदेश ते।

पूतासः, त्वायवः सुताः, आयाहि ॥ १ ॥ हे इन्द्र! धिया इषितः विप्रजूतः (त्वं) सुतावतः यावतः ब्रह्माणि उप (शवसाय) आ याहि ॥ २ ॥ हे हरिवः इन्द्र ! (त्वं) ब्रह्माणि उप (ऐतुं) त्वरयमाणः आ याहि, नः सुते चनः दधिष्व ॥ ३ ॥

अर्थ– हे विलक्षण कांतिसे युक्त इन्द्र ! ये अंगुलियोंसे निचोडे, सदा पवित्र, तेरे लिये तैयार किये सोमरस (हैं, अतः तू) यहां आ ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! हमारी बुद्धियोंद्वारा प्रार्थित, ब्राह्मणोंसे प्रेरित हुआ, तू सोमरस अपने पास तैयार रखनेवाले स्तोताके स्तोत्र (गान सुननेके लिये) यहां आ ॥ २ ॥ हे घोडोंवाले इन्द्र ! तू हमारे स्तोत्र श्रवण करनेके लिये त्वराके साथ यहां आ और हमारे सोमयागमें हमारे अन्नका स्वीकार कर ॥ ३ ॥

इन्द्र राजा है, श्रेष्ठ है, वह विलक्षण तेजसे युक्त है। वह घोडोंका पालन करता है, उत्तम पीत वर्णके घोडे अपने पास रखता है। वह यज्ञमें त्वरासे आता है। याजकोंद्वारा दिया सोमरस तथा अन्न सेवन करता है। याजक उसको बुलाते हैं और उसके शूर कर्मोंका वर्णन करते हैं।

इस तरह मनुष्य वीरोंके काव्योंका गान करें, वीरोंको बुलावें, उनका सन्मान करें। सर्वत्र वीरताका वातावरण फैलाते रहें।

विश्वे देवाः

(३१७-९) मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः। १-९ विश्वे देवा। गायत्री।

ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वे देवास आ गत।
दाश्वांसो दाशुषः सुतम् ॥ १ ॥
विश्वे देवासो अप्तुरः सुतमा गन्त तूर्णयः।
उस्रा इव स्वसराणि ॥ २ ॥

धदस्) शत्रुको खानेवाला है, शत्रुका पूर्णरूपसे नाश करता है, शत्रुको जीवित नहीं रखता। ये दोनों राजा मिलकर (घृत-अर्ची) घृतसे पूर्णतया भीगी, घीसे लबालब भरी, अर्थात् स्नेहसे परिपूर्ण (धियं) बुद्धिको तथा कर्मको करते हैं, परस्पर स्नेहभाव बढने योग्य कर्म करते हैं। ऐसे विचार प्रसृत करते हैं तथा ऐसे कार्य करते हैं जो स्नेहको बढानेवाले हों। परस्पर वैर बढने योग्य किसी तरह भी आचरण नहीं करते। (७)

ये मित्र और वरुण (ऋत-स्पृशौ) सदा सत्यको ही स्पर्श करनेवाले, सत्यपालक हैं। 'ऋत' का अर्थ सत्य, सरलता है। ये (ऋता-वृधौ) सत्य व्यवहारको बढानेवाले, सत्यव्यवहारसे ही वृद्धिको प्राप्त करनेवाले हैं, कभी असत्यकी ओर नहीं जाते, इसलिये (बृहन्तं क्रतुं) बडे बडे कार्योंको (ऋतेन आशाथे) सत्यसे ही परिपूर्ण करते हैं। अर्थात् इन राजाओंका सारा राज्ययन्त्र सत्यके आश्रयसे चलता है, कभी किसी तरह असत्य, छल, कपट, कुटिलता, टेढापन इनके व्यवहारमें नहीं रहता और इसी कारण ये किसीका द्रोह नहीं करते हैं। (८)

ये दोनों (कवी) ज्ञानी, बुद्धिमान्, कवी हैं, दूरदर्शी हैं, (नृचि-जातौ) सामर्थ्यके लिये प्रसिद्ध हैं, (उरु-ष्यया) विस्तृत घरमें रहते हैं, बडे निवासस्थानमें रहते हैं। और (अपसे दक्षं) कर्म करनेकी शक्ति या क्षमता अपनेमें धारण करते हैं, बढाते हैं। (९)

इन तीनों मंत्रोंमें दो राजाओंका व्यवहार कैसा हो, इसका उत्तम वर्णन है। राजा लोग अपना बल पवित्र कार्यमें ही लगावें, कभी अयोग्य, अपवित्र कार्यमें न खर्च करें। शत्रुका नाश करनेका बल धारण करें, इसमें कभी न्यूनता न रखें, परस्पर स्नेहपूर्ण व्यवहार करें और प्रजासेभी स्नेहमय व्यवहार होने योग्य ज्ञान प्रजामें फैला दें। सत्य और सरल व्यवहार बढावें, सदा सत्य और सरल मार्गका अवलंब करें, कभी टेढे और असन्मार्गसे न जायँ। सत्य सरल व्यवहार करते हुए बडे बडे कार्य करें और बडे विशाल कार्य सफल करें। ज्ञानी बनें, बल बढावें, सुदृढ विशाल घरोंमें रहें और कर्म को यथायोग्य रीतिसे निभानेका सामर्थ्य अपनेमें बढावें।

संक्षेपसे इस तरहकी राज्यव्यवस्था उक्त तीन मंत्रोंमें कही है।

'मित्रावरुणौ' के और भी अर्थ हैं- प्राण और ते. ब्रा. ३।३।६।९; अहोरात्र। श. ब्रा. १।८।३।१२; दि हे रात्री वरुण है। ऐ. ब्रा. ४।१०; दोनों पक्ष (शुक्ल मित्रावरुण हैं। तां. ब्रा. २५।१०।११; भूलोक और मित्रावरुण हैं। श. ब्रा. १२।९।३।१२; सूर्य मित्र है चन्द्रमा वरुण है। इस तरह वैदिक वाङ्मयमें अनेक हैं। मनन करनेवाले इसका अधिक मनन करें।

अश्विनौ

(३।१-३) मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः। १-३ अश्विनौ। गा

अश्विना यज्वरीरिषो द्रवत्पाणी शुभस्पती।
पुरुभुजा चनस्यतम् ॥ १ ॥
अश्विना पुरुदंससा नरा शवीरया धिया।
धिष्ण्या वनतं गिरः ॥ २ ॥
दस्रा युवाकवः सुता नासत्या वृक्तबर्हिषः।
आ यातं रुद्रवर्तनी ॥ ३ ॥

अन्वयः- हे पुरुभुजा शुभस्पती! द्रवत्पाणी यज्वरीः इषः चनस्यतम् ॥ १ ॥ हे पुरुदंससा धिष्ण्य अश्विना! शवीरया धिया गिरः वनतम् ॥ २ ॥ हे नासत्या रुद्रवर्तनी! युवाकवः वृक्तबर्हिषः सुताः तम् ॥ ३ ॥

अर्थ- हे विशाल भुजावाले, शुभ कार्योंका पालन वाले, अतिशीघ्र कार्य करनेवाले अश्विदेवो! यज्ञके अन्नसे आनन्द-प्रसन्न हो जाओ ॥ १ ॥ हे अनेक कार्य वाले, धैर्ययुक्त बुद्धिमान् नेता अश्विदेवो! अपनी तेजस्वी बुद्धिके द्वारा हमारे भाषणको सुनो ॥ २ ॥ हे विनाशकर्ता असत्यसे दूर रहनेवाले भयंकर मार्गसे ज वीरो! ये संमिश्रित किये, तिनके निकाले हुए सोमर उनका पान करनेके लिये यहां आओ ॥ ३ ॥

यहां दोनों अश्विदेवोंका वर्णन है। अश्वोंका, पालन करनेमें ये चतुर थे। ये (पुरुभुजा) विशाल वाले, (शुभस्-पति) शुभ कर्मोंको करनेवाले, (पाणी) अपने हाथोंसे अतिशीघ्र कार्य करनेवाले, दंससा) अनेक कार्य निभानेवाले, (धिष्ण्या) बुद्धिमान् तथा धैर्ययुक्त, (नरा) नेता, अनुयायियोंको मार्गसे ले जानेवाले, (दस्रा) शत्रुका नाश

'धी' का अर्थ बुद्धि और कर्म है। बुद्धिसे जो उत्तम कर्म होते हैं उनसे नाना प्रकारके धन देनेवाली यही विद्या है, (सूनृतानां चोदयित्री) सत्यसे बननेवाले विशेष महत्त्वपूर्ण कर्मोंकी प्रेरणा करनेवाली यह विद्या है, (सुमतीनां चेतन्ती) शुभ मतियोंको चेतना यही देती है, यह विद्या (केतुना) ज्ञानका प्रसार करनेके कारण (महो अर्णः प्रचेतयति) कर्मोंके बडे महासागरको ज्ञानीके सामने खुला कर देती है। ज्ञानसे नाना प्रकारके कर्म करनेके मार्ग मनुष्य के सम्मुख खुले होते हैं। जितना ज्ञान बढेगा उतने नाना प्रकारके कर्म करनेकी शक्ति भी मनुष्यकी बढती जायगी और यही मनुष्यके सुखोंको बढानेवाली होगी। मानवोंकी सब प्रकारकी बुद्धियोंपर इसी विद्याका राज्य है। विद्यासे ही सभी मानवोंकी सब प्रकारकी बुद्धियोंका तेज बढ सकता है। मानवी बुद्धियोंपर विद्याकाही साम्राज्य है।

यह विद्याका उत्तम सूक्त है और इसका जितना मनन किया जाय, उतना वह अधिक बोधप्रद होनेवाला है।

(२) द्वितीयोऽनुवाकः।

इन्द्रः

४१-१०) मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः। इन्द्रः। गायत्री।

रूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे।
जुहूमसि द्यविद्यवि ॥ १ ॥
प नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब।
गोदा इद्रेवतो मदः ॥ २ ॥
अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम्।
मा नो अति ख्य आ गहि ॥ ३ ॥
परेहि विग्रमस्तृतमिन्द्रं पृच्छा विपश्चितम्।
यस्ते सखिभ्य आ वरम् ॥ ४ ॥
उत ब्रुवन्तु नो निदो निरन्यतश्चिदारत।
दधाना इन्द्र इद् दुवः ॥ ५ ॥
उत नः सुभगाँ अरिर्वोचेयुर्दस्म कृष्टयः।
स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि ॥ ६ ॥
एमाशुमाशवे भर यज्ञश्रियं नृमादनम्।
पतयन् मन्दयत्सखम् ॥ ७ ॥
अस्य पीत्वा शतक्रतो घनो वृत्राणामभवः।
प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥ ८ ॥
तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयामः शतक्रतो।
धनानामिन्द्र सातये ॥ ९ ॥
यो रायोऽवनिर्महान्त्सुपारः सुन्वतः सखा।
तस्मा इन्द्राय गायत ॥ १० ॥

अन्वयः — गोदुहे सुदुघां इव, त्वा त्वा जनये सुरूपकृत्नुं जुहूमसि ॥ १ ॥ हे सोमपाः! नः सवना उप आगहि, सोमस्य पिब, रेवतः मदः गोदा इत् ॥ २ ॥ अथ ते अन्तमानां सुमतीनां विद्याम, (त्वं) नः मा अति ख्यः, आ गहि ॥ ३ ॥ परा इहि, यः ते सखिभ्यः वरं आ (यच्छति, तं) विग्रं अस्तृतं विपश्चितं इन्द्रं पृच्छ ॥ ४ ॥ इन्द्रे इत् दुवः दधानाः, ब्रुवन्तु, नः निदः अन्यतः चित् उत निः आरत। ॥ ५ ॥ हे दस्म! अरिः नः सुभगान् वोचेयुः, उत कृष्टयः (च वोचेयुः), इन्द्रस्य शर्मणि स्याम इत् ॥ ६ ॥ आशवे त्वं यज्ञश्रियं, नृमादनं, पतयत् मन्दयत्सखं आशुं आ भर ॥ ७ ॥ हे शतक्रतो! अस्य पीत्वा वृत्राणां घनः अभवः, वाजेषु वाजिनं प्र आवः ॥ ८ ॥ हे शतक्रतो! इन्द्र! धनानां सातये वाजेषु तं वाजिनं त्वा वाजयामः ॥ ९ ॥ यः रायः अवनिः, महान् सुपारः, सुन्वतः सखा, तस्मै इन्द्राय गायत ॥ १० ॥

अर्थ- गौके दोहनके समय जिस तरह उत्तम दूध देनेवाली गौको ही बुलाते हैं उस तरह, प्रतिदिन अपनी सुरक्षा के लिये सुन्दर रूपवाले इस विश्वके निर्माता (इन्द्र) की हम प्रार्थना करते हैं ॥ १ ॥ हे सोमपान करनेवाले इन्द्र! हमारे सोमरस निकालनेके समय हमारे पास आओ, सोमरसका पान करो, (तुम जैसे) धनवानका हर्ष निःसंदेह गौयें देनेवाला है ॥ २ ॥ तेरे पासकी सुमतियों हम प्राप्त करें, (तुम) हमें छोडकर अन्यके समीप प्रकट न होओ, हमारे पास ही आओ ॥ ३ ॥ (हे मनुष्य!) तू दूर जा और जो तेरे मित्रोंके लिये श्रेष्ठ धनादि (देता है उस) ज्ञानी, पराजित न हुए कर्मप्रवीण इन्द्रसे पूछ ले और (जो मांगना है वह उससे मांग) ॥ ४ ॥ इन्द्रकी ही उपासना

हे सब देवो ! आप कर्म करनेमें कुशल हैं, सत्वर कर्म करनेवाले हैं, अतः जिस तरह अपनी गोशालामें गौवें जाती हैं, उस तरह यहां आओ ॥ ८ ॥ हे सब देवो ! आपका घातपात कोई नहीं कर सकता, आपकी कुशलता अनुपम है, आप किसीका द्रोह नहीं करते, आप सबके लिये सुख साधन ढोकर ला देते हैं, वे आप हमारे यज्ञमें आकर हमारे दिये अन्नका सेवन करो ॥ ९ ॥

यहांका ' विशे देवाः ' का वर्णन मानवोंके लिये बडा बोधप्रद हो सकता है। (१) ओमासः = सबका रक्षण करनेवाले; (२) चर्षणी-धृतः = मानव संघोंका धारण पोषण करनेवाले, किसानोंकी सुरक्षा करनेवाले; (३) दाश्वांसः = दान देनेवाले, दाता; (४) अपुनुरः = खरासे सब कार्य उत्तम रीतिसे करनेवाले; (५) नृणयः = सब कार्य अतिशीघ्र परंतु उत्तम संपन्न करनेवाले; (६) अ-स्रिधः = जिनका कोई घातपात नहीं कर सकते, जिनके कार्यमें कोई रुकावट नहीं डाल सकते (७) तुविमायासः = जिनकी कर्मकुशलता अनुपम है, जिनके समान कुशल दूसरे कोई नहीं हैं, जो कुशलताके कार्योंमें ही प्रगति करते हैं, (८) अ-द्रुहः = किसीका कभी द्रोह न करनेवाले, (९) वह्नयः = ढोकर सब सुखसाधन जनताके पास पहुँचानेवाले, वाहनकर्ता। ये गुण हरएक मनुष्यको अपनेमें संपादन करनेयोग्य हैं।

ये विशे देव यज्ञ-कर्ताके सोमयागके पास जाते हैं, गौवें घरमें आनेके समान याजकके घर आते हैं और पवित्र अन्नका सेवन करते हैं।

' मेध ' का अर्थ यज्ञ है। जिससे मेधाकी वृद्धि होती है इसका नाम मेध है। मेधाकी वृद्धि करनेवाले कर्मका नाम मेध है। इसमें पूर्व ' अ-ध्वर ' पद यज्ञवाचक आया है। इसका अर्थ है अहिंसायुक्त कर्म। मेधा बुद्धिकी वृद्धि होने पर यज्ञ होते हैं और उनमें सब देव आते हैं, आदर सत्कार करते हैं और उस यज्ञकी सहायता करते हैं।

पुरोहित सूत्र सम्पादनें देवताओंकी वृद्धि करनेवाले हैं और उनके इस गुणकी सहायता करना ही मनुष्यके लिये करने योग्य कर्म है।

सरस्वती

[illegible] । १०–१२ सरस्वती ।

[illegible]

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती।
यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥ १० ॥
चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम्।
यज्ञं दधे सरस्वती ॥ ११ ॥
महो अर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना।
धियो विश्वा वि राजति ॥ १२ ॥

अन्वयः — सरस्वती नः पावका, वाजेभिः [illegible] धियावसुः यज्ञं वष्टु ॥ १० ॥ सूनृतानां चोदयित्री, तीनां चेतन्ती, सरस्वती यज्ञं दधे ॥ ११ ॥ सरस्वती महो अर्णः प्र चेतयति, विश्वा धियः वि राजति ॥ १२ ॥

अर्थ — विद्या हमें पवित्र करनेवाली है, देनेके कारण वह अन्नवाली भी है, बुद्धिसे होनेवाले कर्मोंसे नाना प्रकारके धन देनेवाली (यह विद्या) यज्ञकी सफलता करे ॥ १० ॥ सत्यसे होनेवाले कर्मोंकी करनेवाली, सुमतियोंको बढानेवाली, यह विद्यादेवी यज्ञका पूर्ण रूपसे धारण करती है ॥ ११ ॥ यह ज्ञानसे (जीवनके) बडे महासागरको स्पष्ट दर्शाती (यह विद्या) सब प्रकारकी बुद्धियोंपर विराजती है ॥ १२ ॥

यह सरस्वतीका सूक्त है। सरस्वती विद्या ही है। कालसे चली आयी विद्या प्रवाहवती होनेसे कहलाती है। यह विद्या रस देती है, रहस्य प्राप्त उत्तम आनंद देती है, इसलिये ' स-रस्-वती ' है। सरस्वती नदीके तीरपर नाना ऋषियोंके आश्रम और विद्याका पढना पढाना वहां अनादि कालसे चलता इसलिये उस नदीको भी सरस्वती नाम मिला होगा।

यह विद्या सब प्रकारका ज्ञान ही है। अध्यात्म, और अधिदैवत ऐसा तीन प्रकारका ज्ञान होता है, इसमें प्रकारका ज्ञान अन्तर्भूत होता है। मनुष्यकी उन्नति वाला यही सब प्रकारका त्रिविध ज्ञान है। इसी विद्याका नाम इस सूक्तमें सरस्वती कहा है। यह (पावका) पवित्रता करनेवाली है, शरीर मन और बुद्धि शुद्धता इसी विद्यासे होती है। (वाजेभिः वाजिनीवती विद्या अन्न देती है, खानपानके प्रश्नका हल करती है, लिये इसको अन्नवाली कहते हैं। नाना प्रकारके बल विद्यासे प्राप्त होते हैं, अतः विद्याको बलवती भी कहते ' वाज ' का अर्थ अन्न और बल दोनों हैं। (धियावसु

धी ' का अर्थ बुद्धि और कर्म है। बुद्धिसे जो उत्तम कर्म ते हैं उनसे नाना प्रकारके धन देनेवाली यही विद्या है, सूनृतानां चोदयित्री) सत्यसे बननेवाले विशेष महत्त्व-र्ण कर्मोंकी प्रेरणा करनेवाली यह विद्या है, (सुमतीनां तन्ती) शुभ मतियोंको चेतना यही देती है, यह विद्या केतुना) ज्ञानका प्रसार करनेके कारण (महो अर्णः चेतयति) कर्मोंके बडे महासागरको ज्ञानीके सामने खुला र देती है। ज्ञानसे नाना प्रकारके कर्म करनेके मार्ग मनुष्य के सम्मुख खुले होते हैं। जितना ज्ञान बढेगा उतने नाना प्रकारके कर्म करनेकी शक्ति भी मनुष्यकी बढती जायगी और यही मनुष्यके सुखोंको बढानेवाली होगी। मानवोंकी सब प्रकारकी बुद्धियोंपर इसी विद्याका राज्य है। विद्यासे ही सभी मानवोंकी सब प्रकारकी बुद्धियोंका तेज बढ सकता है। मानवी बुद्धियोंपर विद्याकाही साम्राज्य है।

यह विद्याका उत्तम सूक्त है और इसका जितना मनन किया जाय, उतना वह अधिक बोधप्रद होनेवाला है।

(२) द्वितीयोऽनुवाकः।

इन्द्रः

(४।१-१०) मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः। इन्द्रः। गायत्री।

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे।
जुहूमसि द्यविद्यवि ॥ १ ॥
उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब।
गोदा इद्देवतो मदः ॥ २ ॥
अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम्।
मा नो अति ख्य आ गहि ॥ ३ ॥
परेहि विग्रमस्तृतमिन्द्रं पृच्छा विपश्चितम्।
यस्ते सखिभ्य आ वरम् ॥ ४ ॥
उत ब्रुवन्तु नो निदो निरन्यतश्चिदारत।
दधाना इन्द्र इद् दुवः ॥ ५ ॥
उत नः सुभगाँ अरिर्वोचेयुर्दस्म कृष्टयः।
स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि ॥ ६ ॥
एमाशुमाशवे भर यज्ञश्रियं नृमादनम्।
पतयन् मन्दयत्सखम् ॥ ७ ॥
अस्य पीत्वा शतक्रतो घनो वृत्राणामभवः।
प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥ ८ ॥
तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयामः शतक्रतो।
धनानामिन्द्र सातये ॥ ९ ॥
यो रायोऽवनिर्महान्त्सुपारः सुन्वतः सखा।
तस्मा इन्द्राय गायत ॥ १० ॥

अन्वयः — गोदुहे सुदुघां इव, त्वि त्वि ऊतये सुरूपकृत्नुं जुहूमसि ॥ १ ॥ हे सोमपाः ! नः सवना उप आ गहि, सोमस्य पिब, रेवतः मदः गोदा इत् ॥ २ ॥ अथ ते अन्तमानां सुमतीनां विद्याम, (त्वं) नः मा अति ख्यः, आ गहि ॥ ३ ॥ परा इहि, यः ते सखिभ्यः वरं आ (यच्छति, तं) विग्रं अस्तृतं विपश्चितं इन्द्रं पृच्छ ॥ ४ ॥ इन्द्रे इत् दुवः दधानाः, ब्रुवन्तु, नः निदः अन्यतः चित् उत निः आरत। ॥ ५ ॥ हे दस्म ! अरिः नः सुभगान् वोचेयुः, उत कृष्टयः (च वोचेयुः), इन्द्रस्य शर्मणि स्याम इत् ॥ ६ ॥ आशवे ईं यज्ञश्रियं, नृमादनं, पतयत् मन्दयत्सखं आशुं आ भर ॥ ७ ॥ हे शतक्रतो ! अस्य पीत्वा वृत्राणां घनः अभवः, वाजेषु वाजिनं प्र आवः ॥ ८ ॥ हे शतक्रतो ! इन्द्र ! धनानां सातये वाजेषु तं वाजिनं त्वा वाजयामः ॥ ९ ॥ यः रायः अवनिः, महान् सुपारः, सुन्वतः सखा, तस्मै इन्द्राय गायत ॥ १० ॥

अर्थ- गौके दोहनके समय जिस तरह उत्तम दूध देनेवाली गौको ही बुलाते हैं उस तरह, प्रतिदिन अपनी सुरक्षा के लिये सुन्दर रूपवाले इस विश्वके निर्माता (इन्द्र) की हम प्रार्थना करते हैं ॥ १ ॥ हे सोमपान करनेवाले इन्द्र! हमारे सोमरस निकालनेके समय हमारे पास आओ, सोमरसका पान करो, (तुम जैसे) धनवान्का हर्ष निःसंदेह गौवें देनेवाला है ॥ २ ॥ तेरे पासकी सुमतियों हम प्राप्त करें, (तुम) हमें छोडकर अन्यके समीप प्रकट न होओ, हमारे पास ही आओ ॥ ३ ॥ (हे मनुष्य !) तू दूर जा और जो तेरे मित्रोंके लिये श्रेष्ठ धनादि (देता है उस) ज्ञानी, पराजित न हुए कर्मप्रवीण इन्द्रसे पूछ ले और (जो मांगना है वह उससे मांग) ॥ ४ ॥ इन्द्रकी ही उपासना

सौन्दर्य देनेवाला। जो करना है वह अत्यंत सुन्दर बनानेवाला। यह इन्द्रकी कुशल कारीगरीका वर्णन है। मनुष्य भी अपने अन्दर इस तरहकी कर्ममें कुशलता लावे और बढावे। ' इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते। ' (ऋ० ६।४७।१८) इन्द्र अपनी कुशलताओंसे अनेक रूप होकर विचरता है। इन्द्र अनेक रूप इतनी कुशलताके साथ लेता है कि वह पहचाना नहीं जाता। ऐसा बहुरूपिया इन्द्र है। यह भी इन्द्रकी कुशलताका ही उदाहरण है। वैसी ही कुशलता इस पदमें वर्णन की है। इन्द्र जो बनाता है वह सुन्दर बनाता है। इन्द्र पद परमात्माका वाचक है और उसमें ये पद पूर्णतया सार्थ होते हैं। अन्यत्र अंशरूप सार्थकता समझनी चाहिये।

२ सोमपाः — सोमरसका पान करनेवाला।

३ गो-दाः — गौवें देनेवाला।

४ अ-स्तृतः — अपराजित, जिसको कोई परास्त नहीं कर सकता ऐसा अजेय वीर।

भी करे।

११ ते अन्तमानां सुमतीनां विशाम- इन्द्रके जो उत्तम बुद्धियां हैं उनको हम प्राप्त हों। वीर बुद्धि हो और वह उत्तम मन्त्रणा या परामर्श दूसरोंको दे दे।

१३ सम्बिभ्यः वरं आ (यच्छति)- मित्रोंको और श्रेष्ठ वस्तुओंका प्रदान करता है। मित्रोंको कल्याणकारी वस्तु ही दी जावे।

१४ इन्द्रस्य शर्मणि स्याम- इन्द्रके सुखमें हम रहें। इन्द्र सुख देता है। वैसा सुख वीर सब लोगोंको दे दे।

१५ वृत्राणां धनः- घेरनेवाले शत्रुका विनाश करनेवाला। वीर अपने शत्रुका नाश करे।

१६ वाजेषु वाजिनं प्रावः, वाजेषु वाजिनं वाजय युद्धोंमें बल दिखानेवालेकी सुरक्षा कर।

१७ धनानां सातिः- इन्द्र धनोंका प्रदान करता है। वीर धन कमाता चले और उसका जनताकी उन्नतिके लिये दान भी करे।

१८ रायः अवनिः- धनोंकी सुरक्षा कर,

१९ महान् सुधारः- दुःखोंसे उत्तम पार हो जा।

इसने स्तुत्य-प्रशंसोंसे बड़ा ही बोध दिया है। सुधार करो, धनवान् औरोंका पालन अवश्य करें और औरोंका धन भी दें, अपनी बुद्धि सुसंस्कारसंपन्न करें और दूसरोंकी उन्नत सहायता दें, अपने मित्रोंसे श्रेष्ठ मनुष्य प्राप्त करें, दूसरोंको सुख दें दें, अपने मनुष्य मान करें, दुःखोंसे औरोंसे उनेवालोंकी सहायता करें, अपने धनोंका उत्तम दान करें, नकी सुरक्षा करें, दुःखोंसे पार होनेकी योजना करें। ये उदेश इस सूक्तसे मनुष्योंको मिलते हैं।

पाठक इस तरह मन्त्रके पदपदका मनन करें और उनके देनेवाला बोध ग्रहण करें।

इस सूक्तमें 'इन्द्रे दुवं दधानाः' ऐसा मन्त्रभाग है, इन्द्रकी उपासनाका धारण करनेवाले' ऐसा इसका अर्थ । इससे पता चलता है कि इन्द्रकी उपासनाका व्रत धारण किया जाता था। इसी सूक्तके ५ वें मन्त्रमें (निदः) निन्दक । वे संभवतः इन्द्रकी उपासना करनेवालोंके द्वेषी या निंदक होंगे। वे दूर भाग जायँ और हम इन्द्रकी उपासना उपासना करें। आगेके दसवें मन्त्रमें कहा है कि ये ही शत्रु रहें कि हम इन्द्रकी उपासनासे (सुभगात्) भाग्यवान् बन ये हैं। इन्द्रकी उपासना करनेवालोंका भाग्य बढ़ता है यह देखकर अन्य लोग भी इस उपासनाका धारण करेंगे। यह सामान्य यहां दीखता है।

इन्द्र

(ऋषिः-१०) मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः। इन्द्रः। गायत्री।

आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत।
सखायः स्तोमवाहसः ॥ १ ॥
पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्याणाम्।
इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥ २ ॥
स घा नो योग आ भुवत् स राये स पुरंध्याम्।
गमद्वाजेभिरा स नः ॥ ३ ॥
यस्य संस्थे न वृण्वते हरी समत्सु शत्रवः।
तस्मा इन्द्राय गायत ॥ ४ ॥
सुतपाते सुता इमे शुचयो यन्ति वीतये।
सोमासो दध्याशिरः ॥ ५ ॥
त्वं सुतस्य पीतये सद्यो वृद्धो अजायथाः।
इन्द्र ज्येष्ठाय सुक्रतो ॥ ६ ॥
आ त्वा विशन्त्वाशवः सोमास इन्द्र गिर्वणः।
शं ते सन्तु प्रचेतसे ॥ ७ ॥
त्वां स्तोमा अवीवृधन्त्वामुक्था शतक्रतो।
त्वां वर्धन्तु नो गिरः ॥ ८ ॥
अक्षितोतिः सनेदिमं वाजमिन्द्रः सहस्रिणम्।
यस्मिन् विश्वानि पौंस्या ॥ ९ ॥
मा नो मर्ता अभि द्रुहन्तनूनामिन्द्र गिर्वणः।
ईशानो यवया वधम् ॥ १० ॥

अन्वयः- हे स्तोमवाहसः सखायः! आ तु आ इत, निषीदत, इन्द्रं अभि प्र गायत ॥ १ ॥ सचा सोमे सुते पुरूतमं, पुरूणां वार्याणां ईशानं इन्द्रं (अभि प्र गायत) ॥ २ ॥ स घ नः योगे, सः राये, स पुरंध्यां आ भुवत्। सः वाजेभिः नः आ गमत् ॥ ३ ॥ समत्सु यस्य संस्थे हरी शत्रवः न वृण्वते, तस्मै इन्द्राय गायत ॥ ४ ॥ इमे सुताः शुचयः दध्याशिरः सोमासः सुतपाते वीतये यन्ति ॥ ५ ॥ हे सुक्रतो इन्द्र! त्वं सुतस्य पीतये ज्येष्ठाय सद्यः वृद्धः अजायथाः ॥ ६ ॥ हे गिर्वणः इन्द्र! सोमासः आशवः त्वा आविशन्तु, ते प्रचेतसे शं सन्तु ॥ ७ ॥ हे शतक्रतो! त्वां स्तोमाः, त्वां उक्था अवीवृधन्, नः गिरः त्वां वर्धन्तु ॥ ८ ॥ अक्षितोतिः इन्द्रः यस्मिन् विश्वानि पौंस्या सहस्रिणं इमं वाजं सनेत् ॥ ९ ॥ हे गिर्वणः इन्द्र! मर्ताः नः तनूनां मा अभिद्रुहन्, ईशानः वधं यवय ॥ १० ॥

अर्थ- हे स्तोत्र पाठक मित्रो! आओ, यहाँ आओ, बैठो, और इन्द्रके ही स्तोत्र गाओ ॥ १ ॥ सबके द्वारा मिलकर सोमरस निकालनेपर, श्रेष्ठोंमें श्रेष्ठ, बहुत पास रखनेयोग्य धनोंके स्वामी, इन्द्रकी (स्तुतिका गान करो) ॥ २ ॥ वही इन्द्र निश्चयसे हमें प्राप्तव्यकी प्राप्ति करानेमें, धन-प्राप्तिमें और विशाल बुद्धि करनेमें सहायक होवे, वह अपने अनेक सामर्थ्योंके साथ हमारे पास आ जावे ॥ ३ ॥ युद्धोंमें जिसके रथमें घोडे जुत जानेपर शत्रु जिसको पकड नहीं सकते, उसी इन्द्रका काव्यगायन करो ॥ ४ ॥ ये सोमरस छान कर पवित्र किये और दही मिलाकर सोम पीनेवाले इन्द्रके पीनेके लिये सिद्ध हुए हैं ॥ ५ ॥ हे उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्र! तू सोमरस पीनेके लिये और श्रेष्ठ होनेके लिये सत्वर ही बडा हो गया है ॥ ६ ॥ हे स्तुति-योग्य इन्द्र! ये सोमरस तेरे अन्दर प्रविष्ट हों और तेरे चित्तको आनन्द देते रहें ॥ ७ ॥

का धारण करनेवाले घोषणा करके कहें कि, हमारे सब निन्दक दूर जायँ और वहांसे भी वे भाग जायँ ॥ ५ ॥ हे अनन्त सामर्थ्यवाले इन्द्र ! हमारे शत्रुभी हमें भाग्यवान् कहें, इसी तरह सभी मनुष्य (कहें), हम इन्द्रके ही आश्रयमें रहेंगे ॥ ६ ॥ इन्द्रको यह यज्ञकी शोभा बढानेवाला, मनुष्योंको आनन्द देनेवाला, यज्ञको संपन्न करनेवाला, आनन्द देनेवालेका मित्र जैसा यह सोमरस भरपूर है ॥ ७ ॥ हे सैकडों कर्म करनेवाले इन्द्र ! इस सोमरसके पीनेसे तुम दुष्टोंका नाश करनेवाले बने हो, इसीसे तुम सबकी सदैव सुरक्षा करते हो ॥ ८ ॥ हे सैकडों कर्म करनेवाले इन्द्र ! धनके दान करनेके लिये तुम्हींमें बल बतानेवाले तुम्हीं [illegible] ॥ ९ ॥ जो तू धनका रक्षक [illegible] वज्रकर्ताका मित्र है उसी

५ विपश्चित् — ज्ञानी, विद्यावान् ।

६ विप्रः— मेधावान्, प्रज्ञावान् (निर्व. ३ जिसकी बुद्धिकी ग्राहक शक्ति विशेष है । जिसकी नहीं होती ।

७ शतक्रतुः— सैकडों कर्म करनेवाला, बडे यज्ञ करनेवाला ।

८ वाजी — बलवान्, अन्नवान् ।

९ दस्म — शत्रुका नाश करनेवाला, सुन्दर ।

इन पदोंद्वारा कर्मकी कुशलता, गौओंका दान स्वभाव, अपराजित रहनेका बल, ज्ञान और धारणा अनेक बडे कार्य करनेकी शक्ति, सामर्थ्यवान्, शत्रुका करना आदि गुणोंका वर्णन हुआ है । ये गुण मानवों अत्यंत ही आवश्यक हैं । अब वाक्योंद्वारा इन्द्रके

हे सैकडों कर्म करनेवाले इन्द्र ! ये स्तोत्र तेरी और ये गान तेरी बधाई करें, हमारी वाणियाँ तेरी यशोवृद्धि करें ॥ ८ ॥ जिसकी रक्षाशक्तिमें कभी न्यूनता नहीं होती वह इन्द्र, जिसमें सब बल समाये हैं, ऐसा सहस्रोंके पालन करनेके सामर्थ्यसे युक्त बल हमें देवे ॥ ९ ॥ हे स्तुतियोग्य इन्द्र ! कोई भी मानव हमारे शरीरोंको किसी तरहका उपद्रव न दे सके, और तू सबका ईश है इसलिये वध हमसे दूर कर दे ॥ १० ॥

इस सूक्तमें इन्द्रके वर्णनके लिये निम्नलिखित पद प्रयुक्त हुए हैं–

१. पुरुतमः– जिसके पास अत्यंत धन है। जो सबका पालन और पोषण करता है वह 'पुरु' है और वही पालनपोषणका कार्य अत्यंत पूर्ण रीतिसे करता है, इसलिये वह 'पुरु-तम' है। अत्यंत श्रेष्ठ, श्रेष्ठोंमें श्रेष्ठ, मनुष्य श्रेष्ठ बने।

२. पुरूणां वार्याणां ईशानः– अनंत धनोंका स्वामी, जिसके पास जनताका पालनपोषण करनेवाले सब प्रकारके पर्याप्त धन हैं। मनुष्य अपने पास धन रखे।

३. सुत-पावा– सोमरस पीनेवाला।

४. सुकृतुः– उत्तम कर्म करनेवाला।

५. वृद्धः— बडा हुआ, श्रेष्ठ।

६. गिर्वणः — प्रशंसाके योग्य।

७. प्रचेतस् — विशेष विचारशील, ज्ञानी।

८. शतक्रतुः — सैकडों कर्म करनेवाला, सैकडों प्रज्ञायुक्तियाँ जिसके पास हैं।

९. अक्षित-ऊतिः — जिसके पासके संरक्षणके साधन कभी न्यून नहीं होते, सदा जिसके पास पर्याप्त सुरक्षाके साधन रहते हैं।

१०. ईशानः — जो समर्थ प्रभु है।

इस तरह ऐश्वर्य प्राप्त करनेके साधन अपने पास रखना, अनेक धन अपने पास रखना, रस पीना, उत्तम कर्म करना, ज्ञानी होना, प्रशंसाके योग्य बनना, विचारशील बनना, सैकडों उत्तम कर्म करना, अपने पास अनेक सुरक्षाके साधन रखना और सामर्थ्य युक्त होना यह उपदेश ये पद दे रहे हैं। सामर्थ्यके लिये यह उपदेश इन पदोंसे मिलता है।

अब इस सूक्तमें निम्न लिखित वाक्य जो उपदेश देते हैं उसे देखिये—

११. स योगे राये पुरन्ध्यां आ भुवत्– वह धन और सुबुद्धि देता है। वैसा मनुष्य जो जिसके हो वह उसको देवे, धनका प्रदान करे, और उत्तम बुद्धि देता रहे।

१२. समत्सु शत्रवः यस्य न वृण्वते– शत्रु जिसको घेर नहीं सकते। मनुष्य ऐसा सामर्थ्य करे कि जिससे वह शत्रुको भारी हो जावे।

१३. ज्यैष्ठ्याय वृद्धः अजायथाः– श्रेष्ठ होनेके बडा हुआ। मनुष्य श्रेष्ठ बने और बडा बने।

१४. अक्षितोतिः इन्द्रः विश्वानि पौंस्या, वाजं सनेत्– अक्षय रक्षासाधनोंसे संपन्न इन्द्र और सहस्रोंका पालन करनेवाला अन्न देता है। इसी मनुष्य अपने पास अनेक रक्षा साधन रखे और और का पालन पोषण होने योग्य अन्नका प्रदान करे।

१५ ईशानः वधं यवय – परिस्थितिका स्वामी और मृत्यु दूर कर। मनुष्य अपनी परिस्थितिका करे, उसपर अपना अधिकार चलावे और दुःख तथा दूर करे। दीर्घायु बने।

इस तरह प्रत्येक पदका और प्रत्येक वाक्यका करके मानव धर्मका बोध वेदमंत्रोंसे प्राप्त करना योग्य है जैसा इन्द्र करता है वैसा मनुष्य करे और अपनेमें स्थिर करे।

इन्द्रः, मरुतश्च

(६।१-१०) मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः। १-३ इन्द्रः; ४,६,९ मरुतः; ५,७ मरुत इन्द्रश्च; १० इन्द्रः। गायत्री।

युञ्जन्ति वधनमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः।
रोचन्ते रोचना दिवि ॥ १ ॥
युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे।
शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ २ ॥
केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे।
समुषद्भिरजायथाः ॥ ३ ॥
आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे।
दधाना नाम यज्ञियम् ॥ ४ ॥
वीळु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः
अविन्द उस्रिया अनु ॥ ५ ॥

देवयन्तो यथा मतिमच्छा विदद्वसुं गिरः ।
महामनूषत श्रुतम् ॥ ६ ॥
इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा ।
मन्दू समानवर्चसा ॥ ७ ॥
अनवद्यैरभिद्युभिर्मखः सहस्वदर्चति ।
गणैरिन्द्रस्य काम्यैः ॥ ८ ॥
अतः परिज्मन्ना गहि दिवो वा रोचनादधि ।
सम्मिन्नृञ्जते गिरः ॥ ९ ॥
इतो वा सातिमीमहे दिवो वा पार्थिवादधि ।
इन्द्रं महो वा रजसः ॥ १० ॥

अन्वयः- अरुषं चरन्तं मह्मा परि तस्थुषः युञ्जन्ति,(तस्य) चना दिवि रोचन्ते ॥१॥ अस्य रथे विपक्षसा काम्या शोणा ण्यू नृवाहसा हरी युञ्जन्ति ॥ २ ॥ हे मर्याः ! अकेतवे कृण्वन्, अपेशसे पेशः (कुर्वन्), उपद्भिः सं अजाथाः ॥ ३ ॥ आत् अह, स्वधां अनु, यांजियं नाम दधानाः संवरतः) गर्भत्वं पुनः पुरिरे ॥४॥ हे इन्द्र ! वीळु चित् आरुक्षुभिः पद्भिः गुहा चित् उक्षिया अनु अविन्दः ॥ ५ ॥ विदद्वसुं श्रुतं यथा मतिं, अच्छ अनूषत गिरः महां ६ ॥ अबिभ्युषा इन्द्रेण संजग्मानः सं दृक्षसे हि । मन्दू समानवर्चसा ॥ ७ ॥ मरुतः अनवद्यैः अभिद्युभिः काम्यैः गणैः इन्द्रस्य सहस्वत् अर्चति ॥ ८ ॥ हे परिज्मन् ! अतः आगहि, दिवः वा, रोचनात् अधि, अस्मिन् गिरः सं ऋञ्जते ॥ ९ ॥ इतः पार्थिवात्, दिवः वा, महो वा रजसः इन्द्रं सातिं अधि महे ॥ १० ॥

अर्थ- अहिंसित परंतु गतिमान् सूर्यके रूपमें अवस्थित (इन्द्र) के साथ चारों ओरसे सब पदार्थ अपना संबंध जोड़ते हैं, (इसके) किरण द्युलोकमें प्रकाशते हैं ॥ १ ॥ उस (इन्द्र) के रथमें घुराके दोनों ओर जोड़े, प्रिय, सुंदर वर्णवाले, शत्रुका धर्षण करनेवाले, वीरोंको ढोनेवाले दो घोड़े जोते रहते हैं ॥ २ ॥ हे मनुष्यो ! ज्ञानहीनको ज्ञान देता हुआ, रूपरहितको रूपवान् (करता हुआ) उषाओंके साथ (यह सूर्यरूप इन्द्र) सम्यक् रीतिसे प्रकट हुआ है ॥ ३ ॥ निश्चयसे अपनी प्राप्तिको इच्छा करते, यज्ञके साथ पूर्ण संबंध धारण करनेवाले (ये वीर मरुत्) गर्भको पुनः प्राप्त हुए हैं ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! बलवान् घुटनेवाले पाद धारण करनेमें समर्थ अङ्गिरसों (मरुतोंके साथ रहनेवाला तू शत्रुकेदारा) गुहामें रखी हुई गौओंको भी प्राप्त कर सका ॥ ५ ॥ देवोंको प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले स्तोता जन बड़े धनवान् और ज्ञानी (मरुद्गण) की, अपनी बुद्धिके अनुसार मुख्यतासे स्तुति करते रहे ॥ ६ ॥ न डरनेवाले इन्द्रके साथ जानेवाला (यह मरुत्समूह) दीखता है । ये दोनों (इन्द्र और मरुत्) सदा आनंदित और समान रूपसे तेजस्वी हैं ॥ ७ ॥ यह यज्ञ निर्दोष तेजस्वी और प्रिय मरुद्गणोंके साथ रहनेवाले इन्द्रकी बलपूर्वक पूजा करता है ॥८॥ हे चारों ओर जानेवाले मरुद्गण ! यहांसे आओ, द्युलोकसे आओ अथवा इस तेजस्वी सूर्यलोकसे आओ, क्योंकि इस यज्ञमें सब स्तुतियां मिलकर तेरी ही प्रसाधना करती हैं ॥ ९ ॥ इस पार्थिव लोकसे, द्युलोकसे अथवा बड़े अन्तरिक्षलोकसे (लाया हुआ धन हम) इन्द्रके पाससे दानरूपमें पानेकी इच्छा करते हैं ॥ १० ॥

इस सूक्तमें सूर्यरूप धारण किये इन्द्रकी स्तुति है । इस सूक्तमें इन्द्रके गुण बतानेवाले ये पद हैं—

१ मह्मा — बड़ा, आकारमें सबसे बड़ा,

२ अ-रुष् जिसका कोई घातपात नहीं कर सकता,

३ चरन्— चलने, फिरने, घूमनेवाला, हलचल करनेमें समर्थ, (ये तीनों पद सूर्यके भी विशेषण हैं, पर यहां इन्द्रके वर्णनमें आये हैं ।)

४ अबिभ्युष् — न डरनेवाला, निर्भीक, भयरहित,

५ मन्दुः — आनन्दित, सदा प्रसन्न,

६ समानवर्चस् — तेजस्वी, प्रकाशमान,

ये पद निम्नलिखित शिक्षा मानवको दे रहे हैं— बड़ा बनो, तुम्हारी कोई हिंसा न कर सके ऐसा सामर्थ्यवान् बनो, सदा हलचल करो, निडर बनो, आनन्दमग्न रहो और तेजस्वी बनकर रहो । अब इस सूक्तसे चार और शिक्षा भी मिलती है वह यह है—

७ अकेतवे केतुं कृण्वन्- अज्ञानीको ज्ञान देता है । अज्ञानीको ज्ञान देनेका प्रयत्न करो, निरक्षरको साक्षर बनो ।

८ अपेशसे पेशः कृण्वन्- रूपहीनको सुरूप बनाता है । जो सुरूप नहीं है उसको सुरूप बनाओ ।

९ वीळु चारुरुक्षुभिः गुहा उक्षिया अनु अविन्दत् - बलवान् घुटनेवाले दृढ़ पैरोंसे युक्त हो जब मनुष्य इस शरीरमें रहनेवाली इन्द्रियोंको इन्द्र रूप बनता है । अपने आत्म

हे सैकडों कर्म करनेवाले इन्द्र ! ये स्तोत्र तेरी और ये गान तेरी बधाई करें, हमारी वाणियाँ तेरी यशोवृद्धि करें ॥ ८ ॥ जिसकी रक्षाशक्तिमें कभी न्यूनता नहीं होती वह इन्द्र, जिसमें सब बल समाये हैं, ऐसा सहस्रोंके पालन करनेके सामर्थ्यसे युक्त बल हमें देवे ॥ ९ ॥ हे स्तुतियोग्य इन्द्र ! कोई भी मानव हमारे शरीरोंको किसी तरहका उपद्रव न दे सके, और तू सबका ईश है इसलिये वध हमसे दूर कर दे ॥ १० ॥

इस सूक्तमें इन्द्रके वर्णनके लिये निम्नलिखित पद प्रयुक्त हुए हैं-

१. पुरुतमः- जिसके पास अत्यंत धन है। जो सबका पालन और पोषण करता है वह 'पुरु' है और वही पालनपोषणका कार्य अत्यंत पूर्ण रीतिसे करता है, इसलिये वह 'पुरु-तम' है। अत्यंत श्रेष्ठ, श्रेष्ठोंमें श्रेष्ठ, मनुष्य श्रेष्ठ बने।

२. पुरूणां वार्याणां ईशानः- अनंत धनोंका स्वामी, जिसके पास जनताका पालनपोषण करनेवाले सब प्रकारके पर्याप्त धन हैं। मनुष्य अपने पास धन रखे।

३. सुत-पावा- सोमरस पीनेवाला।

४. सुकृत्वा:- उत्तम कर्म करनेवाला।

५. वृद्धः— बडा हुआ, श्रेष्ठ।

६. शिर्वाः — प्रशंसाके योग्य।

७. प्रचेतस — विशेष विचारशील, ज्ञानी।

८. शतक्रतुः — सैकडों कर्म करनेवाला, सैकडों प्रज्ञायें मूर्तियाँ जिसके पास हैं।

९. अदितेः-त्रातिः — जिसके पासके संरक्षणके साधन कभी न्यून नहीं होते, सदा जिसके पास पर्याप्त सुरक्षाके साधन रहते हैं।

१०. ईशानः — जो समर्थ प्रभु है।

[illegible] साधन अपने पास रखना, अनेक [illegible] अपने पास रखना, रस पीना, उत्तम कर्म करना, [illegible] होना, प्रशंसाके योग्य बनना, विचारशील बनना, सैकडों उत्तम कर्म करना, अपने पास अनेक सुरक्षाके साधन रखना और सामर्थ्य युक्त होना यह उपदेश ये पद दे [illegible] लिये यह उपदेश इन पदोंसे मिलता है। [illegible] इस सूक्तमें किस लिखित कार्य को उपदेश देते हैं [illegible]

११. स योगे राये पुरन्ध्यां आ भुवत्- धन और सुबुद्धि देता है। वैसा मनुष्य जो जिसके पास हो वह उसको देवे, धनका प्रदान करे, और उत्तम [illegible] देता रहे।

१२. समत्सु शत्रवः यस्य न वृण्वते— शत्रु जिसको घेर नहीं सकते। मनुष्य ऐसा सामर्थ्य करे कि जिससे वह शत्रुको भारी हो जावे।

१३. ज्यैष्ठ्याय वृद्धः अजायथाः- श्रेष्ठ होनेके बडा हुआ। मनुष्य श्रेष्ठ बने और बडा बने।

१४. अक्षितोतिः इन्द्रः विश्वानि पौंस्या, वाजं सनेत् – अक्षय रक्षासाधनोंसे संपन्न इन्द्र और सहस्रोंका पालन करनेवाला अन्न देता है। इसी मनुष्य अपने पास अनेक रक्षा साधन रखे और और का पालन पोषण होने योग्य अन्नका प्रदान करे।

१५ ईशानः वधं यवय – परिस्थितिका स्वामी और मृत्यु दूर कर। मनुष्य अपनी परिस्थितिका करे, उसपर अपना अधिकार चलावे और दुःख तथा दूर करे। दीर्घायु बने।

इस तरह प्रत्येक पदका और प्रत्येक वाक्यका करके मानव धर्मका बोध वेदमंत्रोंसे प्राप्त करना योग्य जैसा इन्द्र करता है वैसा मनुष्य करे और अपनेमें स्थिर करे।

इन्द्रः, मरुतश्च

(६।१-१०) मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः। १-३ इन्द्रः; ४,६ मरुतः; ५,७ मरुत इन्द्रश्च; १० इन्द्रः। गायत्री।

युञ्जन्ति बधनमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः
रोचन्ते रोचना दिवि ॥ १ ॥
युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे।
शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ २ ॥
केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे।
समुषद्भिरजायथाः ॥ ३ ॥
आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे।
दधाना नाम यज्ञियम् ॥ ४ ॥
वीळु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभि
अविन्द उस्रिया अनु ॥ ५ ॥

देवयन्तो यथा मतिमच्छा विदद्गुं गिरः ।
महामनूषत श्रुतम् ॥ ६ ॥
इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा ।
मन्दू समानवर्चसा ॥ ७ ॥
अनवद्यैरभिद्युभिर्मखः सहस्वदर्चति ।
गणैरिन्द्रस्य काम्यैः ॥ ८ ॥
अतः परिज्मन्ना गहि दिवो वा रोचनादधि ।
सर्मस्मिन्नृञ्जते गिरः ॥ ९ ॥
इतो वा सातिमीमहे दिवो वा पार्थिवादधि ।
इन्द्रं महो वा रजसः ॥ १० ॥

अन्वयः- अरुषं चरन्तं मह्म परि तस्थुषः पुञ्जन्ति.(तस्य) वना दिवि रोचन्ते ॥१॥ अस्य रथे विपक्षसा कामा शोणा धृ नृवाहसा हरी युञ्जन्ति ॥ २ ॥ हे मर्याः ! अकेतवे [कृण्वन्, अपेशसे पेशः (कुर्वन्), उषद्भिः सं अजायाः ॥ ३ ॥ आत् अह, स्वधां अनु, यत्रियं नाम दधानाः सरलः) गर्भत्वं पुनः एरिरे ॥४॥ हे इन्द्र ! वीळु चित् आरुजभिः बहिभिः गुहा चित् उस्रिया अनु अविन्दः ॥ ५ ॥ यन्तः गिरः महां विदद्गुं श्रुतं यथा मतिं, अच्छ अनूषत ६ ॥ अबिभ्युषा इन्द्रेण संजग्मानः सं दृक्षसे हि । मन्दू समानवर्चसा ॥ ७ ॥ मखः अनवद्यैः अभिद्युभिः काम्यैः गणैः इन्द्रस्य सहस्वत् अर्चति ॥ ८ ॥ हे परिज्मन् ! अतः आगहि, दिवः वा, रोचनात् अधि, अस्मिन् गिरः सं ऋञ्जते ॥ ९ ॥ इतः पार्थिवात्, दिवः वा, महो वा रजसः इन्द्रं सातिं अधि मही ॥ १० ॥

अर्थ- आलिंगित परंतु गतिमान् सूर्यके रूपमें अवस्थित इन्द्र) के साथ चारों ओरसे सब पदार्थ अपना संबंध जोड़ते हैं, (इसके) किरण द्युलोकमें प्रकाशते हैं ॥ १ ॥ इस (इन्द्र) के रथमें दोनों ओर लोहित, प्रिय, लालवर्णवाले, शत्रुका धर्षण करनेवाले, वीरोंको ढोनेवाले दो घोड़े जोते रहते हैं ॥ २ ॥ हे मनुष्यो ! आलोकको उत्पन्न किया हुआ, रूपरहितको रूपवान् (करता हुआ) उषाओंके साथ (यह सूर्यरूप इन्द्र) सरलतासे रीतिसे प्रकट हुआ है ॥ ३ ॥ निश्चयसे अन्नका प्राप्तियोग्य करता करनेवाले, सत्यसे युक्त यज्ञका पालन करनेवाले (ये और मरुत्) गर्भावस्थाको पुनः प्राप्त हुए हैं । ४ । हे इन्द्र ! बलवान् पुरुषोंका नाश करनेमें समर्थ अतिशयित (मरुतोंके साथ रहनेवाला न् शत्रुकेदारा) गुहामें रखी हुई गौओंको भी प्राप्त कर सका ॥ ५ ॥ देवोंको प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले स्तोता जन बड़े धनवान् और ज्ञानी (मरुद्गण) की, अपनी बुद्धिके अनुसार मुख्यतासे स्तुति करते रहे ॥ ६ ॥ न डरनेवाले इन्द्रके साथ जानेवाला (यह मरुत्समूह) दीखता है । ये दोनों (इन्द्र और मरुत्) सदा आनंदित और समान रूपसे तेजस्वी हैं ॥ ७ ॥ यह यज्ञ निर्दोष तेजस्वी और प्रिय मरुद्गणोंके साथ रहनेवाले इन्द्रकी बलपूर्वक पूजा करता है ॥८॥ हे चारों ओर जानेवाले मरुद्गण ! यहांसे आओ, द्युलोकसे आओ अथवा इस तेजस्वी सूर्यलोकसे आओ, क्योंकि इस यज्ञमें सब स्तुतियां मिलकर तेरी ही प्रसाधना करती हैं ॥ ९ ॥ इस पार्थिव लोकसे, द्युलोकसे अथवा बड़े अन्तरिक्षलोकसे (लाया हुआ धन हम) इन्द्रके पाससे दानरूपमें पानेकी इच्छा करते हैं ॥ १० ॥

इस सूक्तमें सूर्यरूप धारण किये इन्द्रकी स्तुति है । इस सूक्तमें इन्द्रके गुण बतानेवाले ये पद हैं—

१ मह्म — बड़ा, आकारमें सबसे बड़ा,

२ अ-रुष् जिसका कोई बालबाल बाँका कर सकता,

३ चरन्— चलते, फिरते, घूमनेवाला, इत्यादि करनेमें समर्थ, (ये तीनों पद सूर्यके भी विशेषण हैं, पर यहां इन्द्रके वर्णनमें आये हैं ।)

४ अबिभ्युष् — न डरने वाला, निर्भीक, भयरहित,

५ मन्दु- आनन्दित, सदा प्रसन्न,

६ समानवर्चस् — तेजस्वी, प्रकाशमान,

ये पद निम्नलिखित दो प्रकारसे दे सके हैं— यह अपनी, दूसरोंकी कोई हिंसा न कर सके इसका सावधान रहे, सदा हर्षयुक्त रहे, निडर रहे, आनन्दयुक्त रहे और तेजस्वी बनकर रहे । अब इस सूक्तके दूसरी प्रकार दो पद मिलता है वह यह है—

७ अनवद्येभिः केतुभिः सहस्वत्- अनिन्दनीय ज्ञान देनेवाले सहनशील बनाने, निन्दनीयको नाश करने

८ अनवद्यैः अभिद्युभिः सहस्वत्- अनिन्दनीय सूक्त ज्ञान है । जो सूक्त नहीं है उसको सूक्त बनाने

९ दीदयत् अनवद्यरुचिभिः सहस्वत् अनिन्दनीय ज्ञानदीप्ति सहनशीलको प्रकाशनेवाले दीप्तिसे अपने अन्दर ज्ञान सहनशीलता को प्रकाशने वाली दीप्ति उत्पन्न करता है । अतः इस

[illegible] करें कि जो शत्रुके [illegible] [illegible], और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] होवे।

१० [illegible] [illegible]— [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] करो।

११ [illegible] [illegible] [illegible]— [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] चाहते हैं। [illegible] [illegible] की इच्छा करो।

ये उपदेश स्पष्ट हैं, अतः इनपर [illegible] करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। इस सूक्तमें कुछ शास्त्रीय सिद्धान्त कहे हैं, उनका अब विचार करते हैं—

सूर्यका आकर्षण

अरुषं चरन्तं ब्रध्नं परि तस्थुषः युञ्जन्ति।
(तस्य) रोचना दिवि रोचन्ते ॥ १ ॥

'अविनाशी, गतिशील महान् सूर्यके साथ उसके चारों ओर रहनेवाले सब पदार्थ जुडे हुए हैं।' आकर्षणसंबंधसे जुडे रहते हैं। इस सूर्यके किरण आकाशमें प्रकाशते हैं। यहां सूर्यका यह आकर्षण-संबंध अन्य सब सूर्यमालिकाके पदार्थोंके साथ है ऐसा स्पष्ट कहा है। सूर्य (ब्रध्नः) बडा है, सूर्यमें गुरुता या गुरुत्व है, इस गुरुताका ही यह संबंध है। इस गुरुत्वाकर्षणके संबंधसे सब पदार्थ, विश्वकी सब वस्तुएँ, सूर्यसे बंधी गयी हैं।

अनेक उषाओंके पश्चात् सूर्यका आना

उषद्भिः सं अजायथाः ॥ ३ ॥

अनेक उषाओंके पश्चात् सूर्य उत्पन्न होता है। अनेक उषाओंके पश्चात् सूर्यका उदय उत्तरीय ध्रुव-प्रदेशमें ही दीखनेवाला दृश्य है। 'उषद्भिः' का अर्थ 'किरण' करते हैं, परन्तु 'उषाओंके पश्चात्' ऐसा ही इसका अर्थ [illegible] है। उत्तरध्रुवप्रदेशमें अनेक उषाओंके पश्चात् ही सूर्य [illegible] उदय होता है।

मरुतोंका वर्णन

इस सूक्तमें मरुतोंका भी वर्णन है। यह वर्णन मरुतोंके [illegible]का है, इसमें निम्नलिखित पद अत्यंत महत्त्वके हैं—

१ वीळु आरुजत्नुः— बलवान् और सुदृढ शत्रुका पूर्ण [illegible] करनेवाला मरुतोंका समूह है। बलवान् शत्रुका पूर्ण [illegible] करनेकी शक्ति प्राप्त कर ले [illegible]।

२ [illegible]— [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible]।

३ [illegible] [illegible]— [illegible] [illegible]।

४ [illegible]— [illegible] [illegible]।

५ [illegible]— [illegible] [illegible]।

६ [illegible] [illegible] [illegible]

७ [illegible] [illegible]— [illegible] और [illegible] करो।

ये [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] शत्रुका भी नाश करें। [illegible] [illegible] [illegible] किसी तरह [illegible] [illegible] न करें, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] करके शत्रुको [illegible] और उसका नाश करें।

देवत्वकी प्राप्ति

छठे मन्त्रमें 'देवयन्तः' पद है। देवत्वकी [illegible] इच्छा करनेवाले उपासक होते हैं। मनुष्य देवत्वकी [illegible] इच्छा करें। यही वेदके धर्मकी सफलता है कि [illegible] देवत्वसे युक्त हो जाय! यह कैसे बने? जो देवताओंके सूक्तों और मन्त्रोंमें वर्णन किये हैं उनको अपनेमें [illegible] स्थिर करें और बढावें। यही साधना है, यही अनुष्ठान है। अग्नि, इन्द्र, मरुत्, विश्वे देव, मित्र और वरुण, [illegible] आदि देवोंके सूक्त यहां तक आये हैं। इन देवोंके [illegible] इतने सूक्तोंमें हैं। यहां देवोंके वर्णनोंमें जो पद प्रयुक्त हैं उन पदोंसे व्यक्त होनेवाले गुण साधक अपनेमें [illegible] करें। जितना इन गुणोंका धारण साधक करेंगे उतनी [illegible] उन साधकोंकी होगी। इस साधनाको बतानेके लिये हमने पदों और वाक्योंका अलग स्पष्टीकरण यहां किया और आगे भी ऐसा ही बताया जायगा।

इन्द्र

(७११-१०) मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः। इन्द्रः। गायत्री।

इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः।
इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ १ ॥
इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा।
इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ २ ॥

इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद्दिवि ।
वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥ ३ ॥
इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च ।
उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥ ४ ॥
इन्द्रं वयं महाधन इन्द्रमर्भे हवामहे ।
युजं वृत्रेषु वज्रिणम् ॥ ५ ॥
स नो वृषन्नमुं चरुं सत्रादावन्नपा वृधि ।
अस्मभ्यमप्रतिष्कुतः ॥ ६ ॥
तुञ्जे तुञ्जे य उत्तरे स्तोमा इन्द्रस्य वज्रिणः ।
न विन्धे अस्य सुष्टुतिम् ॥ ७ ॥
वृषा यूथेव वंसगः कृष्टीरियर्त्योजसा ।
ईशानो अप्रतिष्कुतः ॥ ८ ॥
य एकश्चर्षणीनां वसूनामिरज्यति ।
इन्द्रः पञ्च क्षितीनाम् ॥ ९ ॥
इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः ।
अस्माकमस्तु केवलः ॥ १० ॥

अन्वयः- गाथिनः इन्द्रं इत् बृहत् (अनूषत) । अर्किणः र्किभिः इन्द्रं (अनूषत) । वाणीः (च) इन्द्रं अनूषत ॥ १ ॥ न्द्रः इत् वचोयुजा हर्योः सचा आ संमिश्लः । (अयं) न्द्रः वज्री हिरण्ययः ॥ २ ॥ इन्द्रः दीर्घाय चक्षसे सूर्यं वि आरोहयत् । (सः) गोभिः अद्रिं वि ऐरयत् ॥ ३ ॥ इन्द्र ! (त्वं) उग्रः उग्राभिः ऊतिभिः वाजेषु सहस्र-धनेषु च नः अव ॥ ४ ॥ वयं महाधने इन्द्रं (हवामहे) । (वयं) अर्भे (अपि) वृत्रेषु वज्रिणं युजं इन्द्रं हवामहे ॥ ५ ॥ वृषन् सत्रादावन् वृषन्! सः नः अमुं चरुं अपा वृधि । अस्मभ्यं अप्रतिष्कुतः ॥ ६ ॥ तुञ्जे-तुञ्जे ये स्तोमाः उत्तरे (सन्ति तैः) वज्रिणः अस्य इन्द्रस्य सुष्टुतिं न विन्धे ॥ ७ ॥ अप्रतिष्कुतः ईशानः वृषा ओजसा कृष्टीः वंसगः यूथा-इव इयर्ति ॥ ८ ॥ यः एकः चर्षणीनां (इरज्यति), वसूनां इरज्यति, स इन्द्रः पञ्च क्षितीनां (ईशः अस्ति) ॥ ९ ॥ विश्वतः जनेभ्यः परि इन्द्रं वः हवामहे । (सः) अस्माकं केवलः अस्तु ॥ १० ॥

अर्थ— गायन करनेवाले (गाथिनः) इन्द्रकी ही बृहत्-सामसे स्तुति गाते हैं, अर्चना करनेवाले स्तोत्रोंसे इन्द्रकी ही अर्चना करते हैं । हमारी सब वाणियाँ इन्द्रकी ही प्रशंसा करती हैं ॥ १ ॥ इन्द्र निःसन्देह शब्दोंके इशारेसे ही चलाये जानेवाले घोड़ोंको जोतनेवाला है । (यह) इन्द्र वज्रधारी और सुवर्णके आभूषण पहननेवाला है ॥ २ ॥ इन्द्र ने दीर्घकालतक प्रकाश मिले इसलिये सूर्यको द्युलोकमें ऊपर चढाया है । वह सूर्य किरणोंसे पर्वतोंको प्रेरित करता है ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! (तू) वीर है इसलिये वीरतासे होने-वाले संरक्षणोंसे युद्धोंमें तथा धन प्राप्तिके सहस्रों साधनोंसे हमारी सुरक्षा कर ॥ ४ ॥ हम जैसे बडे युद्धमें इन्द्रकी सहायता चाहते हैं, वैसे ही हम स्वल्प धन प्राप्तिके प्रयत्नमें भी, तथा वृत्रोंके साथ होनेवाले युद्धमें जुटनेवाले इन्द्रकी सहायता चाहते हैं ॥ ५ ॥ हे अभीष्ट फल इकट्ठा ही देने-वाले बलवान् इन्द्र ! वह तू हमारे लिये यह अन्नका खजाना खोल दे । तथा हमारे विरुद्ध न हो जाओ ॥ ६ ॥ शत्रुका नाश करनेवाले वीरके विषयमें जो स्तोत्र उत्तमसे उत्तम (हैं, उनमें) वज्रधारी इस इन्द्रकी स्तुति होने योग्य एक भी स्तोत्र नहीं मिलता है ॥ ७ ॥ विरोध न करनेवाला प्रभु बलवान् इन्द्र अपने सामर्थ्यसे सब प्रजाओंको वैसा प्रेरित करता है जैसा सांड गौओंकी झुण्डको ॥ ८ ॥ जो अकेला ही मनुष्योंपर स्वामित्व करता है, धनोंपर स्वामित्व करता है । वह इन्द्र पांचों मानवोंका एक ही प्रभु है ॥ ९ ॥ सब मानवोंपर स्वामित्व करनेवाले इन्द्रकी हम आप सबके हितार्थ प्रार्थना करते हैं । वह इन्द्र केवल हमारा ही सहायक हो ॥ १० ॥

इस सूक्तमें इन्द्रका वर्णन करनेवाले जो पद हैं, उनका अब विचार कीजिये—

१ वज्री— वज्र धारण करनेवाला,

२ हिरण्ययः— सुवर्णके आभूषण धारण करनेवाला, सुनहरी वेलबूटीके वस्त्र पहननेवाला,

३ उग्रः— शूरवीर, बडा प्रतापी वीर,

४ सत्रा-दावन्— एक साथ अनेक दान करनेवाला,

५ वृषा— बलवान्, सुखोंकी वृष्टि करनेवाला,

६ अप्रतिष्कुतः— अ-प्रति-स्कुतः— विरोध न करने-वाला, निषेध न करनेवाला,

७ ईशानः— स्वामी, प्रभु, अधिपति,

इसमें 'हिरण्यय' पदसे इन्द्रके पोशाकका ज्ञान होता है, वह सुवर्णाभूषण तथा सुनहरी वेलबूटीके वस्त्र पहनता था । वज्रधारण करता, बलवान् होता हुआ भी धनुयायि-योंका विरोध नहीं करता और उनको यथेच्छ दान देता

था। अब इस सूक्तमें इन्द्रके वर्णनपरक वाक्योंका भाव देखिये —

८ वचोयुजा हर्योः सचा- केवल इशारेसे ही जाने-वाले घोड़ोंको रथमें जोतनेवाला। इस तरहके शिक्षित घोड़ोंको अपने पास रखनेवाला।

९ उग्रः उग्राभिः ऊतिभिः वाजेषु नः अव- वीर अपने प्रतापी सुरक्षा करनेके साधनोंसे युद्धोंमें हमारी रक्षा करे। वीर अपने पास सुरक्षाके उत्तम साधन रखे और उनसे वह हमारी रक्षा करे।

१० सहस्र-प्रधनेषु च अव- धन-प्राप्तिके सहस्रों कार्योंमें हमारी सुरक्षा हो।

११ सः (त्वं) नः अमुं चरुं अपावृधि- वह तू हमारे लिये इस अन्नके खजानेको खोल दे। इस जलाशयको खुला कर दे। अन्न और जल सबको मिले ऐसा कर। अन्नके ऊपरका ढक्कन खोल दे।

१२ वृषा ओजसा कृष्टीः इयर्ति— बलवान् वीर अपने सामर्थ्यसे सब लोगोंको प्रेरित करता है, सबको मार्गदर्शन करता हुआ, उन्नति पथसे चलाता है। प्रेमसे सबको चलाता है।

१३ एकः पञ्च चर्षणीनां क्षितीनां इरज्यति- एक ही प्रभु सब पांचों मानववंशोंका राजा है। सब मानवोंका एक ही राजा हो।

१४ विश्वतः जनेभ्यः परि इन्द्रं हवामहे- सब मनुष्योंसे प्रभुत्व करनेवालेकी हम प्रशंसा करते हैं।

सूक्तमें कविका नाम

इस सूक्तके प्रारंभमें 'इन्द्रं इद्गाधिनो बृहत्' यह वाक्य है। इसमें 'गाधिनः' पद है, वह इस सूक्तके ऋषिका सूचक है। इस सूक्तका ऋषि 'मधुच्छन्दा' है, वह ऋषि (वैश्वामित्रः) विश्वामित्रका पुत्र है और विश्वामित्र (गाधिनः) गाधी या गाधि कुलमें उत्पन्न हुआ है, इसलिये मधुच्छन्दा भी 'गाधिनः' अर्थात् गाधिकुलका हुआ है। 'विश्वामित्रो गाधिनः' के सूक्त तीसरे मण्डल में आये हैं, बीचमें विश्वामित्र पुत्रोंके कुछ सूक्त आये हैं, अतः इस दृष्टिसे तृतीय मंडलके ऋषि देखें। यद्यपि 'गाधिनः' पद सामान्यतः करनेवालेके अर्थमें यहां [illegible] अर्थात् गौरका भी उल्लेख करता है ऐसा पता लगता है।

सुदीर्घ प्रकाश

इस सूक्तमें सुदीर्घ प्रकाश देनेके लिये इन्द्रने आकाशमें ऊपर चढाया ऐसा लिखा है—

इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद्दिवि
वि गोभिः अद्रिं ऐरयत् ॥ ३ ॥

'इन्द्रने सुदीर्घ प्रकाशके लिये सूर्यको द्युलोकमें चढाया और उस सूर्यने पश्चात् अपने किरणोंसे विशेष प्रकारसे चलाया।'

यह वर्णन सूक्ष्म दृष्टिसे देखने योग्य है। इन्द्र था, उस समय सूर्य नीचे था, उस समय अन्धेरा था पश्चात् इन्द्रने सूर्यको द्युलोकपर चढाया, सूर्य वहां और वहांसे सुदीर्घ काल तक वहीं रहता हुआ प्रकाश रहा। सूर्यके इस प्रदीर्घ कालके प्रकाशके किरणोंसे पर्वत भी विचलित हुए, पिघलने लगे। बर्फ पिघलकर पर्वतसे जल चूने लगा।

हमारे देशमें प्रतिदिन सूर्य द्युलोकमें अर्थात् आकाशके मध्यमें नियत समय चढता और वहां प्रकाशता है। प्रतिदिन प्रायः यह ऐसा ही होता है। इसको कोई सुदीर्घ कालतक प्रकाशना नहीं कहेंगे।

अनेक उषाओंके पश्चात् सूर्यके उदय होनेका वर्णन ऋ. १।६।३ में देख लिया है। जहां अधिक उषाओंके पश्चात् सूर्य आता होगा, उसी प्रदेशमें सूर्य द्युलोकमें अधिक दिनतक रहना होगा और वहीं अधिक दीर्घ रात्रि भी होती होगी।

सर्वसाधारणतः छः मासकी रात्रि और छः मासका दिन उत्तरीय ध्रुवमें होता है। इसमें एक मासका उषःकाल, एक मासका सायं संध्याकाल और शेष रात्रिका अखण्ड अंधेरा का समय और अखण्ड प्रकाशका भी उतना ही समय होता है।

वहां सूर्य बिलकुल मध्य आकाशमें कभी आता ही नहीं। बत्तीस साढेदस बजेतक सूर्य जहां रहता है वहां से सूर्य रहा हुआ गोल इर्दगिर्द घूमता है। किसी पर्वतकी प्रदक्षिणा करनेके समान सूर्य घूमता है। प्रदक्षिणा करते करते इसी सूर्यसे प्रकाशित हुई होगी।

इस प्रदेशमें सूर्य नौ बजे आनेके आकाशके स्थान पर आया तो तुलोकमें चढ़ा। इस समय आकाशकी लालिमा स्वतया नष्ट होती है और सूर्यका धवल प्रकाश चमकने लगता है, यही दिन सतत तीन महिने रहता है और इसी सूर्यकी किरणोंकी गर्मीसे हिमकालमें जमा हुआ पहाड़ोंपर का बर्फ पिघलने लगता है और पहाड ही पिघलने और चलने लगते हैं।

इस मंत्रमें 'अद्रिं वि ऐरयत्' पद है। यहां जो 'अद्रि' शब्द है वह पर्वतका वाचक है। इसको निघण्टु निरुक्तमें 'मेघ' वाचक माना है। परन्तु सूर्य-किरणोंसे मेघोंका कुछ भी पानी नहीं होता, न मेघ सूर्य-किरणोंसे पिघलते हैं। सूर्य-किरणोंसे चूने या पिघलनेवाले 'अद्रि' पर्वत वे हैं जिन पर हिमकालमें बर्फ जमा होता है। हिमकालका मुख्य ही बर्फ जमनेका काल है, उसका पीछेसे अर्थ सर्दीका किया माना हुआ है। अन्धेरा होना, दीर्घ रात्रिका होना, बर्फ गिरना, हिमकी वृष्टिका होना और सर्दीका होना एक ही समय होनेवाली बातें हैं। इसीके विरुद्ध सुदीर्घ प्रकाशका होना और बर्फका पिघलना ये एक समय प्रकाशके समय होनेवाली बातें हैं।

'ईर्- गतौ' ईर् धातु गत्यर्थक है, गति कराना है। 'अद्रिं वि ऐरयत्' पर्वतको विशेष गतिशील बनाता है, पर्वतसे चूनेवाले जलको गतिमान् बनाता है। बर्फीली पहाड़ोंसे जो पानी गर्मीके दिनोंमें पिघलता है, उसीसे नदियोंको बड़ी बड़ी बहादर आते हैं, उस पानीमें उस समय बड़ी गति रहती है। सूर्य-किरणोंका मेघोंपर ऐसा कोई असर नहीं होता, कि जो मेघोंसे पानी चूने लगे और नदियां बहने लगें। अतः अद्रिका अर्थ मेघ न करते हुए, यहां 'पर्वत' अर्थ करना और सूर्य-किरणोंसे बर्फीली पहाड़ चूने लगते हैं ऐसा मानना उचित है।

यहां 'ईर्' धातु है। ईर्, ईड्, ईर्, ईक्ष ये धातु समान ही अर्थवाले हैं। इर्, इड्, ईर्, ईड् तथा इरा, इडा, इरा, इडा ये पदभी परस्पर संबंधित हैं। इलाज, भूमि, अन्न, इत्यादि अर्थवाले 'इरा' आदि पद हैं। उसी प्रकार इड़ा आदि शब्दभी समान योग्य हैं। उनमेंसे कहांपर सूर्य, कहां किसी निर्देशसे माना है, वह अपने अपने प्रकरणसे निश्चित होता है, यहां 'इरा, इडा' के अर्थ भूमि और अन्न हुए हैं।

'गोभिः अद्रिं वि ऐरयत्' का अर्थ पर्वतपरके बर्फरूप जलको सूर्य अपने किरणोंसे गति देता है, और यह जल आगे जाकर भूमि और अन्न निर्माण करता है। 'इर्' का अर्थ भी ऐसा ही समझना योग्य है। अन्नकी उपज करनेके लिये जो जल प्रेरणा करता है वह प्रेरणा यहां का 'इर्' धातु बताता है।

इन्द्र सूर्यको ऊपर चढ़ाता है, यहां इन्द्र सूर्यसे पृथक् माना है। सूर्य तो अपना ही सूर्य है, इन्द्र वह है कि जो प्रकाश उत्तरीय ध्रुवमें सूर्यके आनेके पूर्व रहता है। यह विद्युत्प्रकाश है। यहां सूर्योदयके पूर्व यह प्रकाश रहता है। इसके पश्चात् सूर्य ऊपर आता है और ऊपर ही ऊपर तीन चार महिने तक रहता है, इसका अखण्ड प्रकाश 'दीर्घाय चक्षसे' पदोंसे व्यक्त हुआ है। वेदमें —

दीर्घं तमः आशयत् इन्द्रशत्रुः।
दीर्घाय चक्षसे दिवि सूर्यं आरोहयत्।

ऐसे प्रयोग हैं। (दीर्घं तमः) रात्रि भी प्रदीर्घ है, (दीर्घाय चक्षसे) और दिन प्रकाश भी सुदीर्घ है। इनका मेल करनेसे पूर्वोक्त स्पष्टीकरण दीखने लगता है।

पञ्च क्षिति

'क्षिति' का अर्थ है पृथ्वी, जिसपर मनुष्य रहते हैं वह भूमि। पश्चात् भूमिपर रहनेवाला मनुष्य ऐसा इसका अर्थ हुआ। इस भूमिपर पांच प्रकारके मनुष्य रहते हैं श्वेत, रक्त, पीत, श्याम और कृष्ण। ये पांच रंगों या वर्णोंवाले पांच मनुष्य पांच स्थानोंके विभिन्न भूविभागोंपर रहते हैं। श्वेत वर्णवाले यूरोपमें, ताम्रवर्णवाले उत्तर अमरीकामें, पीत रंगवाले चीन जापानमें, भूरे रंगवाले भारतवर्षमें और कृष्ण वर्णवाले अफ्रीकामें रहते हैं। इनका नाम क्षिति है क्योंकि इनका निवास विशिष्ट भूविभागोंपर रहता है।

यह इन्द्र [illegible] इन पांचों प्रकारके भूविभागोंमें रहनेवाले पांच वर्णोंके मनुष्योंका प्रभु है और इन सबका वह उपास्य है। यह 'पञ्च क्षिति' का अर्थ [illegible] 'पञ्च जना' के पांच जातियोंके लोग ऐसा अर्थ करते हैं। [illegible]

पांच विभिन्न भूमिभागमें रहनेवाले पांच प्रकारके लोग, यह इसका अर्थ स्पष्ट है।

वाज, प्रधन, महाधन

'वाज, प्रधन, महाधन' ये पद युद्धवाचक हैं। 'वाज' का अर्थ बल या अन्न है, 'प्रधन' का अर्थ श्रेष्ठ धन है, 'महाधन' का अर्थ बड़ा धन है। युद्धमें अन्न और धन मिलता है, युद्धमें जो वीर विजयी होता है वह शत्रुका अन्न और धन अपने अधीन करता है। शत्रुके घोड़ोंको लूटकर धन लाता है। इस रीतिके अनुसार 'धन, प्रधन, महाधन' ये पद युद्धवाचक हुए हैं। अन्न भी उसी तरह युद्धसे मिलता है, इसलिये 'वाज' पद युद्धका वाचक हुआ। 'वाज' पद बलवाचक भी है, जो सेनावाचक भी आलंकारिक रीतिसे होना संभव है।

वचोयुजो हरी

'शब्दके इशारेसे चलनेवाले घोड़े।' ये पद बता रहे हैं कि, घोड़ोंको सिखाकर इतना तैयार किया जाता था। ये केवल शब्दका उच्चार करते ही जिस तरह चाहिये उस तरह घोड़े चलने लगते हैं। इतने उत्तम शिक्षित घोड़े होने चाहिये।

अन्नका खजाना खोलो

'नः चरुं अपावृधि' हमारे अन्नका खजाना खोल दो, चावलोंके पात्रके ऊपरका ढक्कन दूर करो। यह ढक्कन कौनसा था? चरुका अर्थ अन्न या अन्नपात्र है। वर्फ जहां [illegible] वहांके लोग [illegible] चावलोंसे पात्रोंका ढक्कन दूर करते हैं। यह पद वर्फ गिरनेका है। वर्फ गिरने पश्चात्का वातावरण वह देता है और वर्फ गिरनेके अनंतर वह पात्रका ढक्कन खोल देनेकी प्रार्थनाका है। इसीलिये उत्तरमें वर्फका ढक्कन दूर कर दो। 'चरु' के भेद करके इस मन्त्रका अर्थ हुआ और अर्थसंगति है। पर वैसा करनेकी आवश्यकता नहीं है। चरु वर्षा का ढक्कन पात्रका है, ऐसे अर्थ करनेसे यह अर्थ मिलता है, यह अर्थ सूचकरूप वाचक आता है और अन्न योग्य संदर्भमें मिलता है।

इस मंत्रमें कई बातें इस संदर्भमें विशेष ही [illegible] है। ये सब विचार करने योग्य हैं।

एक ईश्वर

य एकः चर्षणीनां इरज्यति।
इन्द्रः पञ्चक्षितीनां (ईशः) ॥ ९ ॥
विश्वतः परि जनेभ्यः इन्द्रं हवामहे।
अस्माकं केवलः अस्तु ॥ १० ॥

ये मन्त्र एक ईश्वरके वाचक हैं। सबका राजा एक इन्द्र है, सब जनोंका वही एक शासक है। ये मन्त्र ईश्वरकी सत्ताके वाचक हैं।

(३) तृतीयोऽनुवाकः

इन्द्र

(८।१-१०) मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः। इन्द्रः। गायत्री।

एन्द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम्।
वर्षिष्ठमूतये भर ॥ १ ॥
नि येन मुष्टिहत्यया नि वृत्रा रुणधामहै।
त्वोतासो न्यर्वता ॥ २ ॥
इन्द्र त्वोतास आ वयं वज्रं घना ददीमहि।
जयेम सं युधि स्पृधः ॥ ३ ॥
वयं शूरेभिरस्तृभिरिन्द्र त्वया युजा वयम्।
सासह्याम पृतन्यतः ॥ ४ ॥
महाँ इन्द्रः परश्च नु महित्वमस्तु वज्रिणे।
द्यौर्न प्रथिना शवः ॥ ५ ॥
समोहे वा य आशत नरस्तोकस्य सनितौ।
विप्रासो वा धियायवः ॥ ६ ॥
यः कुक्षिः सोमपातमः समुद्र इव पिन्वते।
उर्वीरापो न काकुदः ॥ ७ ॥
एवा ह्यस्य सूनृता विरप्शी गोमती मही।
पक्वा शाखा न दाशुषे ॥ ८ ॥

एवा हि ते विभूतयः ऊतय इन्द्र मावते ।
सद्यश्चित् सन्ति दाशुषे ॥ ९ ॥
एवा ह्यस्य काम्या स्तोम उक्थं च शंस्या ।
इन्द्राय सोमपीतये ॥ १० ॥

अन्वयः— हे इन्द्र ! सानसिं सजित्वानं सदासहं वर्षिष्ठं रयिं ऊतये आ भर ॥ १ ॥ येन स्वोतासः सुष्टिहत्यया नो अर्वता वृत्रा नि रणधामहै ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! स्वोतासः वयं धना वज्रं आ ददीमहि, युधि स्पृधः सं जयेम ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! वयं शूरेभिः अस्तृभिः त्वया युजा वयं पृतन्यतः अभिष्टये सासह्याम ॥ ४ ॥ इन्द्रः महान् परः च, नु वज्रिणे महित्वं अस्तु, द्यौः न शवः प्रतिमा ॥ ५ ॥ ये नरः समोहे, लोकस्य नितोशे वा, विप्रासः वा धियायवः, आशत ॥ ६ ॥ यः सोमपातमः कुक्षिः समुद्र इव पिन्वते, काकुदः उर्वीः आपः ॥ ७ ॥ अस्य विरप्शी गोमती मही, नृतुता दाशुषे एवा पक्वा शाखा न ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! ते विभूतयः एवा हि, मावते दाशुषे ऊतयः सद्यश्चित् सन्ति ॥ ९ ॥ अस्य स्तोमः उक्थं च एवा हि काम्या शंस्या सोमपीतये इन्द्राय ॥ १० ॥

अर्थ– हे इन्द्र ! सेवनीय, सदा विजयी, सदा शत्रुका पराभव करनेवाले, सामर्थ्यसे युक्त, श्रेष्ठ धन, हमारी सुरक्षा के लिये, हमारे पास भरपूर भर दे ॥ १ ॥ जिस धनसे तेरी सुरक्षासे सुरक्षित हुए हम, मुष्टि-प्रहारसे और अश्वयुद्ध से शत्रुओंका निरोध कर सकेंगे, (ऐसा धन हमें दे दो) ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तेरेसे सुरक्षित हुए हम सुदृढ शस्त्र (हाथमें) लेके और युद्धमें स्पर्धा करनेवाले शत्रुपर विजय प्राप्त करेंगे ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! हम शूर और शत्रुपर प्रहार करनेमें कुशल योद्धाओंके साथ, तथा तेरे साथ रहते हुए, हमपर सेनासे चढाई करनेवाले शत्रुको, परास्त करेंगे ॥ ४ ॥ इन्द्र बडा है और श्रेष्ठ भी है, इस इन्द्रका महत्त्व सदा स्थिर रहे, इसका द्युलोकके समान विस्तृत सामर्थ्य फैलता जाय ॥ ५ ॥ जो (यज्ञ) इस लोग युद्धमें प्राप्त करते हैं, जो युद्धकी गतिविधिमें आनन्द मिलता है, वही ज्ञानी लोग बुद्धिकी वृद्धि करनेमें संलग्न करते हैं ॥ ६ ॥ जो इन्द्रके सेवक अति सोमरस पीनेसे समुद्र जैसा फूला है वैसा उनके सुरक्षा अति सोमरससे बडे पेटसे भर जाता है ॥ ७ ॥ इस इन्द्रकी अनेक स्तोत्रोंसे युक्त, सोमरससे सेचित, पुष्ट मध्य शाखा, दाताके लिये वैसी सुखदायी होती है, जैसी पकी हुई फलोंकी शाखा ॥ ८ ॥ तेरी विभूतियाँ ऐसी हैं, मुझ जैसे दाताके लिये तेरी संरक्षक शक्तियाँ सदैव मिलती हैं ॥ ९ ॥ इसके स्तोत्र और स्तोत्रगान ऐसे प्रिय और वर्णनीय हैं, सोमपान करनेवाले इन्द्रके लिये ही ये समर्पित हैं ॥ १० ॥

इस सूक्तमें इन्द्रके निम्नलिखित गुण वर्णन किये गये हैं–

१ इन्द्रः महान्– इन्द्र बडा है, यहां इसका महत्त्व वर्णन किया गया है ।

इसके अतिरिक्त 'वज्रिन्' (वज्रधारी) पद है जिस का आशय पूर्व स्थानमें अनेक वार आया है ।

२ वज्रिणे महित्वं अस्तु– वज्रधारी शूर इन्द्रका महत्त्व प्रख्यात होवे । जो शूर है और जो अपने शस्त्रसे शत्रुको परास्त करता है, उसको महत्त्व प्राप्त होता है ।

३ अस्य विरप्शी नृतुता दाशुषे एवा हि– इस इन्द्रकी उत्तम स्पष्ट वाणी दाताके लिये ऐसा ही सुख देती है । इसी तरह लोग दाताका कल्याण करनेके लिये ही अपना भाषण करें । जो बोलें उससे सबका हित हो ।

४ दाशुषे ऊतयः सद्यः सन्ति- दाताके लिये सुरक्षाएँ तत्काल प्राप्त हों ।

दान करनेकी इच्छा बढायी जाय । इन्द्र उदार दाताकी सहायता करता है, वैसेही सब लोग अन्योंकी सहायता करें । यह इस सूक्तका तात्पर्य है । इन्द्र जिस तरह सबकी सुरक्षा करता है, वैसी ही सब लोग करें । इस सूक्तमें निम्नलिखित मौलिक पेश की गयी हैं–

वीरतावाला धन

१ सानसिं. सजित्वानं सदासहं, वर्षिष्ठं, रयिं ऊतये आभर– स्वीकार करने योग्य, विजयशील, सदा शत्रुका नाश करनेमें समर्थ, श्रेष्ठ धन हमारी सुरक्षा करनेके लिये हमें भरपूर भर दे । यहां धन भरपूर मांगा है, परन्तु यह केवल धनही नहीं है, परंतु यह ' वर्षिष्ठं रयिं ' श्रेष्ठ धन है, हमें ऐसेसे श्रेष्ठ धन चाहिये, सत्यसे या निकृष्ट धन नहीं चाहिये । धन अनेक प्रकारके है, उनमें श्रेष्ठ अपना वरिष्ठ धन ही चाहिये । मनुष्य अपने पास उपलब्ध उत्तम धन स्वयंका धन कहे । इन्द्र शब्द ' धन ' को लगा है, अतः यह शब्द उनसे उत्तम हो, उत्तम का कल्पित न हो, यह उनके विषयमें सबसे प्रथम हक उनमें उत्तम शब्द

चाहिये। इतनेसे ही काम नहीं होगा, वेद इसके साथ ही सावधानीकी सूचना देता है कि वह 'सानसिं' अर्थात् सेवनीय चाहिये।

उदाहरणके लिये देखिये कि मान लो एक ऐसी वस्तु है कि जो उत्तमसे उत्तम भी हुआ, तो वह अपनेके लिये स्वीकारके योग्य वस्तु नहीं है। इस तरह धन उत्तम होना चाहिये और वह हमारे स्वीकार करनेके योग्य भी होना चाहिये। दूसरेकी वस्तु स्वीकारके योग्य नहीं हो सकती। दूसरेका धन, स्त्री, भूमि या अन्य उसकी स्वामित्वकी वस्तु किसी अन्यके लिये स्वीकार करने योग्य नहीं है। अतः यहां कहा है कि '**सानसिं वर्षिष्ठं रयिं**' सेवनीय श्रेष्ठ धन चाहिये। और भी इसमें दो सेवनीय भाव चाहिये, वे ये हैं— '**सजित्वानं**' विजयशील लोगोंके साथ जो धन रहता है, वही धन हमें चाहिये, डरपोक और वीर्यहीन आदिकोंके पास रहनेवाला धन हमें नहीं चाहिये, तथा '**सदा सहं**' सदा शत्रुका पराभव करनेका सामर्थ्य अपने पास रखनेवाला धन हमें चाहिये। जिससे शत्रुका पराभव करनेका सामर्थ्य घट जाय ऐसा धन हमें नहीं चाहिये, अथवा दूसरेके द्वारा ही जिस धनकी सुरक्षा होती है, ऐसा धन भी हमें नहीं चाहिये।

वेदने केवल धन नहीं मांगा है, प्रत्युत 'सेवन करनेयोग्य, वीरोंके साथ रहनेवाला, शत्रुका पराजय करनेके सामर्थ्यसे युक्त श्रेष्ठ धन ही चाहिये' ऐसी इच्छा यहाँ की है। यह बड़ी सावधानीकी सूचना है। लोग धन चाहते हैं, परंतु दुर्बलके हाथका धन दुर्बलके पास नहीं रह सकेगा, यह बात वे भूलते हैं। धनके साथ बल, वीर्य और पराक्रम चाहिये, ऐसा जो यहां कहा है वह सदा ध्यानमें रखने योग्य है। आगे जहां जहां धनकी कामना होगी, वहां बलवीर्य पराक्रमके साथ रहनेवाला धन ही समझना उचित है। वेदमें केवल धनकी कामना नहीं है, बल वीर्य पराक्रम तथा रक्षाशक्तिसे युक्त धन ही चाहिये, ऐसा ही वहां भाव समझना चाहिये।

२ येन (रयिणा) मुष्टिहत्यया, अर्वता वृत्रा निरुणधामहै— जिस धनसे हम मुष्टियुद्ध करके, तथा घोडोंपर होकर शत्रुओंका निरोध करेंगे। हमें धन ऐसा चाहिये जिस धनसे हमारेमें मुष्टियुद्ध करनेकी शक्ति बढे, तथा सवार होकर युद्ध करनेका बलभी बढे। धन ऐसा [illegible] चाहिये। [illegible] 'विश्वायु' [illegible] है। 'विश्वायु' का अर्थ [illegible] वेग करना, [illegible] प्रकारका [illegible] योग्य है। [illegible] है। ऐसा [illegible] धन चाहिये।

३ वयं घना वज्रं आ ददीमहि, युधि स्पृधः [illegible] हम तेरे द्वारा सुरक्षित होकर [illegible] और युद्धमें हमारे स्पर्धा करनेवाले शत्रुओंको [illegible] करके हम सब मिलकर शत्रुका पराभव करेंगे। धनसे [illegible] और युद्धमें शत्रुका पराभव करनेकी शक्ति प्राप्त होनी चाहिये।

४ वयं शूरेभिः अस्तृभिः पृतन्यतः सासह्याम— हम सब शूर वीर अस्त्रोंके चलानेवाले, सेनासे चढाई करनेवाले शत्रुको पराजित करेंगे। धनसे हमारे पास ऐसी शक्ति चाहिये कि जिससे हम शत्रुपर हमला करके सेनाका नाश करनेमें समर्थ बन जाँय।

५ नरः समोहे आशत— नेता शूर वीर युद्धमें यश प्राप्त करते हैं, वह यश हमें प्राप्त हो। जहां दोनों दल इकट्ठे होकर लडते हैं, उस युद्धका नाम 'समोह' है। ऐसे युद्धमें हमारा विजय होने योग्य शक्ति हमें प्राप्त हो यह इच्छा यहां स्पष्ट दीखती है।

धनसे ये सब शक्तियाँ प्राप्त होनी चाहिये। ऐसा [illegible] युक्त धन चाहिये। हरएक ऐसा धन अपने पास [illegible] इच्छा करे।

सत्य भाषण

भाषण मनुष्य ही करता है, मनुष्यमें ही [illegible] है। वाणी कैसी हो, इस विषयमें इस सूक्तके निम्नलि[खित] निर्देश देखने योग्य हैं—

पक्वा शाखा न। विरप्शी गोमती मही सूनृता— उत्तम मधुर फलवाले वृक्षकी परिपक्व फलोंसे भरी शाखा जैसी लाभदायक होती है, वैसी वाणी हो, अर्थात् यह वाणी शुष्क शाखाके समान शुष्क न हो, रसदार फलवाली, परिपक्व फलोंसे लदी शाखाके समान रसीली हो, मधुर हो, स्वादु हो। यह तो उपमासे मिलता है। अब वाणीका वर्णन देखिये—

(वि-एष्टी) विशेष सुन्दर स्वरालापोंसे युक्त वाणी , सुन्दर मधुर कोमल वाणी हो, (गो-मती) गति-ली, प्रवाहयुक्त, प्रगतिशील वाणी हो, (मही) महत्व-ली, बड़ी श्रेष्ठ विचारोंसे युक्त और (सूनृता= सु+नृ+ ा) उत्तम मानवता जिससे प्रकट होती है, मनुष्यत्वका ोकाश करनेवाली, जिस वाणीमें पशुता या असुरता नहीं और जिससे मानवता प्रकट होती है ऐसी वाणी मनुष्यों ो बोलनी चाहिये ।

इस सूक्तमें धन और वाणीका वर्णन मनुष्योंके लिये नन करने योग्य है । मनुष्यमें स्वभावतः वाणी है, मनुष्य सको कैसी उन्नत और प्रयुक्त करे, यह बात यहां कही । मनुष्यको धन चाहिये, वह धन भी कैसा हो, यह भी हां बताया है । ये दोनों महत्वपूर्ण विषय इस सूक्तमें च्छी तरह वर्णन किये गये हैं । पाठक इनको समझें और नन करके सपनायें ।

इन्द्रः

(१।१-१०) मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । इन्द्रः । गायत्री।

इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः।
महाँ अभिष्टिरोजसा ॥ १ ॥
एमेनं सृजता सुते मन्दिमिन्द्राय मन्दिने ।
चक्रिं विश्वानि चक्रये ॥ २ ॥
मत्स्वा सुशिप्र मन्दिभिः स्तोमेभिर्विश्वचर्षणे।
सचैषु सवनेष्वा ॥ ३ ॥
अकृत्वामिन्द्र ते गिरः प्रति त्वामुदहासत ।
अजोषा वृषभं पतिम् ॥ ४ ॥
सं चोदय चित्रमर्वाग्राध इन्द्र वरेण्यम् ।
असदित्ते विभु प्रभु ॥ ५ ॥
अस्मान्त्सु तत्र चोदयेन्द्र राये रभस्वतः ।
तुविद्युम्न यशस्वतः ॥ ६ ॥
स गोमदिन्द्र वाजवदस्मे पृथु श्रवो बृहत् ।
विक्ष्वाशुहेमनाजसम् ॥ ७ ॥
अस्मे धेहि श्रवो बृहद्द्युम्नं सहस्रसातमम् ।
इन्द्र ता रथिनीरिषः ॥ ८ ॥
वसोरिन्द्रं वसुपतिं गीर्भिर्गृणन्त ऋग्मियम् ।
होम गन्तारमूतये ॥ ९ ॥
सुते सुते न्योकसे बृहद्बृहत एदरिः ।
इन्द्राय शूषमर्चति ॥ १० ॥

अन्वयः- हे इन्द्र ! एहि, विश्वेभिः सोमपर्वभि. अन्धसः मत्सि । ओजसा महान् अभिष्टिः ॥ १ ॥ सुते इं मन्दि चक्रिं एनं विश्वानि चक्रये मंदिने इन्द्राय आ सृजत ॥ २ ॥ हे सुशिप्र ! मन्दिभिः स्तोमेभिः मत्स्व । हे विश्वचर्षणे ! एषु सवनेषु सचा आ (गच्छ) ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! ते गिरः अस्तृषम् । वृषभं पतिं त्वां प्रति उत् अहासत अजोषाः ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! वरेण्यं चित्रं राधः अर्वाक् सं चोदय, ते विभु प्रभु असत् इत् ॥ ५ ॥ हे तुविद्युम्न ! इन्द्र ! रारे रभस्वतः यशस्वतः अस्मान् तत्र सु चोदय ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! गोमत्, वाजवत्, पृथु, बृहत्, विश्वायुः अक्षितं श्रवः, अस्मे सं धेहि ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! बृहत् श्रवः सहस्रसातमं द्युम्नं अस्मे धेहि । ताः इषः रथिनीः ॥ ८ ॥ वसोः उतये वसुपतिं ऋग्मियं गन्तारं इन्द्रं गीर्भिः गृणन्तः होम ॥ ९ ॥ आ इत् अरिः सुते सुते बृहत् शूषं न्योकसे बृहते इन्द्राय अर्चति ॥ १० ॥

अर्थ- हे इन्द्र ! (हमारे) समीप आ. सब सोमके पर्वोंसे निकाले अन्नरूप (इस रसका पान करके) आनंदित हो । (तू अपने) सामर्थ्यसे (हमारा) बड़ा ही सहायक है ॥ १ ॥ सोमरस निकालनेपर आनन्ददायक, कर्मशक्ति-वर्धक, इस (सोमरसको), मद मस्त करनेवाले आनन्द-युक्त इन्द्रदेव लिये (तुरन्त) रस दो ॥ २ ॥ हे सुन्दर हनु वाले इन्द्र ! हर्ष बढ़ानेवाले इन स्तोत्रोंसे आनंदित हो जाओ । हे सब मानवोंका हित करनेवाले इन्द्र ! इन सोमके सवनोंमें (अन्य देवोंके) साथ आओ ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तेरी (स्तुति करनेके लिये ही मैंने अपनी) वाणियां उच्चारण की हैं । इन्हींको, सबके पालनकर्ता तुझको (ये स्तुतियां) पहुंचती हैं, (और तुमने उनका) स्वीकार भी किया है ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! श्रेष्ठ और विविध प्रकारके धन हमारे समीप भेज दो । तेरे पास वह विशेष प्रकारका धन विद्यमान है ॥ ५ ॥ हे बहुत धनवाले इन्द्र ! हम लोग करनेके लिये प्रयत्नशील और यशस्वी होते हुए सत्कर्म खूब (हम करते) देखते रहें ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! गौओंसे युक्त, घोड़ोंसे युक्त, विस्तृत, खूब बड़ा, सबको चाहने योग्य अन्न हमें प्राप्त करा ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! बड़ा आकर्षक, अनन्त धन हमारेलिये, अन्न हमें दो हो । हे अन्न तो तुम्हारी

हैं ॥ ८ ॥ अनकी सुरक्षाके लिये धनपालक, स्तुतियोग्य यज्ञके प्रति जानेवाले इन्द्रकी स्तुति हम अपनी वाणियोंसे करते हैं ॥ ९ ॥ प्रगतिशील मानव प्रत्येक सोमयागमें बडे बलकी प्राप्तिके लिये शाश्वत स्थानमें रहनेवाले बडे महान् इन्द्रकी पूजा करता है ॥ १० ॥

इस सूक्तमें इन्द्रके निम्न लिखित विशेषण आये हैं-

१ सु-शिप्र— उत्तम हनुवाला, उत्तम नासिकावाला, अथवा जिसकी नासिका और हनु सुन्दर हैं।

२ वृषभः— बैल जैसा बलिष्ट, वीर्यवान्, शक्तिमान्।

३ पतिः— पालनकर्ता, स्वामी, अधिपति।

४ तुवि द्युम्नः— अत्यंत प्रकाशमान, बहुत धनवाला, अति तेजस्वी।

५ वसुपतिः— धनका स्वामी।

६ ऋग्मियः— ऋचाओंसे जिसकी प्रशंसा होती है, प्रशंसित स्तुत्य।

७ गन्ता-- चलनेवाला, चलनेमें अग्रेसर, यज्ञ जैसे शुभ कर्मोंमें जानेवाला।

८ ओजसा महान् अभिष्टिः— अपनी विशाल शक्तिसे सहायता करनेवाला, संरक्षण करनेवाला, शत्रुपर हमला करनेवाला।

९ विश्वानि चक्रिः- सब प्रकारके महान् कार्य करनेवाला, सब पुरुषार्थ करनेवाला।

१० मन्दी-- आनंदित, हर्षयुक्त, सदा हास्ययुक्त, उल्हासवृत्तिवाला।

११ सचा आ— अपने साथ (श्रेष्ठ वीरोंको) रखनेवाला।

१२ विश्व चर्षणिः- सब मानवोंका हित करनेवाला।

१३ न्योकः-- बडे विशाल घरमें रहनेवाला।

ये पद इस सूक्तमें इन्द्रके गुण दर्शाते हैं। ये गुण मनुष्यको अपनाने चाहिये। इनमें 'सुशिप्र' पदसे हनु और नासिकाका सौंदर्य बताया है, यह हर कोई मनुष्य अपना नहीं सकता। परन्तु शेष पद मनुष्यके लिये बोधप्रद हो सकते हैं। साधक बल बढावे, अपने अनुयायियोंका पालन करे, अपनी तेजस्विता बढावे, धनका संग्रह करे, प्रशंसित होवे, शीघ्रतासे चलनेका अभ्यास बढावे, अपनी शक्तिके द्वारा जनताकी सहायता करे, सदा अच्छे कर्म करता रहे, सदा आनंदित रहे, अच्छे भद्र पुरुषोंको अपने साथ इत्यादि बोध उक्त पद दे रहे हैं।

धन कैसा हो ?

किस तरहका धन प्राप्त करना योग्य है, इस विषयमें इस सूक्तके निर्देश मनन करने योग्य हैं-

१ वरेण्यं चित्रं विभु प्रभु राधः- श्रेष्ठ प्रकारका, विशेष बढनेवाला, विशेष प्रभावी और अंतिम पहुंचानेवाला धन हो, तथा-

२ गोमत्, वाजवत्, पृथु, बृहत्, विश्वायु, श्रवः- गौओंके साथ रहनेवाला, बलके साथ रहनेवाला, विस्तृत, बडा, पूर्ण आयुतक जीवित रखनेवाला, यश देनेवाला धन हो, तथा-

३ बृहत् श्रवः, सहस्रसातमं द्युम्नं- बडा, सहस्रोंको दान दिया जानेवाला तेजस्वी धन हो।

४ वसु- जो मनुष्योंके सुखपूर्वक निवासका हेतु हो ऐसा धन हो।

धनका वर्णन करनेवाले ये पद देखनेसे धन कैसा चाहिये इस बातका पता लग सकता है। धन श्रेष्ठ विविध प्रकारका हो, विशेष पराक्रम और प्रभाव वाला हो, अन्तिम सिद्धितक पहुंचानेवाला हो, गौओंका पालन होता रहे, बल बढता जाय, आयु सहस्रोंको दान देनेके बाद भी कम न हो, मनुष्यका सुखसे व्यतीत हो जाय। (ऋ. १।८।१-२ में) जो का वर्णन पूर्वस्थानमें आया है वह भी इसके साथ देखें। इस सूक्तकी एक विशेषता यह है कि यहां धनकी प्रार्थना नहीं है, प्रत्युत धन प्राप्तिके लिये स्वयं करनेका भी उपदेश है, देखिये-

प्रथम अपना प्रयत्न

५ रभस्वतः यशस्वतः अस्मान् राये- हम प्रयत्न करते हैं, यश मिलनेतक हम यत्न करते इतना करनेके बाद हमें ईश्वर अनुकूलतापूर्वक धन यहां प्रथम धन प्राप्त करनेके लिये बडा प्रयत्न करना और यश मिलनेतक यत्न करते रहना चाहिये ऐसा है वह बडे महत्त्वका है। अपना प्रयत्न प्रथम होना यश मिलनेके लिये जो भी किया जा सकता है,

वाजेषु हवनश्रुतं त्वा विप्र हि । वृषन्तमस्य सहस्रसातमां ऊतिं हूमहे ॥ १० ॥ हे कौशिक इन्द्र ! तु नः आ (गहि), मन्दसानः सुतं पिब । नव्यं आयुः प्र सू तिर । सहस्रसां ऋषिं कृधि ॥ ११ ॥ हे गिर्वणः ! विश्वतः इमाः गिरः त्वा परि भवन्तु, वृद्धायुं अनु वृद्धयः जुष्टाः जुष्टयः भवन्तु ॥ १२ ॥

अर्थ- हे सैकडों कर्म करनेवाले इन्द्र ! गायक लोग तेरे (काव्योंका) गान करते हैं । पूजक लोग तुझ पूजार्ह की पूजा करते हैं । ब्रह्मज्ञानी लोग भी (झण्डेके) बाँसको (ऊपर उठानेके समान), तुझे ऊंचा दिखा देते हैं ॥ १ ॥ जब एक पर्वत शिखरपरसे दूसरे पर्वत शिखरपर जानेवाला (कवि) उसकी प्रचण्ड कर्म शक्तिको साक्षात् देखता है, तब इन्द्र भी उसके भावको जानता है और वह वृष्टिकर्ता इन्द्र अपने साथी (सैनिकगणके साथ उसकी सहायताके लिये) दौडता है ॥ २ ॥ हे सोमरस पीनेवाले इन्द्र ! बडी [illegible], बलवान्, और पुष्ट दोनों घोडोंको अपने रथके [illegible] दो । और हमारी वाणीको श्रवण करनेके लिये चल [illegible] बसनेवाले इन्द्र ! हमारे समीप आ । हमारे [illegible] प्रशंसा कर । आनन्दसे बोल । प्रशंसा कर । और [illegible] और कर्म बढाओ ॥ ४ ॥ शत्रुका पूरा नाश [illegible] इन्द्रका यज्ञोपवीतके स्तोत्र हमें अवश्य गाना [illegible] हे इन्द्र ! तू हमारे पुरुषार्थों (या यज्ञों) के [illegible] विषयमें अवश्य ही अनुकूलताके भाषण [illegible] लिये हम उसके पास पहुंचते हैं, [illegible] लिये उसकी ही सहायता [illegible] इस प्रकार इन्द्र हमें धन देनेके लिये समर्थ [illegible] हे इन्द्र ! तेरा दिया धन सर्वत्र फैलता और सहज [illegible] लिये गौओंका बाडा खोल दे । हे [illegible] इन्द्र ! हमारे लिये धन अर्पण कर [illegible] वीरका महात्म्य गाने [illegible] । स्वकीय [illegible] और हमारे लिये गौएं [illegible] सुननेवाले इन्द्र ! [illegible] स्तुतियोंका स्वीकार कर, [illegible] इसलिये, अपने अन्नः [illegible] और स्तोत्रोंमें ही [illegible] । इस

बलवान् इन्द्रसे हजारों दानोंके साथ रहनेवाली (हम चाहते हैं ॥ १० ॥ हे कौशिक इन्द्र ! हमारे पास आनन्दसे सोमरसका पान कर । नवीन (उत्साहकी) हमें दे दो । और मुझे सहस्रों सामर्थ्योंसे युक्त कर दो ॥ ११ ॥ हे स्तुतिके योग्य इन्द्र ! सब ओरसे हमारी ये स्तुतियाँ तुझे प्राप्त हों, तेरी आयुकी वृद्धिके ये स्तुतियाँ भी बढती जायँ, तथा तेरे द्वारा स्वीकारी स्तुतियाँ हमारा आनन्द बढानेवाली हों ॥ १२ ॥

कौशिक इन्द्र

इस सूक्तमें इन्द्रको ' कौशिक ' कहा है । इन्द्रके का नाम कुशिक है ऐसी कल्पना कईयोंने की है। ऐसा संभव नहीं है । इन दसों सूक्तोंका ऋषि ' मित्र पुत्र मधुच्छन्दा ' है अर्थात् मधुच्छन्दा ऋषि का नाम विश्वामित्र है और विश्वामित्रका पिता गाधी गाधीका पिता कुशिक है । मधुच्छन्दाः-वि गाथी-कुशिक ऐसा यह वंश है । कुशिकसे उत्पन्न कौशिक कहते हैं । और कौशिकोंकी सहायता देवको भी कौशिक कहते हैं । कुशिक ऋषिसे उसके इन्द्रकी उपासना प्रचलित थी । इसलिये इन्द्रको ' कौशिक ' कहा है । कुशिकके वंशजोंपर कृपा अथवा कौशिकोंका उपास्य देव इन्द्र है । ' कौशिक ' का यह अर्थ है ।

इस सूक्तमें इन्द्रके निम्नलिखित गुण वर्णन किये

१ शतक्रतुः- सैकडों कर्म करनेवाला, अनेक सामर्थ्योंसे युक्त, कर्मकुशल और प्रज्ञावान्,

२ वृषणि- वृष्टि करनेवाला, बलवान्, वीर्यवान्,

३ वसुः- बसानेवाला, निवासका हेतु,

४ पुरु निःसिधः- बहुत शत्रुओंका निषेध करने शत्रुओंका नाश करनेवाला,

५ अद्रि-वः- पर्वतपर रहनेवाला, मेघोंमें रहने पर्वतपरके दुर्गमें रहकर शत्रुके साथ लडनेवाला,

६ ऋ-घायमाणः- (नृ-क) शत्रुके वीरोंका करनेवाला, शत्रुके सैनिकोंका वध करनेवाला, (यहाँ [illegible] ' क ' हटा है और ' ऋ ' का ' र ' [illegible]

सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते ।
त्वामभि प्र णोनुमो जेतारमपराजितम् ॥ २ ॥
पूर्वीरिन्द्रस्य रातयो न वि दस्यन्त्यूतयः ।
यदी वाजस्य गोमतः स्तोतृभ्यो मंहते मघम् ॥ ३ ॥
पुरां भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत ।
इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता वज्री पुरुष्टुतः ॥ ४ ॥
त्वं बलस्य गोमतोऽपावरद्रिवो बिलम् ।
त्वां देवा अविभ्युषस्तुज्यमानास आविषुः ॥ ५ ॥
तवाहं शूर रातिभिः प्रत्यायं सिन्धुमावदन् ।
उपातिष्ठन्त गिर्वणो विदुष्टे तस्य कारवः ॥ ६ ॥
मायाभिरिन्द्र मायिनं त्वं शुष्णमवातिरः ।
विदुष्टे तस्य मेधिरास्तेषां श्रवांस्युत्तिर ॥ ७ ॥
इन्द्रमीशानमोजसाभि स्तोमा अनूषत ।
सहस्रं यस्य रातय उत वा सन्ति भूयसीः ॥ ८ ॥

अन्वयः— विश्वाः गिरः, समुद्र-व्यचसं, रथीनां रथीतमं, वाजानां पतिं, सत्पतिं इन्द्रं अवीवृधन् ॥ १ ॥ हे शवसस्पते इन्द्र ! ते सख्ये वाजिनः मा भेम । जेतारं अपराजितं त्वां अभि प्रणोनुमः ॥ २ ॥ इन्द्रस्य रातयः पूर्वीः । स्तोतृभ्यः गोमतः वाजस्य मघं यदि मंहते, ऊतयः न वि दस्यन्ति ॥ ३ ॥ पुरां भिन्दुः, युवा कविः, अमितौजाः, विश्वस्य कर्मणः धर्ता पुरुष्टुतः वज्री इन्द्रः अजायत ॥ ४ ॥ हे अद्रिवः ! त्वं गोमतः बलस्य बिलं अप अवः । तुज्यमानासः देवाः अविभ्युषः त्वां आविषुः ॥ ५ ॥ हे शूर ! तव रातिभिः अहं सिन्धुं आवदन् प्रत्यायं । हे गिर्वणः ! कारवः उप अतिष्ठन्त, तस्य ते विदुः ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! त्वं मायिनं शुष्णं मायाभिः अवातिरः । मेधिराः तस्य ते विदुः । तेषां श्रवांसि उत्तिर ॥ ७ ॥ स्तोमाः ओजसा ईशानं इन्द्रं अभि अनूषत । यस्य रातयः सहस्रं सन्ति, उत वा भूयसीः ॥ ८ ॥

अर्थ— सब वाणियाँ, समुद्र जैसे विस्तृत, रथियोंमें श्रेष्ठ रथी, बलों (या अन्नों) के स्वामी, सज्जनोंके पालन करनेवाले इन्द्र (के महत्त्व) को बढ़ाते हैं ॥ १ ॥ हे बलोंके स्वामी इन्द्र ! तेरी मित्रतामें (रहकर) बलिष्ठ बने हम तेरी मित्रतामें उत्तेजित नहीं । नित्य विजयी और कभी पराजित न होनेवाले तेरी हम प्रशंसा करते हैं ॥ २ ॥ इन्द्रके दान प्राचीन हैं (किसी एक के नहीं हैं)। स्तोताओंके लिये गौओंसे प्राप्त अन्नका दान जो देते हैं, उनके लिये इन कभी कम नहीं होते ॥ ३ ॥ शत्रुके गढ़ोंको तोड़नेवाला, अपरिमित बलवाला, सब कर्म करनेवाला, बहुतों द्वारा प्रशंसित, वज्रधारी इन्द्र (हुआ है ॥ ४ ॥ हे पर्वतपरसे लटकनेवाले इन्द्र ! लीन लेनेवाले बल असुरके (दुर्गके) द्वा दिया है । (इस युद्धमें) संत्रस्त हुए देव (ने कारण) न डरते हुए तेरे पास पहुँचे ॥ ५ ॥ तेरे दानोंसे (उत्साहित हुआ) मैं, सोमर करता हुआ, तेरेपास पुनः (दान लेनेके लिये) हे स्तुत्य इन्द्र ! जो कारीगर तेरे पास पहुँचते महिमाको जानते हैं ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तूने मा असुरको अपनी कुशल योजनाओंसे परास्त मेधावी लोग तेरे (इस महत्त्वको) जानते यज्ञोंको तू बढ़ाओ ॥ ७ ॥ सब यज्ञ अपने सामर्थ इन्द्रकी प्रशंसा फैलाते हैं । उस इन्द्रके दान अथवा उससे भी अधिक हैं ॥ ८ ॥

इस सूक्तमें इन्द्रके निम्नलिखित गुणोंका वर्णन

१ समुद्र-व्यचाः— समुद्रके समान विस्तृत बड़ा, समुद्रके पार जिसकी प्रशंसा फैली है;

२ रथीनां रथीतमः— रथियोंमें श्रेष्ठ वीर, वीर, शूरोंमें शूर,

३ वाजानां पतिः— बलोंका स्वामी, अन्नों बहुत संख्यामें जिसके पास अनेक सामर्थ्य हैं ।

४ सत्पतिः— सज्जनोंका पालन करनेवाला, 'परित्राणाय साधूनां' (गी० ४।८) भगवान् की रक्षा करनेवाला कहा है, वही भाव यहां है वृष्णि थे, यह 'वृष्णि' पद इन्द्रवाचक (ऋ. १।१०।२) आया है । दुष्ट कर्म करनेवाले करनेवाला तो अनेक बार कहा ही गया है ।

५ शवसः-पतिः— बलका स्वामी, बलिष्ठ,

६ जेता— जयशाली, विजयी, जीतनेवाला,

७ अपराजित— जो कभी पराजित नहीं हो विजयी,

८ पुरां भिन्दुः — शत्रुकी नगरियोंको, शत्रु

नेवाला,
, युवा— तरुण, जवान्,
१० कविः— कवि, ज्ञानी, विद्वान्,
११ अमित-ओजाः — अपरिमित सामर्थ्यवान्
१२ विश्वस्य कर्मणः धर्ता— सब कर्मोंका धारण
ाला, सब कर्मोंका आधार, सब कर्मोंका संचालक,
१३ वज्री- वज्रधारी,
१४ पुरु-स्तुतः- अनेकोंद्वारा प्रशंसित,
१५ अद्रि-वः— पर्वतपर रहनेवाला, मेघोंमें रहनेवाला,
परके कीलोंमें रहकर शत्रुसे लड़नेवाला,
१६ शूर- शूर वीर,
१७ निर्णेणः- स्तुतियोग्य,
१८ ईशानः- स्वामी, अधिपति,
१९ मायिनं मायाभिः अवातिरः— कपटी शत्रुका
न कपट युक्तियोंसे करनेवाला,

सोमरस

इस सूक्तमें ' सिन्धु ' पद सोमरसका वाचक है, इसका
रण यह है कि सोमरस निकालते ही उसमें (सिंधु)
ीका पानी मिलाते हैं और छानते हैं। जिसमें नदीका
ी मिलाया जाता है उसका नाम सिंधु ही है।

वल असुर

वल नामक असुर था, वह गौवें चुरा कर ले जाता था
ि किसी गुप्त स्थानमें उनको बंद करके रखता था। इन्द्र
स स्थानका पता लगाता था, उस स्थानके द्वारको तोड़कर
ौवोंको शत्रुसे मुक्त करके उनके स्वामीको देता था। यह
त — ' सोमतः वलस्य विलं त्यं अप अवः। '
५) इस मंत्रमें है।

' वल् ' धातुका अर्थ ' गिरना, लपेटना आच्छादन करना,
ार करना ' है। इस कारण ' वल ' का अर्थ घेरनेवाला,
आच्छादन करनेवाला ' है। ' वृत्र ' का भी यही अर्थ है।
अतिशय शीत प्रदेशमें सर्दीके कारण जो बर्फ भूमिपर अथवा
र्वतादिपर गिरता है उसका यह नाम है। भूमिपर लपेटने
ाला।

इसरी ऋचमें लपेटा पटना और बर्फ पटना एक ही समान
होता है, अन्धेरा पटनेका ही नाम सूर्यके बिलोंपर अन्धेरेका
आच्छादन होना, अर्थात् यही गौवोंका चुराना है। सूर्य-
किरणोंका नाम गौवें हैं।

इस अन्धेरा, दीर्घरात्री, बर्फका भूमिपर ढकना, आदि पर
अनेक रूपक वेदमें किये गये हैं। अन्धकारको दूर करना
और प्रकाशका फैलाव करना ही धर्म है। यही धर्म इन
नाना प्रकारके रूपकों द्वारा बताया है।

सूर्यास्त होता है, यही विवरमें सूर्यको बंद करना है,
और सूर्योदयकाही अर्थ उस विवरको तोड़कर सूर्यका
तथा किरणोंका बाहर आना है। अतः ' विलं ' पद जो यहां
है वह सार्थ है।

वीरताका आदर्श

इस सूक्तमें इन्द्र वीरताका आदर्श करके वर्णन किया है।
ये सब वर्णन पाठक अपने लिये आदर्श समझें और उनको
अपनानेके यत्नमें प्रयत्नशील हों। यही वेदोंका मनन, और
ध्यान है।

यहां प्रथम मण्डलमें 'मधुच्छन्दाका दर्शन' समाप्त होता है।

सोमः

(ऋ० ९।१।१-१०) मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः।
पवमानः सोमः। गायत्री।

स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया।
इन्द्राय पातवे सुतः ॥ १ ॥
रक्षोहा विश्वचर्षणिरभि योनिमयोहतम्।
द्रुणा सधस्थमासदत् ॥ २ ॥
वरिवोधातमो भव मंहिष्ठो वृत्रहन्तमः।
पर्षि राधो मघोनाम् ॥ ३ ॥
अभ्यर्ष महानां देवानां वीतिमन्धसा।
अभि वाजमुत श्रवः ॥ ४ ॥
त्वामच्छा चरामसि तदिदर्थं दिवे-दिवे।
इन्दो त्वे न आशसः ॥ ५ ॥
पुनाति ते परिस्रुतं सोमं सूर्यस्य दुहिता।
वारेण शश्वता तना ॥ ६ ॥
तमीमण्वीः समर्य आ गृभ्णन्ति योषणो दश।
स्वसारः पार्ये दिवि ॥ ७ ॥
तमी हिन्वन्त्यग्रुवो धमन्ति वाजुरं दृतिम्।
विधातु धारया मधु ॥ ८ ॥
अभी मीमृज्या उत श्रीणन्ति धेनवः शिशुम्।
सोममिन्द्राय पातवे ॥ ९ ॥

अंगुलियोंसे वह पकडा जाता है और दोनों हाथोंकी लियोंसे बडी शक्ति लगाकर दोनों ओरसे दबाकर रस ाला जाता है।

अष्टम मंत्रमें यही फिरसे कहा है। तीन पात्रोंमें यह रस ते हैं। एकके ऊपर दूसरा और दूसरेपर तीसरा ऐसे न पात्र रखते हैं और एकसे दूसरेमें और दूसरेसे तीसरेमें छाना जाता है। अधिक बार छाननेसेही यह अधिक इ होता है। यह रस मधुर है और दुःखका निवारण नेवाला है अर्थात् इसके सेवनसे उत्साह बढता है, रीरिक क्लेश दूर होते हैं और मनुष्यकी कर्मशक्ति ती है।

नवम मंत्रमें सोमरसको बालक या पुत्र कहा है। सोम- ी माता है, और यह रस उसका पुत्र है। इसको गौवें दूध ाती हैं। इस तरह दूध पीकर यह रसरूपी बालक पुष्ट ा है। यह बडा उत्तम आलंकारिक वर्णन है। सोमरसको ंत्रोंमें 'शिशु' भी कहा है। इसका तात्पर्य यह कि सोमरसमें गौका दूध मिलानेके बादही उसका पान ते हैं।

दशम मन्त्रका कथन है कि शूर इन्द्र सोमरस पीकर नन्द-प्रसन्न होता है और इस उत्साहमें सब शत्रुओंका ा करता है तथा उनका धन अपने राज्यमें लाकर अपने अनुयायियोंको बांट देता है।

दस मन्त्रोंमें सोमके विषयमें इतना वर्णन है। इस सूक्तमें सोमके कुछ विशेषण वीरताका वर्णन करनेवाले हैं। उनका स्वरूप यह है—

१ रक्षो-हा- राक्षसोंका वध करनेवाला, शत्रुओंका नाश करनेवाला,

२ विश्व-चर्षणिः- सब मानवोंका हित करनेवाला, जनताका हित करनेवाला,

३ वरिवः-धा-तमः— विपुल प्रमाणमें धन देनेवाला, धनका अधिकसे अधिक दान करनेवाला, (तुलना करो 'रत्न-धा-तमः' से। ऋ० १।१।१)

४ महिष्ठः— महान्, बडा,

५ वृत्र-हन्तमः— असुरोंका नाशकर्ता, शत्रुओंका नाशकर्ता, रुकावटोंका खूब विध्वंस करनेवाला।

६ सदस्थं आसीद्— अपने स्थानमें रह, अपने देशमें रह, (तुलना करो 'स्वे दमे वर्धमानं' से। ऋ० १।१।८)

७ मघोनां राधः पर्षि— शत्रुके धनिकोंका धन लाकर अपने लोगोंको दो। (सूचना- यह शत्रुके धनको लूटनेकी रीति आजतक चली आयी है।)

ये गुण मानवोंके लिये अपनाने योग्य हैं। इनमें वीरता, दातृत्व आदि गुण विशेष उल्लेखनीय हैं।

मधुच्छन्दा ऋषिका दर्शन

विश्वामित्र पुत्र मधुच्छन्दा ऋषिके देखे मंत्र ऋग्वेदके ाम मण्डलमें १०२ हैं, नवम मण्डलमें सोमदेवताके १० ा हैं। अर्थात् कुल ११२ मंत्र ऋग्वेदमें हैं और इसके ा जैसा ऋषिके ८ हैं। सब मिलकर १२० मंत्र होते हैं। ंत्रोंमें इन दो ऋषियोंका तत्त्वज्ञान ग्रथित है, जिसे ह देखना है और उसका मनन करना है। इन मन्त्रोंका ग देवताओंके अनुसार इस प्रकार है।

मधुच्छन्दा वैश्वामित्र

प्रथम अनुवाक।

१।१।१—९	अग्निः	९	मंत्र
२।१—३	वायुः	३	..
१।२।४—६	इन्द्रवायू	३	मंत्र
७—९	मित्रावरुणौ	३	
३।१—३	अश्विनौ	३	
४—६	इन्द्रः	३	
७—९	विश्वे देवाः	३	
१०—१२	सरस्वती	३	(मंत्र १०)

द्वितीय अनुवाक।

४।१—१०	इन्द्रः	१०	
५।१—१०	..	१०	
६।१—१०	इन्द्राग्नी	१०	
७।१—१०	इन्द्रः	१०	(मंत्र ६०)

तृतीय अनुवाक।

१।८।१—१०	इन्द्रः	१०
९।१—१०	,,	१०
१०।१—१२	,,	१२

जेता माधुच्छन्दसः।

११।१ - ८	इन्द्रः	८ (मंत्र ५०)	११०
९।११।१—१०	सोमः	१०	१०
			१२०

माधुच्छन्दा नैधामित्रके मंत्र ११२
जेता माधुच्छन्दाके ,, ८
१२०

ऋग्वेद-सूक्तक्रमसे ये मंत्र लिखे हैं, अब देवताके क्रमसे मंत्रसंख्या इसतरह है—

वेदक्रम		मन्त्राधिक्यक्रम		
अग्निः	९ मंत्र	इन्द्रः	७३	मंत्र
वायुः	३ ,,	सोमः	१०	,,
इन्द्रवायू	३ ,,	इन्द्रावरुणौ	१०	,,
मित्रावरुणौ	३ ,,	अग्निः	९	,,
अश्विनौ	३ ,,	वायुः	३	,,
विश्वे देवाः	३ ,,	इन्द्रवायू	३	,,
सरस्वती	३ ,,	मित्रावरुणौ	३	,,
इन्द्रामरुतौ	१० ,,	अश्विनौ	३	,,
इन्द्रः	७३ ,,	विश्वे देवाः	३	,,
सोमः	१० ,,	सरस्वती	३	,,
	१२० मंत्र		१२०	,,

इन्द्र ७३, सोम १०, इन्द्रामरुतौ १०, अग्नि ९ शेष (१) वायु— (२) इन्द्रवायू— (३) मित्रावरुणौ— (४) अश्विनौ— (५) विश्वे देवाः— (६) सरस्वती इनमेंसे प्रत्येकके तीन तीन मिलकर उक्त छः देवताओंके १८ होते हैं। ये सब १२० हुए।

ऋषि देवताओंका साक्षात्कार करते हैं, उन देवताओंमें वे अपने अतीन्द्रिय दृष्टिसे कुछ विशेष गुणधर्म देखते हैं। इनमें कई गुणधर्म ऐसे हैं कि जो अन्य लोग देख नहीं सकते, केवल अभौतिक दिव्य दर्शन करनेवाले ऋषिही देखते हैं, कविही देख सकते हैं। ये इनके जो दर्शन हैं, वे ऋषियोंके साक्षात्कृत दर्शन हैं। ये इनके [illegible] करानेवाले हैं।

ऋषियोंके दर्शनमें अंतिम साध्यता है, कवि है, वह सीमाकी दृष्टिसे है। ये गुणधर्म साधारण जन [illegible] सीमामें देख नहीं सकते। अतीन्द्रियार्थदर्शी ऋषि देख सकते हैं। अतीन्द्रियार्थदर्शनके बिना काव्य मात्र [illegible] हुआ काव्यकी दृष्टि काव्यकी विशेषता है और जो विशेष दृष्टिसे देखना हुआ ऋषियोंका साक्षात्कृत नहीं हुआ कारण हुए काव्यको पढ़कर हुआ है, जो मननपूर्वक देखना योग्य है।

इसके देखनेकी कुछ विशेष रीति है, उसी रीतिसे यह मननपूर्वक देखा जा सकता है। जैसा देवता व्यवहार करते हैं, वैसा व्यवहार मानवोंको करना देवताओंको अपना आदर्श मानना चाहिये और उनके बनेका यत्न करना चाहिये।

यद्देवा अकुर्वंस्तत्करवाणि। (श० ब्रा०)
मर्त्या ह वा अग्रे देवा आसुः॥ (श०ब्रा०१२।१।१।१)

एतेन वै देवा देवत्वमगच्छन्।
देवत्वं गच्छति य एवं वेद। (तां०ब्रा०२२।१८)

'जैसा देव करते हैं वैसा मैं करूंगा। देव प्रथमतः ही थे। वे विशेष श्रेष्ठ कर्मके अनुष्ठानसे देवत्वको प्राप्त जो इस अनुष्ठानको जानता है, वह देवत्व प्राप्त करता ऋग्वेदके मंत्रमें भी कहा है—

मर्तासः सन्तो अमृतत्वमानशुः। (ऋ० १०
सायणभाष्य-एवं कर्माणि कृत्वा मर्तासो अपि सन्तोऽमृतत्वं देवत्वं आनशुः ॥ कृतैः कर्माभिर्लेभिरे। (ऋ० १।११०।४)

'ऋभुदेव प्रथम मर्त्य थे, पश्चात् शुभ कर्म करनेसे प्राप्त हुए।' इस तरह मर्त्य भी देवत्वको प्राप्त होते देवत्वके गुणधर्मोंको धारण करनेसे मर्त्य देव बनते यही इस सब प्रतिपादनका तात्पर्य है। इस तात्पर्य यह है कि वेदके मंत्रोंमें जो देवोंका गुणवर्णन वह मनुष्योंको अपने जीवनमें धारण करनेके लियेही देवत्व-प्राप्तिका यही अनुष्ठान है।

इस दृष्टिसे मंत्र और सूक्त देखनेसे, उनसे जो मानव-
ो मिलना संभव है, वह मनुष्यके मनमें मंत्रके मननसे
र सकता है। उदाहरणके लिये देखिये—
'इन्द्र वृत्रका वध करता है' यह एक मंत्रका अर्थ है।
का अर्थ 'घेरकर लडनेवाला शत्रु' है। इस मन्त्रसे
नवको इस क्षात्रधर्मका ज्ञान होता है कि 'मनुष्य अपने
ुका नाश करे।' इसीतरह अन्यान्य मन्त्रोंके विषयमें
नना उचित है। वेदमंत्रोंसे मानवधर्म इस तरह प्रकट
ता है।

देवताके स्थानमें उपासक अपने आपको रखे और
ोक्त वर्णन अपना वर्णन होनेके लिये कितने अधिक
ुणोंकी आवश्यकता है, इसकी परीक्षा करे। सोम
दि देवताओंके विषयमें विशेष आलंकारिक रीतिसे बोध
ना पडेगा। सोम- (स+उमा)— विद्या (उमा) है,
ाके समेत विद्वान्ही सोम है। इस सोमका ज्ञानरूप
है, यही सोमरस है। हरएक मनुष्य ज्ञान ग्रहण करता
यह शिष्य गुरुरूपी सोमके ज्ञानरूप रसको पीता है
र ज्ञान ग्रहण करके समर्थ और प्रभावी होता है। इस-
ह सोमके विषयमें जानना चाहिये।

मन्त्रोंसे अनुष्ठानकी रीति इस तरह जानी जा सकती
। पाठक मंत्रोंका मनन करते जायेंगे तो उनको इस
तका पता लगता जायगा। यहां संकेतमात्र लिखा है।
येक देवताके लिये पृथक् विवरण करना आवश्यक है।
तु देवताके समान अपना जीवन करनाही अनुष्ठानका
ख्य सूत्र है, इसमें संदेह नहीं है। अब मधुच्छन्दा ऋषिके
ंनका विचार कीजिये। मधुच्छन्दा ऋषिने जो मन्त्र
ये वे यहां १२० हैं। इस ऋषिने कौनसा आदर्श देवता-
तोंमें देखा और उन्होंने वह जनताके सम्मुख रखा है, इस
ुका अब विचार करना है।

अग्नि देव- [आदर्श ब्राह्मण]

प्रथम अनुवाक।

मधुच्छन्दा ऋषिके इन मन्त्रोंमें अग्निदेवके वर्णनके लिये
मन्त्र हैं। इनमें निम्न लिखित आदर्श ऋषिने देखा है—

[१] इस सूक्तके 'पुरोहित, ऋत्विज्, होता' (मं० १) पद पौरोहित्यके, अर्थात् ब्रह्मधर्मके बोधक हैं। इन पदोंसे पौरोहित्य, ऋत्विक्कर्म और हवन करनेका भाव प्रकट होता है। इसतरह अग्नि देवताके मंत्रोंमें ब्राह्मणधर्मकी झलक दीखती है। 'होता' पद ५ वें मन्त्रमें भी पुनः आया है। वह देवोंको बुलाने, आवाहन करनेका बोध करता है।

[२] छठे मंत्रका 'अंगिरः' (मं० ६) पदभी अंगिरस-विद्याके प्रचारक तथा अग्निकी उत्पत्ति करके यज्ञ-विद्याके प्रवर्तक आंगिरस ऋषिका सूचक है।

[३] 'सत्यः' (५) और 'ऋतस्य गोपा' (८) सत्यका रक्षक ये पदभी सत्यपालन करनेका गुण बता रहे हैं। यमनियममें सत्यपालन एक व्रत है, जो इन पदोंसे बताया है। 'यज्ञस्य देवः' (मं० १) ये पद यज्ञका प्रकाशक होनेका भाव बता रहे हैं। यज्ञमार्गका प्रवर्तन करनेका भाव इससे स्पष्ट होता है।

[४] 'अध्वरं परिभूः' (मं० ४) हिंसारहित यज्ञ-का करनेवाला है। इसके कर्ममें हिंसा नहीं होती। यम-नियमपालनमें 'सत्य'के विषयमें पहिले कहा, अब 'अहिंसा'के विषयमें यह निर्देश है। अ-हिंसाके लिये यहाँ 'अ-ध्वर' पद है। जो अहिंसामय कर्म है, वही 'स देवेषु गच्छति' (४) देवोंके पास पहुंचता है। देव उस कर्मका स्वीकार करते हैं कि जो हिंसारहित होता है। हरएकको इस कारण हिंसारहित कर्म करने चाहिये। इस तरह कर्ममें अहिंसाका पालन करना आवश्यक है। 'अध्वराणां राजन्' (मं० ८) अहिंसापूर्ण कर्मोंसे प्रकाशना आवश्यक है। मनुष्यको अहिंसापूर्ण कर्मोंसेही अपना यश बटाना चाहिये। अहिंसामय कर्म करनाही मानवोंका श्रेष्ठ धर्म है। अहिंसा और अकुटिलताही मानव-धर्मका मुख्य सूत्र है।

[५] 'कवि-क्रतुः' (५) 'कवि' पद ज्ञानीका वाचक है और 'क्रतु' पद ज्ञान, प्रज्ञा और कर्मका वाचक है। ज्ञानपूर्वक कर्म करने चाहिये। ज्ञानी और कर्मप्रवीण होने-की सूचना इसमें मिलती है।

[६] 'वर्धमानः' (८) अपने स्थानमें वृद्धि-को प्राप्त होना। अपने देशमें उन्नतिको प्राप्त करना चाहिये। उन्नति या प्रगतिका भाव यह है—

ा, राजपुरुष, सेनापति, सैनिक आदि क्षत्रिय हैं, जो
ुके रूप हैं।

क्षत्रिय (दर्शत) दर्शनीय, सुंदर और सजधजसे रहने-
े हों। वे सजकर बाहर आयें और सुन्दरतायुक्त वेष-
ासे समाजमें रहें और विचरें। इससे उनका प्रभाव
तापर अत्यधिक हो सकता है। वे जनतामें सुंदर बनकर
ण करें और (हवं श्रुधि) सब जनताकी पुकार सुनें।
र्थात् जनताके कष्ट जानें, उनकी परिस्थिति समझ लें।
ाइकर उनकी उचित रहायता करें, यह आशय यहां है।

क्षत्रियको उचित है कि वह (पपृञ्चती उरुची धेना)
नी वाणीको हृदयस्पर्शी बनावे, वह जब बोले तब ऐसा
े कि जो जनताका (पपृञ्चती) हृदय हिला देवे।
ोंको हिला देनेवाला भाषण करे, (उरुची) विस्तृत
ारका प्रचार अपनी वाणीसे करें अर्थात् संकुचित विचा-
ो अपने भाषणमें स्थान न दे। केवल व्यक्तिगत हितका
ार संकुचित विचार है और संपूर्ण मानवताका विचार
ृत विचार है। इसीका नाम (उरुची) विस्तृत भाव

क्षत्रियके मनमें संकुचित भाव न रहे, पर विस्तृत,
ापक और संपूर्ण मानव्यका भाव उसके मनमें रहे और
ो उसकी वाणीसे प्रकट हो जावे। अर्थात् क्षत्रियके भाषण-
हृदय हिलानेकी शक्ति हो और व्यापक विचार हों और
धेना) उसकी वाणी तृप्ति और संतुष्टि करनेवाली हो तथा
ी दाताकीही प्रशंसा करे। हर किसी कंजूसका वर्णन
करे। कंजूसका वर्णन न हो, पर उदार (दाशुषे)
ाताकी ही प्रशंसा होती रहे। दाताही प्रशंसा करने
ोग्य है।

इस तरह क्षत्रिय वीर क्या बोले, क्या सुने और क्या करे,
का वर्णन यहां किया है।

ये वीर सोमरसका पान करें, वे सोमरस अत्यंत शुद्ध
ये हों। कवि इन क्षत्रियोंके शौर्यके कृत्योंका वर्णन करें।
यदि इस सूक्तका अन्य वर्णन पाठक सहजहीसे समझ
ले हैं, जो उन मंत्रोंमें स्पष्टही है।

इस तरह इस द्वितीय सूक्तमें उत्तम क्षत्रियके धर्मका
वर्णन किया गया है।

(२-२) इन्द्र और वायु

सप्तऋचात्मक इस सूक्तमें द्वितीय सूक्तका द्वितीय लिंग इन्द्र और वायुका है। इन दोनों देवताओंका इकट्ठा वर्णन इस सूक्तके प्रारंभिक तीन मंत्रोंमें है। 'वायु' देवताके वर्णनमें क्षत्रियका वर्णन है और वायु क्षात्रधर्मका प्रतीक है, नमूना है, यह हमने पूर्व सूक्तमें देख लिया है। इस सूक्तमें इन्द्र देव प्रथम है और वायु उसका साथी है। इन्द्रका अर्थ (इन्+द्र) शत्रुका नाश करनेवाला है। वेदमें इन्द्रका यही एक प्रधान कर्तव्य वर्णन किया है। वह वृत्रादि शत्रुओंका सदा नाश करता है और अपने राष्ट्रको शत्रुरहित कर देता है। अतः यह राजा, राजन्य, राजपुरुष अथवा सेनापति है। इन्द्रको राजा कहते हैं, नरेन्द्र मानवोंके राजाको-ही कहते हैं, सेनेन्द्र सेनापति है। देवेन्द्र देवोंका राजा है। इस तरह इन्द्र पद राजा, मुख्य, अधिपति अर्थमें है। वायुपद यहां सहायक सैनिकोंके अर्थमें है।

राजा और सैनिक, सेनापति और सैनिक आदि भाव कविने यहाँ इन इन्द्र वायु देवताओंमें देखे हैं। वस्तुतः इन्द्र विद्युत् है जो उत्तरीय ध्रुवमें सूर्य आनेके पूर्व प्रकाशमय दीप्तियुक्त है, जो सूर्यको लाती और आकाशमें स्थापन करती है। यहां इन्द्रका कार्य वृत्रादि असुरोंसे लडना और उनको परास्त करना तथा प्रकाशका मार्ग खुला करना है।

वायुभी इसका सहायक है। वायु बडे वेगसे चलता है, मेघोंको तितरबितर कर देता है और प्रकाशको खुला मार्ग कर देता है। इस तरह इन्द्रका सहायक वायु है। कविने यहां इन्द्र और वायुमें क्षत्रियोंके गुण देखे और उनके वर्णनसे क्षत्रिय-धर्मका वर्णन किया है। इन तीन मंत्रोंमें निम्न लिखित वाक्य मुख्य वाक्य हैं—

१ हे इन्द्रवायू! प्रयोभिः उप आ गतम्।
२ वाजिनीवसू, द्रवत् उप आ यातम्।
३ हे नरा! धिया मधु निष्कृतं उप आ यातम्।

(१) 'सेनापति और सैनिक (शत्रुको परास्त करके) नाना प्रकारके अन्नोंको लेकर यहां हमारे पास आ जायें, प्रयत्नसे सावध हमारे पास हमारी सुरक्षा करनेके लिये रहें। (२) ये अन्नोंको लेकर दौडते हुए अर्थात् शीघ्र हमारे पास आजायें। (३) हे नेता लोगो! अपनी बुद्धि और कर्मशक्तिके साथ सत्वर यहां आजायें।' इसका तात्पर्य यह है कि, हमारे सेनापति और सैनिक शत्रुका पराभव

करें, बहुत धन प्राप्त करें, बहुत अन्न प्राप्त करें और उस धन तथा अन्नके साथ हमारे पास आजायँ, हमारी सुरक्षा करें और वह धन और अन्न हमें बांट देवें। अन्य सूक्तोंके वर्णनका विचार साथसाथ करनेसे इस सूक्तसे यह भाव प्रकट होता है। यह क्षत्रियोंका कर्तव्यही है।

इन मंत्रोंमें जो अन्य वर्णन है वह यही है कि ये इन्द्र और वायु (सेनापति और सैनिक) यहां अन्नके साथ आजायँ और उनके लिये तैयार किया हुआ सोमरस पीवें। इससे यह बात स्पष्ट होती है कि विजयी सैनिक विजय प्राप्त करके जब आते हैं, तब उनका सत्कार करनेके लिये स्थान स्थानपर सोमरस तैयार करके रखे रहें। वे आवें और उन रसोंका सेवन करें।

विजयी वीरोंका सत्कार इस तरह होता रहे, यह इसका आशय है।

(३-३) मित्रावरुणौ

मधुच्छन्दा ऋषिके दर्शनमें द्वितीय सूक्तका तीसरा त्रिक मित्र और वरुण देवताका है। मित्र और वरुण (सूर्य और चन्द्र) ये दो राजा हैं, इनके राज्यमें सभाके द्वारा राज्य चलाया जाता है। प्रजाजनही अपने लिये जैसा चाहिये वैसा राज्य चलाते हैं, अतः ऐसे दो राजाओंका आपसमें युद्ध नहीं होता। वे परस्पर मित्रताके साथ रहते हैं।

'मित्र'का अर्थ मित्रभावसे वर्ताव करनेवाला, (मि+त्र) हित करके रक्षा करनेवाला है, । 'वरुण'का अर्थ श्रेष्ठ, वरिष्ठ है। ये इनके स्वाभाविक गुण हैं। ऐसे दो राजा आपसमें लडते नहीं, परंतु परस्पर सहायक होकर एक-दूसरेका भला करते रहते हैं। सब राजा लोग ऐसे बनें और परस्पर न लडते हुए मित्रभावसे परस्पर सहायक [illegible] यही वेदका संदेश इन मन्त्रोंद्वारा प्रकट हुआ है।

(पूतदक्षं मित्रं) पवित्रताका बल मित्रके पास है और [illegible] वरुणं) शत्रुका पूर्णताके साथ नाश करनेकी [illegible] वरुणके पास है। (रिश-अदस्) शत्रुको खा जानेका वरुणका है। ये बल राजाके पास रहने चाहियें। [illegible]) जो शत्रु क्रमशः शनैः शनैः नष्ट करता है, उसका [illegible] रि [illegible] है। जैसा जलके स्पर्शसे लोहेका नाश होना [illegible] तरह जो शत्रु शनैः शनैः नाश करता है, वह 'रिश' [illegible] है।

३. कवी तुविजाता उरुक्षया अपसं दक्षं आ[illegible] ये ज्ञानी विशेष सामर्थ्यसे युक्त हैं, विशाल स्थानमें और शुभ कर्मोंको सुसंपन्न करनेका सामर्थ्य धारण करते राजा लोग (कवि) ज्ञानी हों, सुविचारी हों, दूरदर्शी (तुवि-जाता) बलके लिये प्रसिद्ध अर्थात् सामर्थ्यवान् (उरु-क्षया) बडे बडे विशाल मंदिरोंमें रहें तथा महान् कर्मोंको सुसंपन्न करनेका सामर्थ्य अपने पास और बढावें।

इन तीन मन्त्रोंमें कहा है कि, राजा लोग आपसमें

बर्ताव करें, मित्रतासे रहें, सरल और निष्कपट अपना कार्य करें, अपना बल बढावें और बडे बडे हितके कार्य करते जावें। इन मंत्रोंका प्रत्येक पद हृदयपूर्ण संदेश देता है। पाठक प्रत्येक पदका विचार गौरव मननपूर्वक मन्त्रका संदेश प्राप्त करें।

त्रका कार्य सूर्य है और 'वरुण का कार्य चन्द्र है। ा कार्य जल है। इनमें कविने दिव्य दृष्टिसे राजधर्म या है जो ऊपरके स्पष्टीकरणमें दर्शाया है।

(३-१) अश्विनौ

छन्दा ऋषिके दर्शनमें तृतीय सूक्तका प्रथम त्रिक देवताका है। अश्विनौ देवता वेदमें औषधि-प्रयोग-ारोग्य देनेवाली कही है। अश्विनौ देवतामें दो देव े सायसाथ रहते हैं, कभी पृथक् नहीं रहते।

तारकाएं हैं जिनको अश्विनौ बोलते हैं और जो मध्य- पश्चात् उदय होते हैं। ये अश्विनौ हैं ऐसा कहा जाता ध्यरात्रिके उपरान्त इनका उदय होता है, ऐसा वर्णन है। दो वैद्य अश्विनौ हैं ऐसा कई मानते हैं, औषधि प्रयोग करनेवाला और दूसरा शस्त्रकर्म करने- है। ये दोनों मिलकर चिकित्साका कार्य करते हैं। ा हैं ऐसामी कईयोंका मत है। परंतु दो तारकाएं ह मत विशेष ग्राह्य है। ये दोनों तारकाएं सायसाथ ं हैं, सायसाथ उदयको प्राप्त होती हैं, मध्यरात्रिके द उदय होती हैं। अतः इनका नाम अश्विनौ होना चनीय है। इनके विषयमें निरुक्तकार ऐसा लिखते हैं–

यथातो ऊर्ध्वस्थाना देवताः। तासामश्विनौ प्रथ- मागामिनौ भवतः। अश्विनौ यद् व्यश्नुवाते अहः, रसेनान्यो, ज्योतिषान्यः। अध्वरेऽश्विनौ ऊर्ध्वोऽध्वरः। तद् कादश्विनौ ? यादाषृथिव्या- विशेषेके, अहोरात्राविशेषेके, सूर्याचन्द्रमसा- विशेषेके, राजानौ पुण्यकृताविति ऐतिहासिकाः। तयोः काल ऊर्ध्वमर्धरात्रात्, प्रकाशीभावस्यात्, विद्युन्मस्तु, तमोभागो हि मध्यमः, ज्योतिर्भाग ादित्यः। निरुक्त १२।१।१

'अब ऊर्ध्वस्थानके देवताओंका वर्णन करते हैं। इन ऊर्ध्व- देवताओंमें अश्विनौ प्रथम आनेवाले देव हैं। इनको श्विनौ इसलिये कहा जाता है कि वे सबसे व्याप्त हैं। इनमेंसे एक रससे, जलसे, व्याप्त है और दूसरा प्रकाशसे व्याप्त है। और्णवाभ ऋषिका मत है कि अश्विदेवोंके पास घोडे थे इसलिये उनको अश्विनौ कहा गया। कौन भला अश्विनौ हैं? द्युलोक और भूलोक ऐसा कई कहते हैं, दिन और रात्रि ऐसा कईयोंका मत है, सूर्य और चन्द्र ऐसा कई मानते हैं, पुण्यकर्म करनेवाले ये दो राजा थे ऐसा ऐति- हासिकोंका मत है। ऐसे अश्विनौके संबंधमें नाना मत हैं। इनका समय मध्यरात्रिके उपरान्तका समय है। जब प्रकाश खुलने लगता है और अन्धकार कम होने लगता है, तब अश्विदेवोंका समय है। अन्धकार मेघादिके कारण होता है, इसलिये यह मध्यस्थानीय है और प्रकाश तो सूर्यसेही होता है, इसलिये वह द्युस्थानीय है। इस तरह अश्विनौ देवतामें प्रकाश और अन्धकारका समावेश होता है।'

अश्विदेवोंके विषयमें इतने मतभेद हैं, तथापि इनका उदय मध्यरात्रिके पश्चात् है यह निश्चित है। ये दो तारकाएं हैं ऐसामी अनेकवार कहा है। इनके वर्णनमें कविने जो दिव्य ज्ञान देखा, उसका विचार अब करना है–

१ पुरु-भुजौ= विशाल बाहुवाले। बाहु हृष्टपुष्ट और सुदृढ करने चाहिये।

२ शुभस्-पती= शुभ कर्मोंकी सुरक्षा करनेवाले। वीर अपने बाहुबलसे जनताके शुभ कर्मोंकी रक्षा करें और सर्वत्र शुभ कर्म होने योग्य परिस्थिति निर्माण करें।

३ द्रुवस्-पाणी= हाथोंसे अति शीघ्रतासे कार्य करनेवाले। हाथोंसे, अंगुलियोंसे जो कार्य करना हो वह अति शीघ्र, अति चातुर्यके साथ किया जावे।

४ पुरु-दंससा= अनेक बडे बडे कार्य करनेवाले। अनेक बडे कार्य करनेवाले मनुज बनें।

५ नरा= नेता। नेता बनें।

६ दक्षा= समृद्धि नाश करनेवाले।

७ नासत्या = सत्यका पालन करें।

८ रुद्र-वर्तनी = भयानक मार्गसे जानेवाले। न डरते हुए, कठिन मार्गसे भी जाने वाले।

९ धिष्ण्या = बुद्धिसे कार्य करनेवाले।

१० अश्विना = घोडोंको दूर जानेवाले, संकट हटानेवाले, देवगण।

इन पदोंके विवरणसे अश्विदेव किसगुणोंसे युक्त हैं, इसका

करें, बहुत धन प्राप्त करें, बहुत अन्न प्राप्त करें और उस धन तथा अन्नके साथ हमारे पास आजायें, हमारी सुरक्षा करें और वह धन और अन्न हमें बांट देवें। अन्य सूक्तोंके वर्णनका विचार साथसाथ करनेसे इस सूक्तसे यह भाव प्रकट होता है। यह क्षत्रियोंका कर्तव्यही है।

इन मंत्रोंमें जो अन्य वर्णन है वह यही है कि ये इन्द्र और वायु (सेनापति और सैनिक) यहां अन्नके साथ आजायँ और उनके लिये तैयार किया हुआ सोमरस पीलें। इससे यह बात स्पष्ट होती है कि विजयी सैनिक विजय प्राप्त करके जब आते हैं, तब उनका सत्कार करनेके लिये स्थान स्थानपर सोमरस तैयार करके रखे रहें। वे आवें और उन रसोंका सेवन करें।

विजयी वीरोंका सत्कार इस तरह होता रहे, यह इसका आशय है।

(३-३) मित्रावरुणौ

मधुच्छन्दा ऋषिके दर्शनमें द्वितीय सूक्तका तीसरा त्रिक मित्र और वरुण देवताका है। मित्र और वरुण (सूर्य और चन्द्र) ये दो राजा हैं, इनके राज्यमें सभाके द्वारा राज्य चलाया जाता है। प्रजाजनही अपने लिये जैसा चाहिये वैसा राज्य चलाते हैं, अतः ऐसे दो राजाओंका आपसमें युद्ध नहीं होता। वे परस्पर मित्रताके साथ रहते हैं।

'मित्र'का अर्थ मित्रभावसे वर्ताव करनेवाला, (मि+त्र) हित करके रक्षा करनेवाला है,। 'वरुण'का अर्थ श्रेष्ठ, वरिष्ठ है। ये इनके स्वाभाविक गुण हैं। ऐसे दो राजा आपसमें लडते नहीं, परंतु परस्पर सहायक होकर एक-दूसरेका भला करते रहते हैं। सब राजा लोग ऐसे बनें और परस्पर न लडते हुए मित्रभावसे परस्पर सहायक बनें, यही वेदका संदेश इन मन्त्रोंद्वारा प्रकट हुआ है।

(पूतदक्षं मित्रं) पवित्रताका बल मित्रके पास है और रिशादसं वरुणं) शत्रुका पूर्णताके साथ नाश करनेकी क्ति वरुणके पास है। (रिश-अदस्) शत्रुको खा जानेका ल वरुणका है। ये बल राजाके पास रहने चाहिये। रिश) जो शत्रु क्रमशः शनैः शनैः नष्ट करता है, उसका ाम 'रिश' है। जैसा जलके स्पर्शसे लोहेका नाश होना । इस तरह जो शत्रु शनैः शनैः नाश करता है, वह 'रिश' हलाता है।

२. पूतदक्षः [illegible] पवित्रताका बल और शत्रुनाशका सामर्थ्य ये दो [illegible] मेलसभी वृद्धिको पहुंचती हैं और कर्मशक्तिको [illegible] करती है। सभाके अपने अन्दर सामर्थ्यकी वृद्धि [illegible] परंतु उसका उपयोग पवित्रताके साथ करना चाहिये। [illegible] उस पवित्र बलका उपयोग शत्रुका नाश करने [illegible] करना चाहिये। ऐसा किया जाय, तो बडे बडे [illegible] कर्म सुसंपन्न हो सकते हैं।

३. ऋतावृधौ ऋतस्पृशौ ऋतेन सुरुतं कृतुं [illegible] सरलताको बढानेवाले, सरलताके साथ रहनेवाले, [illegible] मार्गसेही बडे बडे कर्मोंको सुसंपन्न करते हैं। यहां [illegible] का अर्थ 'न्याय्य, उचित, शुद्ध, ठीक, योग्य, सत्य [illegible] यद्यपि यहां ऋतका अर्थ सत्य किया जाता है, तथापि [illegible] और सत्यमें थोडा अन्तर है। जो सच्चा है, जो [illegible] है वैसा कहना सत्य है, परंतु जो योग्य है वह ऋत [illegible] लाता है। जो सत्य है, न्याय्य, शुद्ध, उचित, योग्य, [illegible] सरल और करने योग्य है, वह ऋत है। सत्य हो, [illegible] है वा नहीं, यह देखना चाहिये और ऋतकाही [illegible] करना चाहिये।

ये मित्र और वरुण ऋतका पालन करनेवाले हैं, [illegible] ऋतके साथ रहते हैं, इसलिये वे अपने शुद्ध पवित्र [illegible] कार्य सुसंपन्न करते हैं। जहां तेजापन बिलकुल [illegible] जहां कुटिलता नहीं है, ऐसा सरल शुद्ध और योग्य [illegible] इनका है। दूसरोंको धोखा देना या फंसाना इनके [illegible] बाहर है। इसी तरह सरल मार्गसे ये अपने सब [illegible] करते रहते हैं।

४. कवी तुविजाता उरुक्षया अपसं [illegible] आ ये ज्ञानी विशेष सामर्थ्यसे युक्त हैं, विशाल स्थानमें [illegible] और शुभ कर्मोंको सुसंपन्न करनेका सामर्थ्य धारण करते [illegible] राजा लोग (कवि) ज्ञानी हों, सुविचारी हों, दूरदर्शी [illegible] (तुवि-जाता) बलके लिये प्रसिद्ध अर्थात् सामर्थ्यवान् [illegible] (उरु-क्षया) बडे बडे विशाल मंदिरोंमें रहें तथा [illegible] महान् कर्मोंको सुसंपन्न करनेका सामर्थ्य अपने [illegible] और बढावें।

इन तीन मन्त्रोंमें कहा है कि, राजा लोग आपसमें

ासे बर्ताव करें, मित्रतासे रहें, सरल और निष्कपट
ससे अपना कार्य करें, अपना बल बढावें और बडे बडे
ताके हितके कार्य करते जांय। इन मंत्रोंका प्रत्येक पद
ा महत्त्वपूर्ण संदेश देता है। पाठक प्रत्येक पदका विचार
के योग्य मननपूर्वक मन्त्रका संदेश ग्राह्य करें।

'मित्र'का अर्थ सूर्य है और 'वरुण'का अर्थ चन्द्र है।
त'का अर्थ जल है। इनमें कविने दिव्य दृष्टिसे राजधर्म
लिया है जो ऊपरके स्पष्टीकरणमें दर्शाया है।

(३-१) अश्विनौ

मधुच्छन्दा ऋषिके दर्शनमें तृतीय सूक्तका प्रथम त्रिक
श्विनौ देवताका है। अश्विनौ देवता वेदमें औषधि-प्रयोग-
ा आरोग्य देनेवाली कही है। अश्विनौ देवतामें दो देव
पर वे सायसाथ रहते हैं, कभी पृथक् नहीं रहते।
दो तारकाएं हैं जिनको अश्विनौ बोलते हैं और जो मध्य-
त्रके पश्चात् उदय होते हैं। ये अश्विनौ हैं ऐसा कहा जाता
मध्यरात्रिके उपरान्त इनका उदय होता है, ऐसा
का वर्णन है। दो वैद्य अश्विनौ हैं ऐसा कई मानते हैं,
औषधि प्रयोग करनेवाला और दूसरा शस्त्रकर्म करने-
ला है। ये दोनों मिलकर चिकित्साका कार्य करते हैं।
राजा हैं ऐसाभी कईयोंका मत है। परंतु दो तारकाएं
यह मत विशेष ग्राह्य है। ये दोनों तारकाएं सायसाथ
ती हैं, सायसाथ उदयको प्राप्त होती हैं, मध्यरात्रिके
ात् उदय होती हैं। अतः इनका नाम अश्विनौ होना
न्वर्थनीय है। इनके विषयमें निरुक्तकार ऐसा लिखते हैं–

अथातो द्युस्थाना देवताः। तासामश्विनौ प्रथ-
मागामिनौ भवतः। अश्विनौ यद् व्यश्नुवाते
सर्वं, रसेनान्यो, ज्योतिषान्यः। अह्नैरश्विनौ
इत्यौर्णवाभः। तत् कावश्विनौ ? द्यावापृथिव्या-
वित्येके, अहोरात्रावित्येके, सूर्याचन्द्रमसा-
वित्येके, राजानौ पुण्यकृतावित्यैतिहासिकाः।
तयोः काल ऊर्ध्वमर्धरात्रात्, प्रकाशीभावस्यानु,
विष्टम्भमनु, तमोभागो हि मध्यमः, ज्योतिर्भाग
आदित्यः। (निरुक्त १२।१।१)

'अब द्युलोकके देवताओंका वर्णन करते हैं। इन द्युलोक-
। देवताओंमें अश्विनौ प्रथम आनेवाले देव हैं। इनको
श्विनौ इसलिये कहा जाता है कि ये सबको व्यापते हैं।
इनमेंसे एक रससे, जलसे, व्यापता है और दूसरा प्रकाशसे
व्यापता है। और्णवाभ ऋषिका मत है कि अश्विदेवोंके पास
घोडे थे इसलिये उनको अश्विनौ कहा गया। कौन भला
अश्विनौ हैं? द्युलोक और भूलोक ऐसा कई कहते हैं, दिन
और रात्रि ऐसा कईयोंका मत है, सूर्य और चन्द्र ऐसा कई
मानते हैं, पुण्यकर्म करनेवाले ये दो राजा थे ऐसा ऐति-
हासिकोंका मत है। ऐसे अश्विनौके संबंधमें नाना मत हैं।
इनका समय मध्यरात्रिके उपरान्तका समय है। जब प्रकाश
खुलने लगता है और अन्धकार कम होने लगता है, तब
अश्विदेवोंका समय है। अन्धकार मेघादिके कारण होता है,
इसलिये यह मध्यस्थानीय है और प्रकाश तो सूर्यसेही
होता है, इसलिये वह द्युस्थानीय है। इस तरह अश्विनौ
देवतामें प्रकाश और अन्धकारका समावेश होता है।'

अश्विदेवोंके विषयमें इतने मतभेद हैं, तथापि इनका
उदय मध्यरात्रिके पश्चात् है यह निश्चित है। ये दो तारकाएं
हैं ऐसाभी अनेकवार कहा है। इनके वर्णनमें कविने जो
दिव्य ज्ञान देखा, उसका विचार अब करना है–

१ पुरु-भुजौ= विशाल बाहुवाले। बाहु हृष्टपुष्ट और
सुदृढ करने चाहिये।

२ शुभस्-पती= शुभ कर्मोंकी सुरक्षा करनेवाले। वीर
अपने बाहुबलसे जनताके शुभ कर्मोंकी रक्षा करें और सर्वत्र
शुभ कर्म होने योग्य परिस्थिति निर्माण करें।

३ द्रवत्-पाणी= हाथोंसे अति शीघ्रतासे कार्य करनेवाले।
हाथोंसे, अंगुलियोंसे जो कार्य करना हो वह अति शीघ्र,
अति चपलताके साथ किया जावे।

४ पुरु-दंससा= अनेक बडे बडे कार्य करनेवाले। अनेक
बडे कार्य करनेवाले मनुष्य बने।

५ नरा= नेता। नेता बने।

६ दस्रा= शत्रुका नाश करनेवाले।

७ नासत्या = सत्यका पालन करें।

८ रुद्र-वर्तनी = भयानक मार्गसे जानेवाले। न डरते
हुए कठिन मार्गसे भी आगे बढें।

९ धिष्ण्या = बुद्धिके कार्य करनेवाले।

१० अश्विना = घोडोंको पास रखनेवाले, सर्वत्र व्यापने-
वाले, वेगवान्।

इन पदोंके विचारसे अश्विदेव किनगुणोंसे युक्त हैं, इसका

करें, बहुत धन प्राप्त करें, बहुत अन्न प्राप्त करें और उस धन तथा अन्नके साथ हमारे पास आजायँ, हमारी सुरक्षा करें और वह धन और अन्न हमें बांट देवें। अन्य सूक्तोंके वर्णनका विचार साथसाथ करनेसे इस सूक्तसे यह भाव प्रकट होता है। यह क्षत्रियोंका कर्तव्यही है।

इन मंत्रोंमें जो अन्य वर्णन है वह यही है कि ये इन्द्र और वायु (सेनापति और सैनिक) यहां अन्नके साथ आजायँ और उनके लिये तैयार किया हुआ सोमरस पीवें। इससे यह बात स्पष्ट होती है कि विजयी सैनिक विजय प्राप्त करके जब आते हैं, तब उनका सत्कार करनेके लिये स्थान स्थानपर सोमरस तैयार करके रखे रहें। वे आवें और उन रसोंका सेवन करें।

विजयी वीरोंका सत्कार इस तरह होता रहे, यह इसका आशय है।

(३-३) मित्रावरुणौ

मधुच्छन्दा ऋषिके दर्शनमें द्वितीय सूक्तका तीसरा त्रिक मित्र और वरुण देवताका है। मित्र और वरुण (सूर्य और चन्द्र) ये दो राजा हैं, इनके राज्यमें सभाके द्वारा राज्य चलाया जाता है। प्रजाजनही अपने लिये जैसा चाहिये वैसा राज्य चलाते हैं, अतः ऐसे दो राजाओंका आपसमें युद्ध नहीं होता। वे परस्पर मित्रताके साथ रहते हैं।

'मित्र'का अर्थ मित्रभावसे वर्ताव करनेवाला, (मि+त्र) हित करके रक्षा करनेवाला है,। 'वरुण'का अर्थ श्रेष्ठ, वरिष्ठ है। ये इनके स्वाभाविक गुण हैं। ऐसे दो राजा आपसमें लडते नहीं, परंतु परस्पर सहायक होकर एक-दूसरेका भला करते रहते हैं। सब राजा लोग ऐसे बनें और परस्पर न लडते हुए मित्रभावसे परस्पर सहायक बनें, यही वेदका संदेश इन मन्त्रोंद्वारा प्रकट हुआ है।

(पूतदक्षं मित्रं) पवित्रताका बल मित्रके पास है और (रिशादसं वरुणं) शत्रुका पूर्णताके साथ नाश करनेकी शक्ति वरुणके पास है। (रिश-अदस्) शत्रुको खा जानेका बल वरुणका है। ये बल राजाके पास रहने चाहिये। (रिश) जो शत्रु क्रमशः शनैः शनैः नष्ट करता है, उसका म 'रिश' है। जैसा जलके स्पर्शसे लोहेका नाश होना । इस तरह जो शत्रु शनैः शनैः नाश करता है, वह 'रिश' इलाता है।

२. पूतदक्षः मित्रावरुणयोः पूतदक्षौ पवित्रताका बल और शत्रुनाशका सामर्थ्य ये दो स्नेहमयी वृत्तिको बढाती हैं और कर्मशक्तिको करती है। अर्थात् अपने अन्दर सामर्थ्यको बढाना परंतु उसका उपयोग पवित्रताके साथ करना चाहिये उस पवित्र बलका उपयोग शत्रुका नाश करने करना चाहिये। ऐसा किया जाय, तो बडे बडे कर्म सुसंपन्न हो सकते हैं।

३. ऋतावृधौ ऋतस्पृशौ ऋतेन सुऋतं कृतं सत्यताको बढानेवाले, सत्यताके साथ रहनेवाले मार्गसेही बडे बडे कर्मोंको सुसंपन्न करते हैं। ऋत का अर्थ 'न्याय, उचित, शुद्ध, ठीक, योग्य, सत्य' यद्यपि यहां ऋतका अर्थ सत्य किया जाता है, तथापि और सत्यमें थोडा अन्तर है। जो सत्य है, जो जैसा है वैसा कहना सत्य है, परंतु जो योग्य है वह ऋत कहलाता है। जो सत्य है, न्याय्य, शुद्ध, उचित, योग्य सरल और करने योग्य है, वह ऋत है। सत्य हो, या नहीं, यह देखना चाहिये और ऋतकारी करना चाहिये।

ये मित्र और वरुण ऋतका पालन करनेवाले हैं ऋतके साथ रहते हैं, इसलिये वे अपने शुद्ध पवित्र कार्य सुसंपन्न करते हैं। जहां तेढापन बिलकुल नहीं जहां कुटिलता नहीं है, ऐसा सरल शुद्ध और पवित्र इनका है। दूसरोंको धोखा देना या फंसाना इनके बाहर है। इसी तरह सरल मार्गसे ये अपने सब कार्य करते रहते हैं।

३. कवी तुविजाता उरुक्षया अपसं दक्षं आ ये ज्ञानी विशेष सामर्थ्यसे युक्त हैं, विशाल स्थानमें और शुभ कर्मोंको सुसंपन्न करनेका सामर्थ्य धारण करनेवाले राजा लोग (कवि) ज्ञानी हों, सुविचारी हों, दूरदर्शी (तुवि-जाता) बलके लिये प्रसिद्ध अर्थात् सामर्थ्यवान् (उरु-क्षया) बडे बडे विशाल मंदिरोंमें रहें तथा महान् कर्मोंको सुसंपन्न करनेका सामर्थ्य अपने में और बढावें।

इन तीन मन्त्रोंमें कहा है कि, राजा लोग आपस

बर्ताव करें, मित्रतासे रहें, सरल और निष्कपट अपना कार्य करें, अपना बल बढावें और बडे बडे के हितके कार्य करते जांय। इन मंत्रोंका प्रत्येक पद महत्वपूर्ण संदेश देता है। पाठक प्रत्येक पदका विचार योग्य मननपूर्वक मन्त्रका संदेश प्राप्त करें।

मित्र'का अर्थ सूर्य है और 'वरुण का अर्थ चन्द्र है। का अर्थ जल है। इनमें कविने दिव्य दृष्टिसे राजधर्म दिया है जो ऊपरके स्पष्टीकरणमें दर्शाया है।

(३-१) अश्विनौ

गुच्छन्दा ऋषिके दर्शनमें तृतीय सूक्तका प्रथम त्रिक ी देवताका है। अश्विनौ देवता वेदमें औषधि-प्रयोग-आरोग्य देनेवाली कही है। अश्विनौ देवतामें दो देव र वे साथसाथ रहते हैं, कभी पृथक् नहीं रहते। तारकाएं हैं जिनको अश्विनौ बोलते हैं और जो मध्य-के पश्चात् उदय होते हैं। ये अश्विनौ हैं ऐसा कहा जाता मध्यरात्रिके उपरान्त इनका उदय होता है, ऐसा वर्णन है। दो बैल अश्विनौ हैं ऐसा कई मानते हैं, औषधि प्रयोग करनेवाला और दूसरा शस्त्रकर्म करने-ले हैं। ये दोनों मिलकर चिकित्साका कार्य करते हैं। राजा हैं ऐसाभी कईयोंका मत है। परंतु दो तारकाएं यह मत विशेष प्राह्य है। ये दोनों तारकाएं साथसाथ ती हैं, साथसाथ उदयको प्राप्त होती हैं, मध्यरात्रिके बाद उदय होती हैं। अतः इनका नाम अश्विनौ होना योग्य है। इनके विषयमें निरुक्तकार ऐसा लिखते हैं—

अथातो दुरधाना देवताः। तासामश्विनौ प्रथमागामिनौ भवतः। अश्विनौ यद् व्यश्नुवाते सर्वं, रसेनान्यो, ज्योतिषान्यः। अहोरात्राभ्यां इत्यौर्णवाभः। तद् यावश्विनौ ? द्यावापृथिव्यादित्येके, अहोरात्रादित्येके, सूर्याचन्द्रमसावित्येके, राजानौ पुण्यकृतावित्यैतिहासिकाः। तयोः काल ऊर्ध्वमर्धरात्रात्, प्रकाशीभावस्यात्, विप्रथमत्, तमोभासो हि मध्यमाः, ज्योतिर्भाजो हि सादित्याः। निरुक्त १२ । १ ।

'इन दुरोंके देवताओंका वर्णन करते हैं। इन दुरोंके देवताओंमें अश्विनौ प्रथम आनेवाले हैं। इनके लिये [illegible] इसलिये कहा गया है कि ये सर्वत्र व्याप्त हैं। इनमेंसे एक रससे, जलसे, व्यापता है और दूसरा प्रकाशसे व्यापता है। और्णवाभ ऋषिका मत है कि अश्विदेवोंके पास घोडे थे इसलिये उनको अश्विनौ कहा गया। कौन भला अश्विनौ हैं? द्युलोक और भूलोक ऐसा कई कहते हैं, दिन और रात्रि ऐसा कईयोंका मत है, सूर्य और चन्द्र ऐसा कई मानते हैं, पुण्यकर्म करनेवाले ये दो राजा थे ऐसा ऐतिहासिकोंका मत है। ऐसे अश्विनौके संबंधमें नाना मत हैं। इनका समय मध्यरात्रिके उपरान्तका समय है। जब प्रकाश खुलने लगता है और अन्धकार कम होने लगता है, तब अश्विदेवोंका समय है। अन्धकार मेघादिके कारण होता है, इसलिये यह मध्यस्थानीय है और प्रकाश तो सूर्यसेही होता है, इसलिये वह द्युस्थानीय है। इस तरह अश्विनौ देवतामें प्रकाश और अन्धकारका समावेश होता है।'

अश्विदेवोंके विषयमें इतने मतभेद हैं, तथापि इनका उदय मध्यरात्रिके पश्चात् है यह निश्चित है। ये दो तारकाएं हैं ऐसाभी अनेकवार कहा है। इनके वर्णनमें कविने जो दिव्य ज्ञान देखा, उसका विचार अब करना है—

१ पुरु-भुजौ= विशाल बाहुवाले। बाहु स्वपुष्ट और सुदृढ करने चाहिये।

२ शुभस्-पती= शुभ कर्मोंकी सुरक्षा करने वाले। और अपने बाहुबलसे उत्तमोत्तम शुभ कर्मोंकी रक्षा करें और सर्वत्र शुभ कर्म होने योग्य परिस्थिति निर्माण करे।

३ दूरम्-पार्ता= दूरदेशमें अपने [illegible] कार्य करने वाले। दूरदेशमें, अंतरिक्षमें जो कार्य करना हो उस अपने ओज, अपने बलसहित साथ लिया जाये।

४ पुरु-दंससा= अनेक बडे बडे कार्य करनेवाले। अनेक बडे कार्य करनेवाले बनना चाहिये।

५ नरा= नेता। नेता बने।

६ धिष्ण्या= बुद्धिमान लोग करनेवाले।

७ सनत्या= सनातन काल करने।

८ दस्रा= [illegible] दूर करनेवाले। [illegible] दूर करनेवाले भी बनने चाहिये।

९ हिरण्यया= सुवर्णके कार्य करनेवाले।

१० [illegible] = [illegible]

इस प्रकार [illegible]

ज्ञान होता है और ये गुण अपने अन्दर बढ़ाने चाहिये, इसकाभी ज्ञान उपासकको होता है। तथा—

११ यज्ञरीः इषः चनस्यतम् = यज्ञके योग्य अन्नका सेवन करो। पवित्र अन्नका भोजन करो।

१२ शचीरया धिया गिरः चनतम् = शक्तिशाली तेजस्विनी एकाग्र बुद्धिसे दूसरोंका भाषण सुनो।

१३ युवाकवः सुकृत्वभिः सुताः आ यातम् = दूधके साथ मिलाये, तिनके निकाले अर्थात् अच्छी तरह छाने हुए, इन सोमरसोंका सेवन करनेके लिये आओ।

यहां पवित्र अन्नका सेवन करने, एकाग्र मनके साथ भाषण सुनने और रसपान करनेका वर्णन है। इन सब पदोंका और वचनोंका विचार तथा मनन पाठक करें और इनसे मिलनेवाला वेदका संदेश अपना लें।

(३-२) इन्द्र

मधुच्छन्दा ऋषिके दर्शनमें तृतीय सूक्तका दूसरा त्रिक इन्द्र देवताका है। इन्द्रके विषयमें पहिले कहा गया है। (पाठक ऋ० सं० १ सू० २ त्रिक २ देखें) यहां इस सूक्तमें इन्द्रके वर्णनमें निम्न लिखित पद महत्त्वपूर्ण हैं।

१ इन्द्र = (इन्+द्र) शत्रुका नाश करनेवाला वीर,

२ चित्र-भानु = विशेष तेजस्वी,

३ हरि-वः = घोडोंकी पालना करनेवाला।

वीर तेजस्वी बने और अपने पास उत्तम घोडे रखे, यह इन पदोंका भाव है। तथा—

४ धिया इषितः = बुद्धियोंद्वारा प्रार्थित, जिसकी प्रशंसा मनःपूर्वक की जाती है।

५ विप्रजूतः = विद्वानोंद्वारा प्रशंसित,

ये पद इन्द्रका वर्णन करते हैं। उपासक अपने अन्दर इन पदोंके भावोंको डालनेका यत्न करें। तेजस्वी बनना, प्रशंसित होने योग्य श्रेष्ठ बनना, आदि बातें यहां है।

अन्य वर्णन सोमके हैं। (अप्वीभिः तना पूतासः सुताः) अंगुलियोंसे निचोडे, छाने गये ये सोमरस हैं। (नः सुते चनः दधिष्व) हमारे सोमयागमें अन्नका सेवन कर। इत्यादि अन्य वर्णन सहजहीसे समझमें आनेवाला है। अतः उसका विशेष स्पष्टीकरण करनेकी जरूरत नहीं है।

(३-३) विश्वे देवाः

मधुच्छन्दा ऋषिके दर्शनमें तृतीय सूक्तके अन्दर तृतीय त्रिक विश्वे देवा देवताका है। इसमें विश्वे देवा [illegible] जो महत्त्वपूर्ण मन्त्र है, उनका भी स्पष्टीकरण [illegible] (पृष्ठ ४२ पर) दिया है। पाठक इन [illegible] विशेष मनन करें और मानवजीवनका [illegible] (१) सबकी सुरक्षाके लिये यत्न करना, (२) [illegible] सेवा करना, (३) दान करना, (४) [illegible] कार्य करना, सत्यका त्याग करना, (५) [illegible] उत्तम कार्य करना, (६) आलस्यमें न रहना, (७) [illegible] लाभके कार्य करना, (८) द्वेष न करना, [illegible] करना, (९) मद्यपानसे दूर रहना, ये बातें [illegible] के हैं। ये मनुष्योंको अपनाना चाहिये।

(३-४) सरस्वती

इसी दर्शनमें चतुर्थ त्रिक सरस्वती देवताका है [illegible] जिसकी प्रशंसा है। इसका स्पष्टीकरण पूर्वोक्त [illegible] (पृष्ठ १२-१३ पर) पाठक देख सकते हैं। यहां [illegible] ऋषिके मन्त्रोंका प्रथमानुवाक समाप्त होता है।

द्वितीय और तृतीय अनुवाक

मधुच्छन्दा ऋषिके दर्शनके द्वितीय और तृतीय [illegible] में मिलकर ८० मंत्र हैं, इनकी इन्द्र देवता मुख्य [illegible] सूक्त ६।१-१० में मरुत् देवता अधिक है। [illegible] सब पदोंका स्पष्टीकरण प्रत्येक सूक्तके अर्थके साथ [illegible] है। अतः यहां उनके संदेशोंके विषयमें अधिक [illegible] आवश्यकता नहीं है।

सोम देवता

मधुच्छन्दा ऋषिके सोमदेवताके दस मंत्र नव [illegible] प्रथम सूक्तसे लिये हैं। ये यहां इसलिये लाये [illegible] च्छन्दा ऋषिका संपूर्ण दर्शन पाठकोंके सामने आ

ये सब मंत्र १२० हैं। इतनाही मधुच्छन्दा [illegible] तत्त्वदर्शन है। इन मंत्रोंके मननसे पाठक जा [illegible] कि विश्वामित्र-पुत्र मधुच्छन्दा ऋषिने किस [illegible] दर्शन करके प्रचार किया था।

शतर्ची अर्थात् सौ मंत्रवाले ऋषियोंमें [illegible] ऋषिकी गणना है, क्योंकि इसके ११२ मंत्र या [illegible] इसके पुत्रके-जेता ऋषिके-आठ मंत्र हैं। स [illegible] १२० मंत्र होते हैं।

यहां मधुच्छन्दा ऋषिका दर्शन समा

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(२)

[काण्वदर्शनोंमें प्रथम विभाग]

मेधातिथि ऋषिका दर्शन

(मेध्यातिथिके मंत्रोंके समेत)

(चतुर्थ और पञ्चम अनुवाक)

लेखक

भट्टाचार्य पण्डित श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,

स्वाध्याय-मण्डल, औंध (जि० सातारा)

संवत् २००२

मुद्रक और प्रकाशक- वसंत श्रीपाद सातवळेकर, B. A.
भारत-मुद्रणालय, औंध (जि० सातारा)

१९	(काण्वो) मेधातिथिः		अग्निमन्तम्	
२०	,,	,,	ऋभवः	
२१	,,	,,	इन्द्राग्नी	६
२२	,,	,,	१-४ अश्विनौ, ५-८ सविता, ९-१० अग्निः, ११ देवाः, १२ इन्द्राग्नीरक्षणः स्मात्रः, १३-१४ द्यावा पृथिवी, १५ पृथिवी, १६ विष्णुर्वा, १७-२१ विष्णुः	२१
२३	,,	,,	१ वायुः, २-३ इन्द्रवायू, ४-६ मित्रावरुणौ, ७-९ इन्द्रामरुत्वान्, १०-१२ विश्वे देवाः, १३-१५ पूषा, १६-२३ आपः, २४ अग्निः	२४
				७७

अष्टम मंडल

(प्रथमानुवाकान्तर्गत)

१	१—२ प्रगाथः (घौरः काण्वः)	इन्द्रः	
	३-२९ मेधातिथिः, मेध्यातिथिः (काण्वौ)	३०-३४ आसंगः	
	३०-३३ (द्यायोगी) आसंगः		
	३४ शश्वती (आंगिरसी)		३४
२	१-४० मेधातिथिः (काण्वः) प्रियमेधः (आंगिरसः)	इन्द्रः	
	४१-४२ मेधातिथिः (काण्वः)	४१-४२ विभिन्दुः	४२
३	मेध्यातिथिः (काण्वः)	इन्द्रः	
		२१-२४ पाकस्थामा (कुरुयानपुत्रः)	२४
	(पञ्चमानुवाकान्तर्गत)		
	३२ मेधातिथिः (काण्वः)	इन्द्रः	३०
	३३ मेध्यातिथिः ,,	,,	१९
			१४९

नवम मंडल

(प्रथमानुवाकान्तर्गत)

१	मेधातिथिः (काण्वः)		
	(द्वितीयानुवाकान्तर्गत)		
२	मेधातिथिः (काण्वः)		,,
३	,,	,,	,,
४	,,	,,	,,

कुल मंत्र

ऋषिवार मंत्रसंख्या

१. मेधातिथि (काण्व)	
२. मेध्यातिथि ,,	
३. मेधातिथि और मेध्यातिथि (मिलकर)	
४. मेधातिथि और मेध्यातिथि (मिलकर)	
५. आसंग (द्यायोगपुत्र)	
६. प्रगाथ (घौरपुत्र, काण्वदृषक)	
७. शश्वती (आंगिरसी)	

देवतावार मंत्रसंख्या

१. इन्द्रः	१४९
२. सोमः	२८
३. अग्निः	१७
४. विश्वे देवाः	१५
५. इन्द्रावरुणौ	९
६. अग्निर्मरुतश्च	९
७. ऋभवः	८
८. आपः	८
९. विष्णुः	६
१०. इन्द्राग्नी	६
११. आसंगः (राजाकी दानस्तुति)	५
१२. अश्विनौ ,, ,,	५
१३. पाकस्थामा ,, ,,	४
१४. विभिन्दुः ,, ,,	२
१५. सविता	४
१६. द्रविणोदाः	४

. मित्रावरुणौ	४
. ब्रह्मणस्पतिः	३
. सदसस्पतिः	३
. इन्द्रो मरुत्वान्	३
. पूषा	३
. द्यावापृथिवी	२
. इन्द्रवायू	२
. सवृधा	२
. इन्द्रबृहस्पतिमित्रावरुणभगाः	१
. ,, ,, दक्षिणा च	१
. सदसस्पतिर्मरुत्वांश्च वा	१
. देव्यः	१
. इन्द्राग्नी वरुणाबृहस्पतयश्च	१
. पृथिवी	१
. वायुः	१
. मरुतः	१
. इन्द्रः सोमेद्धोऽग्निः	१
. तनूनपात्	१
. नराशंसः	१
. इडः	१
. बर्हिः	१
. देवीर्द्वारः	१
. उषासानक्ता	१
. देव्यौ होतारौ प्रचेतसौ	१
. तिस्रो देवीः सरस्वतीळाभारत्यः	१
. वनस्पतिः	१
. स्वाहाकृतयः	१
कुल मंत्रसंख्या	३२०

इन ३२० मंत्रोंमें ४३ देवताओंका विचार हुआ है। कुल ऋषियोंके मंत्र इसमें हैं। इन्द्र-इन्द्रमेत-इन्द्रापूषाके ७ जोड़ दिये जायँ, तो मेधातिथि और मेधातिथि इन दो ऋषियोंके मंत्र इसमें १९३ हैं और इसमें भी अकेले मेधातिथि-ऋषि १०१ हैं। इस लिये यहाँ मेधातिथि मुख्य ऋषि हैं।

काण्व गोत्रके ऋषि

इस सूक्तके मेधातिथि और मेधातिथि-ऋषि लिये हैं।

इसका कारण ये काण्वगोत्रके हैं और साथ साथ आनेवाले हैं, तथा मं० ८।१ में एकही सूक्तके ये दोनों इकट्ठे दृष्टा हैं। ऋग्वेदमें काण्व ऋषि और काण्व गोत्रके ऋषि अनेक हैं, उनमें दो ऋषियोंकेही मंत्र यहां लिये हैं, शेष काण्व ऋषि और काण्व-गोत्रके ऋषि ये हैं—

कण्वऋषि

१	(घोरपुत्र)'कण्व' ऋषिके मंत्र- ऋ. १।३६-४३	१६	
	९।९४ मं.सं. ५		
			१०१

काण्व गोत्रके ऋषि

१	प्रस्कण्व (कण्वपुत्र)के मंत्र ऋ.१।४४-५०		८२	
		८।४६	१०	
		८।९५	५	९७
२	देवातिथिः ,,	ऋ. ८।४		२१
३	मेधातिथिः ,,	५		३२
४	वत्सः ,,	६	४८	
	,,	११	१०	५८
५	पुनर्वत्सः ,,	७		३६
६	सप्तवधूः ,,	८		२३
७	एकधनाः ,,	९		२१
८	प्रगाथः(घौरः) ,,	८।१।१-२	२	
		१०	६	
		४८	१५	
		६२	१२	३५
९	प्रगाथः काण्वपुत्र	८।६३	१०	
		९४	१२	
		९५	१०	३२
१०	पर्वतः ,,	८।६२	३३	
		९।६०।४	६	
		१०५	६	४५
११	नारदः ,,	८।६३	३३	
		९।६०-४	६	
		१०५	६	४५

१२ गोपूक्त और अश्वसूक्ति काण्वायनौ		८।१४-१५		२८
१३ इरिम्बिठिः कण्वपुत्रः		८।१६-१८		४९
१४ सोभरिः	,,	८।१९-२२	९९	
		१०३	१४	११३
१५ नीपातिथिः	,,	८।३४		१५
१६ नाभाकः	,,	८।३९-४२		३८
१७ त्रिशोकः	,,	८।४५		४२
१८ पुष्टिगुः	,,	८।५०		१०
१९ श्रुष्टिगुः	,,	५१		१०
२० आयुः	,,	५२		१०
२१ मेध्यः	,,	८।५३	८	
		५७-५८	७	१५
२२ मातरिश्वा	,,	८।५४		८
२३ कृशः	,,	५५		५
२४ पृषध्रः	,,	५६		५
२५ सुपर्णः	,,	८।५९		७
२६ कुरुसुतिः	,,	८।७६-७८		३३
२७ कुसीदी	,,	८।८१-८३		२७

इतने २७ ऋषि काण्व गोत्रके शेष रहे हैं। यहां इस पुस्तक में मेधातिथि और मेध्यातिथि ये दो ऋषि लिये गये हैं। अतः शेष २७ रहे हैं। इनके मंत्र ९१२ ऋग्वेदमें हैं। अतः इनका प्रकाशन क्रमसे चार तीन विभागोंमें किया जायगा। इस विभागमें ३२० मंत्र मेधातिथि- मेध्यातिथिके लिये हैं। इसी तरह और तीन विभागोंमें काण्वोंके सब मंत्र आ जायेंगे।

सोमप्रकरण

इन ३२० मंत्रोंमें सोमदेवताके २८ मंत्र हैं, परंतु करीब २०० अन्य मंत्रोंमें सोमरस-पानका विषय साक्षात् या परंपरासे आया है। ३२० मंत्रोंमें बहुत करके १०० मंत्रोंके करीब ऐसे मंत्र हैं कि, जिनमें सोमका कुछ भी विषय नहीं है, शेष २२० के करीब मंत्र ऐसे हैं कि, जिनमें सोमरसका कुछ न कुछ वर्णन है। अष्टम तथा नवम मण्डलके जो मंत्र इस पुस्तकमें आये हैं, उनमें तो सबमें ही सोमका विषय है। अर्थात् मेधातिथि और मेध्यातिथिके ३२० मंत्रोंमें करीब करीब २२० मंत्रोंमें सोमका कुछ न कुछ वर्णन है. शेष करीब १०० मंत्र सोमके वर्णनके बिना हैं। इससे ऐसा हम कह सकते हैं कि [illegible] सोमके वर्णनके लिये गाये गये हैं। इतना [illegible] वेदोंमें है। इसी तरह वेदोंमें सर्वत्र है वा नहीं, [illegible] बात है।

सोमके संबंधमें सोमके मंत्रोंका मनन करनेके [illegible] किया है और इन ३२० मंत्रोंके मननसे यह स्पष्ट [illegible] सोमरस नशा उत्पन्न करनेवाला नहीं है। इसका [illegible] मंत्रोंमें अधिक होनेवाला है। अतः पाठकोंसे इतना [illegible] है कि, वे इस विचारको यहीं समाप्त न समझें, [illegible] ऋषियोंके मंत्रोंके साथ इस विचारकी तुलना करें [illegible] अन्तमें अन्तिम निर्णयतक पहुंच जायँ।

अर्थ करनेकी रीति

यहां हमने जो अर्थ करनेकी पद्धति उपयोगमें [illegible] सरलसे सरल है। प्रथम मंत्र देकर उनका अन्व [illegible] जो साधारण संस्कृत जानते हैं, वे अन्वयसे ही [illegible] निकाल सकते हैं। जो संस्कृत ठीक नहीं जानते, [illegible] नीचे सरल शब्दार्थ अन्वयके अनुसार ही दिय [illegible] मंत्रमें नहीं है और पूर्वापर संबंधसे अध्याहृत लि [illegible] कंसमें ( ) दिये हैं। पाठक गोल कंसके अन्दर [illegible] शेष शब्दोंके साथ पढ़ेंगे, तो मंत्रका सरल अर्थ [illegible] जायँगे।

हमने यहां मंत्रके पदोंका खुला अर्थ, स्पष्ट अर्थ, [illegible] ही दिया है। किसी तरह अलंकार, श्लेष या यौगिक [illegible] का यत्न नहीं किया। क्योंकि जिन्होंने ऐसा अर्थ करनेका [illegible] किया है, उनके अर्थ सूक्तके अन्दर बैठनेवाले नहीं [illegible] प्रत्येक मंत्र फुटकर बताना योग्य नहीं। इसलिये हमने [illegible] मंत्र इकट्ठे लिये हैं। जहां सूक्तके अन्दर अनेक देवताएं [illegible] हैं, वहां एक एक देवताके सब मंत्र इकट्ठे लिये हैं और [illegible] देवताके मंत्रोंका विचार इकट्ठा किया है। इस तरह [illegible] अर्थ समझनेमें आसानी होती है और खींचातानीकी [illegible] नहीं होती। इसलिये यही रीति हमने इस भाष्यमें [illegible] लायी है।

सरल संस्कृत जाननेवाला सरल भाषासे जो अर्थ [illegible] सकता है, वही व्यक्त अर्थ है। गूढार्थ पीछेसे जिसका [illegible] स्वयं निकाल सकता है। जब सरल अर्थका अच्छी तरह

तब विचार और मनन करनेवाले पाठक मन्त्रोंके अन्दर
ा अनुभव कर सकते हैं। वह अवस्था पीछेसे बड़े
; पश्चात् और वैदिक विचार-धाराका अधिक अभ्यास
पश्चात् आनेवाली है।

नता इस समय सरल अर्थ जाननेकी अवस्थामें है।
ये यह बिलकुल सरल अर्थ जनताके सामने रखा है।
तरह जगत्के अन्दर सर्वसाधारण मानव पृथ्वी, जल,
, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र, तारका, पशु, पक्षी, वृक्ष,
ति आदिको देखता है और जैसा स्थूल दृष्टिसे देखता है,
। स्थूल अनुभवसे इन पदार्थोंको समझ भी लेता है, उसी
यह सरल स्थूल अर्थ है। जब मानव अधिक मननशील
है, जब वह अधिक विज्ञान प्राप्त करता है, तब पृथ्वीसे
नाप्रकारके सूक्ष्म पदार्थ विज्ञानकी सहायतासे पृथक्करण
खोज कर लेता है और उनका उपयोग करके अनंत सुख-
न निर्माण करता है, वैसाही वह मनुष्य अधिक विचार
इन्हीं मंत्रोंके अन्दर अधिक गुप्त तत्त्वोंका ज्ञान देख
ा। जैसा योगी श्री अरविंद घोषजीने इन्हीं मंत्रोंमें सूक्ष्म-
ज्ञान देखा है। यह अवस्था आगे सब पाठकोंको कभी न
। प्राप्त होगी।

अनुभवके बिना वैसा लेख लिखना योग्य नहीं। अथवा
वेदका ऐसा अर्थ घड़ देंगे, ऐसी पहिलेसेही प्रतिज्ञा करके
लिखना भी ठीक नहीं है। इसलिये जिस सरल रीतिमें
द्धि होनेकी संभावना नहीं है अथवा कम है, वैसी सरल
ी हमने यहां उपयोगमें लायी है। इतनी दक्षता लेनेपर
संस्कृतके एक एक शब्दके अनेक अर्थ होनेके कारण
भी एक पदका अर्थ एक विचारक एक मानेगा और उसी
का अर्थ दूसरा विचारक वहां दूसराही मानेगा। इस तरह
भेद होनेकी संभावना रहेगीही। हरएक भाष्यके विषयमें
यह बात समानही है। इसलिये यह दोष किसी एकका माना
ा जायगा। क्योंकि यह दोष सभी भाष्योंपर आना
-नव है।

जैसा **'वाजः'** पदके अर्थ- 'पक्ष (पक्षीके), पंख, पर
पंखके), बाणके पीछे लगाये पर, युद्ध, लड़ाई, शब्द, (बर्तन)
ा, घृत, पके चावलोंका पिंड, अन्न, जल, प्रार्थनामंत्र, यज्ञ,
ज, शक्ति, सामर्थ्य, धन, गति, वेग, मास (महीना)' कोशमें
तने हैं। वेदमंत्रोंमें 'युद्ध, अन्न, बल' ये अर्थ मुख्यतः
आते हैं। इनमें यहां इस फलाने मंत्रमें यही एक अर्थ योग्य
है और दूसरा अयोग्य है, ऐसा निश्चयपूर्वक कहना प्रायः
अशक्य है। ऐसा अनेक पदोंके विषयमें हो सकता है।
इसलिये पदके अर्थके विषयमें मतभेद होगा। परंतु यह दोष
अनिवार्य है।

कदाचित् २०-२५ वर्ष विचारपूर्वक वेदाध्ययन होनेके
पश्चात् संभव है कि इस मंत्रमें इस पदका यही अर्थ है,
ऐसा कहनेमें कोई समर्थ हो, तो उस समयकी बात और है।
इसलिये यह मतभेद इस समय रहेंगे। तथापि हमने यावच्छक्य
यत्न करके मतभेदके स्थान सरल अर्थ देकर दूर किये हैं।

मन्त्रोंसे बोध

'यद्देवा अकुर्वंस्तत्करवाणि' (जो देवोंने किया
वैसा मैं करूंगा) देवताओंका आचरण मानवोंके लिये मार्ग-
दर्शक हो सकता है। यह नियम वैदिक ऋषि अनुभव करते
थे। यही नियम हमने वेदमें देखा और वही अनुभव इस भाष्य-
द्वारा पाठकोंके सामने, जैसा समझा, वैसा रखनेका यत्न इस
सुबोध भाष्य द्वारा किया है।

मन्त्रका जो सरल अर्थ है, उसमें भी जो मंत्रभाग विशेष
ध्यानमें रखने योग्य हैं, वे सूक्तार्थके बाद पृथक् करके दिये
ही हैं। वे स्वतंत्र रूपसे मानव-धर्मका बोध करतेही हैं। ये
मंत्रभाग आगे अनेक सूक्तोंके अर्थके पश्चात् स्थान स्थानपर
पाठक देख सकेंगे। ये मंत्र-भाग कण्ठस्थ करने योग्य हैं।
स्मृतिशास्त्रके नियमोंके आधारही ये मंत्रभाग हैं। पाठक
इनकी ओर इस दृष्टिसे देखें।

इसके अतिरिक्त हमने महत्त्वका मानवधर्मका भाग सूक्तोंमें
देखा है, वह **'देवताका आदर्श स्वरूप'** है। अग्नि,
इन्द्र आदि देवताओंमें ऋषि लोग अपनी अतींद्रिय दृष्टिसे
कुछ आदर्श देखते हैं, वह आदर्श वे देवताके वर्णनमें रखते
हैं। उच्चतर मानव बननेका ही वह आदर्श है। इस दृष्टिसे
हमने ये सूक्त देखें और इनमें जो **'आदर्श उच्चतम मानव'**
ऋषियोंने हमारे सम्मुख रखा, वह इस भाष्यके द्वारा जनताके
सामने हमने रखा है।

ऋषिके सामने अग्नि केवल आग नहीं है, इन्द्र केवल
विद्युत्प्रकाश नहीं है, सूर्य केवल प्रकाश-गोलही नहीं है।

एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति ।
अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥
(ऋ० १।१६४।४६)

' एकही सत् है, वही अग्नि, वायु, इन्द्र, सूर्य आदि रूपसे हमारे सामने है । ' यह ऋषियोंकी आत्मानुभवकी दृष्टि है । जो अग्नि पदसे केवल आग समझेंगे, वे यही अग्नि वाक्-पति कैसा है, वाणीरूपसे मुखमें कैसा रहता है, वह होता, पुरोहित और ऋत्विज् आदि कैसा है, वही वेदप्रकाशक कैसा है इन बातोंको जान नहीं सकेंगे । इसलिये वैदिक अग्नि केवल आग नहीं है । वह ऋषिके सम्मुख अतीन्द्रिय दृष्टिसे आयी एक आध्यात्मिक दैवी वस्तु है । पाठक देवताओंको ऐसा ही समझनेका यत्न करें । यह एकदम नहीं हो सकेगा, परंतु इसका अभ्यास करना पाठकोंके लिये आवश्यक है ।

ऋषियोंने इन देवताओंमें मानवका उच्च आदर्श देखा है और वही वेदमें हमें इस समय मिल रहा है । देवता आदर्श गुणोंका पुञ्ज है, इसलिये देवता मानवके लिये आदर्श हो सकता है । अतः वेदमंत्रका अर्थ विशेष न होते हुए भी उन मंत्रोंमें जो देवताका आदर्श स्वरूप भक्तके सामने ऋषिने पेश किया है, उसमें मानवको ' उच्चतम मानवका आदर्श ' दीख सकता है । मनुष्य यह देवताका आदर्श अपने सामने रखे और वह अपनेमें डालनेका यत्न करे । यही अनुष्ठान ' अतिमानव ' अथवा ' पुरुषोत्तम ' किंवा नरका नारायण बननेके लिये वेदद्वारा सूचित किया गया है ।

देवताके विशेषण

इसलिये मंत्रोंमें देवताके जो विशेषण आते हैं, उनको साथ साथ इकट्ठे ध्यानमें धरनेसे मनुष्यके सामने एक ' **पुरुष** ' खडा होता है, वही मनुष्योंका उच्चतम वैदिक है, मनुष्योंका वही ध्येय है, प्राप्तव्य है और साध्य भी है। लिये मंत्रके संपूर्ण अर्थकी अपेक्षा ' **देवताके** ' **जो ' आदर्श पुरुष बनता है, '** वही विशेष और वही मानवके सामने वेदका दिव्य मानवका इसीलिये हमने प्रत्येक सूक्तके अर्थके पश्चात् उसमें पणोंको इकट्ठा करके पाठकोंके सामने रखा है। सूक्तने मानवोंके सामने जो आदर्श रखा है, वह सामने खडा हो जायगा ।

'**अग्नि**' ज्ञान-दाता, वक्ता, धनदाता, होता, करनेवाला और आरोग्य-रक्षक है । यह ज्ञानी आदर्श पाठकोंके सामने है । ' **इन्द्र** ' शूर वीर, शत्रुका पराभव करनेवाला, कभी पराभूत न होनेवाला कभी घेरा नहीं जाता, परंतु शत्रुको घेर कर उनका है । यह क्षत्रियके लिये उत्तम आदर्श है । ' ये दो राजे सभामें बैठते, आपसमें लडाई नहीं करते, हित करते और अपना बल सत्यमार्गकी वृद्धि करनेमें करते हैं । ये आदर्श राजा हैं । इस तरह अन्यान्य विषयमें जानना योग्य है । ऐसा जाननेके लिये सब साधन इस सुबोध भाष्यमें स्पष्ट रूपसे दिये हैं । आह पाठक इस पद्धतिसे वैदिक दिव्य आदर्श अपने सामने उसको अपने जीवनमें डालेंगे और स्वयं उच्चतर मानव का यत्न करेंगे ।

औंध (जि. सातारा)
श्रावण शु. पूर्णिमा
सं. २००२

निवेदक
श्री० दा० सातवळेकर,
अध्यक्ष-स्वाध्याय-मंडल

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

[(२) काण्वदर्शनोंमें प्रथम विभाग]

(१) मेधातिथि ऋषिका दर्शन

चतुर्थ अनुवाक

(१) आदर्श दूत

(ऋ० १।१२) मेधातिथिः काण्वः । अग्निः, ६ प्रथमपादस्य [निर्मथ्याहवनीयौ] अग्नी । गायत्री ।

अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् १
अग्निमग्निं हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम् । हव्यवाहं पुरुप्रियम् २
अग्ने देवाँ इहा वह जज्ञानो वृक्तबर्हिषे । असि होता न ईड्यः ३
ताँ उशतो वि बोधय यदग्ने यासि दूत्यम् । देवैरा सत्सि बर्हिषि ४
घृताहवन दीदिवः प्रति ष्म रिषतो दह । अग्ने त्वं रक्षस्विनः ५
अग्निनाग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा । हव्यवाड् जुह्वास्यः ६
कविमग्निमुप स्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे । देवममीवरातनम् ७
यस्त्वामग्ने हविष्पतिर्दूतं देव सपर्यति । तस्य स्म प्राविता भव ८
यो अग्निं देववीतये हविष्मां आविवासति । तस्मै पावक मृळय ९
स नः पावक दीदिवोऽग्ने देवाँ इहा वह । उप यज्ञं हविश्च नः १०
स नः स्तवान आ भर गायत्रेण नवीयसा । रयिं वीरवतीमिषम् ११
अग्ने शुक्रेण शोचिषा विश्वाभिर्देवहूतिभिः । इमं स्तोमं जुषस्व नः १२

अन्वयः- होतारं, विश्ववेदसं, अस्य यज्ञस्य सुक्रतुं, दूतं त्वा वृणीमहे ।१। विश्पतिं, हव्यवाहं, पुरुप्रियं, अग्निं त्वा वयं हवन्त ।२। हे अग्ने ! (यं) जज्ञानः, वृक्तबर्हिषे यज्ञे देवान् वहसि ; (यं) नः ईड्यः होता (त्वं) असि ।३। अग्ने ! यद् दूत्यं यासि । उशतः तान् वि बोधय । बर्हिषि देवैः आ सत्सि ।४। हे घृताहवन दीदिवः अग्ने ! त्वं रक्षस्विनः प्रति ष्म रिषतः दह ।५। कविः, गृहपतिः, युवा, हव्यवाट्, जुह्वास्यः, अग्निः अग्निना सं इध्यते ।६। सत्यधर्माणं अध्वरे कविं, अग्निं देवं अमीवरातनं उप स्तुहि ।७। हे अग्ने देव ! यः हविष्मान् त्वां सपर्यति, तस्य प्राविता भव ।८। पावक ! यः हविष्मान् देववीतये अग्निं आविवासति, तस्मै मृळय ।९। हे दीदिवः पावक अग्ने ! सः (त्वं), नः देवान्

इह आ वह, नः हविः यज्ञं च उप (आवह) ॥१०॥ नवीनया गायत्रेण स्तवानः सः (त्वं) वीरवतीं रयिं इषं ॥११॥ हे अग्ने ! शुक्रेण शोचिषा, विश्वाभिः देवहूतिभिः, नः इमं स्तोमं जुषस्व ॥१२॥

अर्थ- देवोंको बुलानेवाले, सर्वज्ञ अथवा सब धनोंसे युक्त, इस यज्ञके उत्तम प्रकार संपन्न करनेवाले, अग्नि रूपमें हम स्वीकार करते हैं ॥१॥ प्रजाओंके पालक, अन्न पहुंचानेवाले, सबको प्रिय, ऐसे तेजस्वी अग्निकी हि (हम) करते हैं॥२॥ हे अग्ने ! (तू) प्रकट होते ही, आसन फैलानेवाले भक्तके पास, यहां, सब देवोंको ले आ।(३) सबके लिये देवोंको बुलानेवाला और प्रशंसनीय हो ॥३॥ हे अग्ने ! जब तू दूतकर्म करनेके लिये (देवोंके पास) है, (तब आनेकी) इच्छा करनेवाले उन (सब देवोंको) जगा दो । (उनको यहां ले आओ और) हम सब देवोंके साथ बैठो ॥४॥ हे घीकी आहुतियां लेनेवाले प्रदीप्त अग्ने ! तू (हमारा) नाश करनेवाले क्रूर प्रत्येकको जला दो ॥५॥ कवि, गृहरक्षक, तरुण, अन्न पहुंचानेवाले, ज्वालारूपी मुखसे युक्त अग्निको (दूसरे) द्वारा प्रदीप्त किया जाता है ॥६॥ सत्य धर्मके पालनकर्ता, रोगोंके नाशक, ज्ञानी अग्निदेवकी इस हिंसारहित प्रशंसा करो ॥७॥ हे अग्निदेव ! जो अन्नोंका पति, तुझ जैसे दूतकी सेवा करता है, उसका तू रक्षक बन ॥८॥ हे करनेवाले अग्ने ! जो हविरन्नवाला भक्त देवोंके संतोषके लिये, तुझ अग्निकी सेवा करता है, उसे सुख दे ॥९॥ हे पवित्रकर्ता अग्ने ! वह (तू) हमारे पास सब देवोंको यहां ले आ और हमारा अन्न और यज्ञ उनके समीप पहुंचा नवीन गायत्री छन्दके स्तोत्रसे प्रशंसित हुआ, वह (तू) वीरोंसे युक्त धन और अन्न हम सबके पास भर दे। हे अग्ने ! अपनी पवित्र दीप्तिसे और सब देवताओंके स्तोत्रोंसे युक्त होकर हमारे इस यज्ञका सेवन कर ॥१२॥

आदर्श राजदूत

यहां मेधातिथि ऋषिने अग्निके अन्दर आदर्श राजदूतका भाव देखा है। एक राज्यसे दूसरे राज्यमें जो जाता है और अपने राजाका संदेश वहांके कार्यकर्ताओंको पहुंचाता है और अपने राजाका कार्य जो करता है, वह उत्तम राजदूत कहलाता है । ऐसा राजदूत ' अग्नि ' है ।

अग्निर्देवानां दूत आसीत्
उशनाः काव्योऽसुराणाम् । (तै. सं. २।५।८।७)

' अग्नि देवोंका दूत था और उशना काव्य असुरोंका दूत था।' ऐसा तैत्तिरीय संहितामें कहा है। एक यज्ञका राज्य भूमिपर है और दूसरा देवोंका राज्य है। यह दूत अग्नि यहांसे देवोंके पास जाता, उनको बुलाता और यज्ञमें उनको लाता है, उनको यज्ञमें यथास्थान बिठलाता और हविर्भाग यथायोग्य रीतिसे पहुंचाता है। यह इसका दूत-कर्म है।

जैसा अग्नि यज्ञमें दूतकर्म करता है, वैसा राजदूत राज्य-शासनरूप यज्ञमें दूत कर्म करे। क्योंकि जैसा कर्म देव करते हैं वैसा मनुष्योंको करना चाहिये। इसलिये दूतके गुण जो इस सूक्तमें वर्णन किये हैं, उनका विचार करना चाहिये। देखिये—

राजदूतके गुण

१ अग्नि- वह तेजस्वी हो, निस्तेज फीका या उदास न हो। वह (अग्निः-अग्रणीः) अग्र भागतक अग्र करनेवाला हो, कार्यको अन्ततक पहुंचानेवाला हो, वह अथवा मुख्य हो । (अगति इति अग्निः) वह हो, हलचल करनेवाला हो । जिस कार्यके करनेके लिये जाना आवश्यक हो वहांतक वह जाये और उस संपूर्ण रूपसे सिद्ध करे, ऐसा दूत हो ।

२ होता- बुलानेवाला, पुकारनेवाला दूत हो, वह भाव उत्तम रीतिसे कहनेमें समर्थ हो ।

३ विश्व-वेदः- सब प्रकारके ज्ञानसे युक्त हो, भी उसके पास हो । ज्ञान और धनसे वह युक्त राष्ट्रमें जाकर ज्ञानसे उनपर प्रभाव डाले और प्रभाव डाले और अपना कार्य करे ।

४ यज्ञस्य सुक्रतुः- कार्यको उत्तम रीतिसे सिद्ध करनेवाला दूत हो । (यज्ञः- देवपूजा करण-दानात्मकः) वह दूत श्रेठोंका सत्कार ठन करे और सहायता करे तथा साधनोंसे अपना करे । (१)

५ विश्-पतिः- अपने प्रजाजनोंका पालन करने उसका यही ध्येय सदा रहे कि अपनी प्रजाका उत्त पालन हो ।

हव्यवाह्- अन्न पहुंचानेवाला हो। अन्न उसके पास जाय, अथवा जो पहुंचानेके लिये उसके पास दिया हो जिसको पहुंचाना हो वह ठीक उसको पहुंचा देवे।

७ पुरुप्रियः- वह सबको प्रिय हो। (२)

८ ईड्यः- प्रशंसाके योग्य कर्म करनेवाला हो। (३)

९ घृताहवन- घी खानेवाला।

१० दीदिवः- तेजस्वी।

११ रिपतः रक्षस्विनः दह- हिंसक शत्रुओंका नाश (५)

१२ कविः- ज्ञानी, विद्वान्, जो दूसरोंको न दीखनेवाला उसको भी वह देखे और ठीक तरह जानकारी प्राप्त करे। दूर-दर्शी हो।

१३ गृहपतिः- अपने घरकी उत्तम रक्षा करनेवाला हो। अपना घर, अपना देश, अपना राज्य इसकी रक्षा कैसी हो सकती है, इसका उत्तम ज्ञान उसको हो।

१४ युवा- राजदूत तरुण हो, अथवा तरुणके समान बल-वान् और ओजस्वी हो।

१५ जुरा-आस्यः- अग्नि ज्वालाके समान तेजस्वी भाषण करनेवाला हो। (६)

१६ सत्य-धर्मा- सत्य धर्मका पालन करनेवाला हो, वचन और आचरणमें सचाई रखनेवाला हो, इसमें वह सबका विश्वास संपादन करे।

१७ अमीवचातनः- दुष्टोंको दूर करनेवाला हो।

१८ प्रावित- जिसकी वह आशा करे उसकी सुरक्षा देनेकी शक्ति इसमें हो। (८)

१९ मृळय (मृळयिता)- सुख देनेवाला हो, जिसकी वह अपना कहे उसको सुखी करे।

२० पावकः- वह पवित्र हो, पवित्रता करे। (९)

२१ देवान् आ वह- अपने साथ दिव्य गुणोंको ले आवे, अपने साथ दिव्य विभूतियोंको लावे। (१०)

२२. वीरवतीं सदं इषं आभर- वीरोंसे युक्त रहने-वाला, धन और अन्न भरपूर ले आवे। जिससे स्वयं वीर हो वे ऐसा धन और अन्न अपने पास रखे। (११)

२३ सुम्न-सोचिः- सदा सुख देने अपने पास रखे। (१२)

२४ दिवोदध- वह अपने दूत अपने पास रखे, अपने विशेष रीतिसे जगावे। (४)

उत्तम राज-दूतके इतने उत्तम गुण यहां इस सूक्तमें वर्णन किये हैं। जिस राजाके पास ऐसे उत्तम दूत होंगे वह निःसंदेह विजयी होगा। पाठक राजधर्मकी दृष्टिसे इस सूक्तके इन पदोंका विचार करें।

रोग-निवारण

अग्निका रोग-निवारक गुण इस सूक्तमें बताया है जो आरोग्यकी दृष्टिसे देखने योग्य है—

१ अमीवचातनः— अपचित अन्नका 'आम' पेटमें बनता है, यही आम नाना रोगोंको उत्पन्न करता और बढाता है। इसलिये रोगोंका नाम वेदमें 'अमी-व' (अर्थात् 'अमीवान्' किंवा 'आमवान्') कहा है। अनेक रोग इस आमसे उत्पन्न होते हैं, इस बातको लोग जानें और अपने पेटमें आमका संग्रह न होने दें, पेट स्वच्छ रखें और रोगसे मुक्त हों। रोगकी उत्पत्ति बता कर इस तरह इस पदमें बडा महत्त्वपूर्ण ज्ञान यहां दिया है।

'अमीव' रोग है उनका 'चातन' समूल उच्चाटन करने-वाला 'अमी-व-चातन' है, रोगोंको दूर करनेवाला अग्नि है। यह रोगके मूलोंको दूर करता है। जाठराग्नि अच्छीतरह प्रदीप्त रहा तो पेटमें आमका संग्रह नहीं रहता और रोग दूर होते हैं। बाहर अग्नि जलने लगा तो उसमें वायुमें स्थित रोग-बीज जल जाते हैं और वायु शुद्ध होता है और इस रीतिसे नीरोगिता प्राप्त होती है। इसलिये कहा है—

ऋतुसंधिषु वै व्याधिर्जायते।
ऋतुसंधिषु यज्ञः क्रियते॥

(गोपथ. १।१०; पै. ५।६)

'ऋतुओं' संधिके समय रोग उत्पन्न होते हैं, इसलिये ऋतु-संधिमें यज्ञ किये जाते हैं।' यज्ञमें अग्नि प्रदीप्त होता है और रोग-बीजोंको जलाता है तथा यज्ञमें विविध औषधियोंका हवन किया जाता है जो भी रोग निवारण करता है। अग्नि रोग दूर करनेवाला होनेसेही इसमें यज्ञ किये जाते हैं, महर्षियों के ऐसे अनेक अनुभव हैं कि यज्ञोंसे हवन किये गये औषधि द्रव्यों द्वारा संक्रामक रोग महीनों तक फैलने नहीं पाते। यह बात आज भी अनेक लोग करके देखते हैं कि इस तरह हवनकी सामग्री तैयार रखने से घरमें रोग नहीं होते और वायु शुद्ध होता है। [५]

इन्द्र आ वह, नः हविः यज्ञं च उप (आवह) ॥१०॥ नवीयसा गायत्रेण स्तवानः सः (त्वं) वीरवती गमे इषं ॥११॥ हे अग्ने ! शुक्रेण शोचिषा, विश्वाभिः देवहूतिभिः, नः इमं स्तोमं जुषस्व ॥१२॥

अर्थ- देवोंको बुलानेवाले, सबके अथवा सब धनोंसे युक्त, इस यज्ञके उत्तम प्रकार संचय करनेवाले, रूपमें हम स्वीकार करते हैं ॥१॥ प्रजाओंके पालक, अन्न पहुंचानेवाले, सबको प्रिय, ऐसे तेजस्वी अग्निकी हैं (हम) करते हैं॥२॥ हे अग्ने ! (तू) प्रकट होते ही, आसन फैलानेवाले भक्तके पास, यहां, सब देवोंको ले आ सबके लिये देवोंको बुलानेवाला और प्रशंसनीय हो ॥३॥ हे अग्ने ! जब तू दूतकर्म करनेके लिये (देवोंके पास) है, (तब आनेकी) इच्छा करनेवाले उन (सब देवोंको) जगा दो । (उनको यहां ले आओ और) इस सब देवोंके साथ बैठो ॥४॥ हे घीकी आहुतियां लेनेवाले प्रदीप्त अग्ने ! तू (हमारा) नाश करनेवाले दुः प्रत्येकको जला दो ॥५॥ कवि, गृहरक्षक, तरुण, अन्न पहुंचानेवाले, ज्वालारूपी मुखसे युक्त अग्निको (दूतों द्वारा प्रदीप्त किया जाता है ॥६॥ सत्य धर्मके पालनकर्ता, रोगोंके नाशक, ज्ञानी अग्निदेवकी इस हिंसारहित प्रशंसा करो ॥७॥ हे अग्निदेव ! जो अन्नोंका पति, तुझ जैसे दूतकी सेवा करता है, उसका तू रक्षक बन और करनेवाले अग्ने ! जो हविरन्नवाला भक्त देवोंके संतोषके लिये, तुझ अग्निकी सेवा करता है, उसे सुख दे पवित्रकर्ता अग्ने ! वह (तू) हमारे पास सब देवोंको यहां ले आ और हमारा अन्न और यज्ञ उनके समीप पहुं नवीन गायत्री छन्दके स्तोत्रसे प्रशंसित हुआ, वह (तू) वीरोंसे युक्त धन और अन्न हम सबके पास ला हे अग्ने ! अपनी पवित्र दीप्तिसे और सब देवताओंके स्तोत्रोंसे युक्त होकर हमारे इस यज्ञका सेवन कर ॥१२॥

आदर्श राजदूत

यहां मेधातिथि ऋषिने अग्निके अन्दर आदर्श राजदूतका रूप देखा है। एक राज्यसे दूसरे राज्यमें जो जाता है और अपने राजाका संदेश वहांके कार्यकर्ताओंको पहुंचाता है और अपने राजाका कार्य जो करता है, वह उत्तम राजदूत कहलाता है। ऐसा राजदूत ' अग्नि ' है।

अग्निर्देवानां दूत आसीत्
उशना: काव्योऽसुराणाम् । (तै. सं. २।५।८।७)

' अग्नि देवोंका दूत था और उशना काव्य असुरोंका दूत था ' ऐसा तैत्तिरीय संहितामें कहा है। एक यज्ञका राज्य भूमि-पर है और दूसरा देवोंका राज्य है। यह दूत अग्नि यहांसे देवोंके पास जाकर, उनको बुलाना और यज्ञमें उनको लाना है, उनके सामने यज्ञकार्य निवेदन करना और हविर्भाग यथायोग्य उनके पास पहुंचाना है। यह उसका दूत-कर्म है।

जैसा अग्नि यज्ञमें दूतकर्म करता है, वैसा राजदूत राज्य-प्रबन्ध दूत कर्म करे। क्योंकि जैसा कर्म देव करते हैं मनुष्योंको करना चाहिये। इसलिये दूतके गुण जो इस सूक्त कर्म दिये हैं, उनका विचार करना चाहिये। देखिये—

राजदूतके गुण

१ अग्निः- यह नेतृत्वके हो, निर्भीक वीर हो या उदास न हो। वह (अग्निः-अग्रणीः) अग्र सामर्थ्य उत्पन्न करनेवाला हो, कार्यको अन्ततक पहुंचानेवाला हो, अ अथवा मुख्य हो। (अगति इति अग्निः) हो हो, हलचल करनेवाला हो। जिस कार्यके करनेके लि जाना आवश्यक हो वहांतक वह जावे और उ संपूर्ण रूपसे सिद्ध करे, ऐसा दूत हो।

२ होता- बुलानेवाला, पुकारनेवाला दूत है, भाव उत्तम रीतिसे कहनेमें समर्थ हो।

३ विश्व-वेदः- सब प्रकारके ज्ञानसे युक्त हो भी उसके पास हो। ज्ञान और धनसे वह युक्त राष्ट्रमें जाकर ज्ञानसे उनपर प्रभाव डाले और प्रभाव डाले और अपना कार्य करे।

४ यज्ञस्य सुक्रतुः- कार्यको उत्तम रीतिसे सिद्ध करनेवाला दूत हो। (यज्ञः- देवपूजा करण-दानात्मकः) वह दूत श्रेष्ठोंका सत्कार ठन करे और सहायता करे तथा साधनोंसे आन कर। (१)

५ विश्-पतिः- अपने प्रजाजनोंका पालन करे उसका यही ध्येय सदा रहे कि अपनी प्रजाक पालन हो।

हव्यवाह्– अन्न पहुंचानेवाला हो। अन्न उसके पास जाय, अथवा जो पहुंचानेके लिये उसके पास दिया हो जिसको पहुंचाना हो वह ठीक उसको पहुंचा देवे।

पुरुप्रियः– वह सबको प्रिय हो। (२)

ईड्यः– प्रशंसाके योग्य कर्म करनेवाला हो। (३)

घृताहवन– घी खानेवाला।

दीदिवः– तेजस्वी।

रिषतः रक्षस्विनः दह– हिंसक शत्रुओंका नाश (५)

कविः– ज्ञानी, विद्वान्, जो दूसरोंको न दीखनेवाला उसको भी वह देखे और ठीक तरह जानकारी प्राप्त करे। दूर-दर्शी हो।

गृहपतिः– अपने घरकी उत्तम रक्षा करनेवाला हो। घर, अपना देश, अपना राज्य इसकी रक्षा कैसी हो होती है, इसका उत्तम ज्ञान उसको हो।

युवा– राजदूत तरुण हो, अथवा तरुणके समान बल-और ओजस्वी हो।

जुह्वास्यः– अग्नि ज्वालाके समान तेजस्वी भाषण वाला हो। (६)

सत्य-धर्मा– सत्य धर्मका पालन करनेवाला हो, वचन और आचरणमें सचाई रखनेवाला हो, इससे वह सबका विश्वास संपादन करे।

अमीवचातनः– दुष्टोंको दूर करनेवाला हो।

प्राविता– जिसको वह अपना कहे उसकी सुरक्षा करनेकी शक्ति उसमें हो। (८)

मृळय (मृळयिता)– सुख देनेवाला हो, जिसको अपना कहे उसको सुखी करे।

पावकः– वह पवित्र हो, पवित्रता करे। (९)

देवान् आ वह– अपने साथ दिव्य जनोंको ले आवे, दिव्य विद्वानोंको रखे। (१०)

वीरवतीं रयिं इषं आभर– वीरोंके साथ रहने-वाला, धन और अन्न भरपूर ले आवे। जिसके साथ वीर हैं ऐसा धन और अन्न अपने पास रखे। (११)

सुम्न-योनिः– सुखका घर अपने पास रखे। (१२)

विदोषद– रात्रि आदि दर्शन करे, सबको विशेष रीतिसे जगावे। (४)

उत्तम राज-दूतके इतने उत्तम गुण यहां इस सूक्तमें वर्णन किये हैं। जिस राजाके पास ऐसे उत्तम दूत होंगे वह निःसंदेह विजयी होगा। पाठक राजधर्मकी दृष्टिसे इस सूक्तके इन पदोंका विचार करें।

रोग-निवारण

अग्निका रोग-निवारक गुण इस सूक्तमें बताया है जो आरोग्यकी दृष्टिसे देखने योग्य है—

१ अमीवचातनः— अपचित अन्नका 'आम' पेटमें बनता है, यही आम नाना रोगोंको उत्पन्न करता और बढाता है। इसलिये रोगोंका नाम वेदमें '**अमी-च**' (अर्थात् '**अमीवान्**' किंवा '**आमवान्**') कहा है। अनेक रोग इस आमसे उत्पन्न होते हैं, इस बातको लोग जानें और अपने पेटमें आमका संग्रह न होने दें, पेट स्वच्छ रखें और रोगसे मुक्त हों। रोगकी उत्पत्ति बता कर इस तरह इस पदमें बडा महत्त्वपूर्ण ज्ञान यहां दिया है।

'अमीव' रोग है उनका 'चातन' समूल उच्चाटन करने-वाला 'अमी-व-चातन' है, रोगोंको दूर करनेवाला अग्नि है। यह रोगके मूलोंको दूर करता है। जाठराग्नि अच्छीतरह प्रदीप्त रहा तो पेटमें आमका संग्रह नहीं रहता और रोग दूर होते हैं। बाहर अग्नि जलने लगा तो उसमें वातुमें मिश्रित रोग-बीज जल जाते हैं और वायु शुद्ध होता है और इस रीतिसे नीरोगिता प्राप्त होती है। इसलिये कहा है—

ऋतुसंधिषु यै व्याधिर्जायते।
ऋतुसंधिषु यज्ञाः क्रियन्ते॥

(गोपथ. उ.१।२८ की. भा.)

'ऋतुकी संधिके समय रोग उत्पन्न होते हैं, इसलिये ऋतु-संधिमें यज्ञ किये जाते हैं।' यज्ञमें अग्नि प्रदीप्त होता है और रोग-बीजोंको जलाता है। यज्ञमें विशिष्ट औषधियोंका हवन किया जाता है वह भी रोग निवारण करता है। अग्नि रोग दूर करनेवाला है इसलिये उसको यज्ञ कहा जाता है। ब्राह्मण ग्रंथोंमें ऐसे वर्णन आते हैं कि यज्ञोंमें उन्हें कष्ट होते थे। यह प्रतिदिन अग्निहोत्र करनेसे दूर होते थे। यह दर्शाता है कि इस तरह यज्ञोंसे रोगोंका नाश होता था। यदि इतने ही लाभ यज्ञोंसे होते तो भी बहुत होते। [illegible]

व्यवाह्- अन्न पहुंचानेवाला हो। अन्न उसके पास
ाय, अथवा जो पहुंचानेके लिये उसके पास दिया हो
को पहुंचाना हो वह ठीक उसको पहुंचा देवे।

रुप्रियः- वह सबको प्रिय हो। (२)

ुत्यः- प्रशंसाके योग्य कर्म करनेवाला हो। (३)

घृताहवन- घी खानेवाला।

दीदिवः- तेजस्वी।

रिषतः रक्षस्विनः दह- हिंसक शत्रुओंका नाश
(५)

कविः- ज्ञानी, विद्वान्, जो दूसरोंको न दीखनेवाला
सको भी वह देखे और ठीक तरह जानकारी प्राप्त करे।
न्दर्शी हो।

गृहपतिः- अपने घरकी उत्तम रक्षा करनेवाला हो। घर, अपना देश, अपना राज्य इसकी रक्षा कैसी हो है, इसका उत्तम ज्ञान उसको हो।

युवा- राजदूत तरुण हो, अथवा तरुणके समान बल-विशेष रीतिसे जगावे। (४)

उत्तम राज-दूतके इतने उत्तम गुण यहां इस सूक्तमें वर्णन किये हैं। जिस राजाके पास ऐसे उत्तम दूत होंगे वह निःसंदेह विजयी होगा। पाठक राजधर्मकी दृष्टिसे इस सूक्तके इन पदोंका विचार करें।

रोग-निवारण

अग्निका रोग-निवारक गुण इस सूक्तमें बताया है जो आरोग्यकी दृष्टिसे देखने योग्य है—

१ अमीवचातनः— अपचित अन्नका 'आम' पेटमें बनता है, यही आम नाना रोगोंको उत्पन्न करता और बढ़ाता है। इसलिये रोगोंका नाम वेदमें '**अमी-व**' (अर्थात् '**अमीवान्**' किंवा '**आमवान्**') कहा है। अनेक रोग इस आमसे उत्पन्न होते हैं, इस कारण रोग जन्में और आगे पेटमें आमका संग्रह न होने दें, पेट सदा शुद्ध और रोगोंसे मुक्त हो। रोगोंकी उत्पत्ति कहां कहां इस प्रकार इस मंत्रमें संक्षेपसे इन सबका दिया है।

इह आ वह, नः हविः यज्ञं च उप (आवह) ॥१०॥ नवीयसा गायत्रेण स्तवानः नः (स्तं) वीरवतीं रयिं हो॰ ॥११॥ हे अग्ने ! शुक्रेण शोचिषा, विश्वाभिः देवहूतिभिः, नः इमं सोमं जुषस्व ॥१२॥

अर्थ- देवोंको बुलानेवाले, सर्वज्ञ अथवा सब धनोंसे युक्त, इस यज्ञके उत्तम प्रकार संपन्न करनेवाले, रूपमें हम स्वीकार करते हैं ॥१॥ प्रजाओंके पालक, अन्न पहुंचानेवाले, सबको प्रिय, ऐसे तेजस्वी अग्निकी हि (हम) करते हैं॥२॥ हे अग्ने ! (तू) प्रकट होते ही, आसन फैलानेवाले भक्तके पास, यहां, सब देवोंको ले आ।(हे सबके लिये देवोंको बुलानेवाला और प्रशंसनीय हो ॥३॥ हे अग्ने ! जब तू दूतकर्म करनेके लिये (देवोंके पास) है, (तब आनेकी) इच्छा करनेवाले उन (सब देवोंको) जगा दो। (उनको यहां ले आओ और) इस सब देवोंके साथ बैठो ॥४॥ हे घीकी आहुतियां लेनेवाले प्रदीप्त अग्ने ! तू (हमारा) नाश करनेवाले क्रू प्रत्येकको जला दो ॥५॥ कवि, गृहरक्षक, तरुण, अन्न पहुंचानेवाले, ज्वालारूपी मुखसे युक्त अग्निको (दूतों) द्वारा प्रदीप्त किया जाता है ॥६॥ सत्य धर्मके पालनकर्ता, रोगोंके नाशक, ज्ञानी अग्निदेवकी इस हिंसारहित प्रशंसा करो ॥७॥ हे अग्निदेव ! जो अन्नोंका पति, तुझ जैसे दूतकी सेवा करता है, उसका तू रक्षक बन ॥८॥ हे करनेवाले अग्ने ! जो हविरन्नवाला भक्त देवोंके संतोषके लिये, तुझ अग्निकी सेवा करता है, उसे सुख दे ॥९॥ पवित्रकर्ता अग्ने ! वह (तू) हमारे पास सब देवोंको यहां ले आ और हमारा अन्न और यज्ञ उनके समीप पहुंच नवीन गायत्री छन्दके स्तोत्रसे प्रशंसित हुआ, वह (तू) वीरोंसे युक्त धन और अन्न हम सबके पास भेज हे अग्ने ! अपनी पवित्र दीप्तिसे और सब देवताओंके स्तोत्रोंसे युक्त होकर हमारे इस यज्ञका सेवन कर ॥१२॥

आदर्श राजदूत

यहां मेधातिथि ऋषिने अग्निके अन्दर आदर्श राजदूतका भाव देखा है। एक राज्यसे दूसरे राज्यमें जो जाता है और अपने राजाका संदेश वहांके कार्यकर्ताओंको पहुंचाता है और अपने राजाका कार्य जो करता है, वह उत्तम राजदूत कहलाता है। ऐसा राजदूत 'अग्नि' है।

अग्निर्देवानां दूत आसीत्
उशनाः काव्योऽसुराणाम्। (तै. सं. २।५।८।७)

'अग्नि देवोंका दूत था और उशना काव्य असुरोंका दूत था।' ऐसा तैत्तिरीय संहितामें कहा है। एक यज्ञका राज्य भूमि-पर है और दूसरा देवोंका राज्य है। यह दूत अग्नि यहांसे देवोंके पास जाता, उनको बुलाता और यज्ञमें उनको लाता है, उनको यज्ञमें यथास्थान बिठलाता और हविर्भाग यथायोग्य रीतिसे पहुंचाता है। यह इसका दूत-कर्म है।

जैसा अग्नि यज्ञमें दूतकर्म करता है, वैसा राजदूत राज्य-यज्ञरूप यज्ञमें दूत कर्म करे। क्योंकि जैसा कर्म देव करते हैं वैसा मनुष्योंको करना चाहिये। इसलिये दूतके गुण जो इस सूक्तमें वर्णन किये हैं, उनका विचार करना चाहिये। देखिये—

राजदूतके गुण

१ अग्नि- वह तेजस्वी हो, निस्तेज फीका या उदास न हो। वह (अग्निः-अग्रणीः) अग्र भागतक ... करनेवाला हो, कार्यको अन्ततक पहुंचानेवाला हो, अथवा मुख्य हो। (अगति इति अग्निः) वह हो, हलचल करनेवाला हो। जिस कार्यके करनेके लि जाना आवश्यक हो वहांतक वह जाये और संपूर्ण रूपसे सिद्ध करे, ऐसा दूत हो।

२ होता- बुलानेवाला, पुकारनेवाला दूत हो, भाव उत्तम रीतिसे कहनेमें समर्थ हो।

३ विश्व-वेदः- सब प्रकारके ज्ञानसे युक्त हो भी उसके पास हो। ज्ञान और धनसे वह युक्त राष्ट्रमें जाकर ज्ञानसे उनपर प्रभाव डाले और प्रभाव डाले और अपना कार्य करे।

४ यशस्य सुक्रतुः- कार्यको उत्तम रीतिसे सिद्ध करनेवाला दूत हो। (यशः- देवपूजा करण-दानात्मकः) वह दूत श्रेष्ठोंका सत्कार ठन करे और सहायता करे तथा साधनोंसे अपना करे। (१)

५ विश्-पतिः- अपने प्रजाजनोंका पालन करने उसका यही ध्येय सदा रहे कि अपनी प्रजाका पालन हो।

हव्यवाह्- अन्न पहुंचानेवाला हो। अन्न उसके पास जाय, अथवा जो पहुंचानेके लिये उसके पास दिया हो उसको पहुंचाना हो वह ठीक उसको पहुंचा देवे।

पुरुप्रियः- वह सबको प्रिय हो। (२)

ईड्यः- प्रशंसाके योग्य कर्म करनेवाला हो। (३)

घृताहवन- घी खानेवाला।

दीदिवः- तेजस्वी।

रिषतः रक्षस्विनः दह- हिंसक शत्रुओंका नाश (५)

कविः- ज्ञानी, विद्वान्, जो दूसरोंको न दीखनेवाला उसको भी वह देखे और ठीक तरह जानकारी प्राप्त करे। दूर-दर्शी हो।

गृहपतिः- अपने घरकी उत्तम रक्षा करनेवाला हो। ना घर, अपना देश, अपना राज्य इसकी रक्षा कैसी हो ती है, इसका उत्तम ज्ञान उसको हो।

युवा- राजदूत तरुण हो, अथवा तरुणके समान बल- और ओजस्वी हो।

जुह्वा-आस्यः- अग्नि ज्वालाके समान तेजस्वी भाषण नेवाला हो। (६)

सत्य-धर्मा- सत्य धर्मका पालन करनेवाला हो, वचन और आचरणमें सचाई रखनेवाला हो, इससे वह सबका श्वास संपादन करे।

अमीवचातनः- दुष्टोंको दूर करनेवाला हो।

प्रविता- जिसको वह अपना कहे उसकी सुरक्षा नेकी शक्ति उसमें हो। (८)

मृळय (मृळयिता)- सुख देनेवाला हो, जिसको अपना कहे उसको सुखी करे।

पावकः- वह पवित्र हो, पवित्रता करे। (९)

देवान् आ वह- अपने साथ दिव्य जनोंको ले आवे, अपने साथ दिव्य विभूतियोंको रखे। (१०)

वीरवतीं रयिं इषं आभर- वीरोंके साथ रहने- वाला, धन और अन्न भरपूर ले आवे। जिसके साथ वीर हते हैं ऐसाही धन और अन्न अपने पास रखे। (११)

शुक्र-शोचिः- शुद्ध तेज अपने पास रखे। (१२)

विदोषय- जहां जावे वहां उन्नति करे, सबको विशेष रीतिसे जगावे। (४)

उत्तम राज-दूतके इतने उत्तम गुण यहां इस सूक्तमें वर्णन किये हैं। जिस राजाके पास ऐसे उत्तम दूत होंगे वह निःसंदेह विजयी होगा। पाठक राजधर्मकी दृष्टिसे इस सूक्तके इन पदोंका विचार करें।

रोग-निवारण

अग्निका रोग-निवारक गुण इस सूक्तमें बताया है जो आरोग्यकी दृष्टिसे देखने योग्य है—

१ अमीवचातनः— अपचित अन्नका 'आम' पेटमें बनता है, यही आम नाना रोगोंको उत्पन्न करता और बढाता है। इसलिये रोगोंका नाम वेदमें 'अमी-व' (अर्थात् 'अमीवान्' किंवा 'आमवान्') कहा है। अनेक रोग इस आमसे उत्पन्न होते हैं, इस बातको लोग जानें और अपने पेटमें आमका संग्रह न होने दें, पेट स्वच्छ रखें और रोगसे मुक्त हों। रोगकी उत्पत्ति बता कर इस तरह इस पदमें बडा महत्त्वपूर्ण ज्ञान यहां दिया है।

'अमीव' रोग है उनका 'चातन' समूल उच्चाटन करने- वाला 'अमी-व-चातन' है, रोगोंको दूर करनेवाला अग्नि है। यह रोगके मूलोंको दूर करता है। जाठराग्नि अच्छी तरह [illegible] रहा तो पेटमें आमका संग्रह नहीं रहता और रोग दूर रहते हैं। बाहर अग्नि जलने लगा तो उसमें वायुमें स्थित [illegible] जल जाते हैं और वायु शुद्ध होता है और इस [illegible] प्राप्त होती है। इसलिये कहा है—

ऋतुसंधिषु वै व्याधिर्जायते
ऋतुसंधिषु यज्ञाः [illegible]

'ऋतुकी संधिके समय [illegible] संधिमें यज्ञ किये जाते हैं। [illegible] रोग-बीजोंको [illegible] दहन किया जाता है [illegible] रोग दूर करनेके [illegible] में ऐसे [illegible] वहां [illegible]

दिन प्रत्येक घरमें हवन हो, नगरोंमें चार मार्ग मिलनेके स्थानों-पर हवन हो तथा देवताओंके मंदिरोंमें हवन हो । इस तरह होनेसे नगर आरोग्य-संपन्न हो सकेगा ।

२ रिपतः रक्षस्विनः दह– हिंसा करनेवाले राक्षसोंको जला दे । अर्थात् अग्नि हिंसक राक्षसोंको जला देता है । राक्षस और रक्षः (रक्षस्) ये पद जैसे बड़े क्रूरकर्मा मानवोंके वाचक हैं, वैसेही वेदमें रोगजन्तुओंके भी वाचक हैं । (**रक्षन्ति एभ्यः**) जिनसे मनुष्योंको बचना चाहिये, वे राक्षस या रक्षस् हैं । रक्षस् क्षुद्रता-दर्शक पद है । सूक्ष्म कृमि ऐसा इनका अर्थ है । आगे अग्निके सूक्तोंमें राक्षस-वाचक अनेक पद आयेंगे जिनका अर्थ रोगजंतु होगा । जहां ये पद आयेंगे वहां स्पष्टीकरणमें बताया जायगा, यहां सूचना मात्र लिखा है । 'रिप्' का अर्थ हिंसा करना है, नाश तथा घातपात करना है । ये जन्तु रोग उत्पन्न करके बड़ा संहार करते हैं इसलिये इनको यहां ' **रिपतः** ' (हिंसक) कहा है, जलानेसेही ये नष्ट होते हैं । अग्नि इनको जलाकर नष्ट कर देता है और सूर्य इनको अपने किरणोंसे नाश करता है । इसका वर्णन सूर्यके सूक्तोंमें आगे आनेवाला है । अग्नि रोग-बीजोंको किस तरह दूर करता है, इसका स्पष्टीकरण यहां कहा है ।

३ पावकः– पवित्रता करनेवाला अग्नि है । अपवित्रतासे रोग-बीज बढ़ते हैं । अग्नि पवित्रता करता है, इस कारण वह रोगोंका निवारण करता है । पवित्रता करनेवाले सभी पदार्थ रोग-निवारक होते हैं ।

४ शुक्र-शोचिः– पवित्रता बढ़ानेवाले इसके किरण हैं, पवित्रता बढ़ाकर रोग दूर करते हैं, इस कारण ये वीर्यवर्धक अथवा बलवर्धक भी हैं । सूर्य भी ' **शुक्र-शोचिः** ' है । ' शुक्र ' पदका अर्थ ' पवित्र, बल, वीर्य, पराक्रम' है । पवित्र-तासे सिद्ध है इसलिये ये गुण हैं ।

५ घृताहवनः– घीका हवन अग्निमें होता है । यहां घीका घृत है । वेदमें गौको छोड़कर भैंस आदि किसी अन्यके घीका वर्णन नहीं है । इसलिये जहां वेदमें घीका वर्णन हो वहां गौके घृतका वह वर्णन है, ऐसा समझना चाहिये । सब घी विषनाशक होता है, इसीलिये अग्निमें घीका हवन होता है । वह सूक्ष्म रूपसे बादलके साथ फैलता है और वायुको विशेष रूपसे रोगजन्तु-रहित करता है । गौके घृतमें यह विष दूर करनेका गुण विशेषरूपसे है ।

६ यज्ञस्य सुक्रतुः– यज्ञका निर्मलकर्ता । गोपथ ब्राह्मणके वचनानुसार ऋतुसंधियोंमें होनेवाले यज्ञोंका निष्पन्न-कर्ता ऐसा समझना चाहिये ।

७ हव्यवाट्– हवन किये हुए औषधियुक्त घृतादिको सूक्ष्म करके इतस्ततः वायुमें फैला देना इससे रोगोंको हटानेवाला अग्नि है ।

इस रीतिसे कई अन्य पद अग्निके गुणोंका वर्णन करते हैं उनका विचार पाठक अवश्य करें ।

नवीन स्तोत्र

' नवीयसा गायत्रेण स्तवानः ' (मंत्र १) गायत्री छंदके स्तोत्रसे स्तुति जिसकी की गयी है, ऐसा इसमें गायत्री छन्दमें यह नवीन स्तोत्र किया गया, ऐसा होता है । इस विषयमें ' **मंत्रपति, मंत्रद्रष्टा । और कृत्** ' ऐसे ऋषियोंके तीन वर्ग हैं । प्राचीन कालसे मंत्रोंका संग्रह करके उनकी पठन-पाठनसे रक्षा 'मन्त्र-पति ऋषि ' होते हैं । सनातन गुप्त इस तत्त्वज्ञानका दर्शन करनेवाले ' **मन्त्रद्रष्टा ऋषि** ' । मंत्रोंकी रचना करनेवाले ' **मन्त्रकृत् ऋषि** ' । इस विषयमें तै० आरण्यकमें कहा है—

> नम ऋषिभ्यो मन्त्रकृद्भयो मन्त्रपतिभ्यः ।
> मा मां ऋषयो मन्त्रकृतो मन्त्रपतयः परा दुः
> माऽहं ऋषीन् मन्त्रकृतो मन्त्रपतीन् परा दु
> (तै० आ०

'मन्त्रकृत् और मंत्रपति ऐसे जो ऋषि हैं, उनको है । मन्त्रकृत् और मंत्रपति ऋषि मेरा तिरस्कार न मैं मन्त्रकृत् और मन्त्रपति ऋषिकोंका तिरस्का करूंगा ।'

यहां ' मन्त्रकृत् और मन्त्रपति ' का उल्लेख है । पद निरुक्तमें है । मन्त्रकृत् जो ऋषि होते हैं उनको (कारीगर) कहा है । यह कारु पद वेद-मंत्रोंमें आता है । कारुका अर्थ है करनेवाला, निर्माण करने करनेवाला ।

मन्त्रपति और मन्त्रकृत् में भेद है । दोनों मन्त्रोंके होते हैं । मन्त्रका अर्थ ' मनन करने योग्य ज्ञानका मन्त्रपति ऋषि उन मन्त्रोंमें इस गुप्त तत्त्वज्ञानको देखते उन प्राचीन समयसे चले आये मंत्रोंका संग्रह करते

दिन प्रत्येक घरमें हवन हो, नगरोंमें चार मार्ग मिलनेके स्थानों-पर हवन हो तथा देवताओंके मंदिरोंमें हवन हो । इस तरह होनेसे नगर आरोग्य-संपन्न हो सकेगा ।

२ रिपतः रक्षस्विनः दह– हिंसा करनेवाले राक्षसोंको जला दे । अर्थात् अग्नि हिंसक राक्षसोंको जला देता है । राक्षस और रक्षः (रक्षस्) ये पद जैसे बडे क्रूरकर्मी मानवोंके वाचक हैं, वैसेही वेदमें रोगजन्तुओंके भी वाचक हैं । (**रक्षान्नि एभ्यः**) जिनसे मनुष्योंको बचना चाहिये, वे राक्षस या रक्षस् हैं । रक्षस् क्षुद्रता-दर्शक पद है । सूक्ष्म कृमि ऐसा इनका अर्थ है । आगे अग्निके सूक्तोंमें राक्षस-वाचक अनेक पद आयेंगे जिनका अर्थ रोगजंतु होगा । जहां ये पद आयेंगे वहां स्पष्टीकरणमें बताया जायगा, यहां सूचना मात्र लिखा है । 'रिप्' का अर्थ हिंसा करना है, नाश तथा घातपात करना है । ये जन्तु रोग उत्पन्न करके बडा संहार करते हैं इसलिये इनको यहां **' रिपतः '** (हिंसक) कहा है, जलानेसेही ये नष्ट होते हैं । अग्नि इनको जलाकर नष्ट कर देता है और सूर्य इनको अपने किरणोंसे नाश करता है । इसका वर्णन सूर्यके सूक्तोंमें आगे आनेवाला है । अग्नि रोग-बीजोंको किस तरह दूर करता है, इसका स्पष्टीकरण यहां कहा है ।

३ पावकः– पवित्रता करनेवाला अग्नि है । अपवित्रतासे रोग-बीज बढते हैं । अग्नि पवित्रता करता है, इस कारण वह रोगोंका निवारण करता है । पवित्रता करनेवाले सभी पदार्थ रोग-निवारक होते हैं ।

४ शुक्र-शोचिः– पवित्रता बढानेवाले इसके किरण हैं, पवित्रता बढाकर रोग दूर करते हैं, इस कारण ये वीर्यवर्धक अथवा बलवर्धक भी हैं । सूर्य भी **' शुक्र-शोचिः '** है । ' शुक्र ' पदका अर्थ ' पवित्र, बल, वीर्य, पराक्रम' है । पवित्र-तासे सिद्ध होनेवाले ये गुण हैं ।

५ घृताहवनः– घीका हवन अग्निमें होता है । यहां गौका घृत है । वेदमें गौको छोडकर भैंस आदि किसी अन्यके घीका वर्णन नहीं है । इसलिये जहां वेदमें घीका वर्णन हो वहां गौके घृतकाही वह वर्णन है, ऐसा समझना चाहिये । सब घी विषनाशक होता है, इसीलिये अग्निमें घीका हवन होता है । यह सूक्ष्म रूपसे वायुके साथ फैलता है और वायुको निर्विष या रोगबीज-रहित करता है । गौके घृतमें यह विष दूर करनेका गुण विशेषही है ।

६ [illegible] – [illegible] ।
[illegible] [illegible]

७ हव्यवाट्– हवन किये हुए [illegible] सूक्ष्म करके [illegible] फैला [illegible] इससे रोगोंको हटानेवाला अग्नि है ।

इस सूक्तमें कहे अन्य पद अग्निके गुणोंका वर्णन करते हैं । उनका विचार पाठक अवश्य करें ।

नवीन स्तोत्र

' नवीयसा गायत्रेण स्तवानः ' (मंत्र १) गायत्री छंदके [illegible] रचना जिसकी की गयी है, इसमें गायत्री छन्दमें यह नवीन स्तोत्र किया गया, होता है । इस विषयमें **' मंत्रपति, मंत्रद्रष्टा । कृत् '** ऐसे ऋषियोंके तीन वर्ग हैं । प्राचीन कालमें मंत्रोंका संग्रह करके उनकी पठन-पाठनसे रक्ष **'मन्त्र-पति ऋषि '** होते हैं । सनातन गुप्त तत्त्वज्ञानका दर्शन करनेवाले **' मन्त्रद्रष्टा ऋषि '** मंत्रोंकी रचना करनेवाले **' मन्त्रकृत् ऋषि '** इस विषयमें तै० आरण्यकमें कहा है—

> नम ऋषिभ्यो मन्त्रकृद्भयो मन्त्रपतिभ्यः ।
> मा मां ऋषयो मन्त्रकृतो मन्त्रपतयः परा दुः ।
> माऽहं ऋषीन् मन्त्रकृतो मन्त्रपतीन् परा दाम् ।
> (तै० आ०)

'मन्त्रकृत् और मंत्रपति ऐसे जो ऋषि हैं, उनको है । मन्त्रकृत् और मंत्रपति ऋषि मेरा तिरस्कार न मैं मन्त्रकृत् और मन्त्रपति ऋषिकोंका तिरस्कार करूंगा ।'

यहां ' मन्त्रकृत् और मन्त्रपति ' का उल्लेख है। पद निरुक्तमें है। मन्त्रकृत् जो ऋषि होते हैं उनको ही (कारीगर) कहा है । यह कारू पद वेद-मंत्रोंमें आता है । कारूका अर्थ है करनेवाला, निर्माण करनेवाला ।

मन्त्रपति और मन्त्रकृत् में भेद है । दोनों मन्त्र होते हैं । मन्त्रका अर्थ ' मनन करने योग्य ज्ञानका मन्त्रपति ऋषि उन मन्त्रोंमें इस गुप्त तत्त्वज्ञानको देख उन प्राचीन समयसे चले आये मंत्रोंका संग्रह करते

त, यत्र ऋतस्य चक्षणं ॥२॥ जग्ध मूनं यष्टये च, ऋताबृधः सस्रुषः देवीः द्वारः विश्वयन्तम् ॥३॥ सुरेतसा
ाता अस्मिन् यज्ञे उपह्वये, नः इदं बर्हिः आसदे ॥४॥ ता सुजिह्वौ होतारा दैव्या कवी उपह्वये, नः इमं यज्ञं गच्छताम्
इला सरस्वती मही तिस्रः देवीः मयोभुवः । बर्हिः सीदन्तु ॥५॥ आप्रियं विश्वरूपं स्वष्टारं इह उप ह्वये ।
) वेतसः अस्माकं अस्तु ॥७॥ हे देव वनस्पते ! देवेभ्यः हविः अव सृज, दातुः चेतनं प्र अस्तु ॥८॥ यज्वनः
इन्द्राय यज्ञं स्वाहा कृणोतन । तत्र देवान् उपह्वये ॥९॥

अर्थ- हे पवित्रता करनेवाले और हवन करनेवाले अग्ने ! उत्तम प्रदीप्त हुआ तू हवन करनेवालेके ऊपर कृपा
के लिये, सब देवोंको हमारे पास ले आ और (उनके उद्देश्यसे) हवन कर ॥३॥ हे बुद्धिमान् अग्ने ! (तू) गतिको
करानेवाला है, अतः आज हमारे इस मधुर यज्ञ (के अन्न) को (देवोंके) सेवन करनेके लिये देवोंतक पहुंचा दे॥२॥
इस यज्ञमें प्रिय मधुरभाषी और हविकी सिद्धता करनेवाले तथा मनुष्योंद्वारा प्रशंसित (अग्निके) मैं बुलाता
॥३॥ हे अग्ने ! प्रशंसित हुआ (तू) उत्तम सुख देनेवाले रथमें (बिठलाकर) देवोंको (यहां) ले आ। (क्योंकि तू)
बोंका हितकर्ता (और देवोंको) बुलानेवाला है ॥४॥ हे बुद्धिमान् लोगों ! घीके समान चमकनेवाले आसन (यहां)
साथ फैला दो, जहां अमृतका साक्षात्कार होगा ॥५॥ आज निःसंदेह यज्ञ करनेके लिये, मधुको बहानेवाले, दूसरेसे
। मिले न रहते हुए, वे दिव्य द्वार खुल जावें ॥६॥ सुंदररूपवाली रात्रि और उषा (इन दो देवताओं)को इस यज्ञमें
बुलाता हूं, हमारा यह आसन (उनके) बैठनेके लिये है ॥७॥ इस उत्तम आसन करनेवाले, (दोनों) मनुष्य जिस
लोकमें मैं (यहां) बुलाता हूं, (वे) इसके इस यज्ञको संपन्न करें ॥८॥ भूमि, सरस्वती और इला (ये) तीन
माएं सुख देनेवाली हैं, वे प्रीत न होती हुई आसनपर बैठें ॥९॥ प्राप्त पूर्णपात्र अग्नि स्वरूपके लिये वरणीयको
बुलाता हूं, वह केवल हमारा ही होवे ॥१०॥ हे वनस्पतिदेव ! देवोंके लिये हविष्यान्न प्राप्त हो। तुम्हारे लिये बुलाता
होवे ॥११॥ यज्ञके करनेवाले, बहुतोंके, इन्द्रदेवताके लिये यह यज्ञ (करके) करो। उन देवोंको बुलाता
॥१२॥

आप्रीसूक्त

यह सामान्यतः है। अग्नि आवाहन अग्नि के लिए हैं
लिये है। यज्ञ कार्य करने के लिए है आगे अग्नि
। देवों निम्नलिखित आवाहन है—

ऋषि	आप्री	मंत्र संख्या
१ [illegible]	[illegible]	१२
२ [illegible]	[illegible]	१२
३ [illegible]	[illegible]	११
४ [illegible]	[illegible]	११
५ [illegible]	[illegible]	११
६ [illegible]	[illegible]	११
७ [illegible]	[illegible]	११
८ [illegible]	[illegible]	११
९ [illegible]	[illegible]	११
१० [illegible]	[illegible]	११

इसीलिये इसकी प्रशंसा (नर-आ-शंस) सभी मनुष्य करते । क्योंकि सब ज्ञानी जानते हैं कि इसके विना विश्वमें कुछ । कार्य नहीं हो सकता । (मं. ३)

सुखतम रथ

जिससे अत्यंत सुख होता है ऐसे रथमें बैठकर यह अग्नि व देवोंको इस यज्ञभूमिमें लाता है और (मनुर्हितः) मनुयोंका हित करता है । इस विषयमें पूर्व सूक्तमें विशेष स्पष्टीकरण किया है । (मं. ४)

अमृतका दर्शन

यहांही ' अमृतका दर्शन ' (**अमृतस्य चक्षणं**) होता है । यहां सब देवताओंके लिये (आनुषक्) साथ साथ आसन फैलाये हैं । आंख नाक कान आदि इंद्रियोंमें आसनोंपर ये देव आकर बैठते हैं और यज्ञ करते हैं । इस यज्ञमेंही अमृतका साक्षात्कार होता है । इसलिये कहा है--

ये पुरुषे ब्रह्म विदुः ते विदुः परमेष्ठिनम् ।

(अथर्व १०।७।१७)

जो पुरुषमें ब्रह्म देखते हैं वेही परमेष्ठी प्रजापतिका दर्शन करते हैं । यही अमृतका दर्शन है । यहां जो यज्ञ चलता है उसका अन्तिम फल अमृतका साक्षात्कारही है । (मं. ५)

तीन देवियां

(इळा) मातृभूमि, (सरस्वती) मातृसंस्कृति, (मही-भारती) मातृभाषा ये तीन देवियां उपासनाके योग्य हैं । ये बडी सुख देनेवाली हैं । (इळा, इडा, इरा) अन्न देनेवाली भूमीमाता यह प्रथम उपास्य है । इसकी भक्तिके लिये ' **मातृभूमि सूक्त** ' (अथर्व १२।१ में) है । उसका विचार यहां पाठक करें । यह स्थानका संबंध है । (सरस्-वती) प्रवाहसे अनादि जो सभ्यता है वह भी रक्षा करने योग्य है । यह मानवी जीवनका मार्ग बताती है । अनादिकालके साथ संबंध जोडनेवाली यही दिव्य भावना है जो अनंत कालमें एकताका भाव निर्माण करती है । प्राचीनतम ऋषियोंके साथ हमारा संबंध जोडनेवाली यही सरस्वती है । जितनाही उत्क्रांतिस्थानके साथ मनुष्यका संबंध नहीं जोडती है, उसीतरह यह सभ्यता भविष्य व्यक्तिका संबंध ऋषियोंसे जोडती है । यह बडाही संबंध है, संस्कृती देवता यही है, इसीको अन्य ऋचाओंमें भारती कहा है । भारती नाम वाणीका है । मातृभूमीही भारती है । भूमि, संस्कृति और भाषा इनसे मनुष्यका मानस

रहती है । इसलिये यज्ञके द्वारा इनकी सुरक्षा और उन्न की जाती है । जिस कर्मसे इनकी अवनति होगी, वे क करने नहीं चाहिये और जिससे इनकी उन्नति होगी वे क करने चाहिये । यही कर्म यज्ञनामसे प्रसिद्ध हैं । (मं. ९)

विश्वरूप त्वष्टा

त्वष्टा कारीगरका नाम है ' विश्वरूप त्वष्टा ' है, जो भ कारीगर है वह विश्वरूप है । ' **विश्वं विष्णुः** ' विश्वही विष्ण है और जो विष्णु है वही विश्व है अर्थात् विश्वरूप है । व विश्वरूप देवकी ही सेवा करनी चाहिये ।

नगरोंमें तर्खाण आदि जो (त्वष्टा) कारीगर हैं उन संमान करना योग्य है । यज्ञमें उनका सन्मान होता है यज्ञका मंडप वह तैयार करता है, यज्ञपात्र वह बनाता घर वह बनाता है । मानवी जीवनमें कारीगरोंका बडाभ उपयोग है । ये कारीगर विश्वरूप अर्थात् नानारूप बनाते हैं इसीलिये उनको सम्मानपूर्वक बुलाना योग्य है । (मं. १०)

वनस्पतियोंसे अन्न

(**वनस्पते ! देवेभ्यः हविः अवसृज**) हे औषधि वनस्पतियों ! देवोंके लिये अन्नका निर्माण करो । (**पर्जन्यात् अन्नसंभवः** । गीता ३।१४) पर्जन्यसे अन्न उत्पन्न होता है पर्जन्यसे औषधियां और (**ओषधिभ्यो अन्नं**) औषधियोंसे अन्न उत्पन्न होता है । यही अन्न देवोंको दिया जाता है और पश्चात् यज्ञशेषका सेवन किया जाता है । इसी यज्ञशेष अन्न ' अमृत ' कहते हैं । (मं. ११)

दाताको उत्साह

(**दातुः चेतनं अस्तु**) दाताके लिये उत्साह मिले अधिक दान करते रहनेका उत्साह मनुष्यमें बढे । इससे यज्ञ कर्मकी वृद्धि होगी और मनुष्योंका हित होगा । (मं. ११)

स्वाहा करो

(**स्व-आ-हा-कृतिः**) जो अपनी वस्तु है, उस सबकी भलाईके लिये अर्पण करनेका नाम ' स्वाहा कृति ' है इसीका नाम यज्ञ है । सबकी यह उन्नतिके कृत्यमें अपना सब कुछ अर्पण करना है । मनुष्यका जीवनभी एक यज्ञकर्म है । और इस यज्ञसे ' स्वाहा ' ही मुख्य है । [illegible] सर्वत्रही मुख्य किया है । (मं. १२)

[illegible] इस [illegible] सूक्तका अन्त इस [illegible] [illegible] है

मंत्रोंके अर्थोंसे सूक्तका भाव स्पष्ट हो सकता है। अतः क मंत्रके स्पष्टीकरणकी आवश्यकता नहीं है। प्रायः हरएक ी सूक्तके मंत्रोंमें देवताएं इसी क्रमसे होती हैं, और वर्णन पद भी ऐसेही रहते हैं।

अग्निका वर्णन

(पावकः) पवित्रता करनेवाला, (होतः) बुलानेवाला, या हवन करनेवाला, (तनू-न-पात्) शरीरको न गिरने शरीरधारक, (कविः) ज्ञानी, (नराशंसः) मनुष्योंद्वारा सित, (मधुजिह्वः) मधुरभाषी, मीठी जबानवाला, (अन्न सिद्ध करनेवाला, (मनुः-हितः) मानवोंका हितकर्ता पद विचार करने योग्य है। ये गुण मानवोंको अपने यदाने चाहिये।

(३) हिंसारहित कर्म

(ऋ. मं. १।१४) मेधातिथिः काण्वः। विश्वे देवाः (विश्वैर्देवैः सहितोऽग्निः)। गायत्री।

एभिरग्ने दुवो गिरो विश्वेभिः सोमपीतये	। देवेभिर्याहि यक्षि च	१
आ त्वा कण्वा अहूषत गृणन्ति विप्र ते धियः	। देवेभिरग्न आ गहि	२
इन्द्रवायू बृहस्पतिं मित्राग्निं पूषणं भगम्	। आदित्यान् मारुतं गणम्	३
प्र वो भ्रियन्त इन्दवो मत्सरा मादयिष्णवः	। द्रप्सा मध्वश्चमूषदः	४
ईळते त्वामवस्यवः कण्वासो वृक्तबर्हिषः	। हविष्मन्तो अरंकृतः	५
घृतपृष्ठा मनोयुजो ये त्वा वहन्ति वह्नयः	। आ देवान्त्सोमपीतये	६
तान् यजत्राँ ऋतावृधोऽग्ने पत्नीवतस्कृधि	। मध्वः सुजिह्व पायय	७
ये यजत्रा य ईड्यास्ते ते पिबन्तु जिह्वया	। मधोरग्ने वषट्कृति	८
आकीं सूर्यस्य रोचनाद् विश्वान्देवाँ उषर्बुधः	। विप्रो होतेह वक्षति	९
विश्वेभिः सोम्यं मध्वग्न इन्द्रेण वायुना	। पिबा मित्रस्य धामभिः	१०
त्वं होता मनुर्हितोऽग्ने यज्ञेषु सीदसि	। सेमं नो अध्वरं यज	११
युक्ष्वा ह्यरुषी रथे हरितो देव रोहितः	। ताभिर्देवाँ इहा वह	१२

अन्वय — हे अग्ने ! एभिः विश्वेभिः देवेभिः सोमपीतये आयाहि। (अस्माकं) दुवः गिरः च (शृणु) यक्षि च ॥१॥ हे विप्र अग्ने ! कण्वाः त्वा आ अहूषत। ते धियः गृणन्ति। देवेभिः आ गहि ॥२॥ (हे अग्ने) वायू बृहस्पतिं मित्राग्निं पूषणं भगं आदित्यान् मारुतं गणं (यक्षि) ॥३॥ चमूषदः मत्सराः मादयिष्णवः द्रप्साः इन्दवः वः प्र म्रियन्ते ॥४॥ हविष्मन्तः अरंकृताः वृक्तबर्हिषः अवस्यवः कण्वासः त्वां ईळते ॥५॥ (हे अग्ने) ये मनोयुजः वह्नयः त्वा वहन्ति, (तैः) सोमपीतये देवान् आ (वह) ॥६॥ हे अग्ने ! तान् यजत्रान् ऋतावृधः ( ) पत्नीवतः कृधि। हे सुजिह्व ! मध्वः पायय ॥७॥ हे अग्ने ! ये यजत्राः, ये ईड्याः, ते ते वषट्कृति मधोः जिह्वया ॥८॥ विप्रः होता उषर्बुधः विश्वान् देवान् सूर्यस्य रोचनात् इह आकीं वक्षति ॥९॥ हे अग्ने ! (त्वं) विश्वेभिः (देवैः) इन्द्रेण, वायुना, मित्रस्य धामभिः सोम्यं मधु पिब ॥१०॥ हे अग्ने ! मनुर्हितः होता त्वं यज्ञेषु सीदसि। सः (त्वं) इमं अध्वरं यज ॥११॥ हे देव ! अरुषीः हरितः रोहितः रथे युक्ष्वहि। ताभिः देवान् इह आ वह ॥१२॥

अर्थ— हे अग्ने ! इन सब देवोंके साथ सोमपान करनेके लिये (यहां) आओ, (हमारी) पूजा (और प्रार्थनाके शब्द (सुन लो। और इस) यज्ञकी पूर्तता करो ॥१॥ हे ज्ञानी अग्ने ! कण्व तुझे बुला रहे हैं। तेरी बुद्धिकी (

रहा है, यह अग्नि (शारीरिक उष्णता) यहांका मुख्य याजक अग्नि है। इत्यादि सत्य वर्णन यहां है ऐसाही मानना योग्य है। मनुष्य जीवन एक महान् यज्ञ है और यह यज्ञ प्रत्यक्ष ही है।

यज्ञमें देवगण

यहांके यज्ञमें सब देवतागण यथास्थान विराजमान हैं (इन्द्र) मन है जो देवोंका राजा है, (वायु) मुख्य प्राण है, (बृहस्पति) वाणी और ज्ञान है, (मित्र) नेत्र है, (अग्नि) जाठर अग्नि, उष्णता और वाणीका प्रेरक शारीर अग्नि है, (पूषा) पोषक अन्नभाग, (भग) भाग्य, शोभा, ऐश्वर्य, (आदित्य) द्वादश महिने, कालके अवयव हैं, (मारुत गण) प्राण और उपप्राण, नाना जीवन शक्तियाँ (पत्नीवतः) इन की प्रेरक शक्तियाँ इस तरह ये सब देव यहां रहते हैं। हविष्यान्नका भोग करते हैं और आनन्द प्राप्त करके प्रसन्न होते हैं। पाठकोंको मननद्वारा इन देवताओंको जानना योग्य है।

सोमरस देवोंका अन्न

सोमरस ही देवोंका अन्न है। इस विषयमें कहा है–

अन्नं वै सोमः। (श. ३।९।१।८; ७।२।२।११)

एतद्वै देवानां परमं अन्नं यत्सोमः। (तै. ब्रा. १।३।३।२)

एतद्वै परमं अन्नाद्यं यत्सोमः। (कौ. १३।७)

एष वै सोमो राजा देवानां अन्नं। (श. १।६।४।५)

'यह सोमरस देवोंका अन्न है।' पूर्व आप्रीसूक्तमें (ऋ. १।१३।११ में) वनस्पतिसे अन्नकी प्रार्थना की है–

हे वनस्पते! देवेभ्यो हविः अवसृज। (ऋ. १।१३।११)

इसका हेतु स्पष्ट है कि देवोंका अन्न वनस्पतिसे मिलता है। '**ओषधिभ्योऽन्नं**' ऐसा तै. उपनिषद्ने भी कहा है। इस सबका आशय यही है कि वनस्पतिसे अन्न प्राप्त होता है, जो देवोंको देकर मानवोंको सेवन करने योग्य है।

सोमके गुण

इस सूक्तमें सोमके निम्नलिखित गुण कहे गये हैं।

१ **इन्दुः**– तेजस्वी रस

२ **मत्सरः**– आनन्द कर, मद कर

३ **मादयिष्णुः**– उत्साहवर्धक, मद बढानेवाला

४ **द्रप्सः**– बूंद बूंद चूनेवाला, छानकर तैयार होनेवाला

५ **मधुः**– मधुर

६ **चमूपद्**– पात्रमें जो रखा जाता है

७ **सोम्यं मधु**– सोमवल्लीका मधुर रस

सोमवल्लीका रस निकाला और छाना जाता है, वह भरा जाता है। वह मधुर है और हर्ष तथा उत्साह वाला है। यही आर्योंका मुख्य पेय था।

घोडे

घोडे किस तरह पाले जांय और रथके साथ जोते जांय, घोडे कैसे हों, इस विषयमें इस सूक्तमें अच्छे निर्देश हैं।

घृतपृष्ठाः– घी लगाये समान घोडोंकी पीठ तेजस्वी

मनोयुजः– इशारे मात्रसे वे जोते जांय और इशारेसेही चलते रहें, ऐसे शिक्षित घोडे हों,

३ **वह्नयः**– ढोनेमें, भार ढोनेमें समर्थ हों, अग्निके तेजस्वी हैं। यह अग्निवाचक पद घोडोंके लिये प्रयुक्त हुआ

४ **अरुषाः**– चपल, लाल रंगवाला,

५ **हरितः**– तेज चलनेवाले पीले रंगवाले घोडे,

७ **रोहितः**– लाल रंगवाले।

ऐसे घोडे रथको जोतनेके लिये उत्तम शिक्षित तैयार रहे। '**रथे रोहितः युक्ष्व**' (मं. १२) लाल रंगवाले घोडे जोतो, जो इशारेसे चलनेवाले हों। घोडे रथमें बैठनेवालेको सुख देंगे।

इस रथमें अग्निके साथ सब देव बैठते थे और इन्हें येही घोडे खींचकर लाते थे। इस सूक्तमें तृतीय मंत्रमें देव, बारह आदित्य और मरुद्गण ४९ गिनाये हैं, सब पार्श्वरक्षक १४ मिलकर ६३ होते हैं। अर्थात् ये ८२ कमसे कम ६८ देव तो हुए। इनको रथमें बिठलानेके रेलके बडे डब्बेके समान बडा भारी रथ होगा और उसे खींचनेके लिये कितने घोडे लगेंगे इसका पता नहीं। इस सूक्तमें वर्णित रथ इस शरीरको माननाही युक्तियुक्त क्योंकि यहां सब देवताएं हैं और इसको दस घोडे जोते और ये इस रथको खींचते भी हैं।

ये घोडे उत्तम शिक्षित हों, तथा तेजस्वी और चपल हों, अपना कार्य करनेकी क्षमता भी इनमें हो।

विप्र अग्नि

इस सूक्तमें अग्निको '**विप्र**' अर्थात् विशेष प्राज्ञ ज्ञानी कहा है। अग्निके मंत्रोंमें आदर्श ब्राह्मणके गुण देखते हैं ऐसा हमने मधुच्छन्दा ऋषिके दर्शनमें (पृष्ठ ३५१

वही यहां इस पदसे स्पष्ट होता है। (सुजिह्व) ठी जबानवाला, मीठा भाषण करनेवाला, यह पद भी ही वर्णन करता है।

देवोंके लक्षण

सूक्तमें देवोंके लक्षण जो आये हैं वे विशेषही मनन ने योग्य है—

यज्वानः– सतत यज्ञ करनेवाले, याजक। प्रशस्त कर्म ने,

स्तुत्याः– प्रशंसा करनेके लिये योग्य,

जागृवांसः– उषःकालमें जागनेवाले, उषःकालमें उठकर कार्य शुरू करनेवाले,

होता– हवन करनेवाला, देवताओंको बुलानेवाला,

मनुर्हितः– मनुष्योंका हित करनेवाला, जनताका हित तत्पर,

ऋतावृधः– सत्यमार्गके बढानेवाले,

गृहमेधवतः– गृहस्थाश्रमी।

ये गुण मनुष्योंको अपनाने योग्य हैं, मनुष्य उषःकालमें हवन करें, जनताका हित करें, इसीलिये नाना प्रकारके करें।

उपासकोंके लक्षण

इस सूक्तमें उपासकोंके भी लक्षण कहे हैं वे भी मननके हैं—

आर्ताः– आर्त, दुःखसे ग्रस्त, अपने दुःखको जानने, और उनको दूर करनेके इच्छुक, दुःखसे मुक्त होनेके मार्गको जाननेवाले, ज्ञानी जन,

२ वृक्त बर्हिषः– आसन फैलाकर उपासना करनेके लिये तत्पर,

३ हविष्मन्तः– हविष्य अन्न तैयार करके उसका समर्पण करनेवाले,

४ अरंकृतः– अलंकृत हुए, सजे हुए, अपना कर्म पूर्ण रूपसे सिद्ध करनेवाले, सुंदर रीतिसे अपना कर्तव्य करनेवाले,

५ अवस्यवः– अपना संरक्षण करनेके इच्छुक, अपनी सुरक्षा करनेमें तत्पर,

ये उपासकोंके लक्षण भी बोधप्रद हैं। ये अपनाने योग्य हैं।

अध्वर

यहां 'अध्वर' नामक यज्ञका वर्णन है। अध्वर वह कर्म है कि जिसमें हिंसा, कुटिलता अथवा तेढापन बिलकुल नहीं होता। मनुष्यको ऐसे ही कर्म करने चाहिये। देवोंके सामने अकुटिल कर्म ही करना है।

देवोंके कार्य

तृतीय मंत्रमें कुछ देवोंके नाम गिनाये हैं। (इन्द्रः) शत्रु-नाश करनेवाला, (वायुः) गतिमान, प्रगति करनेवाला, (बृहस्पतिः) ज्ञानी वक्ता, (मित्रः) हितकर्ता, (अग्निः) प्रकाश देनेवाला, मार्गदर्शक, (पूषा) पोषण करनेवाला, (भगः) ऐश्वर्यवान्, (आदित्यः) तेजवाला, धारणकर्ता, (मारुतोगणः) संघसे रहनेवाले। मनुष्योंको इन गुणोंको अपनाना चाहिये। जिससे उनमें देवत्वका विकास होगा।

इस तरह सूक्तका मनन करके बोध लेना उचित है।

---

(४) दुर्दम्य बल

(ऋ. मं. १।१५) मेधातिथिः काण्वः। [प्रतिदैवतं कतुनरिक्तम्] १ इन्द्रः, २ मरुतः, ३ त्वष्टा, ४ अग्निः, ५ इन्द्रः, ६ मित्रावरुणौ, ७-१० अश्विनौ, ११ अग्निः। गायत्री।

इन्द्र सोमं पिब कतुनाऽऽ त्वा विशन्त्विन्दवः । मत्सरासस्तदोकसः ॥ १
मरुतः पिबत कतुना पोत्राद् यज्ञं पुनीतन । यूयं हि ष्ठा सुदानवः ॥ २
अभि यज्ञं गृणीहि नो ग्नावो नेष्टः पिब कतुना । त्वं हि रत्नधा असि ॥ ३
अग्ने देवाँ इहा वह सादया योनिषु त्रिषु । परि भूष पिब कतुना ॥ ४
आकृत्याद्रिभ्र आपृतः पिबा सोमस्यौजसः । गोभिः सन्नद्धो अक्तुभिः ॥ ५

युवं दक्षं धृतव्रत मित्रावरुण दूळभम्	।	ऋतुना यज्ञमाशाथे ६
द्रविणोदा द्रविणसो ग्रावहस्तासो अध्वरे	।	यज्ञेषु देवमीळते ७
द्रविणोदा ददातु नो वसूनि यानि शृण्विरे	।	देवेषु ता वनामहे ८
द्रविणोदाः पिपीषति जुहोत प्र च तिष्ठत	।	नेष्ट्रादृतुभिरिष्यत ९
यत् त्वा तुरीयमृतुभिर्द्रविणोदो यजामहे	।	अध स्मा नो ददिर्भव १०
अश्विना पिबतं मधु दीद्यग्नी शुचिव्रता	।	ऋतुना यज्ञवाहसा ११
गार्हपत्येन सन्त्य ऋतुना यज्ञनीरसि	।	देवान् देवयते यज १२

अन्वयः— हे इन्द्र ! ऋतुना सोम पिब । इन्दवः त्वा आ विशन्तु । तदोकसः मत्सराः ॥१॥ हे मरुतः ! ऋतुना पिबत । यज्ञं पुनीत । हे सुदानवः ! हि यूयं स्थ ॥२॥ हे ग्रावः नेष्टः ! नः यज्ञं अभि गृणीहि । ऋतुना ( ) पिब । हि त्वं रत्नधाः असि ॥३॥ हे अग्ने ! देवान् इह आ वह । त्रिषु योनिषु सादय । परि भूष । ऋतुना पिब ॥४॥ इन्द्र ! ब्राह्मणात्, राधसः, ऋतून् अनु, सोमं पिब । हि तव इत् सख्यं अस्तृतम् ॥५॥ हे घृतव्रता मित्रावरुणा ! ऋतुना, दूळभं दक्षं यज्ञं आशाथे ॥६॥ द्रविणसः ग्रावहस्तासः अध्वरे यज्ञेषु (च) द्रविणोदाः देवं ईळते ॥७॥ द्रवि नः वसूनि ददातु, यानि शृण्विरे, ता देवेषु वनामहे ॥८॥ द्रविणोदाः नेष्टात् ऋतुभिः पिपीषति, (अतः हे या इष्यत, जुहोत, च प्र तिष्ठत ॥९॥ हे द्रविणोदः । यत् ऋतुभिः त्वा तुरीयं यजामहे । अध, नः ददिः भव स्म ॥ हे दीद्यग्नी शुचिव्रता ऋतुना यज्ञवाहसा अश्विना ! मधु पिबतम् ॥११॥ हे सन्त्य ! गार्हपत्येन ऋतुना यज्ञनीः देवयते देवान् यज ॥१२॥

अर्थ— हे इन्द्र ! ऋतुके अनुकूल सोमरसका पान करो । ये सोमरस तेरे अन्दर प्रविष्ट हों । वही घर इन वर्धक सोमरसोंका है ॥१॥ हे मरुतो ! पोतृनामक पात्रसे ऋतुके साथ (सोमरस) पीओ ! हमारे यज्ञको पवित्र करो। उत्तम दान देनेवाले (मरुतो)! तुम वैसेही (पवित्रता करनेवाले) हो ॥२॥ हे पत्नीसहित प्रगतिशील याजक ! यज्ञकी प्रशंसा कर । ऋतुके अनुसार (सोमरसका) पान कर । तू रत्नोंका धारणकर्ता है ॥३॥ हे अग्ने ! अपने साथ को ले आ । तीनों स्थानोंपर (उनको) बिठला । (उनको) अलंकृत कर । और ऋतुके अनुसार (सोमरसका) पान ॥४॥ हे इन्द्र ! ब्राह्मणके पाससे, उसके पात्रसे, ऋतुके अनुसार, सोमरस पी । क्योंकि तेरी मित्रता अटूट है ॥५॥ नियमोंके पालन करनेवाले मित्र और वरुण देवो ! तुम दोनों मिलकर, ऋतुके अनुसार, दुर्दमनीय बल बढानेवाले य सिद्ध करते हैं ॥६॥ धन प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले हाथमें सोम कूटनेके पत्थर लेकर यज्ञमें और प्रत्येक कर्मम देनेवाले देवकी स्तुति गाते हैं ॥७॥ धन देनेवाला देव हमें वे अनेक धन देवे, कि जिन (धनोंका) वर्णन हम सुनते हैं। वे धन हम देवोंकोही (पुनः) अर्पण करेंगे ॥८॥ धन देनेवाला देव नेष्टृसंबंधी पात्रसे ऋतुके अनुसार (सो पीनेकी इच्छा करता है । (इसलिये हे याजको !) वहां जाओ, हवन करो, और पश्चात् (वहांसे) चले आओ ! हे धनके दाता देव ! जिस कारण हम ऋतुओंके अनुसार तुझे चतुर्थ भागका अर्पण करते हैं, उस कारण हमारे लि धनका दान करनेवाला हो ॥१०॥ हे तेजस्वी शुद्ध कर्म करनेवाले, ऋतुके अनुसार यज्ञ करनेवाले अश्विदेवो ! इस सोमरसका पान करो ॥११॥ हे फलदाता देव ! तू गार्हपत्यके नियमोंके अनुसार ऋतुके अनुकूल रहकर यज्ञ करने है, अतः देवत्व प्राप्तीकी इच्छा करनेवालेके लिये देवोंको हविर्भाग पहुंचा दे ॥१२॥

ऋतुओंके अनुकूल व्यवहार

इस सूक्तमें ऋतुके साथ रहकर कार्य करनेका मुख्य संदेश है । 'ऋतुना पिब' (मं. १,३-४), 'ऋतुना पिबत' (मं. २,११), 'ऋतून् अनु पिब' (मं. ५) 'ऋतुभिः इष्यत' (मं. ९), 'ऋतुभिः यजामहे' (मं. १ 'ऋतुना यज्ञनीः असि' (मं. १२), 'ऋतुना द दक्षं यज्ञं आशाथे' (मं. ६) अर्थात् ऋतुके साथ रह करो, ऋतुओंके अनुकूल रसपान करो, ऋतुओंके साथ

ऋतुओंके साथ यज्ञ करते हैं, ऋतुके अनुकूल यज्ञ चलानेवाला हो। ऋतुके अनुकूल रहनेसे दुर्दमनीय बल बढानेवाला यज्ञ होता है।

इनमें सबसे अन्तिम मन्त्रभाग बडा महत्त्वपूर्ण है।

न दबनेवाला बल

'दूळभं दक्षं' दुर्दमनीय अर्थात् न दबनेवाला बल प्राप्यको प्राप्त करना आवश्यक है। यह बल तब प्राप्त होगा, जब मनुष्य 'ऋतुना यज्ञं आशाथे' ऋतुओंके अनुकूल यज्ञ ऐसे कर्म करता रहेगा। यह महत्त्वपूर्ण संदेश इस सूक्तने दिया है। मनुष्य बल बढाना तो चाहता है, पर ऋतुके अनुकूल अपनी दिनचर्या करना नहीं चाहता। अतः उसको सिद्धि नहीं मिलती।

वर्षमें वसंत ग्रीष्म वर्षा शरत् हेमन्त और शिशिर ये छः ऋतु हैं, मानवी आयुष्यमें बाल, कुमार, युवा, परिहान, वृद्ध और जीर्ण ये छः ऋतु हैं। दिनमें भी उषःकाल, उदयकाल, मध्यान्ह, अपराह्न, सायंकाल और रात्री ये ऋतु हैं। इस तरह ऋतु स्थानस्थानपर काल विभागके अन्दर विद्यमान हैं। उनके अनुकूल अपना कार्य करना चाहिये। खानपान, पहनेलत्ते, आचार व्यवहार, आराम और विश्राम ऋतुके अनुसार करनेसेही मनुष्य उन्नत हो सकता है। इसका बल बढाना होगा तो उसके योग्य ऋतुचर्यासेही बढ सकता है। अतः न दबनेवाला बल बढाना है यह ध्यानमें धारण करके ऋतुके अनुसार अपना आचार करना मनुष्यके लिये योग्य है।

इस सूक्तमें 'सोमपान' का विषय है इसलिये वह ऋतुके अनुसार पीना ऐसा कहा है। अर्थात् सोमरस दूध, दही, सत्तू, शहद आदिके साथ पीया जाता है। जिस ऋतुमें जैसा पीना योग्य होगा, वैसा पीना चाहिये जिससे वह बल बढाकर हित करेगा। अन्यथा वैसा लाभ नहीं होगा।

इस सूक्तमें सर्वत्र ऋतुके अनुसार सोम पीनेकाही उल्लेख है ऐसा भी नहीं है, देखिये—

ऋतुभिः इष्यत, प्रतिहृत। (मं. ९)
ऋतुभिः यजामहे। (मं. १०)
ऋतुना यज्ञनीः असि। (मं. १२)

ऋतुओंके अनुकूल चलो, रहो। ऋतुओंके अनुसार यज्ञ करते हैं। ऋतुके अनुसार यज्ञ चलानेवाला हो। इत्यादि वचन मनुष्यको सर्वसामान्य आचार व्यवहारकी सूचना दे रहे हैं। मनुष्यको अदम्य बल प्राप्त करना है वह ऐसे ही आचारसे प्राप्त होगा।

इस सूक्तमें 'इन्द्र, मरुत्, त्वष्टा, अग्नि, मित्र, वरुण, द्रविणोदा, अश्विनौ' इन देवताओंका वर्णन है।

देवताके गुण

इस सूक्तमें देवताओंके कुछ गुण दिये हैं वे मनन करने योग्य हैं—

१ **सुदानवः** (सु–दानुः)= उत्तम दान करनेवाला, देने योग्य दान सत्पात्रमें देनेवाला।

प्रायः देव दाता होते हैं, पर यहां (सु-दानु) उत्तम दाता होनेका वर्णन है। केवल दातृत्वकी अपेक्षा उत्तम दातृत्व निःसंदेह प्रशंसाके योग्य है।

२ **रत्नधा**– रत्नोंका धारण करना। यह पद अग्निके (१।१।१ में) मंत्रमें अग्निका विशेषण आया है। वह 'रत्न- धा- तम' पद है। यहां 'रत्न- धा' है।

३ **अस्तृतं सख्यं**– अटूट मित्रता। देवोंके साथ एकवार मित्रता हुई तो वह अटूट रहती है।

४ **दूळभं दक्षं**– अदम्य बलका धारण करना।

५ **द्रविणोदा**– धनका दान करना। ये गुण मनुष्योंने अपनाने योग्य है।

ऋत्विजोंके नाम

इस सूक्तमें 'ब्राह्मण' (५), 'नेष्टा' (३,९) और 'पोतृ' (२) ये ऋत्विजोंके नाम आये हैं। ब्राह्मणका अर्थ यहां 'ब्राह्मणात् शंसीः' नामक ऋत्विज है। यहां द्वितीय मंत्रमें 'पोत्र' पद है वह 'पोतृ' नामक ऋत्विजका स्थान है। पवित्रता करना इसका कार्य है यह ब्रह्माका सहायक है।

सोम कूटनेके पत्थर

इस सूक्तमें 'ग्राव-हस्तासः' (मं. ७) पद है। पत्थर हाथमें लिये ऋत्विज सोमको कूटते और उसका रस निकालते हैं। सोमका रस निकालनेका साधन यह है। आगे इसका वर्णन बहुत आनेवाला है।

युवं दक्षं धृतव्रत मित्रावरुण दूळभम् । ऋतुना यज्ञमाशाथे ६
द्रविणोदा द्रविणसो ग्रावहस्तासो अध्वरे । यज्ञेषु देवमीळते ७
द्रविणोदा ददातु नो वसूनि यानि शृण्विरे । देवेषु ता वनामहे ८
द्रविणोदाः पिपीषति जुहोत प्र च तिष्ठत । नेष्ट्रादृतुभिरिष्यत ९
यत् त्वा तुरीयमृतुभिर्द्रविणोदो यजामहे । अध स्मा नो ददिर्भव १०
अश्विना पिबतं मधु दीद्यग्नी शुचिव्रता । ऋतुना यज्ञवाहसा ११
गार्हपत्येन सन्त्य ऋतुना यज्ञनीरसि । देवान् देवयते यज १२

अन्वयः— हे इन्द्र ! ऋतुना सोम पिब । इन्दवः त्वा आ विशन्तु । तदोकसः मत्सराः ॥१॥ हे मरुतः ! ऋतुना पिबत । यज्ञं पुनीत । हे सुदानवः ! हि यूयं स्थ ॥२॥ हे ग्रावः नेष्टः ! नः यज्ञं अभि गृणीहि । ऋतुना (पिब । हि त्वं रत्नधा असि ॥३॥ हे अग्ने ! देवान् इह आ वह । त्रिषु योनिषु सादय । परि भूष । ऋतुना पिब इन्द्र ! ग्रावभ्यां, राधसः, ऋतून् अनु, सोमं पिब । हि तव इत् सख्यं अस्तृतम् ॥५॥ हे धृतव्रता मित्रावरुणा ! ऋतुना, दूळभं दक्षं यज्ञं आशाथे ॥६॥ द्रविणसः ग्रावहस्तासः अध्वरे यज्ञेषु (च) द्रविणोदाः देवं ईळते ॥७॥ द्र नः वसूनि ददातु, यानि शृण्विरे, ता देवेषु वनामहे ॥८॥ द्रविणोदाः नेष्टात् ऋतुभिः पिपीषति, (अतः हे ऋत्विजः, जुहोत, च प्र तिष्ठत ॥९॥ हे द्रविणोदः । यत् ऋतुभिः त्वा तुरीयं यजामहे । अध, नः ददिः भव स्म ॥ हे दीप्ताग्नी शुचिव्रता ऋतुना यज्ञवाहसा अश्विना ! मधु पिबतम् ॥११॥ हे सन्त्य ! गार्हपत्येन ऋतुना यज्ञनीः देवयते देवान् यज ॥१२॥

अर्थ— हे इन्द्र ! ऋतुके अनुकूल सोमरसका पान करो । ये सोमरस तेरे अन्दर प्रविष्ट हों । वही घर इन [illegible] सोमरसोंका है ॥१॥ हे मरुतो ! पोतृनामक पात्रसे ऋतुके साथ (सोमरस) पीओ ! हमारे यज्ञको पवित्र करो। [illegible] दान देनेवाले (मरुतो)! तुम वैसेही (पवित्रता करनेवाले) हो ॥२॥ हे पत्नीसहित प्रगतिशील याजक! [illegible] प्रशंसा कर । ऋतुके अनुसार (सोमरसका) पान कर । तू रत्नोंका धारणकर्ता है ॥३॥ हे अग्ने ! अपने साथ [illegible] ले आ । तीनों स्थानोंपर (उनको) बिठला । (उनको) अलंकृत कर । और ऋतुके अनुसार (सोमरसका) पान [illegible] हे इन्द्र ! अद्रिओंके पात्रसे, उसके पात्रसे, ऋतुके अनुसार, सोमरस पी । क्योंकि तेरी मित्रता अटूट है ॥५॥ [illegible] पालन करनेवाले मित्र और वरुण देवो ! तुम दोनों मिलकर, ऋतुके अनुसार, दुर्दमनीय बल बढानेवाले [illegible] करते हैं ॥६॥ धन प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले हाथमें सोम कूटनेके पत्थर लेकर यज्ञमें और प्रत्येक कर्ममें [illegible] देवकी स्तुति गाते हैं ॥७॥ धन देनेवाला देव हमें वे अनेक धन देवे, कि जिन (धनोंका) वर्णन हम सुनते [illegible] वे धन हम देवोंको ही (पुनः) अर्पण करेंगे ॥८॥ धन देनेवाला देव नेष्टृसंबंधी पात्रसे ऋतुके अनुसार ([illegible] इच्छा करता है । (इसलिये हे याजको !) वहां जाओ, हवन करो, और पश्चात् (वहांसे) चले आओ [illegible] हे ऋत्विजो ! इस कारण हम ऋतुओंके अनुसार तुझे चतुर्थ भागका अर्पण करते हैं, उस कारण हमारे [illegible] यज्ञ करनेवाले हों ॥१०॥ हे तेजस्वी शुद्ध कर्म करनेवाले, ऋतुके अनुसार यज्ञ करनेवाले अश्विदेवो ! तुम [illegible] सोमरसका पान करो ॥११॥ हे फलदाता देव ! तू गार्हपत्यके नियमोंके अनुसार ऋतुके अनुकूल रहकर यज्ञ [illegible] करनेवाले देवोंकी इच्छा करनेवालेके लिये देवोंको हविर्भाग पहुंचा दे ॥१२॥

ऋतुओंके अनुकूल व्यवहार

[illegible] ऋतुओंके अनुकूल रहकर कर्म करनेका मुख्य संदेश [illegible] ऋतुना पिब' (मं. १), 'ऋतुना पिबत' [illegible] 'ऋतुना अनु पिब' [illegible] 'ऋतुभिः इष्यत' (मं. १), 'ऋतुभिः यजामहे' (मं. [illegible] 'ऋतुना यज्ञनीः असि' (मं. १२), 'ऋतुना दक्षं यज्ञं आशाथे' (मं. ६) अर्थात् ऋतुके साथ [illegible] करो, ऋतुओंके अनुकूल रसपान करो, ऋतुओंके साथ [illegible]

ुओंके साथ यज्ञ करते हैं, ऋतुके अनुकूल यज्ञ चलानेवाला हो। ऋतुके अनुकूल रहनेसे दुर्दमनीय बल बढानेवाला यज्ञ ा है।

इनमें सबसे अन्तिम मन्त्रभाग बडा महत्त्वपूर्ण है।

न दबनेवाला बल

'**दूळभं दक्षं**' दुर्दमनीय अर्थात् न दबनेवाला बल ुष्यको प्राप्त करना आवश्यक है। यह बल तब प्राप्त होगा, ब मनुष्य '**ऋतुना यक्षं आशाथे**' ऋतुओंके अनुकूल ने कर्म करता रहेगा। यह महत्त्वपूर्ण संदेश इस सूक्तने या है। मनुष्य बल बढाना तो चाहता है, पर ऋतुके अनुकूल नी दिनचर्या करना नहीं चाहता। अतः उसको सिद्धि नहीं लती।

वर्षमें वसंत ग्रीष्म वर्षा शरत् हेमन्त और शिशिर ये छः तु हैं, मानवी आयुष्यमें बाल, कुमार, युवा, परिहान, वृद्ध र जीर्ण ये छः ऋतु हैं। दिनमें भी उषःकाल, उदयकाल, ाह्न, अपराह्न, सायंकाल और रात्री ये ऋतु हैं। इस तरह तु स्थानस्थानपर काल विभागके अन्दर विद्यमान हैं। नके अनुकूल अपना कार्य करना चाहिये। खानपान, पहेलत्ते, आचार व्यवहार, आराम और विश्राम ऋतुके नुसार करनेसेही मनुष्य उन्नत हो सकता है। इसका बल ढना होगा तो उसके योग्य ऋतुचर्यासेही बढ सकता है। तः न दबनेवाला बल बढाना है यह ध्यानमें धारण करके तुके अनुसार अपना आचार करना मनुष्यके लिये योग्य है।

इस सूक्तमें 'सोमपान 'का विषय है इसलिये वह ऋतुके नुसार पीना ऐसा कहा है। अर्थात् सोमरस दूध, दही, सत्तू, ाहद आदिके साथ पीया जाता है। जिस ऋतुमें जैसा पीना ोग्य होगा, वैसा पीना चाहिये जिससे वह बल बढाकर हित रेगा। अन्यथा वैसा लाभ नही होगा।

इस सूक्तमें सर्वत्र ऋतुके अनुसार सोम पीनेकाही उल्लेख है ैसा भी नही है, देखिये—

ऋतुभिः इष्यत, प्रतिष्टत। (मं. ९)
ऋतुभिः यजामहे। (मं. १०)
ऋतुना यज्ञनीः असि। (मं. १२)

ऋतुओंके अनुकूल चलो, रहो। ऋतुओंके अनुसार यज्ञ करते हैं। ऋतुके अनुसार यज्ञ चलानेवाला हो। इत्यादि वचन मनुष्यको सर्वसामान्य आचार व्यवहारकी सूचना दे रहे हैं। मनुष्यको अदम्य बल प्राप्त करना है वह ऐसे ही आचारसे प्राप्त होगा।

इस सूक्तमें 'इन्द्र, मरुत्, त्वष्टा, अग्नि, मित्र, वरुण, द्रविणोदा, अश्विनौ' इन देवताओंका वर्णन है।

देवताके गुण

इस सूक्तमें देवताओंके कुछ गुण दिये हैं वे मनन करने योग्य है–

१ **सुदानवः** (सु– दानुः)= उत्तम दान करनेवाला, देने योग्य दान सत्पात्रमें देनेवाला।-

प्रायः देव दाता होते हैं, पर यहां (सु-दानु) उत्तम दाता होनेका वर्णन है। केवल दातृत्वकी अपेक्षा उत्तम दातृत्व निःसंदेह प्रशंसाके योग्य है।

२ **रत्नधा**– रत्नोंका धारण करना। यह पद अग्निके (१।१।१ में) मंत्रमें अग्निका विशेषण आया है। वहा '**रत्न– धा– तम**' पद है। यहां '**रत्न– धा**' है।

३ **अस्तृतं सख्यं**– अटूट मित्रता। देवोंके साथ एकबार मित्रता हुई तो वह अटूट रहती है।

४ **दूळभं दक्षं**– अदम्य बलका धारण करना।

५ **द्रविणोदा**– धनका दान करना। ये गुण मनुष्योंको अपनाने योग्य है।

ऋत्विजोंके नाम

इस सूक्तमें '**ब्राह्मण**' (५), '**नेष्टा**' (३,९) और '**पोतृ**' (२) ये ऋत्विजोंके नाम आये हैं। ब्राह्मणका अर्थ यहां 'ब्राह्मणात् शंसीः' नामक ऋत्विज है। यहां द्वितीय मंत्रमें 'पोत्र' पद है वह 'पोतृ' नामक ऋत्विजका स्थान है। पवित्रता करना इसका कार्य है यह ब्रह्माका सहायक है।

सोम कूटनेके पत्थर

इस सूक्तमें '**ग्राव-हस्तासः**' (मं. ७) पद है। पत्थर हाथमें लिये ऋत्विज सोमको कूटते और उसका रस निकरलते हैं। सोमका रस निकालनेका साधन यह है। आगे इसका वर्णन बहुत आनेवाला है।

गार्हपत्य

'गार्हपत्य' (मं. १२) पद यहां है। गृहपति धर्मका यह बोधक है। गृहस्थही यज्ञका अधिकारी है। अतः 'ग्ना-वः' (मं. ३) धर्मपत्नीके साथ नेष्टा नामक ऋत्विजका वर्णन देखने योग्य है। यहां यज्ञमें आनेवाले देवभी धर्मपत्नीयोंके साथ रहनेवाले हैं, यद्यपि हरएक यज्ञमें वे अपनी पत्नियोंके ऐसी बात नहीं है, तथापि वे गृहस्थी हैं। ग्ना (मा- वः) धर्मपत्नीवालेही होते हैं। यजमानकी पत्नी यज्ञमंडपमें ही रहती है। इस तरह यह वैदिक गृहस्थियोंका मार्ग है। यह बात वेदका विचार करते अवश्य स्मरण रखनी चाहिये।

(५) भरपूर गौवें चाहिये

(ऋ० मं. १।१६) मेधातिथिः काण्वः। इन्द्रः। गायत्री।

आ त्वा वहन्तु हरयो वृषणं सोमपीतये	इन्द्र त्वा सूरचक्षसः	१
इमा धाना घृतस्नुवो हरी इहोप वक्षतः	इन्द्रं सुखतमे रथे	२
इन्द्रं प्रातर्हवामह इन्द्रं प्रयत्यध्वरे	इन्द्रं सोमस्य पीतये	३
उप नः सुतमा गहि हरिभिरिन्द्र केशिभिः	सुते हि त्वा हवामहे	४
सेमं नः स्तोममा गह्युपेदं सवनं सुतम्	गौरो न तृषितः पिब	५
इमे सोमास इन्दवः सुतासो अधि बर्हिषि	ताँ इन्द्र सहसे पिब	६
अयं ते स्तोमो अग्रियो हृदिस्पृगस्तु शंतमः	अथा सोमं सुतं पिब	७
विश्वमित्सवनं सुतमिन्द्रो मदाय गच्छति	वृत्रहा सोमपीतये	८
सेमं नः काममा पृण गोभिरश्वैः शतक्रतो	स्तवाम त्वा स्वाध्यः	९

अन्वयः— हे इन्द्र! वृषणं त्वा त्वा सूरचक्षसः हरयः सोमपीतये आ वहन्तु ॥१॥ हरी इमाः घृतस्नुवः सुखतमे रथे इन्द्रं इह उप वक्षतः ॥२॥ प्रातः इन्द्रं हवामहे। अध्वरे प्रयति इन्द्रं। सोमस्य पीतये इन्द्रं (हवामहे) हे इन्द्र! केशिभिः हरिभिः नः सुतं उप आ गहि। हि त्वा सुते हवामहे ॥४॥ सः (त्वं) नः इमं स्तोमं आ गहि सुतं सवनं उप। तृषितः गौरः न पिब ॥५॥ इमे सुतासः इन्दवः सोमासः बर्हिषि अधि। हे इन्द्र! तान् सहसे पिब अयं स्तोमः अग्रियः, ते हृदिस्पृक् शंतमः अस्तु। अथ सुतं सोमं पिब ॥७॥ वृत्रहा इन्द्रः मदाय, सोमपीतये, सवनं इत् गच्छति ॥८॥ हे शतक्रतो! सः (त्वं) नः इमं कामं गोभिः अश्वैः आ पृण। स्वाध्यः त्वा स्तवाम ॥९॥

अर्थ— हे इन्द्र! तुझे सामर्थ्यवान्को सूर्यके समान तेजस्वी घोडे सोमपानके लिये ले आवें ॥१॥ (ये) दोनों इन घीसे भीगे भूने धान्यके साथ उत्तम रथमें इन्द्रको बिठलाकर यहां (यज्ञके) पास ले आवें ॥२॥ प्रातःकाल प्रशंसा हम करते हैं। यज्ञके प्रारंभ होनेपर (मध्यदिनमें हम) इन्द्रकी स्तुति करते हैं। और करनेके समय (शामके समय भी हम) इन्द्रकी स्तुति करते हैं ॥३॥ हे इन्द्र! बालोंवाले घोडोंसे तुम हमारे पास आओ। क्योंकि तुम्हें सोमयाग शुरू होनेपर ही बुलाते हैं ॥४॥ वह तुम हमारे इस (अग्नि-) सोम यागके आओ। यह सोमरस (तैयार हुआ है उसके) पास (आओ)। और प्यासे गौर मृगके समान (इस रसको) ये निचोडकर रखे रसीले सोमरस दर्भोंपर रखे हैं। हे इन्द्र! उनका बल बढानेके लिये पान करो ॥६॥ यह यज्ञ मुख्य है, (वह) तेरे लिये हृदयस्पर्शी तथा आनन्ददायी हो। और इस निचोडे सोमरसको पीओ ॥७॥ यह वध करनेवाला इन्द्र, अपना उत्साह बढानेके लिये, सोमपानके उद्देश्यसे, सभी सोमयागके सवनोंमें जाता है ॥८॥ सौ यज्ञ करनेवाले इन्द्र! वह (तुम) हमारी इस कामनाको गौओं और घोडोंसे पूर्ण करो। उत्तम ध्यानसे तुम्हारी हम करते हैं ॥९॥

दिनमें तीनवार उपासना

इन्द्रकी तीनवार उपासना इस सूक्तके तृतीय मंत्रमें कही है।

इन्द्रं प्रातः हवामहे (प्रातःसवने)।
इन्द्रं क्षये प्रयति (माध्यंदिनसवने हवामहे)।
इन्द्रं सोमस्य पीतये (तृतीयसवने हवामहे)।

यज्ञमें प्रातःसवन प्रातःकालमें होता है, मध्यदिनमें माध्यंदिनसवन होता है, और शामको सायंसवन होता है। और इनको सोमरसका पान करते हैं। इन तीनों सवनोंमें इन्द्रकी प्रीति प्रार्थना उपासना होती है। यज्ञके तीन सवनोंके साथ इन्द्रकी तीनवार उपासना करनेका तत्त्व संबंधित है।

उपासककी इच्छा

(गोभिः अश्वैः नः कामं आ पृण। मं. ९) गौवें और घोडे पर्याप्त संख्यामें देकर हमारी कामना परिपूर्ण करो। सारे घरोंमें पर्याप्त गौवें और घोडे रहें। घरकी पूर्णता इनसे होती है। घरमें दूध देनेवाली गौवें रहीं तो वहांसे सब मनुष्य हृष्टपुष्ट रहते हैं।

इन्द्रके गुण

यहां इन्द्रके कुछ गुणोंका वर्णन है वह देखिये–

१ इन्द्रः— शत्रुका नाश करनेवाला, तेजस्वी वीर,

२ वृषणः— बलवान्, वीर्यवान्, सामर्थ्यवान्, वृष्टी करनेवाला,

३ वृत्रहा— वृत्र नामक असुरका वध करनेवाला वीर, घेर कर लडनेवाले घातक शत्रुका नाश करनेवाला,

४ शतक्रतुः- सैकडों शुभकर्म करनेवाला वीर,

५ सूरचक्षसः हरयः वहन्ति- सूर्यके समान चमकनेवाले घोडे (इसके रथमें जोते रहते हैं जो इसको इधर उधर) ले जाते हैं। (यहां कमसे कम तीन या चार घोडे जाते हैं ऐसा वर्णन है।)

६ इन्द्रं सुखतमे रथे हरी वक्षतः— इन्द्रको अत्यंत सुखदायी रथमें बिठलाकर उसको दो घोडे यहां लाते हैं। (यहां दो घोडे जोते रहते हैं ऐसा वर्णन है। रथ भी अत्यंत सुंदर और अत्यंत सुखदायी है।)

७ केशिभिः हरिभिः आ गहि— उत्तम अयालवाले घोडोंको (रथके साथ जोतकर यहां) आओ। (यहां भी तीन या चार घोडोंका उल्लेख है।) यहां घोडोंकी सुंदर अयालका वर्णन है।

८ सहसे तान् पिब— बल बढानेके लिये वह इन्द्र सोमरसको पीता है। सोमपानसे बल उत्साह और वीर्य बढता है।

यहां इन्द्रके गुण, घोडोंका वर्णन और सोमका वर्णन है। पाठक इसका मनन करें।

---

(६) दो उत्तम सम्राट्

(ऋ. मं. १।१७) मेधातिथिः काण्वः। इन्द्रावरुणौ। गायत्री, ४–५ पादनिचृत् (५ हसीयसी वा) गायत्री।

इन्द्रावरुणयोरहं सम्राजोरव आ वृणे । ता नो मृळात ईदृशे १
गन्तारा हि स्थोऽवसे हवं विप्रस्य मावतः । धर्तारा चर्षणीनाम् २
अनुकामं तर्पयेथामिन्द्रावरुण राय आ । ता वां नेदिष्ठमीमहे ३
सुवाकु हि शचीनां सुवाकु सुमतीनाम् । भूयाम वाजदातमाम् ४
इन्द्रः सहस्रदामां वरुणः शंस्यानाम् । मनुर्भवन्यक्ष्यः ५
तयोरिदवसा वयं सनेम नि च धीमहि । स्यादुत प्ररेचनम् ६
इन्द्रावरुण यामहे हुवे विश्राय राधसे । अस्मान्सु जिग्युषस्कृतम् ७
इन्द्रावरुण नू नु वां सिषासन्तीषु धीष्वा । अस्मभ्यं शर्म यच्छतम् ८
न यामभिश्चनु मुचानिरिन्द्रावरुण यां हुवे । यानुधाव सधस्तुतिम् ९

अन्वयः- अहं इन्द्रावरुणयोः सम्राजोः अवः आ वृणे । ईदृशे ता नः मृळातः ॥१॥ चर्षणीनां धर्तारौ, विप्रस्य अवसे हवं गन्तारा हि स्थ ॥२॥ हे इन्द्रावरुणा ! अनुकामं तर्पयेथां आ तर्पयेथां । सा वां मेदिष्ठं इन्द्रवे शचीनां युवाकु । सुमतीनां युवाकु । राजदान्नां (मुख्याः) भूयास ॥४॥ इन्द्रः सहस्रदान्नां कतुः, वरुणः शंस्यानां भवति ॥५॥ तयोः अवसा इत् वयं (धनं) सनेम, निधीमहि च । उत प्रेरेचनं स्यात् ॥६॥ हे इन्द्रावरुणा ! वां चित्राय राधसे हुवे । अस्मान् सु जिग्युषः कृतम् ॥७॥ हे इन्द्रावरुणा ! भीषु वां विशावत्सीषु, अस्मभ्यं शर्म यच्छतम् ॥८॥ हे इन्द्रावरुणा ! यां सधस्तुतिं हुवे, यां कक्षाणे, सा सुष्टुतिः वां प्र अभोतु ॥९॥

अर्थ- मैं इन्द्र और वरुण नामक दोनों सम्राटोंसे अपनी सुरक्षा करनेकी शक्ति प्राप्त करना चाहता हूं। ऐसी स्थितिमें वे दोनों हमें सुखी करेंगे ॥१॥ (ये दोनों सम्राट्) मानवोंका धारणपोषण करनेवाले हैं। मुझ जैसे सुरक्षा करनेके लिये पुकारके स्थानतक जानेवाले होओ ॥२॥ हे इन्द्र और वरुण ! हमारे मनोरथके अनुसार धन से तृप्त करो । तुम दोनोंका हमारे समीप रहना ही हम चाहते हैं ॥३॥ शक्तियोंकी संगठना हुई है। और एकता हुई है। अन्न दान करनेवालोंमें (हम मुख्य) बनें ॥४॥ इन्द्र सहस्रों दाताओंमें (मुख्य) कार्यकर्ता है, वरुण (सहस्रों) प्रशंसनीयोंमें (मुख्य) प्रशंसित होने योग्य हैं ॥५॥ उनकी सुरक्षासे (सुरक्षित हुए) हम (धन) प्राप्त करना और संग्रह करना चाहते हैं। चाहे उससे भी अधिक धन (हमारे पास) हो ॥६॥ हे इन्द्र और वरुण दोनोंकी मैं अद्भुत सिद्धिके लिये प्रार्थना करता हूं। (तुम दोनों) हमें उत्तम विजयी बनाओ ॥७॥ हे इन्द्र और (हमारी) बुद्धियाँ तुम्हारा ही कार्य कर रही हैं, इसलिये हमें सुख देओ ॥८॥ हे इन्द्र और वरुण ! जिस को हम करते हैं, जिसको तुम बढाते हैं, वही उत्तम स्तुति (हमसे) तुम्हें प्राप्त हो ॥९॥

दो प्रशंसनीय सम्राट्

इस सूक्तमें प्रशंसनीय उत्तम दो सम्राटोंका वर्णन है । ये क्या करते हैं सो देखिये-

१ चर्षणीनां धर्तारौ- जनताका धारणपोषण करते हैं चर्षणीका अर्थ किसान खेती करनेवाले ऐसा है। सब किसानोंका उत्तम धारणपोषण ये करते हैं । प्रजाजनोंकी उन्नतिके लिये ही यत्न करते हैं। (मं. २)

२ सु जिग्युषः कृतं- अपने प्रजाजनोंको ये उत्तम विजयी करते हैं। अर्थात् ये उनको ऐसी सुशिक्षा देते हैं, कि जिससे इनके प्रजाजन सब कार्य व्यवहारमें उत्तम विजय पाते हैं । (मं. ७)

३ शचीनां युवाकु- (प्रजाजनोंकी) सब शक्तियोंकी संघटना करते हैं। (मं. ४)

४ सुमतीनां युवाकु- (प्रजाजनोंके) उत्तम विचारोंकी एकता करते हैं अर्थात् आपसका संघर्ष बढने नहीं देते । (मं.४)

५ तयोः अवसा सनेम, निधीमहि, प्ररेचनं स्यात्- उनकी सुरक्षापूर्ण आयोजनासे प्रजाका धन बढता है, प्रजाके पास धनसंग्रह होता है और उनके पास जितना धन चाहिये उससे भी अधिक धन उनके पास हो जाता है। (मं.

६ नः मृळात (१), अस्मभ्यं शर्म यच्छतं- हम प्रजाजनोंको (ये सम्राट्) सुखी करें, और कभी ऐसा आचरण न करें कि जिसे प्रजा दुःखी हो

७ विप्रस्य अवसे गन्तारौ- ज्ञानीकी सुरक्षा लिये ये तत्पर रहें । कभी ज्ञानीको कष्ट न दें। (मं. २)

८ अनुकामं तर्पयेथां- प्रजाजनोंको यथेष्ट रहें। (मं. ३)

इस तरह ये दोनों सम्राट् अपने राज्यके सुख बढाते रहते हैं। ये आदर्श सम्राट् हैं इसलिये यहां ऐसा किया है ।

९ इन्द्रः सहस्रदान्नां कतुः- इन्द्र सहस्रों है। सहस्रों दाताओंसे भी अधिक उत्तम दानकर्ता है।

१० वरुणः शंस्यानां उक्थ्यः- वरुण प्रशंसा योग्य राजाओंमें अधिक प्रशंसा करने योग्य हैं।

वैदिक अनुशासनके अनुसार सम्राट् कैसे हों, यह यहां बताया है। ऐसे सम्राट् हुए तो मानव अधिक सकते हैं।

पञ्चम अनुवाक

(७) सदसस्पति

(ऋ. मं. १।१८) मेधातिथिः काण्वः। १-३ ब्रह्मणस्पतिः, ४ इन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः सोमश्च, ५ ब्रह्मणस्पतिः सोम इन्द्रो दक्षिणा च, ६-८ सदसस्पतिः, ९ सदसस्पतिर्नराशंसो वा। गायत्री।

सोमानं स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते । कक्षीवन्तं य औशिजः १
यो रेवान् यो अमीवहा वसुवित् पुष्टिवर्धनः । स नः सिषक्तु यस्तुरः २
मा नः शंसो अररुषो धूर्तिः प्रणङ्मर्त्यस्य । रक्षा णो ब्रह्मणस्पते ३
स घा वीरो न रिष्यति यमिन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः । सोमो हिनोति मर्त्यम् ४
त्वं तं ब्रह्मणस्पते सोम इन्द्रश्च मर्त्यम् । दक्षिणा पात्वंहसः ५
सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् । सनिं मेधामयासिषम् ६
यस्मादृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन । स धीनां योगमिन्वति ७
आदङ्गोति हविष्कृतिं प्राञ्चं कृणोत्यध्वरम् । होत्रा देवेषु गच्छति ८
नराशंसं सुधृष्टममपश्यं सप्रथस्तमम् । दिवो न सद्ममखसम् ९

अन्वयः— हे ब्रह्मणस्पते ! सोमानं स्वरणं कृणुहि। यः औशिजः, (तं) कक्षीवन्तं (इव) ॥१॥ यः रेवान्, यः अमीवहा, वसुवित्, पुष्टिवर्धनः, यः तुरः, सः नः सिषक्तु ॥२॥ हे ब्रह्मणस्पते ! अररुषः मर्त्यस्यः धूर्तिः शंसः नः मा। नः ॥३॥ यं मर्त्यं इन्द्रः ब्रह्मणस्पतिः सोमः च हिनोति, सः घ वीरः न रिष्यति ॥४॥ हे ब्रह्मणस्पते ! त्वं तं मर्त्यं अंहसः हि), सोमः, इन्द्रः, दक्षिणा च पातु ॥५॥ अद्भुतं इन्द्रस्य प्रियं काम्यं सनिं सदसस्पतिं मेधां अयासिषम् ॥६॥ ाद् ऋते, विपश्चितः चन यज्ञः, न सिद्धति, सः (सदसस्पतिः) धीनां योगं इन्वति ॥७॥ आत् हविष्कृतिं ऋणोति, रं प्राञ्चं कृणोति, होत्रा देवेषु गच्छति ॥८॥ दिवो न सद्मनखसं, सुधृष्टमं सप्रथस्तमं नराशंसं अपश्यम् ॥९॥

अर्थः— हे ब्रह्मणस्पते ! सोमयाग करनेवालेको उत्तम प्रगतिसंपन्न करो। जैसा उशिक्पुत्र कक्षीवान् (उन्नत ा गया था वैसाही इसको करो) ॥१॥ जो (ब्रह्मणस्पति) सम्पत्तिमान, जो रोगोंका नाश करनेवाला, धनदाता और वर्धक तथा शीघ्रतासे कार्य करनेवाला है, वही हमारे ऊपर कृपा करता रहे ॥२॥ हे ब्रह्मणस्पते! घातपात करनेवाले टी धूर्तकी निंदा हमारेतक न पहुंचे। इससे हमारी सुरक्षा करो ॥३॥ जिस मनुष्यको इन्द्र, ब्रह्मणस्पति और न बचा देते हैं, वह वीर निःसंदेह नष्ट नहीं होता ॥४॥ हे ब्रह्मणस्पते ! तुम उस मानवको पापसे (बचाओ), ही सोम, इन्द्र और दक्षिणा उसको बचा देवे ॥५॥ मैं आश्चर्यकारक, इन्द्रके प्रिय मित्र आदरणीय और धनदाता सस्पति (सभाके अध्यक्ष)के पास मेधा बुद्धिको मांगता हूँ ॥६॥ जिसके बिना ज्ञानीका भी यज्ञ सिद्ध नहीं होता, सदसस्पति हमारी बुद्धियोंको प्रेरित करे ॥७॥ हवि तैयार करनेवालेकी वह उन्नति करता है, हिंसारहित यज्ञको ता है, हमारी प्रशंसा करनेवाली वाणीको देवोंतक पहुंचा देता है ॥८॥ द्युलोकके समान तेजस्वी, प्रतापशाली और वेद तथा मानवोंद्वारा सुपूजित सदसस्पतिको मैंने देखा है ॥९॥

सभाका अध्यक्ष

'सदसस्पति' (सदसः-पति) का अर्थ सभाका अध्यक्ष । सभाका प्रधान, परिषदका प्रमुख सदसस्पति कहलाता । इस सभाके अध्यक्षमें कैसे गुण हों, इस विषयमें इस वेदका कथन विचार करने योग्य है—

१ ब्रह्मणस्पतिः- (ब्रह्मणः पति)- ज्ञानका पति अर्थात् वह सभापति ज्ञानी हो, विद्यासंपन्न अथवा विद्वान् हो। (मं. १,३५)

२ रेवान्- वह धनवान् हो, (मं. २)

३ वसुवित्- धनका लाभ करनेवाला हो,

बुद्धियोंका योग

सः धीनां योगं इन्वति । ७) वह बुद्धियोंका योग करता है । सबकी बुद्धियोंका योग ईश्वरके साथही होना है क्योंकि वही सबकी बुद्धियोंको प्रेरणा करनेवाला है । बुद्धिका योग परमात्माके साथ होगा, तभी तो वह साक्षात्कारमें प्रत्यक्ष होगा । परमात्माका साक्षात्कार विश्वरूपमेंही होगा जैसा सभापतिका साक्षात्कार सभामें होता है ।

पाठक इस तरह विचार करके इस सूक्तसे परमात्माका ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे । सभापतिके कर्तव्य भी इसी सूक्तसे ज्ञात होंगे ।

(८) वीरोंकी साथ

(ऋ. मं. १।१९) मेधातिथिः काण्वः । अग्निर्मरुतश्च । गायत्री ।

प्रति त्यं चारुमध्वरं गोपीथाय प्र हूयसे	।	मरुद्भिरग्न आ गहि	१
नहि देवो न मर्त्यो महस्तव क्रतुं परः	।	मरुद्भिरग्न आ गहि	२
ये महो रजसो विदुर्विश्वे देवासो अद्रुहः	।	मरुद्भिरग्न आ गहि	३
य उग्रा अर्कमानृचुरनाधृष्टास ओजसा	।	मरुद्भिरग्न आ गहि	४
ये शुभ्रा घोरवर्पसः सुक्षत्रासो रिशादसः	।	मरुद्भिरग्न आ गहि	५
ये नाकस्याधि रोचने दिवि देवास आसते	।	मरुद्भिरग्न आ गहि	६
य ईङ्खयन्ति पर्वतान् तिरः समुद्रमर्णवम्	।	मरुद्भिरग्न आ गहि	७
आ ये तन्वन्ति रश्मिभिस्तिरः समुद्रमोजसा	।	मरुद्भिरग्न आ गहि	८
अभि त्वा पूर्वपीतये सृजामि सोम्यं मधु	।	मरुद्भिरग्न आ गहि	९

अन्वयः- हे अग्ने ! त्यं चारुं अध्वरं प्रति गोपीथाय प्रहूयसे ॥ १ ॥ नहि देवः, न मर्त्यः, महः तव क्रतुं परः (अस्ति) ॥ २ ॥ ये अद्रुहः विश्वे देवासः महः रजसः विदुः ॥ ३ ॥ ये ओजसा अनाधृष्टासः उग्राः अर्कं आनृचुः ॥ ४ ॥ शुभ्रा घोरवर्पसः सुक्षत्रासः रिशादसः ॥ ५ ॥ ये देवासः नाकस्य अधि रोचने दिवि आसते ॥६॥ ये पर्वतान् ईङ्खयन्ति, अर्णवं तिरः (कुर्वन्ति) ॥ ७ ॥ ये रश्मिभिः आ तन्वन्ति, ओजसा समुद्रं तिरः (कुर्वन्ति) ॥ ८ ॥ हे अग्ने ! पूर्वपीतये त्वा सोम्यं मधु अभि सृजामि । (अतः तैः) मरुद्भिः आ गहि ॥ ९ ॥

अर्थ- हे अग्ने ! उस सुंदर हिंसारहित यज्ञके प्रति तुम्हें सोमरसका पान करनेके लिये बुलाते हैं ॥ १ ॥ ना ही कोई और न कोई मर्त्य (ऐसा है कि जो) तुम्हारे महासामर्थ्यसे किये यज्ञसे बढकर (कुछ कर्म कर सकता हो) ॥ २ ॥ द्रोह न करनेवाले सब देव (अर्थात् मरुद्गण) हैं, वे इस बडे अन्तरिक्षको जानते हैं ॥ ३ ॥ जो अपने विशाल बलके कारण अजेय उग्र वीर हैं और जो प्रकाशके स्थानतक पहुंचते हैं ॥ ४ ॥ जो गौर वर्णवाले, बडे शरीरवाले, उत्तम पराक्रमी और शत्रुका नाश करनेवाले हैं ॥५॥ जो ये (मरुत्) देव सूर्यके प्रकाशसे प्रकाशित हुए द्युलोकमें रहते हैं॥६॥ जो पर्वत जैसे मेघोंको उखाड देते हैं और जलराशीको तुच्छ करके उसके परे फेंक देते हैं ॥ ७ ॥ जो किरणोंसे व्यापते हैं और जो बलसे समुद्रको भी तुच्छ मानते हैं ॥ ८ ॥ हे अग्ने ! तुम्हारे प्रथम रसपानके लिये यह मधुर सोमरस मैं अर्पण करता हूं, अतः तुम इस (पूर्वोक्त वर्णन किये) मरुतोंके साथ आओ ॥ ९ ॥

वीरोंके साथ रहो

इस सूक्तमें प्रकट वीरोंका वर्णन है । 'जो गौरवर्णवाले जिनके शरीर भयंकर है, जो क्षात्रकर्ममें अद्वितीय है और शत्रुका नाश करनेमें प्रवीण है, (५) जो बलवान् होनेके कारण अजेय है, जिनपर शत्रुका आक्रमण नहीं हो सकता, जो बडे उग्र शूरवीर है, जो तेजस्वी होनेसे सूर्यके समान प्रभावी है, (४) जो स्वयं किसीका द्रोह कभी नहीं करते, और जो सब विशाल स्थानको व्याप्त करते है (३), जो

पर्वतोंको भी उखाड दे सकते और समुद्रको भी लांघ देते हैं (७), जो तेजसे अथवा अपने प्रभावसे सर्वत्र व्यापते हैं और अपने बलसे समुद्रको भी तुच्छ समझते हैं (८) ऐसे ये मरुद्वीर हैं।

अग्निवीर ऐसा है कि जिसके बराबर कार्य करनेवाला न कोई देवोंमें है और नाही मर्त्योंमें है। ऐसा यह वीर पूर्वोक्त वीरोंके साथ इस यज्ञमें आजाय और मधुर सोमरस पीवे। हम ऐसे वीरोंको बुलाते हैं और उनका सत्कार करते हैं।

यहां मंत्रके पूर्वार्धमें वीरोंका वर्णन है और सब मंत्रोंका उत्तरार्ध एकही है। इसलिये हमने अन्तमें एकही वार उत्तरार्ध-का अर्थ किया है। प्रत्येक मंत्रमें पाठक उसका अनुसंधान...

पाठक पूर्वार्धका मनन करें और जाने कि, वीरों... गुणोंका उत्कर्ष होना चाहिये। ये गुण क्षत्रिय वीर और अपने देशका (अ-द्रुहः) द्रोह न करते हुए आत्मो... ताका अधिकसे अधिक उत्कर्ष करें।

ये मरुत् वायुही हैं। अतः वायुके वर्णनसे यहां ... वर्णन किया गया है। वायु अन्तरिक्षमें रहता है ... वह अन्तरिक्षको जानता है (मं. ३), इस तरहके ... पाठक विचारपूर्वक जान सकते हैं।

(९) दिव्य कारीगर

(ऋ. मं. १।२०) मेधातिथिः काण्वः। ऋभवः। गायत्री।

अयं देवाय जन्मने स्तोमो विप्रेभिरासया	।	अकारि रत्नधातमः	१
य इन्द्राय वचोयुजा ततक्षुर्मनसा हरी	।	शमीभिर्यज्ञमाशत	२
तक्षन् नासत्याभ्यां परिज्मानं सुखं रथम्	।	तक्षन् धेनुं सवर्दुघाम्	३
युवाना पितरा पुनः सत्यमन्त्रा ऋजूयवः	।	ऋभवो विष्ट्यक्रत	४
सं वो मदासो अग्मतेन्द्रेण च मरुत्वता	।	आदित्येभिश्च राजभिः	५
उत त्यं चमसं नवं त्वष्टुर्देवस्य निष्कृतम्	।	अकर्त चतुरः पुनः	६
ते नो रत्नानि धत्तन त्रिरा साप्तानि सुन्वते	।	एकमेकं सुशस्तिभिः	७
अधारयन्त वह्नयोऽभजन्त सुकृत्यया	।	भागं देवेषु यज्ञियम्	८

अन्वयः– विप्रेभिः आसया अयं रत्नधातमः स्तोमः जन्मने देवाय अकारि ॥ १ ॥ ये इन्द्राय वचोयुजा हरी ततक्षुः (ते) शमीभिः यज्ञं आशत ॥ २ ॥ नासत्याभ्यां परिज्मानं सुखं रथं तक्षन्, धेनुं सवर्दुघां तक्षन् ॥ ३ ॥ स... ऋजूयवः विष्टी ऋभवः पितरा पुनः युवाना अक्रत ॥ ४ ॥ (हे ऋभवः) वः मदासः मरुत्वता इन्द्रेण, च रा... आदित्यैः च सं अग्मत ॥ ५ ॥ उत देवस्य त्वष्टुः निष्कृतं नवं त्यं चमसं, (तं एकं) पुनः चतुरः अकर्त ॥ ६ ॥ ते (... सुशस्तिभिः नः सुन्वते एकं एकं त्रिः साप्तानि रत्नानि आ धत्तन ॥ ७ ॥ वह्नयः सुकृत्यया देवेषु यज्ञियं भागं अभजन्त (च) ॥ ८ ॥

अर्थ– ज्ञानियोंने अपने मुखसे इस रत्नोंको देनेवाले स्तोत्रका, दिव्य जन्मको प्राप्त होनेवाले ऋभुदेवोंके (पाठ) किया ॥१॥ जिन्होंने इन्द्रके लिये शब्दके इशारेसे चलनेवाले दो घोडे चतुराईसे बनाये (सिखाये); वे (ऋभु... शमीके (चमसादिके साथ) यज्ञमें आते हैं ॥२॥ अश्विदेवोंके लिये (उन्होंने) उत्तम गतिमान् सुखदायी रथ ति... किया और गौको उत्तम दुधारू बना दिया ॥३॥ सत्य विचारवाले, सरल स्वभाव, चारों ओर जानेवाले ऋभुओंने (अ... मातापिताको पुनः जवान बना दिया ॥४॥ (हे ऋभुओ!) आपको आनन्द देनेवाला सोमरस मरुतोंके साथ इन्द्रके चमकनेवाले आदित्योंके साथ आपको दिया जाता है ॥५॥ त्वष्टाके द्वारा बनाया यह नयाही चमस था, (ऋभुओंने एकहीको) चार प्रकारका बना दिया ॥६॥ वे (आप) स्तुतियोंसे (प्रशंसित होकर) हमारे सोमयाग करने... ऋत्विजोंमेंसे प्रत्येकके लिये इक्कीस रत्नोंको धारण कराओ ॥७॥ अग्निके समान तेजस्वी (ऋभु देवोंने) अपने... कर्मोंसे देवोंमें (स्थान प्राप्त करके) यज्ञका हविर्भाग प्राप्त किया और उसका सेवन भी किया ॥८॥

दिव्य कारीगर

इस सूक्तमें ऋभु नामक दिव्य कारीगरोंका वर्णन है। इनकी कारीगरी इस सूक्तमें इस तरह वर्णन की गई है-

१ इन्द्रके लिये उत्तम शिक्षित घोडे इन्होंने दिये थे जो इशारे मात्रसे जैसे चाहे वैसे चलते थे। अर्थात् अश्वविद्यामें ऋभुदेव प्रवीण थे।

अश्विदेवोंके लिये इन्होंने उत्तम रथ बनाया, जो बैठनेके लिये बडा सुख देनेवाला था और चारों ओर अच्छी चलाया जा सकता था। इससे सिद्ध है कि ऋभुदेव लकडीके काम तथा लोहेके काममें प्रवीण थे।

इन्होंने धेनुको अच्छी दुधारू बना दिया था। अर्थात् दुधारू बनानेकी विद्या ऋभुदेव जानते थे।

वृद्धोंको तरुण बनाया। इससे सिद्ध है कि ये जीवन विद्या औषधिप्रयोगोंमें प्रवीण थे और वृद्धोंको तरुण बनानेकी विद्या जानते थे।

एक चमसके चार चमस बनाये। संभव है कि जैसा त्वष्टाने बनाया था वैसेही इन्होंने चार बनाये होंगे। इनके पास सात प्रकारके रत्न थे। जो उत्तम मध्यम भेदोंसे इक्कीस तरहके हो सकते है।

ऋभुदेवोंकी कथा

ऋभुदेवोंके संबंधमें ऐतरेय ब्राह्मणमें निम्नलिखित कथा दी है—

ऋभवो वै देवेषु तपसा सोमपीथं सम्यजयंस्तेभ्यः प्रातःसवने वाचि कल्पयंस्तानग्निर्वसुभिः प्रातःसवनादनुदत...तृतीये सवने वाचि कल्पयंस्तान् विश्वे देवा अनोनुद्यन्त, नेह पास्यन्ति, नेहेति, स प्रजापतिरब्रवीत् सवितारं, तव वा इमेऽन्ते वासास्त्वमेवैभिः सं पिबस्वेति। स तथेत्यब्रवीत्सविता तान्वै त्वमुभयतः परिपिबेति ...मनुष्यगन्धात्...॥ (ऐ. ब्रा.३।६)

" ऋभुदेव प्रारंभमें मनुष्य थे। तप करके वे देवत्वको प्राप्त हुए। प्रजापति और उसके साथ अपनी संमति रखनेवाले देव, इन देवोंने ऋभुओंको प्रातःसवनमें देवोंकी पंक्तिमें बैठाकर सोमपान करानेका यत्न किया। परंतु आठों वसुओंने उनको अपनी पंक्तिमें बैठने नहीं दिया। पश्चात माध्यंदिन सवनमें ग्यारह रुद्रोंने उनको अपनी पंक्तिमें बैठने नहीं दिया, इसी तरह प्रजापतिने ऋभुओंको आदित्योंकी पंक्तिमें बिठलानेका यत्न तृतीय सवनमें किया, पर सभी देवोंने उनको अपनी पंक्तिमें बिठलानेसे इन्कार किया। (नेह पास्यन्ति, नेहेति) ये ऋभु यहां बैठकर सोमपान नहीं करेंगे, कदापि यह बात नहीं होगी, ऐसा सब देवोंने कहा। तब प्रजापति सविताके पास गया और उन्होंने उससे कहा कि हे सविता। ये तेरे साथ रहनेवाले और अच्छे कार्य करनेवाले हैं, अतः तू अपने साथ इनको बिठलाकर सोमपान करो और इनको करने दो। सविताने कहा कि इन ऋभुओंको (मनुष्य-गन्धात्) मनुष्योंकी बू आ रही है, इसलिये ये देवोंमें कैसे बैठ सकते हैं ? पर यदि हे प्रजापते ! तुम स्वयं इनके साथ बैठकर सोमपान करोगे, तो मैं भी वैसा करूंगा। और एक बार यह प्रथा चल पडी तो चलती रहेगी। प्रजापतिने वैसा किया, तबसे ऋभु देवत्वको प्राप्त हुए।'

यह कथा ऐतरेय ब्राह्मणमें है। इसमें यदि कुछ अलंकार होगा, तो उसका अन्वेषण करना चाहिये। ऋ. १।११०।४ में कहा है-

विष्ट्वी शमी तरणित्वेन वाघतो मर्तासः सन्तो अमृतत्वमानशुः। सौधन्वना ऋभवः सूरचक्षसः संवत्सरे समपृच्यन्त धीतिभिः॥ (ऋ. १।११०।४)

'शान्तिपूर्वक शीघ्र कार्य करनेमें कुशल और ज्ञानी ऐसे ये ऋभु प्रथम मर्त्य होनेपर भी देवत्वको प्राप्त हुए। ये सुधन्वाके पुत्र सूर्यके समान तेजस्वी ऋभुदेव सांवत्सरिक यज्ञमें अपनी कर्म कुशलताके कारण संमिलित हो गये।'

अंगिराके पुत्र सुधन्वा, और सुधन्वाके पुत्र ऋभु, विभु और वाज ये तीन थे। इनमेंसे ऋभु बडे कारीगर थे इसलिये उनकी कारीगरीके कारण इनको देवोंमें शामील किया गया था। देव नामक जातीका एक दिग्विजयी राष्ट्र था, उस राष्ट्रमें मानवजातीके लोगोंको बसनेका अधिकार नहीं था। कभी कभी आवश्यकता पडनेपर कई मानवजातीके लोगोंको उसमें जाकर बसनेका अधिकार मिलता था। इसी तरह ऋभुओंको मिला था। ऋभु उत्तम कारीगर थे, उत्तम रथ बनाते थे, उत्तम शस्त्र बनाते थे, गौओंको अधिक दूध देनेवाली बनाते थे, वृद्धोंको जवान बनानेकी औषधियोजना वे जानते थे। देवजातीके लिये ऐसे कुशल कारीगरोंकी जरुरत थी अतः प्रजापतिने इन ऋभुओंको अपनी देवजातीमें लेनेका यत्न किया। प्रथम देवोंने इस प्रस्तावको स्वीकार नहीं किया, परंतु पश्चात् प्रजापतिका

प्रस्ताव देवोंने मान लिया और ऋभुओंकी गणना देवोंमें होने लगी।

आजकल अमेरिकामें भारतवासियोंको स्थायी रूपसे रहनेकी आज्ञा नहीं है। पर अब इस महायुद्धके कारण भारतीयोंको आज्ञा देनेका विचार वहां करने लगे हैं। इसी तरह यह ऋभुओंकी बात दीख रही है।

संभव है कि यह आलंकारिकही घटना हो। आलंकारिक होनेपर भी उससे यह बोध मिलता है कि जो जाती अपने राष्ट्रके हितके लिये उपयोगी है, ऐसा सिद्ध हो जाय, उस जातीको अपने राष्ट्रका अंग मानकर रहनेका अधिकार देना योग्य है। पर यह अधिकार देनेके लिये सब राष्ट्रवासी जातियोंके प्रतिनिधियोंकी संमति लेनी चाहिये, जैसीकी पूर्वोक्त ऐतरेय ब्राह्मणके वचनमें प्रजापति (राष्ट्रके अध्यक्ष) ने देवराष्ट्रकी प्रातिनिधिक देवसभाके सामने यह प्रस्ताव रखा था, सबकी प्रथम प्रतिकूलता होनेपर भी आगे उनकी [illegible] युक्तिसे प्राप्त की और पश्चात् ऋभुओंको देवोंमें [illegible] गया।

इससे बडा भारी राष्ट्रीय संघटनाका बोध मिलता है। पाठक अवश्य विचार करें।

इस सूक्तमें भी **' देवेषु यज्ञियं भागं ऋभवः यन्त, अभजन्त च '** (मं. ८) ऐसा कहा है। प्रथम देवोंमें बैठकर यज्ञका हविर्भाग लेनेका अधिकार नहीं वह उनको मिला और पश्चात् वे उस भागका सेवन करने

प्रथम मण्डलके ११० वे सूक्तके साथ पाठक इसका करें, इसका एक मंत्र ऊपर दिया है।

(१०) वीरोंकी प्रशंसा

(ऋ. मं. १।२१) मेधातिथिः काण्वः। इन्द्राग्नी। गायत्री।

इहेन्द्राग्नी उप ह्वये तयोरित्स्तोममुदमासि	।	ता सोमं सोमपातमा १
ता यज्ञेषु प्र शंसतेन्द्राग्नी शुम्भता नरः	।	ता गायत्रेषु गायत २
ता मित्रस्य प्रशस्तय इन्द्राग्नी ता हवामहे	।	सोमपा सोमपीतये ३
उग्रा सन्ता हवामह उपेदं सवनं सुतम्	।	इन्द्राग्नी एह गच्छताम् ४
ता महान्ता सदस्पती इन्द्राग्नी रक्ष उब्जतम्	।	अप्रजाः सन्त्वत्रिणः ५
तेन सत्येन जागृतमधि प्रचेतुने पदे	।	इन्द्राग्नी शर्म यच्छतम् ६

अन्वयः- इह इन्द्राग्नी उप ह्वये। तयोः इत् स्तोमं उदमसि। ता सोमपातमा सोमं (पिबतां) ॥ १ ॥ हे [illegible] इन्द्राग्नी यज्ञेषु प्रशंसत। ता गायत्रेषु गायत ॥ २ ॥ मित्रस्य प्रशस्तये, ता सोमपा ता इन्द्राग्नी सोमपीतये हवाम [illegible] इदं सुतं सवनं उप उग्रा सन्ता हवामहे। इन्द्राग्नी इह आ गच्छताम् ॥ ४ ॥ ता महान्ता सदस्पती इन्द्राग्नी [illegible] अत्रिणः अप्रजाः सन्तु ॥ ५ ॥ हे इन्द्राग्नी! प्रचेतुने पदे तेन सत्येन अधि जागृतम्। (नः) शर्म यच्छत

अर्थ- इस यज्ञमें इन्द्र और अग्निको मैं बुलाता हूं। उनकी हि स्तुति करना चाहता हूं। वे सोमपान [illegible] सोमरस पीयें ॥१॥ हे मनुष्यो! उन इन्द्र और अग्निकी यज्ञोंमें प्रशंसा करो। गायत्री छन्दमें उनके कार्यों [illegible] ॥२॥ मित्रकी प्रशंसा करनेके समान, उन सोमपान करनेवाले इन्द्र और अग्निको सोमपानके लिये ही हम [illegible] ॥३॥ सोमरस सिद्ध होनेपर, उन उग्रवीरोंको बुलाते हैं। वे इन्द्र और अग्नि यहां आ जायँ ॥४॥ वे इन्द्र और [illegible] महान् पति हैं, वे राक्षसोंको सरल स्वभाववाले बना देवें। वे सर्व भक्षक (राक्षस न सुधरें तो) प्रजा [illegible] ॥५॥ हे इन्द्र और अग्नि! चित्त प्रकाशसे उज्वल हुए स्थानमें उसी सत्यके साथ तुम जागते रहो। और [illegible] प्रदान करो ॥६॥

(११) वेगवान् रथ

(ऋ. मं. १।२२) मेधातिथिः काण्वः । गायत्री ।

(२१।१-४) अश्विनौ देवता

प्रातर्युजा वि बोधयाश्विनावेह गच्छताम्	। अस्य सोमस्य पीतये	१
या सुरथा रथीतमोभा देवा दिविस्पृशा	। अश्विना ता हवामहे	२
या वां कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती	। तया यज्ञं मिमिक्षतम्	३
नहि वामस्ति दूरके यत्रा रथेन गच्छथः	। अश्विना सोमिनो गृहम्	४

अन्वयः– प्रातर्युजौ वि बोधय । अश्विनौ इह अस्य सोमस्य पीतये आ गच्छताम् ॥१॥ या उभा अश्विना रथितमा दिविस्पृशा देवा ता हवामहे ॥२॥ हे अश्विनौ ! वां या कशा मधुमती सूनृतावती तया सह यज्ञं मिमिक्षतम् ॥३॥ हे अश्विनौ ! सोमिनः गृहं, यत्र रथेन गच्छथः, वां दूरके न अस्ति ॥४॥

अर्थ– प्रातःकालके समयमें जागनेवाले अश्विदेवोंको जगाओ । वे अश्विदेव इस यज्ञमें इस सोमरसका पान लिये पधारें ॥१॥ ये दोनों अश्विदेव सुंदर रथसे युक्त हैं, वे सबसे श्रेष्ठ रथी हैं, और वे अपने रथसे आकाशमें करते हैं, इन दोनों देवोंको हम बुलाते हैं ॥२॥ हे अश्विदेवो ! तुम्हारी जो मीठा सुंदर शब्द करनेवाली चाबूक है साथ यज्ञमें आओ ॥३॥ हे अश्विदेवो ! सोमयाग करनेवालेके घरके पास अपने रथसे तुम जाते हो, वह (तुमको बिलकुल) दूर नहीं है ॥४॥

चाबूक

अश्विदेवोंकी चाबूक (मधुमती सूनृतावती) मीठा और सुंदर शब्द करती है । उत्तम चाबूकका एक भान्तीका शब्द होता है । इस चाबूकके शब्दसे अश्विदेव आ रहे हैं ऐसा मालूम होता है । इनका रथ वेगवान् होनेसे इनके लिये कोई दूर नहीं हैं । जहां इनको पहुंचना होगा, वहां ये पहुंचते हैं ।

(२१।५-८) सविता देवता

हिरण्यपाणिमूतये सवितारमुप ह्वये	। स चेत्ता देवता पदम्	५
अपां नपातमवसे सवितारमुप स्तुहि	। तस्य व्रतान्युश्मसि	६
विभक्तारं हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः	। सवितारं नृचक्षसम्	७
सखाय आ नि षीदत सविता स्तोम्यो नु नः	। दाता राधांसि शुम्भति	८

अन्वयः– हिरण्यपाणिं सवितारं ऊतये उप ह्वये । सः देवता पदं चेत्ता ॥५॥ अपां नपातं सवितारं उप स्तुहि । तस्य व्रतानि उश्मसि ॥६॥ वसोः चित्रस्य राधसः विभक्तारं नृचक्षसं सवितारं हवामहे ॥७॥ हे सखायः ! आ नि षीदत । सविता नु स्तोम्यः । राधांसि दाता शुम्भति ॥८॥

अर्थ– सुवर्णके समान किरणोंवाले सविताको अपनी सुरक्षा करनेके लिये मैं बुलाता हूं । वही देवता मार्गका बोध कर देता है ॥५॥ जलोंको न प्रवाहित करनेवाले सविताकी स्तुति करो । इसके लिये हम व्रतोंका पालन चाहते हैं ॥६॥ निवासके कारणीभूत नाना प्रकारके धनोंके दाता, मनुष्योंके लिये प्रकाशके प्रदाता, सूर्य देवका हम हन करते हैं ॥७॥ हे मित्रो ! आ कर बैठ जाओ । हम सबके लिये यह सविता स्तुति करने योग्य है । सिद्धियोंके (सूर्य देव अब) प्रकाशित हो रहे हैं ॥८॥

सबका प्रसविता सविता

'विता वै सर्वस्य प्रसविता' (श. ब्रा.) सविता सब विश्वका प्रसव करनेवाला है। जिस तरह स्त्री सुन्दरसे संतानोंको प्रसवती है उसी तरह यह सूर्यदेव सुन्दरसे सब सृष्टीकी उत्पत्ति करता है।

सूर्य (सविता)
|
सूर्य मालिका
(बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, गुरु, शनि, वरुण और प्रजापति)
|
वृक्ष, कृमिकीट
|
मनुष्य
|
(श्वेत, लाल, पीत, भूरे और कृष्ण वर्णवाले मानव)

इस तरह यह सविता सब सृष्टीका प्रसव अपने अन्दरसे करता है। परमात्मासे सूर्य, और सूर्यसे सब सृष्टी होती है। सविता अपने अन्दरसे प्रसव करनेका तत्त्व पाठक स्मरण रखें।

(अवसे सवितारं उप) अपनी सुरक्षाके लिये सविता देवकी उपासना करो। सूर्यकी सब रोगजंतुओंको दूर करता है, आरोग्य बढाता है। सूर्य दीर्घायु करनेवाला है।

(तस्य व्रतानि उश्मसि) सूर्यके व्रतोंका पालन करना है। सूर्यसे आरोग्य प्राप्त करनेके जो नियम हैं उनको जानकर आचारमें लाना चाहिये।

(नृ-चक्षः) यह सूर्य मनुष्योंके लिये नेत्र जैसा है, सब लोगोंके लिये वह प्रकाश बताता है।

संपत्तिका विभाजन

संपत्तिका संग्रह एकके पास होना उचित नहीं है। इससे गरीब पीसे जाते हैं। इसलिये संपत्तिका बटवारा योग्य रीतिसे समाजमें होना उचित है।

'वसोः विभक्ता सविता' (मं. ७) मानवोंके निवासके लिये जो आवश्यक है वह वसु कहलाता है। उसीका नाम धन या संपत्ति है। इस धनका विशेष भाग करके उसका बटवारा यथायोग्य रीतिसे करना चाहिये। जिस तरह सूर्यकी संपत्ति 'प्रकाश' है, उसका सब वस्तुमात्रपर वह बटवारा करता है। जब सूर्य प्रकाशता है तब पृथ्वी, जल, पर्वत, वृक्ष, मानव आदीपर वह समानतया प्रकाशता है और सबको प्रकाशित करता है।

इसी तरह राजा अपने राष्ट्रमें संपत्तिका विभाजन यथायोग्य रीतिसे करे तथा करावे और सबको सुखी करे।

यह **'वसु-विभाग'** वेदमें अनेक सूक्तोंमें आयेगा। वहां इसका संपूर्ण अर्थ पाठक विचारपूर्वक देखें और मननसे जानें।

(२२।९-१५), ९-१० अग्नि, ११-१५ देवाः।

अग्नि और देवपत्नियाँ

अग्ने पत्नीरिहा वह देवानामुशतीरुप । त्वष्टारं सोमपीतये ९
आ ग्ना अग्न इहावसे होत्रां यविष्ठ भारतीम् । वरूत्रीं धिषणां वह १०
अभि नो देवीरवसा महः शर्मणा नृपत्नीः । अच्छिन्नपत्राः सचन्ताम् ११
इन्द्राणीमुप हये वरुणानीं स्वस्तये । अग्नायीं सोमपीतये १२
मही द्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञं मिमिक्षताम् । पिपृतां नो भरीमभिः १३
तयोरिद् घृतवत् पयो विप्रा रिहन्ति धीतिभिः । गन्धर्वस्य ध्रुवे पदे १४
स्योना पृथिवि भवानृक्षरा निवेशनी । यच्छा नः शर्म सप्रथः १५

अन्वयः- हे अग्ने ! उशतीः देवानां पत्नीः इह उप आ वह । (तथा) त्वष्टारं सोमपीतये (उप आ वह) ९॥ हे अग्ने यविष्ठ ! अवसे इह आ वह । हे यविष्ठ ! अवसे होत्रां भारतीं, वरूत्रीं, धिषणां (आ वह) १०॥ नृपत्नीः अच्छिन्नपत्राः देवीः महः शर्मणा नः अभि सचन्ताम् ११॥ इह इन्द्राणीं वरुणानीं अग्नायीं स्वस्तये सोमपीतये उप हये १२॥ द्यौः पृथिवी च नः इमं यज्ञं मिमिक्षताम् । भरीमभिः नः पिपृताम् १३॥ गन्धर्वस्य ध्रुवे पदे तयोः इत् घृतवत् पयः धीतिभिः रिहन्ति १४॥ हे पृथिवि ! स्योना, अनृक्षरा, निवेशनी भव । सप्रथः शर्म नः यच्छ १५॥

अर्थ- हे अग्ने ! हमारे आनेकी इच्छा करनेवाली देवोंकी पत्नियोंको यहाँ ले आओ। तथा हमारी सेवा लिये यहां ले आओ। हे अग्ने ! देवपत्नियोंको हमारी सुरक्षा करनेके लिये यहां ले आओ। हे नरश्रेष्ठ अग्ने ! हमारे लिये देवोंको बुलानेवाली, भरणपोषण करनेवाली, सुरक्षा करनेवाली बुद्धिको यहां ले आओ ॥१०॥ जिनके अखंड अविच्छिन्न हैं और जो मनुष्योंका पालन करती हैं, वे देवपत्नियाँ हमारी सुरक्षा करके अन्न सहित हमारे यज्ञमें) आ जायँ ॥११॥ यहां इन्द्रपत्नी, वरुणपत्नी और अग्निपत्नीको हमारी सुरक्षाके लिये और उनके सोमपान बुलाता हूं ॥१२॥ महान् द्युलोक और बड़ी पृथ्वी हमारे इस यज्ञके लिये (उत्तम रसोंसे जलसे) सिक्त करें। वे हमें पूर्ण करें ॥१३॥ गन्धर्व लोकके ध्रुव स्थानमें (अर्थात् अन्तरिक्षमें) इन दोनों - (द्यु और पृथ्वी) के मध्यमें समान जल, ज्ञानी लोक अपने कर्मों और बुद्धियोंके बलसे प्राप्त करते हैं ॥१४॥ हे पृथ्वी ! तू सुखदायिनी, और हमारा निवास करनेवाली बनो। और हमें विस्तृत सुख दो ॥१५॥

देवियोंका स्तोत्र

इस २२ वें सूक्तमें तृतीय सूक्त देवियोंको है। इसमें (भारती) भाषा, (धिषणा) बुद्धि, (इन्द्राणी) इन्द्र पत्नी [शची], (वरुणानी) वरुणपत्नी [रसिकता], (अग्नायी) अग्निपत्नी, द्यौः, मातृभूमी इनका वर्णन है। ये देवपत्नियाँ कैसी हैं सो देखो—

१ उशतीः- (हमारी सुरक्षा करनेकी) इच्छा करती है,
२ अवः- हमारी रक्षा करती हैं,
३ भारती- भरणपोषण करनेवाली,
४ वरूत्री- सुरक्षा करनेवाली,
५ धिषणा- बुद्धिमती, विदुषी,
६ नृपत्नी- मनुष्योंकी पालना करनेवाली,
७ अच्छिन्न-पत्राः- जिनके उडनेके विमान अटूट हैं, सुरक्षित यन्त्रसाधनोंसे युक्त,
८ मिमिक्षतां- उत्तम वृष्टी करें, जिससे उत्तम धान्य निर्माण हो,
९ भरीमन्- पोषण करनेवाला धान्य आदिक पदार्थ,
१० घृतवत् पयः- घी जैसा जल, उत्तम पाचक और पोषण परिशुद्ध जल,
११ स्योना- सुखदायी,
१२ अनृक्षरा- (अन्-ऋक्षरा) कण्टक रहित, (अ-नृ-क्षरा) जहां रहनेसे मनुष्योंको क्षीणता नहीं आती ऐसा रहनेका स्थान हो,
१३ निवेशिनी- रहनेके लिये सुरक्षा।

देवियोंके ये शुभ गुण हैं। इनसे हमारी उन्नति करें। मानवस्त्रियां क्या करें यह भी इन पदोंके मन्त्रसे आ सकता है। देवस्त्रियां जैसा आचरण करती हैं वैसा मानव स्त्रियां यहां करें। मानव स्त्रियोंके अनुकूल न पदोंमें गौण वृत्तीसे देखा जा सकता है। जैसा—

मनुष्यकी स्त्रियाँ (उशतीः) भलाई करनेकी इ (अवः वत्नी) घरवालोंकी सुरक्षा करें, (भारती पोषण करें, (धिषणा) सुबुद्ध हों, (नृ-पत्नी) कुटुंबक पालना करें, (मिमिक्षतां) स्नेहयुक्त आचरण करें, (लोगोंका पालनपोषण करें, (भरीमन्) पालनपो (घृतवत् पयः) घी और जल दें, (स्योना) सु (अनृक्षरा) घर निष्कण्टक करें, घरमें कोई क्षीण न व्यवहार करें, (निवेशिनी) सब लोग सुरक्षित प्रबंध करें।

देवपत्नीयोंके सूक्त मानवपत्नीयोंके कर्तव्योंकी दि तरह देते हैं।

मातृभूमिका राष्ट्रगीत

पंद्रहवाँ मंत्र वैदिक राष्ट्रगीत है। यह संघमें जैसा बोलनेके लिये है 'हे मातृभूमे ! हमारे लिये यु यिनी, कण्टकरहित (शत्रुरहित) होकर उत्तम रीतिसे निवास करानेवाली हो। और विस्तृत सुख हमें प्रद अर्थात् तुम्हारे ऊपर हम सुखसे रहें।'

(२२।१६-२१) विष्णुः

अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे । पृथिव्याः सप्त धामभिः १६
इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् । समूळ्हमस्य पांसुरे १७

त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः । अतो धर्माणि धारयन् १८
विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्यः सखा १९
तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् २०
तद् विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते । विष्णोर्यत् परमं पदम् २१

अन्वयः- विष्णुः सप्त धामभिः यतः पृथिव्याः वि चक्रमे, अतः नः देवाः अवन्तु ॥१६॥ विष्णुः इदं वि चक्रमे । ॥ पदं नि दधे । अस्य पांसुरे समूढम्॥१७॥ अदाभ्यः गोपाः विष्णुः, धर्माणि धारयन्, अतः त्रीणि पदा वि चक्रमे॥१८॥ ष्णोः कर्माणि पश्यत । यतः व्रतानि पस्पशे । (सः) इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥१९॥ विष्णोः तत् परमं पदं, दिवि आततं ुः इव, सूरयः सदा पश्यन्ति ॥२०॥ विष्णोः यत् परमं पदं (अस्ति), तत् विपन्यवः जागृवांसः विप्रासः सं इन्धते॥२१॥

अर्थ- विष्णुने सातों धामोंसे जिस पृथ्वीपर विक्रम किया, वहांसे हमारी सब देव सुरक्षा करें ॥१६॥ विष्णुने यह क्रम किया। उन्होंने तीन प्रकारसे अपने पद रखे थे। पर इसका एक पद धूली प्रदेशमें (अन्तरिक्षमें) गुप्त हुआ ॥१७॥ न दबनेवाला, सबका रक्षक विष्णु, सब धर्मोंका धारण करता हुआ, यहांसे तीन पद रखनेका विक्रम करता है ॥१८॥ विष्णुके ये कर्म देखो। उनसे ही हम अपने व्रतोंको किया करते हैं। (वह विष्णु) इन्द्रका सुयोग्य मित्र है॥१९॥ ष्णुका वह परम स्थान द्यु लोकमें फैले हुए प्रकाशके समान, ज्ञानी सदा देखते हैं ॥२०॥ विष्णुका वह पद है कि जो ेतुशाल, जाग्रत रहनेवाले ज्ञानी सम्यक् प्रकाशित हुआ देखते हैं ॥२१॥

विष्णु, व्यापक देव

; विष्णु (वेवेष्टि इति) जो सब विश्वमें व्याप्त है, वह ापक देव विष्णु कहलाता है। यह व्यापक देव सात धामोंसे र्वोपर विक्रम करता है। पृथिवी, आप, तेज, वायु, आकाश, न्मात्रा और महत्तत्व ये सात धाम हैं जहां यह व्यापक प्रभु पना विक्रम दिखाता है। इसका पराक्रम यहां सतत चलता हा है। सब नक्षत्रादि तेजोलोक, तथा अग्न्यादि देव इसी ापक प्रभुकी महिमासे अपना अपना कार्य करनेमें समर्थ ए हैं। इस व्यापक देवका सामर्थ्य लेकर ये सब देव (देवाः ः अवन्तु) हमारी सुरक्षा करें। (१६)

यह व्यापक प्रभुही यह सब, जो इस विश्वमें दिखाई देता ै, यह सब पराक्रम करता है। जो यहां दीख रहा है यह सब उसीका पराक्रम अथवा उसीका सामर्थ्य है। सात्विक, राजस और तामस ऐसे तीन स्थानोंमें तीन पद उन्होंने रखे है। द्युलोक सात्विक, अन्तरिक्ष लोक राजस और भूलोक तामसोंका प्रधान है, यहां इनके तीन पद कार्य करते है। इनमें बीचमें अन्तरिक्षमें जो इनका पद है वह गुप्त है : द्युलोक प्रकाशित है, भूलोकपर तो मनुष्य कार्य कर रहे है अतः ये दो लोक स्पष्ट दीख रहे है। पर बीचका अन्तरिक्ष लोकका धूलि प्रदेश है, जिसमें भी अन्धेरी रहती है, यह इसी कभी दीखती है। इस तरह बीचके स्थानमें होनेवाला उसका कार्य दीखता नहीं। (१७)

यह व्यापक प्रभु किसीसे कदापि दबनेवाला नहीं है। यही सबकी सुरक्षा करता है और यही सबमें व्यापक है, अतः प्रत्येक वस्तुमें विद्यमान है। ये सब कार्य यही करता है। भूमि, अन्तरिक्ष और द्युलोकमें जो इनके तीन पद कार्य कर रहे हैं उनको देखो और उसका सामर्थ्य जानो (१८)

इस व्यापक प्रभुके ये सब कार्य देखो। ये कार्य सब विश्वमें सतत चल रहे है। इसके व्यापक कार्योंके आश्रयसे मनुष्यके कार्य होते है। उसके दिये धर्मोंका आश्रय करकेही मनुष्य अपने कार्य करता है। (जैसे उसके अग्निसे मनुष्य अपने अन्न पकाता है, उसके बीजसे वह खेती करता है इत्यादि)। यह इसका श्रेष्ठ मित्र है। (व्यापक प्रभु जीवका मित्र है।) (१९)

इस व्यापक प्रभुका यह परम स्थान है जो आकाशमें जैसे प्रकाशित हुए सूर्यको सामान्य देखते है, उसी तरह ज्ञानी लोग सदा उसे देखते है। प्रत्येक वस्तुमें ये उसके कार्योंको स्पष्टतासे सदा देखते है। (२०)

व्यापक प्रभुका यह स्थान है कि जो कर्मठ, उनके [illegible]

देखते हैं। (२१)

इस तरह इस सूक्तमें व्यापक प्रभुका वर्णन है। इसका पाठक मनन करें।

विष्णु-सूर्य

इस सूक्तके 'विष्णु' पदसे 'सूर्य' अर्थ लेकर कई विचारक इस सूक्तका अर्थ करते हैं। सूर्य अपने किरणोंसे सब विश्व व्यापता है यही विष्णुपन है। सूर्य दक्षिणायनसे उत्तरायणतक जो पृथ्वीके विभागोंपर न्यूनाधिक प्रकाश डालता है वे सात भाग यहांके सात स्थान हैं। भूमध्य रेषा एक स्थान है, इसके नीचे तीन और ऊपर तीन मिलकर ये सात भूविभाग होते हैं। ये सूर्यके आक्रमणसे न्यूनाधिक प्रकाशसे युक्त होते हैं।

उत्तरीय ध्रुवमें उत्तरायणमें सूर्योदय होकर वह सूर्य सतत छः मासतक ऊपरही ऊपर चारों ओर प्रदक्षिणा करनेके समान इर्दगिर्द घूमता रहता है। यहां दस बजेतक जितनी ऊंचाईपर सूर्य आता है उतनी ऊंचाईपर वह तीन महिनोंमें आता है और फिर नीचे उतरने लगता है, ये ही उसके तीन आक्रमण हैं। पहिला पीत, दूसरा लाल और तीसरा श्वेत। भूविभाग सात होते हैं और आकाशमें तीन विभाग होते हैं। यहां 'सप्त धाम' का अर्थ सात छन्द ऐसा सायनाचार्य करते हैं। कईयोंकी ऐसीही संमति है।

यहां सात छन्दोंका संबंध इस तरह है गायत्री २४, उष्णिक् २८, अनुष्टुप् ३२, बृहती ३६, पंक्ति ४०, त्रिष्टुप् ४४, और जगती ४८ अक्षरोंवाले ये सात छंद हैं। इन छंदोंके कुल अक्षर २५२ होते हैं, एक दिनके लिये एक माना जाय तो इनके करीब साढे आठ महिने होते हैं। प्रकाशके महिने वहां उत्तरीय ध्रुवके पासके हैं। छः मास दर्शन और उषा और अन्तके पूर्वका संधि प्रकाश इतनेही दिन वहां प्रकाशके होते हैं। इसमें आश्चर्यकी है कि प्रथम गायत्री मंत्रका ध्यान होता है, ठीक गायत्री अक्षर होते हैं, उतनाही समय सूर्यबिंबको ऊपर आनेमें है। इसी तरह सातों छंदोंकी अक्षरोंकी गणना और दिनोंकी गणना समान है। इसलिये सातों छंदोद्वारा विक्रम वर्णन किया है। अन्य वर्णन भी इसी तरह

इस उत्तरीय ध्रुवमें इन्द्र नाम उस प्रकाशका है कि न होते हुए विलक्षण प्रकाश विद्युत्प्रकाश जैसा रहता इन्द्र सूर्यको ऊपर लाता और आकाशमें चढाता है ऐसा वेदमंत्रोंमें है। देखो—

इन्द्रो दीर्घाय चक्षसे आ सूर्यं रोहयद्दिवि॥ (ऋ.

'इन्द्रने सुदीर्घ प्रकाश करनेके लिये सूर्यको द्युलोकमें चढाया।' यह इन्द्र और विष्णुकी मित्रता है।

इस तरह ये विद्वान् सूर्यपर यह सूक्त घटाते हैं। विष्णु है ही वेदमें। ये अनेक अर्थ होनेपर भी इस परमात्मा, सर्वव्यापक प्रभुपरक अर्थ मारा नहीं जाता। वेदका मुख्य ध्येय वही है।

(१२) दो क्षत्रिय

(ऋ. मं. १।२३) मेधातिथिः काण्वः। १-१८ गायत्री, १९ पुरउष्णिक्, २१ प्रतिष्ठा, २०,२२-२४ अनुष्टु

(२३।१-३) वायुः, इन्द्रवायू

तीव्राः सोमास आ गह्याशीर्वन्तः सुता इमे । वायो तान् प्रस्थितान् पिब १
उभा देवा दिविस्पृशेन्द्रवायू हवामहे । अस्य सोमस्य पीतये २
इन्द्रवायू मनोजुवा विप्रा हवन्त ऊतये । सहस्राक्षा धियस्पती ३

अन्वयः—हे वायो! इमे सोमासः सुताः। तीव्राः आशीर्वन्तः। आ गहि। प्रस्थितान् तान् पिब ॥१॥ उभा देवा इन्द्रवायू अस्य सोमस्य पीतये हवामहे ॥२॥ सहस्राक्षा धियः पती मनोजुवा इन्द्रवायू विप्राः ऊतये

अर्थ- हे वायो ! ये सोमरस निचोडे हैं। ये तीखे (हैं अतः इनमें) दुग्धादि मिलाये हैं। यहाँ आओ। और इन रखे इन (रसोंको) पीओ ॥१॥ द्युलोकको स्पर्श करनेवाले इन दोनों इन्द्र और वायु देवोंको इस सोमरसके पान करनेके लिये हम बुलाते हैं ॥२॥ सहस्रों आंखोंवाले, बुद्धिके अधिपती, मन जैसे वेगवान ये इन्द्र और वायु हैं, इनको सभी लोग अपनी सुरक्षाके लिये बुलाते हैं ॥३॥

सोमरस

सोमरस (तीव्राः) तीखा रहता है। इसलिये केवल सोमरसका पान करना अशक्य है। अतः उसके अन्दर जल, दूध, दही, सत्तू आदि (आशीर्) मिलाया जाता है इसीको आशीर्-वन्तः)मिलाया हुआ रस कहते हैं। 'गवाशिर, यवाशिर, दध्याशिर' आदि पद इसीके वाचक आगे देंगे। जो वस्तु मिलायी जाती है उसको 'आशिर्' कहते हैं। 'गवाशिर' गौका दूध मिलाया सोमरस, 'दध्याशिर्' (गौका) दही मिलाया सोमरस, 'यवाशिर्' गौका आटा जाया सोमरस इत्यादि। सोमरस बडा तीखा होनेके कारण उसमें ऐसे पदार्थ मिलानेही आवश्यक हैं। शहद भी मिलाते हैं।

दो क्षत्रिय

इन्द्र और वायु ये दो क्षत्रियदेव हैं। ये किस तरह आचरण करते हैं देखिये-

१ **दिविस्पृशौ**- अन्तरिक्षमें, आकाशमें (विमान आदि वाहनोंसे) संचार करते हैं।

२ **सहस्राक्षौ**- (सहस्र-अक्षौ) हजारों आंखोंसे देखते हैं। अर्थात् ये सहस्रों गुप्तचर रखते हैं और अपने तथा शत्रु-देशका यथार्थ ज्ञान प्राप्त करते हैं। राज्यव्यवहारके लिये इसकी बडी आवश्यकता है।

३ **मनोजुवौ**- (मनः-जुवौ) मनके समान वेगवान्। शीघ्र गतिवाले वाहनोंसे युक्त हैं।

४ **धियः पती**- बुद्धियोंके स्वामी। प्रजाके विचार जिनके साथ रहते हैं, प्रजाके विचारोंके स्वामी, प्रजाके कर्मोंके स्वामी। प्रजाके विचार और कर्म जिनके अनुकूल रहते हैं।

५ **विप्राः ऊतये हवन्ते**- ज्ञानीलोग सुरक्षाके लिये जिनको बुलाते हैं। अर्थात् राष्ट्रके ज्ञानी लोगोंका भी जिनपर पूर्ण विश्वास है।

राजा तथा राजपुरुष इन गुणधर्मोंसे युक्त रहने चाहिये। ऐसे गुण जिनमें होंगे वे राजा प्रजाके लिये अनुकूलही होंगे और प्रजा उनके विरुद्ध कुछ कार्यवाही कदापि करेगीही नहीं।

(२३।४-६) मित्रावरुणौ

मित्रं वयं हवामहे वरुणं सोमपीतये	। जज्ञाना पूतदक्षसा	४
ऋतेन यावृतावृधावृतस्य ज्योतिषस्पती	। ता मित्रावरुणा हुवे	५
वरुणः प्राविता भुवन् मित्रो विश्वाभिरूतिभिः	। करतां नः सुराधसः	६

अन्वयः- वयं मित्रं वरुणं च सोमपीतये हवामहे। (उभौ) जज्ञाना पूतदक्षसा ॥४॥ यौ ऋतेन ऋतावृधौ, ऋतस्य ज्योतिषः पती, ता मित्रावरुणा हुवे ॥५॥ वरुणः प्राविता भुवत्। मित्रः विश्वाभिः ऊतिभिः (प्राविता भुवत्)। (तौ) नः सुराधसः करताम् ॥६॥

अर्थ- हम मित्रको और वरुणको सोमपानके लिये बुलाते हैं। (वे दोनों) बडे ज्ञानी और पवित्रकार्यके लिये अपने बलका उपयोग करनेवाले हैं ॥४॥ जो सरलतासे सन्मार्गकी वृद्धि करनेवाले और सन्मार्गकी ज्योतीके पालनकर्ता हैं, उन मित्र और वरुणको मैं बुलाता हूं ॥५॥ वरुण हमारी विशेष सुरक्षा करता है। मित्र भी सब सुरक्षाके साधनोंसे हमारी सुरक्षा करता है। (वे दोनों) हमें उत्तम धनोंसे युक्त करें ॥६॥

दो मित्र राजा

इस सूक्तमें दो मित्र राजाओंका उल्लेख है। मित्र और वरुण ये दो राजा हैं, इनका वर्णन ऋ. १।२।७-९ में है। (देखो 'मधुच्छन्दा ऋषिका दर्शन पृ. ९-१० और ३८-३९) ये दोनों राजा ऐसे हैं कि जो परस्पर मित्रभावसे आचरण करते और कभी वैर नहीं करते। अब इनका वर्णन इस सूक्तमें देखिये—

१ जज्ञानौ— वे ज्ञानी हैं, विद्यावान् हैं, प्रबुद्ध हैं।

२ पूत-दक्षसौ— पवित्र कार्य करनेके लिये ही अपने बलका ये उपयोग करते हैं, कभी अपने बलका उपयोग दुष्ट कार्यमें नहीं करते।

३ ऋतेन ऋतावृधौ— सरल मार्गसे ही सत्य मार्गकी वृद्धि करते हैं, सन्मार्गसे अभिवृद्धि करनेके लिये भी तेढे मार्ग का अवलंब नहीं करते। जो उन्नतिका साधन करना हो वह सीधे मार्गसे ही करते हैं।

४ ऋतस्य ज्योतिषः पती— सत्यकी ज्योती पालन करते हैं सत्य एक प्रकारची ज्योती है उसका पालन ये अखण्ड करते रहते हैं।

५ विश्वाभिः ऊतिभिः पाविता शु... की सुरक्षा करनेके साधनोंसे हमारी सुरक्षा ये इसलिये से प्रत्येक देव यही करता है।

६ सुराधसः नः करतां— उत्तम सिद्धि हमें करा देवें। 'राधस्' का अर्थ सिद्धि है। 'सुराधस्' उत्तम सिद्धि है। जो कार्य करना है उसमें उन्नति देते हैं।

दो राजा लोग इस तरह अपने राज्यमें वर्तते हैं, भी मित्र भावसे रहें और प्रजाकी उन्नतिका साधन

(२२।७-९) मरुत्वान् इन्द्र

मरुत्वन्तं हवामह इन्द्रमा सोमपीतये । सजूर्गणेन तृम्पतु ७
इन्द्रज्येष्ठा मरुद्गणा देवासः पूपरातयः । विश्वे मम श्रुता हवम् ८
हत वृत्रं सुदानव इन्द्रेण सहसा युजा । मा नो दुःशंस ईशत ९

अन्वयः— मरुत्वन्तं इन्द्रं सोमपीतये आ हवामहे। (सः) गणेन सजूः तृम्पतु ॥७॥ हे विश्वे देवासः! पूपरातयः मरुद्गणाः! मम हवं श्रुतम् ॥८॥ हे सुदानवः! सहसा युजा इन्द्रेण वृत्रं हतम्। दुःशंसः नः मा ईशत ॥९॥

अर्थ— मरुतोंके साथ इन्द्रको हम सोमपानके लिये बुलाते हैं। (वह) मरुद्गणके साथ तृप्त हों ॥७॥ हे (मरुद्गणो)! तुम्हारे अन्दर इन्द्र श्रेष्ठ है, पूषाके समान तुम्हारे दान हैं, ऐसे मरुतो! मेरी प्रार्थना सुनो ॥८॥ हे दाता (मरुतो!) बलवान् और अपने साथी इन्द्रके साथ रहकर वृत्रका वध करो। कोई दुष्ट हमारा स्वामी बैठे ॥९॥

दुष्टके आधीन न होना

(दुःशंसः नः मा ईशत) कोई दुष्ट शत्रु हमारा मालिक न बन बैठे। यह इस सूक्तमें मुख्य संदेश है। सब मिलकर शत्रुका नाश करें और शत्रुका ऐसा नाश हो जावे कि न उठे और कदापि हमारे ऊपर स्वामित्व न करे। स्वामित्वका स्वीकार किसीको भी करना नहीं चाहिये।

(२३।१०-१२) विश्वे देवाः मरुतः

विश्वान् देवान् हवामहे मरुतः सोमपीतये । उग्रा हि पृश्निमातरः १०
जयतामिव तन्यतुर्मरुतामेति धृष्णुया । यच्छुभं याथना नरः ११
हस्कारात् विद्युतस्पर्यऽतो जाता अवन्तु नः । मरुतो मृळयन्तु नः १२

अन्वयः— मरुतः विश्वान् देवान् सोमपीतये हवामहे। हि उग्राः पृश्निमातरः ॥१०॥ जयतां इव, मरुतां धृष्णुया एति, यत् शुभं याथन ॥११॥ हस्कारात् विद्युतः अतः परिजाताः मरुतः नः अवन्तु, मृळयन्तु ॥१२॥

अर्थ— सब मरुत् देवोंको सोमपानके लिये हम बुलाते हैं। वे बडे शूरवीर हैं और भूमिको माता मानते हैं। लोगोंकी तरह, मरुतोंका शब्द बडी वीरताके साथ होता रहता है, जब वे शुभ कार्यके लिये आगे बढते हैं। हुई विद्युत, उत्पन्न हुए मरुद्वीर हमारी रक्षा करें और हमें सुख देवें ॥१२॥

मातृभूमिके वीर

इंका 'विश्वे देव' पद 'मरुतों' के वर्णन करनेके लिये आया (पृश्नि-मातरः) भूमिको अपनी माता मानते हैं, उस मिके लिये बलिदान होते हैं। (शुभं यावन) ये जब शुभ कार्य करनेके लिये जाते हैं, तब उनके संघर्षका बडा शब्द होता है। ये बिजलीसे उत्पन्न हुए वीरोंके समान तेजस्वी वीर हैं। वे सबकी रक्षा करके सबको सुखी करें।

(२३।१३-१५) पूषा

आ पूषञ्चित्रबर्हिषमाघृणे धरुणं दिवः । आजा नष्टं यथा पशुम् १३
पूषा राजानमाघृणिरपगूळ्हं गुहा हितम् । अविन्दच्चित्रबर्हिषम् १४
उतो स मह्यमिन्दुभिः षड् युक्ताँ अनुसेषिधत् । गोभिर्यवं न चर्कृषत् १५

अन्वयः- हे आघृणे शुज पूषन् ! चित्रबर्हिषं धरुणं (सोमं) दिवः आ (हर)। यथा नष्टं पशुम् आ ॥१३॥ पूषा अपगूळ्हं, गुहा हितं, चित्रबर्हिषं राजानं अविन्दत् ॥१४॥ उतो स मह्यं इन्दुभिः युक्तान् षट् अनुसेषिधत्, यवं न चर्कृषत् ॥१५॥

अर्थ— हे दीप्तिमन् शीघ्रगन्ता पूषा देव ! तुम विचित्र कलगीवाले धारक शक्ति (बढानेवाले सोम)को द्युलोकसे ले । जिस तरह तुम हुए पशुको (ढूंढकर लाते हैं) ॥१३॥ तेजस्वी पूषाने छिपे हुए, गुहामें रहनेवाले, विचित्र तुर्रेवाले) राजाको प्राप्त किया ॥१४॥ और उसने मेरे लिये सोमोंसे युक्त छः (ऋतुओंको) बार बार लाया, जिस तरह गान) बैलोंसे बारबार खेत कसता है ॥१५॥

सोमको ढूंढना

इस मंत्रमें सोमका वर्णन देखने योग्य है—

१ चित्रबर्हिः- विचित्र तुर्रेवाला सोमका पौधा होता है। तरह मोरके सिरपर तुर्रा या कलगी होती है, उस तरह तुर्रेवाला पौधा है।

२ धरुणः - यह स्थिर रहनेवाला पौधा है। जलयुक्त जरा कठिन स्थानपर यह उगता है।

३ दिवः आ- द्युलोकसे, पर्वतकी चोटीसे, पर्वतके ऊंचेसे स्थानसे यह सोम लाया जाता है। आठ दस हजार हाथ ई परका सोम उत्तम समझा जाता है। जहां हिमालयके से शिखर होते हैं, वह स्थान उत्तम सोमका है। यहां ४ है।

४ यथा नष्टं पशुं (आहरति)- जैसे अरण्यमें गुम पशुको ढूंढकर लाया जाता है, प्रयत्नसे प्राप्त किया जाता इस तरह इसकी जंगलोंपर जाकर विशेष प्रयत्नसे ढूंढ कर सोमको प्राप्त किया जाता है। इससे पता लगता है कि सोमके पहाडोंके प्राप्त होनेमें कठिनाई पडती है और सोमका सम्पादन बहुत कठिन हुई होगी।

५ अपगूळ्हः- छिपे हुए स्थानमें है। यह आसानीसे नहीं मिलता।

६ गुहा हितः- गुफामें रहता है, सुख जगह मिलता है, जहां जाना मुश्किल है, ऐसे स्थानपर रहता है।

७ राजा- (राज्-दीप्तौ) सोम दीप्तिमान् है, प्रकाशता है। रात्रिके समय प्रकाशता है, अथवा इसका रस चमकता है (यह बात अन्वेषणीय है)।

८ इन्दुः- (इन्दु-क्लेदने) - प्रकाशनेवाला है। रात्रिके समय चमकता है। सोमरस देनेवाला सोम है। (ये अर्थ अन्वेषणीय हैं)।

९ इन्दुभिः षट्- सोमोंके साथ छः ऋतुः वर्ष है। वहां ऋतुओंमें सोम मिलता है।

इस सूक्तमें सोमसंबंधी इतना वर्णन है। इससे सोमके विषयमें बहुत कुछ बोध होता है। यह सिद्धान्त निकलता है, कि इससे साधक होना है।

बैलोंसे खेत

गोभिः यवं न चर्कृषत् [illegible] जाता है। [illegible] ही [illegible] जाता है।

य ऋते चिदभिश्रिषः पुरा जत्रुभ्य आतृदः । संधाता संधिं मघवा पुरूवसुरिष्कर्ता विहुतं पुनः
मा भूम निष्ट्याइवेन्द्र त्वदरणाइव । वनानि न प्रजहितान्यद्रिवो दुरापनो वनामहे
अगन्महीदनाशवोऽनुग्मासस्या वृत्रहन् । सकृत्सु ते महता शूर राधसाऽरान्त्सख्ये वृषण्यवः
यदि स्तोमं मम श्रवदस्माकमिन्द्रमिन्दवः । निरः पविं ससृजानो अद्रिवो मन्दसानो वृषायसे
आ त्वद्य सधमादं वायातुः सरथं गहि । उपमन्त्रितमोजसा ग्ना स्वाहान्या ते वसिष्ठ सुष्टुतिः
सोता हि सोममद्रिभिर्नयन्तमप्सु भागवत । गव्या वस्त्रेव वासयन्त इन्दवो निर्धुक्षन्वक्षणाभ्यः
अध ज्मो अध वा दिवो बृहतो रोचनादधि । अया वर्धस्व तन्वा गिरा ममा जाता सुक्रतो
इन्द्राय सु मदिन्तमं सोमं सोता वरेण्यम् । शक्रो यथा पीपयद्विश्वया धिया धिष्वानं न वाजयुम्
मा त्वा सोमस्य गल्दया सदा याचन्नहं गिरा । भूर्णिं मृगं न सवनेषु चुक्रुधं क ईशानं न याचिषत्
यदेनेपितं मदमुग्रमुग्रेण शवसा । विद्वेषणं तमुताये मरुत्वन्तं भरे हवं नृम्णाय नोऽवसे
शेवारे वार्या पुरु देवो मर्ताय दाशुषे । स सुन्वते न स्तुवते न रासते विश्वग्दधाति धरिषुतः
इन्द्र याहि मत्स्व चित्रेण देव राधसा । सरो न प्रास्युदरं सपीतिभिरा सोमेभिरुरु स्फिरम्
आ त्वा सहस्रमा शतं युक्ता रथे हिरण्यये । ब्रह्मयुजो हरय इन्द्र केशिनो वहन्तु सोमपीतये
आ त्वा रथे हिरण्यये हरी मयूरशेप्या । शितिपृष्ठा वहतां मध्वो अन्धसो विवक्षणस्य पीतये
पिबा त्वस्य गिर्वणः सुतस्य पूर्वपाइव । परिष्कृतस्य रसिन इयमासुतिश्चारुर्मदाय पत्यते
य एको अस्ति दंसना महाँ उग्रो अभि व्रतैः । गमत्स शिप्री न स योषदा गमद्धवं न परि
त्वं पुरं चरिष्ण्वं वधैः शुष्णस्य सं पिणक् । त्वं भा अनु चरो अध द्विता यदिन्द्र हव्यो भुवः
मम त्वा सूर उदिते मम मध्यंदिने दिवः । मम प्रपित्वे अपिशर्वरे वसवा स्तोमासो अवृत्सत
स्तुहि स्तुहीदेते घा ते मंहिष्ठासो मघोनाम् । निन्दितादवः प्रपथी परमज्या मघस्य मेध्यातिथे
आ यदश्वान्वनन्वतः श्रद्धयाहं रथे रुहम् । उत वामस्य वसुनश्चिकेतति यो अस्ति याद्वः पशुः
य ऋज्रा मह्यं मामहे सह त्वचा हिरण्यया । एष विश्वान्यभ्यस्तु सौभगासंगस्य स्वनद्रथः
अध ग्नायोगिरति दासदन्यानासंगो अग्ने दशभिः सहस्रैः ।
अधोक्षणो दश मह्यं रुशन्तो नळाइव सरसो निरतिष्टन्
अन्वस्य स्थूरं ददृशे पुरस्तादनस्य ऊरुरवरम्यमाणः । शश्वती नार्यभिचक्ष्याह सुभद्रमर्य भोजनं

अन्वयः— [प्रगाथो घौरः काण्वः]– हे सखायः ! अन्यत् चित् मा विशंसत । मा रिषण्यत । वृषजं स्तोत । सुते सुहुः उक्था शंसत च ॥१॥ अवकक्षिणं वृषभं, यथा अजुरं गां वृषभं न, चर्षणी-सहं, विद्वेषिणं, उभयंकरं, मंहिष्ठं, उभयाविनं (स्तोत) ॥२॥

[मेधातिथि–मेध्यातिथी काण्वौ]– इमे जनाः यत् चित् हि ऊतये त्वा नाना हवन्ते । हे इन्द्र ! अस्माकं ते विश्वा अहा च वर्धनं भूतु ॥३॥ हे मघवन् ! विपश्चितः अर्यः जनानां विपः वितूर्वन्ते । (अस्मान्) उपक्रमस्व । नेदिष्ठं वाजं ऊतये (अस्मभ्यं) आ भर ॥४॥ हे अद्रिवः ! त्वां महे च शुल्काय न परा दियाम् । हे वज्रिवः ! स्वाय, अयुताय च न (देयां), हे शतामघ ! न (देयां) ॥५॥ हे इन्द्र ! मे पितुः (त्वं) वस्यान् असि । उत भ्रातुः (त्वं वस्यान् असि) । हे वसो ! मे माता (त्वं) च समा वसुत्वनाय राधसे छदयतः ॥६॥ क ईषथ ! असि ? पुरुत्रा चित् हि ते मनः । हे युध्म ! खजकृत् (असि) । हे पुरंदर ! अलर्षि । गायत्राः प्र अगासिषुः ॥७॥ (इन्द्राय) गायत्रं प्र अर्चत । यः पुरंदरः (सः) वावातुः । याभिः काण्वस्य बर्हिः आसदं उपयासन्, (ताभिः) पुरः भिनत् ॥८॥ ये ते दशग्विनः, ये शतिनः, (ये) सहस्रिणः सन्ति, ये ते वृषणः अश्वासः रघुद्रुवः (सन्ति) नः तूयं आ गहि ॥९॥ अद्य सवर्दुघां सुदुघां उरुधारां धेनुं अलंकृतं गायत्रवेपसं इन्द्रं अन्यां इषं तु आ हुवे ॥१०॥

न् तुदन्, (तन्) वंकू वातस्य पर्णिना शतक्रतुः वार्जुनेयं कुत्सं वहन् । अस्तृतं गंधर्वं त्सरन् ॥११॥ यः अभिक्षिपः न् जनुभ्यो जातृदः संधिं संधाता मघवा पुरुवसुः विहुतं पुनः इत्कर्ता (भवति) ॥१२॥ हे इन्द्र ! त्वन् निष्टयाः भूम । अरणाः इव (मा भूम) । प्र-जहितानि वनानि न (मा भूम) । हे अद्रिवः ! दुरोषसः अमन्महि ॥१३॥ न् ! अनागसः अनुग्रासः च इन् अमन्महि इन् । हे शूर ! सकृत् महता राधसा ते सु स्तोमं अनुमुदीमहि ॥१४॥ इन्द्रः) मम स्तोमं यदि श्रवन्, (तं) इन्द्रं अस्माकं पवित्रं तिरः समृवांसः आशवः नृम्याबुधः इन्दवः मदन्तु । वावातुः सख्युः सधस्तुतिं अव नु आ आ गहि । मघोनां उपस्तुतिः त्वा प्र अवतु । अध ते सुष्टुतिं वहिम ॥१६॥ नः सोमं सोत । हि एनं ईं अप्सु आ धावत । गव्या वस्त्रा इव वासयन्त इन् नरः वक्षणाभ्यः निः धुक्षन् ॥१७॥ नः, अध वा दिवः, बृहतः रोचनात् अधि, अया तन्वा मम गिरा वर्धस्व । हे सुकतो ! जाता आ पृण ॥१८॥ इन्द्राय मं वरेण्यं सोमं सु सोत । शक्रः विश्वया धिया हिन्वानं वाजयुं एनं न पीपयत् ॥१९॥ त्वा सवनेषु सोमस्य गल्दया हं सदा याचन्, मा सुकृधम् । भूर्णिं मृगं न, कः ईशानं न याचिषत् ॥२०॥ मदेन इषितं, मदं उग्रं, उग्रेण शवसा, तरुतारं मदच्युतं (पुत्रं) नः मदे ददाति सः हि॥२१॥ शेवारे पुरु वार्या देवः मर्ताय दाशुषे रासते । सः विश्वगूर्तः तः सुन्वते च स्तुवते च (रासते) ॥२२॥ हे इन्द्र ! आ याहि । हे देव ! चित्रेण राधसा मत्स्व । सपीतिभिः नः उरु स्फिरं उदरं नरः न आ प्रासि ॥२३॥ हे इन्द्र ! त्वा शतं सहस्रं हिरण्यये रथे युक्ताः, ब्रह्मयुजः, वेशिनः सोमपीतये आ आ वहन्तु ॥२४॥ हिरण्यये रथे मयूरशेप्या शितिपृष्ठा हरी मध्वः अन्धसः विवक्षणस्य पीतये वा नाम् ॥२५॥ हे गिर्वणः ! पूर्वपा इव, अस्य सुतस्य पिब नु । परिष्कृतस्य रसिनः इयं आसुतिः चारुः मदाय पत्यते यः एकः द्यमना महान् उग्रः व्रतैः अभि क्षमि । स शिप्री आ गमत्, स न योषत् । इयं आ गमत्, न परि वर्जति हे इन्द्र ! त्वं शुष्णस्य चरित्रं पुरं वधैः सं पिणक् । अध त्वं भाः अनु धरः । यत् द्विता हवयः भुरः ॥२८॥ सूरे मम स्तोमासः त्वा आ अवृत्सत । दिवः मध्ये दिने मम, हे वसो ! प्रपित्वे अपिरंधरे मम स्तोमासः आ अवृत्सत ॥२९॥

[आसङ्गः प्रायोगिः]- हे मेध्यातिथे ! स्तुहि स्तुहि इत् । एते घ मघोनां ते मघस्य मेरिष्टामः । निंदिताभः प्रपथी याः ॥३०॥ वनन्वतः अश्वान् अजं यत् अद्रयां रथे आगहम् । उत वासस्य वसुनः चिकेतति । यः गाढः पशुः अजि । य ऋज्रा हिरण्यया स्वचा सह मलं ममहे । एष धासेनगम्य स्वनद्रथः विश्वानि सौभगा अभि अस्तु ॥३१॥ हे अग्ने ! प्रायोगिः आसंगः दशभिः सहस्रैः अन्यान् अति दासत् । अध उक्थैः स्तोतः दशा, मघाः इव मरुतः, मदं निः इन् ॥३२॥

[मेध्यो आत्रिरसी ऋषिका]- अस्य पुरस्तात् अजरः स्थूर उक्षः अव रंदमानः । अभिक्षत्रा शश्वती नारी आह, ! सुभद्रं भोजनं बिभर्षि ॥३४॥

अर्थ— [घोर ऋषिका पुत्र, जो बन्धका दत्तक पुत्र हुआ था, वह प्रशंसा ऋषि कहता है]- हे मित्रो ! हमारे (देवताओं) प्रशंसा न करो । और स्वयं तुम्हें मत रोको । कल्याण इन्द्रकी ही स्तुति करो । सोमयागमें वार्षाग द्वारा) बाल्य ही गाओ ॥११॥ नीचे उतरकर लड़नेवाला, महादानी, जैसी वस्त्र गाय (उपकार करनेवाली) का वत्स बलिष्ठ होते हैं वैसे (उपकार करो और) बलिष्ठ शत्रु-सैनिकोंको जीतनेवाला, सत्कर्म देख करनेवाला, हमसे सेवा योग्य, (शत्रुओंका निग्रह और मित्रोंपर अनुग्रह इन) दोनोंको (यथायोग्य रीतिसे) करनेवाला, बड़ा उदार, दोनों रथ सोमोंसे (यथायोग्य) आकाश करनेवाला (जो इन्द्र है, उसीका काम तुम्हारे करो) ॥

[मेध्यातिथि और मेध्यातिथि ये वत्स सोमसे उत्पन्न हुए ऋषि वत्स गाते हैं]- हे सब ओर अच्छी सुरक्षाके लिये सभी सखा प्रवासमें स्तुति करते हैं । हे इन्द्र ! कल्याण कर्म ही हमारा सदा सब दिशोंमें (आश्रय) करने वाला हो ॥३१॥ हे भगवान् ! (तुम्हारे उपासक) हमारी ओरसे उन्हींको दिखाई पड़ते हैं । (अन्य दुष्टोंसे रक्षा) करो । और बहुत प्रकारका सौभाग्य अब हमारी सुरक्षाके लिये (तुम्हें प्राप्त) हो ॥ हे सर्वोत्तम कर्म दाता ! तुम्हें वहे सारी सृष्टिके भी हैं सारी देवता । हे सत्कर्मोंके दाता ! जो अन्न है, बहुत तुम्हें ही । हे तुम्हें

ा।) हे सैकड़ों धनोंसे युक्त वीर! (तुम्हें मैं) नहीं (दूंगा) ॥५॥ हे इन्द्र! मेरे पितासे भी (तुम मेरे
हो। और स्वयं भोग न भोगनेवाले भाईसे (भी तू बड़ा है)। हे सबको बसानेवाले वीर! मेरी मन
) समान हो, अतः मुझे (सुखका) निवास करनेके लिये और (जीवनकी) सिद्धिके लिये आश्रय दो ॥६॥(
ये थे? और (तुम) कहां थे? बहुत स्थानोंमें तुम्हारा मन जाता होगा। हे युद्धमें कुशल वीर! (तुम
(प्रवीण) हो। हे शत्रुके कीले तोड़नेवाले वीर! आओ। यहां गायत्र (छन्दमें गान करनेवाले गायक)
र रहे हैं ॥७॥ इस (इन्द्रके लिये) गायत्र (छन्दमें काव्यगान) गाओ। यह शत्रुकी नगरियोंका
य) गायकोंका ही (रक्षक है)। जिन (गानोंके साथ यह इन्द्र) कण्व-पुत्रोंके यज्ञके प्रति गये थे, (और
के साथ) वज्रधारी इन्द्रने (शत्रुकी) नगरियोंका नाश किया था (उनका ही गान करो) ॥८॥ जो तेरे इस
हस्रों (घोड़े) हैं, जो बलवान् घोड़े शीघ्र गतिवाले हैं, उनके साथ (तुम) शीघ्रही हमारे पास आके
उत्तम दूध देनेवाली, सहज दुही जानेवाली, बहुत धारासे दूध देनेवाली गायके समान अलंकृत और
और अन्य अन्न (देनेवाले) इन्द्रकी मैं स्तुति करता हूँ ॥१०॥ सूर (नामक गन्धर्व) ने पृतना (नामक राक्ष
कष्ट दिया था, तब वक्रगतिसे चलनेवाले अति शीघ्रगामी (इन्द्रके) दोनों अश्वोंने अर्जुनीके पुत्र कुत्सको
जित गन्धर्वको भी (उसने) परास्त किया ॥११॥ जो (इन्द्र) संधान द्रव्यके विना ही जोड़ोंको जोड़
को मिलाता है, वही धनवान् विविध ऐश्वर्यवाला (इन्द्र) विच्छिन्न अवयवको पुनः जोड़ देता है ॥१२॥ हे
ही (सहायतासे) हम नीच न बनें। तथा अधोगतिको प्राप्त न हों। वृक्षहीन वनोंकी तरह (हम संतानहीन
हे पर्वत दुर्गपर रहनेवाले वीर! न जलनेवाले घरोंमें रहते हुए हम (तुम्हारे यशका) मनन करते रहेंगे ॥
शक वीर! हम शीघ्र कार्य न करनेवाले और उग्र वीर न होते हुए भी तुम्हारा ही यश गायेंगे। हे शूरवीर!
यश धन प्राप्त होनेपर भी तुम्हारा ही सुन्दर स्तोत्र गायेंगे ॥१४॥ (यह) यदि मेरा स्तोत्र सुने (तो उस)
ये पवित्र छाननीसे छाने, शीघ्रगामी और जलोंसे बढ़ाये सोमरस आनन्दित करेंगे ॥१५॥ उपासक निर्दोष
इन्द्र) की हुई स्तुतिको (सुननेके लिये) आज यहां आओ। धनवानोंकी की हुई स्तुति भी तेरे पास ही
और मैं भी तेरी अधिक स्तुति करना चाहता हूँ ॥१६॥ पत्थरोंसे सोमको (कूटकर) रस निकालो और
नेके) जलोंमें धोओ। गौओंके वस्त्रों (गौओंके दूध) से उसे आच्छादित करो (उसमें दूध मिला दो।)
ओंसे दूध (उसमें मिलाओ) ॥१७॥ अब (इन्द्र) पृथ्वीपरसे, द्युलोकसे अथवा बड़े प्रकाशित अन्तरिक्ष
र हमारी विज्ञापित हुए मेरे स्तोत्रसे (अपने यशकी) वृद्धि (को सुने)। हे उत्तम कर्म करनेवाले! उत्पन्न हुए
पूर्तिका तृप्त करो ॥१८॥ इन्द्रके लिये अत्यंत आनन्द बढ़ानेवाले सोमका रस निकालो। वह सामर्थ्यवाला इन्द्र
इन्द्रके आरंभ किये कर्मोंके कारण आनन्दित होनेवाले युद्धेच्छुक इस (वीर) को सामर्थ्यसे युक्त करे ॥१९॥
अनेक मनुष्य दानकी शब्दोंके साथ मैं जब तुम्हारी याचना करूंगा, तब तुम्हें मैं क्रोधित न करूंगा। तुम
सारिपक्ष करता है (वैसाही, सिंह जैसा (भयंकर भी है)। तथापि कौन ऐसा है कि जो प्रभुसे भी याचना न
॥ आनन्दित हुए (सबसे) इच्छा किये हुए, आनन्दयुक्त उग्रवीर, वीरताके बलसे युक्त, सब शत्रुओंका नाश
ने (शत्रुके) सबको दूर करनेवाले और हमारे आनन्दका वर्धन करनेवाले (पुत्रको) निःसन्देह (इन्द्रही)
॥ यज्ञमें अनेक स्वीकार करने योग्य धनोंको (इन्द्र) उदार दाताके लिये देता है। वही सब कार्योंको
नेवाले दोषोंसे प्रशंसित (इन्द्र) सोम रस निकालने और स्तुति करनेवालेके लिये धन देता है ॥२२॥ हे
र आओ। हे देव! तुम विलक्षण सामर्थ्ययुक्त इस सोमरसरूप धनसे आनन्दित होओ। साथ बैठकर
नवाले (तुम अपना) बड़ा विस्तीर्ण पेट, तालाबके समान, भर दो ॥२३॥ हे इन्द्र! सैकड़ों और सहस्रों, सुवर्ण
ले, अच्छे मार्ग चलनेवाले, केशवाले हरिद्वर्ण घोड़े, तुम्हें सोमपानके लिये ले आवें ॥२४॥ सुवर्ण रस्सी
दो घोड़े प्रशंसनीय मधुर अन्न (सोमरस) के पानके लिये तुम्हें ले आवें
हे इन्द्र! प्रथम (देनेवाले) के समान, इस सोमरसका पान करो। यह सुसंस्कारसंपन्न रसोंके मेघ

-क्षी ' ऊपरसे नीचे उतर कर लडनेवाला, पर्वतसे तर कर लडनेवाला (मं. २ में) कहा है।

६ वाज्रिवः- वज्रधारी,

७ शतामघ- सैकडों प्रकारके धन पास रखनेवाला, ५)

८ वसुत्वनाय राधसे छदयन्- लोगोंका निवास सुखसे युक्त करनेके लिये आवश्य सिद्धियां देनेवाला, को सुखसे बसानेवाला, (मं. ६)

९ युध्मः- युद्ध करनेमें अत्यंत कुशल,

१० खंजकृत्- हलचल, क्रान्ति, युद्ध करनेवाला,

११ पुरंदरः- (पुर+दरः)- शत्रुके, नगरोंका, शत्रुके का विनाश करनेवाला। यहां भूमिदुर्गका भाव 'पुर' से चाहिये। क्योंकि पुरीके चारों ओर दुर्ग होता था, इतनाही परंतु पुरीके चारों ओर दुर्गकी सात दीवारें होती थीं। ी सात दिवारोंका भेदन करनेपर शत्रु अन्दर आ सकता ऐसी शत्रुकी पुरियोंका विनाश करनेवाला इन्द्र था। इससे कि शत्रु कोई अनाडी नहीं थे ऐसा साफ प्रतीत होता है। वृत्र आदि असुर ऐसी नगरियोंमें बसते थे कि जिन रियोंकी जनसंख्या कोलोंमें सुरक्षित रहती थी और इन्द्रको कोलोंको तोडना आवश्यक था। शत्रुको परास्त करनेकी ऐसी तैयारी करनी चाहिये, यही बोध इससे मिलता है। (मं.७)

१२ वज्री पुरः भिनत्- शस्त्रधारी वीर शत्रुके अनेक को, भूमिदुर्गमें रहे नगरोंको छिन्नभिन्न करता है। सब साधनोंसे जो नगरियां परिपूर्ण होती हैं (पूर्यते इति पुरः) को 'पुरि' कहते हैं। ऐसे शत्रुके नगरोंको और उनके नकी संरक्षक दुर्गोंको तोडना चाहिये। (मं. ८)

१३ ते वृषणः रघुद्रुवः अश्वासः- इन्द्रके घोडे अत्यंत वान् और बलवान् थे और ये दसों, सैकडों और सहस्रों थे। शतिनः, शतिनः, सहस्रिणः सन्तिः)। (मं. ९)

१४ धेनुः (इन्द्रः)- जैसी गौ दूधरूपी अन्न देती है ी इन्द्र अनेक प्रकारके (दर्य) अन्न प्रजाको देकर पोषण ता है। (मं. १०)

१५ शतक्रतुः- सैकडों कर्म कुशलताके साथ करनेवाला,

१६ वंकू वातस्य पर्णिना अस्तृतं त्मरत्- तेजी से अपने बढकर बलपूर्वकसे अपराजित वा अजेय शत्रुको भी ाड देता है। (मं. ११)

१७ संधिं संधाता- जोडोंको जोड देता है। पांवों और हाथोंके संधि उखड जाते हैं, उनको ठीक योग्य रीतिसे यथास्थान जोडनेकी विद्या जानता है। हड्डीको जोडनेकी विद्याको जाननेवाला। वीरोंको इसका अवश्य चाहिये।

१८ विहुतं पुनः इष्कर्ता- टूटे अवयवको, टूटे फिर से यथायोग्य जोडनेवाला,

१९ अभिश्लिषः ऋते- जोडनेके साधन न होते पूर्वोक्त दोनों कार्य करनेवाला। (मं. १२)

२० पुरुवसुः-बहुत धन पास रखनेवाला। धनसे चलाया जाता है, इसलिये इन्द्र अपने पास बहुतही धन है। (मं. १२)

२१ वृत्र-हा- शत्रुका नाश करनेवाला,

२२ सुकृतुः- उत्तम कर्म करनेवाला, कुशलतासे करनेवाला। (मं. १८)

२३ शक्रः- समर्थ, सामर्थ्ययुक्त, शक्तिमान् (मं.

२४ भूर्णिः- भरण पोषण करनेवाला।

२५ ईशानः- प्रभु, स्वामी, अधिपति। (मं. २०)

२६ शेवारे दाशुषे पुरु वार्या रासते-स्वयंके लिये पर्याप्त धन देता है, उदार पुरुषोंकी सहायता है। (मं. २२)

२७ हिरण्यये रथे युक्ताः केशिनः वहन्ति- रथमें संयुक्त हुए घोडे (इन्द्रको जहां जाना हो वहां) है हैं। (मं. २४)

२८ मयूरशेप्या शितिपृष्ठा हरी हिरण्यये वहतां- मयूरके पंखोंके तुरें लगाये श्वेत पीठवाले सुवर्ण रथमें (बैठनेवाले इन्द्रको) ढोते हैं। (मं. २५)

२९ गिर्वणः— प्रशंसनीय,

३० दंसना महान् उग्रः— बडे कर्म करने बडा शूर,

३१ वर्तेः अभि अस्ति-अपने नियमोंके अनुसार हमला करके उसको परास्त करता है।

३२ शिप्री- शिरपर शिरस्त्राण-लोहेका कवच-धारण है। (मं .२७)

३३ शुष्णस्य चरिष्णुं पुरं धर्धः सं पिणक्- शत्रुके घूमनेवाले कोलका मारक-शस्त्रोंसे चूर्ण करता है।

रिष्णु पूः) हिलनेवाली नगरीका उल्लेख है। हिलनेवाला
ा, चलायमान दुर्ग। शत्रुके इन कीलोंका इन्द्र नाश करता
अन्यत्र (आयसीः पूः) लोहेके कीलोंका वर्णन है। लोहेके
ये, हिलने और एक स्थानसे दूसरे स्थानपर जानेवाले ये
के कील हैं। ये आजकलके टैंक (Tanks) जैसे प्रतीत
हैं। इनका नाश अपने शस्त्रोंसे इन्द्र करता है।

४४ **द्विता**- दोनों प्रकारके लोगोंका हितकर्ता। धनी,
न आदि दो प्रकारके लोग जनतामें होते हैं, उनका हित
करता है। (मंत्र २ में **उभयंकर** और **उभयावी** ये
इसी अर्थके साथ विचार करने योग्य हैं।)

४५ **निंदिताश्वः**- जिसके पास अत्यंत उत्तम घोडे होनेके
ग दूसरोंके घोडोंकी आपही आप निंदा जिसके कारण होती
म घोडोंसे युक्त। इसका अर्थ हीन घोडोंवाला ऐसा
यह बात स्मरण रहे।

प्रपथी- उत्तम मार्गसे जानेवाला,

परमज्या- उत्तम धनुष्यकी डोरी जिसके धनुष्यपर
। (मं. ३०)

तने इन्द्रका वर्णन करनेवाले पद हैं। ये वीरोंका वर्णन
। राष्ट्रमें वीर कैसे हों इसका ज्ञान इन पदोंके मननसे
ता है। हरएक पाठकको इन गुणोंका मनन करके इनमेंसे
अपनेमें आसकते हैं, उनको अपनाना चाहिये। जविष्णु
अन्दरके तरुणोंको तो ये गुण अपनाने चाहिये। पूर्वोक्त
अर्थ पढते समय इन पदोंका यह आशय पाठक ध्यानमें
करेंगे, तो मंत्रोंसे अच्छा बोध उनके मनमें उतर
है।

ातिथि और मेध्यातिथि इन दोनों ऋषियोंने यह आदर्श
रूप जनताके सामने रखा है। यही वीर युवाका वैदिक
है।

पुत्र कैसा हो ?

त्र कैसा उत्पन्न हो, इस विषयमें वेदमंत्रोंमें बारंबार अनेक
निर्देश आते हैं। उनके साथ इस सूक्तके निम्नलिखित
उनके निर्देश ध्यानमें रखने योग्य हैं-

पहिले यह स्मरण रखना चाहिये कि जो इन्द्रका आदर्श
ध्यानमें 'आदर्श वीर पुरुष' के रूपसे रखा है, वैसाही
निर्माण होना चाहिये। इसी तरह अन्यान्य देवताओंके

रूपोंमें जो आदर्श बताया है, वैसा पुत्र उत्पन्न करना वैदिक धर्मियोंके सामने आदर्श रूपसे सदा रहताही है। तथापि इस सूक्तमें निम्नलिखित गुण पुत्रके अन्दर हो ऐसा विशेष रूपसे कहा है—

१ **मदेन इषितः**- आनन्दसे इच्छा करने योग्य, जिसके गुणोंसे आनन्द होगा, ऐसे गुणोंवाला,

२ **मदः**- आनंद देनेवाला,

३ **उग्रः**- उग्र शूर वीर, प्रभावी, पराक्रमी,

४ **उग्रेण शवसा युक्तः**- प्रभावी बलसे युक्त, विशेष शक्तिमान्,

५ **विश्वेषां तरुतारं**- सब शत्रुओंका नाश करनेवाला, शत्रुओंके पार ले जानेवाला, शत्रुओंसे पार करनेवाला,

६ **मदच्युतं**- शत्रुओंके गर्वका नाश करनेवाला, शत्रुको परास्त करनेवाला। (मं. २१)

ऐसा पुत्र इन्द्रकी उपासनासे मिलता है, ऐसा २१ वें मंत्रमें कहा है। इन्द्रके पूर्वोक्त गुणोंका मनन जो स्त्री और पुरुष करेंगे उनको ऐसा पुत्र होगा इसमें कोई आश्चर्यही नहीं है। वैदिकधर्मी स्त्रीपुरुष अपना पुत्र इन गुणोंसे युक्त हो, ऐसा मनका निर्धार करें, मनमें यह बात सदा रखें।

घूमनेवाले कील

इस सूक्तके २८ वें मंत्रमें '**चरिष्णु पूः**' (घूमनेवाला कीला) वर्णनमें आया है। ये कील लोहेके होते थे, ऐसा अन्यत्र वर्णन है।

हत्वी दस्यून् पुर आयसीर्नि तारीत्। (ऋ. २।२०।८)

इन्द्रने शत्रुओंका पराभव किया और उन लोहेके कीलोंको तोड दिया। '**शतं पूर्भिरायसीभिः नि पाहि।**' (ऋ. ७।३।७) सैकडों लोहेके कीलोंसे मेरा संरक्षण करो ऐसे मंत्रोंमें सैकडों लोहेके कीलोंका वर्णन है। यदि ये लोहेके कील घूमनेवाले होंगे, तो निःसंदेह रथ जैसेही होंगे। आवश्यकतानुसार छोटे अथवा बडे भी हो सकते हैं। ये युद्धोंमें तोडे जाते हैं, और सैकडोंकी संख्यामें रहते हैं और सैकडों तोडे भी जाते हैं।

आजकलके टैंक (Tanks) जैसे ये प्रतीत हो रहे हैं। 'आयसीः पूः' का अर्थ लोहेका कीला, पत्थरका कीला, ऐसा दो प्रकारका है, पर जो घूमनेवाला होगा वह तो लोहेका होनाही युक्तियुक्त है।

तरह धोयी जाती है। जितनी अधिक धोयी जाय उतनी क अच्छी समझी जाती है। पर इससे यह सिद्ध नहीं हो ता कि सोम भंगके समान नशा बढानेवाला है। केवल क उत्साह बढाता होगा। चाय, कॉफी ये पेय केवल उत्साह ते हैं, इसलिये ये नशा करते हैं, ऐसा नहीं कहा जा सकता, तरह सोमके विषयमें समझना योग्य है देखिये-

१ परिष्कृतस्य रसिनः आसुतिः चारु मदाय ते- अनेक संस्कार किये सोमरसका शुद्ध (आसव) पीनेसे । आनंद देता है। यहां 'मद' पद है। इसके आनंद, ह और उन्माद (नशा) ऐसे अर्थ हैं। हमारे मतसे यहां ह रूप आनन्द अर्थ लेना योग्य है। मद्यका नशा ा भंगका नशा यहां अपेक्षित नहीं है। जबतक नशा र देहोश होनेका स्पष्ट वर्णन न हो, तबतक हमें 'मद' ा अर्थ आनंद और उत्साहही करना उचित है।

पितासे माताकी अधिक योग्यता

ष्ट मन्त्रमें पिता और माताकी तुलना इन्द्रके साथ की है। मन्त्र ऐसा है-

मे पितुः (त्वं) वस्यान् असि ।
मे माता (त्वं) च समा । (मं. ६)

'मेरे पितासे इन्द्र अधिक श्रेष्ठ है, पर मेरी माताके साथ इन्द्र ही है।' इससे पितासे माताकी योग्यता अधिक है यह होता है। पितासे इन्द्र श्रेष्ठ है और माताके बराबर है, पितासे माता अधिक श्रेष्ठ है। (अभुञ्जतः भ्रातुः ान्। मं. ६) स्वयं भोग न भोगते हुए पालन करने-भाईसे भी माता और इन्द्र श्रेष्ठ है, इसमें संदेहही नहीं है, जो भाई भोजन भी न देता हो उस की योग्यता तो सर रसे निकृष्टही है।

अस्थि जोडना

स्थि और संधिको यथायोग्य रीतिसे जोडनेकी विद्याका त मंत्र १२ में स्पष्ट है। (Bone setting) हड्डी जोडने विद्या वैदिक समयमें उच्च स्थितिमें थी, यह बात इस से स्पष्ट प्रतीत होती है। बिना सांधोंके संधिओंको जोडा हीं जोडे यह स्थान संतुष्ट किया जाता था, यह बात यहां ट है।

सोमकी तीन जातियाँ

(मदिन्तमः) अत्यंत आनन्द बढानेवाला सोम, (मदः) आनंद देनेवाला, ऐसे प्रयोग वेदमें सोमके विषयमें मिलते हैं। 'मदः, मदिन्तरः, मदिन्तमः' ये पद सोमके 'मद' में तीन प्रकार हैं इसकी सिद्धता करते हैं। केवल 'मदिन्तमः' पदही तीन प्रकारोंका बोधक है। इसलिए सोममें कमसे कम तीन प्रकारके सोम तो अवश्यही होंगे, अथवा तीन प्रकारके संस्कार करनेसे उसमें तीन भेद होते होंगे। आधुनिक वैद्यक ग्रंथोंमें २४ भेद सोमके कहे हैं। पर यहां 'मदिन्तम' पदसे आनन्दवर्धक होनेमें जो न्यूनता वा अधिकता है उससे उत्पन्न हुए ये भेद हैं।

इन्द्रके घोडे

इन्द्रके रथको दो घोडे (हरी) जाते जाते थे (मं. २५)। परंतु सहस्रों घोडे उनके पास होनेका वर्णन मंत्र २४ में है। इन्द्रके पास अश्वशालामें सहस्रों घोडे होंगे। परंतु एक समयमें उसके रथको दोही घोडे जोते जाते होंगे। रथको एक, दो, तीन, चार, पांच और सात तक घोडे जोते जानेकी संभावना है। चार तक घोडे आजभी जोतते हैं।

इन्द्रका मोल

पंचम मंत्रमें 'शुल्क लेकर भी इन्द्रको मैं नहीं दूंगा' ऐसा एक भक्तका वचन है। देखिये—

त्वां महे शुल्काय न परा देयाम् ।
शताय, सहस्राय, अयुताय, च न परा देयाम् ।
(मं. ५)

'हे इन्द्र! तुझे मैं बडे मूल्यसे भी नहीं दूंगा, नहीं बेचूंगा। सौ, सहस्र और दश सहस्र मूल्य मिलनेपर भी मैं नहीं दूर करूंगा, नहीं बेचूंगा।' इस मंत्रमें 'शुल्काय न परा देयां' ऐसे पद हैं। मूल्यके लिये भी नहीं दूंगा, इसका अर्थ बेचना ही प्रतीत होता है। इस पर सायण भाष्य देखिए।

महे महते शुल्काय मूल्याय न परा देयाम् ।
न विक्रीणानि । (स. भाष्य ८।१।५)

'बडा मूल्य मिलनेपर भी मैं तुझे नहीं बेचूंगा' (I would not sell thee for a mighty price (विल्सन, विक्रय 'परा दा' धातुका अर्थ बेचना है और देने का दूर करना भी है। शुल्क लेकर इन्द्रको दूर करनेका अर्थ बेचना स्पष्ट है।

कितनी भी धनकी लालच मिलो, तो भी मैं इन्द्रकी भक्ति नहीं छोडूंगा, यह आशय हमारे मतसे यहां स्पष्ट है । कितना भी धन मिले, परंतु मैं इन्द्रकीहि भक्ति करूंगा । यह भक्ति की दृढता यहां बतायी है ।

परंतु कई लोग यहां ' इन्द्रको बेचने ' की कल्पना करते हैं । इन्द्रकी मूर्तियां थीं, ऐसा इनका मत है और वे मूर्तियां कुछ द्रव्य लेकर बेची जाती थी, ऐसा इस मंत्रसे ये मानते हैं ।

मंत्रोंके शब्दोंसे यह भाव टपक सकता है, इसमें संदेह नहीं है । ' **शुल्काय न परा देयां** ' मूल्य मिलनेपर भी मैं नहीं बेचूंगा । ' शुल्क ' का अर्थ वस्तुमूल्य है । यदि यह बात मानी जायगी, तो देवताओंकी मूर्तियाँ थीं और उनकी पूजा और उनके जलूस होते थे, ऐसा मानना पडेगा । इस मतकी पुष्टिके लिये इन्द्रका रथमें बैठना, वस्त्र पहनना, यज्ञस्थानपर जाना, आदि मंत्रोंका वर्णन उत्सव मूर्तिके जलूस जैसा मानना पडेगा । अग्निके रथमें बैठकर अन्य देव आते हैं, यह भी वर्णन जलूसका होगा । क्योंकि देवताओंकी छोटी छोटी मूर्तियां होंगी, तोही रथमें सब देवोंका बैठना संभव है ।

हमारे मतसे यह वर्णन आध्यात्मिक है । शरीररूपी रथमें सब देवताएं बैठीही हैं । पाठक योग्य और अयोग्यका विचार करें, इसलिये सब मत यहां पाठकोंके सम्मुख रखे हैं ।

इस सूक्तके ऋषि

इस सूक्तके ऋषि निम्न लिखित हैं-

मंत्र १-२ घोर ऋषिका पुत्र प्रगाथ ऋषि, जो कण्वका दत्तक पुत्र बन गया था ।

मं० ३-२९ कण्व गोत्रमें उत्पन्न मेधातिथि और

मं० ३०-३३ प्रायोगीका पुत्र आसंग राजपुत्र

मं० ३४ आंगिरा ऋषिकी कन्या आसंगकी भार्या स्त्री ऋषिका ।

' मेध्यातिथि ' ऋषिका नाम मं० ३० में आया है ।

' प्रायोगि आसंग ' नाम मं० ३३ में आया है । ' आसंग ' का नाम मं. ३२ में भी है ।

' शाश्वती ' का नाम मंत्र ३४ में है ।

' काण्व ' का नाम मंत्र ८ में है ।

हीन मानव

मंत्र १३ में ' **निष्ट्याः** ' और ' **अरणाः** ' ये अन्त्यज हीन लोगोंके वाचक पद हैं । जो नीचे बैठनेवाला कारी वह ' नि-स्थ्य ' (निष्ट्य) और जो अधोगतिको प्राप्त हैं वह ' अरण ' है ।

आसंगकी कथा

इस सूक्तका ३४ वां मंत्र देखने योग्य है । शश्वती उसकी धर्मपत्नी है । आसंग प्रायोग राजाका राजपुत्र है । उसका पुरुषत्व नष्ट हुआ था, अनेक उपायोंसे वह उसको पुनः प्राप्त हुआ । यह भाव इस मंत्रमें है, ऐसा कइयोंका कथन है । वह स्त्री बना था, वह फिर पुरुष बना, ऐसा कइयोंका मत है । (देखो ऋ. ८।३३।१९)

---

(१४) वीरका काव्य

(ऋ. मं. ८।२) १-४० मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरसः, ४१-४२ मेधातिथिः काण्वः । इन्द्रः, ४१-४२ विभिन्दुः । गायत्री, २८ अनुष्टुप् ।

इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम् । अनाभयित्ररिमा ते १
नृभिर्धूतः सुतो अश्नैरव्यो वारैः परिपूतः । अश्वो न निक्तो नदीषु २
तं ते यवं यथा गोभिः स्वादुमकर्म श्रीणन्तः । इन्द्र त्वास्मिन्त्सधमादे ३
इन्द्र इत्सोमपा एक इन्द्रः सुतपा विश्वायुः । अन्तर्देवान्मर्त्यांश्च ४
न यं शुक्रो न दुराशीर्न तृप्रा उरुव्यचसम् । अपस्पृण्वते सुहार्दम् ५

गोभिर्यदीमन्ये असन्मृगं न वा मृगयन्ते । अभित्सरन्ति धेनुभिः ६
त्रय इन्द्रस्य सोमाः सुतासः सन्तु देवस्य । खे क्षये सुतपाव्नः ७
त्रयः कोशासः श्रोतन्ति तिस्रश्चम्वः सुपूर्णाः । समाने अधि भार्मन् ८
शुचिरसि पुरुनिःष्टाः क्षीरैर्मध्यत आशीर्तः । दध्ना मन्दिष्टः शूरस्य ९
इमे त इन्द्र सोमास्तीव्रा असे सुतासः । शुक्रा आशिरं याचन्ते १०
तां आशिरं पुरोळाशमिन्द्रेमं सोमं श्रीणीहि । रेवन्तं हि त्वा शृणोमि ११
हत्सु पीतासो युध्यन्ते दुर्मदासो न सुरायाम् । ऊधर्न नग्ना जरन्ते १२
रेवाँ इद्रेवतः स्तोता स्यात्त्वावतो मघोनः । प्रेदु हरिवः श्रुतस्य १३
उक्थं चन शस्यमानमगोररिरा चिकेत । न गायत्रं गीयमानं १४
मा न इन्द्र पीयत्नवे मा शर्धते परा दाः । शिक्षा शचीवः शचीभिः १५
वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः । कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते १६
न घेमन्यदा पपन वज्रिन्नपसो नविष्टौ । तवेदु स्तोमं चिकेत १७
इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति । यन्ति प्रमादमतन्द्राः १८
ओ षु प्र याहि वाजेभिर्मा हृणीथा अभ्यरंस्मान् । महाँइव युवजानिः १९
मो ष्वद्य दुर्हणावान्त्सायं करदारे असत् । अश्रीरइव जामाता २०
विश्वा ह्यस्य वीरस्य भूरिदावरी सुमतिम् । त्रिषु जातस्य मनांसि २१
आ तू पिञ्च कण्वमन्तं न घा विश्म शवसानात् । यशस्तरं शतमूतेः २२
ज्येष्ठेन सोतरिन्द्राय सोमं वीराय शक्राय । भरा पिवन्नर्याय २३
यो वेदिष्ठो अव्यथिष्वश्वावन्तं जरितृभ्यः । वाजं स्तोतृभ्यो गोमन्तम् २४
पन्यंपन्यमित्सोतार आ धावत मदाय । सोमं वीराय शूराय २५
पाता वृत्रहा सुतमा घा गमन्नारे असत् । नि यमते शतमूतिः २६
एह हरी ब्रह्मयुजा शग्मा वक्षतः सखायम् । गीर्भिः श्रुतं गिर्वणसम् २७
स्वादवः सोमा आ याहि श्रीताः सोमा आ याहि ।
शिप्रिन्वृषीवः शचीवो नायमच्छा सधमादयम् २८
स्तुतश्च यास्वा वर्धन्ति महे राधसे नृम्णाय । इन्द्र कारिणं वृधन्तः २९
गिरश्च यास्ते गिर्वाह उक्था च तुभ्यं तानि । सत्रा दधिरे शवांसि ३०
एवेदेष तुविकृर्मिर्वाजाँ एको वज्रहस्तः । सनादमृक्तो दयते ३१
हन्ता वृत्रं दक्षिणेनेन्द्रः पुरू पुरुहूतः । महान्महीभिः शचीभिः ३२
यस्मिन्विश्वाश्चर्षणय उत च्यौला श्रयांसि च । अनु घेमन्दी मघोनः ३३
एष एतानि चकारेन्द्रो विश्वा योऽति शृण्वे । वाजदावा मघोनाम् ३४
प्रभर्ता रथं गव्यन्तमपाकाचियमवति । इनो वसु स हि वोळ्हा ३५
सनिता विप्रो अर्वद्भिर्हन्ता वृत्रं नृभिः शूरः । सत्योऽविता विधन्तम् ३६
यजध्वैनं प्रियमेधा इन्द्रं सत्राचा मनसा । यो भूत्सोमैः सत्यमद्वा ३७
गाधवधवसं सत्पतिं श्रवस्कामं पुरुष्टुतम् । कण्वासो गात वाजिनम् ३८
य ऋते चिद्भिषज्यति द्वेषो दुरुक्तमर्त्यः । ये अस्मिन्कामममश्रियन् ३९
इत्था धीवन्तमद्रिवः काण्वं मेध्यातिथिम् । मेषो भूतोऽभि यज्वयः ४०

शिक्षा विभिन्दो अस्मै चत्वार्ययुता ददत् । अष्टा परः सहस्रा ॥४१॥
उत सु त्ये पयोवृधा माकी रणस्य नप्त्या । जनित्वनाय मामहे ॥४२॥

अन्वयः— [मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्च आङ्गिरसः]- हे वसो ! इदं अन्धः सुतं सुपूर्णं उदरं पिब। ते ररिम ॥१॥ नदीषु निक्तः अश्वः न, नृभिः भूतः, अश्वैः सुतः, अव्यः वारैः परिपूतः ॥२॥ हे इन्द्र ! ते तं, गोभिः श्रीणन्तः स्वादुं अकर्म, अस्मिन् सधमादे त्वा (पातुं आह्वयामः) ॥३॥ इन्द्रः इत् एकः मर्त्यान् देवान् इन्द्रः विश्वायुः सोमपाः सुतपाः ॥४॥ उरुव्यचसं सुहार्दं यं शुक्रः न अप स्रुण्वते, दुरार्णाः न, नृप्राः न ॥५॥ अन्ये हं गोभिः मृगयन्ते, व्राः मृगं न, (ये च) धेनुभिः अभिस्वरन्ति ॥६॥ सुतपामः देवस्य इन्द्रस्य सख्ये अवे सुतासः सन्तु ॥७॥ त्रयः कोशासः चोतन्ति । तिस्रः चम्वः सुपूर्णाः, समाने भार्मन् अधि ॥८॥ (हे सोम ! त्वं) असि, पुरुनिष्टाः, मध्यतः क्षीरैः दक्षा (च) आशीर्तः, शूरस्य मन्दिष्टः (भव) ॥९॥ हे इन्द्र ! ते इमे सोमाः सुतासः शुक्राः अस्मे आशिरं याचन्ते ॥१०॥ हे इन्द्र ! तान् आशिरं श्रीणीहि । पुरोळाशं इमं सोमं (च) रेवन्तं श्रुणोमि ॥११॥ सुरायां दुर्मदासः न युध्यन्ते, पीतासः हरिषु (युध्यन्ते). नग्नाः, उधः न जरन्ते ॥१२॥ हे रेवतः स्तोता रेवान् इत् स्यात् । त्वावतः मघोनः श्रुतस्य प्र इत् उ (स्यात्) ॥१३॥ अगोः अरिः, शस्यमानं आ चिकेत । गीयमानं गायत्रं न ॥१४॥ हे इन्द्र ! पीयत्नवे नः मा परा दाः । शर्धते (च) मा (परा दाः) । हे शचीभिः शिक्ष ॥१५॥ हे इन्द्र ! त्वायन्तः वयं सखायः तदिदर्थाः कण्वाः उक्थेभिः त्वा जरन्ते ॥१६॥ हे वज्रिन् ! तव नविष्टौ अन्यत् न ध ईं आ पपन । तव इत् उ स्तोमं चिकेत ॥१७॥ देवाः सुन्वन्तं इच्छन्ति, स्वप्नाय न । अतन्द्राः प्रमादं यन्ति ॥१८॥ वाजेभिः अस्मान् अभि सु प्र ओ याहि । मा हृणीथाः । युवजानिः महान् इव ॥ णावान् अस्मद् आरे (आगच्छतु) । सायं सु मो करत् । अश्वीरः जामाता इव ॥२०॥ अस्य वीरस्य भूरिदावत्तरां विश्व हि । त्रिषु जातस्य मनांसि (विश्व) ॥२१॥ कण्वमन्तं तु आ सिंच । शवसानात् शतमूतेः यशस्तरं न ध विश्व हे सोतः ! वीराय नर्याय शक्राय इन्द्राय ज्येष्ठेन सोमं भर पिबत् ॥२३॥ यः अव्यथिषु वेदिष्टः जरितृभ्यः स्तोतृभ्यः वन्तं गोमन्तं वाजं (ददाति) ॥२४॥ हे सोतारः ! मघाय वीराय शूराय पन्यं पन्यं इत् आ धावत ॥२५॥ सुतं वृत्रहा आ गमत् ध । अस्मत् आरे शतमूतिः नियमते ॥२६॥ ब्रह्मयुजा शग्मा हरी इह श्रीभिः श्रुतं गिर्वणसं वक्षतः ॥२७॥ हे शिप्रिन् ! हे ऋषिवः शचीवः ! सोमाः स्वादवः । आ याहि । सोमाः श्रीताः आ याहि । न (सधमादं अच्छ ॥२८॥ हे इन्द्र ! कारिणं वृधन्तः स्तुतः, याः (स्तुतयः) च, त्वा महे राधसे नृम्णाय वर्धन्ति गिर्वाहः । ते गिरः याः च उक्था तुभ्यं च तानि सत्रा शवांसि दधिरे ॥३०॥ एषः एव तुविकूर्मिः इत्, एकः सनात् अमृक्तः वाजान् दयते ॥३१॥ इन्द्रः दक्षिणेन वृत्रं हन्ता, पुरु पुरुहूतः महीभिः शचीभिः महान् ॥३२॥ चर्षणयः यस्मिन्, उत च्यौत्ना व्रयांसि, मघोनः अनुमंदी ध इत् च ॥३३॥ एषः इन्द्रः एतानि विश्वा चकार । वाजदावा यः अति श्रुण्वे ॥३४॥ प्रभर्ता गव्यन्तं रथं यं अपाकात् चित् अवति, स इनः वसु वोळ्हा हि ॥३५॥ अर्वद्भिः सनिता, शूरः नृभिः वृत्रं हन्ता, सत्यः विधन्तं अविता ॥३६॥ हे प्रियमेधाः ! सत्राचा मनसा एनं इन्द्रं सोमैः सत्यमद्वा भूत् ॥३७॥ हे कण्वासः ! गाथश्रवसं सत्पतिं श्रवस्कामं पुरुत्मानं वाजिनं गात ॥३८॥ पदेभ्यः ऋते यः शचीवान् सखा नृभ्यः गाः दात्, ये अस्मिन् कामं अश्रियन् ॥३९॥ हे अद्रिवः ! इत्था धीवन्तं काण्वं मेध्यातिथिं भूतः अभि यन् अयः ॥४०॥

[मेधातिथिः काण्वः]- हे विभिन्दो ! अस्मै चत्वारि अयुता शिक्ष, परः अष्ट सहस्रा ददत् ॥४१॥ उत सु त्ये पयोवृधा माकी रणस्य नप्त्या जनित्वनाय मामहे ॥४२॥

अर्थ- [कण्वपुत्र मेधातिथि और अङ्गिरापुत्र प्रियमेध ये दो ऋषि]- हे सबके निवास करानेवाले वीर ! इस पेट भरकर पान करो। हे न डरनेवाले वीर ! तुम्हें (हम सोमरस) देते हैं ॥१॥ नदियोंमें नहाये नेताओंद्वारा धोया गया, पत्थरोंसे (कूटकर) निचोडा, मेढीके बालों (के बने कम्बलसे) छाना यह

द हुआ है ॥२॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे लिये इस (सोमको), जौ की तरह, गौओंका (दूध) मिलाकर मीठा बनाया है, लिये) इस साथ (साथ बैठकर) पान करनेके स्थानमें (रसपानके लिये तुम्हें बुलाता हूँ) ॥३॥ इन्द्र ही अकेला ं और देवोंके मध्यमें प्रभु है, जो सब आयु भर प्रथम सोमपान करनेका अर्थात् सोमरसका अधिकारी है ॥४॥ ; व्यापक उत्तम हृदयवाले जिस (इन्द्र) को वीर्यवर्धक (सोम कभी) अप्रसन्न नहीं करता, दुर्लभ (पदार्थों) को कर किया सोम और पुरोडाश भी उसको कभी अप्रसन्न नहीं करते ॥५॥ जो हमसे भिन्न लोग हैं, वे इस (इन्द्र) ोंमें (का दूध मिलाये सोमरस) के साथ ढूंढते हैं, जैसे व्याध हिरनको ढूंढते हैं, (तथा और कोई) गौओंके (दूध य उसके पास) जाते हैं ॥६॥ सोमरसका पान करनेवाले इन्द्र देवके अपने स्थानमें ये तीनों सोमरस (प्रातः दोपहर सायंकाल) निचोड़कर (तैयार हुए ये उनके लिये ही) हों ॥७॥ ये तीन कोश (सोमरसको) स्रव रहे हैं। तीन (सोमरससे) भरपूर भरे हैं, (यह सब) समान पान-स्थानमें (तैयार रखा है) ॥८॥ (यह सोमरस) पवित्र क पात्रोंमें रखा है और इसके बीचमें दूध और दही मिला दिया है। (यह रस) शूरको आनन्द देनेवाला (हो) े इन्द्र ! तुम्हारे लिये ये सोमरस तीव्र हैं, रस निकालनेपर शुद्ध किये (ये रस) हमारे पाससे दूध आदि मिलाने ; अपेक्षा करते हैं ॥१०॥ हे इन्द्र ! उन (सोमरसोंमें) दूध आदि मिलाओ। पुरोडाश और इस सोमको (साथ) मिलाकर सेवन करो। तू धनसंपन्न (है ऐसा मैं) सुनता हूँ ॥११॥ सुरापान करनेपर जिस तरह दुष्ट नशासे ; हुए (लोग जगहमें) लड़ते हैं, उसी तरह ये सोमरस (पीनेवालेके) हृदय-स्थानोंमें (ही युद्ध करते हैं, अर्थात् ; बढ़ाते हैं, अतः) स्तोता लोग, गौके स्तनोंके समान, (तेरी सोमपानके बाद) प्रशंसा करते हैं ॥१२॥ हे उत्तम से युक्त वीर ! धनवान्‌की प्रशंसा करनेवाला धनवान् ही हो जाता है। (इसी नियमके अनुसार) तुम्हारे जैसे न् और बहुश्रुतका (मित्र तुम्हारे जैसा ही होगा) यह निःसंदेह ही है ॥१३॥ अभक्तका शत्रु (इन्द्र है जो) गाया ाला काव्य जानता ही है, तथा गाया जानेवाला गायत्र गान तत्काल ही (जानता है) ॥१४॥ हे इन्द्र ! घातक ; पास हमें न छोड़ना। हिंसकके हाथमें भी (हमें न देना)। हे समर्थ वीर! अपनी शक्तियोंसे (हमें योग्य) ता कर ॥१५॥ हे इन्द्र ! तुम्हारी प्रीतिकी इच्छा करनेवाले तुम्हारे मित्र तुम्हारीही कामना करते हुए कण्व गोत्रमें ; हम कवि स्तोत्रोंसे तुम्हारा ही यश गाते हैं ॥१६॥ हे वज्रधारी वीर ! कर्मप्रवीण तुम्हारे जैसेके यज्ञमें हम दूसरे ; (स्तोत्र) को नहीं कहेंगे। केवल तुम्हारे ही स्तोत्रको हम जानते हैं ॥१७॥ देवता कर्मशील मानवको ही चाहते सुस्तको चाहते नहीं। आलस्यरहित (कर्मशील मनुष्य) विशेष आनन्दको प्राप्त करते हैं ॥१८॥ सखाओंके साथ हमारे आओ। संकोच न करो। जिस तरह तरुण स्त्रीका पति बड़ा वीर (तरुणीके पास जाता है, वैसे ही तुम निःसंकोच हो े पास आओ) ॥१९॥ शत्रुओंको अस्त्र होनेवाला वीर हमारे पास (आवे। बुलानेपर) सायंकाल न करे। जिस निर्धन दामाद (समयपर नहीं आता, वैसा न करे) ॥२०॥ इस वीरकी बहुत धन देनेवाली उत्तम बुद्धिको हम ते हैं। तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध (इस वीरके) मनोभावोंको (हम जानते हैं) ॥२१॥ कण्व जिसकी (भक्ति करते हैं, वीरके लिये) सोमरस दो। बलवान् और सैकड़ों प्रकारोंसे रक्षा करनेवाले (इन्द्रसे) अधिक यशस्वी वीरको हम ते ही नहीं ॥२२॥ हे सोमरस निकालनेवाले ! वीर, मानवोंके हितकारी, समर्थ इन्द्रके लिये प्रथम सोम दो, वह ; पीवे ॥२३॥ जो कष्ट न देनेवालोंमें (अच्छे मानवोंको) जानता है, तथा वह उपासना और प्रार्थना करनेवालोंको ं और गौओंसे युक्त अन्न (देता है) ॥२४॥ हे सोमरस निचोड़नेवाले ! आनन्दित होनेवाले शूर वीर (इन्द्र) के ; स्तुतियोग्य सोमरस बारंबार दो ॥२५॥ सोमका रक्षक और वृत्रका नाशक (इन्द्र) यहां आ जावे। रे पास (आकर) सैकड़ों रीतियोंसे सुरक्षा करनेवाले (इन्द्र) शत्रुओंको अपने अधीन करे ॥२६॥ के साथ जोते जानेवाले सुखदायी दोनों घोड़े यहाँ मंत्रोंद्वारा प्रशंसित मित्र इन्द्रको ले आवें ॥२७॥ सोमरसधारी वीर ! हे ऋषियोंके साथ रहनेवाले शक्तिवाले वीर (इन्द्र)! ये सोमरस मधुर हैं। आओ। सोम ूध आदिमें) मिलाये हैं। आओ। अभी यह (स्तोता) साथ साथ रसपान करनेके स्थानमें समीप (रह कर स्तुति ता है।) ॥२८॥ हे इन्द्र ! (तुम जैसे) कारीगरके यशका वर्धन करनेवाले ये स्तोता और उनकी स्तुतियाँ, तुम्हें

बड़े धनके लिये और बलके लिये बढ़ाते हैं ॥३५॥ हे स्तुति-योग्य वीर ! तुम्हारे लिये ... ही उन (प्रशंसनीय तथा तृप्तिदायी) स्तुति करनेवाले बलोंको प्राप्त करते हैं ॥३६॥ यह (इन्द्र) ... कर्मोंको करनेवाला है, यह एकदी बलशाली और सहायके समान है, यही बलोंको देता है ॥३७॥ इसने ... वृत्रका वध किया है, यह अनेक स्थानोंमें बहुत बार बुलाया जाता है। यह सभी अभिलाषोंके कारण बनता (॥३२॥ सारी प्रजाएँ जिसके अधीन रहती हैं, जिसमें सब सामर्थ्य और विजयी बलसे हैं, वही बलवान् इन्द्र (सत्कार्यमें) अनुमोदन करता है ॥३३॥ इसी इन्द्रने ये सारे (दिव्य) पदार्थ दिये हैं। वही सत्यकर्मोंको और वही सर्वत्र विभुत है ॥३४॥ (सबका) भरण पोषण करनेवाला (यह इन्द्र) लोगोंकी इच्छा ... (भक्तको) जो अपवित्र शत्रुसे भी बचाता है, यह (सबका) स्वामी भक्तको देकर (भक्तको) देता है ज्ञानी, घोड़ोंसे (जहां चाहिये वहां) जानेवाला, शूर, वीरोंके साथ (रहनेवाला), शत्रुका वध करनेवाला, (इन्द्र) कर्म करनेवालोंका संरक्षक है ॥३६॥ हे विप्रगोत्र ऋषि ! एकाग्र मनसे इस इन्द्रके लिये यज्ञ करो। रस (प्राप्त करके) सत्य आनन्द देनेवाला होता है ॥३७॥ हे कण्वो ! सामगोंमें जिसका यश वर्णन किया रक्षक, यशके इच्छुक, अनेक स्थानोंमें रहनेवाले, बलवान् इन्द्रका (काव्य) गाओ ॥३८॥ यतीके लिये ... जिस सामर्थ्यवान् मित्र (इन्द्रने) मनुष्योंको (हटाकर उनकी) गौएं प्राप्त कर दीं, उन लोगोंने उसी (सब कामनाओंको प्राप्त किया ॥३९॥ हे पर्वत पर (के कीलेमें) रहनेवाले वीर ! इस तरह बुद्धिमान् ... तिथिके पास मेषके रूपसे आगे हो कर गया था ॥४०॥

[कण्वका पुत्र मेधातिथि ऋषि]- हे विप्रबिन्दु ! (हे राजन् !) इस (ऋषि) को तुमने सौ गौएं दीं पश्चात् आठ हजार और दिया ॥४१॥ अतः उन (गौओं) को बढ़ाने वाली, (धन) निर्माण करनेवाली बढ़ानेवाली (दोनों द्यावा-पृथिवीकी) प्रजाजनके लिये हम प्रार्थना करते हैं ॥४२॥

इन्द्रका सामर्थ्य

इस सूक्तमें पुनः इन्द्रके प्रचण्ड सामर्थ्यका वर्णन किया है, पाठक इसका अब विचार करें—

१ **वसु**- सबका निवास करनेवाला,

२ **अनाभयी**- (अन्-आ-भयिन्) निर्भय, भयरहित, (मंत्र १)

३ **मर्त्यान् देवान् अन्तः इन्द्रः**- मानवों और देवोंका प्रभु,

४ **विश्वायुः**- सब आयु, सब मानव जिसमें हैं, सर्वदा, (मं. ४)

५ **उरुव्यचाः**- अत्यंत व्यापक, विशेष विस्तीर्ण, सर्वत्र व्यापक (मं. ५)

६ **सुहार्दः**- उत्तम हृदयवाला, मनसे कोमल, सहानुभूति रखनेवाला, (मं. ५)

७ **शुचिः**- पवित्र, (मं. ९)

८ **हरिवः**- घोड़े जिसके पास हैं, (मं. १३)

९ **अगोः अरिः**- ज्ञानहीनका शत्रु, प्रगति न करनेवालेका शत्रु, (मं. १४)

१० **शचीवः**- सामर्थ्यवान्, (मं. १५)

११ **दुर्हणावान्**- जिसका हमला भयंकर होता

१२ **भुरिदावरी सुमतिः**- बड़े दान को (रखनेवाला), (मं. २१)

१३ **शवसानः**- बलवान्,

१४ **शतः ऊतिः**- सैकड़ों सामर्थ्योंसे संरक्षण (मं. २२)

१५ **वीरः**- शूर वीर,

१६ **नर्यः**- मानवोंका हित करनेवाला, जनता करनेकी इच्छावाला,

१७ **शचुः**- समर्थ, सामर्थ्यवान्, (मं. २३)

१८ **मद्यः वीरः शूरः**- आनंदित शूर वीर। का अर्थ आनंद देनेवाला अथवा आनंदयुक्त है। लिया जाय तो ' मद्य ' (शराब) अर्थ होगा बनेगा। पाठक इस अर्थका स्मरण रखें।) (मं.

१९ **पाता**- संरक्षण करनेवाला,

सोमरस पीया नहीं जाता, क्योंकि वह नशा तीव्र रहता है। यह हृदयमें उत्साह उत्पन्न करता है।

क्या सोमपानसे नशा होती है ?

इस सूक्तसे पता चलता है कि पेटभर पीनेसेभी नशा नहीं होती। सोमरस पेटभर पीयाही जाता था। पेटभर जो रस पीया जाता था, वह नशा करनेवाला नहीं हो सकता। इस विषय में वेदका मंत्रही देखिये—

(१) हृत्सु पीतासो युध्यन्ते
(२) दुर्मदासो न सुरायाम्।
(३) ऊधर्न नग्ना जरन्ते ॥ (ऋ. ८।२।१२)

१ (पीतासः) पीये हुए सोमरस (हृत्सु) हृदय-स्थानोंमें (युध्यन्ते) स्पर्धा करते हैं, हलचल करते हैं, उत्साह उत्पन्न करते हैं। यह हृदय-स्थानमें होनेवाला विचारोंका युद्ध है, इसको (सुमदासः) उत्तम आनन्द और उत्साहका संवर्धन कह सकते हैं।

२ (सुरायां) सुरा पीकर (दुर्मदासः) दुष्ट नशासे भ्रान्त बने हुए लोग (न) जैसे जगत्में आपसमें परस्पर लडते हैं, [वैसा सोमपानसे नहीं होता, क्योंकि सोमरस हृदयस्थानमेंहि विचारोंका युद्ध करते रहते हैं।]

३ (न–ग्नाः) स्त्रियोंके साथ संबंध न रखनेवाले ब्रह्मचारी, अथवा (नग्नाः– नजति इति) उपासक भक्त स्तोता (ऊधः न) जिस तरह गौके दूधकी (जरंते) प्रशंसा करते हैं, [वैसे ही वे सोमरसकी तथा सोमरस पीनेवाले इन्द्रकी प्रशंसा करते हैं।]

यहां सोमरस पेटभर पीनेसे मनमें उत्साहकी ऊर्मियां खलबली मचाते हैं, विचारोंमें युद्ध उत्पन्न करते हैं, यह सब विचार के क्षेत्रमेंही होता है, ऐसा कहा है। इसके विरुद्ध सुरापानकी स्थिति है। सुरापानसे ' दुर्मद ' (बुरी नशा) उत्पन्न होती है और उस बेहोशीमें जगत्में युद्ध होते हैं। सुरापानका युद्ध नशाका, ' दुर्मद ' अवस्थाका जगत्के बाह्य क्षेत्रमें है, और सोमपानसे होनेवाला युद्ध उत्तम उत्साहपूर्ण अवस्थामें होनेवाला हृदयके विचारोंके क्षेत्रमें है, यह दोनोंका भेद ध्यानमें धारण करना चाहिये। अब सुरापान और सोमपानके परिणामका विचार करना आवश्यक है—

सुरापानें	सोमपानें
दुर्मदाः	सुहार्दः
	सुमतिः
	शुचिः
	शुक्रः
	मयः
	मदः
	मन्दिनमः

सुरापान से मनुष्य 'दुर्मद' होता है, दुष्ट नशासे बेहोश होता है। इससे जो दुष्कृत्य हो उनकी कल्पना पाठक कर सकते हैं।

सोमपान से सुहार्द् उत्तम हृदय बनता है, सुमति उत्तम होती है, 'शुचिः' शुचिता आती है, शुक्र वीर्य वृद्धि होती है, 'मद, मद्य मदिंतम' आनन्द और विलक्षण स्फूर्ति होती है। इसके पीनेसे इन्द्रके पूर्व स्थानोंमें वर्णन किये हैं, वे शरीरमें संवर्धित होते हैं एकही हाथसे शत्र फेंककर वृत्रका वध करता है (मं. सोमरस पेटभर पीया जाता है (मं. १)। वह प्राणोंको करनेवाला एक उत्तम अन्न है, सुरा कदापि अन्न नहीं सकता। सोमपानसे शरीरका भरण पोषण हो सकता सुरापानसे नहीं होता। सोमपानसे सैकडो कर्म करनेकी उत्पन्न होती है, सुरापानसे बेहोशी और गलितगात्र है। पेटभर सोमपान करनेपर भी मनुष्य बेहोश नहीं परंतु उत्साहसे अपना कार्य ठीक तरह कर सकता तरह सोमपान और सुरापानके परिणाम परस्परविरुद्ध सोमपानकी ऋषिमुनि स्तुति करते हैं, वेदमें सर्वत्र प्रशंसा है, वैसी सुरापानकी कहीं भी प्रशंसा नहीं है।

' मद 'के अर्थ कोशमें ये हैं- (१) मतवालापन, उन्माद, नशा, बेहोशी। (२) हाथीके गण्डस्थलसे रस। (३) प्रेम, प्रीति, गर्व, आनंद, हर्ष, उत्साह। (४) कस्तूरी। (५) (पुरुषका) वीर्य। (६) मद्य, सोम। (७) वस्तु। (८) नदी, जल-प्रवाह। इन अर्थोंमें ' मद ' है। ' **सुरा** ' का परिणाम ' उन्मत्तता, उन्माद, बेहोशी ' हैं और ' **सोम** 'का परिणाम ' प्रेम और उत्साह ' हैं। पूर्वोक्त विवरणका तात्पर्य यह है।

सोमरसके लिये 'आसुति' कहा है। यदि इसे ' आसव ' माना जा सकता है, तब तो इसमें नशाके धर्म नहीके बराबरही होना संभव है, क्योंकि सोमरस

बार निकाला जाता है और तीन बारही पीया जाता है। जो नशा उत्पन्न होनेवाली सडानसे उत्पन्न होनेवाली वस्तु नहीं उत्पन्न हो सकती। यहां प्रश्न उत्पन्न हो सकता है शराबके समान नशावाली वस्तु इसमें न हो, पर भंग जैसी या नहीं? इस विषयमें बात यह है कि, वैसी भी नहीं, के भंग पीनेसे भी मनुष्य कर्तृत्ववान् नहीं होता, पर यहां पानसे कर्तृत्ववान् होता है। अतः सोमपानमें भंगके समान उत्पन्न नहीं होता।

'मद, मद्य, प्रमद, संमद, मदिंतम' इन पदोंमें द' है और 'दुर्मद' में भी 'मद' है। मदका दुर्मद बुरा है। मद बुरा नहीं है, वह आनंद और उत्साहका है। पेटभर सोमरस पीनेपर भी 'दुर्मद' अवस्था नहीं , जो सुरापानसे और भंगपानसे होती है। यह बात ठीक समझमें आनेसे सोमपानकी निर्दोषता सिद्ध हो सकती है। 'दुर्मद' अवस्था सुरापानसे होती है, ऐसा कहा है और ानसे 'मदिन्तम' अवस्था आती है। 'सु' और 'दुर्' तनही फर्क है।

सोम	सुरा
सुमद	दुर्मद
सुमति	दुर्मति
सुहार्द्	दुर्हार्द्

नमें जमीन आसमानका अन्तर है। 'सुमद, सुमति, सुहार्द्' मके साथी हैं और 'दुर्मद, दुर्मति, दुर्हार्द्' ये सुराके हैं। पेटभर सोमरस पीनेपर भी सुमति नहीं हटती और ई स्थिर रहता है, यह सोमरसकी महिमा है। सुराकी से दुर्मतिसे स्पष्ट हो जाती है। जो लोग कहते हैं कि सोम- से वैसीही नशा होती है जैसी सुरासे, उनको अपने ण पेश करने चाहिये। वीर इन्द्र दिनमें तीनवार पेटभर रस पीता है और बेहोशीका चिह्न उस पर दीखता नहीं . वह सुमतिपूर्वक सब कार्य करता रहता है। यह सोमका काम है। इसीलिये सोमपान स्तुतिके योग्य माना गया है। ' पर देखनेसेही नशा की कल्पना जो करेंगे, वे फंसेंगे। वि. सुमद-दुर्मदमें 'मद' है, पर 'सुमद' उपादेय है और मद' हेय है।

यहां यहभी कहना योग्य नहीं है कि, जैसी शराब पीनेसे बहुत बिगाड नहीं होता, परंतु अधिक जानेसे नुकसान होता है, वैसाही सोमरसका होगा। सोममें 'दुर्मद' होनेकी संभावनाही नहीं है। सोमरस तो पेटभर पीया जाता है, गौओंको खिलाया जाता है, पेटकी दोनों बाजूएं बाहरसे पूरी भरी दीखनेपर भी 'दुर्मद' अवस्था नहीं होती, यह सोमरसकी विशेषता है। सोमरस पेटभर पीनेपर भी सुमति स्थिर रहती है।

सोमरस अन्न होनेसे केवल सोमरस पीकर भी मनुष्य जीवित रह सकता है, वैसी केवल सुरा पीनेसेही मनुष्य जीवित नहीं रह सकेगा। केवल निरा सोमरस बहुत तीक्ष्ण होनेके कारण पीना अशक्य है वैसेही सुराभी सर्वसाधारणके लिये केवल पीना अशक्य है। परंतु जो नशाबाज हैं, वेही केवल सुरा पी सकते हैं। सुरामें आम्लत्व रहता है, अतः उसमें दूध फट जायगा। सोममें वैसा नहीं होता। सोममें मिलाया दूध फटता नहीं, इसलिये सोमरसमें सुरापन नहीं है। और भंग जैसी मस्तिष्क बिगडनेकी भी संभावना नहीं है। पेटभर भंग पीनेवालेके मस्तिष्क बिगडे दीखते हैं। सोमरससे वैसा बिगाड नहीं होता।

सोमरसका विचार और आगे होगा। जैसे जैसे सूक्त हमारे सामने आ जायंगे, वैसा वैसा सोमरसका स्वरूप हमारे सामने खुलता जायगा। अतः इस विषयमें हम जो विचार करेंगे, वह वेद मंत्रके प्रतीक सामने रखकरही करेंगे जैसा इस सूक्तमें किया है।

दरिद्री दामाद

(अ-श्रीरः जामाता) निर्धन दामादका उदाहरण मंत्र २० में आया है। 'जिसका हमला बडा भयानक होता है, वह वीर इन्द्र शीघ्र हमारे पास आ जावे, निर्धन दामादके समान वह बुलाया जानेपर भी सायंकाल करके न आवे।' (मं. २०) ऐसा इस मंत्रका भाव है, श्रीमान् ससुरालमें निर्धन दामाद दिनके समय जाना नहीं चाहता। किसी उत्सवके समय जिस समय बहुत धनी लोगोंकी उपस्थिति होती है, उस समय निर्धन दामाद आना भी नहीं चाहता। वह लज्जित होता हुआ रात्रिके अंधेरेमें, छिप छिपके चुरचाप आता है और एक ओर बैठता है। यह निर्धन दामादसे जीवन बहुतही बुरा है, इसलिये लोगोंको उचित है कि वे ऐसे निर्धन न बनें। सधन और बने और सुखपूर्वक ससुरालमें दिनके समय जानेके अधिकारी होकर रहें।

सोमरस पीया नहीं जाता, क्योंकि वह बड़ा तीक्ष्ण रहता है। यह हृदयमें उन्माद उत्पन्न करता है।

क्या सोमपानसे नशा होता है ?

इस सूक्तसे पता चलता है कि पेटभर पीनेसेभी नशा नहीं होता। सोमरस पेटभर पीयाही जाता था। पेटभर जो रस पीया जाता था, वह नशा करनेवाला नहीं हो सकता। इस विषय में वेदका मंत्रही देखिये—

(१) तस्य पीतासो युध्यन्ते
(२) दुर्मदासो न सुरायाम्।
(३) ऊधर्न नग्ना जरन्ते ॥ (ऋ. ८।२।१२)

१ (पीतासः) पीये हुए सोमरस (तस्य) हृदय-स्थानोंमें (युध्यन्ते) स्पर्धा करते हैं, हलचल करते हैं, उन्माद उत्पन्न करते हैं। यह हृदय-स्थानमें होनेवाला विचारोंका युद्ध है, इसको (सुमदासः) उत्तम आनन्द और उत्साहका संवर्धन कह सकते हैं।

२ (सुरायां) सुरा पीकर (दुर्मदासः) दुष्ट नशामें भ्रान्त बने हुए लोग (न) जैसे जगत्में आपसमें परस्पर लडते हैं, [वैसा सोमपानसे नहीं होता, क्योंकि सोमरस हृदयस्थानमेंहि विचारोंका युद्ध करते रहते हैं।]

३ (न–ग्नाः) स्त्रियोंके साथ संबंध न रखनेवाले ब्रह्मचारी, अथवा (नग्नाः– नजति इति) उपासक भक्त स्तोता (ऊधः न) जिस तरह गौके दूधकी (जरते) प्रशंसा करते हैं, [वैसे ही वे सोमरसकी तथा सोमरस पीनेवाले इन्द्रकी प्रशंसा करते हैं।]

यहां सोमरस पेटभर पीनेसे मनमें उत्साहकी ऊर्मियां खलबली मचाते हैं, विचारोंमें युद्ध उत्पन्न करते हैं, यह सब विचार के क्षेत्रमेंही होता है, ऐसा कहा है। इसके विरुद्ध सुरापानकी स्थिति है। सुरापानसे 'दुर्मद' (बुरी नशा) उत्पन्न होती है और उस बेहोशीमें जगत्में युद्ध होते हैं। सुरापानका युद्ध नशाका, 'दुर्मद' अवस्थाका जगत्के बाह्य क्षेत्रमें है, और सोमपानसे होनेवाला युद्ध उत्तम उत्साहपूर्ण अवस्थामें होनेवाला हृदयके विचारोंके क्षेत्रमें है, यह दोनोंका भेद ध्यानमें धारण करना चाहिये। अब सुरापान और सोमपानके परिणामका विचार करना आवश्यक है—

सुरापानसे	सोमपानसे
दुर्मद	मद
	मधोनः
	मदिरः
	मदः
	मदाय
	मदः
	मादिष्णुः

सुरापानसे मनुष्य 'दुर्मद' होता है, एवं सूक्त नशामें बेहोश होता है। इसपर जो दुराग्रही हैं उनकी कल्पना पाठक कर सकते हैं।

सोमपानसे मनुष्य 'मद' उत्पन्न करता है, तृप्ति उत्पन्न होती है, 'आसुतिः' तृप्तिका भाव होता है, 'मदः' मस्ती आती है, 'मधोनः' विशेष स्फूर्ति होती है। इसके पीनेसे उत्पन्न होनेवाली अवस्थाएं वर्णन किये हैं, वे शरीरमें संचरित होते एकही हाथसे शस्त्र फेंककर युद्धका त्याग करता है (सं. १)। सोमरस पेटभर पीया जाता है (सं. १)। यह नशा करनेवाला एक उत्तम अन्न है, सुरा कदापि अन्न नहीं हो सकता। सोमपानसे शरीरका भरण पोषण हो सकता है, सुरापानसे नहीं होता। सोमपानसे सत्कर्म करनेकी उत्पन्न होती है, सुरापानसे बेहोशी और अधिकता है। पेटभर सोमपान करनेपर भी मनुष्य बेहोश नहीं परंतु उत्साहसे अपना कार्य ठीक तरह कर सकता है। तरह सोमपान और सुरापानके परिणाम परस्पर सोमपानकी ऋषिमुनि स्तुति करते हैं, वेदमें सर्वत्र प्रशंसा है, वैसी सुरापानकी कहीं भी प्रशंसा नहीं है।

'मद' के अर्थ कोशमें ये हैं- (१) मतवालापन, उन्माद, नशा, बेहोशी। (२) हाथीके गण्डस्थलसे रस। (३) प्रेम, प्रीति, गर्व, आनंद, हर्ष, उत्साह। (४) कस्तूरी। (५) (पुरुषका) वीर्य। (६) मद्य, सोम। (७) वस्तु। (८) नदी, जल-प्रवाह। इन अर्थोंमें 'मद' है। 'सुरा' का परिणाम 'उन्मत्तता, उन्माद, बेहोशी' हैं और 'सोम' का परिणाम 'प्रेम और उत्साह' हैं। पूर्वोक्त विवरणका तात्पर्य यह है।

सोमरसके लिये 'आसुति' कहा है। यदि इसे 'आसव' माना जा सकता है, तब तो इसमें नशेके धर्म नहींके बराबरही होना संभव है, क्योंकि सोमरस

बार निकाला जाता है और तीन बारही पीया जाता है। ये नशा उत्पन्न होनेवाली सटानसे उत्पन्न होनेवाली वस्तु नहीं उत्पन्न हो सकती। यहां प्रश्न उत्पन्न हो सकता है शराबके समान नशावाली वस्तु इसमें न हो, पर भंग जैसी या नहीं? इस विषयमें बात यह है कि, वैसी भी नहीं, के भंग पीनेसे भी मनुष्य कर्तृत्ववान् नहीं होता, पर यहां ानसे कर्तृत्ववान् होता है। अतः सोमपानमें भंगके समान उत्पन्न नहीं होता।

'मद, मद्य, प्रमद, संमद, मदिंतम' इन पदोंमें द' है और 'दुर्मद' में भी 'मद' है। मदका दुर्मद बुरा है। मद बुरा नहीं है, वह आनंद और उत्साहका है। पेटभर सोमरस पीनेपर भी 'दुर्मद' अवस्था नहीं . जो सुरापानसे और भंगपानसे होती है। यह बात ठीक समझमें आनेसे सोमपानकी निर्दोषता सिद्ध हो सकती है। 'दुर्मद' अवस्था सुरापानसे होती है, ऐसा कहा है और ानसे 'मदिन्तम' अवस्था आती है। 'सु' और 'दुर्' तनही फर्क है।

सोम	सुरा
सुमद	दुर्मद
सुमति	दुर्मति
सुहार्द्	दुर्हार्द्

में जमीन आसमानका अन्तर है। 'सुमद, सुमति, सुहार्द्' के साथी हैं और 'दुर्मद, दुर्मति, दुर्हार्द्' ये सुराके हैं। पेटभर सोमरस पीनेपर भी सुमति नहीं हटती और स्थिर रहता है, यह सोमरसकी महिमा है। सुराकी दुर्मतिसे स्पष्ट हो जाती है। जो लोग कहते हैं कि सोम-वैसीही नशा होती है जैसी सुरासे, उनको अपने पेश करने चाहिये। वीर इन्द्र दिनमें तीनबार पेटभर पीता है और बेहोशीका चिह्न उस पर दीखता नहीं वह सुमतिपूर्वक सब कार्य करता रहता है। यह सोमका म है। इसीलिये सोमपान स्तुतिके योग्य माना गया है। पर देखनेसेही नशा की कल्पना जो करेंगे, वे फंसेंगे। सुमद-दुर्मदमें 'मद' है, पर 'सुमद' उपादेय है और द' हेय है।

हां यहभी कहना योग्य नहीं है कि, जैसी शराब पीनी बहुत विगाड नहीं होता, परंतु अधिक लेनेसे नुकसान होता है, वैसाही सोमरसका होगा। सोममें 'दुर्मद' होनेकी संभावनाही नहीं है। सोमरस तो पेटभर पीया जाता है, गौओंको खिलाया जाता है, पेटकी दोनों बाजूएं बाहरसे पूरी भरी दीखनेपर भी 'दुर्मद' अवस्था नहीं होती, यह सोमरसकी विशेषता है। सोमरस पेटभर पीनेपर भी सुमति स्थिर रहती है।

सोमरस अन्न होनेसे केवल सोमरस पीकर भी मनुष्य जीवित रह सकता है, वैसी केवल सुरा पीनेसेही मनुष्य जीवित नहीं रह सकेगा। केवल निरा सोमरस बहुत तीखा होनेके कारण पीना अशक्य है वैसेहि सुराभी सर्वसाधारणके लिये केवल पीना अशक्य है। परंतु जो नशाबाज हैं, वेही केवल सुरा पी सकते हैं। सुरामें आम्लत्व रहता है, अतः उसमें दूध फट जायगा। सोममें वैसा नहीं होता। सोममें मिलाया दूध फटता नहीं, इसलिये सोमरसमें सुरापन नहीं है। और भंग जैसी मस्तिष्क बिगडनेकी भी संभावना नहीं है। पेटभर भंग पीनेवालेके मस्तिष्क बिगडे दीखते हैं। सोमरससे वैसा बिगाड नहीं होता।

सोमरसका विचार और आगे होगा। जैसे जैसे सूक्त हमारे सामने आ जायंगे, वैसा वैसा सोमरसका स्वरूप हमारे सामने खुलता जायगा। अतः इस विषयमें हम जो विचार करेंगे, वह वेद मंत्रके प्रतीक सामने रखकरही करेंगे जैसा इस समयमें किया है।

दरिद्री दामाद

(अ-श्रीरः जामाता) निर्धन दामादका उदाहरण मंत्र २० में आया है। 'जिसका हमला बडा भयानक होता है, वह वीर इन्द्र शीघ्र हमारे पास आ जावे, निर्धन दामादके समान वह बुलाया जानेपर भी सायंकाल करके न आवे।' (मं. २०) ऐसा इस मंत्रका भाव है, श्रीमान् ससुरालमें निर्धन दामाद दिनके समय जाना नहीं चाहता। किसी उत्सवके समय जिस समय बहुत धनी लोगोंकी उपस्थिति होती है, उस समय निर्धन दामाद आना भी नहीं चाहता। वह लज्जित होता हुआ रात्रिके अंधेरेमें, छिप छिपके चुरचुर आता है और एक कोने बैठता है। यह निर्धन दामादसे जीवन बहुतही दुरापेत है, इसलिये लोगोंको उचित है कि वे ऐसे निर्धन न बनें। सबल वीर बनें और पुरुषार्थपूर्वक ससुरालमें जिसके समय जैसे अधिकारी होकर रहें।

र छउतालीस हजारका जो दान है वह किस चीजका है ठीक पता नहीं लगता।

विभिन्न लोग

अस्मत् अन्ये गोभिः ईं मृगयन्ते) हमसे भिन्न जो लोग हैं वे भी इस इन्द्रको गौओंका दूध निकालकर उसके करनेके लिये ढूंढते हैं (मं. ६)। यहां हमने भिन्न दूसरे वे हैं कि जो इन्द्रकी उपासना करनेवाले नहीं हैं, पर किसीकी भक्ति करते हैं, परंतु इन्द्रके पास भी आनेके इच्छुक हैं।

उपासनासे 'हम' और 'अन्य' ये भेद यहां माने हैं।

'अगोः अरिः' (मं. १४) उपासना न करनेवालेका शत्रु इन्द्र है, अर्थात् भक्त या उपासकका वह मित्र या सखा है।

'तव इत् स्तोमं चिकेत' (मं. १७)- हे इन्द्र! तेराही स्तोत्र हम जानते हैं, किसी दूसरे देवका स्तोत्र हम जानतेही नहीं, इतनी एकाग्रतासे हम तुम्हारी उपासना करते हैं। यह एकम उपासनाका वर्णन है।

---

(१५) प्रभुका महत्त्व

(ऋ. मं. ८, सू. ३) १-२४ मेध्यातिथिः काण्वः। इन्द्रः, २१-२४ पाकस्थामा कौरयाणः। प्रगाथः=(विषमा बृहती, समा सतोबृहती), २१ अनुष्टुप्, २२-२३ गायत्री, २४ बृहती।

या सुतस्य रसिनो मत्सत्वा न इन्द्र गोमतः। आपिर्नो बोधि सधमाद्यो वृधेऽस्मां अवन्तु ते धियः १
याम ते सुमतौ वाजिनो वयं मा नः स्तरभिमातये। अस्माञ्चित्राभिरवताद्भिष्टिभिरा नः सुम्नेषु यामय २
मा उ त्वा पुरुषसो गिरो वर्धन्तु या मम। पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत ३
यं सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्रइव पप्रथे। सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये ४
द्रमिदेवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे। इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये ५
इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत्।
इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिरे इन्द्रे सुवानास इन्दवः ६
ाभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः। समीचीनास ऋभवः समस्वरन् रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् ७
अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यं शवो मदे सुतस्य विष्णवि।
अया तमस्य महिमानमायवोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा ८
त्वा यामि सुवीर्यं तद्इन्द्र पूर्वचित्तये। येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ ९
येना समुद्रमसृजो महीरपस्तदिन्द्र वृष्णि ते शवः।
सद्यः सो अस्य महिमा न संनशे यं क्षोणीरनुचक्रदे १०
ग्धी न इन्द्र यत्वा रयिं यामि सुवीर्यम्। शग्धि वाजाय प्रथमे पिपीषते शग्धि स्तोमाय पूर्व्य ११
शग्धी नो अस्य यद्ध पौंस्यादिथ धिय इन्द्र सिषासतः।
शग्धि यथा रुशमं श्यावकं कृपेन्द्र प्रावः सुदंससम् १२
कण्वो अतसीनां तुजे गृणीत मर्त्यः। नहि त्वदस्य महिमानमिन्द्रियं स्वर्गृणन्त आनशुः १३
कदु स्तुवन्त ऋतयन्त देवत ऋषिः को विप्र ओहते।
कदा हवं मघवन्निन्द्र सुन्वतः कदु स्तुवत आ गमः १४
उ तु स्य मधुमत्तमा गिरः स्तोमास ईरते। सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव १५

कण्वाइव भृगवः सूर्याइव विश्वमिद्धीतमानशुः । इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो युक्ष्वा हि वृत्रहन्तम हरी इन्द्र परावतः । अर्वाचीनो मघवन्त्सोमपीतय उग्र ऋष्वेभिरा गहि

इमे हि ते कारवो वावशुर्धिया विप्रासो मेधसातये ।
स त्वं नो मघवन्निन्द्र गिर्वणो वेनो न शृणुधी हवम्
निरिन्द्र बृहतीभ्यो वृत्रं धनुभ्यो अस्फुरः । निरर्बुदस्य मृगयस्य मायिनो निः पर्वतस्य गा आजः
निरग्नयो रुरुचुर्निरु सूर्यो निः सोम इन्द्रियो रसः । निरन्तरिक्षादधमो महामहिं कृषे तदिन्द्र यं मे दुरिन्द्रो मरुतः पाकस्थामा कौरयाणः । विश्वेषां त्मना शोभिष्ठमुपेव दिवि धावमानम्

रोहितं मे पाकस्थामा सुधुरं कक्ष्यप्राम् । अदाद्रायो विबोधनम्
यस्या अन्ये दश प्रति धुरं वहन्ति वह्नयः । अस्तं वयो न तुग्र्यम्
आत्मा पितुस्तनूर्वास ओजोदा अभ्यञ्जनम् । तुरीयमिद्रोहितस्य पाकस्थामानं भोजं

अन्वयः- हे इन्द्र ! नः रसिनः गोमतः सुतस्य पिब, मत्स्व (च)। सधमाद्यः आपिः नः बृधे अस्मान् अवन्तु ॥१॥ ते सुमतौ वयं वाजिनः भूयाम । अभिमातये नः मा स्तः । चित्राभिः अभिष्टिभिः अस्मान् नः सुम्नेषु आ यामय ॥२॥ हे पुरुवसो ! मम याः इमाः गिरः (ताः) त्वा उ वर्धन्तु । (तथा) विपश्चितः स्तोमैः अभि अनूषत ॥३॥ अयं (इन्द्रः) ऋषिभिः सहस्रं सहस्कृतः समुद्र इव पप्रथे । अस्य सत्राः महिमा यज्ञेषु विप्रराज्ये गृणे ॥४॥ देवतातये इन्द्रं इत, अध्वरे प्रयति इन्द्रं, समीके वनिनः इन्द्रं, धनस्य इन्द्रं हवामहे ॥५॥ इन्द्रः शवः मह्ना रोदसी पप्रथत्, इन्द्रः सूर्यं अरोचयत्, इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिरे, इन्दवः इन्द्रे (येमिरे) ॥६॥ हे इन्द्र ! आयवः स्तोमेभिः त्वा पूर्वपीतये अभि (स्तुवन्ति)। समीचीनासः अस्वरन्, ऋदाः पूर्वं गृणन्त ॥७॥ अस्य इत् सुतस्य विश्णवि मदे वृष्ण्यं शवः इन्द्रः वावृधे, अस्य तं महिमानं पूर्वया अग्र अनु स्तुवन्ति ॥८॥ तत् सुवीर्यं त्वा यामि । तत् ब्रह्म पूर्वचित्तये (त्वा यामि)। धने हिते यतिन येन, येन (च) प्रस्कण्वं आविथ ॥९॥ हे इन्द्र ! समुद्रं महीः अपः असृजः । ते यत् शवः वृण्णि । अस्य सः न मंसते, यं क्षोणीः अनुचक्रदे ॥१०॥ हे इन्द्र ! यत् सुवीर्यं रयिं त्वा यामि (तत्) नः शग्धि । (तथा) वाजाय प्रथमं शग्धि । हे पूर्व्य ! स्तोमाय शग्धि ॥११॥ हे इन्द्र ! धियः सिषासतः नः अस्य (तत् धनं) इ पौंसं आविथ । हे इन्द्र ! (तथा) शग्धि, यथा रुशमे श्यावकं कृपं (आविथ), तथा स्वर्णरं प्र आवः ॥१२॥ शुः मर्यः नव्यः कत गृणात ? नु स्तः गृणन्तः अस्य इन्द्रियं महिमानं नहि आनशुः ॥१३॥ हे इन्द्र ! स्तुवन्तः देवता ऋतयन्तः, ऋषिः विप्रः कः ओहते ? हे मघवन् इन्द्र ! कदा सुन्वतः हवं जा गमः ? कत् उ स्तुवतः (॥१४॥ ये मघुमत्तमाः गिरः स्तोमासः उत् उ ईरते । सत्राजितः धनसाः अक्षितोतयः वाजयन्तः रथाः इव ॥१५॥ इव, सूर्यः भृगवः इव धीतिं विश्व इत् आनशुः । प्रियमेधासः आयवः स्तोमेभिः इन्द्रं महयन्तः अस्वरन्॥१६॥ हे इन्द्र ! हरी युक्ष्व हि । हे मघवन् ! उग्रः सोमपीतये ऋष्वेभिः परावतः अर्वाचीनः आ गहि ॥१७॥ हे इन्द्र ! हरी विप्रासः धिया मेधसातये ते वावशुः हि । हे मघवन्! गिर्वणः सः त्वं नः हवं, वेनः न, शृणुधि ॥१८॥ हे इन्द्र बृहतीभ्यः धनुभ्यः निः अस्फुरः । मायिनः अर्बुदस्य मृगयस्य पर्वतस्य गाः निः आजः ॥१९॥ हे इन्द्र ! महां अग्नयः निः अरुचन्, सत पौंस्यं कृषे । सूर्यः निः उ । इन्द्रियः रसः सोमः निः ॥२०॥ इन्द्र (च) मे हे दुः कौरयाणः पाकस्थामा (अदात), विश्वेषां त्मना शोभिष्ठं दिवि उप धावमानं इव ॥२१॥ पाकः सुधुरं कक्ष्यप्रां, रोहितं, मायः विबोधनं अदात् ॥२२॥ यस्मै धुरं अन्ये दश वह्नयः प्रति वहन्ति। अस्तं वयः तुग्र्यं (न) आत्मा पितुः तनूः, वासः ओजोदाः अभ्यञ्जनं दातारं, पाकस्थामानं तुरीयं भोजं इत् अब्रवम् ॥२४॥

भावार्थ- हे इन्द्र ! हमारे सोमरसमिश्रित दानेसे तृप्त होकर सोमरसको पीओ और आनन्दित हो जाओ। मार्ग हे इन्द्र ! तेरी बुद्धियाँ हमारी सुरक्षा करें ॥१॥ तेरी बुद्धियाँ

उत नः पितुमा भर संरराणो अविष्यसि । मघवन्त्सुतावति क्षये ॥१॥
उत नो गोमतस्कृधि हिरण्यवतो अश्विनः । प्रजावतीरिषस्कृधि ॥२॥
वृषदुक्थं हवामहे सुष्टुतं वृत्रहन्तमम् । यथा सुतेषु वृत्रहास्मद्रीचीनमानयः ॥३॥
यः संस्थे शतक्रतुर्वृधो दक्षस्य कारवे । हन्ता वृत्रमृजीषिणः ॥४॥
स नः शक्रश्चिदा शकदानवो वसुदावभिः । ऊतिभिरन्तमानलः ॥५॥
यो रायोऽवनिर्महान्त्सुपारः सुन्वतः सखा । तमिन्द्रमभि गायत ॥६॥
आयन्तारं महि स्थिरं पृतनासु श्रवोजितम् । भूरिदावत्तमं नरम् ॥७॥
नकिरस्य शचीनां नियन्ता सूनृतानाम् । न नूनं ब्रह्मणामृणं प्राशूनामस्ति सुन्वताम् ॥८॥
न नूनं ब्रह्मणामृणं प्राशूनामस्ति सुन्वताम् । न सोमो अप्रता पपे ॥९॥
पन्य इदुप गायत पन्य उक्थानि शंसत । ब्रह्मा कृणोति पन्यम् इत् ॥१०॥
पन्य आ दर्दिरच्छता सहस्रा वाज्यवृतः । इन्द्रो यो वज्रवत्तमो वृधः ॥११॥
वि पृ चर स्वधा अनु कृष्टीनामन्वाहुवः । इन्द्र पिब सुतानाम् ॥१२॥
पिब स्वधिनवानामुत यस्तुभ्ये सुता । उतास्मिन्द्र यज्वनः ॥१३॥
अतीहि मन्युषाविणं सुषुवांसमुपारणे । इमे सोमासो अद्रयः पिब ॥१४॥
इहि तिस्रः परावत इहि पञ्च जनाँ अति । सूर्यो रश्मिं यथा सृजा त्वा यच्छन्तु मे गिरः ॥१५॥
अध्वर्यवो हि हि पिञ्च सोमं वीराय शिप्रिणे । भरा सुतस्य पीतये ॥१६॥
य उद्नः फलिगं भिनदरिक्सन्धूँरवासृजत् । यो गोषु पक्वं धारयत् ॥१७॥
अहन्वृत्रमृचीषम और्णवाभमहीशुवम् । दिवेनाविध्यदर्बुदम् ॥१८॥
प्र व उग्राय निष्टुरेऽपाळ्हाय प्रसक्षिणे । देवत्तं ब्रह्म गायत ॥१९॥
यो विश्वान्यभि व्रता सोमस्य मदे अन्धसः । इन्द्रो देवेषु चेतति ॥२०॥
इह त्या सधमाद्या हरी हिरण्यकेश्या । वोळ्हामभि प्रयो हितम् ॥२१॥
अर्वाञ्चं त्वा पुरुष्टुत प्रियमेधस्तुता हरी । सोमपेयाय वक्षतः ॥२२॥

अन्वयः— हे कण्वाः ! ऋजीषिणः इन्द्रस्य सोमस्य मदे कृतानि गायथा प्र वोचत ॥१॥ यः उग्रः (क) रिणन् सुविन्दं अनर्शनिं पिप्रुं अहीशुवं दासं वधीत् ॥२॥ हे इन्द्र ! वृहतः अर्बुदस्य वर्ष्माणं विष्टपं नि तिर। कृपे ॥३॥ वः श्रुताय ऊतये धृषत् सुशिप्रं प्रति हुवे। तूर्णाशं न गिरेः अधि ॥४॥ हे शूर ! सः (त्वं) अश्वस्य व्रजं सोम्येभ्यः, पुरं न, वि दर्षसि ॥५॥ मे सुते उक्थे वा यदि रारणः, चनः दधसे, (तर्हि) आरात् आ गहि ॥६॥ हे गिर्वणः ! इन्द्र ! ते अपि वयं घ स्तोतारः स्मसि । हे सोमपाः ! त्वं नः जिन्व ॥७॥ हे मघवन् ! रराणः अविक्षितं पितुं नः आ भर । ते वसु भूरि ॥८॥ उत नः गोमतः हिरण्यवतः अश्विनः कृधि । इळाभिः सं ॥९॥ ऊतये सुप्र-करत्नं, अवसे साधु कृण्वन्तं, वृषदुक्थं हवामहे ॥१०॥ यः संस्थे शतक्रतुः, वृत्रहा, आत् ईं हवते जरितृभ्यः पुरुवसुः ॥११॥ सः शक्रः नः चित् आ शकत् । इन्द्रः दानवान् विश्वाभिः ऊतिभिः अन्तरावतः ॥१२॥ रायः अवनिः महान् सुपारः सुन्वतः सखा, तं इन्द्रं अभि प्र गायत ॥१३॥ आयन्तारं महि धृतनासु स्थिरं, ओजसा भूरेः ईशानं (अभि प्र गायत) ॥१४॥ अस्य सूनृतानां शचीनां नियंता नकिः । न दात् इति वक्ता नकिः। सुन्वतां प्राशूनां ब्रह्मणां ऋणं न नूनं अस्ति । अप्रता सोमः न पपे ॥१६॥ पन्ये इत् उप गायत, पन्ये उक्थानि शंसत, इत् ब्रह्म कृण्वत ॥१७॥ यः वाजी शता सहस्रा आ दर्दिरत, (सः अयं) इन्द्रः अवृतः पन्यः यज्वनः वृधः ॥ इन्द्र ! अनु आहुवः कृष्टीनां स्वधाः अनु सु वि चर, सुतानां पिब ॥१९॥ हे इन्द्र ! स्व-धैनवानां, उत यः तुभ्ये सुत

वाला वीर उत्तम है । (मं. ५)

५ विभूतद्युम्नः, च्यवनः, पुरुस्तुतः– बहुत धनवाला, शत्रुको स्थानभ्रष्ट करनेवाला, अनेकोंद्वारा प्रशंसित वीर उत्तम है । (मं. ६)

६ धृषितः अवृतः–शत्रुओंपर जोरदार हमला करनेवाला, परंतु शत्रुओंसे कभी घेरा नहीं जाता, ऐसा बडा पराक्रमी वीर प्रशंसाके योग्य है । (मं. ६)

७ ओजसा पुरः विभिनत्ति– अपने बलसे शत्रुके किले तोड देता है । (मं. ७)

८ मृगः पुरुत्रा चरथं दधे– (शत्रुको) ढूंढनेवाला वीर चारों ओर भ्रमण करता है । (मं. ८)

९ नकिः नियमत्– कोई (शत्रु इस वीरको अपने) शासनमें नहीं रख सकता । (मं. ८) अर्थात् यह कभी परास्त नहीं होता ।

१० ओजसा महान् (भूत्वा) चरसि– निज बलके कारण बडा होकर विचरता है । (मं. ८)

११ उग्रः अनिष्टृतः स्थिरः रणाय संस्कृतः– उग्र प्रचण्ड वीर पराजित न होता हुआ, युद्धमें स्थिर रहता है, यह युद्धकी शिक्षा लेकर (सब शस्त्रास्त्रोंसे) सुसज्जित हुआ होता है । (मं. ९) यहांका '**संस्कृतः युद्धाय**' ये पद बडे महत्वके हैं । युद्ध-शिक्षा लेकर जो उत्तीर्ण होता है, वह '**रणाय संस्कृतः**' है । इस तरह युद्धकी शिक्षा दी जाती थी, यह इससे प्रतीत होता है । युद्धके संस्कारोंसे वीरोंको युक्त करना चाहिये, यह बात यहां स्पष्ट होती है ।

१२ 'सत्य बली वीर' वे हैं कि जिसके रथ, घोडे, लगाम, चाबूक, आदि सब युद्ध साहित्य उत्तम और श्रेष्ठ बलसे युक्त हो, किसीमें किसी तरहकी न्यूनता न हो। और जो अपने देशमें और दूर देशमें भी बलवान् सिद्ध हो सकते हैं। (मं. १०-११)

१३ जो '**सच्चा वीर**' है वह किसी दूसरेकी पराधीनतामें नहीं रहता । (मं. १६)

१४ वृष्णः धूः उत्तरा– बलवान्की धुरा सदा ऊपर रहती है । (मं. १८)

स्त्रियोंके विषयमें

इस सूक्तमें स्त्रियोंके विषयमें आदेश आये हैं–

१ स्त्रियाः मनः अशास्यं– स्त्रियोंके मनसे रखना कठिन है । स्त्रियोंके मनपर काबू करना ... (मं. १७)

२ स्त्रियाः क्रतुः रघुः– स्त्रियोंके कर्म छोटे उनका सामर्थ्य कम होता है, उनकी बुद्धि छोटी (मं. १७)

३ हे स्त्री ! (अधः पश्यस्व) नीचेकी ओर खडी रह । **(मा उपरि)** ऊपर न देखो । (पादौ हर) पांव पासपास रखकर चलो । (ते कश्चन दृशन्) तेरे शरीरके गात्र किसीको न दीखें, विशेष और पिंडरीयाँ ढंकी रहें अर्थात् सब शरीर कपडेसे रहे । (मं. १९)

इस तरह इस सूक्तमें वचन हैं, जो स्मरण रखने

स्त्रीका पुरुष बनाना

इस सूक्तके अन्तिम मंत्रमें (ब्रह्मा स्त्री ब्रह्माका कार्य करनेवाला पुरुष स्त्री बनी थी, ऐसा कहा औंध नगरीमें '**कुमारी गोदावरी**' नामकी एक थी । उसकी एक तरुणके साथ शादी हो चुकी । मेल होनेसे पता लगा कि श्रीमती गोदावरीके स्त्रीके समान नहीं हैं । अन्तमें डाक्टरोंने शस्त्रप्रयोगसे भाग काटकर फेंक दिया, तब पता लगा कि वह अन्दरसे पुरुष है । तब उस पुरुषकी शादी किसी दूसरी कुमारी प्रथम विवाह रद्द हुआ । यह परिवार अबतक जीवित बालबच्चोंके साथ आनंदमें है ।

जन्मके १८ वर्षतक स्त्री रही हुई मानवीका इस हुआ । उक्त मंत्रमें पहिले पुरुष था, उसकी स्त्री पश्चात् वह पुरुष बना होगा। यह कैसा हुआ लगाना चाहिये । (ऋ. ८।१।३४ मंत्र देखो, वहां की प्राप्ति होनेका विधान है ।)

यहां मेथातिथिका दर्शन समाप्त हुआ ।

(१९)

(ऋ. मं. ९, सू. ४१) १-६ मेध्यातिथिः काण्वः । पवमानः सोमः । गायत्री ।

प्र ये गावो न भूर्णयस्त्वेषा अयासो अक्रमुः	।	घृताः कृष्णासप त्वचम्	१
सुवितस्य मनामहेऽति सेतुं दुराव्यम्	।	साह्वांसो दस्युमव्रतम्	२
शृण्वे वृष्टेरिव स्वनः पवमानस्य शुष्मिणः	।	चरन्ति विद्युतो दिवि	३
आ पवस्व महीमिषं गोमदिन्दो हिरण्यवत्	।	अश्वावद्गोजवत्सुतः	४
स पवस्व विचर्षण आ मही रोदसी पृण	।	उषाः सूर्यो न रश्मिभिः	५
परि णः शर्मयन्त्या धारया सोम विश्वतः	।	सरा रसेव विष्टपम्	६

अन्वयः— ये (सोमाः) गावः न, भूर्णयः त्वेषाः अयासः कृष्णां त्वचं अप आघ्नन्तः प्र अक्रमुः ॥१॥ अव्रतं दस्युं साह्वांसः, दुराव्यं अति मनामहे ॥२॥ पवमानस्य शुष्मिणः स्वनः वृष्टेः इव शृण्वे, दिवि चरन्ति विद्युतः ॥३॥ हे इन्दो ! सुतः गोमत् हिरण्यवत् अश्ववत् वाजवत् महीं इषं आ पवस्व ॥४॥ हे विचर्षणे ! सूर्यः रश्मिभिः उषाः इव (त्वं) पवस्व, मही रोदसी आ पृण ॥५॥ हे सोम ! नः शर्मयन्त्या धारया, रसा विष्टपं इव, विश्वतः परि सर

अर्थ- जो (सोमरस) गायोंके समान, वनमें जानेवाले तेजस्वी और गतिशील हैं, वे (अपनी) काली गाय करते हुए, आगे बढते हैं ॥१॥ उत्तम कर्मोंके सेतु जैसे, तथा व्रतपालन न करनेवाले दुष्टोंको दबानेवाले, शत्रुको परास्त करनेवाले (इस सोमकी) हम प्रशंसा करते हैं ॥२॥ सोमरस निकालनेके समय बलवर्धक (शब्द मैं, वृष्टिके शब्दके समान, सुनता हूं । अन्तरिक्षमें इसकी दीप्तियाँ विचर रहीं हैं ॥३॥ हे सोम ! रस गौवों, सुवर्ण, घोडों और बलोंसे युक्त बडा सामर्थ्यवान् अन्न (हमारे पास) भेजो ॥४॥ हे विशेष देखनेवाले ! जैसा सूर्य किरणोंसे उषाओंको (भर देता है), वैसे ही तुम प्रवाहित होकर द्यावा-पृथिवीको पूर्ण करो ॥५॥ हमें सुख बढानेवाली धारासे, नदी भूमिको भर देती है वैसे, चारों ओरसे पूरित करो ॥६॥

(२०)

(ऋ. मं. ९, सू. ४२) १-६ मेध्यातिथिः काण्वः । पवमानः सोमः । गायत्री ।

जनयन्रोचना दिवो जनयन्नप्सु सूर्यम्	।	वसानो गा अपो हरिः	१
एष प्रत्नेन मन्मना देवो देवेभ्यस्परि	।	धारया पवते सुतः	२
वावृधानाय तूर्वये पवन्ते वाजसातये	।	सोमाः सहस्रपाजसः	३
दुहानः प्रत्नमित्पयः पवित्रे परि षिच्यते	।	क्रन्दन्देवाँ अजीजनत्	४
अभि विश्वानि वार्याभि देवाँ ऋतावृधः	।	सोमः पुनानो अर्षति	५
गोमन्नः सोम वीरवद्ध्वावद्गाजवत्सुतः	।	पवस्व बृहतीरिषः	६

अन्वयः— (अयं) हरिः, दिवः रोचना जनयन्, अप्सु सूर्यं जनयन्, गाः अपः वसानः (पवते) ॥१॥ एषः सुतः, प्रत्नेन मन्मना देवेभ्य धारया परि पवते ॥२॥ सहस्रपाजसः सोमाः, वावृधानाय तूर्वये वाजसातये, पवन्ते ॥३॥ इत् पयः दुहानः पवित्रे परिषिच्यते । क्रन्दन् देवान् अजीजनत् ॥४॥ सोमः पुनानः विश्वानि वार्या, अभि (ऋतावृधः देवान् अभि अर्षति ॥५॥ हे सोम ! सुतः (त्वं) नः गोमत् वीरवत् अश्ववत् वाजवत् बृहतीः इषः पव

सोमवल्लीको कूटना

ाली पत्थरोंसे कूटी जाती है। इस विषयमें निम्नलिखित देखने योग्य हैं-

गां त्वचं अपघ्नन्तः (सोमाः)- ऊपरकी काली नाश करके (प्रकट होनेवाले रोमरसके प्रवाह)। ारका छिलका जो हरिद्वर्णका होता है, उसपर कृष्ण- ी छाया होगी। इस छिलकेके दूर होनेपर अन्दरसे रस आता है। (कई अनुवादकोंने **काली त्वचावाले**, ोके दुष्ट राक्षस ऐसा '**कृष्णां त्वचं**' का अर्थ किया यह भ्रम प्रतीत होता है। श्वेत वर्णके लोग शुद्धाचारी ले रंगके लोग क्रूर और दुराचारी ऐसा कहना कठिन र यहां तो '**कृष्णां त्वचं**' पद है। त्वचाका अर्थ ा है। कृष्णपद नीला, काला, गहरा हरा आदि रंगोंके लिये होता है। इसलिये यहां सोमवल्लीके ऊपरके गहरे हरे सूचक यह पद है ऐसा हमारा मत है।)

में '**ग्रावाणौ**' देवताही है जो सोम कूटनेके पत्थरोंकी है। सोमपर ये पत्थर नाचते हैं ऐसे वर्णन मंत्रोंमें है। सोमके कूटनेकी कल्पना हो सकती है। इस तरह कूट र सोमका चूरा किया जाता है जिसपर पानीका छिटकव रस निचोडा जाता है।

सोममें जलका मिलान

ोमवल्ली जरासी खुरदरी वस्तु है, जल मिलानेसेही उससे मेलखाता है। सोमके साथ जल मिलानेका उल्लेख निम्न- ात मंत्रोंमें है—

१ अपः वसिष्ट- जलका वस्त्र पहना। जल सोमके साथ । दिया। (मं. २।२)

२ त्वा महीः आपः सिन्धवः अर्षन्ति- हे सोम! पास बडे जलप्रवाह, नदियाँ प्राप्त होती हैं। सोममें नदियोंका मिलाया जाता है। (मं. २।४)

३ समुद्रो अप्सु ममृजे- यहां समुद्र नाम सोमरसका समुद्र जलोंमें शुद्ध होता है, अर्थात् सोमरस जलमें मिलाया र छाना जाता है। (समुद्र-सं+उन्द्-र) जिसमें एकत्र आये कार्यरूपक रस है उसका नाम समुद्र है। 'समुद्र जलोंसे शुद्ध ाया जाता है' यह एक भाषाका विरोध लेकर है, अर्थमेंभी यह बात दीखती है। पर उक्त अर्थसे यह सुसंगत है।

४ हरिः अपः वसानः- सोम जलोंमें वसता है। सोम- रस जलके साथ मिलाया जाता है। (मं. ४२।१) जहां बहुत जल हो वहां सोम उगता है ऐसा इसका अर्थ प्रतीत होता है, पर वैसा इसका अर्थ नहीं है, क्योंकि हिमाच्छादित शिखरपर यह पौधा उगता है, वहाँ जल कमही रहता है और यह सोमका पोधा खुश्कसा भी रहा है, जल मिलानेसेहि उससे रस निकलता है। इससे सोमके साथ जल मिलानेकी बात स्पष्ट हो जाती है।

सोमरसमें दूध

सोमरस बडा तीखा रहता है, इसलिये उसमें जल, तथा दूध मिलानेके बादही वह पीया जाता है। इस विषयमें निम्न- लिखित मंत्रभाग देखो—

१ गोभिः वासयिष्यसे- गौओंसे आच्छादित किया जाता है अर्थात् सोमरसमें दूध इतना मिलाया जाता है कि जिससे सोमरसका हरा रंग लुप्त होकर उसको दूधका रंग आता है। यहां '**गौ**' का अर्थ गौका दूध है। (मं. २।४)

२ हरिः गाः वसानः- हरे रंगका सोम गौओंमें वसता है, गोदुग्धमें मिलाया जाता है। (मं. ४२।१)

३ पयः दुहानः पवित्रे परिषिच्यते- दूध जिसके लिये दुहा जाता है ऐसा सोम पवित्र छाननीपर सींचा जाता है। जलसे तर किया जाता है। (मं. ४३।४)

४ यः हर्यतः (सोमः) मदाय गोभिः मृज्यते- जो सोमरस आनंद बढानेके लिये गौओं (के दूध)के साथ शुद्ध किया जाता है। सोमरसमें दूध मिलाकर भी छाना जाता है। (मं. ४३।१)

इस तरह जल मिलानेका और गौरा दूध मिलानेका वर्णन वेदमंत्रोंमें है।

रस छाननेकी छाननी

सोमवल्लीका रस निकालते हैं और उसको छानते हैं। छानेनेके लिये भेंडीके बालोंकी कम्बल जैसी छाननी होती है। यह तीन गुना किया कंबलही समझिये। इससे रस छाना जाता है। कूटे गये सोमवल्लीका चूरा दोनों हाथोंमें पकडा जाता है, दस अंगुलियों और दोनों हाथोंसे अच्छी तरह दबाकर रस निकाले है, यह रस उक्त छाननीसे छाना जाता है, क्योंकि सोमवल्लीके अवशेष जिसके उसमें रहे हैं ये दूर करनेके

सूक्तमें ऋषिनाम

मं० ९ सू० ४३ में ' मेध्यातिथि ' ऋषिका नाम है। (विप्रस्य मेध्यातिथेः गीर्भिः परिष्कृतः सोमः) ज्ञानी मेध्यातिथिकी स्तुतियोंसे सुसंस्कृत हुआ सोमरस है, ऐसा यहां वर्णन है। स्वयं मेध्यातिथिके स्तोत्रसे इस सोमरसपर विशेष संस्कार हुए हैं। इस तरह यह रस विशेष शुद्ध किया गया है। यह इसका तात्पर्य है।

इन दोनों ऋषियोंके नाम निम्न लिखित मंत्रोंमें आये हैं—

(ऋषिः सप्तर्षय काण्वाः)
याभिः कण्वं मेध्यातिथिं (आवतं)(ऋ. ८।८।२०)

(ऋषिः कण्वो घौरः)
यं कण्वो मेध्यातिथिर्धनस्पृतं० । (ऋ. १।३६।१०)
यमग्निं मेध्यातिथिः कण्व ईंधे० । (ऋ.१।३६।११)
अग्निः प्रावन्...मेध्यातिथिं । (ऋ. १।३६।१७)

(ऋषिः प्रगाथो घौरः काण्वः)
मघस्य मेध्यातिथेः । (ऋ. ८।१।३०)

(ऋषिः मेधातिथिः काण्वः)
इत्था धीवन्तं अद्रिवः कण्वं मेध्यातिथिं ।
(ऋ. ८।२।४०)

(ऋषिः मेध्यातिथिः काण्वः)
पाहि गायान्धसो मद इन्द्राय मेध्यातिथे ।
(ऋ. ८।३३।४)

(ऋषिः प्रस्कण्वः काण्वः)
यथा प्रावो मघवन् मेध्यातिथिं । (ऋ.८।४९।९)

(ऋषिः शुष्टिगुः काण्वः)
मघवन् मेध्यातिथौ (सुतं पिब) । (ऋ. ८।५१।१)

(ऋषिः मेध्यातिथिः काण्वः)
सोमो गीर्भिः परिष्कृतः । विप्रस्य मेध्यातिथेः ।
(ऋ.९।४३।३)

(ऋषिः भृमारः)
यौ मेध्यातिथिमवतो । (अथर्व. ४।२९।६)

ऋग्वेदके सभी मंत्र काण्व गोत्रमें उत्पन्न हुए ऋषियोंके हैं। कोई तो 'आपने पूर्वज मेधातिथि अथवा मेध्यातिथिकी रक्षा की थी, वैसी मेरी रक्षा करो,' ऐसी प्रार्थना करता है।

मन्त्रोंमें भी एकवार इस ऋषिका नाम मेधातिथि तथा मेध्यातिथि ये दो भी पाये जाते हैं। इससे विचारके लिये सम्पूर्ण मेध्यातिथिने स्तोत्र गाकर यह सोम परिष्कृत किया, यह तात्पर्य लेना है। ये सब मंत्र ऋषियोंका विशेष अभ्यासी हैं।

इन सोम-सूक्तोंमें जो सोमका वर्णन है, उससे बातोंका पता लगता है—

अन्तरिक्ष और द्युलोकमें

सोम द्युलोकमें रहता है। भूमि, अन्तरिक्ष और द्युलोक हैं। भूमि यह पृथ्वीका पृष्ठभाग है, जहां सोमका सत्यस्थान है। मेघ हिमालयके शिखरपर रहते हैं, वहांतक अन्तरिक्ष समझिये। जहां मेघ शुरू होते हैं, वहांसे द्युलोक शुरू होता है। हिमालयकी उत्तम सोम मिलता है। अन्यान्य सोमवल्लियां सर्वत्र मिलती हैं। पर सबसे श्रेष्ठ सोमवल्लि बर्फानी पहाड़ोंके शिखरपर होती है। इस विषयमें

१ दिवः धरुणः— द्युस्थानको सोम धारण

२ ' इन्दु ' पद चन्द्रमावाचक है। चन्द्रमा सोमके वाचक हैं। चन्द्रमा अन्तरिक्षस्थानकी देवता रिक्षमें रहनेका अर्थही पर्वत-शिखरपर रहना है।

३ वनस्पतियां पृथ्वीपर रहती हैं। सोम औषधि है, इसलिये वह पर्वत-शिखरपर रहता है।

इस तरह इसका पर्वत-शिखरपर रहना मा मौजवान् पर्वतके शिखरपर यह पौधा होता है, कहा है—

सोमस्य मौजवतस्य भक्षः । (ऋ. १०।३
(सायणः) मुजवति पर्वते जातो मौजव
तत्र हि उत्तमः सोमो जायते ।
भक्षः पानं... मादयति ।

मौजवान् पर्वत पर उत्तम सोम होता है। समझा जाता है। वह पीनेसे अधिक उत्साह मद अधिक आता है। मौजवान् पर्वत हिमालय इस तरह सोमके निवासस्थानके विषयमें अल्पसा

सोमवल्लीको कूटना

नवल्ली पत्थरोंसे कूटी जाती है। इस विषयमें निम्नलिखित ाग देखने योग्य हैं-

र्ष्णां त्वचं अपघ्नन्तः (सोमाः)- ऊपरकी काली ो नाश करके (प्रकट होनेवाले सोमरसके प्रवाह)। ऊपरका छिलका जो हरिद्वर्णका होता है, उसपर कृष्ण- भी छाया होगी। इस छिलकेके दूर होनेपर अन्दरसे रस आता है। (कई अनुवादकोंने **काली त्वचावाले,** रंगके दुष्ट राक्षस ऐसा '**कृष्णां त्वचं**' का अर्थ किया र यह भ्रम प्रतीत होता है। श्वेत वर्णके लोग शुद्धाचारी काले रंगके लोग क्रूर और दुराचारी ऐसा कहना कठिन और यहां तो '**कृष्णां त्वचं**' पद है। त्वचाका अर्थ ा है। कृष्णपद नीला, काला, गहरा हरा आदि रंगोंके लिये ा होता है। इसलिये यहां सोमवल्लीके ऊपरके गहरे हरे सूचक यह पद है ऐसा हमारा मत है।)

दमें '**ग्रावाणौ**' देवताही है जो सोम कूटनेके पत्थरोंको ा है। सोमपर ये पत्थर नाचते हैं ऐसे वर्णन मंत्रोंमें है। सोमके कूटनेकी कल्पना हो सकती है। इस तरह कूट कर सोमका चूरा किया जाता है जिसपर पानीका छिटकाव ा रस निचोडा जाता है।

सोममें जलका मिलान

सोमवल्ली जरासी खुरखुरी वहीं है, जल मिलानेसेही उससे निकलता है। सोमके चूरेमें जल मिलानेका उल्लेख निम्न- ेत मंत्रोंमें है—

१ **अपः वसिष्ट**- जलका वस्त्र पहना। जल सोमके साथ ा दिया। (मं. २।३)

२ **त्वा महीः आपः सिन्धवः अर्षन्ति**- हे सोम! पास बडे जलप्रवाह, नदियां प्राप्त होती हैं। सोममें नदियोंका ी मिलाया जाता है। (मं. २।४)

३ **समुद्रो अप्सु मनृजे**- यहां समुद्र नाम सोमरसका । समुद्र जलोंमें शुद्ध होता है, अर्थात् सोमरस जलमें मिलाया र छाना जाता है। (समुद्र-सं+उन्द्-र) जिसमें एकत्र आये जाय वह रस है उसका नाम समुद्र है। 'समुद्र जलोंसे शुद्ध ाया जाता है' यह एक भाषाका विशेषालंकार है, असंभवसी यह बात दीखती है। पर उक्त अर्थसे यह सुसंगत है।

४ **हरिः अपः वसानः**- सोम जलोंमें वसता है। सोम- रस जलके साथ मिलाया जाता है। (मं. ४२।१) जहां बहुत जल हो वहां सोम उगता है ऐसा इसका अर्थ प्रतीत होता है, पर वैसा इसका अर्थ नहीं है, क्योंकि हिमाच्छादित शिखरपर यह पौधा उगता है, वहाँ जल कमही रहता है और यह सोमका पौधा खुश्कसा भी रहा है, जल मिलानेसेहि उससे रस निकलता है। इससे सोमके साथ जल मिलानेकी बात स्पष्ट हो जाती है।

सोमरसमें दूध

सोमरस बडा तीखा रहता है, इसलिये उसमें जल, तथा दूध मिलानेके बादही वह पीया जाता है। इस विषयमें निम्न- लिखित मंत्रभाग देखो—

१ **गोभिः वासयिष्यसे**- गौओंसे आच्छादित किया जाता है अर्थात् सोमरसमें दूध इतना मिलाया जाता है कि जिससे सोमरसका हरा रंग लुप्त होकर उसको दूधका रंग आता है। यहां 'गौ' का अर्थ गौका दूध है। (मं. २।४)

२ **हरिः गाः वसानः**- हरे रंगका सोम गौओंमें वसता है, गोदुग्धमें मिलाया जाता है। (मं. ४२।१)

३ **पयः दुहानः पवित्रे परिषिच्यते**- दूध जिसके लिये दुहा जाता है ऐसा सोम पवित्र छाननीपर सींचा जाता है। जलसे तर किया जाता है। (मं. ४२।४)

४ **यः हर्यतः (सोमः) मदाय गोभिः मृज्यते**- जो सोमरस आनंद बटानेके लिये गौओं (के दूध)के साथ शुद्ध किया जाता है। सोमरसमें दूध मिलाकर भी छाना जाता है। (मं.४३।१)

इस तरह जल मिलानेका और गौका दूध मिलानेका वर्णन वेदमंत्रोंमें है।

रस छाननेकी छाननी

सोमवल्लीका रस निकालते हैं और उसको छानते हैं। छाननेके लिये मेंढीके बालोंकी कम्बल जैसी छाननी होती है। यह तीन गुना किया कंबलही समझिये। इससे रस छाना जाता है। कूटे गये सोमवल्लीका चूरा दोनों हाथोंमें पकडा जाता है, दस अंगुलियों और दोनों हाथोंसे अच्छी तरह दबाकर रस निकालते हैं, यह रस उक्त छाननीसे छाना जाता है, क्योंकि सोमवल्लीके अनेक तिनके उसमें रहते हैं वे दूर करनेके

भः- विशेष रीतिसे स्तंभक गुण सोममें है, वीर्यको
करता है। शौनका अवष्टंभ करता है। (क्या
करनेवाला कहा जाय ? इसका विचार वैद्योंको करना

हरिः- सोमका रंग हरा है।
दर्शतः- सोमका रंग दर्शनीय मनोरम है।
सूर्येण सं रोचते- सूर्य-प्रकाशसे अधिक चमकता है।
मदाय शुम्भसे-आनन्दके लिये शोभता है। सोमरस
वर्धक है। (मं. २।७)
ओजसा (युक्तः)- सोमरस ओजस्से युक्त है।
का यह रस ओज बढानेवाला है। (मं. २।७)
घृष्विः- घर्षण सहन करनेवाला, जो अच्छा कूटा जा
है। शत्रुको कूटकर विनष्ट करनेका बल बढानेवाला।
)
मध्वः धारया पवस्व- मधुर रसकी धारासे छाना
मिलानेसे रसमें मधुरता आती है।
:- तेजस्वी (मं. ४।१।१)
रसः- गतिशील, प्रवाही,
र्णः- वन, भूमि, वनमें तत्पर होनेवाला,
वितः- उत्तम रीतिसे प्राप्त, शोभन, सुविधायुक्त,
में उपयोगी।
एतः दिवि चरन्ति- इसकी किरणें द्युलोकतक
यह चमकता है। (मं. ४।१।२)
द्यावो रश्मिभिः उषाः न रोदसी आ पृण- सूर्य
द्यावापृथिवीको अपने किरणोंसे भर देता है, वैसा सोम दोनों
अपने तेजसे भर देवे, चमकता रहे। (मं. ४।१।५)
दिवर्दृणिः- दिवस दीप्तिमान्, विशेष देखनेवाला,
धर्मण्या धारया परि सर- सुख देनेवाली
धारासे। सोमरस सुख देता है। (मं. ४।१।६)
जनयन् रोचना दिवः- सोम द्युलोकमें तेज बढाता
(प्रकाशमान है। (मं. ४।१।१)
सहस्रधाराः- हजारों प्रकारसे बह सकनेवाला
(मं. ४।१।३)
सोमः धाराभिः सुदेव एतने- सोमरस बह
हुआ बहुत हो इसलिये [illegible] (मं. ४।१।४)
- रन्धुः धाराभिः- सोमरस बह बहता है, बह देता
मं. ४।१।५)

सोमके ये गुण हैं। यह बल बढाता है, उत्साह बढाता है। शक्ति बढनेसे शारीरिक सुख भी मिलता है। यहां कई लोग 'मद' का अर्थ उन्माद, बेहोशी, अथवा नशा मानते हैं और सोम नशा लाता है, ऐसा समझते हैं। पर यहां नशा उत्पन्न होनेका समयही नहीं है। सवेर, दोपहर और शाम ऐसा तीनवार सोमका सवन होता है। सवनका अर्थ रस निकालना है। तीन-वार रस निकालते हैं और देवताओंको तीनवार अर्पण करते हैं और तीनवार पीते हैं। इसमें नशा उत्पन्न करनेके लिये सडान होनेकी संभावनाही नहीं है। भंगके समान यह स्वयं न सडते हुए नशा करता है, ऐसाभी कई मानते हैं। पर 'सुकृत्' (उत्तम कर्म करनेवाला) यह इसका वर्णन विशेष स्पष्टताके साथ बता रहा है कि मस्तिष्क बिगडनेसे होनेवाला दुष्कर्म इससे नहीं होता। इसीलिये यह 'सुकृत्' है। इस कारण नशाकी कल्पना असंगत प्रतीत होती है।

सोमसे प्राप्त दान

सोम निम्नलिखित पदार्थ देता है--

१ गोषः- गौवें देता है। सोमरस निचोडनेवालेके पा
दुधारू गौवें अवश्य चाहियें। क्योंकि उसमें गौका दूध अधि
प्रमाणें मिलाना आवश्यक होता है। (मं. २।१०)
२ नृषाः- वीर पुत्र देता है। क्योंकि जो सरसो
वृद्धि होती है, जिससे वीर संतान उत्पन्न होती है।
३ अश्वसाः- सोम घोडे देता है। क्योंकि घोड
रचना स्वभावसिद्ध है।
४ दाजसाः- धन और अन्न देता है। सोम स
है। (मं. २।१०)
५ सोमम् हिरण्यवत् अश्वावत् दाजवत्
आ पवस्व- बहुत, सुवर्ण, घोडे और धनके
रूप दो। (मं. ४।१।
६ सोमम् हिरण्यवत् अश्वावत् दाजवत्
पवस्व- बहुत, सुवर्ण, घोडे, धन देनेवा
हो। (मं. ४।१।
७ सोम ! स्वादुतमेन [illegible]
मं. ४।१।

मेधातिथि ऋषिके दर्शनकी

विषयसूची

भूमिका ३
" "
ार मंत्रसंख्या ४
" "
" "
गोत्रके ऋषि ५
करण ६
करनेकी रीति "
ति दोष ७
के विरोधक ८
धातिथि ऋषिका दर्शन ९
प्रथम मण्डल, चतुर्थ अनुवाक
(१) आदर्श दूत
दूत राजदूत १०
दूतके गुण ११
निवारण १२
स्तोत्र १३
के साथ रहनेवाला धन "
इक मन्त्रभाग "
ति अग्नि "
पालक १४
(२) यज्ञकी तैयारी
सूक्त "
ाओंका क्रम १५
समयका वर्णन १६
का खोलना "
ी दिव्य होताओंको बुलाना "
को प्रदीप्त करना "
रको न गिरानेवाला "
तम रथ "
तका दर्शन "
न देवियाँ "
अन्न त्वष्टा "
स्तनियोंसे अन्न "
ताओ उत्साह "
ाग करो "
अग्निका वर्णन १८
" "
(३) हिंसारहित कर्म १९
मंत्रोंमें कण्वोंका नाम "
देवोंके साथ आना २०
यज्ञमें देवगण "
सोमरस देवोंका अन्न "
सोमके गुण "
घोड़े २१
विप्र अग्नि "
देवोंके लक्षण "
उपासकोंके लक्षण "
अ-ध्वर "
देवोंके कार्य "
(४) दुर्दम्य बल
ऋतुओंके अनुकूल व्यवहार १०
न दबनेवाला बल ११
देवताके गुण १२
ऋत्विजोंके नाम १३
सोम कूटनेके पत्थर "
गार्हपत्य "
(५) भरपूर नौवें चाहिये
दिनमें तीनवार उपासना १४
उपासककी इच्छा १५
इन्द्रके गुण १६
(६) दो उत्तम सम्राट्
दो प्रशंसनीय सम्राट् "
(७) सदस्पति
सभाका अध्यक्ष "
ईश्वरही सभापति है "
उशिजपुत्र कक्षीवान् १७
बुद्धियोंका योग "
(८) वीरोंकी साथ
वीरोंके साथ रहो "
(९) दिव्य कारीगर
अश्विदेवोंकी कथा "

(१०) वीरोंकी प्रशंसा
वीरोंके काव्यका गान ३३
दुष्टोंका सुधार ,,
अहिंसा, सत्य और ज्ञान ,,
(११) वेगवान रथ ३४
अश्विनौ देवता, चाबुक ,,
सविता देवता ,,
सबका प्रसविता सविता ३५
संपत्तिका विभाजन ,,
अग्नि और देवपत्नियां ,,
देवियोंका स्तोत्र ३६
मातृभूमिका राष्ट्रगीत ,,
विष्णुः ,,
विष्णु, व्यापक देव ३७
,, सूर्य ३८
(१२) दो क्षत्रिय ,,
सोमरस, दो क्षत्रिय ३९
मित्रावरुणौ ,,
दो मित्र राजा ,,
मरुत्वान् इन्द्र ४०
दुष्टके अधीन न होना ,,
विश्वे देवा मरुतः ,,
मातृभूमिके वीर ४१
पूषा ,,
सोमको ढूंढना ,,
बैलोंसे खेत ,,
आपः, अग्निः ४२
जलचिकित्सा ,,
अष्टम मण्डल ४३
(१३) आदर्श वीर ,,
इन्द्रके गुणोंका वर्णन ४७
आदर्श वीर ,,
पुत्र कैसा हो ? ४९
घूमनेवाले कीले ,,
दिनमें चारबार उपासना ५०
तीन पुत्र, सोमपान ,,
पितासे माताकी अधिक योग्यता ५१
अस्थि जोडना ,,
सोमकी तीन जातियाँ ,,
इन्द्रके घोडे, इन्द्रका मोल
इस सूक्तके ऋषि
तीन मानव, आख्यायिका कथा
(१४) वीरका काव्य
इन्द्रका सामर्थ्य
सोमरसपान
क्या सोमपानसे नशा होती है ?
सोम और सुरा
दरिद्री दामाद
घोडोंको धोना, कर्मण्य और सुस्त
ईशन= इन्द्र, पर्वतवाला इन्द्र
सूक्तमें ऋषिनाम, यज्ञ दान
विभिन्न लोग
(१५) प्रभुका महत्त्व
इन्द्रः ईशन
स्मरण करनेयोग्य मन्त्रभाग
पंडितोंका राज्य
ऋषिनाम और अन्यनाम
(१६) वीरकी शक्ति
स्मरण रखनेयोग्य मन्त्रभाग
शत्रुके नाम, ऋषिनाम
मन्त्र करना
(१७) सत्यबली वीर
स्मरण रखनेयोग्य मन्त्रभाग
स्त्रियोंके विषयमें
स्त्रीका पुरुष बनना
नवम मण्डल
(१८-२१) सोमदेवता
सोमरसका पान
सूक्तमें ऋषिनाम
अन्तरिक्ष और द्युलोकमें निवास
सोमवल्लीको कूटना
सोममें जलका मिलान
,, दूधका ,,
रस छाननेकी छाननी
सोमकी देवता प्राप्ति
सोमके गुणधर्म
सोमसे प्राप्त दान
मनुष्यके लिये बोध

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(३)

शुनःशेप ऋषिका दर्शन

(ऋग्वेदका पञ्च अनुवाक)

लेखक
भट्टाचार्य पण्डित श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
अध्यक्ष स्वाध्याय-मण्डल, औंध (जि० सातारा)

संवत् २००२

मूल्य १) रु०

शुनःशेप ऋषिका तत्त्वज्ञान

ऋग्वेदमें शुनःशेप ऋषिके तत्त्वज्ञानके १०७ मंत्र हैं। इनका ब्यौरा यह है—

प्रथम मण्डलमें	मंत्रसंख्या	देवतानुसार मंत्र-संख्या
१ अनुवाक	१ वरुणः	२१
सू २४	२ इन्द्रः	२७
	३ अग्निः	२३
ऋ: १	४ सोमः	१०
अग्निः १	५ सविता	३
सविता २		
वरुणः १० १५		
२५ वरुणः	६ अश्विनौ	२१
२६ अग्निः	७ उषाः	१०
२७ ,, १२	८ उदगलले	
,, देवाः १	९ उदगलमुगले	१३
२८ इन्द्रः ४	१० देवाः	२
,, उदगलले २	११ ऋ:	१
,, मुगले २	१२ प्रजापतिः	१
प्रजापति-		१०७
हरिश्चन्द्रः १		
(वर्ण सोमो व) ९		
,, २९ इन्द्रः		
,, ३० इन्द्रः १६		
अश्विनौ ३		
उषाः १ २२		
सप्तम मण्डलमें		
१ देवाः १०		

इस संख्यानुसार १०७

इन वेदके १०७ मंत्र हैं। इनके इस ऋषिका तत्त्वज्ञान एक ही [illegible]
[illegible] इस संक्षेपको विस्तारसे समझने [illegible]
[illegible]

साथ इस ग्रंथके अन्तमें उद्धृत की है और आवश्यक अनुवाद भी वहां दिया है। पाठक इसका विचार करें। इसका संक्षिप्त रूप ऐसा है—

'वैवस्वतपुत्र हरिश्चन्द्रको सौ भार्यायें थीं, तथापि इनके पुत्र नहीं हुआ। नारदने कहा कि वरुणकी उपासना करो। तब राजा हरिश्चन्द्र वरुणकी उपासना करने लगा। पुत्र होनेपर उसका वरुणके लिए समर्पण करेंगा, ऐसा उसने कहा। वह वरुणने मान। पश्चात् हरिश्चन्द्रके पुत्र हुआ, उसका नाम रोहित रखा गया। वरुणने पुत्रकी मांग की, पर हरिश्चन्द्र टालने लगा। तब क्रुद्ध होकर हरिश्चन्द्रके पेटमें वरुणने उदरशूल उत्पन्न किया। तब रोहित अरण्यमें ऋषिके पास आया। इस ऋषिके तीन पुत्र थे। उनमेंसे कनिष्ठ पुत्र शुनःशेप था। सौ सौ देकर शुनःशेपको उसके पिताने रोहितके शरीर लिया। एक प्रकार इसका खरीदके लिए कर देनेके लिए मन हुआ। इस यज्ञमें होम दिया जाना था, परंतु तय्यार नहीं था, तब दक्षिणा था और उसका खरीदार था।

हरिश्चन्द्रने वरुणसे कहा कि इसने यज्ञ किया है, इसमें शरीरका पुनर्वार स्वस्थ-तुष्टपुष्ट करके देनेका वरुण है, तब वरुणका स्वीकार मान।

शुनःशेपको यूपमें बांध दिया। तब वरुणकी स्तुति करने लगा। वरुणने शुनःशेपके बंधन तोड़ दिये। तब शुनःशेप ऋषिके पास आया। ऋषिने शुनःशेपको अपने पास बैठाया। तब शुनःशेपने वरुणकी स्तुति करने लगा। इससे वरुण प्रसन्न हुआ। तब शुनःशेपने वरुणसे कहा कि मेरे पिताको पुत्र देनेवाले वरुणको ही पुत्र देनेवाले हैं। इसलिए वरुणने हरिश्चन्द्रके उदरशूल दूर किया। तब हरिश्चन्द्रने यज्ञ किया। तब शुनःशेपने वरुणसे कहा कि मेरे पिताको पुत्र देनेवाले वरुणको ही पुत्र देनेवाले हैं। इसलिए वरुणने हरिश्चन्द्रके उदरशूल दूर किया। तब हरिश्चन्द्रने यज्ञ किया। तब शुनःशेपने वरुणसे कहा कि मेरे पिताको पुत्र देनेवाले वरुणको ही पुत्र देनेवाले हैं। इसलिए वरुणने हरिश्चन्द्रके उदरशूल दूर किया। तब हरिश्चन्द्रने यज्ञ किया।

शुनःशेपकी कथा

शुनःशेप [illegible]

नाम बहुत पीछेसे हुआ है। सूक्त गानेके समय वह 'शुनःशेप' ही था।

यह कथा असत्य है

यह कथा काल्पनिक और असत्य है। इस कथाके असत्य [illegible]

वह अपने पुत्रके संरक्षण करनेके लिये ... देनेके लिये तैयार हुआ। सत्य-प्रतिज्ञ पौराणिक कथा इससे शतगुणा अधिक अच्छी है। इन सूक्तोंसे कोई संबंध दीखता नहीं है।

इस तरह विचार करनेपर यह कथा

लकाण्ड सर्ग ६१-६२ में, विष्णुपुराण ४।७ में, महाभारत सन पर्व ३ में, देवी भागवत ७।१४-१७ में, श्रीमद्भाग-७;१६में, महाभारत शान्तिपर्व २९४, हरिवंश १।२७; ाण १० इतने स्थानोंमें यह कथा है। ऐतरेय ब्राह्मण ७।३ । सांख्यायन श्रौतसूत्रमें १५।२०-२१; १६।११,२ यह । इतने स्थानोंमें यह कथा होनेसे इस कथाके लिए महत्त्व प्राप्त हुआ है।

ारीय ध्रुवमें दीर्घ रात्रीके पूर्व अस्त होनेवाले सूर्यपर यह ई ऐसा कईयोंका मत है। गौवोंके मोलमें पुत्रका विक्रय । सूर्य सूर्यकिरणोंकी संख्या कम होना है। इत्यादि बातें ट सकती हैं।

शरीरमें रोहितकी कथा

ीरमें रोहितकी कथा कई घटाते हैं। रोहित पद 'लोहित' है और यह 'रक्त, रुधिर, खून' का वाचक है। शरीरमें सर्वत्र दौरा होता है और उसमें लोह (लोह-इत) रहता है रण उसको लोहित कहते हैं। यह रोहित हरिश्चन्द्रका पुत्र ीद 'हरित्-चन्द्र' हरे रंगसे युक्त बने रक्तके परिवर्तनसे । बनता है। शरीरमें घूमकर आया रक्त हरे रंगका है, वही 'हरित्-चन्द्र' है। इसमें शुद्ध वायु मिलनेसे ाल रंगका बनता है। यही हरित्-चन्द्रका (हरिश्चन्द्रका) ा बनना है, शरीरमें यह घटना बनती है। हरएक रक्तके हरे रंगका खून बनता है और वह फेफड़ोंमें पुनः शुद्ध लालरंगका बन जाता है। प्रत्येक दौरेमें खूनका यह ेर होता रहता है।

क रोहितके लिए अजीगर्त पुत्रका बुर्दान होना यहां विचा- है। 'अजी-गर्त' यह 'अ-जीर्ण-गर्त' है, जहां अपचित रहता है, वह अजीर्ण हुए अन्नका गड्ढा, पेटही है। इस ाक्षेप पदका और उसका रस होता रहता है। यह रसरी अर्थात् अपचा अजीर्ण-गर्तका पुत्र है। इस अपरसका एक ंशु रक्तके रूपमें परिवर्तित होता जाता है, वही अजी-पुत्रकी रोहितकी दृष्टिसे बुर्दानी अर्थात् बलिदान है।

इस प्रकार यह कथा मूल रूपसे शारीरिक घटनापर रची ई है। पाठक इसका भी विचार करें।

शुनःशेपका गोत्र

पहले इसने ऋषीका जन्म हुआ। इस ऋषीका दीर्घ पुत्र शुनःशेप है। ऋचीकका ही प्रायः नाम अजीगर्त है। इस शुनःशेपके भाई शुनःपुच्छ और शुनोलांगूल थे। इसका वंश ऐसा है-

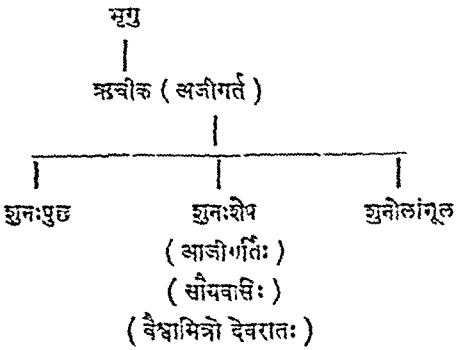

विश्वामित्रने इसे दत्तक पुत्र माना इसलिये इसका गोत्र 'वैश्वामित्र' हुआ अतः इसका नाम ऐसा लगता है- **'आजीगर्तिः शुनःशेपः, स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः'** अर्थात् अजीगर्तका पुत्र शुनःशेप था, वही दत्तक होनेके कारण विश्वामित्रका पुत्र देवरात हुआ।

शुनःशेपका मंत्रोंमें उल्लेख

'शुनःशेप' नाम वेद मंत्रोंमें आया है, देखिये वे मंत्र ये हैं-

१ शुनःशेपो यमहत् गृभीतः सो अस्मान् राजा वरुणो मुमोक्तु। (ऋ. १।२४।१२)= बंधनमें पडे शुनःशेपने जिसकी प्रार्थना की थी, वह राजा वरुण हम सबको बंधनसे मुक्त करे।

२ शुनःशेपो ह्यहत् गृभीतः त्रिष्वादित्यं द्रुपदेषु बद्धः। (ऋ. १।२४।१३)=तीन स्थानोंमें बंधा हुआ शुनःशेप आदित्यकी प्रार्थना करने लगा।

पहिले मंत्रसमूहसे ऐसा प्रतीत होता है कि यह मंत्र कोई और ही ऋषि कह रहा है। 'शुनःशेपने जिसकी प्रार्थना की थी वह वरुण हमें मुक्त करे। (१२)' इससे मुक्त होनेवाले शुनःशेपसे ऋषि भिन्न है ऐसा प्रतीत होता है। दूसरे मंत्रमें भी यही बात दीखती है— 'तीन स्थानोंमें बंधे शुनःशेपने जिसकी प्रार्थना की थी वह इनके पाशोंको खोले और इसे मुक्त करे। (१३)' इसमें भी बेचनेवाला शुनःशेपसे भिन्न है अथवा शुनःशेप ही अपने आपको विभिन्न मानकर ऐसा बोल रहा होगा। इस संबंधमें से कोई एक कल्पना यहां करनी चाहिये। शुनःशेपने तृतीयमें देवी स्तुति की है इस ऋषिका नाम आया है। और एक स्थानपर

ऋग्वेदमें इसका नाम आता है वह मंत्र यह है–

शुनश्चित् शेपं निदितं सहस्रात् यूपादमुञ्चो अशमिष्ट हि षः। एवास्मद्विश्वा दुरितानि पात्रान् होतः चिकित्व इह तू निषद्य। (ऋ. ५।२।७)

'बंधनमें पड़े शुनःशेपको, हे अग्ने! तुमने सहस्रोंमेंसे एक यूपसे छुडा लिया था, निःसन्देह उसने बड़े ही कष्ट सहे थे। इसी तरह बंधनोंसे इस सबको मुक्त करो।'

यहां दिया मंत्र अत्रिगोत्रके कुमार ऋषिका अथवा जनमेजयीय वृष ऋषिका है। यहां 'सहस्रात् यूपात्' कहा है। इसके अनेक अर्थ संभवनीय हैं। (१) सहस्रों यूपोंसे, (२) सहस्ररूपवाले यूपसे, (३) सहस्रवार बंधे यूपसे, (४) सहस्र प्रकारसे बंधे यूपसे इ० कोई भी अर्थ लिया जाय, तो सहस्रवार बंधन होनेकी ध्वनि इससे निकलती है। '**अनेकजन्मसंसिद्धः**' (गी. ६।४५), '**बहूनां जन्मनां अन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते।**' (गीता ७।१९) अनेक जन्मोंके तपसे सिद्धिको प्राप्त होता है। अर्थात् अनेक जन्मतक बंधनका अनुभव करता है, उन बंधनोंके निवारणका यत्न करता है और पश्चात् बन्धनसे मुक्त होता है। यह भाव '**सहस्र यूप**' पदोंमें स्पष्ट दीखता है। 'यूप' बंधनका चिन्ह है और वह सहस्रगुणित या सहस्र प्रकारका है। इस रीतिसे शुनःशेपके बंधन सहस्रों थे, केवल वह एक ही यूपको और हरिश्चन्द्रके यज्ञमें बंधा गया था, ऐसी बात नहीं है।

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदिति शुनःशेपो वा एतामाजीगर्तिः वरुण-गृहीतोऽपश्यत्। तया वै स वरुणपाशादमुच्यत वरुणपाशमेवैतया प्रमुञ्चते। (काठक सं. १९।११।२७)

'उदुत्तमं' यह मंत्र अजीगर्त शुनःशेप ऋषिने देखा। इस मंत्रके पाठसे वरुणपाशसे उसकी मुक्तता हुई। जो इस मंत्रका पाठ करेगा वह पाशसे मुक्त होगा।' इसके अतिरिक्त चारों वेदोंके मंत्रोंमें शुनःशेपका नाम नहीं है।

अथर्ववेदमें शुनःशेपके मं

अथर्ववेदके इन्हीं सूक्तोंके कोईसे मंत्र अथर्ववेदके नीचे दिए हैं और उनका पाठभेद भी बता

ऋग्वेदमंत्र (शुनःशेप ऋषिः)	अथर्ववेद (शुनःशेप ऋषि)
	६।२५।१–३ (१
	७।८३।१–२ (१
उदुत्तमं० (ऋ.१।२४।१५)	उदुत्तमं. ३
	४ (१
१।२०।७–९	२०।२८।१–३
१।२०।४–६	२०।४५।१–३
१।२९।१–७	२०।७४।१–७
१।२०।१३–१५	२०।१२२।१–३

अथर्ववेदमें २३ मंत्र शुनःशेपके हैं। इनमेंसे १ के हैं। शेष ६ मंत्र इस समय ऋग्वेदमें नहीं ऋग्वेदमें नहीं है उन ६ मंत्रोंका अर्थ इस दिया है। अथर्ववेदके मंत्रोंसे तो यह बात अतिस्प कि ये सूक्त शुनःशेपके यूपसे छुटकारेका प्रत्युत (अथर्व० ६।२५) गण्डमालासे विमुक्त बताते हैं और (अथर्व० ७।८३) सर्व साधारण स्वप्नसे तथा नाना प्रकारके अन्यान्य कष्ट दूर सोच रहे हैं। तथा सामुदायिक उपासना द्वारा गमनका मार्ग बताते हैं। केवल शुनःशेपके ही त्तिका यहां विषय नहीं है, प्रत्युत सर्व सामान्य बन्धनोंकी निवृत्तिका विचार इन मंत्रोंमें है, अतः विचार सर्व सामान्य दृष्टीसेही करना चाहिये। पाठक इन सूक्तोंका विचार इस दृष्टीसे करेंगे सर्व साधारण बन्धन-निवृत्तिका मार्ग जानकर लाभ उठावेंगे।

निवेदक

१५ फाल्गुन सं. २००२ **श्रीपाद दामोदर**

अध्यक्ष स्वाध्याय मण्डल

औंध (जि. सातारा).

शुनःशेप ऋषिका दर्शन

ऋग्वेदमें षष्ट अनुवाक

(१) नामस्मरण

(१।२४) आजीगर्तिः शुनःशेपः स ऋषिर्वैश्वामित्रो देवरातः । १ वरुणः (प्रजापतिः); २ अग्निः, ३-५ सविता, ५ भगो वा, ६-१५ वरुणः । १,३,६-१५ त्रिष्टुप्, २-५ गायत्री ।

यत्र्य नूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम ।
को नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च
अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम ।
स नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च
अभि त्वा देव सवितरीशानं वार्याणाम् । सदावन् भागमीमहे
यश्चिद्धि त्वा जगत्य आविवासति । स्तोतृभ्यो रास्यद्रयिम्
भगभक्तस्य ते वयमुदशेम तवावसा । मूर्धानं राय आरभे
नहि ते क्रतुं न सुहो न मन्युं प्रयोसनामी पतयन्त आपुः ।
नेमा आपो अनिमिषं चरन्तीर्न ये वातस्य प्रमिनन्त्यभ्वम्
अधा राजा वरुणो दानुदस्मै कृष्वे दक्षं मनसे जातवेदाः ।
ददाति मित्रो अवयाय सख्यं त्वमर्यमा वरुणः पूतदक्षः ।
इयं हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्थामन्वेतवा उ ।
तमेवेमे प्रति धामेवरासापः पुरीषेण वहन्ति सिन्धवः ।
तमश्वेषु वरुण रंहिराशुं तमूर्वे गोषु तमु यज्ञे नृषाह्ये ।
आदित्य रुद्र मृळयेह्युत्तमश्चिद्यं भञ्जसि मन्यसे वधैः ।
अव यत्ते दिवो अन्तेभ्यो धीर्मनो गत आधीत आ वा ।
अधा यथा नः पितरः परासः प्रज्ञाता अक्षन्नमीमदन्त हव्यम्
एवैष्टे वरुण देवरातो नाभा पृथिव्या अधि तृत्सुषु जनः ।
अवोचाम कवये मेध्याय वचो वन्दारु वृषभाय वृष्णे ।

! ते शतं सहस्रं निपजः । ते सुमतिः उर्वी
नु । निर्ऋतिं पराचैः दूरे वाघस्व । कृतं चित्
द्र प्र मुमुग्धि ॥ ९ ॥
क्षाः उक्ता निहितासः, ये नक्तं ददृशे, दिवा
ईंधुः ! वरुणस्य व्रतानि अदब्धानि, विचाकशत्
: नक्तं एति ॥ १० ॥

एव । ब्रह्मणा वन्दमानः तत् त्वा यामि, यजमानः
तत् आशास्ते । अहेळमानः बोधि । हे उरुशंस! नः
मा प्रमोषीः ॥ ११ ॥

ं इत् नक्तं, तत् दिवा, महां आहुः । हृदः सत्यं केतः
ो दि कृष्टे, गृभीतः शुनःशेपः यं (वरुणं) आह्वत्,
मा वरुणः आरमान् मुमोक्तु ॥ १२ ॥

षु हुपदेषु बद्धः गृभीतः शुनःशेपः आदित्यं आह्वत् दि,
अदृप्तः राजा वरुणः पाशान् वि मुमोक्तु, एनं अव
राज ॥ १३ ॥
(वरुण ! ते हेळः नमोभिः अव ईमहे । हविर्भिः
ः अव (ईमहे) । हे असुर प्रचेतः राजन् ! (अस्य)
ं अवयजं, इतानि एनांसि शिश्रथः ॥ १४ ॥

वरुण ! रथं पाहि अरावन् तत् अश्याम । अदब्धं अद
धय) । गोपायं वि (अश्याय) हे क्षत्रिय ! अव पदं
ते अदितये करामहे । स्वाहा ॥ १५ ॥

हे राजन् ! तेरे पास सैकड़ों और हजारों औषधियाँ हैं । तेरी सुमति बड़ी गम्भीर है । दुर्गतिको नीचे मुख करके दूर फेंक दे, धर्म रखो । किये हुए पापसे हमें मुक्त करो ॥ ९ ॥

ये नक्षत्र (सप्तऋषि) ऊपर (आकाशमें उच्च भागमें) रखे हैं, ये रात्रिके समय दीखते हैं, (पर ये) दिनमें कहाँ भाग जाते हैं, वरुण राजाके नियम अहूट हैं, विशेष चमकता हुआ चन्द्रमा रात्रिमें आता है ॥ १० ॥

हे वरुण देव ! मन्त्रके अनुसार (तुम्हें) वन्दन करता हुआ (मैं) वही (दीर्घ आयु) तुम्हारे पास मागता हूँ, (जो) यज्ञ करनेवाला हविर्देनेके (के अर्पण) से चाहता है, निरादर न करता हुआ (तुम हमारी इस प्रार्थनाको) समझो । हे बहुतसे द्वारा प्रशंसित हुए देव ! हमारी आयुको मत घटाओ ॥ ११ ॥

वहाँ निश्चयसे रात्रिमें, (और) वही दिनमें (आदित्यलोक) सुनि कहा था, (मेरा) हृदय (—अन्तःमें रहनेवाला) सत्य ज्ञान भी वही यह रहा है, (कि) बन्धनमें पड़े शुनःशेपने जिस (वरुण देव) प्रार्थना की थी, वही राजा वरुण हम सबोंको मुक्त करें ॥ १२ ॥

तीन स्थानोंमें बन्धे, (अन्त:) बन्धनमें पड़े शुनःशेपने आ एव (वरुण) देवकी प्रार्थना की थी कि तुम मुझे छोड़ दो, वरुण राजा पाशोंसे मुझे मुक्त करे ॥ १३ ॥

हे वरुण ! तेरे क्रोधको (हम आदरसे) नमस्कारोंसे दूर है । हविर्देनेसे हम (तेरे) क्रोधको दूर (हटाते हैं) । हे असुरोंमें श्रेष्ठ राजन्! (यह) हम हुए (हमारे) हे वरुण ! (हमारे इस यज्ञमें) आकर (आसनपर) विराजिए ॥ १४ ॥

हे वरुण ! रथकी पाप करनेसे तुम बचाओ । हम अदब्ध (रहते हुए) अन्नोंसे हे क्षत्रिय ! अब हमें

हमारे सुन्दर नामका मनन

ईश्वरके नामका मनन करना चाहिये, यही [illegible] कहते हैं। 'नामका मनन' लिखा है। पौराणिकोंमें भी 'नाम्नः **पवित्रार्थभावनम्**' सबमें पवित्रता है कि नाम उसके अर्थका भावना सिद्ध करनेका साधन है। केवल मुखसे नाम एकाग्र होनेमें कुछ न कुछ सहायता होती है, परंतु मनसे नामका टिकनेका परिणाम होनेके लिये 'नामका मनन' करना आवश्यक है। नामके मननका आशय यह है कि नामके अर्थका मनन। ईश्वरके नाम सार्थ अर्थात् अर्थवान् होते हैं, अतः उनके अर्थका मनन करके उस अर्थको मनमें डालना आवश्यक है। जैसा 'अग्नि' ईश्वरका नाम है, इसका अर्थ (अगि) 'गतिमान्, प्रकाश दाता और (अग्रं-नी) अग्रतक पहुंचानेवाला' है। प्रगति करना, मार्ग दर्शाना और हाथमें लिये कामको अग्रतक समाप्त करना ये इसके मुख्य मननके विषय हैं। मननद्वारा ये अपने जीवनमें योग्य रीतिसे डाले जाने चाहिये। ईश्वरके मंगल नामोंका यही मनन है।

'**अमृतानां कतमस्य नाम मनामहे ?**' अमरदेवोंमेंसे किस देवके नामका हम मनन करें ? देव तो अनेक हैं। उनमें किस एक देवका नाम मननके लिये लिया जाय ? यह मनुष्य साधकके लिये महत्वका विषय है। इसका उत्तर यह है—

'**अमृतानां प्रथमस्य देवस्य नाम मनामहे ।**' अनेक अमरदेवोंमें जो सबसे मुख्य और प्रथम उपास्य है, जो श्रेष्ठ देव है उसके नामका मनन करना चाहिये, और उस नाम (चारु नाम) की सुन्दरताका पता विश्वव्यवहारमें लग जाय, ऐसी अवस्था आनेतक यह मनन होना चाहिये। नामकी चारुताका पता लगनेका नाम उसमें 'रस' मिलना है। अधिक मननसेही सिद्ध होनेवाली यह बात है। जबतक नामके मननसे 'रस' नहीं आयेगा, तब तक समझना चाहिये कि अपना नाम-मनन ठीक नहीं हुआ।

यहां '**प्रथमस्य अग्नेः देवस्य चारु नाम मनामहे ।**' 'सब देवोंमें अग्निदेव प्रथम है अतः उसके सुंदरनामका मनन करेंगे' ऐसा कहा है। और उपासनाके लिये अग्निको ही सबसे प्रथम लिया है। यह अग्नि 'आग' है जो हमारा भोजन पकाता है ऐसा प्रथम मालूम होता है, पर जब बिजली गिरनेसे आग लगती है और सब जलने लगता है, तब प्रतीत होता है कि यह आग और विद्युत् एकही है और इसके पश्चात् काचमणिमेंसे आये सूर्य किरण आग उत्पन्न करते हैं यह देखने पर, प्रतीत होता है कि सूर्य [illegible] पार्थिव आग है। [illegible] विद्युत् स्वरूप और सूर्यकी सूर्य रूपसे है। विद्युत्रूपसे पृथ्वीके अवकाशमें है यह सब [illegible] और इसको सर्वव्यापकता प्राप्त होती है। [illegible] सर्वत्र है और सब वस्तुओंमें रहता है। विश्वका सब [illegible] है और [illegible] समय पता लगता है। इस प्रकार [illegible] अग्नि' आता है और उसके संकुचित भाव [illegible]

अग्नि पार्थिव (पार्थिव अग्नि) है विद्युत [illegible] करता है। मनन करते करते 'आग' के अर्थों [illegible] तक उपासक पहुंचता है और जिसके सभी [illegible] के हैं वह भाव प्राप्त हो जाती है। इसलिए [illegible] साक्षात्कार उपासकको होता है।

नामके मननका फल क्या है ? यह प्रश्न यह है। इसके उत्तरके लिये '**सः नः महो अदि**' यह उपास्य देव हम सब उपासकोंको उसे पहुंचाता है। यह नामके मननका फल है। 'दिति' और 'अ-दिति' ऐसे दो भाव इस वि का अर्थ टुकडा, भाग, खण्ड है और 'अ 'अटूट, अभिन्न और अखण्ड सत्ता' है। खण्डित सत्ता ये दो भाव यहां है। अखण्डत्व द्योतक और खण्डभाव संकोचका द्योतक है। 'अग्नि' का विचार करते हुए हमने देखा कि आग, केवल विद्युत् अथवा केवल सूर्य मानना दर्शन करना है। यह 'दिति'का क्षेत्र है। तथा एकही अग्नितत्त्व है और वही एक तत्त्व विश्वरूप अटूट, अखण्ड और अनन्तभावका दर्शन करता 'अदिति' का क्षेत्र है।

अग्निको केवल आगही समझना खण्डका है, इसमें आंशिक सत्य है, संपूर्ण सत्य नहीं है, अज्ञान है, और अग्निको विश्वव्यापक तत्त्वके नेका नाम संपूर्ण अखण्ड, अटूट और अनंत करना है। यही ज्ञान कहलाता है। पूर्वोक्त अदितितक अर्थात् सर्वव्यापक तत्त्वतक पहुंचा देता भावसे बंधन और अखण्डभावसे बंधनसे छुटकारा

ये कर्म हैं। मातापिताको देखनेका मतलब है जन्म धारण करना, दीर्घ आयु प्राप्त करना और ऐश्वर्यके शिखरपर पहुंचकर बडे कार्योंका प्रारंभ करना, ये सब कार्य प्रत्येक व्यक्तिके करनेके हैं। प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र रीतिसे जन्मती है, प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र-रूपसे दीर्घ आयु चाहती है और ऐश्वर्यके शिखरपर चढकर बडे बडे पुरुषार्थ करके पराक्रम करना भी व्यक्तिकी बुद्धिसे बननेवाले कार्य हैं।

इस सूक्तमें केवल तीन ही निर्देश व्यक्तिके हैं, और ग्यारह निर्देश संघके लिये हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि यह सूक्त एक व्यक्तिके मुक्त होनेके लिये नहीं है, परंतु सामाजिक बंधन निवृत्ति के लिये हैं। सामाजिक जीवनका विचार करनेमें भी कुछ कार्य व्यक्तिके करनेके होते हैं, अर्थात् शिक्षा पाना, शरीर पोषण करना, स्नानादि करना, योगसाधन करना इत्यादि। व्यक्तिके स्वास्थ्यके लिये इनकी आवश्यकता रहती है, अतः ये कर्म करके व्यक्ति सामाजिक कार्य करनेके लिये समर्थ बने। समर्थ बनकर सामाजिक कार्य करके विश्व सेवा करे।

सामाजिक उन्नतिके लिये (१) सब मिलकर ईश्वरके पवित्र नामोंका मनन करें और उससे अपने कर्तव्योंका बोध प्राप्त करें, (२) सामाजिक तथा राष्ट्रीय उन्नतिकी साधना करें, (३) मिलकर यत्न करके भाग्य प्राप्त करें, ऐश्वर्यकी वृद्धि करें, (४) अपने सामाजिक पाप दूर करें, समाजके दोष दूर करें, (५) धर्म नियमोंमें रहें (६) यज्ञ करें। इस तरहके नानाविध कार्य मनुष्य करे। ये कार्य संघद्वारा ही हो सकते हैं, क्योंकि सब समाजकी उन्नतिके साथ इनका संबंध है। '**अस्मान् मुमोक्तु**' (मं. ३२) हम सबको बंधनसे मुक्तता करे इस मंत्रसे वैदिक दृष्टि सामुदायिक मुक्ति है, वैयक्तिक मुक्ति नहीं है, इस बातका पता लगता है। समाजका समाज सुधरना चाहिये, तब ही इस भूमिपर स्वर्गतुल्य व्यवस्था हो सकता है। यह ध्येय है जो इस सूक्तके द्वारा ऋषि दृष्टाओंने घोषित किया है।

ईश्वरका स्वरूप

[illegible] अग्नि, वरुण, सविता, आदित्य, अमृतानां प्रथमः, [illegible] विद्वान्, अमृत, प्रचेताः, देव इनसे नाम इस सूक्तमें [illegible] प्रयुक्त हुये हैं। कई लोग इनसे विभिन्न देवोंका [illegible] लेते हैं, ऐसी कल्पना करते हैं, परंतु हमारे मतसे वह [illegible] होगी। क्योंकि प्रथम मंत्रमें कि 'अनेक अमर देवोंमें किस एक मुख्य देवके ऐसा प्रश्न पूछा है और द्वितीय मंत्रमें सबसे मुख्य अग्नि देवके नामका हम मनन है। अतः आगे तृतीय मंत्रसे 'सविता' आदि देवके वाचक मानना योग्य हैं। क्योंकि एक मनन करनेकी प्रतिज्ञा द्वितीय मंत्रमें करके मंत्रसेही दूसरे देवकी भक्ति करनेका कोई दीखता है। एकही देवकी भक्ति करनेकी देवोंकी नहीं। अतः सब नाम उसी एक ही युक्तियुक्त और पूर्वापर संबंधके अनुकूल है। माना है।

कई विद्वान् पृथक् पृथक् देवोंकी भक्ति मंत्रोंमें देखते हैं, और अग्निको छोडकर वरुणकी वरुणके बाद आदित्यकी, ऐसी कल्पना करते हैं प्रथम तो प्रारंभिक दोनों मंत्रोंके विधानसे और 'एक, सत् है जिसको ज्ञानीजन अग्नि, यम कहते हैं' (ऋ. १.१६४।४६) ऐसा जो वेदमें सत्तावाद कहा है, उस वैदिक सिद्धांतके भी लिये इस सूक्तमें जो अग्नि, वरुण, सूर्य, सविता हैं, वे एक मूल मुख्य आत्मतत्त्वके वाचक हैं, अनेक नामोंका मनन इस सूक्तमें किया गया है युक्तियुक्त है। इसके गुणधर्म ये हैं—

१ **सदा-अवन्**– वह सदा सबकी सुरक्षा करता

२ **सविता** (प्रसविता)– वह अपने अन्दरसे प्रसव करता है,

३ **देवः**– वह प्रकाशमान है, सब सुखोंका

४ **सः (यः) भगः दधे**– वह सब ऐश्वर्यों

५ **वार्याणां ईशः**– सब श्रेष्ठ धनोंका स्वामी

६ **भगभक्तः**– धनका बंटवारा योग्य है, (५)

७ **वरुणः**– वरिष्ठ देव, श्रेष्ठ प्रभु है,

८ **पूत-दक्षः**– पवित्र कार्योंमेंही अपने बलका करता है,

९ **राजा**– वह सब विश्वका राजा है,

१० ईश्वरके बल, पराक्रम और उत्साहको सकता, और न कोई लांघ सकता है। (६)

ईश्वरने एक वृक्ष विना आधार आकाशमें टांग दिया है, शाखाएं नीचे फैली हैं, इनकी जडे ऊपर हैं, और सब जगह फैलाये हैं। (७) [गीतामें 'ऊर्ध्वमूलं अधः-शा जिसका वर्णन (अ. १५ में) किया है वैसाही दीखता है।]

ईश्वरने सूर्यके लिये विस्तृत मार्ग बनाया है, अन्तरिक्षमें न उत्पन्न किया है और यही सबके अन्तःकरणोंके दूर करता है। (८)

ईश्वरने सहस्रों रोगनिवारक औषधियां निर्माण की हैं। शुभ मति सबपर समान है। यही सबकी आपत्तिको सकता है और पापसे बचा सकता है। (९)

ईश्वरने ये नक्षत्र आकाशमें बडे ऊंचे स्थानपर रखे त्रीमें दीखते हैं, पर दिनमें दीखते नहीं। इसके नियं-ोई लांघ नहीं सकता। इसीकी योजनासे चमकता त्मा रात्रीमें प्रकाशित होता है। (१०)

ईश्वरके पास हम दीर्घ आयु मांगते हैं। (११)

सः अस्मान् मुमोक्तु- सब यही कहते हैं कि ु हम सबको बंधनसे मुक्त करनेवाला है। (१२)

विद्वान्- वह ज्ञाता है,

अदब्धः- न दबनेवाला, जिसपर किसी दूसरेका र नहीं चलता,

वरुणः पाशान् वि मुमोक्तु- प्रभु पाशोंसे हमें करे,

एनं अव सृज्यात्- इस (जीव) को खुला करे, ुलावे, (१३)

असुरः (असुरः)-जीवनशक्ति देनेवाला, जिसकी शक्तिसे सब सजीव हुए हैं; जीवनका आधार,

प्रचेताः- विशेष ज्ञानी, (१४)

स्तादित्यः- (अदितिं) अखण्ड, अनन्त, अक्षुण्ण, (अदितात्) को सबसे पहले रखता है, सबका आ,

यत्र मे अनेन अनागसः स्याम- प्रभुके नियमोंके ार कार्य करनेसे हमारा निस्पाप होना है। (१५)

इस सूक्तमें एक प्रभुके अनेक नाम हैं यह बात सूचित की है देखिये—

१ प्रथम और द्वितीय मंत्रमें अनेक 'देवोंमें किसी एक देवके नामका मनन' करनेकी इच्छा प्रकट हुई है।

२ आगेके मंत्रोंमें मननीय देवका वर्णन अनेक नामोंसे किया है। इससे सिद्ध होता है कि वे नाम एकही देवके हैं जिसकी उपासना करनी है।

३ तृतीय मंत्रमें '**सविता** और **ईश**' ये नाम उसी एक प्रभुके आये हैं, ये दो देवोंके नहीं हैं, पर एक ही देवके ये दो नाम हैं।

४ सप्तम मंत्रमें '**पूतदक्ष, राजा, वरुण**' ये तीन नाम प्रभुके लिये ही हैं। राजा और वरुण ये नाम आगेके मंत्रोंमें भी आये हैं।

५ तेरहवें मंत्रमें **आदित्य, विद्वान्, अदब्ध, राजा, वरुण**, ये उसीके नाम हैं।

६ चौदहवें मंत्रमें '**असुर**' नाम ईश्वरके लिये ही है। इस तरह यह सूक्त अनेक नामोंसे एक ही देवताका वर्णन होता है, यह बात स्पष्ट रूपसे बताया है।

एकके अनेक नाम

इस सूक्तमें एक प्रभुके अनेक नाम हैं यह बात सूचित की है देखिये—

१ प्रथम और द्वितीय मंत्रमें अनेक 'देवोंमें किसी एक देवके नामका मनन' करनेकी इच्छा प्रकट हुई है।

२ आगेके मंत्रोंमें मननीय देवका वर्णन अनेक नामोंसे किया है। इससे सिद्ध होता है कि वे नाम एकही देवके हैं जिसकी उपासना करनी है।

३ तृतीय मंत्रमें '**सविता** और **ईश**' ये नाम उसी एक प्रभुके आये हैं, ये दो देवोंके नहीं हैं, पर एक ही देवके ये दो नाम हैं।

४ सप्तम मंत्रमें '**पूतदक्ष, राजा, वरुण**' ये तीन नाम प्रभुके लिये ही हैं। राजा और वरुण ये नाम आगेके मंत्रोंमें भी आये हैं।

५ तेरहवें मंत्रमें **आदित्य, विद्वान्, अदब्ध, राजा, वरुण**, ये उसीके नाम हैं।

६ चौदहवें मंत्रमें '**असुर**' नाम ईश्वरके लिये ही है। इस तरह यह सूक्त अनेक नामोंसे एक ही देवताका वर्णन होता है, यह बात स्पष्ट रूपसे बताया है।

तीन पाश

पंद्रहवें मंत्रमें **उत्तम, मध्यम** और **अधम** ऐसे तीन पाश हैं, उनको हीला करो ऐसी प्रभुकी प्रार्थना है। हरएक मनुष्य तीन प्रकारसे बंधा है, ये तीन बंधन समझकर हैं। विषयोंकी आसक्ति और देहाभिमान ये तीन ऊंचे मनुष्यके हैं। उत्तम बंधन ज्ञानसे विषयोंका दूर होना है, इस प्रकार बंधे अज्ञान प्रमाद करनेसे कर्तव्यका दूर होना है, और अधम बंधनसे देहाभिमान दूर होना है।

इन तीन सूक्त उपायोंसे अर्थात् तीन प्रकारोंसे मुक्त होना है। ज्ञानसे, साधन और साधिक आचरणसे तीन बंधन मनुष्यको बांधे होते हैं, इनसे दूर करने विद्वान्-ईश होना है, इससे मुक्त होना है। इस तरह तीन प्रकारसे विचार करना चाहिये। यह मनन मनुष्यकी उन्नति करनेके लिये उत्तम मार्ग दर्शन कर सकता है।

मनुष्यके लिये बोध

इस सूक्तसे मनुष्यके लिये प्रतिदिनके आचारविचारके लिये बडा बोध मिल सकता है। इसका थोडासा नमूना यहां देते हैं—

१ अमृतानां कस्य देवस्य चारु नाम मनामहे– अमर देवोंमें जो अधिक सुख देनेवाला है, उसके अनंत नामोंमें जो नाम मंगलकारक है उसीका मनन करना योग्य है। अर्थात् जो नाशवान् हैं, अमंगल हैं, हीन हैं उनके नाम या वृत्तका कदापि मनन करना योग्य नहीं है। जो सबसे अधिक (कः) सुखदायी है उसीका नाम मननके लिये लेना योग्य है। नाम अनंत हैं, पर उनमें जो (चारू) सुंदर, रमणीय, मंगल हैं उनका ही आलंबन करना चाहिये। (मं १, २)

२ अदितये पुनः दात्–अखंडित, सर्वतंत्र स्वतंत्र शक्तिकी सिद्धिके लिये पुनः पुनः दान दो, आत्मसमर्पण करते रहो। [जीव अंश है अतः वह एक 'खण्ड' है, अल्प है। उसको अखण्ड, पूर्ण बनाना है। नरका नारायण होना है, इसलिये खण्डभावका समर्पण ही एकमात्र साधन है।](१-२)

३ सदा-भवन्– सदा निर्बलोंकी सुरक्षा करते रहो (३)
४ देवः–(दानात्) दान करते रहो, (३)
५ अ-द्वेषः– द्वेष न करो,
६ पुरा निदः– निन्दा न करो, (४)
७ भागमक्त– अपनी संपत्तिको सत्पात्रमें बांटो,
८ अवसा उदगाम– अपने बलसे उन्नतिको प्राप्त करो,
९ गायः मूर्धानं आरभे– ऐश्वर्यके शिखरपर चढो और वहां अनेक शुभ कर्मोंको आरंभ करो, (५)
१० क्षत्रं सहः मन्युं न आयुः– बल और उत्साह इतना बढाओ कि जिसको
११ पूतदक्षः– पवित्र कर्मोंमें
१२ हृदया-विधः अपवक्ता– हृदयके भावोंका निषेध करो, (८)
१३ सुमतिः उर्वी गभीरा– तुम्हारी और गंभीर रहे (९)
१४ निर्ऋतिं दूरे बाधस्व– अपनी हटा दो, ऐसा प्रबंध करो कि कभी तुम्हारी दुर्मति
१५ आयुः मा प्रमोषीः– जिससे आयु ऐसा कोई कार्य न करो, (११)
१६ हृदः केतः वि चष्टे– अपने कहना है वह देखो, अपना हृदयका ज्ञान क्या सुनो, (१२)
१७ विद्वान् अदब्धः– ज्ञानी बनो, किसी नीचे न दब जाओ, (१३)
१८ पाशान् मुमोक्तु– अपने पापों को नोंसे मुक्त हो जाओ (१३)

इस तरह इस सूक्तमें मानवधर्मका बोध पद और वाक्य हैं। 'देवता जैसा करता है वैसा इस सूत्रको ध्यानमें धारण करके सूक्तका मनन मंत्रोंसे तथा मंत्रके अवयवोंसे मानव धर्मका बहु सकता है। अब आगेका सूक्त देखो—

(२) विश्वका सम्राट्

(ऋ. १ २५) आजीगर्तिः शुनःशेपः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः। वरुणः। गायत्री।

यच्चिद्धि ते विशो यथा प्र देव वरुण व्रतम्	।	मिनीमसि द्यविद्यवि
मा नो वधाय हत्नवे जिहीळानस्य रीरधः	।	मा हृणानस्य मन्यवे
वि मृळीकाय ते मनो रथीरश्वं न संदितम्	।	गीर्भिर्वरुण सीमहि
परा हि मे विमन्यवः पतन्ति वस्य इष्टये	।	वयो न वसतीरुप
कदा क्षत्रश्रियं नरमा वरुण करामहे	।	मृळीकायोरुचक्षसम्
तदिन्नक्तं तद्दिवा महदाते वचस्यया न प्र युच्छतः	।	धृतव्रताय दाशुषे
दर्शं नु विश्वदर्शतं दर्शं रथमधि क्षमि एतावतो	।	वेद नावः समुद्रियः

वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः । वेदा य उपजायते ८
वेद वातस्य वर्तनिमुरोर्ऋष्वस्य बृहतः । वेदा ये अध्यासते ९
नि षसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा । साम्राज्याय सुक्रतुः १०
सतो विश्वान्यर्थ आ हृदा सोमेव पश्यति । कृतानि या च कर्त्वा ११
स नो विश्वाहा सुक्रतुरादित्यः सुपथा करत् । प्र ण आयूंषि तारिषत् १२
विभद्रो द्रापि हिरण्यं वरुणो वस्त निर्णिजम् । परि स्पशो नि षेदिरे १३
न यं दिप्सन्ति दिप्सवो न द्रुह्वाणो जनानाम् । न देवमभिमातयः १४
उत यो मानुषेष्वा यशश्चक्रे असाम्या । अस्माकमुदरेष्वा १५
परा मे यन्ति धीतयो गावो न गव्यूतीरनु । इच्छन्तीरुरुचक्षसम् १६
सं नु वोचावहै पुनर्यतो मे मध्वाभृतम् । होतेव क्षदसे प्रियम् १७
हुवे तु विश्वदर्शतं दर्शं रथमधि क्षमि । एता जुषत मे गिरः १८
इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय । त्वामवस्युरा चके १९
त्वं विश्वस्य मेधिर दिवश्च ग्मश्च राजसि । स यामनि प्रति श्रुधि २०
उदुत्तमं मुमुग्धि नो वि पाशं मध्यमं चृत । अवाधमानि जीवसे २१

अर्थ— हे वरुण देव ! जैसे सब मनुष्य (प्रमाद करते हैं, देवे) हेरे जो भी नियम (हैं, उनके करनेमें) प्रति दिन (हम भी) प्रमाद करते ही हैं ॥ १ ॥

(तेरा) निरादर करनेवालेका वध करनेके लिए (और उलटे तेरे) शत्रुके सामने हमको मत खड़ा रख ! (तथा) युद्ध हुए (तेरे) क्रोधके सामने (हमें) मत (खड़ा रख) ॥ २ ॥

हे वरुण ! किस प्रकार रथों और आगे बढ़े हुए घोड़ोंको (शत्रुके खड़ा है, उस तरह) सुख देनेवाले तेरे मनको स्तोताओंद्वारा हम विशेष प्रसन्न करते हैं ॥ ३ ॥

जिस तरह पक्षी अपने घोंसलोंमें और (दौड़ते हैं, उस तरह) मेरी विशेष उत्तम बुद्धियाँ धनकी प्राप्तिके लिये दूर दौड़ रही हैं ॥ ४ ॥

शत्रुओंके वरुण देवसम्बन्धी तेज विशेष बढ़ा करनेके हम दुःखोंसे छूटनेके लिये दुःखदेते ! ॥ ५ ॥

हम धारण करनेवाले हमारे लिये (दुःखों) दूर करने हमारे (हे मित्र और वरुण) सम्बन्धी नहीं हैं । दूर करते हैं, हे हमें उत्तम) प्राप्त नहीं करनेवाले उत्तमतासे परिपूर्ण करते हैं ॥ ७ ॥

(१६) ऋग्वेदका सुबोध भाष्य [म.१

उरोः ऋष्वस्य बृहतः वातस्य वर्तनिं वेद । ये अध्यासते (तान्) वेद ॥ ९ ॥

घृतव्रतः सुक्रतुः वरुणः पस्त्यासु साम्राज्याय आ नि ससाद ॥ १० ॥

अतः विश्वानि अद्भुता चिकित्वान्, या कृतानि, (या)च कर्त्वा, अभि पश्यति ॥ ११ ॥

सुक्रतुः सः आदित्यः विश्वाहा नः सुपथा करत् । नः आयूंषि प्र तारिषत् ॥ १२ ॥

हिरण्ययं द्रापिं बिभ्रत् वरुणः निर्णिजं वस्त । स्पशः परि निषेदिरे ॥ १३ ॥

दिप्सवः यं न दिप्सन्ति । जनानां द्रुह्वणः (यं) न (द्रुह्यन्ति)। अभिमातयः देवं न (दिप्सन्ति) ॥१४॥

उत यः मानुषेषु यशः आ चक्रे । असामि आ (चक्रे) अस्माकं उदरेषु आ (चक्रे) ॥१५॥

उरुचक्षसं इच्छन्तीः मे धीतयः, गावः न गव्यूतीः अनु, परा यान्ति ॥ १६ ॥

यतः मे मधु आभृतं, होता इव प्रियं क्षदसे, पुनः नु मं वोचावहै ॥१७ ॥

विश्वदर्शतं दर्शं नु । अभि रथं अधि दर्शम् । एता मे गिरः जुषत ॥ १८ ॥

हे वरुण ! इमं मे हवं श्रुधि । अद्य मृळय च । अवस्युः त्वां आ चके ॥ १९ ॥

हे मेधिर ! त्वं दिवः च रुमः च विश्वस्य राजसि । सः त्वं) यामनि प्रति श्रुधि ॥ २० ॥

नः उत्तमं पाशं उत् मुमुग्धि, मध्यमं वि चृत, जीवसे अव (चृत) ॥ २१ ॥

विशाल महान और बड़े वायुके मार्गको (है तथा जो अधिष्ठाता होते हैं (उनको भी)

नियमके अनुसार चलनेवाले, उत्तम कर्म देव प्रजाओंमें साम्राज्यके लिये आकर बैठते हैं।

इस लिये सब अद्भुत कर्मोंको (करनेकी शक्ति (यह वरुण देव), जो किया है, (और जो) (उस सबको) पूर्णतासे देखते हैं ॥ ११ ॥

उत्तम कर्म करनेवाले वे अदिति पुत्र (हम हमें सुपथसे चलनेवाले करे । और हमारी आयु

सुवर्णमय चोगा धारण करनेवाले वरुण देव (तेजस्वी वस्त्र धारण करता है। उसके दूत (किर ठहरे हैं ॥ १३ ॥

घातक दुष्ट लोग जिसकी दुष्टता नहीं करते करनेवाले जिसका नहीं द्रोह करते । शत्रु (पीडा देते) ॥ १४ ॥

और जिन्होंने मनुष्योंमें यश फैलाया है। कुछ) किया है । हमारे पेटोंमें भी (सुंदर की है ॥ १५ ॥

उस सर्वसाक्षी (प्रभुकी) इच्छा करनेवाल गौवें गोचर भूमिके पास जानेके समान, (उन तक जाती हैं ॥ १६ ॥

जो मैंने यह मधु भरकर लाया है, हवनक प्रिय (मधुर रसका तुम) भक्षण करो। फिर कर बातें करेंगे ॥ १७ ॥

विश्वरूपमें दर्शनीय (देवको) निःसंदेह मैंने भूमिपर उसके रथको मैंने देखा है । ये मेरी स्वीकार की हैं ॥ १८ ॥

हे वरुण ! मेरी यह प्रार्थना सुनो । आज सुरक्षाकी इच्छा करनेवाला मैं तुम्हारी स्तुति क

हे बुद्धिसे प्रकाशित होनेवाले देव ! तुम और सब विश्वपर राज्य करता है । वह (तुम के पश्चात् उसका उत्तर दो ॥ २० ॥

हमारे उत्तम पाशको खुला करो, हमारे टीला करो और दीर्घ जीवनके लिये मेरे अ खोल दो ॥ २१ ॥

मो! मेरे प्रमादोंकी क्षमा करो

सूक्तके पहिले दो मंत्रोंमें प्रभुसे प्रार्थना की है, कि 'यह
हमारे प्रमादोंकी हमें क्षमा करें।' क्योंकि हम मानव
ती हैं, कितनी भी सावधानी रखी तो भी प्रमाद हमसे
। ऐसी अवस्थामें यदि प्रत्येक प्रमादके लिये कठोर
ही प्रभुको मञ्जूर हुआ, तो फिर वध आदि दण्डसे
पाना मनुष्योंके लिये सर्वथा असंभवही है। यदि प्रभुही
न होते हुए कठोर दण्ड देनेवाला क्रोधी हुआ, तो
किसकी शरण जायगें? इसलिये इस सूक्तके प्रारंभिक
में प्रभुकी ऐसी प्रार्थना की है कि वह हमपर दया करे,
रे, और हमारे अपराधोंकी हमें अपनी अगाध कृपासे
रें। उनकी सहलों आंखोंके सामने हम कहां छिप जाये?

हम प्रभुकी दयाकी हि शरण लेते हैं।

दो मन्त्रोंमें जो विनम्रभाव है वह प्रभुभक्तिके लिये
ावश्यक है। अतः इस विनम्रभावसे उपासक भक्त
प्रतिदिन ऐसी प्रार्थना करें कि, 'हे प्रभो! जैसे सब अन्य
सदा प्रमाद करते रहते हैं, वैसे हमारे हाथसे भी
न अनेक प्रमाद होते रहते हैं, इसलिये हमारे प्रत्येक
के लिये तुम क्रोधित होकर हमें दण्ड न करो। दयाकी
हमारे ऊपर रखो।' (९-)२

तेरी दयाका आश्रय

ये तीसरे मन्त्रमें कहा है कि 'हे प्रभो! जैसे थके घोडे-
-ना मालिक दया करके उसको विश्राम देता है, उस प्रकार
आजमें श्रम और दुःखी हुआ हूं, इसलिये तुम्हारी
करता हूं कि सखीकी तरह तुम मुझपर दया करो और
अपनी अतुल दयासे सुखी करो। मेरे योग्य कर्म न भी
थापि तुम अपनी दया प्रकट करके मुझे सुखी करो। मैं
ी प्रार्थना ही कर सकता हूं।' प्रमादशील होनेके कारण
सुयोग्य कर्म होते ही, ऐसा नियम नहीं है, तथापि तुम्हारी
ही मैं पात्र बना रहूंगा, यही मेरी प्रार्थना है। (मं.३)

ये मंत्रका आशय यह है कि 'जिस तरह पक्षी दिनभर
उधर घूमकर घर रात्रीको विश्रामके लिये अपने अपने
ों की ओर ही आते हैं, और वहां विश्राम पाते हैं, उसी
; मेरी बुद्धियां और मेरी विचारधारायें इस विश्वमें इधर
र घूमती रहती हैं, परंतु फिर रात्रिकी और हृदयरूप सुखदायी
ोंसे तुम्हारे ही आश्रयमें आती हैं और वहीं रात्रिरूप सुख
और आनन्द पाती हैं।' (मं. ४) इस मंत्रका कथन कितना
हृदयस्पर्शी है इसका अनुभव पाठक करें।

पांचवे मंत्रमें हृदयकी उत्कट इच्छा यह प्रकट हुई है कि
'जो प्रभु सबकी सुरक्षितता करनेका सामर्थ्य रखता है, जो
विश्वका नेता और संचालक है, जो चारों ओर विशाल दृष्टिसे
सबको याथातथ्य रीतिसे देखता है, जो सबसे श्रेष्ठ है, उस सुख-
दायी प्रभुकी हम सब मिलकर कब उपासना करेंगे!' कब वह
हमारे सामने साक्षात् दर्शन देगा? हम आतुर हुए हैं उसकी
भक्ति करनेके लिये, अतः चाहते हैं कि उसके साक्षात्कारका
समय शीघ्र प्राप्त हो और हम उस प्रभुकी आनन्दकी प्राप्ति होने-
तक यथेच्छ उपासना करें। (मं. ५)

'ये मित्र और वरुण ऐसे हैं कि जो व्रती और दाता पुरुषकी
उन्नति करना चाहते हैं, वे कभी अपने भक्तका त्याग करते नहीं।'
(मं. ६) यह दृढविश्वास इस मंत्रमें व्यक्त हुआ है। भक्तके
प्रयत्न व्यर्थ कभी नहीं जायंगे यह विश्वास यहां व्यक्त हुआ है।
हरएक उपासकके अन्तःकरणमें ऐसे विश्वास अवश्य होना
चाहिये।

प्रभु सर्वज्ञ है

आगेके तीन मंत्रोंमें प्रभुकी सर्वज्ञताका उत्तम वर्णन है-'यह
प्रभु आकाशमें उडनेवाले पक्षीयोंकी गति जानता है, कौनसा पक्षी
कहांसे उडा है और कहां जायगा यह सब उसको पता है, समु-
द्रमें इतस्ततः घूमनेवाली नौकाएँ किस गतिसे घूम रही हैं, उन-
मेंसे कौनसी नौका अपने स्थानको ठीक तरह पहुंचेगी और
कौनसी नहीं यह सब उस प्रभुको पता है। वर्षके बारह महिनों
में और (तीसरे वर्ष आनेवाले) तेरहवें पुरुषोत्तम मासमें
क्या उत्पन्न होता है और उससे प्रजाकी उन्नति कैसी होती है
यह सब उस प्रभुको पता है। चारों ओर संचार करनेवाले महान
सर्व प्राण वायुकी गति कैसी होती है यह भी उसको पता है
और इन सबपर जिनकी सिप्तनी है उन सब अधिष्ठाता देवता
ओंका भी यथादेश ज्ञान उस प्रभुको है।' (७-९) इस तरह
वह प्रभु सर्वज्ञ है।

प्रभुका विश्वव्यापी साम्राज्य

इसी तरह 'वह प्रभु अपने नियमोंके अनुसार सब कार्य
यथादेश यथाकाल करता है, जो करना है वह उत्तम रीतिसे
करता है, ऐसा वह सर्वज्ञ प्रभु सब प्रजाओंमें बैठता है और

अपना साम्राज्य चलाता है। वहीं रहकर विश्वमें क्या हो रहा है, क्या किया गया है और क्या करना चाहिये इसका यथा-योग्य निरीक्षण करता है। वही उत्तम कार्य करनेवाला प्रभु सबको बंधनसे छुटकारा करा देनेके लिये सब मानवोंको उत्तम मार्गसे चलावे और सबसे उत्तम कर्म होनेके लिये उनको दीर्घ आयुभी देवे।' (मं. १०-१२) यहां प्रभुके अतुल सामर्थ्यका भी वर्णन है, और उनकी सहायताकी भी प्रार्थना है।

सुवर्णके वस्त्रका आच्छादन

'इस प्रभुके ऊपर सुवर्णके वस्त्रका आच्छादन है, मानो वह प्रभु जरतारीके कपडे पहनकर और ऊपर वैसाही दुपट्टा लेकर खडा है। इसके दूत चारों ओर संपूर्ण विश्वमें इसीका कार्य कर-नेके लिये घूम रहे हैं। वे हम सबके चालचलनको देख रहे हैं। कोई दुष्ट शत्रु या द्रोही इस प्रभुको किसीतरह कष्ट नहीं दे सकता इतना इसका सामर्थ्य है।' (मं. १३-१४)

'इस प्रभुनेही मानवोंमेंसे कईयोंको यशस्वी किया है। वह जो करता है वह कभी अधूरा नहीं करता, जो करता है वह यथायोग्य, यथातथ्य परिपूर्ण करता है अतः उसमें कभी त्रुटी नहीं होती। मनुष्यके पेटमेंही देखिये उसने कैसी उत्तम रचना की है कि जिससे खाये अन्नसे अन्दरही अन्दरसे शरीरका पोषण होता रहता है। ऐसाही सब विश्वभरमें हो रहा है।' (१५)

जैसी सूर्यके पासकी भूमिके पास दौडती हुई जाती है, वैसी ही मेरी बुद्धियां इसी प्रभुके पास दौड रही हैं। इस प्रभुको अर्पण करनेके लिये जो भी मधुरतायुक्त रस मुझे मिला है वह सब मैंने उसको अर्पण करनेके लिये इकट्ठा करके रखा है। इसका वह स्वीकार करे और पश्चात् उस प्रभुसे मेरा दिल मोकळा वार्तालाप होता रहे।' (मं. १६-१७)

ईश्वरका साक्षात्कार

अगला विषय अत्यंतही सुंदर है कि— 'मैंने इस विश्वमंदिरमें प्रवेश करके प्रभुका साक्षात् दर्शन किया है। जैसा पृथ्वीपर सूर्य सदा रहता है, वैसाही यह प्रभु मेरे सम्मुख खडा है। वह अब मेरी प्रार्थना सुने। हे प्रभो! मेरी प्रार्थना सुनो! अपनी सुने सकी करो। अपनी सुरक्षा होनेके लिये मैं तुम्हारी प्रार्थना करता हूं। अतः हे प्रभु मुझे आनन्दमय बनाओ। हे तृप्तिप्रदाता प्रभो! तुम्हारा सख्य मैं अत्यधिक पृथ्वीतक सर्वत्र अनुभव करता हूं। यह तुम्हारी प्रार्थना-अर्चना करके उसकी पूर्णता करो और हमें पूर्ण आयुष्य दो' (मं. १८-२०)

बंधका नाश

'हे प्रभो! ऊपरके उत्तम मध्यम और नीचे पाश ढिले करो और मुझे मुक्त करो।' (मं. २१)

यह सूक्त अत्यंत हृदयस्पर्शी है और भक्तिसे भरपूर भरा है। पाठक इसका बारंबार पठन करें। जो आशय ऊपर दिया है उसका मनन करें और अपने मनको ओत प्रोत भर दें।

आदर्श पुरुष

इस सूक्तमें वरुणको आदर्श पुरुष बतानेवाले दर्शानेवाले पद ये हैं—

१ मृळीकः—जनोंको सुख देनेवाला, (मं. १)

२ क्षत्रश्रीः—पराक्रमसे शोभनेवाला, बहुत शक्ति जिसमें अत्यधिक है,

३ नरः—नेता, समाजको चलानेवाला,

४ ऊरु-चक्षाः—विस्तृत दृष्टीसे देखनेवाला, सर्व द्रष्टा, (मं. ५)

५ धृत-व्रतः—व्रतोंको धारण करनेवाला, व्रत करनेवाला, (मं. ८,१०)

६ सुक्रतुः—उत्तम कर्म करनेवाला, कर्म करनेवाला,

७ पस्त्यासु निषसाद—अपनी प्रजाके (मं. १०)

८ कृतानि कर्त्वा अभिपश्यति—कर्म कि क्या करना है, इसको ठीक तरह देखनेवाला (मं.

९ आदित्यः (अ-दितेः अयं)—सर्वोंको रहता है, (आ-दाता) सबोंका जो स्वीकार करता जो दिन करता है,

१० विश्वाहा नः सुपथा करत्—सब प्रजा मार्गसे ले जाता है।

११ आयूंषि प्र तारिषत्—दीर्घ आयुष्य (मं. १२)

१२ दिप्सवः दुहादः अभिदायवः यह दूसरे दबाने और द्रोही जिसको किसी तरह

ही दीखता नहीं। जिस अन्तिम मन्त्रमें पाश खोलनेकी बात कही
है वहां भी 'नः पाशं' हमारे पाशको खोल दो, अर्थात् हम
सबके पाशोंको खोलो ऐसा ही कहा है इसलिये किसी एक मानव
के बंधसे मुक्त होनेके लिये यह सूक्त है ऐसा कहना कठिन है।
अब इस सूक्तमें जो एकवचनमें प्रयोग हैं उनको देखिये--

एकवचनके प्रयोग

इस सूक्तमें निम्नलिखित मंत्रोंमें एकवचनके प्रयोग हैं—

१ मे विमन्यवः परा पतन्ति- मेरे उत्साही विचार-
प्रवाह दूरतक भागते हैं, (मं. ४)
२ मे धीतयः परा यन्ति- मेरी बुद्धियाँ दूर जाती हैं,
(मं. १६)
३ मे मधु आभृतं- मेरा मधुररस भरा पड़ा है, (मं.१७
४ मे गिरः जुषत— मेरी स्तुतिका सेवन करो, (मं.१८)
५ मे हवं श्रुधि— मेरी प्रार्थना सुन, (मं. १९)
६ अवस्युः त्वां आ चके— सुरक्षा चाहनेवाला मैं
तुम्हारी स्तुति करता हूं। (मं. १९)

उपासकके विषयमें एकवचनी प्रयोग ये हैं। उपासना करने-
वाला वैयक्तिक भाव बोलता है यह ठीकही है, पर जिस समय
वह बंधनसे मुक्त होनेकी बात कहता है, उस समय 'नः पाशं
उन्मुमुग्धि।' (मं. २१) हम सबके पास खोल दो ऐसा
कहता है। वैदिक मुक्ति सामाजिक है यह इससे स्पष्ट हो जाता
है। कुछ पाश व्यक्तिके भी होते हैं, उसका विचार जहां वैसा
भाव आ जायेगा वहां किया जायगा। इस सूक्तमें सामुदायिक
बंधन निवृत्तिकी प्रार्थना है यह विशेष देखने योग्य है।

तीन पाश

पाशोंके विषयमें पूर्व सूक्तमें विवेचन किया है वही यहां
लागू है।

बहुवचनके प्रयोग

इसमें भी बहुवचनके प्रयोग बहुत हैं, देखिये--
मिनीमसि-हम प्रमाद करते हैं, (मं. १)
वधाय मा रीरिधः--हमारे वधके लिये सिद्धता मत
कर (२)
वि सीमहि--हम स्तुति करते हैं, (मं. ३)
आ कृमहे--प्रभुको हम कब बुलायेंगे ? (मं.५)
यूयं प्रतारिषत--हमारे आयुष्य बढावें,(मं.१२)
नः उत् मुमुग्धि--हमारे पाश खोल दो (मं.१२)
इनके प्रयोग पूर्व सूक्तके समान ही 'हम सब मानव'
बता रहे हैं। यहां एक मानवके बंधे जानेका संबंध

(२) प्रिय प्रजापति

(ऋ. १।२६) शुनःशेपः आजीगर्तिः । अग्निः देवता । त्रिष्टुप् । गायत्री ।

वसिष्ठा हि मियेध्य ऋक्वाण ऊर्जा पते । मन्ने नो अध्वरं यज
नि नो होता वरेण्यः सदा यविष्ठ मन्मभिः । अग्ने दिविक्षता यवः
आ हि ष्मा सूनवे पितापिर्यजत्यापये । सखा सख्ये वरेण्यः
आ नो बर्ही रिशादसो वरुणो मित्रो अर्यमा । सीदन्तु मनुषो यथा
पूर्वे होतरस्य नो मन्दस्व सख्यस्य च । एमा उ षु श्रुधी गिरः
यच्चिद्धि शश्वता तना देवंदेवं यजामहे । ये सुक्रतवे हविः
प्रियो नो अस्तु विश्पतिर्होता मन्द्रो वरेण्यः । प्रियाः स्वग्नयो वयम्

स्वग्नयो हि वार्यं देवासो दधिरे च नः । स्वग्नयो मनामहे
अथा न उभयेषाममृत मर्त्यानाम् । मिथः सन्तु प्रशस्तयः
विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिमं यज्ञमिदं वचः । चनो धाः सहसो यहो

अन्वयः- हे मियेध्य ऊर्जां पते ! वस्त्राणि वसिष्व हि । सः नः इमं अध्वरं यज ॥ १ ॥

हे सदा यविष्ठ अग्ने ! नः वरेण्यः होता मन्मभिः दिविस्पृता वचः नि (सीद) ॥ २ ॥

वरेण्यः पिता सूनवे, आपिः आपये, सखा सख्ये आ यजति स्म ॥ ३ ॥

रिशादसः वरुणः मित्रः अर्यमा नः बर्हिः आ सीदन्तु, यथा मनुषः ॥ ४ ॥

हे पूर्व्यः होतः ! नः अस्य सख्यस्य च मन्दस्व । इमाः गिरः उ सु शृधि ॥ ५ ॥

यत् चित् हि शश्वता तना देवंदेवं यजामहे, (तत्) हविः स्वे हृद् हूयते ॥ ६ ॥

विश्पतिः, होता, मन्द्रः, वरेण्यः, नः प्रियः अस्तु । वयं स्वग्नयः प्रियाः (भूयास्म) ॥ ७ ॥

स्वग्नयः देवासः नः वार्यं दधिरे । स्वग्नयः च मनामहे ॥ ८ ॥

हे अमृत ! अथ मर्त्यानां नः उभयेषां मिथः प्रशस्तयः सन्तु ॥ ९ ॥

हे सदसः पते अग्ने ! विश्वेभिः अग्निभिः इमं यज्ञं इदं वचः चनः धाः ॥ १० ॥

अर्थ-हे पवित्र और बलोंके स्वामी ! ... वह (तू) हमारे इस यज्ञका यजन करो ॥१॥

हे सदा तरुण अग्नि देव ! (तू) हमारे तू हमारे) मननीय दिव्य वचन (हमारे हृदय यहां) बैठो ॥२॥

श्रेष्ठ पिता अपने पुत्रके, बन्धु अपने बन्धु अपने मित्रको (वैसा यह अग्निदेव हमें) ...

शत्रुनाशक वरुण मित्र और अर्यमा हमारे ... मनुष्य बैठते हैं (अथवा जैसे मनुके वंशके लोग) ...

हे प्राचीन होता ! हमारे इस मित्रभावके (हम ... (और हमारा) यह मापन उत्तम रीतिसे पूर्ण ...

जिस तरह शाश्वत कालसे और सनातन रीतिसे ... हम यजन करते आये हैं, (वही) हवि तुम्हें दिया ...

प्रजाओंका पालक, हवनकर्ता, आनंदित ... अग्नि) हमारे प्रिय हो। हम भी उत्तम अग्निसे युक्त ... प्रिय बनें ॥७॥

उत्तम अग्निसे युक्त देवोंने हमारे लिये श्रेष्ठ ... रखा है । (इसलिये हम) उत्तम अग्निसे युक्त ... नामका) मनन करते हैं ॥८॥

हे अमर देव ! (तुम अमर हो) और ... हम दोनोंके परस्पर प्रशंसायुक्त भाषण होते रहें ...

हे बलके साथ प्रकट होनेवाले अग्निदेव ! ... यहां इस यज्ञका और इस स्तोत्रका (स्वीकार ... पर्याप्त) अन्नका प्रदान करो ॥१०॥

प्रिय प्रभुकी उपासना

सब वस्तुओंसे प्रभुही अत्यंत प्रिय है इसलिये भक्तजन उसकी इस तरह प्रार्थना करें—

हे सबसे अत्यंत पवित्र और सब प्रकारका बल देनेवाले प्रभो! तुम अपने प्रकाशरूपी वस्त्रोंको पहनकर प्रकट हो जाओ और हम जिस यज्ञका प्रारंभ कर रहे हैं उसको यथायोग्य रीतिसे संपन्न करो । (१) हे प्रभो ! तुम सदा तरुण हो, (बाल्य और वार्धक्य से अलग्न) तुम्हारे लिये नई है, तुमही हमारे श्रेष्ठ सहायक हो, इसलिये आओ, यहां विराजमान होकर हम ... (२) जैसा पिता प्रेमसे अपने पुत्रकी सहा... अपने भाईको हर प्रकारकी मदद पहुंचाता ... मित्रका सदा हित ही करता है, वैसही (तु... और मित्र हैं अतः इस भावसे हम सबकी ... जैसे मनुष्य (अपने मित्रके घरमें जाकर बै... हो) तुम मित्रभावसे आकर हमारे यहां बै... यज्ञ बनो) । (४) तुम सनातन यज्ञ

स्वाग्नयो हि वार्यं देवासो दधिरे च नः । स्वाग्नयो मनामहे
अथा न उभयेषामृत मर्त्यानाम् । मिथः सन्तु प्रशस्तयः
विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिमं सवनमा गहि । सहसो यहो अग्निभिः

अन्वयः- हे मित्रेण ऊर्जा पते ! यजमानो यजति हि । सः नः इमं अध्वरं यज ॥ १ ॥

हे सदा यविष्ठ अग्ने ! नः वरेण्यः होता मन्द्रजिह्वः दिविष्टता वचः नि (सीद) ॥ २ ॥

वरेण्यः पिता सूनवे, भागिः भागाय, सचा सख्ये आ यजति स्म ॥ ३ ॥

रिशादसः वरुणः मित्रः अर्यमा नः अद्रिः आ सदन्तु, यथा मनुषः ॥ ४ ॥

हे पूर्व्यः होतः ! नः अस्य सख्यस्य च मन्मनश्च । इमाः गिरः उ सु शृधि ॥ ५ ॥

यत् चित् हि शश्वता तना देवंदेवं यजामहे, (तत्) हविः त्वे इत् हूयते ॥ ६ ॥

विश्पतिः, होता, मन्द्रः, वरेण्यः, नः प्रियः अस्तु । वयं स्वग्नयः प्रियाः (भूयास्म) ॥ ७ ॥

स्वग्नयः देवासः नः वार्यं दधिरे । स्वग्नयः च मनामहे ॥ ८ ॥

हे अमृत ! अथ मर्त्यानां नः उभयेषां मिथः प्रशस्तयः सन्तु ॥ ९ ॥

हे सहसः यहो अग्ने ! विश्वेभिः अग्निभिः इमं यज्ञं इदं वचः चनः धाः ॥ १० ॥

अन्वय:- हे मित्रेण ऊर्जा पते ! यजमानो यजति हि । वह (तू) हमारे इस यज्ञको यथा

हे सदा तरुण अग्ने देव ! (तू) श्रेष्ठ वक्ता (और) मनोहर जिह्वा वाला (होकर) बैठ ॥ २ ॥

जैसे पिता अपने पुत्रके, बन्धु अपने भाईके लिये (वैसा यह अग्निदेव हमें)

अनुग्रहशील वरुण मित्र और अर्यमा हमें अनुग्रह करते हैं (अथवा जैसे मनुष्य करते

हे पूर्व होता ! हमारे इस मित्रत्वके (और हमारा) यह आवाहन उत्तम करिये ।

जिस तरह शाश्वत कालसे और सनातन हम यजन करते आये हैं, (वही) हवि तुझे

प्रजाओंका पालक, हवनकर्ता, आनन्द अग्नि) हमारे प्रिय हो। हम भी उत्तम अ प्रिय बने ॥ ७ ॥

उत्तम अग्निसे युक्त देवोंने हमारे लिये श्रे रखा है । (इसलिये हम) उत्तम अग्निसे युक्त हो नामका) मनन करते हैं ॥ ८ ॥

हे अमर देव ! (तुम अमर हो) और इस हम दोनोंके परस्पर प्रशंसायुक्त भाषण होते रहें ॥

हे बलके साथ प्रकट होनेवाले अग्निदेव ! आ यहां इस यज्ञका और इस स्तोत्रका (स्वीकार पर्याप्त) अन्नका प्रदान करो ॥ १० ॥

प्रिय प्रभुकी उपासना

सब वस्तुओंसे प्रभुही अत्यंत प्रिय है इसलिये भक्तजन उसकी इस तरह प्रार्थना करें—

'हे सबसे अत्यंत पवित्र और सब प्रकारका बल देनेवाले प्रभो! तुम अपने प्रकाशरूपी वस्त्रोंको पहनकर प्रकट हो जाओ और हम जिस यज्ञका प्रारंभ कर रहे हैं उसको यथायोग्य रीतिसे संपन्न करो । (१) हे प्रभो ! तुम सदा तरुण हो, (बाल्य और वार्धक्य ये अवस्थाएं तुम्हारे लिये नहीं हैं,) तुमही हमारे श्रेष्ठ सहायक हो, इसलिये आओ, यहां विराजमान होकर हमारा (२) जैसा पिता प्रेमसे अपने पुत्रकी सहायता अपने भाईको हर प्रकारकी मदद पहुंचाता है, मित्रका सदा हित ही करता है, वैसाही (तुम और मित्र हैं अतः उस भावसे हम सबकी सहाय जैसे मनुष्य (अपने मित्रके घरमें जाकर वहां प्रेमसे ही) तुम मित्रभावसे आकर हमारे यहां बैठो (और यज्ञ बनो) । (४) तुम सनातन यज्ञकर्ता हो।

७ रिशादस (रिश्-अदस्)— शत्रुका नाश करनेवाला, (मं. ४)
८ विश्पतिः (विश्-पतिः)— प्रजापालक, प्रजारक्षक,
९ मन्द्रः— आनंदित, प्रसन्नचित्त,
१० प्रियः—सबको प्रिय, (मं. ७)

११ सहसः सूनुः— बलके पुत्र
ही बल दिलानेवाला, (मं. १)

ये सुभग गुण धारण करनेवाले वीर
आदर्श पुरुष इस सूक्तमें पाठकोंके सन्मुख रखे

(४) श्रेष्ठ देवकी भक्ति

(ऋ.१।२७) आजीगर्तिः शुनःशेपः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः। १-१२ अग्निः, १३ देवाः १-१२ गायत्री,

अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः । सम्राजन्तमध्वराणाम् १
स घा नः सूनुः शवसा पृथुप्रगामा सुशेवः । मीळ्हुष्टमो नो अस्याकं बभूयात् २
स नो दूराच्चासाच्च नि मर्त्यादघायोः । पाहि सदमिद् विश्वायुः ३
इममू षु त्वमस्माकं सनिं गायत्रं नव्यांसम् । अग्ने देवेषु प्र वोचः ४
आ नो भज परमेष्वा वाजेषु मध्यमेषु । शिक्षा वस्वो अन्तमस्य ५
विभक्तासि चित्रभानो सिन्धोरूर्मा उपाक आ । सद्यो दाशुषे क्षरसि ६
यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यं जुनाः । स यन्ता शश्वतीरिषः ७
नकिरस्य सहन्त्य पर्येता कयस्य चित् । वाजो अस्ति श्रवाय्यः ८
स वाजं विश्वचर्षणिरर्वद्भिरस्तु तरुता । विप्रेभिरस्तु सनिता ९
जरावोध तद् विविड्ढि विशेविशे यज्ञियाय । स्तोमं रुद्राय दृशीकम् १०
स नो महाँ अनिमानो धूमकेतुः पुरुश्चन्द्रः । धिये वाजाय हिन्वतु ११
स रेवाँ इव विश्पतिर्दैव्यः केतुः शृणोतु नः । उक्थैरग्निर्बृहद्भानुः १२
नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्यो नमो युवभ्यो नम आशिनेभ्यः । १३
यजाम देवान् यदि शक्नवाम मा ज्यायसः शंसमा वृक्षि देवाः

अन्वयः- वारवन्तं अश्वं न अध्वराणां सम्राजन्तं अग्निं नमोभिः वन्दध्यै ॥ १ ॥

शवसा सूनुः, पृथुप्रगामा, सः घा नः सुशेवः, अस्माकं मीळ्हान् बभूयात् ॥ २ ॥

विश्वायुः स दूरात् च आसात् च अघायोः मर्त्यात् नः, सदं इत्, नि पाहि ॥ ३ ॥

हे अग्ने ! त्वं अस्माकं इमं उ सु सनिं, नव्यांसं गायत्रं देवेषु प्रवोचः ॥ ४ ॥

परमेषु वाजेषु नः आ भज । मध्यमेषु आ (भज) । अन्तमस्य वस्वः शिक्ष ॥ ५ ॥

अर्थ-बालोंवाले-अयालवाले सुंदर घोडेके समान, युक्त यज्ञकर्मको निभानेवाले, (ज्वालाओंसे) प्रदीप्त, हम नमस्कारोंसे सुपूजित करते हैं ॥१॥

बलके लियेही उत्पन्न हुए, सर्वत्र गमन करनेवाले निश्चयसे हमारे लिये सुखसे सेवा करनेयोग्य, तथा सुख देनेवाले हों ॥२॥

हे संपूर्ण आयुके प्रदाता ! वह (तुम) दूरसे मनुष्यसे हम सबकी, सदाके लिये सुरक्षा करो ॥३॥

हे अग्निदेव ! तुम हमारे इस दानकी, और छन्दके स्तोत्र की बात देवोंसे कहो ॥४॥

उच्च कोटीके बल हमें दो। मध्यम कोटीके(बल तथा पाससे मिलनेवाले धन भी हमें प्रदान करो

मानो ! सिन्धोः उपाके ऊर्मौ (इव), विभक्ता
पे सद्यः क्षरसि ॥ ६ ॥

! पृत्सु यं मर्त्यं अवाः, यं वाजेषु जुनाः, सः
पः यन्ता ॥ ७ ॥

स्व ! अस्य कयस्य चित् पर्येता नकिः, (अस्य)
य्यः अस्ति ॥ ८ ॥
र्षणिः सः अर्वद्भिः वाजं तरुता अस्तु, विप्रेभिः
स्तु ॥ ९ ॥

बोध ! विशे विशे यज्ञियाय, तत् रुद्राय दृशीकं
ादिड्ढि ॥ १० ॥

महान् अनिमानः धूमकेतुः पुरुश्चन्द्रः नः धिये
हेन्वतु ॥ ११ ॥

ैर्यः केतुः, विश्पतिः बृहद्भानुः अग्निः, रेवान् इव,
: शृणोतु ॥ १२ ॥

भ्यः नमः, अर्भकेभ्यः नमः, युवभ्यः नमः, आशि-
नमः । यदि शक्नवाम, देवान् यजाम । हे देवाः !
: आशंसं मा वृक्षि ॥ १३ ॥

हे विलक्षण तेजस्वी देव ! सिन्धुके पास तरङ्ग (की तरह, तुम) धनोंका बंटवारा करनेवाला हो; दाताको तो तुम तत्काल-ही (धन) देता है ॥६॥

हे अग्निदेव ! युद्धमें जिस मनुष्यकी तुम सुरक्षा करते हो, जिसको तुम रणोंमें जानेके लिये उत्साहित करते हो, वह शाश्वत अन्नोंका नियामक होता है ॥७॥

हे शत्रुके दमनकर्ता ! इसको घेरनेवाला कोई भी नहीं है, (क्योंकि इसकी) शक्ति प्रशंसनीय है ॥ ८ ॥

सर्व मानवोंका (हित करनेवाला) वह (देव हमें) घोडोंके साथ युद्धसे पार करनेवाला होवे, (तथा) ज्ञानियोंके साथ (धनका) प्रदानकर्ता हो जावे ॥ ९ ॥

हे प्रार्थना सुननेके लिये जाग्रत रहनेवाले देव ! प्रत्येक मनुष्यके (कल्याणके लिये चलाये इस) यज्ञमें रुद्र देवके प्रीतिके लिये सुन्दर स्तोत्र, (गाया जाता है अतः यहां तुम) प्रवेश करो ॥ १० ॥

वह बडा अपरिमित धूम्रक ध्वजवाला अत्यंत तेजस्वी देव हमें बुद्धि और बल (की वृद्धि) के लिए प्रेरित करे ॥ ११ ॥

वह प्रजापालक, दिव्य सामर्थ्यका द्रष्टा जैसा, तेजस्वी अग्नि देव, धनवानोंकी तरह, स्तोत्रोंके साथ हमारी (प्रार्थनाको) सुनें ॥ १२ ॥

बडोंके लिये नमस्कार, बालकोंके लिए प्रणाम, तरुणोंके लिये नमन, और वृद्धोंके लिए भी हम वन्दना करते हैं। जितना सामर्थ्य होगा, (उतनेसे हम) देवोंका यजन करेंगे। हे देवों (हम एक) श्रेष्ठ देवकी प्रशंसा करनेमें (हमसे) त्रुटी न हो ॥ १३ ॥

श्रेष्ठ प्रभुकी उपासना

[illegible]

प्रार्थना सुनें। (१२) बालक, तरुण, बड़े और वृद्ध जो भी पुरुष हैं (वे सब इसी प्रभुके रूप हैं,) अतः उनको नमन करते हैं। जहांतक हमारी शक्ति रहेगी तबतक उन सब देवों के लिये हम यज्ञ करते रहेंगे, इसमें हमसे त्रुटी न हो। (१३)

इस तरह पाठक उपासना करें। यह सूक्त उपासनेके लिये बडाही अच्छा है। और इसमें विश्वरूप प्रभुकी भक्ति उत्तम रीतिसे करनेकी विधि बतायी है। प्रारंभ अग्निके नामसे करके अन्तिम मंत्रमें छोटे बड़े सभी रूपोंमें प्रकट होनेवाले प्रभुकी उपासना कही है।

विश्वरूपकी उपासना

(अर्भक) बालक, (युवा) तरुण, (महान्) बड़े और (आशीन) वृद्ध इन चार अवस्थाओंमें सब प्राणी रहते हैं। प्रभु इन चार अवस्थाओंमें रहनेवाले प्राणियोंके रूपमें इस विश्वमें हैं। यहाँ अग्नि अथवा रुद्र इन रूपोंमें प्रकट हुआ है ऐसा कहा है। यह मंत्र यहां अग्नि सूक्तमें है। रुद्र सूक्तमें इसका रूप विभिन्न है, देखिये—

नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः पूर्वजाय चापरजाय च नमो मध्यमाय चापगल्भाय च नमो जघन्याय च बुध्न्याय च॥ (वा. यजु. १६।३२)

'ज्येष्ठ, कनिष्ठ, पूर्वज, अपरज, मध्यम, अपगल्भ, जघन्य, बुध्न्य इन सब रुद्र रूपोंके लिये नमन है।' यहां आठ पद हैं, परंतु तात्पर्य एकही है। जितने भी रूप दिखाई देते हैं वे सबके सब रुद्र देवताके रूप हैं। यहां अग्निके हैं। अग्नि और रुद्र एकही देवके दो नाम हैं, अग्निके उद्देश्यसे उपनिषदमें कहा है—

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव। एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च॥ (कठ उ. २।५।९)

'अग्नि जैसा भुवनमें प्रविष्ट होकर प्रत्येक रूपमें उसके आकारवाला होकर रहा है, वैसा एकही सर्व भूतोंका अन्तरात्मा है जो प्रत्येक रूपमें प्रतिरूप हुआ है और बाहर भी है।' अग्नि सब पदार्थोंमें है, और सबके रूपोंका धारण करके रहता है, वैसा ही सर्वभूतान्तरात्मा है। रुद्र भी वैसाही है। यही बात इस तेरहवें मंत्रमें कही है। छोटे, बड़े, जवान, बालक और वृद्धमें संपूर्ण जगत् समाया है। यह सब एकही देवताका रूप है। जिसके साथ मनुष्यका संबंध आता है वह बालक, तरुण, मध्यम, वृद्ध, जीर्ण, पूर्वज, वंशज आदिमेंसे कोई एक अवश्य होता है। इसलिये प्रत्येक प्रभुका रूप है और वह संमानके योग्य है। अतः किसीके साथ व्यवहार प्रभुके साथ व्यवहार करनेके समान पवित्र होना चाहिये। ऐसा व्यवहार करनेही जीवनसाफल्य है। जो करेंगे वेही सफल हो सकते हैं।

तेरहवें मंत्रमें उपासक कहता है कि—'जबतक शक्ति है तबतक हम इस प्रभुके विश्वरूपकी सेवामें रूपमें सन्नद्धचित्त रहें इस श्रेष्ठ प्रभुकी उपासनामें हमसे किसीतरह कोई त्रुटी न हो।' अर्थात् इसकी सेवा होती रहे।

आदर्श पुरुष

इस सूक्तमें जो आदर्श पुरुष वर्णन किया है—

१ **अध्वराणां सम्राट्-** अकुटिल कर्मोंसे रहित कर्मोंसे प्रकाशमान् (मं. १)

२ **शवसा सूनुः-** बलसे उत्पन्न होनेवाला, प्रकट होनेवाला, बलके प्रचण्ड कार्य करनेके लिये

३ **पृथुपाजामा-** विशेष गतिशील, सर्वत्र गमन करनेवाला,

४ **सुशेवः-** सेवा करनेयोग्य,

५ **मीढ्वान्-** सुखदायी, इष्ट सुख देनेवाला,

६ **विश्वायुः-** पूर्णायु, पूर्ण आयुतक कार्य

७ **अघायोः पाहि-** पापीसे बचानेवाला,

८ **परमेषु मध्यमेषु वाजेषु भजकः-** मध्यम ऐसे सब बल बढानेवाला,

९ **अन्तमस्य वस्वः शिक्षकः-** पासेका (मं. ५)

१० **पृत्सु अवाः-** युद्धोंमें सुरक्षा करनेवाला,

११ **इषः यन्ता-** धनों और अन्नोंका नियन्

१२ **अस्य पर्येता नकिः-** इसको घेरनेवा है,

१३ **अवाच्य वाजः-** यशस्वी बलसे युक्त,

१४ **विश्वचर्षणिः-** सब मानवोंका हितकरी,

१५ **तरुता-** संकटोंसे पार करनेवाला,

१६ **विप्रेभिः सानिता-** ज्ञानियोंके सा (मं. ९)

तराबोध– प्रार्थना सुननेके लिये आगनेवाला
विशेविशे यज्ञियाय तद्— प्रत्येक पूजनीय मनु-
ये वह सुख देनेवाला, (मं. १०)
महान् अनिमानः— अत्यंत सप्रतिम,
पुरुश्चन्द्रः— तेजस्वी,
धिये वाजाय— बुद्धि और बलके लिये यत्नशील,
(मं. ११)
रेवान्— धनवान्,
विदथपतिः— प्रजापालक,
बृहद्भानुः– अत्यंत तेजस्वी, (मं. १२)

इस आदर्श पुरुषका सामर्थ्य बता रहे हैं। इनसे वाले गुणोंका मनन करके पाठक इन गुणोंको अपनेमें त्न करें।

बहुवचनके प्रयोग

तमें निम्नलिखित प्रयोग बहुवचनमें है—

१ नः सुशेवः– हमारे लिये सेवा करने योग्य,
२ अस्माकं मीढ्वान्— हमें सुख देनेवाला, (मं. २)
३ नः पाहि— हमें सुरक्षित रख,
४ अस्माकं नव्यांसं— हमारा नया स्तोत्र, (मं. ४)
५ नः भज परमेषु— हमें परमश्रेष्ठ बलोंमें रख,
(मं. ५)
६ नः वाजाय हिन्वतु— हमारे बलके लिये प्रेरित करे (मं. ११)
७ नः शृणोतु— हमारा भाषण सुने, (मं. १२)
८ देवान् यजाम— हम देवोंकी पूजा करें,
९ यदि शक्नवाम— यदि हममें शक्ति हो,

इतने प्रयोग इस सूक्तमें बहुवचनमें हैं। इससे बहुत मानवोंके हितका संबंध इस सूक्तके साथ है, किसी एक व्यक्तिके हितका नहीं, यह स्पष्ट है। एकवचनके प्रयोग इस सूक्तमें नहीं हैं। अर्थात् किसी एक मनुष्यके बंधनकी निवृत्ति करनेका यहां उल्लेख नहीं है, परंतु मानवसमाजके सुखका विचार यहां है।

(५) यज्ञकी तैयारी

(१२८) जाजीगर्तिः शुनःशेपः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः। १-४ इन्द्रः। ५-६ उलूखलं, ७-८ उलूखलमुसले, ९ प्रजापतिर्हरिश्चन्द्रः, (अधिषवण-) वर्म सोमो वा। १-६ अनुष्टुप्, ७-९ गायत्री।

यत्र ग्रावा पृथुबुध्न ऊर्ध्वो भवति सोतवे । उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः १
यत्र द्वाविव जघनाधिषवण्या कृता । उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः २
यत्र नार्यपच्यवमुपच्यवं च शिक्षते । उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ३
यत्र मन्थां विबध्नते रश्मीन् यमितवा इव । उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ४
धन्विकादि त्वं गृहेगृह उलूखलक युज्यसे । इह द्युमत्तमं वद जयतामिव दुन्दुभिः ५
उत स्म ते वनस्पते वातो वि वात्यग्रमित् । अथो इन्द्राय पातवे सुनु सोममुलूखल ६
आयजी वाजसातमा ता हुवेम बृहद्दिवे । ता नो मृळात ईदृशे स्वर्णो नभन्तामन्यकेषां ज्यका अधि धन्वसु ७
यत्रा वदन्नवीरुधः क्रन्दाश्वत्थैभिः सोदभिः । इन्द्राय मधुमत्सुतं देवा वर्म कृणोतन ८
अधिक्षदं व्यो३र्मरं सोमं पवित्र आ सृज । नि धेहि गोरधि त्वचि ९

पदार्थः– हे इन्द्र ! यत्र सोतवे पृथुबुधः ग्रावा ऊर्ध्वः भवति (यत्र) उलूखलसुतानां अवेत् इत् जल्गुलः । १ ।

भावार्थ– हे इन्द्र ! जहां सोमरस सुखपूर्वक निकालने के लिये बड़े मुख वाला पत्थर ऊपर खड़ा किया जाता है, वहां [illegible] ऐसे उलूखल मूसल के शब्द तुम अवश्य सुनते हो । १ ।

इन्द्र ! यत्र अधिक्षदा द्वौ जघना इव कृता । २ ।

हे इन्द्र ! जहां सोम कूटनेके दो पत्थर दो जांघोंके समान स्थित किये हुये हैं । २ ।

यत्र नारी अपच्यवं उपचक्राम ते शिवे ॥ ३ ॥

यत्र मन्थां, विबध्नते रश्मीन् यमितवा इव, विमुञ्चते ॥ ४ ॥

हे उलूखलक ! यत्र त्रिधातु ते मुशलेमुशले मुसलस्य, इव, जगतां इव दुन्दुभिः, शुमत्तमं नदं ॥ ५ ॥

हे वनस्पते ! उत ते अग्रं इत् पतः नि सानि इव । हे उलूखल ! अथो इन्द्राय पातवे सोमं सुनु ॥ ६ ॥

आ यजी, वाजसातमा, ता हि, अश्वांसि वनुषा हरी इव, उषा विजभृतः ॥ ७ ॥

अध वनस्पती ता अश्वेभिः सोतृभिः सुतौ इन्द्राय मधुमत् नः सुतम् ॥ ८ ॥

चम्वोः शिष्टं उत् भर । सोमं पवित्रे आ सृज । गोः त्वचि अधि नि धेहि ॥ ९ ॥

यहां (यज्ञशाला की) पत्नी [illegible] करती है ॥ ३ ॥

यहां मन्थन करते, जगत् के पदार्थोंके तत्व [illegible] जो [illegible] निकलते सोमरसको पात्र [illegible]

हे ओखल ! यहांपर तुम्हारे मुसलके [illegible] (तत्वोंके) [illegible] जैसी [illegible] ध्वनि [illegible] ॥ ५ ॥

हे वनस्पति ! तुम्हारे सामने यह [illegible] भाग इन्द्रके पानके लिये सोमरस [illegible]

यज्ञके साधन, अन्न देनेवाले, वे देवों [illegible] सामर्थ्यसे इन्द्रके दोनों घोड़ोंकी तरह, उषाको [illegible] हैं ॥ ७ ॥

अन्न वृद्धिके उपाय (वे दोनों) वनस्पति [illegible] यज्ञके साथ देवनीय (बने तुम दोनों ओखल [illegible] इन्द्रके लिये मीठा सोमरस हमारे (यज्ञमें) [illegible]

दोनों पात्रोंसे अवशिष्ट रस उठालो । [illegible] ऊपर रखो, सोमको पवित्रपर रखो ॥ ९ ॥

यज्ञकी तैयारी करना

इस कार्यके लिये (**नारी अपच्यवं उपचक्राम** । मं. ३) यजमान पत्नी अपने हाथोंको आगेपीछे [illegible] है जिससे (**मन्थां विबध्नते** । मं. ४) मन्थनदण्ड [illegible] बांधा जाता है और इस रस्सीको आगेपीछे [illegible] मथा जाता है और मक्खन ऊपर आता है। [illegible] उत्तम सुमधुर घी बनता है । यह यजमानपत्नी [illegible] कलके निकाले दूधसे आज घी बनता है, वह [illegible] और स्वादु होता है । यह यज्ञमें बर्ता जाता है [illegible]

सोम कूटनेके लिये (**सोतवे पृथुबुध्नः** । मं. १)

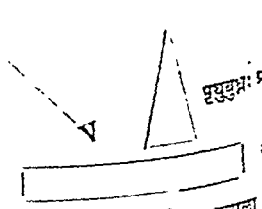

सोमरस निकालनेके लिये बड़े मूलवाला [illegible] होता है । ऐसे पत्थरसे सोम कूटा जाता है [illegible] **अधिपवण्या कृता** । मं. २) दो जांघोंके

होते हैं। इनपर सोमको रखते हैं और कूटते हैं। इनेका शब्दभी एक भांतीका शब्द होता है. इसका नेके शब्दसे वेदमें किया गया है। 'ओखल और योग तो घरघरमें किया जाता है।' (५) पर ाम कूटनेके लिये तथा चावल स्वच्छ करनेके लिये है। सोम कूटनेके लिये नीचे पत्थरका अथवा लक- अथवा ओखल रखते हैं उसपर कूटा करते हैं। च्छीतरह कूटा जानेपर उससे हाथोंसे और अंगुलि- कर रस निकालते हैं, और उस रसको (**पवित्रे सृज** । मं ९) छाननीपर पर रखते और छानते । रसको (**चम्वोः आ भर** । मं. ९) कलशोंमें है। सोमरसपान करनेपर भी जो (**उच्छिष्टं धर** । मं. ९) अवशिष्ट रहता है उसको भी कल- रते हैं।

। यज्ञकी तैयारीका वर्णन है, जो पाठक विचारपूर्वक ा है।

गोचर्म

कृतके नवम मंत्रमें 'गोचर्म' पर सोम रखो ऐसा बहुत विद्वानोंने इसका अर्थ गौके चमडेपर ऐसा अर्थ पर गौके चर्मपर यह सब रहना कठीण है ऐसा ना है। गौका वध करके उसका चर्म प्राप्त करना । प्रतीत होता है क्योंकि गौके नामोंमें 'अ-घ्न्या'= ा), 'अ-दीना'= । दुबले करनेके लिये अयोग्य, किया नहीं जाता), 'अ-दिति'= (जिसके टुकडे नहीं जाता) ये नाम हैं। ये नाम गौकि अवध्यता सिद्ध करते हैं।

मुग्धा देवा उत शुना यजन्तोत गोरैः पुरुधा यजन्त

(अथर्व. ७।५।५)

'मूढ याजकही कुत्तेके मांससे और गौके टुकडे करके उनसे हवन करते हैं।' ऐसा कहनेसे गौके वधका निषेधही वेदने किया है। यहां कई कहेंगे कि मृतगौका चर्म लिया जाय तो क्या हर्ज है। पर एक तो मृत पशुका चर्म अपवित्र है वह सोम जैसे पवित्र वस्तुके यजनके स्थानमें लेना अयोग्यही है, यज्ञमें भी वह नहीं लाया जायगा, फिर सोमके रखनेके लिये उसका उपयोग तो कठिनही प्रतीत होता है और जीवित गौका वध तो वेदके मंत्रोंने निषिद्धही माना है फिर इसका विचार कैसा किया जाय यह एक विचारणीय समस्या है।

'गोचर्म' का अर्थ 'कोशमें गौ गायोंके रहनेके लिये जितना स्थान आवश्यक है उतना स्थान' ऐसा दिया है। ऐसे विस्तृत स्थानपर सोमको रखना, कूटना, छानना और अनेक अधिकारियोंका रहना हो सकता है। इसलिये ऐसे विशेष बडे गौ स्थानपर सोमरस निष्पन्नके की व्यवस्था की जाती थी ऐसा मानना योग्य है। देखो—

दशाहस्तेन पवस्व दशवंशात् समंततः।
पञ्च सम्यधिधान् दयान् एतद् गोचर्म गोत्सरत॥

(ऋग्वेद ९।९७।४०)

इस परिभाषाके अनुसार गौके [illegible] है। इससे करना चाहिये कि जिस में [illegible] सोम रखा जाता है [illegible] गौका आकार है [illegible] है, [illegible] है।

(६) गौवें और घोडे

(ऋ. १।१२९) आयमगन्त्सुमतीवाजिनीवसू न दुर्मतौ वेमसाम्नि वेदताम्। इदं [illegible]

अधिरिह सदत सोमपा उतादन्तु प्र सर्पिरः।
आ दृ ण इन्द्र वंसव गोष्वश्वेषु सुरभिषु सचेमहि सुषारथिषु
तिष्ठन् वाजानां पते शतक्रतवत ऊतिभिः।
आ दृ ण इन्द्र वेतव गोष्वश्वेषु सुरभिषु सचेमहि सुषारथिषु
वि ष्यन्ध्या मिनद्दुरः सरन्नाजुष्टपत्नीके।
आ दृ ण इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु सुरभिषु सचेमहि सुषारथिषु
सक्षन्तु ता अभिष्टये वेषन्तु सुर एतवे
आ दृ ण इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु सुरभिषु सचेमहि सुषारथिषु

समिन्द्र गर्दभं मृण नुवन्तं पापयामुया ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ५
पतति कुण्डृणाच्या दूरं वातो वनादधि ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ६
सर्वं परिक्रोशं जहि जम्भया कृकदाश्वम् ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ७

अन्वयः– हे सत्य सोमपाः ! यत् चित् हि, अनाशस्ता इव स्मसि । हे तुवीमघ. इन्द्र ! सहस्रेषु शुभ्रिषु गोषु अश्वेषु नः आ शंसय ॥ १ ॥

हे शचीवः शिप्रिन् वाजानां पते । तव दंसना (सर्वदा वर्तते०) ॥ २ ॥

मिथूदृशा निष्वापय, अमुष्यमाणे सस्ताम्० ॥ ३ ॥

हे शूर ! स्या अरातयः ससन्तु । रातयः बोधन्तु० ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! अमुया पापया नुवन्तं गर्दभं सं मृण० ॥ ५ ॥

वातः कुण्डृणाच्या वनात् अधि दूरं पतति० ॥ ६ ॥

सर्वं परिक्रोशं जहि । कृकदाश्वं जम्भय० ॥ ७ ॥

अर्थ– हे सत्य स्वरूप सोमपान करनेवाले इन्द्र हो, हम बहुत प्रशंसित जैसे नहीं है (यह सत्य है) हे बहुधनवाले इन्द्र ! उत्तम सहस्रों गायें और (ऐसा) हमें आशीर्वाद दो ॥ १ ॥

हे सामर्थ्यवान्, शिरस्त्राणधारी और वज्र इन्द्र ! तेरे कर्म (अद्भुत हैं)० ॥ २ ॥

(दोनों दुर्गतियाँ) परस्परकी ओर ताकती वे कभी न जागतीं हुई बेहोश पड़ी रहें (उपद्रव न हो)०॥ ३ ॥

हे शूर वीर ! हमारे शत्रु सोये रहें और रहें० ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! इस पाप विचारमयी वाणीसे बोलनेवाले रूप) गधेका वध करो० ॥ ५ ॥

विध्वंस करनेवाला झंझावात दूरके वनमें चला

आक्रोश करनेवाले सब शत्रुओंका नाश करो । कोंका संहार करो । हे बहु धनवाले इन्द्र ! सर्वोत्तम और घोड़े हमें मिलें ऐसा हमें आशीर्वाद दो ॥ ७ ॥

गौवें और घोड़े हमें मिलें

हमें गायें और घोड़े मिलें यह इच्छा इस सूक्तमें मुख्य है । इस सूक्तके सभी मंत्रोंमें 'नः आ शंसय' हमें आशीर्वाद मिले, यह बहुवचनमें प्रयोग है, इसलिये केवल किसी एक की भलाईकी इच्छा इसमें नहीं है अपितु सबकी भलाईकी इच्छा इससे स्पष्ट है ।

आदर्श वीर पुरुष

इस सूक्तमें जो आदर्श पुरुष बताया है वह वीर निम्नलिखित गुणोंसे युक्त है–

१ सत्यः– सत्यका पालन करनेवाला, जिसका मय है,

२ तुवी-मघः– बहुत धनोंसे युक्त, (१)

३ शचीवः– सामर्थ्यवान्,

४ शिप्री– शिरस्त्राण और कवच धारण करनेवा

५ वाजानां पतिः– बलों, अन्नों और धनोंका स्व

६ शूरः– शूरवीर, (४)

ये गुण जिसमें विराजते हों ऐसे वीरकी कल्प कर सकते हैं, यह वीर इस सूक्तका आदर्श पुरुष है

(७) उत्तम रथ

१।३०) अजीगर्तिः शुनःशेपः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः । १-१६ इन्द्रः, १७-१९ अश्विनौ, २०-२२ उषाः । १-१०, १२-१५, १७-२२ गायत्री, ११ पादनिचृद्गायत्री, १६ त्रिष्टुप् ।

आ व इन्द्रं क्रिविं यथा वाजयन्तः शतक्रतुम् ।	मंहिष्ठं सिञ्च इन्दुभिः	१
शतं वा यः शुचीनां सहस्रं वा समाशिराम् ।	पदु निम्नं न रीयते	२
सं यन्मदाय शुष्मिण एना ह्यस्योदरे ।	समुद्रो न व्यचो दधे	३
अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम् ।	वचस्तश्चिन्न ओहसे	४
स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते ।	विभूतिरस्तु सूनृता	५
ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन् वाजे शतक्रतो ।	समन्येषु ब्रवावहै	६
योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे ।	सखाय इन्द्रमूतये	७
आ घा गमद्यदि श्रवत् सहस्रिणीभिरूतिभिः ।	वाजेभिरुप नो हवम्	८
अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम् ।	यं ते पूर्वे पिता हुवे	९
तं त्वा वयं विश्ववारा ऽऽशास्महे पुरुहूत ।	सखे वसो जरितृभ्यः	१०
अस्माकं शिप्रिणीनां सोमपाः सोमपाव्नाम् ।	सखे वज्रिन्त्सखीनाम्	११
तथा तदस्तु सोमपाः सखे वज्रिन् तथा कृणु ।	यथा त उश्मसीष्टये	१२
रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः ।	क्षुमन्तो याभिर्मदेम	१३
आ घ त्वावान्त्मनाप्तः स्तोतृभ्यो धृष्णवियानः ।	ऋणोरक्षं न चक्र्योः	१४
आ यद् दुवः शतक्रतवा कामं जरितॄणाम् ।	ऋणोरक्षं न शचीभिः	१५
शश्वदिन्द्रः पोप्रुथद्भिर्जिगाय नानदद्भिः शाश्वसद्भिर्धनानि ।		
स नो हिरण्यरथं दंसनावान्त्स नः सनिता सनये स नोऽदात्		१६
आश्विनावश्वावत्येषा यातं शवीरया ।	गोमद् दस्रा हिरण्यवत्	१७
समानयोजनो हि वां रथो दस्रावमर्त्यः ।	समुद्रे अश्विनेयते	१८
स्यूमन्यस्य मूर्धनि चक्रं रथस्य येमथुः ।	परि द्यामन्यदीयते	१९
कस्त उषः कधप्रिये भुजे मर्तो अमर्त्ये ।	कं नक्षसे विभावरि	२०
वयं हि ते अमन्मह्यान्तादा पराकात् ।	अदवे न चित्रे अरुषि	२१
त्वं ह्येभिरा गहि वाजेभिर्दुहितर्दिवः ।	अस्मे रयिं नि धारय	२२

यः- राजयन्तः (वयं) वः शतक्रतुं मंहिष्ठं इन्द्रं, दिं, आ सिञ्चे ॥ १ ॥

ीनां शतं वा, समाशिरां सहस्रं वा, निम्नं न, आ दिवे ॥ २ ॥

अर्थ— सामर्थ्यकी इच्छा करनेवाले (हम) तुम्हारे (कल्याणके) लिये सैकड़ों पराक्रम करनेवाले महान् इन्द्रको, जैसे दौड़को (पानीसे भरते हैं वैसे सोमरससे) भर देते हैं ॥ १ ॥

जो शुद्ध सोमरसोंके सैकड़ों, तथा दुग्धमिश्रित रसोंके सहस्रों प्रदाताओंके पास, जल निम्न स्थलके पास जाता है (उस तरह) जाता है ॥ २ ॥

: शश्वत् पोमुषद्भिः नानदद्भिः शाश्वसद्भिः धनानि । दंसनावान् सः सनिता नः सनये हिरण्ययं । १६ ॥

श्विनौ ! सश्चत्या शवीरया इषा सा यातम् । हे गोमत् हिरण्यवत् (अस्मत् गृहं अस्तु) ॥ १७ ॥

नौ ! वां रथः समानयोजनः अमर्त्यः हि समुद्रे । १८ ॥

चक्रं सूर्धनि चक्रं नि येमथुः, अन्यत् परि धाम्॥१९॥

धमिये अमर्त्ये विभावरि उषः ! भुजे मर्तः कः ? कं ॥ २० ॥

इवे चित्रे अरुषि ! मा अन्तात् मा पराकात् चयं ते महि ॥ २१ ॥

दिवः दुहितः ! सौभिः वाजेभिः सं मा गहि, अस्मे धारय ॥ २२ ॥

इन्द्र हमेशा फरफराते, हिनहिनाते तथा जोरसे श्वास लेते हुए (घोडोंके द्वारा) धनोंको जीतता है । कर्मकुशल उस दाता (इन्द्र) ने हमारे उपयोगके लिये सोनेका रथ दिया है ॥ १६॥

हे अश्वि देवो ! अनेक घोडोंसे युक्त शक्ति देनेवाले अन्नके साथ आओ । हे शत्रुनाशको ! हमारे घरमें गायें और सुवर्ण होवे ॥ १७ ॥

हे शत्रुनाशको ! तुम दोनोंका एक साथ जोतनेवाला विनाश-रहित रथ है, जो समुद्रमें भी जाता है ॥ १८ ॥

(तुमने अपने रथका) पर्वतके शिखरके मूलमें एक चक्र रखा है और दूसरा द्युलोकमें रखा है ॥ १९ ॥

हे स्तुतिप्रिय अमर शोभावाली उषा देवी ! तुम्हें भोजन देनेवाला मानव कौन है ? किसे तुम प्राप्त होना चाहती है ॥ २० ॥

हे अश्वयुक्त विचित्र प्रकाशवाली उषा देवी ! दूरसे या पास से हम तुम्हें नहीं जान सकते ॥ २१ ॥

हे द्युलोककी पुत्री ! उन बलोंके साथ तुम आओ, और हमें धन प्रदान करो ॥ २२ ॥

अश्विदेवोंका रथ

सूक्तके मंत्र १७-१९ तकके तीन मंत्रोंमें अश्विदेवोंके वर्णन है । यह रथ दोनों अश्विनीकुमारोंके लिये न-योजनः) एकही समय जोडा जाता है । अर्थात् होते ही दोनों अश्विदेव उसमें इकट्ठे ही बैठते हैं । यह मुद्रे ईयते) समुद्रमें भी जाता है । भूमिपर तो है और यह (अमर्त्यः) अमर होनेसे आकाशमें भी ता है, अर्थात् जल, स्थल और आकाशमें इनका रथ । एकही वाहन विमान जैसा आकाशमें जाय, रथ पर भी चले और नौकाके समान समुद्रमें भी जाय, देव उत्तम कारीगरीसे बनाया रथ होगा ।

एका एक चक्र (अन्यत् परि धां) आकाशमें रखा है और दूसरा (अन्यस्य मूर्धनि) पर्वत घूमता है । यहां मूर्धा पदका अर्थ मूल या जड ; जाय तो यह वर्णन उत्तरीय ध्रुवके पासका वर्णन अश्विदेवोंका यह त्रिचक्र रथ है ।

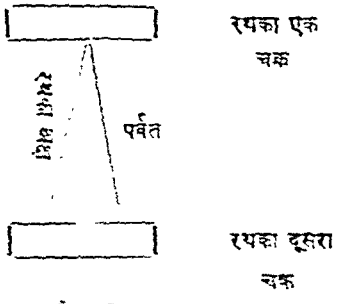

ऐसा रथ घूम रहा है । ऐसी कल्पना की जाय तो यह कल्पना उत्तरीय ध्रुवके पास ही दौड सकती है । यहां इस भरतभूमिमें ग्रहतारा और नक्षत्र पूर्वसे उदय होकर आकाश मध्यतक ऊपर चढते हैं और पश्चात् पश्चिममें अस्त होते हैं । उत्तरीय ध्रुवमें ये सब ग्रहतारा और नक्षत्र प्रदक्षिण गतिसे पर्वतके इर्दगिर्द घूमनेके समान चक्र गतिसे घूमते हैं अर्थात् देखनेवालेको प्रदक्षिण करते हैं । अतः यहां रथचक्रकी उक्त गति और पर्वतकी उक्त कल्पना सार्थ हो सकती है ।

यहां अन्यत्र एकही है वह ' मूर्धा ' पदकी है । मूर्धाका अर्थ ' मूल, जड ' ऐसा करनेपर ही उक्त अन्वयी सिद्धि

ती है। पर मूर्धाका अर्थ मस्तक या शिखर है। यह अर्थ नेपर पर्वत शिखरपर एक चक्र और द्युलोकमें दूसरा चक्र मता है ऐसा अर्थ होगा (ऐसा अर्थ लेनेपर भी यह चक्र-त् भ्रमण उत्तरीय ध्रुवके स्थानपरही दीखनेवाला होगा। किसी न्य स्थानपर द्युलोक सिरपर चक्रवत् भ्रमण करनेवाला दीखता हीं है, उत्तरीय ध्रुवपरही यह संभवनीय है।

आदर्श पुरुष

इस सूक्तने निम्नलिखित आदर्श गुणोंसे युक्त पुरुष पाठकोंके मने रखा है—

१ शतक्रतुः— सैकडों पराक्रम करनेवाला,
२ मंहिष्ठः— महान्, प्रभावी, (मं. १)
३ मघवा— सामर्थ्यवान, (मं. ३)
४ सहस्रार्णा पतिः— धनोंका स्वामी, सिद्धियोंका स्वामी (मं. ५)
५ सहस्रिणीभिः ऊतिभिः वाजेभिः स मत्— सहस्रों प्रकारके संरक्षक बलोंके साथ हमारे आता है, (मं. ८)
६ नरः— नेता, (मं. ९)
७ विश्वचारः— विश्वमें श्रेष्ठ, (मं. १०)
८ धृष्णुः— शत्रुपर विजय पानेवाला, (मं. ११)

शेष विशेषण पहिले कईबार आगये हैं। इन गुणधर्मोंसे युक्त वीर आदर्श करके इस सूक्तने सामने रखा है।

इस सूक्तके अन्य उपदेश स्पष्ट हैं इसलिये उनकी चर्चा करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

नवम मंत्रमें कहा है कि 'मेरे पिता तुम्हें बुला अतः मैं भी तुम्हें बुला रहा हूं।' यदि यह अर्थ ठीक तो इस सूक्तकी रचनाका संबंध शुनःशेपके पासही है।

(नवमं मण्डलं)

(८) सोमरस

(ऋ. २१) आर्ष्टिषेणिः शुनःशेपः, स कृतिमो वैश्वामित्रो देवरातः। पवमानः सोमः। गायत्री।

अभि द्रोणान्यासदम्	१
पवमानो अदाभ्यः	२
हरिर्वाजाय मृज्यते	३
पवमानः सिषासति	४
आविष्कृणोति वग्वनुम्	५
दधद्रत्नानि दाशुषे	६
पवमानः कनिक्रदत्	७
पवमानः स्वध्वरः	८
हरिः पवित्रे अर्षति	९
धारया पवते सुतः	१०

अर्थ— यह अमर (सोम) देव कलशोंमें बैठनेके पवित्रेमें छानता, आता है ॥ १ ॥

यह (सोम) देव अद्रिषिणि (सिलोंका) आश्रय मेरे पवित्र, न दबना दृढ आते बनकर, कुटिल (छानने करनेके साधन) में जाता है ॥ २ ॥

ः देवः पवमानः विपन्युभिः ऋतायुभिः हरिः वाजाय
ते ॥ ३ ॥

ः पवमानः शूरः विश्वानि वार्या सत्वभिः यन् इव
सति ॥ ४ ॥

ः पवमानः देवः रथर्यति, दशस्यति, वन्वनुं षाविं-
ति ॥ ५ ॥

ाभिः अभिष्टुतः एषः देवः दाशुषे रत्नानि दधत् अपः वि
ते ॥ ६ ॥

ारया पवमानः एषः कनिक्रदत्, रजांसि तिरः दिवं वि
ति ॥ ७ ॥

ः पवमानः स्वध्वरः, अस्तृतः, रजांसि तिरः, दिवं वि
असरत् ॥ ८ ॥

एषः हरिः देवः प्रत्नेन जन्मना देवेभ्यः सुतः पवित्रे
ते ॥ ९ ॥

ः एषः कपुरुधतः, जज्ञानः, एषः जनयन् सुतः धारया
ते ॥ १० ॥

यह (सोम) देव छाना जानेके बाद ज्ञानी और यज्ञके लिये जिनकी आयु लगी है ऐसे लोगोंके साथ घोडेके समान युद्ध करनेके लिये सिद्ध किया जाता है ॥ ३ ॥

यह छाना जानेवाला शूर (सोमरस) सब धनोंको, अपने सामर्थ्योंके साथ आगे बढता हुआ, बांटनेकी इच्छा करता है ॥ ४ ॥

यह छाना गया सोमदेव रथकी तरह आगे बढता है, इष्ट वस्तुको देता है और आशीर्वाद देता है ॥ ५ ॥

ब्राह्मणोंद्वारा प्रशंसित यह सोम देव दाताको अनेक रत्न देता हुआ जलमें गोते लगाता है ॥ ६ ॥

धारासे छाना जानेवाला यह (सोम) शब्द करता हुआ, अन्तरिक्षके स्थानोंको लांघकर द्युलोकमें दौडता है ॥ ७ ॥

यह छाना हुआ (सोमरस) उत्तम अकुटिल यज्ञ करता हुआ, पराभूत न होकर, अन्तरिक्षके लोकोंको लांघकर, द्युलोकपर चढता है ॥ ८ ॥

यह हरे वर्णका दिव्य (सोम) पुरातन विधिसे देवोंके लिये निचोडा जाकर छाननीके ऊपर चढता है ॥ ९ ॥

यह वह अनेक कर्मोंको करनेवाला, ज्ञान बढानेवाला, अन्न देनेवाला, सोमरस धारासे छाना जाता है ॥ १० ॥

सोमरस

यह सूक्त सोमरसके प्रकरणोंके साथ पढा जाना योग्य है। सोमरस (द्रोणानि) पात्रोंमें भरा जाता है (मं. १), (विप्रा कृतः) अंगुलियोंसे निचोडा जाता है (मं. २), (हरिः) यह हरे रंगका सोम है, वह घोडेके समान बारबार (हन्यते) घोया जाता है (मं. ३), यह (पवमानः) छाना जाता है, शुद्ध किया जाता है (मं. ४), यह (विपश्चित) जलमें बारबार शुद्ध किया जाता है (मं. ६), धारासे नीचे छाननीसे उतरता है (मं. ७), यह छाना जाने के लिये (पवित्रे अर्षति) छाननीपर चढता है (मं. ९), इस तरह सोमरस तैयार करनेकी रीति इस सूक्तके वर्णनमें मिलती है। यह सूक्त पुरुषोंका उत्साह बढाता है, इसलिये निम्नांकित विशेषण उसके लिये सार्थ हो सकते हैं।

वीर सोम

सोमरस वीरत्वको जागृत करता है, सोम पीनेके पश्चात् मनुष्य हुंकार करता है और शौर्यके कार्य वीर लोग करते हैं देखिये-

१ अदाभ्यः-न दब जानेवाला वीर (मं. २)

२ दुरांसि अति धावति- कुटिल शत्रुओंको परास्त करके आगे बढता है, (मं. २)

३ विपन्युभिः ऋतायुभिः वाजाय हन्यते-विशेष पराक्रमके कर्म करनेवाले सत्यके लिये ही जिनकी आयु लगती है, ऐसे वीर बल बढानेके लिये इसे शुद्ध करते हैं। (मं. ३)

४ शूरः वार्या सत्वभिः यन्- यह शूर उत्तम धनोंको अपने बलोंसे प्राप्त करता है। (४)

५ रथर्यति-रथसे हमला करता है, (५)

६ दाशुषे रत्नानि दधत्-दाताको रत्न देता है, (६)

७ स्वध्वरः-उत्तम कुटिलतारहित कर्म करता है (७)

८ अस्तृतः- कभी पराभूत नहीं होता, (८)

९ पुरुधतः-अनेक कर्मोंको करता है, (१०)

१० जज्ञानः- ज्ञानी है।

इस तरह इसके वीर होनेका, वीरत्व पुरुषोंमें उत्पन्न करनेका वर्णन इस सूक्तमें है। पाठक इसका मनन करें।

(९)

शुनःशेप ऋषिके अथर्ववेदमें आये मंत्र

(अथर्व. ६।२५।१-३) गण्डमाला विनाशन

पञ्च च याः पञ्चाशच्च संयन्ति मन्या अभि । इतस्ताः सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव ॥१॥
सप्त च याः सप्ततिश्च संयन्ति ग्रैव्या अभि । इतस्ताः सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव ॥२॥
नव च या नवतिश्च संयन्ति स्कन्ध्या अधि । इतस्ताः सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव ॥३॥

अर्थ— जो पांच और पचास पीडाएं (मन्या अभि संयन्ति) गलेके चारों ओर मिलकर होती हैं० ॥ १ ॥ जो सत्तर पीडाएं (ग्रैव्या अभि संयन्ति) कण्ठके भागमें मिलकर होती हैं ॥ २ ॥ जो नौ और नब्बे पीडाएं स्कंधदेशमें [illegible] होती हैं, (ताः) वह सब (नश्यन्तु) नष्ट हों, दूर हों, (अपचितां वाका इव) अपरिपक्व मनुष्योंके भाषण [illegible] हैं, अथवा कृमियोंके शब्द जैसे क्षणभरमें विनष्ट होते हैं अथवा गण्डमाला की बाधा जैसी दूर होती है ॥ ३ ॥

'अपचित' का अर्थ 'अपरिपक्व, अनाडी, कृमि जो शरीरमें काटनेसे सूजन होती है और गण्डमाला' है। यहां गला, गर्दन कण्ठभाग और स्कंधदेशमें होनेवाले फोडे फुन्सी आदिके दूर करनेकी प्रार्थना है। विशेष कर गण्डमालाके दूर करनेका विषय मुख्य है। गण्डमाला दूर करनेके लिये इसका पाठ किया हैं। ऋषि इस सूक्तमें रोग दूर करनेकी प्रार्थना करता है शुनःशेपके बन्धन ढीले करनेकी बात यहां नहीं है।

(१०)

(अथर्व. ७।८३।१-४)

अप्सु ते राजन् वरुण गृहो हिरण्ययो मितः । ततो धृतव्रतो राजा सर्वा धामानि मुञ्चतु ॥१॥
धान्नोधान्नो राजान्नितो वरुण मुञ्च नः । यदापो अघ्न्या इति वरुणेति यदूचिम ततो वरुण मुञ्च ॥२॥ उदुत्तमं वरुण० ॥३॥ (ऋ. १।२४।१५)
प्रास्मत् पाशान् वरुण मुञ्च सर्वान् य उत्तमा अधमा वारुणा ये ।
दुष्वप्न्यं दुरितं नि ष्वास्मदथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम् ॥४॥

अर्थ--हे वरुण राजन् ! (ते हिरण्ययः गृहः अप्सु) तुम्हारा सुवर्णमय घर जलोंमें बनाया है। वहांसे नियमोंका करनेवाला राजा सब धामोंको मुक्त करे ॥१॥

हे राजा वरुण ! प्रत्येक स्थानसे तथा इससे (नः मुञ्च) हम सबको मुक्त करो। 'हे अदृष्णीय जलो ! हे वरुण !' (यत् ऊचिम) जो हमने आपकी प्रार्थना की, इससे, हे वरुण ! (नः मुञ्च) हम सबको मुक्त करो ॥२॥

(उदुत्तमं० का अर्थ ऋ. १।२४।१५ स्थानपर, इस पुस्तकके प्रथम सूक्तमें पृ० ९ देखो) ॥३॥

हे वरुण ! (अस्मत् सर्वान् पाशान् प्र मुञ्च) हम सबसे सब पाशोंको दूर करो। (ये उत्तमाः अधमाः ये वारुणाः) जो अधम, और जो वरुणसंबंधी पाश हैं वे दूर हों, तथा (दुःस्वप्न्यं) दुष्ट स्वप्न और (दुरितं) पाप (अस्मत् नि ष्व) हमसे दूर (सुकृतस्य लोकं गच्छेम) और हम निर्दोष होकर पुण्यलोकको पहुंचेंगे ॥४॥

इस सूक्तमें (१) **सर्वा धामानि मुञ्चतु**–सब धामोंको करो, (२) **धान्नोधान्नो नः मुञ्च**–प्रत्येक धामसे मुक्त करो, (३) **यत् ऋचिम**–जो हम प्रार्थना कर चुके, **अस्मत् सर्वान् पाशान् प्र मुञ्च**–हम सबसे सब को दूर करो, (५) **सुकृतस्य लोकं गच्छेम**–पुण्यलोक हम सब प्राप्त होंगे। इन मंत्रोंमें बहुतोंके मुक्त होनेकी ही है। हम सब अलग अलग (धान्नोधान्नः) स्थानोंमें रहते पृथक् पृथक् (धामानि) घरोंमें रहते हैं, इकट्ठे होकर (ऋचिम) ना करते हैं, हम सबको सब प्रकारके (सर्वान् पाशान् अस्मत्) पाशोंसे पृथक् करो जिससे हम सब पुण्यलोकको प्राप्त । ये सब मंत्र सामुदायिक उपासनाका महत्त्व बता रहे हैं। लोग मिलकर प्रार्थना करें और सब मिलकर मुक्त हों। सामुदायिक मुक्ति है। सबका सब समाज उच्च आचार-विचारसे परिशुद्ध होता हुआ मुक्त हो सकता है। यह विचार विशेषतया यहां बताया है।

उत्तम अधम पाशोंका स्वरूप तो पहिले बताया जा चुका है। यहां मध्यम पाशोंको 'वारुण' कहा है, यह विशेष है। इस सूक्तमें दुष्ट स्वप्न और पाप दूर होनेकी बात विशेष है। पुण्य-लोकमें पहुंचनेकी बात भी मननीय है। यदि शुनःशेप यूपसे ही अपना छुटकारा चाहनेवाला माना जाय, तो दुष्ट स्वप्नसे और पापसे दूर होकर पुण्यलोकको प्राप्त होनेकी जो बात है, वह यूपसे छुटकारा पानेके साथ संबंध नहीं रख सकती। इसलिये शुनःशेपकी जो कथा ऐतरेय ब्राह्मणमें लिखी है वह विश्वास रखने योग्य प्रतीत नहीं होती और शुनःशेप ऋषिके सूक्तमें जो 'बन्धनसे निर्मुक्ति' का विचार है वह सर्व साधारण मानवोंके बंधनोंसे मुक्तता का ही विचार है इसमें संदेह नहीं है।

---

(११)

ऐतरेय ब्राह्मणमें शुनःशेपकी कथा

ऐतरेय ब्राह्मणमें जो शुनःशेपकी कथा लिखी है वह निम्नलिखित स्थानमें दी है, साथ अनुवाद भी दिया है—

मूल कथा

१ हरिश्चन्द्रो ह वैधस ऐक्ष्वाकोऽपुत्र आस। तस्य ह शतं जाया बभूवुः। तासु पुत्रं न लेभे। तस्य ह पर्वत नारदौ गृह ऊषतुः। स ह नारदं पप्रच्छ... किं स्वित्पुत्रेण विन्दते तन्म आ चक्ष्व इति।

२ पतिर्जायां प्रविशति गर्भो भूत्वा स मातरम्। तां पुनर्नवो भूत्वा दशमे मासि जायते। तज्जाया जा भवति यदस्यां जायते पुनः।

३ देवाश्चैतानृषयश्च तेजः समभरन्महत्। देवा ब्रुवन्नृषयो जननी पुनः॥

४ अपुत्रस्य लोकोऽस्ति

५ सोऽनुपाच वरुणं राजानमुप धाव, पुत्रो मे जायतां, तेन त्वा यजेति, तथेति।

अनुवाद

१ हरिश्चन्द्र राजा इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुए वैधस राजाका पुत्र था, वह पुत्रहीन था। उसकी सौ स्त्रियां थीं। पर उसे एक भी स्त्रीसे पुत्र न हुआ। उसके घरमें पर्वत और नारद ये दो ऋषि आकर रहे थे। उस राजाने नारदसे पूछा कि पुत्र प्राप्तिसे क्या लाभ होते हैं ये मुझे कहो।

२ पति जायामें गर्भरूपसे प्रविष्ट होता है, वही नया होकर दसवें महिनेमें जन्म लेता है। इसलिये स्त्रीका नाम 'जाया' है।

३ देवों और ऋषियोंने इस बातमें महान् तेज धारण किया है। देवोंने ऋषियोंसे कहा कि यह पुत्र माताकी पुनरावृत्ति है फिर जननी [ ] होते हैं [ ] ही स्त्रीसे देवने पुत्ररूपमें उत्पन्न हैं।)

४ पुत्रहीनके लिये उच्च लोक नहीं है।

५ वह उस ऋषिसे इस राजासे [ ] कहा कि [ ] उत्पन्न होवे, पुत्र होनेपर तुझसे मेरा यज्ञ [ ] करूंगा। ऐसा है ऐसा उसने कहा

५ तस्य पुत्रो जज्ञे, रोहितो नाम तं होवाचा.ऽजनि वै पुत्रो, यजस्व माऽनेनेति ।

६ स होवाच...निर्दशोऽन्वस्त्वथ त्वा यजा इति, तथेति ।

७ निर्दशो न्वभूद्यजस्व मानेनेति । स होवाच... दन्ता न्वस्य जायन्तां, अथ त्वा यजा इति, तथेति ।

८ तस्य दन्ताः पुनर्जज्ञिरे, तं होवाचाक्षत वा अस्य पुनर्दन्ता, यजस्व मानेनेति, स होवाच, यदा वै क्षत्रियः सन्नाहुको भवति, अथ स मेध्यो भवति, ... अथ त्वा यजा इति ।

९ स सन्नाहं प्रापत्तं होवाच, सन्नाहं नु प्राप्तोद्यजस्व माऽनेनेति । स तथेत्युक्त्वा पुत्रमामन्त्रयामास, ततायं वै मह्यं त्वामददाद्धन्त त्वयाऽहमिमं यजा इति । स ह नेत्युक्त्वा धनुरादायारण्यमुपातस्थौ, स संवत्सरमरण्ये चचार ।

१० अथ हैक्ष्वाकं वरुणो जग्राह, तस्य होदरं जज्ञे, तदु ह रोहितः शुश्राव, सोऽरण्याद्ग्राममेयाय, तमिन्द्रः उवाच । नानाश्रान्ताय श्रीरस्तीति... चरैवेति ।

११ सोऽजीगर्तं सौयवसिं ऋषिं अशनया परीतमरण्य उपेयाय । तस्य ह त्रयः पुत्रा आसुः ।... मध्यमं शुनःशेपं तस्य ह शतं दत्त्वा, स तमादाय सोऽरण्याद्ग्राममेयाय स पितरमेत्योवाच तत हन्ताहमनेनात्मानं निष्क्रीणा इति । स वरुणं राजानमुपसमायनेन त्वा यजा इति । तथेति भूयान्वै ब्राह्मणः क्षत्रियादिति ।

१२ सौयवसिर्महामपरं शतं दत्त, हमममं नियोक्ष्यसि ... मध्यमपरं शतं दत्ताहमेनं विशसिष्यामि ।... शुनःशेप इदां चकेऽमानुषमिव वै मा विशसिष्यन्ति हन्ताहं देवता उपधावामीति । 'कस्य नूनं' इत्य ।

५ उसे पुत्र हुआ, उसका नाम रोहित था, तब राजासे कहा, कि पुत्र हुआ, अब उससे मेरा यज्ञ

६ राजाने कहा हे देव ! अभी तो इस दिन भी नहीं हुए, उसने तो होने दो। बाद यज्ञ ठीक है ऐसा वरुणने कहा ।

७ दस दिन हो गये हैं अब इससे मेरा यज्ञ वरुणने कहा, तब राजाने कहा कि इसे दांत तो पश्चात् यज्ञ करेंगे । ठीक ऐसा उसने कहा ।

८ उस पुत्रके (पहिले दांत आये, गिरे, पश्चात् दांत आये, तब वरुणने यज्ञ करनेके लिये कहा राजाने कहा कि जब क्षत्रिय कवच धारण करने तब पवित्र होता है, तब यज्ञ करेंगे ।

९ जब वह पुत्र कवच धारण करने लगा तब कहा कि अब यज्ञ करो । तब उसने अपने पुत्रको और कहा कि हे पुत्र ! इस वरुणकी कृपासे तुम्हारा हुआ है, इसलिये इसके लिये तेरा यजन करना है। 'नहीं' करके कहा और धनुष्य लेकर वनमें चला और वहां एक वर्षतक घूमता रहा ॥

१० तब हरिश्चन्द्रको वरुणने उदर रोग किया, सु कर रोहित अरण्यसे घर आया, तब इन्द्रने उसे क विनायके ऐश्वर्य नहीं मिलता,... इसलिये घूमते रो छः वर्ष अरण्यमें रहा ।)

११ वह राजपुत्र सूयवसका पुत्र अजीगर्त ऋषि दुःखी है ऐसा देखकर उसके पास गया । उसके ती थे । ...बीचके शुनःशेपको १०० गायें देकर खरीद उसे लेकर वह वनसे घर आया और पिताने कहा यह ब्राह्मणपुत्र खरीद कर लाया है, वह राजा वरुण जाकर बोला कि इससे तेरा यजन करेंगे । ठीक वरुणने कहा और कहा कि क्षत्रियसे ब्राह्मण श्रेष्ठ रहता है ।

१२ अजीगर्तने कहा कि यदि मुझे और १०० दोगे तो मैं इसको यूपके साथ बांधूंगा ।... और गायें दोगे तो मैं इसका हनन करूंगा। शुनःशेपने कि ये पशुके समान मेरा यहां वध ही कर रहे हैं, इ देवताकी ही उपासना करूंगा । 'कस्य नूनं' इ उपासनाके मंत्र हैं ।

तरह प्रार्थना करते करते शुनःशेपके बंधे पाश खुल और उसके पिता भी उदर रोगसे मुक्त हुए। देवोंके शुनःशेप बच गया, इसलिये इसका नाम 'देवरात' रखा वहां उस यज्ञमें इकट्ठे हुए ऋषि विचार करने लगे कि किसका पुत्र होगा ? तब शुनःशेप विश्वामित्रकी गोदमें तब अजीगर्त ऋषि कहने लगा कि 'यह मेरा पुत्र है'

वामित्र- नहीं, देवोंने यह मुझे दिया है इसलिये यह है।

ीगर्त- (अपने पुत्रसे) हे प्रिय पुत्र ! तू अब मेरे के घर चल, तेरी माता तेरा स्वागत करेगी।

:शेप- हे अजीगर्त ! हे पिता ! अबतक तो तुमने केवल मेरे गलेपर छुरी चलानेका कार्य किया और अब ते हो। देवताओंकी दयासे मैं जीवित रहा, इसलिये रेपक नहीं कहलाऊंगा।

ऐसा कहकर शुनःशेपने अंगिरस गोत्रका त्याग करके विश्वामित्र गोत्रका स्वीकार किया। विश्वामित्रने उसका स्वीकार किया। विश्वामित्रके १०० पुत्र थे। पहिले ५० पुत्रोंने इसे अपना भाई माननेसे इन्कार किया। तब विश्वामित्रने उन्हें शाप दिया। (**ताननु व्याजहारान्तान्वः प्रजा भक्षीष्टेति त एतेऽन्ध्राः पुण्ड्राः शवराः पुलिन्दा मूतिवा इत्युदन्त्या बहवो भवन्ति वैश्वामित्रा दस्यूनां भूयिष्ठाः**) कि जो तुम मेरी आज्ञा नहीं मानते वे तुम नीच दस्यु बनोगे। वे ही ये आन्ध्र पुलिंद, शबर आदि हैं। ये सब दस्यु वे ही विश्वामित्र पुत्र शापसे भ्रष्ट हुए हैं।

मधुच्छन्दा आदि विश्वामित्र पुत्रोंने शुनःशेपको अपना बडा भाई मान लिया और पिताकी आज्ञा मान ली। इसलिये मधुच्छन्दा आदि ऋषि बने। यह कथा ऐ. ब्रा. ७।३।१३-१८ में है।

इस कथाका विचार भूमिकामें हुआ है।

(७) उत्तम रथ

अश्विदेवोंका रथ
आदर्श पुरुष

नवम मण्डल, तृतीय अनुवाक

(८) सोमरस

सोमरस
वीर सोम

(९-१०) शुनःशेप ऋषिके अथर्ववेदमें आये मंत्र

(११) ऐतरेय ब्राह्मणमें शुनःशेपकी कथा

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(४)

हिरण्यस्तूप ऋषिका दर्शन

(उसके पुत्र अर्चन् ऋषिके मंत्रोंके समेत)

(ऋग्वेदका सप्तम अनुवाक)

लेखक

महाचार्य पण्डित श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,

अध्यक्ष स्वाध्याय-मण्डल, औंध (जि० सातारा)

संवत् २००३

मूल्य १) रु०

मुद्रक और प्रकाशक- वसंत श्रीपाद सातपळेकर, B. A.
भारत-मुद्रणालय, औंध (जि. सातारा)

हिरण्यस्तूप ऋषिका दर्शन

ऋग्वेदके सप्तम अनुवाकमें हिरण्यस्तूपके ७१ मंत्र हैं, नवम मंडलमें २० हैं और दशम मंडलमें उसके पुत्र अर्चन् ऋषिके ५ मंत्र है। सब मिलकर ९६ मंत्र इसके दर्शनमें हैं। इनका विवरण ऐसा है—

ऋग्वेद-प्रथम मण्डल

सप्तम अनुवाक

हिरण्यस्तूप ऋषिः	देवता	मंत्रसंख्या
सूक्त ३१	अग्निः	१८
३२	इन्द्रः	१५
३३	,,	१५
३४	अश्विनौ	१२
३५	सविता	११
		७१

नवम मण्डल

सूक्त ४	पवमानः सोमः	१०
६९	,, ,,	१०
		२०

दशम मंण्डल

अर्चन् हिरण्यस्तूपः

सूक्त १४९	सविता ५	५

कुलमन्त्रसंख्या ९६

देवतानुक्रमसे मन्त्रसंख्या इस तरह होती है—

१ इन्द्रः	३०
२ सोमः	२०
३ अग्निः	१८
४ सविता	१६
५ अश्विनौ	१२
कुल-मंत्रसंख्या	९६

पांच देवताओंके मंत्र इस ऋषिके दर्शनमें आये हैं। हिरण्यस्तूपका वर्णन ऐतरेय ब्राह्मणमें इस तरह आता है—

'इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्र वोचमिति सूक्तं शंसति। तद्वा एतत्प्रियं इन्द्रस्य सूक्तं निष्कैवल्यं हैरण्यस्तूपं, एतेन वै सूक्तेन हिरण्यस्तूप आङ्गिरस इन्द्रस्य प्रियं धाम उपागच्छत्, स परमं लोकमजयत्।'

(ऐ. ब्रा. ३।२४)

अग्निर्देवतानां, हिरण्यस्तूप ऋषीणां, बृहती छन्दसां०॥ (श. ब्रा. १।६।४।२)

'इन्द्रस्य नु वीर्याणि' यह सूक्त (ऋ. १।३२) है। यह इन्द्रका बडा प्रिय काव्य है, यह अंगिरस गोत्रमें उत्पन्न हिरण्यस्तूप ऋषिका है। इस सूक्तके पाठसे उसने इन्द्रका प्रिय धाम प्राप्त किया, और उससे भी श्रेष्ठ लोक प्राप्त किया।' इस तरह हिरण्यस्तूप ऋषिका यह (ऋ. १।३२ वाँ) सूक्त है ऐसा ऐतरेय ब्राह्मणमें कहा है। शतपथमें ऋषियोंमें हिरण्यस्तूप ऋषि प्रशंसित हुआ है ऐसा कहा है। ब्राह्मण ग्रंथोंमें येही इस ऋषिके नामके उल्लेख हैं। निम्नलिखित मंत्रमें इस ऋषिका नाम आता है—

हिरण्यस्तूपः सवितर्यथा त्वाऽऽङ्गिरसो जुह्वे वाजे अस्मिन्। एवा त्वार्चन्नवसे वन्दमानः सोमस्येवांशुं प्रति जागराहम्।

(ऋ. १०।१४९।५)

'(मेरे पिता) अंगिरस गोत्रमें उत्पन्न हुए हिरण्यस्तूप ऋषिने सविता देवका जैसा कथन किया था वैसा ही मैं (उसका पुत्र) अर्चन् ऋषि आपकी उपासना करता हूं।'

यहां अर्चन् ऋषिने अपना नाम जैसा कहा है वैसाही अपने पिताका और अपने गोत्रका भी नाम कहा है। इसके अतिरिक्त मंत्र और ब्राह्मण-भागमें इस ऋषिका नाम कहीं भी नहीं है।

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

हिरण्यस्तूप ऋषिका दर्शन

(उसके पुत्र अर्चन् ऋषिके मंत्रोंके समेत)

[ऋग्वेदका सप्तम अनुवाक]

(१) सबका परम पिता परमात्मा

(ऋ. १।३१) हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । अग्निः । जगती; ८,१६,१८ त्रिष्टुप् ।

त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरा ऋषिर्देवो देवानामभवः शिवः सखा ।
तव व्रते कवयो विघ्नापसोऽजायन्त मरुतो भ्राजदृष्टयः १
त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरस्तमः कविर्देवानां परि भूषसि व्रतम् ।
विभुर्विश्वस्मै भुवनाय मेधिरो द्विमाता शयुः कतिधा चिदायवे २
त्वमग्ने प्रथमो मातरिश्वन आविर्भव सुक्रतूया विवस्वते ।
अरेजेतां रोदसी होतृवूर्येऽसघ्नोर्भारमयजो महो वसो ३
त्वमग्ने मनवे द्यामवाशयः पुरूरवसे सुकृते सुकृत्तरः ।
श्वात्रेण यत् पित्रोर्मुच्यसे पर्या त्वा पूर्वमनयन्नापरं पुनः ४
त्वमग्ने वृषभः पुष्टिवर्धन उद्यतस्रुचे भवसि श्रवाय्यः ।
य आहुतिं परि वेदा वषट्कृतिमेकायुरग्रे विश आविवाससि ५
त्वमग्ने वृजिनवर्तनिं नरं सक्मन् पिपर्षि विदथे विचर्षणे ।
यः शूरसाता परितक्म्ये धने दभ्रेभिश्चित् समृता हंसि भूयसः ६
त्वं तमग्ने अमृतत्व उत्तमे मर्तं दधासि श्रवसे दिवेदिवे ।
यस्तातृषाण उभयाय जन्मने मयः कृणोषि प्रय आ च सूरये ७
त्वं नो अग्ने सनये धनानां यशसं कारुं कृणुहि स्तवानः ।
ऋध्याम कर्मापसा नवेन देवैर्द्यावापृथिवी आ ववृत्यात् नः ८
त्वं नो अग्ने पित्रोरुपस्थ आ देवो देवेष्वनवद्य जागृविः ।
तनूकृद् बोधि प्रमतिश्च कारवे त्वं कल्याण वसु विश्वमोपिषे ९

त्वमग्ने प्रमतिस्त्वं पिताऽसि नस्त्वं वयस्कृत् तव जामयो वयम् ।
सं त्वा रायः शतिनः सं सहस्त्रिणः सुवीरं यन्ति व्रतपामदाभ्य
त्वामग्ने प्रथममायुमायवे देवा अकृण्वन् नहुषस्य विश्पतिम् ।
इळामकृण्वन् मनुषस्य शासनीं पितुर्यत् पुत्रो ममकस्य जायते
त्वं नो अग्ने तव देव पायुभिर्मघोनो रक्ष तन्वश्च वन्द्य ।
त्राता तोकस्य तनये गवामस्यनिमेषं रक्षमाणस्तव व्रते
त्वमग्ने यज्यवे पायुरन्तरोऽनिषङ्गाय चतुरक्ष इध्यसे ।
यो रातहव्योऽवृकाय धायसे कीरेश्चिन् मन्त्रं मनसा वनोषि तम्
त्वमग्न उरुशंसाय वाघते स्पार्हं यद् रेक्णः परमं वनोषि तत् ।
आध्रस्य चित् प्रमतिरुच्यसे पिता प्र पाकं शास्सि प्र दिशो विदुष्टरः
त्वमग्ने प्रयतदक्षिणं नरं वर्मेव स्यूतं परि पासि विश्वतः ।
स्वादुक्षद्मा यो वसतौ स्योनकृज्जीवयाजं यजते सोपमा दिवः
इमामग्ने शरणिं मीमृषो न इममध्वानं यमगाम दूरात् ।
आपिः पिता प्रमतिः सोम्यानां भृमिरस्यृषिकृन् मर्त्यानाम्
मनुष्वदग्ने अङ्गिरस्वदङ्गिरो ययातिवत् सदने पूर्ववच्छुचे ।
अच्छ याह्या वहा दैव्यं जनमा सादय बर्हिषि यक्षि च प्रियम्
एतेनाग्ने ब्रह्मणा वावृधस्व शक्ती वा यत् ते चकृमा विदा वा ।
उत प्र णेष्यभि वस्यो अस्मान्त्सं नः सृज सुमत्या वाजवत्या

अन्वयः– हे अग्ने ! त्वं प्रथमः अङ्गिरा ऋषिः, देवानां देवः, शिवः सखा अभवः । तव व्रते कवयः, विश्वना-अपसः भ्राजत्-ऋष्टयः मरुतः अजायन्त ॥ १ ॥

हे अग्ने ! त्वं प्रथमः आङ्गिरस्तमः कविः देवानां व्रतं परि भूषसि । विश्वस्मै भुवनाय विभुः, मेधिरः, द्विमाता, आयवे कतिधा चित् शयुः ॥ २ ॥

हे अग्ने ! त्वं प्रथमः, सुक्रतुया विवस्वते मातरिश्वने आविः अभव । हे वसो ! रोदसी अरेजेताम् । होतृवूर्ये भारं असह्नोः । महः अयजः ॥ ३ ॥

अर्थ–हे अग्ने ! तुम पहिले अङ्गिरा ऋषि थे देव और शुभ मित्र थे । तुम्हारा ही कार्य करने कार्य पद्धति जाननेवाले मरुद्रूप तेजस्वी शूर थे ॥१॥

हे अग्ने ! तुम पहिले अङ्गिरसोंमें मुख्य ऋषि (ह कार्य सुशोभित करते हो! तुम सब भुवनोंमें विभु मान और द्विज-रूप (दो माताओंसे उत्पन्न, माता और दूसरी सरस्वती विद्यामाता, इनसे मनुष्यमात्रके (हितके) लिये कई प्रकारोंसे सर्वत्र हो ॥२॥

हे अग्ने ! तुम (विश्वमें) पहिले हो, उत्तम क्र लताके साथ सूर्य और वायुके लिये (सामर्थ्य प्रकट हुए हो। हे सबके निवास करता देव! (तुम्हा कर भयसे) द्युलोक और पृथिवी भी कांप उठ होताके वरण करनेके समय तुम ही (सब यज्ञ हो। (और तुमने) महनीय (देवों) के लि है ॥३॥

अग्ने ! त्वं मनवे द्यां अवाशयः । सुकृते पुरुरवसे । यत् पित्रोः स्वात्रेण परि मुच्यसे, (तत्) त्वा अनयन्, पुनः अपरं वा (अनयन्) ॥ ४ ॥

अग्ने ! त्वं वृषभः पुष्टिवर्धनः उद्यतस्रुचे अवाख्यः । यः वषट्कृतिं आहुतिं परि वेद, (सः त्वं) विशः अग्ने आविवासति ॥ ५ ॥

धर्षन् अग्ने ! त्वं वृजन-वर्तनिं नरं सक्मन् विदथे । यः परितक्म्ये धने शूरसाता दक्षेभिः चित् समृता हंसि ॥ ६ ॥

अग्ने ! त्वं तं मर्तं दिवेदिवे अवसे उत्तमे अमृतत्वे । यः उभयाय जन्मने तातृषाणः, (तस्मै) सूरये दः च वा कृणोषि ॥ ७ ॥

अग्ने ! स्तवानः त्वं नः धनानां सनये यशसं कारुं । नवेन अपसा कर्म ऋध्याम । हे द्यावापृथिवी ! देवेभिः आ अवतम् ॥ ८ ॥

अनवद्य अग्ने ! देवेषु जागृविः, त्वं पित्रोः उपस्थे नः वा बोधि । हे कल्याण ! कारवे प्रमतिः, त्वं विश्वं अदिते ॥ ९ ॥

अग्ने ! त्वं प्रमतिः, त्वं नः पिता असि । त्वं वयस्कृत् उ जामयः । हे अदाभ्य ! सुवीरं मतयं त्वा शतिनः आ गन्तः सं सं दधिते ॥ १० ॥

अग्ने ! देवाः कावये प्रथमं आयुं मनुषस्य निदधति इत् । मनुषस्य शासनीं इळां अकृण्वन् । येन मनुष्यत् पुनः जायते ॥ ११ ॥

हे अग्ने ! तुमने मनुष्यमात्रके हितके लिये द्युलोकको निनादित (शब्दमय) किया । पुण्य कर्म करनेवाले पुरूरवाके लिये तुमने अधिक शुभ कर्म किया था । जब मातापिताओंसे शीघ्र-ही तुम मुक्त (दूर) हुए, (तब) तुम्हें पूर्व (ब्रह्मचर्य आश्रममें पहिले) ले गये, पश्चात् दूसरे (गृहस्थ आश्रम)में ले गये थे॥४॥

हे अग्ने ! तुम बडा बलिष्ठ और (सबका) पोषण करनेवाला हो । तुम यज्ञ करनेवालेके लिये स्तुति करने योग्य हो। जो वषट्कारपूर्वक आहुति देना जानता है (उसके लिये तुम) संपूर्ण आयु देते हो और सब प्रजाओंमें प्रथम स्थानमें उसको निवास कराते हो ॥५॥

हे विज्ञानवान् अग्ने ! तुम दुराचारमें रहनेवाले मनुष्यको भी (अपने) साथ रहनेपर युद्धमें बचाते हो । जो (यह तुम) चारों ओरसे छिडनेवाले और जहाँ केवल शूरोंका ही काम है ऐसे घोर युद्धमें अल्पसंख्य और वीरताहीन मानवोंसे युद्धके लिये मिले हुए बहुसंख्य शत्रुओंका भी वध करते हो ॥६॥

हे अग्ने ! तुम उस (भक्त) मनुष्यको प्रतिदिन यशस्वी बनाते हुए उत्तम अमरपदपर चढाते हो । जो (द्विजत्व सिद्धिके) दोनों जन्मोंमें (यशस्वी होनेके लिये) पिपासु रहता है, (उस) ज्ञानीके लिये तुम समृद्धि और श्रेय देते हो ॥७॥

हे अग्ने ! (तुम्हारी) स्तुति करनेपर तुम हमारे लिये धन दान यश और कारीगरी प्राप्त करा दो । (हम) नूतन कर्मसे (पूर्व) कर्मकी वृद्धि करेंगे । हे द्यावा-पृथिवी ! देवोंकी शक्तियोंके (साथ) हमारी सुरक्षा करो ॥८॥

हे निर्दोष अग्ने ! तुम सब देवोंमें जागरूक (अर्थात् सावध) हो, तुम हमारे मातापिताओंके समीपमें हमारे शरीर निर्माण करते हो । हे कल्याण करनेवाले ! कारीगरके लिये विशेष बुद्धि देकर, तुम (उसको) सब धन देता है ॥ ९ ॥

हे अग्ने ! तुम विशेष बुद्धिमान हो, तुम हमारे पिता हो, तुम हमें आयु देता है, हम तेरे बन्धु हैं । हे न दबनेवाले देव ! उत्तम वीरोंके साथ रहनेवाले और नियमोंका पालन करनेवाले तुम्हारे पास सैकडों और सहस्रों धन पहुंचते हैं ॥ १० ॥

हे अग्ने ! देवोंने मानवके लिये सबसे प्रथम आयु (दी, पश्चात् उन्होंने) मानवोंके लिये प्रजापालक राजा निर्माण किया। तब मनुष्योंके शासन (व्यवस्था)के लिये (धर्म) नीतिको भी निर्माण किया । जैसे जिससे मनुष्यरूप (और से) पुनरपि जन्म होता है (वैसा आचरणवाले राजा प्रजाका पुनरपि पालन करे) ॥ ११ ॥

अतिष्ठन्तीनां अनिवेशमानानां काष्ठानां मध्ये वृत्रस्य निण्यं शरीरं निहितं, आपः वि चरन्ति । इन्द्रशत्रुः दीर्घं तमः आशयत् ॥ १० ॥

पणिना गावः इव, दासपत्नीः अहिगोपाः आपः निरुद्धाः अतिष्ठन् । अपां यत् बिलं अपिहितं आसीत्, तत् वृत्रं जघन्वान्, अप ववार ॥ ११ ॥

सूके यत् एकः देवः त्वा प्रत्यहन्, तत् अश्व्यः वारः अभवः । गाः अजयः । हे शूर इन्द्र ! सोमं अजयः । सस्र सिन्धून् सर्तवे अव असृजः ॥ १२ ॥

अस्मै विद्युत् न सिषेध । तन्यतुः, यां मिहं अकिरत्, न (सिषेध) । द्रादुनिं च (न सिषेध) । इन्द्रः च अहिः च यत् युयुधाते, उत मघवा अपरीभ्यः वि जिग्ये ॥ १३ ॥

हे इन्द्र ! जघ्नुषः ते हृदि यत् भीः अगच्छत्, अहेः यातारं कं अपश्यः ? यत् नव च नवतिं च स्रवन्तीः रजांसि, भीतः श्येनः न, अतरः ॥ १४ ॥

वज्रबाहुः इन्द्रः यातः अवसितस्य, शमस्य शृङ्गिणः च, राजा । स इत् उ चर्षणीनां राजा क्षयति । अरान् नेमिः न, ताः परि बभूव ॥ १५ ॥

स्थिर न रहनेवाले और विश्राम न करनेवाले बीचमें वृत्रका शरीर छिपकर पड़ा रहा था और जलप्रवाह चल रहे थे। इन्द्रके शत्रु (वृत्र) ने बड़ा फैला दिया था ॥ १० ॥

पणी नामक (असुर)ने जैसी गौवें (गुप्त रखने तरह दास (वृत्र) के द्वारा पालित और अहिर जलप्रवाह रुके पड़े थे (अर्थात् स्थिर हो गये थे जो द्वार बन्द था, वह वृत्रके वधके पश्चात्, खोल (अर्थात् जलप्रवाह बहने लगे) ॥ ११ ॥

(इन्द्रके) वज्रपर जब एक अद्वितीय युवकने मानो तुमपरही प्रहार किया, तब घोड़ेकी पूँछकी उसका) निवारण किया । और गौओंको प्राप्त वीर इन्द्र ! सोमको (तुमने) प्राप्त किया और ओंके प्रवाहोंको गतिमान् करके खुला छोड़ दि

(जब इन्द्र युद्ध करने लगा तब) इस (इन्द्र प्रतिबंध न कर सकी, मेघगर्जना और जो हिमवृष्टि भी उसका प्रतिबंध) न (कर सकी) । गिरनेवाली (इस इन्द्रको न रोक सकी) । इन्द्र और अहि करते थे, उस समय धनवान् (इन्द्र) ने अन्यान्य (कपट प्रयोगोंको भी) जीत लिया ॥ १३ ॥

हे इन्द्र ! (वृत्रका) वध करते समय तुम्हारे भय उत्पन्न हो जाता, (तब तुमने) अहिका वध लिये किस दूसरे (वीर) को देखा होता ? (छोड़कर दूसरा कोई वीर मिलना संभवही नहीं था तो नौ और नब्बे जल-प्रवाहोंको, अन्तरिक्षमें की तरह, पार कर दिया ॥ १४ ॥

वज्रबाहु इन्द्र जङ्गम और स्थावरों, शान्त और वालों) का राजा है । वही मनुष्योंका भी राजा रहा है । आरोंको जिस तरह चक्रकी नेमि (धारण उस तरह) वे सब (उसके) चारों ओर रहते वही सबका धारण करता है) ॥ १५ ॥

ईश्वर-स्वरूपका विचार

इस सूक्तका अन्तिम मंत्र ईश्वरस्वरूपकी स्पष्ट कल्पना दे रहा है । इस मन्त्रमें निम्नलिखित चार कल्पनाएं स्पष्ट हैं—

१ इन्द्रः यातः अवसितस्य राजा- इन्द्र जंगम और स्थावरोंका राजा है ।

२ वज्रबाहुः शमस्य च शृंगिणः राजा- इन्द्र शान्त और क्रूरों, सींगवालों अथवा राजा है ।

सः चर्षणीनां राजा क्षयति - वह सब प्रजाओंका होकर रहता है।

ताः (प्रजाः), अरान् नेमिः न, (सः) परि [- वे प्रजाजन, चक्रके आरे चक्रकी नेमिके चारों ओर हैं वैसे, उसके चारों ओर रहते हैं।(मं. १)

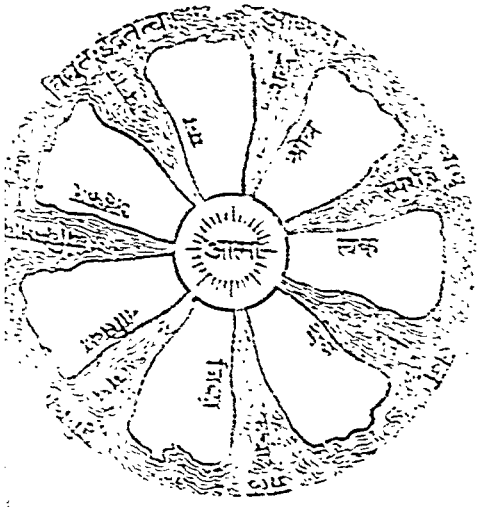

परमात्मा नाभी। चार वर्ण और निषाद चण्डाल
रे आरे और ब्रह्माण्ड चक्र। यहांका चित्र पिण्डका है।

चक्रकी नेमि ईश्वर है और उस प्रभुके आधारपर सब विश्व है, जिस तरह चक्रनेमीके आधारसे चक्रके आरे रहते हैं। घर ईश्वरकी कल्पना यहां स्पष्ट हुई है। दूसरा उदाहरण के आधारसे वृक्षकी शाखाएं रहती हैं. यह वेदने अन्यत्र है। स्थावर-जंगम, शान्त-क्रूर, सींगवाले-सींगसे रहित ये द्वन्द्व है। इससे विभिन्न अन्य द्वन्द्वोंकी भी कल्पना यहां कर सकते हैं। जड-चेतन, प्राणी-अप्राणी, पशु-पक्षी, मनुष्येतर, राजा-प्रजा, धनी-निर्धन, ज्ञानी-अज्ञानी, मजदूर इत्यादि अनेक द्वन्द्व इस विश्वमें हैं। इन सबका द्वन्द्व है, अर्थात् प्रभु ही है। सबका पालक और अधिपति एक ईश्वर है। सब मानवोंका वही प्रभु है, इसलिये सबको एक प्रभुकी उपासना करना योग्य है।

इस सूक्तमें विद्युत् प्रकाश रूपमें इस प्रभुका साक्षात्कार । गया है और क्षात्रधर्मका उपदेश किया है। देखिये-

क्षात्रधर्म

१ पर्वते शिश्रियाणं अहिं अहन्- पर्वतपर रहनेवाले अहि नामक शत्रुका वध इन्द्रने किया, पर्वतपरके दुर्गका आश्रय करके यह अहि रहता था, उसपर हमला करके इन्द्रने उस शत्रुका पराभव किया और उसका वध भी किया। (मं. २)

२ अहीनां प्रथमजां एनं अहन्- अहि नामक शत्रुके अनेक वीर लडनेके लिये आये थे, उनमें जो प्रमुख मुखियां वीर था, उसका वध इन्द्रने किया, जिससे बाकी रहे सबोंका पराभव हुआ। यहां प्रथम मुखियाका वध करना चाहिये, यह युद्धनीतिकी बात प्रकट हो रही है। (मं. ३,४)

३ मायिनां मायाः अमिनाः- कपटी शत्रुओंके सब कपटपूर्ण षड्यन्त्रोंका इन्द्रने नाश किया। इससे स्पष्ट हो जाता है कि, स्वयं सावध रहकर शत्रुकी कपट युक्तियोंको जानना चाहिये और उनका नाश करना चाहिये अथवा उनको विफल करना चाहिये। (मं. ४)

४ शत्रुं न विवित्से-एक भी शत्रु किसी स्थानपर न दीखे, ऐसी स्थिति आनेतक युद्ध करके शत्रुका नाश करना चाहिये। (मं. ४)

५ दासपत्नीः अहिगोपाः अपः निरुद्धाः आसन्। वृत्रं जघन्वान्, अपां बिलं निहितं आसीत्, तत् अप ववार- शत्रुने जलप्रवाहोंपर अपना कब्जा किया था, सब जलप्रवाह रोक रखे थे। इन्द्रने वृत्रका वध किया और जो जलोंका द्वार बंद किया था, उसे खोलकर सबके हितके लिये जलप्रवाह खुले किये। (मं. ११)

शत्रुकी युद्धनीति यह रहती है कि जलस्थान अपने अधिकारमें रखना और प्रतिपक्षीको जल न देनेसे तंग करना। इस कारण इन्द्रकी नीति यह रहती है कि शत्रुवीरोंको परास्त करके उन जलप्रवाहोंको सबके लिये खुला करना।

६ नव च नवतिं च स्रवन्तीः रजांसि अतरः- नौ और नब्बे जलप्रवाहों और प्रदेशोंको प्राप्त किया और उससे भी परे चला गया। यह इन्द्रका पराक्रम है। इतनी नदियां और इतने बीचके प्रदेश इन्होंने शत्रुसे मुक्त किये और अपने अधिकार में लाये। (मं. १४)

७ त्वष्टा अस्मै स्वर्यं वज्रं ततक्ष- कारीगरने इस इन्द्र के लिये (सु+अर्यं) उत्तम दर्जेके की शत्रुका फेंका जाय ऐसा वज्र तैयार करके दिया। (मं. २) देवताकी कारीगरीकी उपमा है कि वे अपने देहके अवयवोंके समान विशेष कारीगर

सहायता देवें, जिससे अपने वीरोंको उत्तेजना मिले और शत्रु परास्त हो जाय।

८ मघवा सायकं वज्रं आ अदत्त- इन्द्रने अपने पास बहुत धन इकट्ठा किया, उससे उसको शस्त्रास्त्र प्राप्त हुए। (मं. ३) और उन शस्त्रोंसे उसने शत्रुका पराभव किया।

९ दुर्मदः अयोद्धा (इन्द्रं) आ जुह्वे-घमण्डी और अपने को अजिंक्य समझनेवाले वृत्रने इन्द्रको लडनेके लिये आह्वान दिया। उस शत्रुने यह समझा था कि अपनी शक्ति अधिक है और इन्द्रकी कम है, इस घमण्डमें वह था और उसने आह्वान दिया था। (मं. ६)

१० वृत्रतरं वृत्रं अहन्— वृत्र नामक शत्रु (वृत्रतरः) चारों ओरसे घेरकर रहा था। उसका विचार था कि इन्द्रकी सेनाको चारों ओरसे घेरकर मारना, परंतु यह कपट इन्द्रने जान लिया और उसीका वध किया। (मं. ५)

११ अस्य वधानां समृतिं न अतारीत्— इन्द्रके द्वारा हुए अनेक आघातोंको वह वृत्र न सह सका। शत्रुपर ऐसे ही हमले करने चाहिये। (मं. ६)

१२ विद्युत्, तन्यतुः, मिहं, ह्रादुनिः अस्मै न सिषेध— बिजलियाँ, मेघगर्जनाएं, बडी वृष्टि, बर्फकी वर्षा, बिजलियोंका गिरना आदि आपत्तियाँ इन्द्रको न रोक सकीं। इन्द्र जिस समय शत्रुपर हमला करने लगा था, उस समय ये विघ्न होने लगे थे, पर इन्द्रका हमला होता रहा। शत्रु परास्त होने-तक इन्द्रने विघ्नोंकी पर्वाह न करते हुए हमला किया और अन्त-में विजय पाया। (मं. १३)

१३ यत् जघ्नुषः हृदि भीः अगच्छत्, अहेः यातारं कं अपश्यः ?— जब इस हमला करनेवाले इन्द्रके हृदयमें भय उत्पन्न होता, तो उस युद्धके समय कौन दूसरा सहायक मिलता ? अर्थात् कोई नहीं। इस कारण न डरते हुए हमला चढाते रहना चाहिये। (मं. १४)

१४ इन्द्रः महता वधेन वृत्रं व्यंसं अहन्, अहिः पृथिव्याः उपपृक् शयते— इन्द्रने अपने बडे प्रभावी शस्त्रसे वृत्रके हाथ काट दिये और उसका वध किया, तत्पश्चात् वह वृत्र पृथ्वीके ऊपर गिर पडा। (मं. ५) यहां वृत्र और अहि ये एकके ही वाचक दो पद हैं।

१५ इन्द्रशत्रुः रुजानाः सं पिपिंषे— वृत्र जो इन्द्रका शत्रु था, वह मरकर जब गिरा, तब उससे पृथ्वी चूर्ण हुई (मं. ६)

१६ अपात् अहस्तः वृत्रः इन्द्रं... पांव टूट जानेपर भी सेनाके साथ वृत्र युद्ध कर है (मं. ७)

१७ अस्य सानौ अधि वज्रं आ पुरुत्रा व्यस्तः अशयत्— वृत्रके शिरपर प्रहार किया, तब वह बहुत जगह घायल होक होकर भूमिपर गिर गया। (मं. ७)

१८ वधिः वृष्णः प्रतिमानं... पौरुषशक्तिसंपन्न वीरसे स्पर्धा करे, वैसी स्पर्धा वृत्र साथ की। (मं. ७)

१९ वृत्रः महिना पर्यतिष्ठत्, अहिः शीः बभूव- वृत्र अपनी शक्तिसे जिनके शिरपर उनकेही पांवोंके तले अब वह गिर पडा है। (मं.

२० सूः उत्तरा, पुत्रः अधरः आसीत्, वधः जभार— माता ऊपर और पुत्र नीचे था अपने पुत्रकी सुरक्षा करनेकी इच्छासे उसपर गि पुत्र बचे और उसके बदले में मर जाऊंगी, ऐसा थी, पर इन्द्रने नीचेसे वज्र फेंककर वृत्रको मार दि

इस तरह इस सूक्तमें युद्धनीतिका उपदेश है, मंत्रार्थ देखकर तथा आगे पीछेके मंत्रभागोंको देखकर जान सकते हैं। यहां कुछ मंत्रभाग नमूनेके इससे अधिक विवरण करनेकी यहां आवश्यकता नहीं

अलंकार

यह कथा आलंकारिक है। वृत्र, अहि आदि ये हैं ऐसा भाष्यकार, निरुक्तकार और निघंटुकारका समयतक सब ऐसा ही मानते आये हैं। पर नहीं होता। इसके कारण यहां देते हैं—

१ द्यां उपसं सूर्यं जनयन्, शत्रुं तारीत्, त्से किल (मं. ४)- द्युलोकमें उषा चमक उठी, हुआ, इसके बाद एक भी शत्रु न रहा। सूर्यका शत्रुका न होना, यदि मेघरूप शत्रु वृत्र, अहि आदि ऐसा माना जाय तो, मेघरूप शत्रुका नाश होना संभव सूर्य उदय होनेसे मेघ पिघलते नहीं। सूर्य प्रकाशित मेघ आकाशमें रहते हैं। अतः अहि वृत्ररूप चाहिये कि जो सूर्य आते ही विनष्ट होता जाय और बहता जाय। मेघसे तो ऐसा नहीं होता। पहाडोंप

रणोंसे पिघलना संभव है। किरणोंसे पहाडों और भूमिपर र्फ पिघलता है, यह हम देखते हैं। वैसे मेघ सूर्य आनेसे प्रकाशसे पिघलते नहीं हैं, इसलिये सूर्यका उत्पन्न या होना और शत्रुका नाश होना, मेघके विषयमें सत्य नहीं रंतु बर्फके विषयमें सत्य है।

अहिं अहन्. अपः ततर्द, पर्वतानां वक्षणाः प्र नत (मं. १) अहिको मारा, पानी बहाया, पर्वतोंसे नदियां ।। पर्वतोंपरका बर्फ पिघलनेसे सिंधु, गंगा आदि नदियोंका , बडा पूर आकर भरपूर भरना, प्रत्यक्ष दीखता है।

पर्वते शिश्रियाणं अहिं अहन्। आपः समुद्रं तस्थुः (मं २)-पर्वत पर रहे अहिको मारा और जल तक बहता गया। पर्वतपरका बर्फ पिघलनेसे नदियोंमें महा- गया, जिससे पानी समुद्रतक पहुंचा। गंगा आदि नदियों र्फ पिघलनेसे ही गर्मियोंके दिनोंमें महापूर आते हैं।

अहिः पृथिव्याः उप पृक् शयते (मं. ५)-अहि पर लेटता हुआ सोता है। पृथ्वीपर अहि अथवा वृत्रका ाना, उसको बर्फ की दशामें स्वीकार करनेसे ही, हो सकता मेघ कभी मेघ-दशामें पृथ्वीपर सोता नहीं। इस लिये अही वृत्र ये पद बर्फके वाचक मानना युक्तियुक्त है। बर्फ तो ीपर भी गिरता है और भूमिपर भी। वहां सूर्य-किरणोंसे लता है और उसके पानीसे नदियां महापूरसे भरपूर भरती समुद्रतक जाती हैं।

इन्द्रशत्रुः रुजानाः सं पिपिषे (मं. ६)-इंद्रशत्रु नदियोंको तोड देता है। इन्द्र-शत्रु सूर्य-किरणोंका शत्रु यह लीजिये। सूर्यके प्रकट होनेसे वह पिघलकर पानीका महा- आया, उससे नदियोंके तीर टूट गये और नदियां बढकर बहने । वृत्रको मेघ माननेकी अपेक्षा हिम-बर्फ-माननेसे यह युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

अमुया शयानं आपः अतियन्ति (मं. ८)-इस के साथ सोनेवाले (इस वृत्र परसे) जल-प्रवाह लांघकर जाते यहां 'अमुया शयानं' ये पद वृत्र पृथ्वीके साथ सोया का यह भाव स्पष्ट बतलाते हैं। मेघकी अपेक्षा हिमकणका ही पृथ्वीपर सोया पडा रहता है और पानी भी उससे ढूंढ ता है, विशेष कर सूर्य-किरणोंके पानीके प्रवाह उससे बहते है हैं, यह बात स्पष्ट है।

७ काष्ठानां मध्ये वृत्रस्य शरीरं निण्यं निहितं, आपः विचरन्ति, इन्द्रशत्रुः दीर्घं तमः आशयत् (मं. १०)— प्रवाहोंके बीचमें वृत्रका शरीर छिपा पडा, उससे जल-प्रवाह बहने लगे, इन्द्र शत्रु इस वृत्रने बडा दीर्घ अन्धकार छा दिया। जल-प्रवाहोंमें वृत्रका शरीर छिपा पडा यह बात वृत्रके बर्फ होनेसेही ठीक सिद्ध हो सकती है। क्यों कि पृथ्वीपरका बर्फ पिघलने लगा और भूमिपर महा पूर आया तो बीचमें बर्फके ऊपरसे भी जल-प्रवाहोंका बहना स्वाभाविक है। मेघके विषयमें यह नहीं हो सकता। 'वृत्र' आवरकको कहते हैं। यह बर्फ भूमिपर गिरनेसे वह भूमिपर आच्छादनसा पडता है, इसलिये भूमि तथा पहाडोंपर गिरनेवाले बर्फको वृत्र न म आवरक होनेसे ठीक प्रतीत होता है। 'अही' (अ-ही) उसको कहते हैं कि जो कम न हो, अर्थात् हिम-कालमें बर्फ गिरता जाता है और वह बढता जाता है, इसलिये उसको यह नाम है। यह दीर्घ अन्धेरा पृथ्वीपर फैलाता है। दीर्घ अन्धेरा मेघ नहीं फैलाते, दिनके समय मेघ आनेसे सूर्य-दर्शन नहीं होता पर अन्धेरा नहीं होता। बर्फका गिरना और दीर्घ रात्रिके अन्धे- रेका होना यह बात उत्तरीय ध्रुव प्रदेशमेंही होनेवाली है। दीर्घ अन्धेरा मेघोंसे नहीं होता, न प्रतिदिनकी रात्रिका होता है, दीर्घ तम तो वही है जो छः मासकी प्रदीर्घ रात्रि उत्तरीय ध्रुवमें होती है, उसमें होता है। वेदमें 'दीर्घ तम' इसी प्रदीर्घ रात्रिके अन्धेरेको कहा है। रात्रिका प्रारंभ, (दीर्घ तमः) प्रदीर्घ अन्धकारका प्रारंभ, बर्फ गिरनेका प्रारंभ, उस बर्फसे भूमिका (वृत्र) आवरण होना, वह बर्फका आच्छादन (अ-हि) कम न होना, इस समय विद्युत्प्रकाश (इन्द्र) का होना, छः मासोंके बाद आकाशमें उषाका होना, अनेक उषाओंके बाद सूर्यका आना, इन्द्रके द्वारा सूर्यको ऊपर आकाशमें चढाना, सूर्य आने- पर बर्फ (वृत्र) का नाश होनेका प्रारंभ होना, पश्चात् जल- प्रवाहोंके महापूरोंसे नदियोंका भरना इत्यादि सब बातें उसी उत्तरीय प्रदेशोंमें प्रत्यक्ष दीखनेवाली हैं। प्रतिवर्ष वैसीही होनेके कारण ये घटनाएं सनातन भी हैं। यह वर्णन ऐसाही प्रतिवर्ष होता रहेगा। इसलिये इस सनातन घटनापर किये हुए मन्त्र के लिये सनातन बोध देने इसमें संदेह नहीं है।

८ आपः निरुद्धाः आसन्, यत्रा विप्रे अपिहिते आसीत्, तत् सूर्ये उदयन्तः सप्त ददर्श (मं. ११)— जल-प्रवाह रुके थे, उनका द्वार (बहना) बंद था, वह

वृत्रका वध करके खोल दिया गया। सब जानते हैं कि 'बर्फ' ही जलके प्रवाहित रूपकी प्रतिबंधक स्थितिका नाम है। मेघमें भाप रहती है, जल नहीं। परंतु बर्फमें रुका हुआ जलही रहता है। सूर्य-किरण लगतेही वही रुका, जमा हुआ, जल पिघलकर बहने लगता है। इसलिये वृत्र-वध और जल-प्रवाह साथही साथ होनेवाली बात है।

इस तरह इन्द्र×वृत्र-युद्ध किरण×बर्फ-युद्धही है। सूर्य-किरणसे बर्फका वध निःसंदेह होताही है। मेघोंके साथ यह घटना हमेशाही होगी, ऐसी बात नहीं है। निरुक्तकारने 'पर्वत' का भी अर्थ 'मेघ' किया है, पर पर्वतका अर्थ 'बर्फाच्छादित पर्वत' समझनेपर वहां सूर्य-किरणोंसे वृत्रनाश होना और पर्वतोंसे नदियोंका बहना प्रत्यक्ष दीख सकता है। इसलिये 'पर्वत' पदका अर्थ 'मेघ' करनेकी अपेक्षा बर्फाच्छादित पर्वत-शिखर करना युक्ति युक्त है।

९ **वृत्रं जघन्वान्,(मं.११) सोमं अजयः-गा अजयः सप्त सिन्धून् सर्तवे अव असृजः** (मं. १२)— वृत्र का वध किया, सोमादि वनस्पतियाँ प्राप्त कीं, गौवें प्राप्त कीं, और सातों सिन्धु नदियोंका जल प्रवाहित कर दिया, सातों नदियाँ महापूरसे भर कर बहने लगीं। वृत्र-वधके बनस्पतियोंकी प्राप्ति होनेका वर्णन पर्वतशिखर रहता है, वह पिघलनेपर वहांकी सोमवनस्पतियों संभव है। बर्फके पिघलनेसे सात सिन्धुओंका बहना प्रसिद्ध है और प्रत्यक्ष दीखनेवाला चमत्कार है। सोमवल्ली बर्फानी शिखरोंपर होती है, १५००० बर्फ-स्थानमें ही उत्कृष्ट सोम उगता है। वह बर्फाच्छादित होता है, बर्फ पिघलनेपर सोम मिल के रूपमें वृत्रवध इस तरह सत्य है, मेघ-रूपमें वे प्रत्यक्ष नहीं हैं।

इस तरह सूक्तके सबके सब वर्णन बर्फके रूपमें वैसे मेघके रूपमें सबके सब घटते नहीं, इसलिये मानना योग्य है। इसका विचार आगे भी होगा। अनुसंधान रखें।

वेदका धर्म रूपकालंकारसे प्रकट होता है। वह सूक्तसे प्रकट हुआ है, वह सनातन उपदेश है। वीरके गुण भी वर्णन किये हैं। पाठक इनको मंत्र

(३) युद्धविद्या

(ऋ. १।३३) हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्।

एतायामोप गव्यन्त इन्द्रमस्माकं सु प्रमतिं वावृधाति।
अनामृणः कुविदादस्य रायो गवां केतं परमावर्जते नः॥ १
उपेदहं धनदामप्रतीतं जुष्टां न श्येनो वसतिं पतामि।
इन्द्रं नमस्यन्नुपमेभिरर्कैर्यः स्तोतृभ्यो हव्यो अस्ति यामन्॥ २
नि सर्वसेन इषुधीँरसक्त समर्यो गा अजति यस्य वष्टि।
चोष्कूयमाण इन्द्र भूरि वामं मा पणिर्भूरस्मदधि प्रवृद्ध॥ ३
वधीर्हि दस्युं धनिनं घनेनँ एकश्चरन्नुपशाकेभिरिन्द्र।
धनोरधि विषुणक् ते व्यायन्नयज्वानः सनकाः प्रेतिमीयुः॥ ४
परा चिच्छीर्षा ववृजुस्त इन्द्राऽयज्वानो यज्वभिः स्पर्धमानाः।
प्र यद् दिवो हरिवः स्थातरुग्र निरव्रताँ अधमो रोदस्योः॥ ५
अयुयुत्सन्ननवद्यस्य सेनामयातयन्त क्षितयो नवग्वाः।
वृषायुधो न वध्रयो निरष्टाः प्रवद्भिरिन्द्राच्चितयन्त आयन्॥ ६
त्वमेतान् रुदतो जक्षतश्चायोधयो रजस इन्द्र पारे।
अवादहो दिव आ दस्युमुच्चा प्र सुन्वतः स्तुवतः शंसमावः॥ ७

चक्राणासः परीणहं पृथिव्या हिरण्येन मणिना शुम्भमानाः ।
न हिन्वानासस्तितिरुस्त इन्द्रं परि स्पशो अदधात् सूर्येण ८
परि यदिन्द्र रोदसी उभे अबुभोजीर्महिना विश्वतः सीम् ।
अमन्यमानाँ अभि मन्यमानैर्निर्ब्रह्मभिरधमो दस्युमिन्द्र ९
न ये दिवः पृथिव्या अन्तमापुर्न मायाभिर्धनदां पर्यभूवन् ।
युजं वज्रं वृषभश्चक्र इन्द्रो निर्ज्योतिषा तमसो गा अदुक्षत् १०
अनु स्वधामक्षरन्नापो अस्याऽवर्धत मध्य आ नाव्यानाम् ।
सभ्रीचीनेन मनसा तमिन्द्र ओजिष्ठेन हन्मनाहन्नभि द्यून् ११
न्याविध्यदिलीविशस्य दृळ्हा वि शृङ्गिणमभिनच्छुष्णमिन्द्रः ।
यावत्तरो मघवन् यावदोजो वज्रेण शत्रुमवधीः पृतन्युम् १२
अभि सिध्मो अजिगादस्य शत्रून् वि तिग्मेन वृषभेणा पुरोऽभेत् ।
सं वज्रेणासृजद् वृत्रमिन्द्रः प्र स्वां मतिमतिरच्छाशदानः १३
आवः कुत्समिन्द्र यस्मिञ्चाकन् प्रावो युध्यन्तं वृषभं दशद्युम् ।
शफच्युतो रेणुर्नक्षत द्यामुच्छ्वैत्रेयो नृषाह्याय तस्थौ १४
आवः शमं वृषभं तुग्र्यासु क्षेत्रजेषे मघवञ्छ्वित्र्यं गाम् ।
ज्योक् चिदत्र तस्थिवांसो अक्रञ्छत्रूयतामधरा वेदनाकः १५

अन्वयः- आ इत गन्यन्तः (वयं) इन्द्रं उप स्याम । सृणः (इन्द्रः) अस्माकं प्रमतिं सु वावृधाति ! आत् न रायः गवां परं केतं नः कुवित् आवर्जते ॥१॥

श्येनः न (सं) धनदां अप्रतीतं इन्द्रं उपमेभिः अर्कैः नमस्यन् उप इत् पतानि । यः स्तोतृभ्यः मघवा हव्यः अस्ति ॥ २ ॥

सर्वसेनः इषुधीन् नि असक्त, अर्यः यस्य धृष्टि गाः सं अयति । हे प्रवृद्ध इन्द्र ! भूरि दानं ओष्कृयमाणः, अस्मत् अधि पणिः मा भूः ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! उप दाशेभिः एकः चरन् धनिनं दस्युं धनेन धीः हि । धनोः अधि विषुणक् ते वि आयन् । अकर्तवः सचाः प्र-दर्तिं ईयुः ॥ ४ ॥

अर्थ— आओ ! गायें प्राप्त करनेकी इच्छासे (हम) इन्द्र के पास जायंगे । जिसका कभी पराजय नहीं होता (ऐसा यह इन्द्र) हमारी बुद्धि उत्तम रीतिसे बढायेगा । निःसंदेह इसकी (भक्ति) धनों और गायोंकी प्राप्तिका श्रेष्ठ ज्ञान हमें प्रदान करेगी ॥ १ ॥

जैसा श्येन पक्षी अपने रहनेके घोसलेके पास दौडता है, वैसा (उस) धनदाता और अपराजित इन्द्रके पास, मैं उपासनाके योग्य स्तोत्रोंसे नमन करता हुआ, जा पहुंचता हूँ, यह (इन्द्र) भक्तोंके लिये युद्धके समय (सहायार्थ) बुलाने योग्य है ॥ २ ॥

सब सेनाओंके (सेनापति इन्द्र हैं, वे) तर्कसोंको (अपने पीठपर) धारण करते हैं, वे स्वामी (इन्द्र) जिसको (देना) चाहते हैं उसके पास गायें भेजते हैं । हे श्रेष्ठ इन्द्र ! हमें बहुत श्रेष्ठ धन देनेकी इच्छा करते हुए हमारे साथ बनियां जैसा व्यवहार न करना ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! शक्तिशाली वीरोंके साथ हमला करते हुए मैं (आपमें तुम) अकेलेने ही चढाई करके धनी दस्यु (दूसरोंका अपने) प्रचण्ड वज्रसे वध किया । तब (दुश्मने) धनुष्योंके ऊपर विशेष आशा होनेके लिये आये, वे सब चढाई करने लगे । (अर्थात् आपसमें ही) दल न बनानेसे हमारे शत्रु कोई भाग गए ॥ ४ ॥

द्र ! अयज्वनः यज्वभिः रपर्धमानाः ते नीचा परा
जुः । हे हरिवः स्थातः उग्र ! यत् दिवः रोदस्योः
नेः प्र अधमः ॥ ५ ॥

यस्य सेनां अयुयुत्सन्, नवग्वाः क्षितयः अगात-
वृषायुधः वध्रयः न निरष्टाः चित्रगन्तः, इन्द्रात्
आयन् ॥ ६ ॥

न्द्र ! त्वं रुदतः जक्षतः च एतान् रजसः पारे अयो-
स्युं दिवः आ उच्चा अव अदहः सुन्वतः स्तुवतः
आवः ॥ ७ ॥

येन मणिना शुम्भमानाः पृथिव्या परिणहं चक्रा-
न्वानासः ते इन्द्रं न तितिरुः । स्पशः सूर्येण परि
॥ ८ ॥

न्द्र ! यत् उभे रोदसी महिना विश्वतः सीं परि
अवुभाजीः । हे इन्द्र! अमन्यमानान् अभि मन्यमानैः ब्रह्मभिः
दस्युं निः अधमः ॥ ९ ॥

ये दिवः पृथिव्याः अन्तं न आपुः । धनदां मायाभिः न
पर्यभूवन् । वृषभः इन्द्रः वज्रं युजं चक्रे । ज्योतिषा तमसः
गाः निः अधुक्षत् ॥ १० ॥

आपः अस्य स्वधां अनु अक्षरन् । नाव्यानां मध्ये आ
अवर्धत । इन्द्रः सप्रथीचीनेन मनसा तं ओजिष्ठेन हन्मना
अभि धूनुं अहन् ॥ ११ ॥

हे इन्द्र ! स्वयं यज्ञ न करनेवाले (ये शत्रु) स्पर्धा करनेके कारण अपना सिर घुमा कर दूर
चीजोंको जोतनेवाले, युद्धमें स्थिर उग्र वीर इन्द्र
द्युलोक अन्तरिक्ष और पृथ्वीमें धर्मयज्ञ-हीन दुष्टोंके
है ॥ ५ ॥

निर्दोष (इन्द्र) की सेनाके साथ युद्ध करनेकी
शत्रुओंने) की, तब नवीन गतिसे मानवोंने (इ
उस शत्रुपर) चढाई की । बलिष्ठ शूर पुरुषोंके
करनेमें जो गति) नपुंसककी होती है, वैसीही,
होकर (उनकी हो गयी और वे अपनी निर्बलता
इन्द्रसे दूर भागते गये ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! तुमने रोनेवाले या हंसनेवाले इन
लोकके परे युद्ध करके (भगा दिया) । इस दस्
को द्युलोकसे खींच कर (नीचे लाकर) अच्छी
दिया और सोम-याजकों तथा स्तोताओंकी स्तुति
रक्षा की ॥ ७ ॥

सुवर्णों और रत्नोंसे (अपने आपको) शोभा
पृथ्वीके ऊपर अपना प्रभाव (शत्रुओंने) जमाया
बढतेही जाते थे, (पर) वे इन्द्रके साथ (युद्धमें
सके । (अन्तमें शत्रुके) अनुचारोंको सूर्यके द्वारा
पूजा ॥ ८ ॥

हे इन्द्र ! जब दोनों द्यु और भू लोकोंका अ
चारों ओरसे सब प्रकार (तुमने) उपभोग लिया,
न माननेवालोंको (अर्थात् नास्तिकोंको भी)
(आस्तिकोंके) द्वारा ज्ञान (पूर्वक की गयी
नाओं) से शत्रुको परास्त किया ॥ ९ ॥

जो द्यु लोकसे पृथ्वीतकके (आवकाशका) अ
माण न जान सके, जो धनदाता (इन्द्र) को कप
भी पराभव न कर सके । (तब) बलवान् इन्द्रने वज्र
पकड लिया और प्रकाश द्वारा अन्धकारमेंसे गौओं
(कर प्राप्त करके, उसने उनका) दोहन किया ॥

जल-प्रवाह इसके अन्नके अनुसार (खेतमेंसे)
(परंतु वृत्र) नौकाओंद्वारा प्रवेश करने योग्य (नदि
बढ रहा था । इन्द्रने धैर्ययुक्त मनसे उस (शत्रु
वान् घातक (वज्र) से कुछ एक दिनोंकी (अवधि
दिया ॥ ११ ॥

-दिशस्य दृह्हा इन्द्रः नि अविध्यत्। शृङ्गिणं शुष्णं नत्। हे मघवन्! यावत् तरः, यावत् ओजः पृतन्युं ग अवधीः ॥ १२ ॥

। सिध्मः शत्रून् अभि अजिगात्। तिग्मेन वृषभेण रः वि अभेत्। इन्द्रः वज्रेण सं अस्रजत्। शासदानः तिं प्र अतिरत्॥ १३ ॥

न्द्र! यस्मिन् चाकन् कुत्सं आवः। युध्यन्तं वृषभं र आवः। शफच्युतः रेणुः गां नक्षत। श्वैत्रेयः नृम-त् तस्थौ ॥ १४ ॥

मघवन्! क्षेत्रजेषे शमं वृषभं तुग्र्यासु गां श्वित्र्यं क्षत्र ज्योक् चित् तस्थिवांसः अवन्, शयृधतां वेदना अकः ॥ १५ ॥

भूमिपर सोनेवाले (वृत्र) के सुदृढ (सैन्यों वा किलोंका) इन्द्रने वेध किया। और सींगवाले शोषक (वृत्र) को छिन्नभिन्न किया। हे धनवान् इन्द्र! (तुम्हारा) जितना वेग और जितना बल था, (उतनेसे तुमने) सेनाको साथ रखकर लडनेवाले शत्रुका वज्रसे वध किया ॥१२॥

इस (इन्द्र) का वज्र शत्रुओंके ऊपर आक्रमण करने लगा। तीक्ष्ण और बलशाली वज्रसे (उस इन्द्रने शत्रुके) नगरोंको तोड डाला। इन्द्रने वज्रसे (शत्रुपर) सम्यक् प्रहार किया। (तब) शत्रुनाशक (इन्द्रने) अपनी उत्तम विशाल बुद्धि प्रकट की ॥१३॥

हे इन्द्र! जिसमें (तुमने अपनी कृपा) रखी, उस कुत्सकी (तुमने) सुरक्षा की। युध्यमान बलवान् दशद्युकी (भी तुमने) रक्षा की। (उस समय तुम्हारे घोडोंके) खुरोंसे उडी धूली द्युलोक तक फैल गयी थी। श्वैत्रेय भी सब मानवोंमें अधिक समर्थ होनेके लिये (तुम्हारी कृपासे) ऊपर उठ गया ॥१४॥

हे धनवान् इन्द्र! क्षेत्र-प्राप्तिके युद्धमें शान्त व शयान, परंतु जलप्रवाहोंमें डूबनेवाले श्वित्रकी (तुमने) रक्षा की। वहां बहुत समय तक ठहरे हुए (हमारे शत्रु हमसे युद्ध) कर रहे थे, उन शत्रुओंको नीचे गिराकर (तुमने) ही दुःख दिया ॥१५॥

मंत्र-भागोंमें युद्धनीतिका बहुत वर्णन है। पाठक इन मंत्रोंका विचार करके युद्धनीतिका ज्ञान प्राप्त करें।

वृत्रका स्वरूप

सूक्तमें वृत्रका स्वरूप बतानेवाला यह वाक्य है—

नाठ्यानां मध्ये आ अवर्धत (मं. ११)—नदियोंमें (वृत्र) बढ रहा था। अर्थात् यह वृत्र मेघ नहीं होता, क्यों कि नदियोंमें मेघ नहीं होता, नदियोंमें बर्फ होता है। सर्दीके दिनोंमें कई नदियोंके जल बर्फ बनकर सख्त पत्थर जैसे होते हैं। रूसमें ऐसी नदियाँ बहुत हैं, जिनके जल-प्रवाह भूमि जैसे सख्त होते हैं। और उसपरसे मनुष्य तथा यान भी जा सकते हैं। यही नदियोंमें वृत्रका बढना है। इससे स्पष्ट होता है कि वृत्र मेघ नहीं है, परंतु बर्फ है।

यह सूक्त युद्धविषयक ज्ञान अति स्पष्ट रूपसे देता है, इस लिये क्षात्र विद्याका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये इसका विशेष मनन होना योग्य है। शेष बातें मंत्रोंके अर्थमेंही स्पष्ट हैं।

(४) आरोग्य और दीर्घायु

(ऋ. १।३४) हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः। आश्विनौ। जगती; ९,१२ । त्रिष्टुप्।

त्रिश्चिन् नो अद्या भवतं नवेदसा विभुर्वां याम उत रातिरश्विना।
युवोर्हि यन्त्रं हिम्येव वाससोऽभ्यायंसेन्या भवतं मनीषिभिः १
त्रयः पवयो मधुवाहने रथे सोमस्य वेनामनु विश्व इद् विदुः।
त्रयः स्कम्भासः स्कभितास आरभे त्रिर्नक्तं याथस्त्रिर्वश्विना दिवा २
समाने अहन् त्रिरवद्यगोहना त्रिरद्य यज्ञं मधुना मिमिक्षतम्।
त्रिर्वाजवतीरिषो अश्विना युवं दोषा अस्मभ्यमुपसश्च पिन्वतम् ३
त्रिर्वर्तिर्यातं त्रिरनुव्रते जने त्रिः सुप्राव्ये त्रेधेव शिक्षतम्।
त्रिर्नान्द्यं वहतमश्विना युवं त्रिः पृक्षो अस्मे अक्षरेव पिन्वतम् ४
त्रिर्नो रयिं वहतमश्विना युवं त्रिर्देवताता त्रिरुतावतं धियः।
त्रिः सौभगत्वं त्रिरुत श्रवांसि नस् त्रिष्ठं वां सूरे दुहिता रुहद् रथम् ५
त्रिर्नो अश्विना दिव्यानि भेषजा त्रिः पार्थिवानि त्रिरु दत्तमद्भ्यः।
ओमानं शंयोर्ममकाय सूनवे त्रिधातु शर्म वहतं शुभस्पती ६
त्रिर्नो अश्विना यजता दिवेदिवे परि त्रिधातु पृथिवीमशायतम्।
तिस्रो नासत्या रथ्या परावत आत्मेव वातः स्वसराणि गच्छतम् ७
त्रिरश्विना सिन्धुभिः सप्तमातृभिस् त्रय आहावास्त्रेधा हविष्कृतम्।
तिस्रः पृथिवीरुपरि प्रवा दिवो नाकं रक्षेथे द्युभिरक्तुभिर्हितम् ८
का श्री सखा सख्यस्य शेवधिः कया धिया नः प्रपणो वि पस्यते।
कथा योगो वाजिनो रासभस्य येन यज्ञं नासत्योपयाथः ९
आ नासत्या गच्छतं हूयते हविर्मध्वः पिबतं मधुपेभिरासभिः।
युवोर्हि पूर्वं सवितोषसो रथमृताय चित्रं घृतवन्तमिष्यति १०
आ नासत्या त्रिभिरेकादशैरिह देवेभिर्याथो मधुपेयमश्विना।
प्रायुस्तारिष्टं नी रपांसि मृक्षतं सेधतं द्वेषो भवतं सचाभुवा ११
आ नो अश्विना त्रिवृता रथेनाश्वावतां रयिं वहतं सुवीरम्।
शृण्वन्ता वामवसे जोहवीमि वृधे च नो भवतं वाजसातौ १२

अन्वयः–हे नवेदसा अश्विना! त्रिः चित् अद्य नः भवतम्। वां यामः विभुः उत रातिः (विभुः)। युवोः सन्तं हि, वासयः हिरण्या इव। मनीषिभिः अभ्यायंसेन्या भवतम् ॥ १ ॥

मधुवाहने रथे पवयः त्रयः। इत् त्रिषे सोमस्य नेनां अनु विदुः। स्वश्वासः त्रयः स्वभितासः आरभे। हे अश्विना! नक्तं त्रिः याथः, दिवा त्रिः उ ॥ २ ॥

हे अश्विना। युवं समाने अहन् त्रिः अवसगोहना (भवतं)। अद्य यज्ञं मधुना त्रिः मिमिक्षतम्। दोषाः उषसः च वाजवतीः इषः त्रिः अस्मभ्यं पिन्वतम् ॥ ३ ॥

हे अश्विना! युवं त्रिः वर्तिः यातं। अनुव्रते जने त्रिः (गच्छतं)। सुप्राव्ये त्रिः। त्रेधा इव शिक्षतम्। नान्यं त्रिः वहतम्। अस्मे, अक्षरा इव, पृक्षः त्रिः पिन्वतम् ॥ ४ ॥

हे अश्विना। युवं नः रयिं त्रिः वहतम्। देवताता त्रिः उत धियः त्रिः अवतम्। सौभगत्वं त्रिः, उत श्रवांसि नः त्रिः (वहतं)। वां त्रिष्ठं रथं सूरे दुहिता आरुहत् ॥ ५ ॥

हे अश्विना! नः दिव्यानि भेषजा त्रिः, पार्थिवानि त्रिः, अद्भ्यः उ त्रिः दत्तम्। शंयोः ओमानं ममकाय सूनवे (ददम्)। हे शुभस्पती! त्रिधातु शर्म वहतम् ॥ ६ ॥

हे अश्विना! दिवे दिवे यजता नः पृथिवीं परि त्रिधातुः त्रिः अशायतम्। हे रथ्या नासत्या! परावतः तिस्रः, स्वसराणि आत्मा इव, गच्छतम् ॥ ७ ॥

हे आश्विनाः सप्त मातृभिः सिन्धुभिः त्रिः, आहावा त्रयः, त्रेधा हविः कृतम्। तिस्रः पृथिवीः उपरि प्रवा दिवा शुभिः अक्तुभिः हितं नाकं रक्षेथे ॥ ८ ॥

अर्थ–हे ज्ञानी अश्विनो! तीन बार आज हमारे पास आओ। आपका सामर्थ्य महान् है और (आपका) मन्त्र है)। तुम दोनोंका संबंध, दिन और रात्रिके तुल्यिमानोंके साथ नित्य संबंध रखनेवाले हो जाओ॥

तुम्हारे मधुर अन्न लानेवाले रथमें तीन स्तोता गानेवाले सोमका सेनाके (साथ नित्यही संबंध होते जाता था। उस (रथमें) तीन स्तम्भ आश्रयके लिये हे अश्विदेवो! (इस रथसे तुम दोनों) रात्रीमें तीन दिनमें तीन बार जाते हैं ॥ २ ॥

हे अश्विदेवो! तुम एकही दिनमें तीन बार पधारो (हो)। आज हमारे यज्ञपर मधुर रसकी तीन बार रात्रिमें और उषाके (पश्चात् आनेवाले दिनमें) तीन बार हमारा पोषण करो ॥ ३ ॥

हे अश्विदेवो! तुम तीन बार निवासस्थानके अनुकूल कार्य करनेवाले मनुष्यके पास तीनबार रक्षाके लिये तीन बार जाओ। तीन बार शिक्षा दो। वाला फल (हमें) तीन बार लेते आओ। हमें, अन्न भी तीन बार दो ॥ ४ ॥

हे अश्विदेवो! तुम हमारे लिये धन तीन बार दो देवताओंके यज्ञमें तीन बार आओ और हमारी सुरक्षा तीन बार करो। सौभाग्य तीन बार दो और तीन बार (दो)। तुम्हारे तीन चक्रवाले रथपर चढी है ॥ ५ ॥

हे अश्विदेवो! हमें दिव्य औषधि तीन बार दो औषधि तीन बार दो और जलोंसे (अन्तरिक्षसे) दो। शंयुकी (जैसी) सुरक्षा (की थी वैसी) लिये (सुरक्षा दो)। हे शुभके रक्षको! तीन धातुकी सुरक्षासे हमें) सुख दो ॥ ६ ॥

हे अश्विदेवो! प्रतिदिन यज्ञ करनेवाले हम पृथ्वीपर तीन धातुओंकी शक्ति लेते हुए तीन बार विश्राम करो। हे रथी वीरो! हे सत्य-पालको! तीन बार, शरीरोंमें आत्मा घुसनेके समान, आओ ॥

हे अश्विदेवो! माताओंके समान सात नदियों(के तीन (पात्र भर दिये हैं, यहां) रस पात्र तीन हैं, का हवि किया है। तीन पृथ्वी (के भागों) पर दिनों और रात्रियोंसे रखे सूर्यकी सुरक्षा तुमने की थी

नासत्या ! त्रिवृतः रथस्य त्री चक्रा क्व ? ये सनीळाः
त्रयः क्व ? वाजिनः रासभस्य योगः कदा ? येन
उपयाथः ॥ ९ ॥

हे सत्यके रक्षको ! तुम्हारे त्रिकोणाकृति रथके तीन चक्र कहां हैं ? जो बैठनेकी अच्छी बंधी बैठकें तीन हैं, वे कहां हैं ? बलवान् गर्दभको जोडना कब होगा, जिससे तुम इस यज्ञमें आते हो ? ॥ ९ ॥

नासत्या ! आगच्छतं, हविः हूयते । (युवां) मधु-
आसभिः मध्वः पिबतम् । सविता उषसः पूर्वं युवोः
घृतवन्तं रथं ऋताय इष्यति हि ॥ १० ॥

हे सत्यके पालको ! आओ, (यहां) हवन किया जाता है। (तुम दोनों) मधुर रस पीनेवाले (अपने) मुखोंसे इस मधुर रसका पान करो। सविताने उषाके पूर्वही तुम्हारे सुन्दर घीसे भरपूर भरे रथको सत्यके मार्गसे प्रेरित किया है ॥ १० ॥

नासत्या अश्विना ! त्रिभिः एकादशैः देवेभिः मधु-
इह आ यातम् । आयुः प्र तारिष्टं, रपांसि नि मृक्षतं,
सेधतं, सचाभुवा भवतम् ॥११॥

हे सत्यके रक्षक अश्विदेवो ! तीन वार ग्यारह (अर्थात्) तैंतीस देवोंके साथ मधुर रसका पान करनेके लिये यहां आओ। हमारी आयुको बढाओ, दोषोंको दूर करो, द्वेषियोंको रोक दो और (तुम) हमारे साथ रहो ॥ ११ ॥

अश्विना ! त्रिवृता रथेन नः अर्वाञ्चं सुवीरं रयिं
वहतम् । शृण्वन्ता, अवसे वां जोहवीमि । वाजसातौ
वृधे च भवतम् ॥१२॥

हे अश्विदेवो ! त्रिकोण रथसे हमारे पास उत्तम वीरोंसे युक्त धन ले आओ। (तुम) सुनो, हमारी सुरक्षाके लिये हम तुम्हारी प्रार्थना करते हैं। बलकी वृद्धिके लिये किये हमारे (प्रयत्नमें) हमारी वृद्धि करनेके लिये (बलवान्) हो जाओ ॥ १२ ॥

औषधि-प्रयोग

अश्विदेवोंके औषधि प्रयोगोंके विषयमें सब जानते हैं। इस सूक्तके ग्यारहवें मंत्रमें जो बातें कहीं हैं उनका विचार कीजिये, इससे सूक्तके मुख्य विषयका पता लग जायगा। ग्यारहवें मंत्र-के विचारणीय विभाग ये हैं-

१. आयुः प्र तारिष्टं-हमारी आयुको विशेष बढाओ,

२. रपांसि नि मृक्षतं-दोषों, पापों और घावोंको निः-शेष शुद्ध करके दूर करो। 'रपस्'=दोष, पाप, घाव। 'मृक्षतं' [illegible] करो। शुद्धता करके दोषोंको, पापोंको और घावोंको दूर करो।

३. द्वेषः सेधतं-द्वेष करनेवाले वैरियोंको दूर भगा दो, [illegible] करने योग्य रोगोंका प्रतिबंध करो, रोग आनेके पूर्व ही उनका प्रतिबंध करो।

४. त्रिभिः एकादशैः देवेभिः आ यातं-तैंतीस देवोंके साथ आओ।

[illegible]

शरीरके दोषोंको बता रहे हैं। पाप मनका दोष है, 'पापभाव-युक्त मनसे शरीर दोषयुक्त बनता है और रोग होते हैं, जिससे आयुकी क्षीणता होती है। इसलिये यदि दीर्घ आयु चाहिये, तो मन शुद्ध रहना चाहिये अर्थात् मन निष्पाप बनाना चाहिये। शरीरके दोष दो हैं, एक आन्तरिक मल जो शरीरके अन्तर्भागमें संचित होकर अन्दर और बाहर रोग उत्पन्न करते हैं और दूसरे शरीरपर होनेवाले घाव आदि हैं। ये दोनों मल-[illegible]

[illegible] ज्ञान हो सकता है।

आयुकी [illegible] मनुष्यकी आयु १०० वर्षकी है, [illegible] 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत् शतं समाः।' (वा. य. ४०।२, ईश उ. २)= [illegible]

शुभ कर्म करते हुए जीवित रहनेकी इच्छा कर सकता है। १००+२०=१२० एक सौ बीस वर्षोंकी आयु इस तरह सर्व-साधारण नागरिक की है। आजकलकी जन्मपत्रिकाएँ १२० वर्षोंकी आयु मानकर ही की जाती हैं। **'आयुः प्रतारिषं'** में आयु की 'प्रकर्षसे वृद्धि करनेकी जो बात मंत्रमें कही है वह सिद्ध करती है कि पुरुषार्थ प्रयत्नसे मानवकी आयु १२०वर्षों से भी अधिक बढाई जा सकती है। इसी कार्यके लिये इस मंत्रमें शारीरिक और मानसिक दोषोंको दूर करनेका उपाय लिखा है।

तैंतीस देवोंके साथ अश्विदेवोंका आना आरोग्यके लिये अत्यंत उपयोगी है। तैंतीस देवोंकी सहायतासे ही औषधि-प्रयोग किये जाते हैं। मृत्तिकाचिकित्सा, जलचिकित्सा, अग्नि-सूर्य-विद्युच्चिकित्सा, औषधीचिकित्सा, वायुचिकित्सा, प्राणायामचिकित्सा इनमें तैंतीस देवोंका ही उपयोग किया जाता है। औषधियोंको तैयार करनेमें कई देवताओंका उपयोग किया जाता है। इस तरह विचार करनेसे सहज ही से पता लग सकता है कि इन तैंतीस देवताओंकी सहायतासे ही मानवको दीर्घ जीवन प्राप्त करनेकी संभावना है।

यह सब विचार करने योग्य विषय है और इसका परिणाम सुखपूर्ण दीर्घायु ही है। 'द्वेषोंको रोकने' का भाव यह है कि प्रथम अपने मनके विद्वेषके भाव दूर करना, समाजके द्वेषणीय शत्रुओंको दूर करना, तथा द्वेष करने योग्य जो अनिष्ट परिस्थिति है उसको पूर्णतया दूर करना चाहिये। दीर्घ आयु होनेके लिये समाज भी उत्तम सुसंस्कृत और निर्दोष होना आवश्यक है। यह सब पाठक मनन करके जान सकते हैं।

छठे मंत्रमें औषधोंका उल्लेख है। पृथ्वी, अन्तरिक्ष, जल और आकाशमें औषधियां रहती हैं, **(पार्थिवानि, अद्भ्यः, दिव्यानि भेषजा दत्तं।** (मं.६) पृथ्वीपर उत्पन्न होनेवाली, जलमें उत्पन्न होनेवाली और आकाशमें उत्पन्न होनेवाली औषधियाँ अनेक हैं। पृथ्वीपर वृक्ष वनस्पतियां तथा खनिज पदार्थ औषधोंमें वर्ते जाते हैं। जलमें, पर्वतपर तथा आकाशमें वायु सूर्य आदि पदार्थ हैं। इनमें दैवी सामर्थ्य है जिससे रोग दूर होते हैं।

'शंयोः ओमानं' इसी छठे मंत्रमें कहा है। **'ओमानं'** =रक्षण, संरक्षण; **'शं'** = कल्याण, सुख, शान्ति और **'यु'**= विपरीत करना और संयुक्त करना, अर्थात् विपरीत भावोंसे वियुक्त और अनुकूल भावोंसे संयुक्त करना। रक्षणका यही अर्थ है। दीर्घायु प्राप्त करनेके लिये जिनसे मेल होना चाहिये उनसे मेल करना और जिनसे वियुक्त होना योग्य है उनसे वियुक्त और शान्तिसुख प्राप्त करना। यह एक बडा भाव है।

६ 'त्रिधातु शर्म वहतं' (मं. ६)= वात पित्त, वात ये तीन धातु हैं, स्वास्थ्य और आरोग्य इनकी समताकी स्थापना करना आवश्यक है। इसे 'शर्म' या सुख है। वह प्राप्त करना चाहिये। कर्तव्य है कि वे शरीरके तीनों धातुओंका वैषम्य साम्य स्थापन करें।

७ अवद्य-गोहना (मं. ३)= निंदा करनेयोग्य आदि परिस्थिति है, उसका नाश करनेवाले ये देव हैं। दिकी परिस्थिति अत्यंत निंदनीय है, इसीलिये उसको चाहिये।

८ 'वाजवतीः इषः अस्मभ्यं पिन्वतं' (मं. बलवर्धक अन्न देकर हम सबको हृष्ट-पुष्ट करो। बलवर्धक होते हैं और कई बलनाशक होते हैं। अतः अन्नोंकाही सेवन करना चाहिये और क्षीणता करनेवाले दूर रहना चाहिये।

९ 'पृक्षः त्रिः पिन्वतं (मं. ४) = अन्न दो। रोगीको थोडा थोडा अन्न तीन बार देकर चाहिये।

१० रयिं, धियः, सौभाग्यं, श्रवांसि वहतं = धन, बुद्धियां, सौभाग्य और यश हमें दे दो। मनुष्यको चाहिये। इन्हींसे मानवी जीवनकी सफलता होती

११ मध्वः पिबतं (मं.१०) = मधुर रसका फलोंके तथा सोमादि वनस्पतियोंके मधुर रसका पान करो। रस रोगनिवारक, उत्साहवर्धक और बलवर्धक है।

१२ सुवीरं रयिं आ वहतं (मं. १२)= जिसके साथ रहते हैं, ऐसा धन हमें ले आओ। अच्छे भी चाहिये और उसकी सुरक्षा करनेके लिये वीरत्व चाहिये।

इस सूक्तके ये निर्देश मनन करनेयोग्य हैं। यह काव्यमय है, जो मननद्वारा पाठक अच्छी तरह जान सकते

वितः ! ये ते पन्थाः पूर्व्यासः अरेणवः अन्तरिक्षे सुगेभिः तेभिः पथिभिः अद्य नः रक्ष च, हे देव! नः च ॥ ११ ॥

हे सविता देव ! जो तुम्हारे मार्ग पहिलेसे निश्चित हुए, धूलिरहित और अन्तरिक्षमें उत्तम निर्माण किये हैं, उत्तम जानेयोग्य उन मार्गोंसे आज हमारी सुरक्षा करो औ देव ! हमें आशीर्वाद दो ॥ ११ ॥

विना धूलिके मार्ग

सूक्तमें विना धूलिके मार्गोंका उल्लेख है। ये (पन्थाः अरेणवः) मार्ग पहिलेसे बने हैं और धूलिरहित हैं। कृताः) उत्तम रीतिसे बनाये हैं, कुशलतासे बनाये हैं। : पथिभिः) ये मार्ग चलनेके लिये सुगम हैं, चलने- किसी तरह कष्ट नहीं होते। (प्रवता) चढाईका मार्ग द्वता) उतराईका मार्ग ऐसे दो भेद हैं। इस वर्णनसे पता है कि इस सूक्तमें उत्तमसे उत्तम मार्गकी कल्पना है। उत्तम हों, उनपर सुवर्णकी सजावट हो, उत्तम घोडे यें और ऐसे रथ धूलिरहित मार्गसे चलते रहें, यह देक समयका यहां दीख रहा है। ऐसे रथोंमें वीर ण करें और राक्षसों और यातना देनेवाले दुष्टोंका नाश नताका सुख बढावें। (मं. १०)

सूर्यका प्रभाव

देवका प्रभाव इस सक्तमें वर्णन किया है, वह देखने है—

स्वस्ति ऊति। (मं. १)– कल्याण और सुरक्षा साधन सूर्यदेव करता है, (सु-अस्ति) उत्तम अस्तित्व सर्वथा सूर्यकिरणोंपर निर्भर है। यहांका प्राणिमात्रका त्व सूर्यकिरणोंके कारणही होता है। सूर्यकिरण सब जोंको हटाते और प्राणियोंको सुख होनेयोग्य वायु निर्माण है।

१ अमृतं मर्त्यं च निवेशयन् (मं. २)– अमर और ऐसे दो पदार्थ इस विश्वमें हैं, इन दोनोंका निवास सर्वथा वके किरणोंपर निर्भर है। बरसातके दिनोंमें जब एक दो तक सूर्यकिरण नहीं मिलते, उन दिनोंमें मानवोंका स्थ्य बिगडता है, रोग बढते हैं, मृत्युसंख्या विशेष रीतिसे जाती है। इसका विचार करनेसे सूर्यकिरणोंके साथ आरोग्य कितना घनिष्ट संबंध है, यह बात स्पष्ट हो जाती है।

२ सविता देवः विश्वा दुरिता अपबाधमानः। ३)– सूर्यदेव सब दुरितोंका नाश तथा प्रतिबंध करता है। (दुः-इतं) जो रोगबीज बाहरसे शरीरके अन्दर या मनके अन्दर घुसता है उसको दुरित कहते हैं। सूर्यकिरणोंसे इन सब का नाश होता है।

४ तविषीं दधानः (मं. ४)– सूर्यही बल धारण करता है। सब बलोंका आधार सूर्यही है।

५ अमीवां अपबाधते। (मं. ९)— रोगबीजोंको दूर करता है। सूर्यसे ही सब रोगबीज दूर होते हैं। (अम-वान्) अपचित अन्नको 'आम' कहते हैं, इस आमसे जो होता है, वह 'आमवान्' अथवा 'अमीव' कहलाता है। इन रोगबीजोंका नाश सूर्य करता है। सूर्यसे पचनशक्ति बढती है और रोग-बीज सूर्यकिरणोंसे दूर होते हैं।

६ रक्ष (मं. ११)– सूर्यदेव उक्त प्रकार रोगबीज दूर करने, बल बढाने, दुरित दूर करने और सबका सुखसे निवास करने द्वारा सबकी सुरक्षा करता है।

इस रीतिसे प्राणिमात्रपर तथा संपूर्ण विश्वपर अर्थात् मर्त्य और अमर वस्तुजातपर सूर्यका प्रभाव है। सूर्यके कारणही सब का निवास सुखसे होता है।

तीन द्युलोक

आकाशका नाम द्युलोक है। क्योंकि आकाश सदा-सर्वदा प्रकाशयुक्त रहता है। इस द्युलोकके तीन विभाग हैं। दो विभाग (**द्वा सवितुः उपस्थे**) सूर्यके पास रहते हैं और (**एका यमस्य भुवने विराषाट्**। मं. ६) एक विभाग यमके भुवनमें (वीर-साह) वीरोंके रहनेका स्थान है। अर्थात् वीर मरनेके बाद वहां जा कर रहते हैं। वह यम-लोक नामसे प्रसिद्ध है। परंतु उस लोकमें यह एक ऐसा स्थान है कि जिसमें केवल वीरोंके जीवही रहते हैं। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि यमके भुवनमें जैसा वीरोंके लिये उत्तम स्थान होगा, वैसा दूसरे जीवोंके लिये भी स्थान होगा ही।

उत्तरीय ध्रुवमें आकाशके तीन विभाग माने तो पहिले दो ही विभागोंमें सूर्य रहता है, बीचके मध्य विभागमें सूर्य आताही

देवः सविता प्रवता याति, उद्वता याति, यजतः शुभ्राभ्यां हरिभ्यां याति। सविता देवः विश्वा दुरिता अपबाधमानः परावतः आ याति ॥ ३ ॥

सविता देव (प्रथम) ऊंचाईके मार्गसे जाते हैं, (और पश्चात्) अधोगामी मार्गसे हुए) चलते हैं। पूजाके योग्य (ये सूर्यदेव) गमन करते हैं। ये सविता देव सब पापोंको देशसे आते हैं ॥ ३ ॥

अभिवृतं, कृशनैः विश्वरूपं, हिरण्यशम्यं बृहन्तं रथं, यजतः चित्रभानुः, कृष्णा रजांसि तविषीं दधानः सविता आ अस्थात् ॥ ४ ॥

सतत गतिशील, सुवर्णादिके कारण सुंदर सुवर्णकी रस्सीयोंसे (किरणोंसे) युक्त बडे रथमें विचित्र किरणोंवाले और अन्धकारका नाश धारण अपने बलसे करनेवाले सविता देव चढ़ते

हयावाः शितिपादः, हिरण्यप्रउगं रथं वहन्तः, जनान् वि अख्यत्। शश्वत् विश्वा भुवनानि विशः दैव्यस्य सवितुः उपस्थे तस्थुः ॥ ५ ॥

सूर्यके घोडे सफेद पैरोंवाले (हैं, वे) सुवर्णके ढोते (हैं, जो) मानवोंके लिये प्रकाश देते हैं। भुवन और सब प्रजाजन दिव्य सविता देवके होते हैं ॥ ५ ॥

द्यावः तिस्रः, द्वा सवितुः उपस्था, एका यमस्य भुवने विराषाट्। रथ्यं आणिं न, अमृता अधि तस्थुः। यः तत् चिकेतत् उ, (सः) इह ब्रवीतु ॥ ६ ॥

तीन दिव्य लोक हैं, (उनमेंसे) दो (लोक) देवके पास हैं और तीसरा लोक यमके भुवनमें रहनेका स्थान देता है। रथके अक्षमें रहनेवाली (सब) अमर (देव सूर्यपर) अधिष्ठित हैं। जो है, (वह) यहां आकर कहे ॥ ६ ॥

गभीरवेपाः, असुरः, सुनीथः, सुपर्णः, अन्तरिक्षाणि वि अख्यत्। सुनीथः सूर्यः इदानीं क ? कः चिकेत ? अस्य रश्मिः कतमां द्यां आ ततान ? ॥ ७ ॥

गम्भीर गतिसे युक्त, प्राणशक्तिका दाता, दर्शक, उत्तम प्रकाश देनेवाला (सूर्यदेव) लोकोंको प्रकाशित करता है। इस समय कहां है ? कौन जानता है ? उस (सूर्य) द्युलोकमें फैला होगा ? ॥ ७ ॥

पृथिव्याः अष्टौ ककुभः, योजना पञ्च त्रिः, सप्त सिन्धून् (सविता) वि अख्यत्। हिरण्याक्षः सविता देवः, दाशुषे वार्याणि रत्ना दधत्, आ गात् ॥ ८ ॥

पृथ्वीकी आठों दिशाएं, (परस्पर) संयुक्त लोक और सात सिन्धु (नदियां सविता देवने) की हैं। सुवर्णके समान तेजस्वी किरणवाला यह दाताके लिये स्वीकार करनेयोग्य रत्नोंको देता आया है ॥ ८ ॥

हिरण्यपाणिः विचर्षणिः सविता उभे द्यावापृथिवी अन्तः ईयते। अमीवां अप बाधते, सूर्यं वेति, कृष्णेन रजसा द्यां अभि ऋणोति ॥ ९ ॥

सुवर्णके समान किरणवाला सर्वत्र संचार करनेवाला देव दोनों द्यावापृथिवीके बीचमें संचार करता है। दूर करता है, (इसीको) सूर्य कहते हैं, प्रकाश-हीन लोकसे द्युलोक तक प्रकाशित करता है ॥ ९ ॥

हिरण्यहस्तः असुरः सुनीथः सुमृळीकः स्ववान् अर्वाङ् यजः। देवः प्रतिदोषं गृणानः, रक्षसः यातुधानान् अपसेधन्, अस्थात् ॥ १० ॥

सुवर्ण जैसे किरणवाला, प्राणशक्तिका दाता, उत्तम सुख-दाता, निज शक्तिसे संपन्न (सविता देव) यह (सविता) देव प्रत्येक रात्रिमें स्तुति किया राक्षसों और यातना देनेवालोंको दूर करता हुआ आवे ॥ १० ॥

वितः ! ये ते पन्थाः पूर्व्यासः अरेणवः अन्तरिक्षे
सुगेभिः तेभिः पथिभिः अद्य नः रक्ष च, हे देव! नः
हे च ॥ ११ ॥

हे सविता देव ! जो तुम्हारे मार्ग पहिलेसे निश्चित हुए, धूलिरहित और अन्तरिक्षमें उत्तम निर्माण किये हैं, उत्तम जानेयोग्य उन मार्गोंसे आज हमारी सुरक्षा करो औ ` देव ! हमें आशीर्वाद दो ॥ ११ ॥

विना धूलिके मार्ग

सूक्तमें विना धूलिके मार्गोंका उल्लेख है। ये (पन्थाः अरेणवः) मार्ग पहिलेसे बने हैं और धूलिरहित हैं। कृताः) उत्तम रीतिसे बनाये हैं, कुशलतासे बनाये हैं। : पथिभिः) ये मार्ग चलनेके लिये सुगम हैं, चलने- किसी तरह कष्ट नहीं होते। (प्रवता) चढाईका मार्ग द्वता) उतराईका मार्ग ऐसे दो भेद हैं। इस वर्णनसे पता है कि इस सूक्तमें उत्तमसे उत्तम मार्गकी कल्पना है। उत्तम हों, उनपर सुवर्णकी सजावट हो, उत्तम घोडे यँ और ऐसे रथ धूलिरहित मार्गसे चलते रहें, यह देक समयका यहां दीख रहा है। ऐसे रथोंमें वीर ग करें और राक्षसों और यातना देनेवाले दुष्टोंका नाश नताका सुख बढावें। (मं. १०)

सूर्यका प्रभाव

र्यदेवका प्रभाव इस सक्तमें वर्णन किया है, वह देखने है—

स्वस्ति. ऊति। (मं. १)- कल्याण और सुरक्षा साधन सूर्यदेव करता है, (सु-अस्ति) उत्तम अस्तित्व सर्वथा सूर्यकिरणोंपर निर्भर है। यहांका प्राणिमात्रका त्व सूर्यकिरणोंके कारणही होता है। सूर्यकिरण सब ोंको हटाते और प्राणियोंको सुख होनेयोग्य वायु निर्माण है।

। अमृतं मर्त्यं च निवेशयन् (मं. २)- अमर और ऐसे दो पदार्थ इस विश्वमें हैं, इन दोनोंका निवास सर्वथा विके किरणोंपर निर्भर है। बरसातके दिनोंमें जब एक दो तक सूर्यकिरण नहीं मिलते, उन दिनोंमें मानवोंका स्थ्य बिगडता है, रोग बढते हैं, मृत्युसंख्या विशेष रीतिसे जाती है। इसका विचार करनेसे सूर्यकिरणोंके साथ आरोग्य कितना घनिष्ट संबंध है, यह बात स्पष्ट हो जाती है।

१ सविता देवः विश्वा दुरिता अपबाधमानः। । १)- सूर्यदेव सब दुरितोंका नाश करता प्रतिबंध करता है। (दुः-इतं) जो रोगबीज बाहरसे शरीरके अन्दर या मनके अन्दर घुसता है उसको दुरित कहते हैं। सूर्यकिरणोंसे इन सब का नाश होता है।

४ तविषीं दधानः (मं. ४)- सूर्यही बल धारण करता है। सब बलोंका आधार सूर्यही है।

५ अमीवां अपबाधते। (मं. ९)— रोगबीजोंको दूर करता है। सूर्यसे ही सब रोगबीज दूर होते हैं। (अम-वान्) अपचित अन्नको 'आम' कहते हैं, इस आमसे जो होता है, वह 'आमवान्' अथवा 'अमीव' कहलाता है। इन रोगबीजोंका नाश सूर्य करता है। सूर्यसे पचनशक्ति बढती है और रोग-बीज सूर्यकिरणोंसे दूर होते हैं।

६ रक्ष (मं. ११)- सूर्यदेव उक्त प्रकार रोगबीज दूर करने, बल बढाने, दुरित दूर करने और सबका सुखसे निवास करने द्वारा सबकी सुरक्षा करता है।

इस रीतिसे प्राणिमात्रपर तथा संपूर्ण विश्वपर अर्थात् मर्त्य और अमर वस्तुजातपर सूर्यका प्रभाव है। सूर्यके कारणही सब का निवास सुखसे होता है।

तीन द्युलोक

आकाशका नाम द्युलोक है। क्योंकि आकाश सदा-सर्वदा प्रकाशयुक्त रहता है। इस द्युलोकके तीन विभाग हैं। दो विभाग (**द्वा सवितुः उपस्थे**) सूर्यके पास रहते हैं और (**एका यमस्य भुवने विराषाट्** । मं. ६) एक विभाग यमके भुवनमें (वीर-साह) वीरोंके रहनेका स्थान है। अर्थात् वीर मरनेके बाद वहां जा कर रहते हैं। यह यम-लोक नामसे प्रसिद्ध है। परंतु उस लोकमें यह एक ऐसा स्थान है कि जिसमें केवल वीरोंके जीवही रहते हैं। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि यमके भुवनमें जैसा वीरोंके लिये उत्तम स्थान होता, वैसा दूसरे जीवोंके लिये भी स्थान होता ही।

उपरोक्त वर्णनसे आकाशके तीन विभाग करने की पद्धति दो ही विभागोंसे पूर्व रहता है, बीचके एक विभागमें सूर्य आकाशी

(ऋक्सम मण्डल)

(६) सोमरस

(ऋ० ९।४) हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । पवमानः सोमः । गायत्री ।

सना च सोम जेषि च पवमान महि श्रवः	।	अथा नो वस्यसस्कृधि	१
सना ज्योतिः सना स्व१र्विश्वा च सोम सौभगा ।		अथा नो वस्यसस्कृधि	२
सना दक्षमुत क्रतुमप सोम मृधो जहि	।	अथा नो वस्यसस्कृधि	३
पवीतारः पुनीतन सोममिन्द्राय पातवे	।	अथा नो वस्यसस्कृधि	४
त्वं सूर्ये न आ भज तव क्रत्वा तवोतिभिः	।	अथा नो वस्यसस्कृधि	५
तव क्रत्वा तवोतिभिर्ज्योक्पश्येम सूर्यम्	।	अथा नो वस्यसस्कृधि	६
अभ्यर्ष स्वायुध सोम द्विबर्हसं रयिम्	।	अथा नो वस्यसस्कृधि	७
अभ्य१र्षानपच्युतो रयिं समत्सु सासहिः	।	अथा नो वस्यसस्कृधि	८
त्वां यज्ञैरवीवृधन्पवमान विधर्मणि	।	अथा नो वस्यसस्कृधि	९
रयिं नश्चित्रमश्विनमिन्दो विश्वायुमा भर	।	अथा नो वस्यसस्कृधि	१०

अयः- हे महिश्रवः पवमान! सन च। जेषि च। अथ
सः कृधि ॥ १ ॥
ोम ! ज्योतिः सन। स्वः सन। विश्वा सौभगा च
)। ० ॥ २ ॥
ोम! दक्षं सन। उत क्रतुं सन। मृधः अप जहि०॥३॥

पवीतारः ! इन्द्राय पातवे सोमं पुनीतन। ० ॥४॥

तव क्रत्वा तव ऊतिभिः नः सूर्ये आ भज। ० ॥५॥

व क्रत्वा, तव ऊतिभिः सूर्यं ज्योक् पश्येम। ० ॥ ६ ॥

स्वायुध सोम ! द्विबर्हसं रयिं अभि अर्ष ।० ॥ ७ ॥

ामित्सु अपच्युतः सासहिः रयिं अभि अर्ष ।० ॥ ८ ॥

। पवमान ! त्वां यज्ञैः विधर्मणि अवीवृधन्।० ॥ ९ ॥

। इन्दो ! चित्रं अश्विनं विश्वायुं रयिं नः आ भर।०॥१०॥

अर्थ— हे महान् यशस्वी सोम ! प्रेम करो, विजय करो और हमें यशसे युक्त करो ॥ १ ॥

हे सोम ! हमें ज्योति दो। प्रकाशका प्रदान करो। और सब प्रकारके सौभाग्य हमें दो।० ॥ २ ॥

हे सोम ! हमें बल दो और कर्म करनेकी शक्ति दो। हिंसकोंका नाश करो।० ॥ ३ ॥

हे सोमरस निकालनेवालो ! इन्द्रके पीनेके लिये सोमका रस निकालो।० ॥ ४ ॥

तुम अपने कर्मों और सुरक्षाओंसे हमें सूर्यकी प्राप्ति कराओ।० ॥ ५ ॥

तुम्हारे कर्मों और सुरक्षाओंसे चिरकालतक हम सूर्यका दर्शन करेंगे।० ॥ ६ ॥

हे उत्तम शस्त्रवाले सोम ! दोनों शक्तियोंसे युक्त धनकी हमपर वृष्टि करो।० ॥ ७ ॥

युद्धोंमें परास्त न होते हुए, शत्रुको परास्त करके हमें धन प्रदान करो।० ॥ ८ ॥

हे सोम ! तुम्हें अनेक यज्ञोंके द्वारा अनेक कर्मोंमें (याजक लोग) संवर्धित करते हैं।० ॥ ९ ॥

हे सोम ! नाना प्रकारके अन्नोंसे युक्त, संपूर्ण आयुतक रहनेवाला धन हमें दो और हमें यशसे युक्त करो ॥ १० ॥

बोध

यह सोमका सूक्त है। इसमें निम्नलिखित बोध मिलता है– (मं. १) **सन**– प्रेम करो, पूजा करो, भक्ति करो, प्राप्त करो, संमान करो, दान दो। **जेषि**–विजय प्राप्त करो। **नः वस्यसः कृधि**— हमें धनयुक्त, यशस्वी, कीर्तिमान् और अन्नसे युक्त करो। (मं. २) **ज्योतिः सन**— प्रकाश बताओ, मार्ग बताओ, सन्मार्ग दर्शाओ। **स्वः सन**- आत्मिक प्रकाश दो, आत्मतेज बढाओ। **विश्वा सौभगा सन**— सब सौभाग्य, सब मंगल प्रदान करो। (मं. ३) **दक्षं सन**— हमें बल दो, शक्ति दो। **क्रतुं सन**— प्रशस्त कर्म करनेकी शक्ति दो। **मृधः अप जहि**— घातक शत्रुओंको हमारे शत्रुओंको दूर करो। (मं. ५) **क्रत्वा जातेषु भज**–कर्मप्रवीणता और सुरक्षासे हमारी उन्नति करो। **द्विवर्हसं रयिं आभि अर्ष**— दो प्रकारकी आत्मिक और भौतिक शक्तियोंसे युक्त धन हमें दिलाओ। सच्चा सुख देता है। (मं. ८) **समत्सु अपभुतः**— समरोंमें स्थिर रहकर लडनेकी शक्ति तथा शत्रुओंको परास्त करनेकी शक्ति हमें चाहिये। (मं. १०) **विश्वायुं रयिं**— संपूर्ण आयु देनेवाला धन हमें चाहिये।

इस सूक्तमें ये वाक्य बडे बोधप्रद हैं। पाठक इन वाक्योंसे उचित बोध प्राप्त करें।

(७) सोमरस

(ऋ. ९।६९) हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः। पवमानः सोमः। जगती, ९–१० त्रिष्टुप्।

इषुर्न धन्वन्प्रति धीयते मतिर्वत्सो न मातुरुप सर्ज्यूधनि।
उरुधारेव दुहे अग्र आयत्यस्य व्रतेष्वपि सोम इष्यते
उपो मतिः पृच्यते सिच्यते मधु मन्द्राजनी चोदते अन्तरासनि।
पवमानः संतनिः प्रघ्नतामिव मधुमान्द्रप्सः परि वारमर्षति
अभ्ये वधूयुः पवते परि त्वचि श्रथ्नीते नप्तीरदितेर्ऋतं यते।
हरिरकाव्यजतः संयतो मदो नृम्णा शिशानो महिषो न शोभते
उक्षा मिमाति प्रति यन्ति धेनवो देवस्य देवीरुप यन्ति निष्कृतम्।
अत्यक्रमीदर्जुनं वारमव्ययमत्कं न निक्तं परि सोमो अव्यत
अमृक्तेन रुशता वाससा हरिरमर्त्यो निर्णिजानः परि व्यत।
दिवस्पृष्ठं बर्हणा निर्णिजे कृतोपस्तरणं चम्वोर्नभस्मयम्
सूर्यस्येव रश्मयो द्रावयित्नवो मत्सरासः प्रसुपः साकमीरते।
तन्तुं ततं परि सर्गास आशवो नेन्द्राहते पवते धाम किं चन
सिन्धोरिव प्रवणे निम्न आशवो वृषच्युता मदासो गातुमाशत।
वनं नः पितवे पदे चतुष्पदेऽस्मे वाजाः सोम तिष्ठन्तु कृष्टयः
आ नः पवस्व वसुमद्धिरण्यवदश्वावद्गोमद्यवमत्सुवीर्यम्।
सूर्ये वि सोम पितरो मम स्थन दिवो मूर्धानः प्रशिषता वयस्कृतः
एते सोमाः पवमानास इन्द्रं रथा इव प्र ययुः साधिमच्छ।
सुतः पवित्रमति धन्व्यक्षरत्पर्षन्नृतस्य वृष्टिमच्छ
इन्दविन्द्राय वृषणे पवस्व सुमृळीको अनवद्यो रिशादाः।
वरं न इन्द्राभि वसूनि देवैर्द्यावापृथिवी पावतं नः

अन्वयः— इषुः धन्वन् न, (अस्मिन्) मतिः प्रति [illegible], मातुः ऊधनि वत्सः न, (इन्द्रे) उप सर्जे । उरुः इव अग्रे सावती दुहे । अस्य व्रतेषु अपि सोमः [illegible] ॥ १ ॥

मतिः उपो पृच्यते । मधु सिच्यते । मन्द्राजनी अासनि चोदते । पवमानः मधुनान् द्रप्सः वारं अर्षति, प्रस्नतां ततनिः ॥ २ ॥

धीरः अत्ये त्वचि परि पवते । अदितेः नसीः ऋतं यते ते । हरिः, यजतः, संयतः, मदः अक्रान् । नृम्णा नानः, महिषः न, शोभते ॥ ३ ॥

[illegible] मिमाति, धेनवः प्रति यन्ति । देवस्य निष्कृतं देवीः यन्ति । (सोमः) अर्षन् अव्ययं वारं अति अक्रमीत् । [illegible], निर्तं ऋतं न, परि अव्यत ॥ ४ ॥

समर्यः हरिः निर्णिजानः अनूषेन दशता वासस्ता परि [illegible] । दिवः पृष्ठं वर्हणा निर्मिजे कृत । चन्द्रः उपस्तरणं रुचदम् ॥ ५ ॥

सूर्यस्य इव रश्मयः, द्रावयित्नवः, मत्सरासः प्रसुपः [illegible] सर्गासः तंतं तन्तुं साधं परि ईरते । इन्द्रात् ऋते एन धाम न पवते ॥ ६ ॥

[illegible] कामधः मदासः, निम्नैः एव प्रवते, लिंपं [illegible] । हे सोम ! नः विवेशे रिषदे [illegible], अस्मे [illegible] इषवः [illegible] ॥ ७ ॥

हे सोम ! (त्वं) वसुत्वन् रिरिक्वन् अमृतत्वन् सोमान् [illegible] दुर्गाय नः वा दधत् । पूषा हि दिवः गृणानः [illegible], दक्षस्य नः मन्म रिरः [illegible] ॥ ८ ॥

५ (रिरिक्व.)

अर्थ- बाण धनुष्यपर जैसा (रखते हैं, उस तरह इस इन्द्रमें हमारी) बुद्धि रखी जाती है। जिस तरह माताके स्तनों-की ओर बछडा (जाता है वैसे ही हम इन्द्रकी ओर) जाते हैं। बहुत दूध देनेवाली (गौ) जैसी (बछडेके) अग्रभागमें जाती और उसको दूध देती है (वैसाही इन्द्र हमें इष्ट सुख देता है।) इस (इन्द्र) के सभी कर्मोंमें सोम दिया ही जाता है ॥१॥

(हमारी) बुद्धि (इन्द्रकी) ओर (स्तुति करनेके लिये) जा रही है। सोम सींचा जाता है। मधुर रसका आस्वाद लेनेवाली (जिह्वा) मुखके बीचमें (रसपानके लिये) प्रेरित हो रही है। छाना जानेवाला मीठा सोमरस बालोंकी छाननीपर जाता है, जैसे आघात करनेवाले योद्धाओंके शस्त्र (परस्पर संघर्षित होते हैं)॥२॥

स्त्रीकी प्राप्तिके लिये उत्सुक हुआ (वर जैसा वधूके पास जाता है, वैसाही सोम) मेंढीकी (बालोंसे बनी) छाननपरसे छाना जाता है। पृथ्वीकी नातियों (औषधियों) रूपके पास जानेवालेके लिये कूट-कर तैयारी की जा रही है। हरिद्वर्ण, पूज्य, इकट्ठा किया, आनंद-वर्धक सोम आक्रमण कर रहा है। जो पौरुषसे तेजस्वी और भैंसेके समान बलिष्ठ (बैलके समान) शोभता है ॥३॥

बलिष्ठ (सोम) शब्द कर रहा है, (उसके साथ) गौयें जाती हैं। देवके सजावे स्थानपर देखियाँ जाती हैं। (सोमरस) धेनु रंगदाले मेंढीके बालोंसे बनी छाननीको लांघ रहा है। सोम, स्वच्छ वस्त्रके समान, (दुग्धमें) ढंका जाता है ॥४॥

[illegible] और हरे रंगका (सोमरस) शोधित हुआ, अश्विनि तेजस्वी (दुग्धरूप) वस्त्रसे आच्छादित होता है। (उस सोमने) द्युलोकका पृष्ठभाग अपने तेजसे स्वच्छ किया था। और पार्थिव रसोंका आच्छादक तेजस्वी बना दिया था ॥५॥

सूर्यके किरणों समान, स्रवणशील, आनंददायी और (मनुष्यों) प्रेम करनेवाले, प्रसन्नता देते हुए (सोमरस) दौड़ते हुए (दशापवित्रके) तारों में फैलते हैं। क्योंकि इन्द्रको छोड़कर कोई भी दूसरे स्थानको हो नहीं पहुँचते ॥६॥

[illegible] सोमके किरणे [illegible] (जलमय मेघ) ईशान [illegible] हैं, वे [illegible] हैं। [illegible] हैं। हे सोम ! [illegible] और [illegible] हुए [illegible] [illegible] [illegible] ॥७॥

हे सोम ! [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥८॥

पवमानासः एते सोमाः सातिं इन्द्रं अच्छ, रया इव, प्र ययुः । सुताः अभ्यं पवित्रं अति यन्ति । (ते) हरितः वाचं हित्वी, वृष्टिं अच्छ ॥ ९ ॥

छाने जानेवाले ये सोमरस दाता इन्द्रके पास, (स्थलके समीप जाने) के समान, जाते हैं। (हिन्दे मेढ़ोंके बालोंकी छाननीको लांघकर छाने जा रहे रंगवाले (सोम) अपने आच्छादनका त्याग करके वृष्टि होनेके समान, (रसकी वृष्टि करते हैं)॥९॥

हे इन्दो ! (त्वं) सुमृळीकः अनवद्यः रिशादाः बृहते इन्द्राय पवस्व । गृणते चन्द्राणि वसूनि भर । हे द्यावा-पृथिवी ! (युवां) देवैः नः प्र अवतम् ॥ १० ॥

हे सोम ! (तुम) उत्तम सुख देनेवाले, अनिन्द्य नाश करनेवाले (हो, वह तुम) बड़े इन्द्रके लिये प्रशंसा करनेवालेके लिये आह्लाददायक बन दो। पृथिवी ! (तुम दोनों) सब देवोंके साथ हमारी सुरक्ष

सोमका काव्य

यह सूक्त काव्यका एक उत्तम नमूना है। सोमरस तैयार करनेकी रीति तो इसमें है ही, पर काव्यकी प्रौढता भी यहां स्पष्ट दिखाई देती है। इसकी स्पष्टताके लिये उक्त मंत्रका आशय हम विशेष स्पष्ट कर देते हैं। अर्थके प्रत्येक वाक्यका आवश्यक स्पष्टीकरण यहां पाठक देखेंगे। मंत्रोंके क्रमसेही यह स्पष्टीकरण दिया जाता है—

"जिस तरह बाण धनुष्यपर रखा जाता है, उसी तरह हमारी स्तुति इन्द्रपर स्थिर रहती है, अर्थात् इन्द्रकी स्तुति करनेमेंही हमारी मति तत्पर हो जाती है। जैसा छोटा बच्चा माताके पासके पास जाता है, उसी तरह हम भी इन्द्रके पास जाते हैं, अर्थात् हम इन्द्रको छोड़ही नहीं सकते, इतनी हमारी भक्ति इन्द्र- पर स्थिर रूपसे रहती है। जैसी दुधारू गाय बच्चेके पास प्यार करती हुई आती है और उसको दूध पिलाती है, वैसा इन्द्र भी हमारे ऊपर कृपा करता है और हमें इष्ट सुख देता है। इस लिये हम भी इन्द्रको सोमरसका अर्पण करते हैं। (१) हमारी बुद्धि केवल इन्द्रकीही भक्ति करती है। हम सोमवल्लिको धोते हैं। इस धोनेके समयही मधुर सोमरस [illegible] जिह्वा रसपानके लिये उत्सुक होती [illegible] शत्रुका नाश करनेवाले वीरोंके शस्त्र एक दूसरेपर [illegible] है, उसी तरह सोम कूटा जाता है और उनकी [illegible] (२) जैसा तरुण तरुणी स्त्रीके पास [illegible] है, उसी तरह सोमरस छाननीके ऊपर चढ़ता [illegible] है। पृथिवीसे उत्पन्न हुई ओषधियां [illegible] सोमके लिये कूट कूटकर [illegible] है, इन्द्र रस पिलानेवाला अच्छा है, जो हरे रंगका, [illegible] आनन्द बढ़ानेवाला रस छाननी- [illegible] है और पात्रोंमें संग्रहित होनेपर बड़ा शोभायमान दीखता है। बढ़ानेवाला सोमरस छाननीसे नीचे उतारते समय है, उस रसके साथ गाइयोंका (दूध साथ साथ जाता है। यज्ञके सजाये स्थानपर जहां देवताओंके होता है, वहां ये औषधियाँ हवन होनेसे लिये जाती रस वालोंकी छलनीसे छाना जाता है और उसमें दूध जाता है। (४) हरे रंगका सोमरस छाना जानेपर मिलाया जाता है, दूधका श्वेत रंग दीखनेतक जाता है। इस सोमवल्लिने अपने तुरंतसे बुलोकको स्वच्छ किया था। इस कारण जिन पात्रोंमें सोमरस है, उनपर स्वच्छ किये ढक्कन रखे जाते हैं। (५) समान तेजस्वी, प्रवाही, आनन्दवर्धक, शत्रुको सुलानेवाले छाने गये ये सोमरसके प्रवाह यज्ञमें करनेके लिये जाते हैं। (६) जैसी नादियां समुद्रमें उसी तरह ये बल बढ़ानेवाले सोमरस इन्द्रके पास मार्गको पहुंचते हैं। सोमसे हमारे द्विपादों और कल्याण हो। सोमसे हमारे बल बढ़ें और मातायें सहायता हमें इससे प्राप्त होवे (७) सोमसे हमें घोड़े, गौवें और जौ आदि अन्न मिले, इससे हमारा सोमही द्युलोकसे आकर हमारा पितृवत् पालन करता जैसे रथ युद्धभूमिके पास पहुंचते हैं, वैसे ये प्राप्त करते हैं। जिस तरह मेघोंसे वृष्टि होती है, प्रवाह छाननीके ऊपर रखे सोमसे नीचे चूते हैं। (रस-पानसे सुख मिलता है, निन्द्य कर्म नहीं होते, करनेका बल बढ़ जाता है। यह सोमरस इन्द्रके तैयार किया जाता है। इस सोमरससे हमारे हों और सब देवताएँ हमें सुरक्षित रखें। (१०)

या सोमरससे निद्रा आती है ?

प्रुपः आशवः'— विशेष निद्रा लानेवाले ये सोमरस
यनाचार्य कहते हैं कि 'प्रुपः' का अर्थ (**शत्रूणां
ायितारः हन्तारः**) 'शत्रुओंको सुलानेवाले अर्थात्
हनन करनेवाले' ऐसा यहां है। शत्रुकोही सुलानेका गुण
है, अथवा जो पीता है उसको निद्रा लानेका गुण इसमें
ा विचार करना चाहिये। यदि सोमरसपानके पश्चात्
को निद्रा आवेगी, तो वीर शत्रुका पराभव सोमरस-
ाद्यात् नहीं कर सकेंगे। परंतु वेदमंत्रोंमें अनेक स्थानों-
है कि सोम पीनेसे बल और उत्साह बढता है और
नके बाद वीर शत्रुका पराभव करते हैं। इसलिये
नसे नींद नहीं आ सकेगी। इसी कारण **'प्र-सुपः'**
'शत्रुको सुलानेवाला' करना योग्य है। वीर सोमरस-
ते हैं, उससे उत्साहित होते हैं, शत्रुसे बहुत लडते हैं
त्रुका वध करके उसको स्थायी नींदमें सुलाते हैं। इस-
ोमरसपानसे निद्रा, सुस्ती अथवा बेहोशी नहीं आती,
त्साह और आनंद बढता है।

सू, इस सूक्तमें उपमाएं तथा अन्यान्य वर्णन बडा मनो-
और बोधप्रद है।

सोम लाना, २ सोमका धोना, ३ सोमको कूटना, ४
रसे छानना, ५ उसमें दूध मिलाना, ६ सोमपानसे बल-
ना और शत्रुका नाश होना, ये बातें इस सूक्तमें हैं।

उक्षा मिमाति, धेनवः प्रति यन्ति। (मं. ४)–
ब्द करता है, गौवें साथ जाती हैं। इसका अर्थ सोम
के समय शब्द करता हुआ नीचेके बर्तनमें उतरता है और
गौओंका दूध मिलाया जाता है, ऐसा है।

२ हरिः रुशता वाससा परि व्यत। (मं. ५)– हरे
रंगवालेपर श्वेत वस्त्र पहनाया जाता है, अर्थात् हरे सोमरसमें
श्वेत दूध मिलाया जाता है।

(ऐसे आलंकारिक प्रयोग इस सूक्तमें बहुत हैं। पाठक उनका
अर्थ इस तरह समझें।)

३ दिवः पृष्ठं वर्हणा निर्णिजे कृत। (मं. ५)– द्युलोक
के पीठको सोम अपने तुरेंसे सुशोभित या स्वच्छ करता है।
अथवा द्युलोकके पृष्ठभागको वह अपने ओढनेके लिये करता
है। सोमवल्लि हिमालयके शिखरपर होती है। उस वल्लिको
मोरके तुरेंके समान तुरें आते हैं, मानो वे द्युलोकको सुंदर बनाते,
स्वच्छ साफसुथरा करते, अथवा द्युलोकको ही ओढ लेते हैं।
यह भी एक आलंकारिक वर्णन है।

४ छाननीसे सोमरसकी धाराएं नीचे उतरती हैं इसको (वृष्टि
अच्छ) वृष्टिकी उपमा दी है। (मं० ८) छाननीसे उतरने-
वाली धाराएं वृष्टिकी धाराएं हैं, सोम कूटा हुआ जो छाननीपर
रख जाता है, वह मेघ है और नीचेका पात्र पृथ्वी है। इस तरह
मेघकी उपमा सोमके लिये सार्थ होती है।

५ 'कृष्टयः' पद ७ वें मंत्रमें है। वह मानवोंके समुदाय
का सूचक है। समूह-रूपसेही मानव अमर है, व्यक्ति-
रूपमें मर्त्य है। 'आर्य' जाति सदा जीवित रहेगी, पर एक
व्यक्ति मरेगी।

६ सोमके लिये बलवर्धक अर्थमें महिषकी उपमा दी है।
(मं. ३) बडा अन्न होनेका अर्थ (महा-इन्) में भी यह
पद है। सोमरस उत्तम बल बढानेवाला अन्न है, यह प्रसिद्ध
ही है।

यहां सोमके दोनों सूक्तोंका विवरण समाप्त होता है।

(दशम मण्डल)

(८) सविता देव

(ऋ. १०।१४९) अर्चन् हिरण्यस्तूपः । सविता । त्रिष्टुप् ।

सविता यन्त्रैः पृथिवीमरम्णाद्स्कम्भने सविता द्यामदृंहत् ।
अश्वमिवाधुक्षद्धुनिमन्तरिक्षमतूर्ते बद्धं सविता समुद्रम् ॥ १
यत्रा समुद्रः स्कभितो व्यौनदपां नपात्सविता तस्य वेद ।
अतो भूरत आ उत्थितं रजोऽतो द्यावापृथिवी अप्रथेताम् ॥ २
अमर्त्यस्य भुवनस्य भूना यन्यदिदमभवद्यजत्रममर्त्यस्य भुवनस्य भूना ।
सुपर्णो अङ्ग सवितुर्गरुत्मान्पूर्वो जातः स उ अस्यानु धर्म ॥ ३
गाव इव ग्रामं यूयुधिरिवाश्वान्त्राधेव वत्सं सुमना दुहाना ।
पतिरिव जायामभि नो न्येतु धर्ता दिवः सविता विश्ववारः ॥ ४
हिरण्यस्तूपः सवितर्यथा त्वाङ्गिरसो जुह्वे वाजे अस्मिन् ।
एवा त्वार्चन्नवसे वन्दमानः सोमस्येवांशुं प्रति जागराहम् ॥ ५

अन्वयः— सविता यन्त्रैः पृथिवीं अरम्णात् । सविता अस्कम्भने द्यां अदृंहत् । अश्वं इव, अतूर्ते धुनिं अन्तरिक्षं बद्धं समुद्रं अधुक्षत् ॥ १ ॥

यत्र स्कभितः समुद्रः वि औनत् । हे अपां नपात् ! तस्य (स्थानं) सविता वेद । अतः भूः, अतः उत्थितं रजः आः, अतः द्यावापृथिवी अप्रथेताम् ॥ २ ॥

अमर्त्यस्य भुवनस्य भूना अन्यत् इदं यजत्रं पश्चा अभवत् । हे अंग ! सः सुपर्णः गरुत्मान् सवितुः पूर्वः जातः । अस्य धर्म अनु उ ॥ ३ ॥

गावः इव ग्रामं, यूयुधिः इव अश्वान्, सुमनाः दुहाना वाश्रा इव वत्सं, पतिः इव जायां, विश्ववारः दिवः धर्ता सविता नः नि एतु ॥ ४ ॥

अर्थ—सवितादेवने यन्त्रोंसे पृथ्वीको सुखसे सुस्थिर उसी सवितादेवने विना स्तम्भोंका आधार दिये द्युलोकको ऊपर) सुदृढ रखा है। (हिनहिनानेवाले) घोड़ेके यमान होनेवाले अन्तरिक्षसे गतिहीन अवस्थामें दुह लिया (अन्तरिक्षमें मेघका दोहन करके बहु

जहांसे स्तंभित हुआ समुद्र (मेघ) जलको हे जलको न गिरानेवाले (अथवा हे जलोंके पोते उसका स्थान सविता देव जानता है। उस (सवित उससे ऊपर फैला अन्तरिक्ष और उसीसे सुखे पृथ्वी पदार्थ) फैले हैं ॥२॥

अमर्त्य भुवनके बननेके नंतर दूसरा यह यज्ञसाधन) पीछेसे उत्पन्न हुआ। हे प्रिय ! वह सुंद (किरणवाला) महा सामर्थ्यवान् (उषाका प्रकाश) ही उत्पन्न हुआ था। इस (सविता) के धर्मके अनुस प्रकाशता रहा) ॥३॥

गौवें जैसी (शामको उत्सुकतासे) ग्रामकी ओर योद्धा वीर जैसे घोड़ोंके पास (जाते हैं), दूध देनेकी इच्छा करती हुई, हम्भारव करनेवाली धेनु के पास (जाती है), पति जैसा स्त्रीके पास (जाता ही) सबको सेवनीय द्युलोकका आधार सवितादेव हो आ जाय ॥४॥

हिरण्यस्तूप ऋषिका दर्शन

विषयसूची

विषय	पृष्ठांक
हिरण्यस्तूप ऋषिका दर्शन (भूमिका)	३
सूक्तवार मन्त्रसंख्या	३
देववार मंत्रसंख्या	"
'हिरण्यस्तूप' का वेद-मंत्रमें उल्लेख	"
" " ऐतरेय ब्राह्मणमें	"
सूर्यका आकर्षण	४
हिरण्यस्तूप ऋषिका दर्शन	५
(उसके पुत्र अर्चन् ऋषिके मन्त्रोंके समेत)	"
प्रथम मण्डल, सप्तम अनुवाक	"
(१) सबका परम पिता परमात्मा	९
परम पिताका यशगान	११
सूक्तका कर्तृत्व	"
आदर्श मानव	१२
(२) क्षात्रधर्म	१४
ईश्वर-स्वरूपका विचार	१५
प्रजारूप और आत्मरूप नाभि (पिण्ड-ब्रह्माण्ड-चित्र)	"
क्षात्रधर्म	१६
अलंकार	"
वृत्र कौन है ? मेघ या बर्फ ?	१८
(३) युद्धविद्या	२१
युद्धकी नीति	२२
वृत्रका स्वरूप	

विषयसूचा

२३

(४) आरोग्य और दीर्घायु २५
" औषधि-प्रयोग "
१२० वर्षोंकी आयु "
त्रिधातु
बलवर्धक अन्न २७

(५) सविता-देव २९
" विना धूलिके मार्ग "
सूर्यका प्रभाव "
अमृत और मर्त्य "
रोगबीजोंका नाश ३०
तीन द्युलोक "
प्रद्यौ, पीलुमती, उदन्वती "
सूर्यकी गति ३१
रथ और स्थिर "

नवम मण्डल, (प्रथम अनुवाक)

(६) सोमरस ३२
" बोध "

नवम मण्डल, (चतुर्थ अनुवाक)

(७) सोमरस ३४
३५
सोमका काव्य "
क्या सोमरससे निद्रा आती है ? ३६
समूह-रूपसे अमर मानव "

दशम मण्डल, (एकादश अनुवाक) "

(८) सविता-देव ३७
अर्चन् कापका सूक्त
भूमि, अन्तरिक्ष और द्युलोक

काण्व-दर्शन

१ प्रथम विभाग = मेधातिथिका दर्शन
२ द्वितीय " काण्व " "

मुद्रक और प्रकाशक
व० श्री० सातवळेकर, B. A., भारतमुद्रणालय, औंध (सातारा)

अथर्ववेदमें—		
सरस्वान्	२	
श्येनः	२	
सोमारुद्रौ	२	
ईष्यापनयनं	२	
आपः	१	
वाक्	१	
इन्द्रः विष्णुः	१	११
		१०८

ऋषिनामों तथा राजाओंके नामोंका मंत्रोंमें उल्लेख इनके सूक्तोंमें निम्नलिखित प्रकार आया है—

[ऋ. १।३६के] मंत्र १० में **'मेध्यातिथिः काण्वः'** तथा मंत्र ११ और १७ में भी मेध्यातिथिके नाम हैं। इसके अतिरिक्त **धनस्पृत** (मं. १०); **उपस्तुत** (मं. १० और १७); **तुर्वश, यदु, उग्रदेव, नववास्त्व, बृहद्रथ, तुर्वीति** (मं. १८) ये नाम भी इसी सूक्तमें हैं। ये नाम कण्वके सूक्तमें हैं। अब प्रस्कण्वके सूक्तोंमें ऋषिनाम देखिये—

ऋ. १।४५ के मंत्र ३ में **प्रस्कण्व**का नाम आया है। इसके अतिरिक्त **प्रियमेध, अत्रि, विरूप, अंगिरः** ये नाम भी इसी मंत्रमें हैं। **'प्रियमेध'** का नाम पुनः मं. ४ में आया है। इसी सूक्तके ५ वें मंत्रमें ऋषिने अपने गोत्रका नाम **'कण्व'** कहा है।

ऋ. १।४६ के नवम मंत्रमें **'कण्वासः'** पद है, यह इस का गोत्रनाम है। ऋ. १।४७ के मंत्र २ में **'कण्वासः'** पद है। यही पद मंत्र ४;५; १० में भी है।

ऋ. १।४९ के मंत्र ४ में **'कण्वाः'** पद है, यह ऋषिका गोत्रनाम है। ऋ. ८।४९ के मंत्र ५ और १३ में **'कण्व'** नाम है। इसी सूक्तके मं. ९ और १० में **'मेध्यातिथि, नीपातिथि, कण्व, त्रसदस्यु, पकथ, दशव्रज, गोतायं, कजिध्वा'** ये नाम हैं।

इस तरह कण्व और प्रस्कण्व तथा अन्य ऋषियोंके तथा राजाओंके नाम इन सूक्तोंमें आये हैं।

सूक्तोंके विषय

इन सूक्तोंमें अग्निकी वंदना, अग्निका संगठन करना, वीरोंकी वृद्धि, शत्रुओंकी योजना, शत्रुका पराभव करना, [illegible] करना, अश्वमेधका संगठित करना, शत्रुका पूर्ण नाश करना, जलचिकित्सासे रोग दूर करना, ३३ देव, यज्ञ, सूर्य किरणसे नीरोगता, अनेक विषय हैं। राज्यका बल बढ़ानेके लिये कण्व रहती है।

इससे प्रतीत होता है कि कण्व ऋषिके शासनसे घनिष्ठ संबंध है। कण्व ऋषिके संबंधमें निम्नलिखित इतिहास मिलता है—

घोरपुत्र कण्व

प्रथम कण्व

कण्व शब्दको नीलकण्ठ भट्ट 'सुखन' ऐसा करते हैं। बृहद्देवतामें कण्वके विषयमें जो उल्लेख उसमें लिखा है कि, घोरनामा ऋषिके कण्व और पुत्र थे। जब कि ये दोनों पुत्र अरण्यमें रहते प्रगाथके द्वारा कण्वपत्नीके संबंधमें कुछ अतिक्रम हुवा। कण्व प्रगायको शाप देनेके लिये उद्युक्त हुये उनको क्षमा मांगकर कण्व और कण्वकी मातापिता मान लिया। आगे चलकर कण्व इन्होंने मिलकर ऋग्वेदके अष्टम मण्डलको रचा है।

संभव है कि कण्वका कुल यदु और तुर्वश करता होगा। ऋग्वेदमें कण्वकुलोत्पन्न देवातिथि करता हुवा दिखाई देता है कि 'तेरे हाथसे यदु ये सुखी हो गये हुवे मुझे दिखाई दें।'—

महत्ते वृष्णो अभिचक्ष्यं कृतं पश्येम उ
(ऋ.

कई ग्रंथोंमें तथा ऋग्वेदमें इस पुरातन ऋषिका किया हुवा पाया जाता है। उदाहरणार्थ—

भुवत्कण्वे वृषा द्युम्नाहुतः कनदत्रो
(ऋ.

यामस्य कण्वो अदुहन् प्रपीनाम्॥
(अथर्व.

कण्वः कक्षीवान् पुरुमीळो अगस्त्यः।
(अथर्व.

यामस्य कण्वोऽअदुहत्प्रपीनाम्॥
(ऋ. २

कण्वो ह्येतानृतुप्रयान्ददर्श॥ (ऐतरेय ब्रा

कण्व स्वयं सूक्तद्रष्टा भी थे। ऋग्वेदके प्रथम मं से ४३ तक आठ सूक्त घोरपुत्र कण्वके नामसे

मालिनी नदीके तटपर आपका आश्रम था। आपही इतिहास-प्रसिद्ध कण्व हैं जिन्होंने कि भरत-जननी शकुंतलाका पालन किया था। आगे चलकर उनके अनुपस्थितिमें जब दुष्यंत और शकुंतला इनका ब्याह हुवा, तब आपहीने उसे संमति दी।

न भयं विद्यते भद्रे मा शुचः सुकृतं कृतम् ॥

(म. आ. ९४.५९)

आप एकबार गौतमाश्रमको गये। उस आश्रमकी समृद्धता देखकर आपके मनमें इच्छा निर्माण हुई कि 'मेरे आश्रममें भी ऐसी ही समृद्धता निर्माण हो।' तब आपने तप करके गंगा और क्षुधा इन्हें प्रसन्न करा लिया और उनसे आयुष्य, द्रव्य और भुक्ति-मुक्तिका वर मांग लिया। दूसरे वरसे आपने यह मांगा कि 'मैं तथा मेरे वंशज इन्हे कभी भी क्षुधासे पीडा न हो।' आपको ये दोनो वर मिले। जिस तीर्थपर आपने तपश्चर्या की थी, वह कण्वतीर्थ इस नामसे पहिचाना जाने लगा। बादमें जब महाराजा भरत यज्ञ करते रहे तब कण्व उस यज्ञके मुख्य ऋत्विज थे।

याजयामास तं कण्वो दक्षवद्भूरिदक्षिणम् ॥

(म. आ. १०१।४)

इस यज्ञमें भरतजीने आपको एक सहस्र पद्म भार शुद्ध जाम्बूनद सुवर्णका दान किया।

सहस्रं यत्र पद्मानां कण्वाय भरतो ददौ।
जाम्बूनदस्य शुद्धस्य कनकस्य महायशाः ॥

(म. द्रो. ६८.११)

संभव है कि भरतजीके इस यज्ञमें आप उपस्थित हों या आपके पुत्र। इन्होंने दुर्योधनको मातलिकी कथा सुनाई। परन्तु उस बोधप्रद कथाको सुनकर भी जब उसने न माना, तब आपने उसे शाप दिया कि तेरी मृत्यु जांघ टूटनेसे हो जायगी।

यस्मादूरुं ताडयसि ऊरौ मृत्युर्भविष्यति ॥

(म. उ. १०५.४३)

कालका विचार किया जाय तो यह कण्व भी मूल कण्वका वंशज होगा।

तृतीय कण्व

पुत्र। कलियुगारंभके बाद सहस्र वर्षोंसे आप भरत-खण्डमें आ चुके। देवकन्या आर्यावतीसे आपका विवाह हुवा। उपाध्याय, दीक्षित, पाठक, शुक्ल, मिश्र, अग्निहोत्री, अधिकारी, द्विवेदी, पाण्डेय, चतुर्वेदी ये सब आपके पुत्रोंके उप नाम हैं। आपने अपनी मधुर प्रवचनशैलीके द्वारा मिश्रदेशवासी अनेक लोगोंको वश करा लिया। और उन्हें शुद्धिविधि करके आर्यधर्ममें प्रविष्ट करा लिया। इन दो सहस्रकी योजना आपने वैश्योंमें की। पृथुनामक कश्यपका सेवक कण्वका कृपापात्र क्षत्रियपद देकर कण्वने उसे राजपुत्र नगर दे

सरस्वत्याज्ञया कण्वो मिश्रदेशमुप
म्लेंछान्संस्कृतमाभाष्य तदा
वशीकृत्य स्वयं प्राप्तो ब्रह्मावर्तं महो

(भविष्य. प्र. प

प्रस्कण्व

भागवतमतानुसार यह मेधातिथिका पुत्र है। प्रस्कण्वादिक द्विजत्वको प्राप्त हुवे।

तस्य मेधातिथिस्तस्मात्प्रस्कण्वाद्या

(भा.

प्रस्कण्व काण्व

यह ऋग्वेदके प्रथम मण्डलके चवालीससे लेक सूक्तोंका तथा अष्टम मण्डलके उनपचासवे सूक्त शांख्यायन श्रौतसूत्रमें कहा है कि इसने पृथ्य, मातरिश्वन् इनसे द्रव्य पाया था।

यहां तीन कण्वों और दो प्रस्कण्वोंका उल्लेख कण्व निःसन्देह आधुनिक है। हमारे मतसे पहि सूक्तद्रष्टा ऋषि है, दूसरा और तीसरा ये दोनों प्रस्कण्व ऋषिके विषयमें कोई ऐसे भिन्न चरित्र

इससे स्पष्ट हो जाता है कि 'कण्व' अनेक हुए सूक्तद्रष्टा एकही ऋषि है। जिस कण्व ऋषिके मंत्र वह सूक्तद्रष्टा कण्व है। इसके इतिहासके विषयमें खोज करनेकी आवश्यकता है।

प्रत्येक ऋषिके मंत्रोंमें अग्नि, इन्द्र, अश्विनौ, देवताओंके मंत्र हैं। पाठक इनमें ऐसी तुलना ऋषिके मंत्रोंमें एक देवताके वर्णनमें जो विशेषण आये वर्णनमें और अन्य ऋषिके मंत्रोंमें क्या भेद है! स्फुरणही मंत्र हैं, यह स्फुरण कहनेमात्रसेही अध्यात्मभावसे-आत्मिक स्फूर्तिसे-सिद्ध है। देखना उसके अविष्कारमें, प्रत्येकके स्फुरणमें, भाव व्यक्त क्या हेरफेर हैं। जितना सूक्ष्म अध्ययन किया जाय विषयमें इस समय थोडाही होगा।

स्वाध्याय-मण्डल
औंध (जि. सातारा)
१ वैशाख सं० २००३

निवेदनकर्ता
श्री० दा०

देवासस्त्वा वरुणो मित्रो अर्यमा सं दूतं प्रत्नमिन्धते ।
विश्वं सो अग्ने जयति त्वया धनं यस्ते ददाश मर्त्यः ४
मन्द्रो होता गृहपतिरग्ने दूतो विशामसि ।
त्वे विश्वा संगतानि व्रता ध्रुवा यानि देवा अकृण्वत ५
त्वे इदग्ने सुभगे यविष्ठ्य विश्वमा हूयते हविः ।
स त्वं नो अद्य सुमना उतापरं यक्षि देवान्त्सुवीर्या ६
तं वेमित्था नमस्विन उप स्वराजमासते ।
होत्राभिरग्निं मनुषः समिन्धते तितिर्वांसो अति स्रिधः ७
घ्नन्तो वृत्रमतरन् रोदसी अप उरु क्षयाय चक्रिरे ।
भुवत् कण्वे वृषा द्युम्न्याहुतः क्रन्ददश्वो गविष्टिषु ८
सं सीदस्व महाँ असि शोचस्व देववीतमः ।
वि धूममग्ने अरुषं मियेध्य सृज प्रशस्त दर्शतम् ९

हे अग्ने ! वरुणः मित्रः अर्यमा देवासः त्वा प्रत्नं दूतं सं ...न्धते । यः मर्त्यः ते ददाश, सः त्वया विश्वं धनं जयति ॥४॥

हे अग्ने ! (त्वं) मन्द्रः होता विशां गृहपतिः दूतः ...सि । त्वे विश्वा व्रता संगतानि, यानि देवाः ध्रुवा अकु-...न्वत ॥ ५ ॥

हे यविष्ठ्य अग्ने ! सुभगे त्वे इदं विश्वं हविः आ हूयते । ...त्वं नः सुमनाः, अद्य उत अपरं सुवीर्या देवान् ...क्षि ॥ ६ ॥

नमस्विनः स्व-राजं ते घ ईं इत्था उप आसते । स्रिधः ...वितर्वांसः मनुषः होत्राभिः अग्निं सं इन्धते ॥ ७ ॥

...घ्नन्तः वृत्रं अतरन्, रोदसी अपः अयाय उरु चक्रिरे । ...आहुतः कण्वे भुवत्, (यथा) गविष्टिषु अश्वः ...८ ॥

...दस्व, महान् असि । देव-वीतमः शोचस्व । हे ...प्रशस्त अग्ने ! अरुषं दर्शतं धूमं वि सृज ॥ ९ ॥

हे अग्ने ! वरुण मित्र और अर्यमा ये देव तुम दूतको प्रकाशित करते हैं । जो मानव तुम्हारे लिये ... है, वह तुम्हारी (सहायतासे) सब धन जीत करता है ॥ ४ ॥

हे अग्ने ! (तुम) हर्षवर्धक दाता प्रजाजनोंके ... (और देवोंके) दूत हो । तुम्हारे अन्दर वे सब व्रत हैं, कि जो ये देव दृढतापूर्वक करते हैं ॥ ५ ॥

हे युवक अग्ने ! उत्तम भाग्यसंपन्न ऐसे तुम्हारे सब प्रकारका हवि अर्पण किया जाता है । वह तुम हमें आनन्द-चित्त होकर, आज (और वैसेही) दूसरे ... प्रभावशाली देवोंका अर्चन करो ॥ ६ ॥

नमस्कार करनेवाले उपासक स्वयंप्रकाशी इस ... की इस तरह उपासना करते हैं । शत्रुओंको पार करने करनेवाले मनुष्य हवन करनेवालोंके द्वारा अग्निको करते हैं ॥ ७ ॥

प्रहार करनेवाले वीरोंने वृत्रका वध किया और ... जलोंके रहनेके लिये बहुत विस्तृत किया है । ... प्रकाशित (अग्नि) आहुतियाँ प्राप्त करके ... दाता) हुआ, (जैसा) गौओंकी प्राप्तिके युद्धमें ... वाला घोडा (यशदायी होता है) ॥ ८ ॥

(हे देव) बैठ जाओ, तुम बडे हो, देवोंको ... प्रकाशित होओ । हे पवित्र और प्रशंसित अग्ने ! ... नीच धूम उत्पन्न करो ॥ ९ ॥

यं त्वा देवासो मनवे दधुरिह यजिष्ठं हव्यवाहन ।
यं कण्वो मेध्यातिथिर्धनस्पृतं यं वृषा यमुपस्तुतः १०

यमग्निं मेध्यातिथिः कण्व ईध ऋतादधि ।
तस्य प्रेषो दीदियुस्तमिमा ऋचस्तमग्निं वर्धयामसि ११

रायस्पूर्धि स्वधावोऽस्ति हि ते ऽग्ने देवेष्वाप्यम् ।
त्वं वाजस्य श्रुत्यस्य राजसि स नो मृळ महाँ असि १२

ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये तिष्ठा देवो न सविता ।
ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे १३

ऊर्ध्वो नः पाह्यंहसो नि केतुना विश्वं समत्रिणं दह ।
कृधी न ऊर्ध्वाञ्चरथाय जीवसे विदा देवेषु नो दुवः १४

पाहि नो अग्ने रक्षसः पाहि धूर्तेरराव्णः ।
पाहि रीषत उत वा जिघांसतो बृहद्भानो यविष्ठ्य १५

हव्यवाहन ! मनवे देवासः यजिष्ठं यं त्वा इह दधुः ।
मेध्यातिथिः कण्वः यं (त्वां) धनस्पृतं (दधे); वृषा यं
च उपस्तुतः यं (त्वां दधे) ॥ १० ॥

मेध्यातिथिः कण्वः ऋतात् अधि यं अग्निं ईधे, तस्य
इमाः प्र दीदियुः, तं इमा ऋचः (वर्धयन्ति, वयं) तं अग्निं
वर्धयामसि ॥ ११ ॥

हे स्व-धावः ! रायः पूर्धि । हे अग्ने ! देवेषु ते आप्यं
अस्ति हि । त्वं श्रुत्यस्य वाजस्य राजसि । सः (त्वं) नः
मृळ, महान् असि ॥ १२ ॥

नः ऊतये ऊर्ध्वः सु तिष्ठ, सविता देवः न । ऊर्ध्वः वाजस्य
सनिता, यत् अञ्जिभिः वाघद्भिः विह्वयामहे ॥ १३ ॥

ऊर्ध्वः केतुना नः अंहसः नि पाहि । विश्वं अत्रिणं दह ।
कृधि नः ऊर्ध्वान् रथाय जीवसे । विदाः देवेषु नः दुवः
धेहि ॥ १४ ॥

हे बृहद्भानो यविष्ठ्य अग्ने ! नः रक्षसः पाहि । अ-राव्णः
धूर्तेः पाहि । रिषतः उत वा जिघांसतः पाहि ॥ १५ ॥

हे हव्य पहुंचानेवाले (अग्ने) ! मानवोंके (हितके) लिये सब देवोंने यजनीय ऐसे तुमको यहां (इस यज्ञमें) धारण किया है । मेध्यातिथि कण्वने धन देनेवाले तुम्हें (धारण किया है), बलको बढानेवाले (वीरने और) उपस्तुतने भी तुम्हें धारण किया है ॥ १० ॥

मेध्यातिथि कण्वने सूर्यसे (उत्पन्न करके) इस अग्निको धारण किया है, उसके किरण चमकने लगे हैं, उस (अग्निको दश) ये ऋचाएं (बढाती हैं, हम भी) उसी अग्निको बढाते हैं ॥ ११ ॥

हे अपनी धारक शक्तिवाले (अग्ने)! (हमें) धन भरपूर दो । हे अग्ने ! देवोंमें तेरी निःसंदेह निवास है । तुम प्रशंसनीय बलके प्रकाशक हो । वह (तुम) हमें सुखी करो, तुम बडे हो ॥ १२ ॥

हमारी सुरक्षाके लिये उच्च होकर ठहरो, जैसा सूर्य देव (उच्च स्थानमें) है । उच्च होकर अन्नके दाता (बनो), अन्न-भक्षक तीव्र वाजोंके साथ (हम तुम्हें) बुला रहे हैं ॥ १३ ॥

ऊंचा होकर ज्ञानसे हमें पापसे बचाओ । सब राक्षसों (रोगकीटों) को जला दो । (हमारे) आयु और रथके जीवनके लिये हमें उच्च बनाओ । (यह) हमारी प्रार्थना देवोंतक पहुंचाओ ॥ १४ ॥

हे महातेजस्वी बलवान् अग्ने ! हमें राक्षसोंसे बचाओ । अन्नचोर धूर्तोंसे बचाओ । रिपुसे और मारनेवालेसे हमें सुरक्षित रखो ॥ १५ ॥

घनेव विष्वग्वि जह्याराण्यस्तपुर्जम्भ यो अस्मधृक् ।
यो मर्त्यः शिशीते अत्यक्तुभिर्मा नः स रिपुरीशत १६
अग्निर्वपे सुवीर्यमग्निः कण्वाय सौभगम् ।
अग्निः प्रावन्मित्रोत मेध्यातिथिमग्निः साता उपस्तुतम् १७
अग्निना तुर्वशं यदुं परावत उग्रादेवं हवामहे।
अग्निर्नयन्नववास्त्वं बृहद्रथं तुर्वीतिं दस्यवे सहः १८
नि त्वामग्ने मनुर्दधे ज्योतिर्जनाय शश्वते ।
दीदेथ कण्व ऋतजात उक्षितो यं नमस्यन्ति कृष्टयः १९
त्वेषासो अग्नेरमवन्तो अर्चयो भीमासो न प्रतीतये।
रक्षस्विनः सदमिद् यातुमावतो विश्वं समत्रिणं दह २०

हे तपुर्जम्भ ! अराण्यः विष्वक्, घना इव, वि जहि। यः अस्म-धृक्, यः मर्त्यः अक्तुभिः अति शिशीते, सः रिपुः नः मा ईशत ॥ १६ ॥

हे अपनी गर्मीसे (रोगबीजोंके) नाश करनेवाले ! को चारों ओरसे, गदासे (नाश करनेके) समान, वि जो हमारा द्रोह करता है, जो रात्रियोंमें (जागता हुआ नाशका प्रयत्न करता है, वह शत्रु हमपर कभी करे ॥ १६ ॥

अग्निः सुवीर्यं वप्ते । अग्निः कण्वाय सौभगं; अग्निः मित्रा प्र आवत् । उत अग्निः मेध्यातिथिं, उपस्तुतं सातौ (प्र अवत्) ॥ १७ ॥

अग्नि उत्तम वीर्य देता है। अग्निने कण्वको उत्तम दिया, अग्निने हमारे मित्रोंका बचाव किया है। अग्निने मेध्यातिथि और उपस्तुतका विनाश (बचाव किया) ॥ १७ ॥

अग्निना तुर्वशं यदुं उग्रदेवं हवामहे । दस्यवे सहः अग्निः नववास्त्वं बृहद्रथं तुर्वीतिं नयत् ॥ १८ ॥

अग्निके साथ हम तुर्वश, यदु और उग्रदेवको दुष्टोंका दमन करनेका बल (देनेवाले) अग्निदेव बृहद्रथ और तुर्वीतिको ठीक रीतिसे चलाते हैं ॥ १८ ॥

हे अग्ने ! ज्योतिः त्वां शश्वते जनाय मनुः नि दधे । ऋतजातः उक्षितः कण्वे दीदेय । यं कृष्टयः नमस्यन्ति ॥ १९ ॥

हे अग्ने ! ज्योतिस्वरूप तुमको शाश्वत कालसे हितके लिये मनुने स्थापन किया। यज्ञमें प्रकट (यज्ञमें) तृप्त होकर (तुमने) कण्वको यश दिया। जिसको सब मनुष्य नमन करते हैं ॥ १९ ॥

अग्नेः अर्चयः त्वेषासः अमवन्तः भीमासः प्रति-इतये न (शक्याः)। रक्षस्विनः यातु-मावतः सदं इत् सं दह। विश्वं अत्रिणं सं दह ॥ २० ॥

अग्निकी ज्वालाएँ प्रकाशित, बलशाली, उनका विरोध नहीं (किया जा सकता)। राक्षसों और देनेवालोंको जला दो। सर्व भक्षकोंको जला दो ॥ २० ॥

शक्तियोंका संगठन करनेवाला अग्नि

इस सूक्तमें शक्तियोंका संगठन करनेका अग्निका गुणधर्म विशेष प्रमुखतासे वर्णन किया है। प्रथम शरीरमें देखिये, शरीर में गर्मी यह अग्निका गुण रहनेतक ही जीवनका होना संभव है। गर्मी चली गयी, शरीर ठण्डा हो गया, तो जीवन समाप्त हो जाता है। शरीर यह एक उत्तम संगठन ही है, वैदिक दृष्टिसे देखा जाय, तो यहां तेंतीस देवताओंकी संगठन ही हुआ है, परस्पर विरुद्ध गुणधर्मवाली देवताएँ जल और अग्निका परस्पर विरोध प्रसिद्ध है। जल करता है और अग्नि, सूर्य तथा वायु जलको सुखाकर हैं। इस तरह इनका परस्पर विरोध है। वनस्पति और भी विरोध है, अग्नि वनस्पतियोंको खा जाता है और

वु अग्निको साथ करता है। इस तरह वायु और मेघका भी स्पर वैर है, वायु मेघोंको तितरबितर करता है और इकट्ठा ी करता है। ऐसे ये देव परस्परका विद्वेष करते हैं, पर इस रीरके संगठनमें ये परस्परकी सहायता कर रहे हैं॥ शरीरमें नों—अग्नि-रहनेतक ही ये सब देवतायें संगठनमें रहती हैं। नों चली गयी तो यह संगठन टूट जाता है, इसलिये अग्नि गठन करनेवाला है।

राष्ट्रमें भी अग्निसे होनेवाले यज्ञ जनताका संगठन करते हैं। जसूय, अग्निष्टोम, ज्योतिष्टोम आदि अनेकविध यज्ञ जनताका गठन करते हैं, नरमेधमें सब जातियोंके मानवोंका संगठन ोता है। अग्निसे यज्ञ होते हैं और यज्ञोंसे जनताका संगठन ोता है, इसलिये अग्निको संगठनका देव माना है वह योग्य ी है। अग्नि सब देवोंके पास पहुंचता है, उनको एकत्रित रता है, यज्ञके लिये उनको निमंत्रण देता है और अपने रथपर बिठलाकर यज्ञस्थानमें लाता है और उनको संगठित उनसे यज्ञ कराता है। पाठक इस सूक्तमें अग्निके इस वर्णन देख सकते हैं।

ताका संगठन भी इसी रीतिसे करना चाहिये। किसी पूर्ण कार्यका जोश, विचारोंकी आग, सद्भावनाकी गर्मी में उत्पन्न करनी चाहिये। और नाना जातियों और नाना विभक्त हुई जनताको संगठित करना चाहिये। यज्ञके जनताके संगठनका यह विधि है। इस तरह विचार करने निद्वारा व्यक्तिमें, राष्ट्रमें और विश्वमें शक्तियोंका संगठन तरह होता है, इसका ज्ञान पाठक प्राप्त कर सकते हैं।

देवत्वकी प्राप्ति

। देवयतीनां पुरूणां विशां यज्ञं अग्निं वचोभिः प्र

ई-देवत्वकी प्राप्ति करनेकी इच्छावाली, सब उन्नति-साधन भरपूर ऐसी प्रजाओंके सामर्थ्यका संवर्धन करनेवाले नको हम प्रशंसा करते हैं। इसमें प्रत्येक पदका महत्त्व ति है इसलिये इन पदोंका महत्त्व प्रथम देखिये-

१ **देवयती**—अपने अन्दर देवत्व स्थापित हो और वह ब बढे, ऐसी इच्छा करनेवाली प्रजाका यह नाम है। मनुष्यमें राक्षस-मानव, पशु-मानव, जन-मानव, नर-मानव, देव-ब ऐसे भेद हैं। इन नामोंसे ही इनके लक्षणोंका ज्ञान हो ता है। मनुष्यको अपने अन्दरके राक्षसपन या पशुपनका य करके अपने अन्दर देवभाव स्थापन करना चाहिये। इसीलिये धर्म है। अर्थात् इस तरह मानवोंमें राक्षस और देव ऐसे दो विभेद रहते हैं। इस मंत्रमें देव मानवोंका ही विचार किया है। सब मानवोंका संगठन नहीं हो सकेगा, परन्तु जो अपने अन्दर देवत्वका विकास करना चाहते हैं, उनका ही संगठन हो सकता है। और जो मानवोंका संगठन करना चाहते हैं, उनको सबसे प्रथम देवत्वकी प्राप्तिके इच्छुक कौन हैं और कौन राक्षसगणके लोग हैं, इनका विवेक करना चाहिये। समान विचारोंका संगठन होगा। कनसे कन अपने विरोधी भावोंको दबाना और सर्वसाधारणके हितके कार्य करनेकी इच्छा करना इतना तो आवश्यकही है। अर्थात् अपने अन्दर देवभाव उत्पन्न करना यह मानवका पहिला साध्य है। भगवद्गीतामें १६ वे अध्यायमें प्रारंभमेंही दैवी संपत्तिके लक्षण दिये है। ब्राह्मी स्थिति भी जो गीतामें कही वह यहां पाठक देखें।

२ **पुरुः**— पुर्, पूः (नगर), पुरी (नगरी), पुष् (नागरिक), पूरवः, पौराः (नागरी जनता), इन सबमें 'पुर्' पद है। इसका यौगिक अर्थ 'परिपूर्ण, सब सुख साधनोंसे, उन्नतिके साधनोंसे भरपूर भरे हुवे' यह है। जिस नगरोंमें उन्नतिके और उपभोगके सब साधन भरपूर रहते हैं, वह 'पुर्, पूः, पुरी' है; और जिन लोगोंके पास वे साधन भरपूर रहते हैं उनका नाम 'पूरु, पूरवः, पौराः' है। इस मंत्रमें 'पुरु' पद है, इसका भी यही अर्थ है, इनकी संगठना होनी चाहिये। उन्नतिके और सुखके सब साधन नगरमें संग्रहित करना और उनका उपयोग सबको करनेका अवसर मिलना, यह नागरिकों का कर्तव्य है।

४ **विशः, विट्**- प्रजा, जनता, जो घरबार करके स्थायीरूपसे एक स्थानपर रहती है। खेती-बाडी, व्यापार-व्यवहार, लेनदेन करनेवाली जनता। इनका संगठन करना आवश्यक है। प्रत्येक व्यापार-व्यवहारके कार्यकर्ताओंका संगठन करके पश्चात् सब संघोंका संगठन करना योग्य है। इसीका नाम 'गण-व्यवस्था' है। गण, व्रात, संघ, गणमंडल, गणसमाजमंडल ये इनके छोटे बडे गणोंके नाम हैं। इनके मुखियाओंके गणेश, गणपति, गणसमाजेश, गणसमाजमंडलाधिप आदि नाम हैं। इससे छोटे बडे संगठनके संस्थाओंका बोध हो सकता है।

५ **देवयतीनां पुरूणां विशां** (गणः)— अपने अन्दर देवत्वका संवर्धन करनेवाले सामर्थ्यसंपन्न प्रजाजनोंके गणोंका रक्षण करना संगठनका साध्य है। इसमें छोटे मोठे संघ होंगे

६ यह्वः अग्निः– सामर्थ्य बढानेवाला शक्तिरूप अग्नि। इसको जनतामें प्रज्वलित करना चाहिये। व्यक्तिमें यह उत्साहरूप है, जनतामें यज्ञस्थलमें प्रदीप्त होनेवाला है। 'यह्व' का अर्थ– 'बडा, महान्, समर्थ, शक्तिमान्, फूर्तीला, प्रयत्नशील, कार्यतत्पर, सतत प्रयत्नशील' यह है।

७ प्र ईमहे– पूर्वोक्त मानवोंके सतत प्रयत्न करनेके उत्साहरूप अग्निकी हम प्रशंसा करते हैं। अर्थात् इसकी प्रशंसा होना योग्य है। 'प्र–ई' का अर्थ 'प्रगति,' उच्च गति, उत्कर्षकी ओर जाना है। पूर्वोक्त प्रकारके मानवोंकी प्रगति उनके सतत यत्न करनेके उत्साहसे निःसन्देह होगी।

८ अन्ये सीं ईळते– दूसरे भी इसकी स्तुति गाते हैं। क्योंकि यह प्रशंसा योग्य है। 'ईळ्, ईड्, ईर्' ये धातु सदा अन्नके साथ संबन्ध रखते हैं। 'इला, इरा, इडा' ये पद वेदमें भूमिके और अन्नके वाचक हैं। भूमिसे ही अन्न होता है और अन्न उसीको मिलता है जो कि पूर्वोक्त प्रकार उत्साहसे कार्य करते हैं। (मं. १)

९ जनासः सहोवृधं अग्निं दधिरे– लोग बलवर्धक अग्निको अपने अन्दर धारण करते हैं। 'सहः, सहस्' का अर्थ है 'कष्ट सहन करनेका बल'। जिसके पास कष्ट सहन करनेकी शक्ति होगी वही प्रयत्नसे उन्नतिको प्राप्त होगा। जिसमें [illegible] नहीं है वह कुछभी कर नहीं सकता।

१० सुमनाः अविता भव– उत्तम मनवाला संरक्षक हो। [illegible] कार्य करनेवाला उत्तम मनवाला चाहिये, नहीं तो बडा दुर्बल मनवाला हुआ तो रक्षण करनेके स्थानपर भक्षण करेगा और रक्षकका राक्षस बनेगा। (मं. २)

११ दोतारं विश्व-वेदसं दूतं वृणीमहे—दाता, सब [illegible] ऐसे दूतका हम स्वीकार करते हैं। दूत दाता हो और [illegible] जानी, धनकुबेर हो। राजदूतके भी येही लक्षण हैं।

१२ महः सतः अर्चयः विचरन्ति, भानवः दिवि [illegible]—जो महान् सत्यनिष्ठ होते हैं, उनका तेज चारों ओर फैलता है और उनका प्रकाश आकाशतक पहुंचता है। [illegible] यह महिमा है। (मं. ३)

१३ यः ददाश, सः विश्वं धनं जयति—जो दान [illegible] है, वह सब धन विजय करके प्राप्त करता है। जो अपने [illegible] धनादि दूसरोंको सब देता है, वह सर्वत्र विजय पाता है। (मं. ४)

१४ देवाः यानि धुवा अकृण्वत, ता [illegible] त्वे संगतानि—सब अन्य देव जो स्थायी उन सब व्रतोंका संबंध तुम्हारे पास पहुंचता है कोई कार्य नहीं है, जो कि मुख्य देवकी शक्ति हो। 'सर्वदेव-नमस्कारः केशवं प्रति सब देवोंको किया नमस्कार विष्णुको पहुंचता है,

येऽप्यन्यदेवताभक्ता यजन्ते श्रद्धयान्वि
तेऽपि मामेव कौन्तेय

(गी.

'अन्य देवताओंके उद्देश्यसे किया हुआ यज्ञ यजन होता है।' इन वचनोंके सदृश यह (मं. ५)

१५ सुमनाः सुवीर्या यक्षि–उत्तम मन पराक्रमी वीरोंका पूजन करो। जो उत्तम पराक्रमी हो ही सत्कार करना चाहिये। (मं. ६)

१६ नमस्विनः स्वराजं उपासते–(पास रखनेवाले अपने तेजसे चमकनेवाले वीरका हैं। यहां 'नमस्-विन्' का अर्थ 'अन्न-वान्'।

१७ स्निधः अतितिर्पवः और हिंसा करनेवाले शत्रुओंको परास्त करने (मं. ७)

१८ अन्तः वृत्रं अतरन्— प्रहार करनेवाले ओरसे घेरनेवाले शत्रुका पराभव किया।

१९ रोदसी क्षयाय उरु चक्रिरे–पृथ्वी में (मनुष्यकि) रहनेके लिये बहुत स्थान बनाना का कार्य है। मानवोंको उचित है कि वे अपने विस्तृत स्थान बनावें। अपना निवास अतिसंकुचित होने दें। (मं. ८)

२० स्व-धा-वः रायः पूर्धि– अपनी वीर (हमें) धनोंसे भरपूर भर देवें। मनुष्य धनादि कमावे।

२१ देवेषु आप्यं– दिव्य विद्वानोंमें (मनुष्य मित्रता रखे। देवोंके साथ मित्रता करनेवाला मनुष्य करे। मनुष्यमें देवत्वकी दैवी-संपत्तिका विना देवोंकी मित्रता होना असंभव है।

भुत्यस्य वाजस्य राजसि- प्रशंसनीय बलसे ी बनो। ऐसे श्रेष्ठ पराक्रम करो कि जिससे तुम्हारी चारों ओर फैले। (मं. १२)

३ नः ऊतये ऊर्ध्वः तिष्ठ- हमारी सुरक्षाके लिये उच्च । स्वयं उच्च बनकर हमारी रक्षा करो। स्वयं उच्च बनना पश्चात् दूसरोंकी सुरक्षाका यत्न करना मनुष्यको योग्य (मं. १३)

४ केतुना नः अहंसः निपाहि— ज्ञान देकर हमें बचाओ। मनुष्य ज्ञानसे ही पापसे अपनी सुरक्षा कर ते हैं।

१५ विश्वं अत्रिणं सं दह—सब भक्षसनेवालोंका नाश । सब रोगबीजोंको अग्निकी ज्वालासे जला दो। त्रिन्= खानेवाला, भक्षसनेवाला, रक्त खानेवाला कृमि, रोग ज, राक्षस।

१६ चरधाय जीवसे नः ऊर्ध्वान् कृधि— म चाल चलन और दीर्घ जीवनके लिये हम सबको उच्च ाओ। उत्तम श्रेष्ठ बननेसे उत्तम आचार होगा और दीर्घ वन प्राप्त होगा। (मं. १४)

१७ रक्षसः अराव्णः धूर्तेः रिपतः जिघांसतः नः ाहि— राक्षसों, कंजूसों, धूर्तों, घातकों और हिंसकोंसे हमें चाओ। ये पद रोगबीजोंके भी वाचक हैं। (मं. १५)

१८ अराव्णः विष्वक् विजहि— कंजूसोंको चारों ीरसे दूर करो।

१९ यः अस्मध्रुक् मर्त्यः अक्तुभिः अति शिशीते ः रिपुः नः मा ईशत— जो द्रोह करनेवाला हमारा शत्रु ात्रीरात जागता हुआ हमारे घातपातका विचार करता हो, उसका शासन हमारे ऊपर न हो। अर्थात् ऐसे शत्रुका सर्वनाश ीर नाश हो जाय। (मं. १६)

२० सुवीर्यं यज्ञे, सौभगं (ददाति), मिश्राणि मावत्— वह उत्तम पराक्रम करता है, सौभाग्य देता है और ीक्षाओंकी सुरक्षा करता है। (मं. १७)

इस तरह मानवधर्मका सर्व सामान्य बोध करनेवाले मन्त्र- भाग इस सूक्तमें विशेष स्मरण रखनेयोग्य है। पाठक इस ं सूक्तोंके पढ़कर देखेंगे, तो उसको ऐसा देखनेके दर्शन करनेमें ं मंत्रोंसे मानवधर्मका उत्तरण वैसा प्राप्त करना चाहिये, इसका ं बोध हो सकता है।

ऋषियोंके नाम

इस सूक्तमें निम्नलिखित ऋषियोंके नाम आये हैं-

१ मेध्यातिथिः कण्वः (त्वां) दधे। — कण्व गोत्रके मेध्यातिथि ऋषिने अग्निकी उपासनाविधिका स्वीकार किया है। (मं. १०)

२ मेध्यातिथिः कण्वः ऋतात् अधि अग्निं ईधे- कण्वगोत्रके मेध्यातिथि ऋषिने यज्ञमें अग्निको प्रदीप्त किया। **' तं इमाः ऋचः '** उसका वर्णन ये ऋचाएं करती हैं। यहां इस सूक्तकी ऋचाओंका निर्देश है अथवा दूसरे मंत्रोंका निर्देश है इसकी खोज होनेयोग्य है। (मं. ११)

३ अग्निः कण्वाय सौभगं, मेध्यातिथिं पावत्- अग्नि ने कण्वको सौभाग्य दिया, मेध्यातिथिकी सुरक्षा की। (मं.१७)

यह सूक्त घोरपुत्र कण्व ऋषिका है। मेधातिथि और मेध्यातिथि ये दोनों ऋषि कण्वगोत्रके हैं, जिनके नामोंमेंसे मेध्यातिथिका नाम इस सूक्तमें पूर्वोक्त मंत्रोंमें आया है। इसके अतिरिक्त **धनस्पृत** (मं. १०), **उपस्तुत** (मं. १०;१७), **तुर्वश, यदु, उग्रदेव, नवास्त्व, बृहद्रथ, तुर्वीति** (मं. १८) ये नाम भी आये हैं। इनमें तुर्वश आदि नाम राजाओंके होंगे। यदु और तुर्वश वेदमंत्रोंमें बहुत बार आये हैं। कई भाष्यकार इन पदोंको गुणबोधक मानते हैं। जैसे (तुर्- वश) त्वरासे शत्रुको वश करनेवाला, (बृहद्- रथ) बड़े रथवाला, (नव- वास्त्व) नवीन घरमें रहनेवाला इस तरह इनके गुणबोधक अर्थ होते हैं।

रोगबीजोंका नाश करना

इस सूक्तमें कहा है कि अग्नि रोगबीजोंका नाश करता है।

१ विश्वं अत्रिणं सं दह— सब भक्षक हिंसकोंको भस्म दो। **'अत्रिन्'** यह रोगवाचक है, कि जो शरीरके खून और मांसको खा जाता है और शरीरको हानि करता है। (मं. १०, २०)

२ रक्षसः पाहि- राक्षसोंसे रक्षा करो। यहां रक्षस् शब्द हानिकारक रोगबीजोंका वाचक है, ये रोग भक्षक होनेसे हिंसक हैं। (मं.१७)

३ रक्षस्विनः दामयतः सं दह— [illegible] रक्षसोंसे भरे हैं, जिनसे शरीरमें [illegible] ये रोगबीज हैं।

[illegible] इन रोगबीजोंको [illegible] देता है। इसलिये [illegible] ।

येषामज्मेषु पृथिवी जुजुर्षाँ इव विश्पतिः । भिया यामेषु रेजते ८
स्थिरं हि जानमेषां वयो मातुर्निरेतवे । यत् सीमनु द्विता शवः ९
उदु त्ये सूनवो गिरः काष्ठा अज्मेष्वत्नत । वाश्रा अभिज्ञु यातवे १०
त्यं चिद् घा दीर्घं पृथुं मिहो नपातममृध्रम् । प्र च्यावयन्ति यामभिः ११
मरुतो यद्ध वो बलं जनाँ अचुच्यवीतन । गिरीँरचुच्यवीतन १२
यद्ध यान्ति मरुतः सं ह ब्रुवतेऽध्वन्ना । शृणोति कश्चिदेषाम् १३
प्र यात शीभमाशुभिः सन्ति कण्वेषु वो दुवः । तत्रो षु मादयाध्वै १४
अस्ति हि ष्मा मदाय वः स्मसि ष्मा वयमेषाम् । विश्वं चिदायुर्जीवसे १५

यामेषु अज्मेषु पृथिवी, जुजुर्वान् इव विश्पतिः, रेजते ॥ ८ ॥
जानं स्थिरं हि, मातुः वयः निः एतवे यत् शवः ता अनु ॥ ९ ॥

गिरः सूनवः अज्मेषु काष्ठाः, वाश्राः अभि-ज्ञु यातवे, उ अत्नत ॥ १० ॥

त्यं चित् घ दीर्घं पृथुं अ-मृध्रं निहः न-पातं यामनिः अवयन्ति ॥ ११ ॥
मरुतः ! यत् ह वः बलं जनान् अचुच्यवीतन, गिरीन् अचुच्यवीतन ॥ १२ ॥
यत् ह मरुतः यान्ति अध्वन् ना सं ब्रुवते ह, एषां कः शृणोति ? ॥ १३ ॥

आशुभिः शीभं प्र यात, कण्वेषु वः दुवः सन्ति, तत्रो मादयाध्वै ॥ १४ ॥
वः मदाय अस्ति हि स्म, विश्वं चित् आयुः जीवसे, वयं स्मसि स्म ॥ १५ ॥

जिनके आक्रमणोंके अवसरपर और चढाईके समयमें यह भूमि, दुर्बल राजाके समान, भयसे कांपने लगती है ॥ ८ ॥

इनकी जन्मभूमि स्थिर है । जैसे मातासे पक्षी दूर जानेका यत्न करते हैं, (तो भी माताके पास उनका मन रहता है,) उसी तरह इनका बल सदैव दोनों (मातृभूमि और विजय-स्थानमें) विभक्तसा हो जाता है ॥ ९ ॥

उन वाणीके पुत्र (वक्ता मरुतोंने) शत्रुपर करनेके आक्रमणोंमें अपनी (अन्तिम) सीमाएं ही पकड लीं हैं, जैसा कि गौओंको घुटनेतकके पानीमें जाना सुगम होता है, उसी तरह (वे सुगमतासे चारों ओर) पहुंचते हैं ॥ १० ॥

उस बडे लंबेचौडे, फैले हुवे, विनष्ट न होनेवाले, जल वृष्टि न करनेवाले मेघोंको (भी अपने) हमलोंसे (वे) हिला देते हैं ॥ ११ ॥

हे मरुतों ! जो सचमुच तुम्हारा बल लोगोंको हिला देता है, वह पर्वतोंको भी कंपाता है ॥ १२ ॥

जिस समय सचमुच मरुत् संचार करते हैं, तब वे मार्गमेंही मिलकर बोलते हैं, इनका शब्द (कौन दूसरा) सुनता है ? (कोई नहीं ।) ॥ १३ ॥

तीव्र गतिसे वेगपूर्वक चलो, कण्वोंके मध्यमें आपका सत्कार (होनेवाला) है । वहां तुम भली भान्ति तृप्त होवो ॥ १४ ॥

तुम्हारी तृप्तिके लिये (यह हमारा अर्पण) है, सुखपूर्वक संपूर्ण आयु बितानेके लिये हम इनके (अनुदासी होकर) रहेंगे ॥ १५ ॥

मरुत् देवोंका गण

'मरुत्' (मर+उत्) मरनेतक उठकर लडनेवाले बडे वीर हैं । ये समुदायसे रहते हैं । सब मिलकर एकही बडे परिवारमें रहते हैं। साथ साथ शत्रुपर हमला करते हैं, सबका आयुष्य एक जैसा रहता है, जन्मदिन समान होता है, सबके पास शस्त्रास्त्र समान रहते हैं । इनकी कतार सातोंकी मिलकर एक होती है, प्रत्येक कतारके दोनों ओर दो वीर रहते हैं। इनको 'पार्श्व-रक्षक' अर्थात् दोनों बाजुओंसे होनेवाले हमलोंसे बचानेवाले वीर कहते हैं । इस तरह १+२+१=९ नौ वीरोंकी एक कतार होती है, ऐसी इनकी ७ कतारें होती हैं । अर्थात् ७ कतारोंसे मिलकर (९×७=) ६३ सैनिक होते हैं। इनके

संख्याके अनुसार संघके नाम होते हैं—

१ शर्ध- ७वीरोंका एक पंक्ति, २ पार्श्वरक्षक, मिलकर ९ वीर हुए। (१+७+१=) ९×७ कतारें=६३ वीरोंका एक शर्ध होता है। इसमें (७×७=) ४९ सैनिक और (७×२=) १४ पार्श्वरक्षक मिलकर ६३ वीर रहते हैं। इसका नाम 'शर्ध' है।

२ व्रात— (६३×७ =) ४४१ सैनिकोंका एक व्रात कहलाता है।

३ गण—(६३×१४=) ८८२ सैनिकोंका, अथवा १४ व्रातोंका एक गण कहलाता है।

४ महागण— (६३×६३=) ३९६९ सैनिकोंका महागण कहलाता है।

इस तरह सातोंके विविध अनुपातोंमें इनके अनेक छोटे मोटे सैनिक विभाग होते हैं। इससे भी 'महागणमंडल' आदि अनेक विभागोंके नाम हैं।

शस्त्रास्त्र

इनके शस्त्रास्त्र ये हैं। **ऋष्टिः**= माला, **वाशी**= कुल्हाडा, ये शस्त्र और **अज्रि**— गणवेश भी सबका समानही रहता है। अन्यत्र अन्य शस्त्रोंका भी वर्णन है। तलवार, वज्र आदि भी ये वर्तते ये और लोहेके शिरस्त्राण भी ये वर्तते थे।

बल

मरुतोंका बल संघके कारण है। समूहमें रहना, समूहमें जाना, समूहसे क्रीडा करना आदिके कारण जो इनका संगठन है उसका यह बल है। इस सूक्तका मंत्रवार आशय ऐसा है—

१ ऋषि कण्वोंसे कहता है कि मरुतोंके काव्यका गान करो क्योंकि उनका बल संघसे उत्पन्न हुआ है तथा ये आपसमें कभी लडते नहीं, रथोंमें बैठकर वीरताको प्रकट करते हैं। अर्थात् इनके काव्यका गान करनेसे मानवोंमें संगठनका बल बढेगा, खेलोंमें रुचि बढनेसे वृत्ति आनन्दयुक्त बनेगी, और उससे उत्साह बढेगा। इसलिये मरुतोंके काव्यका गान करना वीरताको बढानेवाला है।

२ ये वीर भाले, बर्चियों, कुल्हाडें तथा अपना अन्य पोषाख चमचमानेही कारण करते हैं और जब बाहर आते हैं, तब वैसे चमकते साथ साथ प्रगट होते हैं। ये कभी अकेले नहीं रहते। इनका सबही रहना सहना सादिक होता है।

३ ये हाथोंमें चाबुक लेकर अपने [illegible] हैं। उस समय इनके कोडोंका शब्द सुने [illegible] है। युद्धके समय तो इनकी वीरता विशेष

४ वीरोंके संघका बल बढानेके लिये, [illegible] लिये और प्रतापका सामर्थ्य वृद्धिंगत करनेके लि काव्योंका गान करते जाओ। वीरोंके शब्द करने वीरता बढ जाती है। यह है वीरोंके अध्यक्ष [illegible]

५ गौके दूध आदि गोरसमें एक बडाकर संघमें रहनेसे और एक बल बढता है। पहिले पीनेसे बढता है और दूसरा सांघिक जीवनसे [illegible] सब प्रकारके बलकी वृद्धि करनी चाहिये। [illegible] करना चाहिये कि जिससे शक्तिका नाशही हो जा

६ ये वीर भूमि और आकाशको हिला डालते [illegible] समान होनेके कारण इनमें कोई भी छोटा या बडा [illegible] इनमें एक भी वीर ऐसा नहीं है कि जो शत्रुसे [illegible] न होगा।

७ इनका हमला शत्रुपर होने लगा, तो [illegible] किसीके आश्रममें जाकर रहते हैं, क्योंकि ये [illegible] भी उखाड देते हैं। अर्थात् इनके हमलेसे [illegible] होते हैं।

८ इनके हमलोंके समय भूमि भी [illegible] मरियल पालकके समान सभी भयभीत होते हैं।

९ इनका जन्मस्थान सुस्थिर है, पर ये दूर दूर [illegible] नेके लिये दौडते हैं। जिस तरह पक्षीके छोटे [illegible] दूर जाते हैं तो भी अपनी मातापर उनका ध्यान वैसाही ये वीर दूर हमलेके लिये गये तो भी उनका ध्यान रहताही है।

१० ये बडे वक्ता हैं, ये अपने पराक्रमोंमें [illegible] करते हैं। जिस तरह घुटने जितने पानीमें गौवें घूमती तरह सर्वत्र ये वीर घूमते हैं और पराक्रम करते रहते हैं।

११ ये (वायुरूपमें) बडे भारी मेघोंको [illegible] हैं। वैसेही ये वीर शत्रु कितना भी प्रबल हुआ, तो उखाडही देते हैं।

१२ जो उनका बल शत्रुओंको हटाता है वही [illegible] भी लांघता है।

जब कतारोंमें मार्गपरसे चलते हैं, तब वे छोटी आवाजसे बोलते हैं, कि इस समय सरा आदमी सुन नहीं सकता। दो वीर आपलगे तो तीसरा सुन नहीं सकता।

शीघ्र आगे बढो, उपासकोंको आशीर्वाद दो, नपर तृप्त हो जाओ।

तृप्ति करनेके लियेही हम उनके लिये यह अर्पण कर रहे हैं। हमें दीर्घ आयु प्राप्त हो और इस आयुमें हम इन वीरोंके ही होकर रहेंगे।

यह है इस सूक्तका आशय। मरुतोंका काव्य वीरता बढानेवाला है। 'आशुभिः शीभं प्रयात' अथवा 'शीभं प्रयात' (Quick march) शीघ्र गतिसे या शीघ्र गतिवाले वाहनोंसे आगे बढो' अथवा 'शीघ्रतासे बढो' यह सैनिकीय आदेश यहां है।

(३) वीर-काव्य

(ऋ. १। ३८) कण्वो घौरः। मरुतः। गायत्री।

कद्व नूनं कधप्रियः पिता पुत्रं न हस्तयोः। दधिध्वे वृक्तबर्हिषः। १
क्व नूनं कद् वो अर्थं गन्ता दिवो न पृथिव्याः। क्व वो गावो न रण्यन्ति २
क्व वः सुम्ना नव्यांसि मरुतः क्व सुविता। क्वो३ विश्वानि सौभगा ३
यद् यूयं पृश्निमातरो मर्तासः स्यातन। स्तोता वो अमृतः स्यात् ४
मा वो मृगो न यवसे जरिता भूदजोष्यः। पथा यमस्य गादुप ५
मो षु णः परापरा निर्ऋतिर्दुर्हणा वधीत्। पदीष्ट तृष्णया सह ६

हे कध-प्रियः वृक्त-बर्हिषः! पिता पुत्रं न, ह नूनं दधिध्वे ? ॥ १ ॥

अर्थ- हे स्तुतिसे प्रसन्न होनेवाले और आसनोंपर विराजमान मरुतों! पिता पुत्रको जैसे अपने हाथोंसे (उठाता है, उस तरह तुम हमें) कब भला उठाओगे ? ॥१॥

:: कत् अर्थम्? दिवः गन्त, न पृथिव्याः, वः ग्यन्ति ॥ २ ॥

(भला तुम) किधर (जाओगे)! तुम्हारा उद्देश्य क्या है! तुम भलेही द्युलोकसे प्रस्थान करो, लेकिन इस भूलोकसे कभी न चले जाओ। आपकी गौवें भला कहां नहीं रम्भाती हैं! ॥२॥

वः नव्यांसि सुम्ना क्व? सुविता क्व? विश्वानि ॥ ३ ॥

हे मरुत् वीरो! तुम्हारी नवीन सुख बढानेवाली (योजनाएँ) कहाँ हैं! तुम्हारी सुविधाएँ कहां हैं! तुम्हारे सभी सौभाग्य कहां हैं? ॥३॥

तरः! यूयं यद् मर्तासः स्यातन, वः स्तोता ३ ॥ ४ ॥

हे मातृभूमिके वीरो! तुम यद्यपि मरण-धर्मशील हो, तथापि तुम्हारा स्तोता भक्त निःसन्देह अमर होगा ॥ ४ ॥

से न, वः जरिता अ-जोष्यः मा भूत्, यमस्य)उप गात् ॥ ५ ॥

हिरन जैसा तृणको (असेवनीय नहीं समझता), वैसा ही तुम्हारी स्तुति करनेवाला भक्त तुम्हारे लिये अप्रिय न होवे, और वैसेही वह यमके मार्गसे भी न चला जावे (उसकी अकाल-मृत्यु न होने पावे) ॥५॥

दुर्हणा निर्ऋतिः नः नो सु वधीत्, तृष्णया ॥ ६ ॥

पराकाष्ठाकी, हटानेके लिये कठिन दुर्दशा भी हमारा नाश न करे, तृष्णाके साथही उस दुर्दशाका विनाश हो जाय ॥६॥

सत्यं त्वेषा अमवन्तो धन्वञ्चिरा सदृयानः । मिहं कृण्वन्त्यवाताम्
वाश्रेव विद्युन्मिमाति वत्सं न माता सिषक्ति । यदेषां वृष्टिरसर्जि
दिवा चित् तमः कृण्वन्ति पर्जन्येनोदवाहेन । यत् पृथिवीं व्युन्दन्ति
अध स्वनान्मरुतां विश्वमा सद्म पार्थिवम् । अरेजन्त प्र मानुषाः
मरुतो वीळुपाणिभिश्चित्रा रोधस्वतीरनु । यातेमखिद्रयामभिः
स्थिरा वः सन्तु नेमयो रथा अश्वास एषाम् । सुसंस्कृता अभीशवः
अच्छा वदा तना गिरा जराये ब्रह्मणस्पतिम् । अग्निं मित्रं न दर्शतम्
मिमीहि श्लोकमास्ये पर्जन्य इव ततनः । गाय गायत्रमुक्थ्यम्
वन्दस्व मारुतं गणं त्वेषं पनस्युमर्किणम् । अस्मे वृद्धा असन्निह

धन्वन् चित्, त्वेषाः अम-वन्तः रुद्रियासः, अ-वातां मिहं आ कृण्वन्ति, सत्यम् ॥ ७ ॥

यत् एषां वृष्टिः असर्जि, वाश्रा इव, विद्युत् मिमाति, माता वत्सं न, सिसक्ति ॥ ८ ॥

यत् पृथिवीं व्युन्दन्ति उद-वाहेन पर्जन्येन दिवा चित् तमः कृण्वन्ति ॥ ९ ॥

मरुतां स्वनात् अधः पार्थिवं विश्वं सद्म आ (अरेजत), मानुषाः प्र अरेजन्त ॥ १० ॥

हे मरुतः ! वीळुपाणिभिः चित्राः रोधस्वतीः अनु अ-खिद्र-यामभिः यात ईम् ॥ ११ ॥

एषां वः रथाः, नेमयः, अश्वासः, अभीशवः, स्थिराः सुसंस्कृताः सन्तु ॥ १२ ॥

ब्रह्मणः पतिं अग्निं, दर्शतं मित्रं न, जरायै वना गिरा अच्छ वद ॥ १३ ॥

आस्ये श्लोकं मिमीहि, पर्जन्यः इव ततनः, गायत्रं उक्थ्यं गाय ॥ १४ ॥

त्वेषं पनस्युं अर्किणं मारुतं गणं वन्दस्व, इह अस्मे वृद्धाः असन् ॥ १५ ॥

मरुत् देवोंमें भी तेजस्वी और बलिष्ठ मरुत् अन्तरिक्षमें भी वृष्टि करते हैं, यह सत्य है ॥ ७ ॥

जब इन (मरुतों की सहायतासे) वृष्टि होती है, बाली गौके समान, बिजली चट्ट शब्द करती है, बाल ह(को अपने पास रखने)वे समान (मेघोंमेंही)

(ये वीर) जब भूमि को हिलाते हैं, तब जलसे दिनके समयमें भी अन्धेरा किया जाता है ॥ ९ ॥

मरुतोंकी गर्जनासे नीचेवाला पृथ्वीरूपी मंडल लगता है और मानव भी कांप उठते हैं ॥ १० ॥

हे मरुत् वीरों ! बलवाले बाहुओंके साथ तटोंपरसे विना थकावट तुम गमन करते हो ॥ ११ ॥

ये तुम्हारे रथ, रथके आरे, घोडे, लगाम सभी शुभसंस्कारवाले हों ॥ १२ ॥

ज्ञानके पति अग्निके विषयमें, सुन्दर मित्रके समान, करनेके लिये सतत अपनी वाणीसे (स्तुतिके वाक्य)

मुखमें ही प्रथम श्लोकको (अक्षरोंके प्रमाणसे) उसका पर्जन्यके समान फैलाव करो और गायत्री काव्यका गायन करो ॥ १४ ॥

तेजस्वी, स्तुतियोग्य, पूज्य मरुतोंके दलका वन्दन करो यहां हमारे वृद्ध हमारे समीप ही रहें ॥ १५ ॥

मर्त्य और अमर

यूयं मर्तासः स्यातन, वः स्तोता अ-मृतः स्यात् । (मं. ४)

मरुत् स्वयं मर्त्य हैं, पर उनके पराक्रम ऐसे हैं कि उनके पराक्रमोंके काव्योंका गायन करनेवाले अमर हो जायँ। यह चतुर्थ मंत्रमें कहा है। ऋग्वेदोंके विषयमें भी वेदमन्त्रमें ऐसाही कहा है—

मर्तासः सन्तो अमृतत्वं आनशुः ॥ (ऋ. १।११०।४)

(सायनभाष्य) एवं कर्माणि कृत्वा मर्तासो मनुष्या सन्तः अमृतत्वं देवत्वं आनशुः आनशिरे । कृतैः लेभिरे ॥

स्थिरा वः सन्त्वायुधा पराणुदे वीळू उत प्रतिष्कभे ।
युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी मा मर्त्यस्य मायिनः २
परा ह यत् स्थिरं हथ नरो वर्तयथा गुरु ।
वि याथन वनिनः पृथिव्या आशाः पर्वतानाम् १
नहि वः शत्रुर्विविदे अधि द्यवि न भूम्यां रिशादसः ।
युष्माकमस्तु तविषी तना युजा रुद्रासो नू चिदाधृषे ३
प्र वेपयन्ति पर्वतान् वि विञ्चन्ति वनस्पतीन् ।
प्रो आरत मरुतो दुर्मदा इव देवासः सर्वया विशा ४
उपो रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं प्रष्टिर्वहति रोहितः ।
आ वो यामाय पृथिवी चिदश्रोदभीयन्त मानुषाः ५
आ वो मक्षू तनाय कं रुद्रा अवो वृणीमहे ।
गन्ता नूनं नोऽवसा यथा पुरेत्था कण्वाय बिभ्युषे ७

वः आयुधा पराणुदे स्थिरा, उत प्रतिष्कभे वीळू सन्तु, युष्माकं तविषी पनीयसी अस्तु, मायिनः मर्त्यस्य मा ॥२॥

हे नरः ! यत् स्थिरं परा हथ, गुरु वर्तयथ, पृथिव्याः वनिनः वि यायन, पर्वतानां आशाः वि (यायन) ह ॥३॥

हे रिशादसः ! अधि द्यवि वः शत्रु नहि विविदे, भूम्यां न, हे रुद्रासः ! युष्माकं युजा आधृषे तविषी नू चित् तना अस्तु ॥ ४ ॥

हे देवासः मरुतः ! दुर्मदा इव, पर्वतान् प्र वेपयन्ति, वनस्पतीन् वि विञ्चन्ति, सर्वया विशा प्रो आरत ॥५॥

रथेषु पृषतीः उपो अयुग्ध्वं, रोहितः प्रष्टिः वहति, वः यामाय पृथिवी चित् आ अश्रोत्, मानुषा अबीभयन्त ॥६॥

हे रुद्राः ! तनाय कं मक्षु वः अवः आ वृणीमहे, यथा पुरा विभ्युषे कण्वाय नूनं गन्त, इत्था अवसा नः (गन्त) ॥ ७ ॥

तुम्हारे हथियार शत्रुदलको हटानेके लिये हैं और (शत्रुको) पराजय करनेके लिये रखाये हैं। तुम्हारी शक्ति पराभवनीय हो। पर हमारे शत्रुका न (बढ़े) ॥ २ ॥

हे नेता वीरों ! अब तुम सुस्थिर शत्रुको भी उखाड़ फेंकते हो, बलिष्ठ शत्रुको भी हिला देते हो, वृक्षोंतकको भी नाश करते हो, तब तुम पर्वतोंके चारों ओर तो ही निकल जाते हो ॥ ३॥

हे शत्रुका विनाश करनेवाले वीरों ! द्युलोकमें तो लिये शत्रु नहीं है, भूमिपर भी नहीं है। हे शत्रुको वीरों ! तुम्हारे साथ रहनेसे शत्रुपर हमला करनेकी शीघ्रही बल जाय ॥ ४ ॥

हे देववीर मरुतों ! शक्तिके कारण मतवाले होनेके तुम्हारे वीर पर्वतोंको हिला देते हैं, वृक्षोंको उखाड़ ऐसे शक्तिवाले तुम सब जनताको प्रगति करनेके लिये होओ ॥ ५ ॥

तुम अपने रथोंमें चञ्चलोंवाली हिरनियां जोड़ते हो और रंगवाला बड़ा हिरन धुराको खींचता है। तुम्हारे आनेका भूमि (पर) सुनाई देता है, (जिससे) मानव भयभीत होते

हे शत्रुको रुलानेवाले वीरों ! हमारे बालबच्चोंका होनेके लिये शीघ्रही तुम्हारा संरक्षण हमें मिल जाय, वर हम चाहते हैं। जैसे पहिले भयभीत कण्वको शीघ्र जा चुके थे, वैसेही हमारे पास अपनी रक्षक के साथ आओ ॥ ७ ॥

युष्मेषितो मरुतो मर्त्येषित आ यो नो अभ्व ईषते ।
वि तं युयोत शवसा व्योजसा वि युष्माकाभिरूतिभिः ८
असामि हि प्रयज्यवः कण्वं ददे प्रचेतसः ।
असामिभिर्मरुत आ न ऊतिभिर्गन्ता वृष्टिं न विद्युतः ९
असाम्योजो बिभृथा सुदानवोऽसामि धूतयः शवः ।
ऋषिद्विषे मरुतः परिमन्यव इषुं न सृजत द्विषम् १०

हे मरुतः ! यः अभ्वः युष्मा इषितः मर्त्य-इषितः नः आ इ, तं शवसा वि युयोत, ओजसा वि (युयोत), युष्माभिः भिः वि (युयोत) ॥८॥

हे प्रयज्यवः प्रचेतसः मरुतः ! कण्वं असामि हि ददे, निभिः ऊतिभिः, विद्युतः वृष्टिं न, नः आ गन्त ॥९॥

सुदानवः ! असामि ओजः, असामि शवः, बिभृथ,) धूतयः मरुतः ! ऋषि-द्विषे परि-मन्यवे, इषुं न, द्विषं त ॥१०॥

हे वीर मरुतों ! जो घातपात करनेवाला हथियार तुमने फेंका अथवा किसी मानवने फेंक हमपर गिरता हो, तो उसे अपने बलसे हटा दो, अपने सामर्थ्यसे उसे दूर करो, तुम्हारी संरक्षक योजनाद्वारा उसे विनष्ट करो ॥ ८ ॥

हे पूजनीय और ज्ञानी मरुद्वीरों ! कण्वको जैसा तुमने संपूर्ण रूपसे आश्रय दिया था, वैसेही संपूर्ण संरक्षक शक्तियोंके साथ, बिजलियां वृष्टिके साथ जाती हैं वैसे, तुम हमारे पास आओ ॥ ९ ॥

हे उत्तम दाताओं ! तुम संपूर्ण बल और सामर्थ्य धारण करते हो । हे शत्रुको हटानेवाले वीरों! ऋषियोंका द्वेष करनेवाले क्रोधी शत्रुके विनष्ट करनेके लिये बाणके समान, दूसरे शत्रुको ही उसपर छोड दो ॥ १० ॥

शत्रुपर शत्रुको ही छोडना

'परिमन्यवे, इषुं न, द्विषं सृजत ।' (मं. १०) दुष्ट का नाश करनेके लिये, जैसे बाण उसपर छोडते हो, वैसेही रे शत्रुको उसपर छोड दो । अपने एक शत्रुपर अपने रे शत्रुको छोडना, जिससे आपसमें लडते हुए दोनों शत्रु दूसरेके आघातसेही मर जायेंगे और अन्त में आप ही अपना द होगा । अतः यह शत्रुका नाश करनेकी युक्ति बडी ली है ।

(धूतयः) जैसा वायु वृक्षोंको कंपाता है, उस तरह शत्रुको देनेवाले वीर होने चाहिये । जिनके भयसे शत्रु कांप उठें, वे ीर वे हैं । (मं. १, १०)

(असामि स्थिरं शवः) वीरोंके आयुध सुदृढ और सामर्थ्य ारी, शत्रुसे अधिक सामर्थ्यवान् हो । शत्रुके आयुधोंसे कभी भीर न हों । (ऊतिभिः रक्षाभिः) रक्षाके जो प्रयोजनीय हों, जिनसे वीर) शत्रुका प्रतिरोध करनेका सामर्थ्य विशेषरूप ोंवित हो । पर ऐसा वह सामर्थ्य (आयोनः आ) कभी शत्रुके ी कभी न हो । अपना सामर्थ्य बडे परन्तु कभी भी शत्रुका सामर्थ्य कभी न बढे । (मं. २)

(स्थिरं परा दत, गुरु वर्तयध) स्थिर शत्रुको उखाडकर दूर फेंक देते, और बलिष्ठ शत्रुको भी हटा देते हैं वे वीर हैं । (यहां वीरोंका कर्तव्य बताया है, यह सबको स्मरण रखनेयोग्य है ।) (मं. ३)

(रिशादसः) शत्रुको खानेवाले वीर हों, शत्रुका संपूर्ण नाश करनेका सामर्थ्य वहां है । (दस्रासः) शत्रुको हटानेमें वे वीर हैं । (आयुधे तविषी तना अस्तु) शत्रुपर हमला करनेकी शक्ति बहुतही बढाई जाय । वीरोंसे ऐसा करना योग्य है । (मं. ४)

(सर्वया विश्वे प्रेषे आरत) वीर सब प्रजाजनोंके साथ रहें और उनकी प्रगतिके लिये बल करते जायें । (मं. ५)

(यः आसान मनुषा अवोधत्) अपने इन्द्रियोंके वशमें मनुष्य करते हैं । अर्थात् वीर शत्रुपर ऐसा हमला करें कि जिससे देखकर सब लोग मनमोहित हो जायें (मं. ६)

(यः अश्व्यो, पशुमान् गोमान् इन्दुः) जो अश्वोंसे युक्त है, इसको अपने और उसके लिये हम चाहते हैं । (मं. ७)

(अ-सामि ओजः शतः च विभूय) बड़ा सामर्थ्य और [illegible] इस तरह इस वीरकार्यमें सौंपे जाने वाले वीरत्व धारण करें और शत्रुको उखाड़कर फेंक दें। (मं. १०) नाएं ये हैं। पाठक इनको जानें।

(५) क्षात्रबलका संवर्धन

(ऋ. १।४०) कण्वो घौरः। बृहस्पतिः। प्रगाथः= विषमा बृहतीः, समाः सतोबृहत्यः।

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे। उप प्र यन्तु मरुतः सुदानव इन्द्र प्राशूर्भवा सचा त्वामिद्धि सहसस्पुत्र मर्त्य उपब्रूते धने हिते। सुवीर्यं मरुत आ स्वश्व्यं दधीत यो व आचके प्रेतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता। अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः यो वाघते ददाति सूनरं वसु स धत्ते अक्षिति श्रवः। तस्मा इळां सुवीरामा यजामहे प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम्। यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा देवा ओकांसि चक्रिरे

तमिद् वोचेमा विदथेषु शंभुवं मन्त्रं देवा अनेहसम्।
इमां च वाचं प्रतिहर्यथा नरो विश्वेद् वामा वो अश्नवत्

अन्वयः— हे ब्रह्मणस्पते! उत्तिष्ठ, देवयन्तः (वयं) त्वा ईमहे। सुदानवः मरुतः उप प्र यन्तु। हे इन्द्र! सचा प्राशूः भव ॥ १ ॥

हे सहसः पुत्र! मर्त्यः हिते धने त्वां इत् उपब्रूते दि। हे मरुतः! यः वः आचके, (सः) स्वश्व्यं सुवीर्यं आ दधाति ॥ २ ॥

ब्रह्मणस्पतिः प्र एतु। सूनृता देवी प्र एतु। देवाः नर्यं पङ्क्तिराधसं वीरं यज्ञं नः अच्छ नयन्तु ॥ ३ ॥

यः वाघते सूनरं वसु ददाति, सः अक्षिति श्रवः धत्ते। तस्मै सुवीरां सुप्रतूर्तिं अनेहसं इळां आ यजामहे ॥ ४ ॥

ब्रह्मणस्पतिः उक्थ्यं मंत्रं नूनं प्र वदति, यस्मिन् (मन्त्रे) इन्द्रः वरुणः मित्रः अर्यमा देवाः ओकांसि चक्रिरे ॥५॥

हे देवाः! तं इत् शंभुवं अनेहसं मन्त्रं विदथेषु वोचेम। हे नरः! इमां वाचं प्रतिहर्यथ च। विश्वा इत् वामा वः अश्नवत् ॥ ६ ॥

अर्थ— हे ज्ञानके स्वामिन्! उठो। देवत्वको चाहने वाले (हम) तुम्हारी प्रार्थना करते हैं। उत्तम वीर साथ साथ रहकर (कतारमें) यहां आ जावें। सबके साथ रहकर इस सोमरसका पान कर ॥ १ ॥

हे बलके लिये उत्पन्न होनेवाले वीर! मनुष्य जानेपर तुम्हेंही सहायतार्थ बुलाता है। हे मरुतों! गुण गाता है, (वह) उत्तम घोड़ोंसे युक्त और उत्तम वाला धन पाता है ॥ २ ॥

ज्ञानी (ब्रह्मणस्पति) हमारे पास आ जावे। भी आवे। सब देव मनुष्योंके लिये हितकारी, पंक्तियों योग्य, उत्तम यज्ञ करनेवाले वीरको हमारे पास ले

जो यज्ञकर्ताको उत्तम धन देता है, वह अक्षय करता है। उसके हितार्थ हम उत्तम वीरोंसे युक्त, हनन करनेवाली, अपराजित मातृभूमि (इडा देवी प्रार्थना करते हैं ॥ ४ ॥

ब्रह्मणस्पति पवित्र मंत्रका अवश्यही उच्चारण करत जिस (मंत्र) में इन्द्र, वरुण, मित्र, अर्यमा देवोंने घर बनाये हैं ॥ ५ ॥

हे देवों! उस सुखदायी अविनाशी मंत्रको हम बोलते हैं। हे नेता लोगों! इस (मंत्ररूप) वाणीकी प्रशंसा करोगे, तो सभी सुख तुम्हें मिलेंगे ॥ ६ ॥

देवयन्तमश्नवज्जनं को वृक्तबर्हिषम् । प्रप्र दाश्वान् पस्त्याभिरस्थिताऽन्तर्वावत् क्षयं दधे ७
उप क्षत्रं पृञ्चीत हन्ति राजभिर्भये चित् सुक्षितिं दधे ।
नास्य वर्ता न तरुता महाधने नार्भे अस्ति वज्रिणः ८

वयन्तं जनं कः अश्नवत् ? वृक्तबर्हिषं कः (अश्नवत्) ?
न् पस्त्याभिः प्रप्र अस्थित । अन्तर्वावत् क्षयं
। ७ ॥

ब्रह्मणस्पतिः) क्षत्रं उप पृञ्चीत । राजभिः (शत्रून्)
। भये चित् सुक्षितिं दधे । वज्रिणः अस्य महाधने न
अस्ति, न तरुता, न अर्भे (अपि अस्ति) ॥ ८ ॥

देवत्वकी इच्छा करनेवाले मनुष्यके पास (ब्रह्मणस्पतिको छोडकर) कौन भला दूसरा आवेगा ? आसन फैलानेवाले उपासकके पास कौन (दूसरा आवेगा) ? दाता अपनी प्रजाके साथ प्रगति करता है । संतानोंवाले घरका आश्रय करते हैं ॥ ७ ॥

(ब्रह्मणस्पति) क्षात्रबलको संचय करता है । इस वज्रधारीके साथ होनेवाले बडे युद्धमें (कोई भी) इसका निवारण करनेवाला, पराजय करनेवाला नहीं है । और छोटे युद्धमें भी कोई नहीं है ॥ ८ ॥

क्षात्रधर्म

र सूक्तका मुख्य उपदेश यह है कि **(क्षत्रं उप पृञ्चीत)** क्तिको संगठित करो, उसे संप्रहित करके बढाओ, क्षात्र- संवर्धन करो । यह क्षात्रशक्ति इतनी बडे कि जिससे **स्य वज्रिणः महाधने अर्भे [वा] वर्ता तरुता** स्ति) इस शूर वीरके साथ होनेवाले बडे अथवा छोटे में इसको परास्त करनेवाले कोई न रहे । यह है क्षात्र- पराकाष्ठा । यह वीर अपने **(राजाभिः शत्रून् हन्ति)** लिकोंको साथ लेकर शत्रुओंपर हमला करता है, और विनष्ट कर देता है । सबको काट देता है । (मं. ८) ये **(सहसः पुत्रः)** बलके कार्यके लियेही उत्पन्न हुए हैं । बलसे होनेवाला हरएक कार्य ये आनंदसे करते हैं । **र्यः धने हिते तं इत् उपब्रूते)** मनुष्य युद्ध छिड ार उस वीरको ही अपनी सहायतार्थ बुलाते हैं । उसकी का यह प्रभाव अन्य मनुष्योंपर रहता है । **(सः ल्यं सुवीर्यं आदधीत)** वह अपने पास उत्तम घोडे ा है और वह वीर्यवान् पराक्रम करनेवाला शूर वीर भी है । (मं. २)

इस सूक्तका उद्देश्य यही होता है कि वह (नर्य=नरेभ्यः हितं) मानवोंका हित करनेके लिये तत्पर रहे, (वीरं वीरयति) शत्रुओंको अपनी वीरतासे शूर करे, (दधन्वान्) दबन न करे करावे, ज्ञानीका सत्कार करे, मध्यमोंका संगठन करे ओ हीनदीन हों उनकी सहायता करे । यही सर्वत्र करना है । ऐसा पवित्र कार्य करनेसे वह (पंक्ति-राधसं) पंक्तिकी सम्यक् सिद्धि करे, इसके आगमनसे पंक्तिकी शोभा बढे । पंक्तिका यश बढानेवाला यह हो । ऐसा वीर पुत्र ईश्वरकी कृपासे हमें मिले, यही सबकी इच्छा रहनी चाहिये । (मं. ३)

इसी वीरके लिये **(सुवीरां सुप्रतूर्तिं अनेहसं इळां आ यजामहे** । मं. ४) सुवीर प्रसवनेवाली, शत्रुओंका नाश करानेवाली, कभी पराजित न हुई जो अन्नदात्री (मातृभूमि है, उसकी) हम प्रार्थना करते हैं । मातृभूमिके लिये हम अपने सर्वस्वका यज्ञ करते हैं ।

'इळा' के अर्थ 'वाणी, गौ, भूमि, अन्न' आदि अनेक हैं ।

ज्ञानी राष्ट्रमें वीरताका क्षात्रतेज बढानेका कार्य करे । वही 'ब्रह्मणः -पति' है । ज्ञानका पति, ज्ञानका स्वामी, ज्ञानका देव, ज्ञानीही है । (**ब्रह्मणस्पते उत्तिष्ठ** । मं. १) हे ज्ञानी उठो और राष्ट्रमें क्षात्रशक्तिको जगाओ । जो देवत्वका भाव अपने अन्दर बढानेके इच्छुक हैं, उनकी संगठना की जाय । उत्तम दान अर्थात् आत्मसमर्पण करनेवाले वीर (उप प्र यन्तु) सभीके आकर प्रगति करनेके लिये आगे बढें । यही वीरता बढानेवाला महामंत्र है ।

(**ब्रह्मणस्पतिः प्र एतु** । मं. ३) ज्ञानी राष्ट्रकी प्रगति करे । (**सूनृता देवी प्र एतु**) सत्य-वाणी प्रगति हो । उस वाणीका आश्रय करके अपने व्यवहार करते रहें ।

इस पद्धतिसे मानवधर्म सिद्ध हो सकता है ।

(यः वसु ददाति सः अक्षिति श्रव धत्ते । मं. ४) जो धनका दान करता है वह अक्षय यश कमाता है । राष्ट्रके उत्थानमें इस दानका महत्त्व अत्यधिक है ।

(ब्रह्मणस्पतिः मंत्रं वदति । मं. ५) यह ज्ञानी एक गुप्त मंत्र बोलता है, वह मंत्र (शंभुवं अनेहसं मंत्रं विदथेषु वोचेम । मं. ६) सबका कल्याण करनेवाला, पराभव और विनाशसे बचानेवाला रहता है, इसीलिये वह गुप्त जाता है ।

इस तरह राष्ट्रमें ज्ञानी क्षात्रवृत्तिको धारण करे क्षत्रिय वीर उन्नत हों । इसीसे राष्ट्रका उत्कर्ष होता है । इस सूक्तके एक एक पदका विशेष मनन करें । यह उत्तम सूक्त है ।

(६) शत्रुका निवारण

(ऋ. १।४१) कण्वो घौरः । वरुणमित्रार्यमणः, ४–६ आदित्याः । गायत्री ।

यं रक्षन्ति प्रचेतसो वरुणो मित्रो अर्यमा । नू चित् स दभ्यते जनः १
यं बाहुतेव पिप्रति पान्ति मर्त्यं रिषः । अरिष्टः सर्व एधते २
त्रि षुणो अदि त्रिपः पुरो नयन्ति राजान एषाम् । नयन्ति दुरिता तिरः ३
मुमुग्धि नस्त्वमीळिष आदित्यास क्रतो यते । नात्रावखादो अस्ति वः ४
यं यज्ञं नयथा नर आदित्या ऋजुना पथा । प्र वः स धीतये नशत् ५
स रत्नं मर्तो वसु विश्वं तोकमुत त्मना । अच्छा गच्छत्यस्तृतः ६

अर्थ— उत्तम ज्ञानी वरुण, मित्र, अर्यमा ये [illegible] रक्षा करते हैं, उस मानवको कौन [illegible] है ? ॥ १ ॥

(ये देव) जिसका अपने बाहुबलसे [illegible] पोषण करते हैं और (जिस) मानवको [illegible] बचाते हैं, (वह) सब प्रकारसे अखिलित होता [illegible] है ॥ २ ॥

राजा (के समान ये देव) शत्रुओंके नगरों [illegible] नाश करते हैं, उस करनेवालोंका भी नाश करते [illegible] पार पहुँचाते हैं ॥ ३ ॥

हे अदितिके पुत्रो ! यज्ञ मार्गमें [illegible] पूर्ण और कष्टरहित होता है । इसमें [illegible] दुःख आदि कभी नहीं मिलता ॥ ४ ॥

हे नेता, अदितिके पुत्रो ! जिस यज्ञको तुम [illegible] पहचान लो, वह (यज्ञ) आपके [illegible] होगा ॥ ५ ॥

वह मनुष्य निरोग न होता हुआ एक [illegible] रत्न आदि धारण करता है, और अपने [illegible] है ॥ ६ ॥

कथा राधाम सखायः स्तोमं मित्रस्यार्यम्णः । महि प्सरो वरुणस्य ७
मा वो घ्नन्तं मा शपन्तं प्रति वोचे देवयन्तम् । सुन्वन्तमिद् व आ विवासे ८
चतुरश्चिद् ददमानाद् बिभीयादा निधातोः । न दुरुक्ताय स्पृहयेत् ९

यः ! मित्रस्य अर्यम्णः वरुणस्य महि प्सरः स्तोमं
ान ? ॥ ७ ॥
तं घ्नन्तं वः मा प्रति वोचे, शपन्तं मा (प्रति
सुन्वन्तं इत् वः मा विवासे ॥ ८ ॥
ाय न स्पृहयेत् । चतुरः ददमानात् वा निधातोः
८ ॥ ९ ॥

हे मित्रो ! मित्र, अर्यमा और वरुणके महत्त्वके अनुरूप स्तोत्र हम किस तरह सिद्ध करेंगे ! ॥ ७ ॥

देवत्व-प्राप्तिके इच्छुकका जो नाश करता है, आपसे (हम कहते हैं कि) उससे हमारा भाषण भी न होवे, (उसी तरह) गाली देनेवालेके साथ भी (न भाषण होवे) । शुभ संकल्पोंके द्वारा ही आपको हम तृप्त करेंगे ॥ ८ ॥

दुष्ट भाषण करनेकी इच्छा कोई न करे । चारों पुरुषार्थोंका जो धारण करता है, उससे विरोध करनेवालेसे मनुष्य डरे ॥ ९ ॥

शत्रुका निवारण

ा निवारण करना चाहिये । शत्रुके निवारण करनेका
धन ' ज्ञान और विज्ञान ' है इसलिये कहा है, कि
तसः यं रक्षन्ति, स जनः न द्रभ्यते । मं. १)
ग जिसकी सुरक्षा करते हैं, वह मनुष्य दबाया नहीं
ा । जिसके पीछे ज्ञानकी शक्ति है, वह मनुष्य पराधीन
ग । यह ज्ञानका महत्त्व है । यहां कहा है कि केवल
मुख्य नहीं है, परंतु ज्ञानपूर्वक ज्ञानविज्ञानद्वारा
सुरक्षा मुख्य है ।

चेतसः यं पिप्रति, रिपः पान्ति, सः अरिष्टः
। मं. २) ज्ञानी जिसकी पालना करते हैं, ज्ञानी
विद्वेषक शत्रुओंसे बचाते हैं, वह विनाशको प्राप्त नहीं
इतनाही नहीं, अपि तु वह बढता जाता है । पूर्व मंत्रसे
तसः ' (ज्ञानी) यह पद इस मंत्रमें तथा अगले
लेना योग्य है । ज्ञानी जिसकी पोषना करते हैं और
हिंस्रोंसे सुरक्षित रखते हैं, वह न केवल विनष्ट
ता, परंतु वह वृद्धिगत होता है । ज्ञानीकी सहायतासे
न है ।

प्रचेतसः राजानः एषां (शत्रूणां) पुरः दुर्गा
न्ति, (एषां) द्विषः विध्यन्ति, दुरिता तिरः नयन्ति
।) ज्ञानी क्षत्रिय वीर राजपुरुष इनके शत्रुओंके नगरों
किलोंको तोड देते हैं, इनके विद्वेषक वैरियोंका नाश
हैं और इनको पापोंसे बचाकर दूर पहुंचा देते हैं ।

इस तरह सब प्रकारसे ज्ञानियोंकी सहायता लाभकारी होती है । यहां शत्रुके किलों दुर्गों और नगरियोंका नाश करके शत्रुसे बचानेका कार्य विज्ञानियोंको करना चाहिये, ऐसा स्पष्ट सूचित किया है । द्वेषिओं और पापोंको सदाके लिये दूर करना चाहिये ।

(ऋतं यते पन्याः सुगः अनृक्षरः च । मं. ४) सत्य मार्गसे जानेवालेके लिये इस विश्वमें सुगम और कण्टक-रहित मार्ग मिलता है । एक वार सत्य मार्गसे जानेका निश्चय करना चाहिये । वह हो जाय तो आगेका मार्ग सरल है । (अत्र अवखादः नास्ति । मं. ४) इसके लिये अयोग्य निंद्य भोजन कभी नहीं मिलेगा । सदा उत्तमोत्तम भोजनही इसको मिलता रहेगा । क्योंकि जो सन्मार्गसे जाता है, उसका विनाश कभी नहीं होगा । यह दर्शानेके लिये ही अगले मंत्रमें कहा है कि (यं ऋजुना पथा नयथ, सः (कथं) प्र नशत् । मं. ५) जिसको सरल मार्गसे चलाया जाता है वह (कैसे) विनष्ट होगा ? अर्थात् उसका विनाश कभी नहीं होगा । (सः अस्तृतः विश्वं वसु त्मना ओकं च गच्छति । मं. ६) वह कभी विनष्ट नहीं होता, वह सब धन प्राप्त करता है और उत्तम औरस संतान भी प्राप्त करता है ।

सुरक्षाका पथ्य

पूर्वोक्त सुरक्षाका जो मार्ग कहा है, उसका थोडासा पथ्य है। वह ऐसा है—

(देवयन्तं मन्तं मा प्रतिवोचे। मं. ८) देवत्वकी प्राप्तिका अनुष्ठान करनेवालेका जो नाश करता है वैसे दुष्टके साथ बोलना भी नहीं चाहिये। उसके पूछनेपर भी उसके साथ बोलना नहीं चाहिये। स्वयं ऐसे दुष्टसे कोई व्यवहार कभी करना नहीं चाहिये, इतनाही नहीं, परन्तु वह आकर बोलने लगे तो उत्तरतक नहीं देना चाहिये। उसपर संपूर्ण बहिष्कार डालना चाहिये। (शपन्तं मा प्रति वोचे। मं. ८) शाप गालीगलोच देनेवालेसे भी बोलना नहीं चाहिये। तथा (सु-स्रैः आ विवासे। मं. ८) उत्तम मनके शुभ संकल्पोंसे ही ईश्वरकी सेवा करते रहना चाहिये। दूसरोंने गाली दी तो उसका जवाब गालीसे नहीं देना चाहिये। यह एक आचारका उत्तम नियम है। इसी तरह (दुरुक्ताय न स्पृहयेत्। मं. ९) दुष्ट भाषण करनेवालेको अपने सम्मुख उपस्थित भी नहीं होने देना चाहिये। बुरा भाषण करनेवालेको अपने सम्मुख नहीं चाहना चाहिये। (चतुरः रक्षमाणात् आ निधातोः विभीयात्) पुकारने करनेका सामर्थ्य धारण करनेवाले दे. इससे डरना चाहिये, क्योंकि वह कब कि इसका पता नहीं है। इसलिये इसके संपर्कसे आचारका यह पथ्य है।

इस तरहके जो सुवीर हैं, उनके (मादि कया राधामः। मं. ७) बड़े यशका लो रने और कैसा गावें! क्योंकि वही कार्य क वीर (चरुणः=चरितुः) श्रेष्ठ वीर, (मित्रः) करनेवाला वीर, (अर्यमा) श्रेष्ठ कौन है इस वाला, ये (देवाः) देववीर हैं। ये (प्रचेतस येही सबकी सुरक्षा करते हैं। मानवोंको उचित इन गुणोंको धारणा करें और अपनेमें देवत्व करें।

(७) वटमारका नाश

(ऋ. १।४२) कण्वो घौरः। पूषाः। गायत्री।

सं पूषन्नध्वनस्तिर व्यंहो विमुचो नपात्। सक्ष्वा देव प्र णस्पुरः
यो नः पूषन्नघो वृको दुःशेव आदिदेशति। अप त्यं परिपन्थिनं मुषीवाणं हुरश्चितम्। दूरमधि स्रुतेरज
त्वं तस्य द्वयाविनोऽघशंसस्य कस्य चित्। पदाभि तिष्ठ तपुषिम्
आ तत् ते दस्र मन्तुमः पूषन्नवो वृणीमहे। येन पितॄनचोदयः

अन्वयः— हे विमुचो नपात् पूषन्! (अस्मान्) अध्वनः सं तिर। अंहः वि (तिर)। हे देव!! नः पुरः प्र सक्ष्व ॥ १ ॥

हे पूषन्! यः अघः वृकः दुःशेवः नः आदिदेशति, तं पथः अप जहि स्म ॥ २ ॥

त्वं परिपन्थिनं मुषीवाणं हुरश्चितं स्रुतेः दूरं अधि अप अज ॥ ३ ॥

त्वं कस्य चित् तस्य द्वयाविनः अघशंसस्य तपुषिं पदा अभि तिष्ठ ॥ ४ ॥

हे मन्तुमः दस्र पूषन्! ते तत् अवः आ वृणीमहे, येन पितॄन् अचोदयः ॥ ५ ॥

अर्थ— हे मुक्त करनेवाले पूषा! (हमें) पहुंचा दो। (हमें) पापके परे (कर) आगे बढाओ ॥ १ ॥

हे पूषा! जो कोई पापी, क्रूर और सेवाके अयो आदेश करता हो, उसको मार्गसे दूर करो ॥ २ ॥

उस वटमार चोर कपटीको मार्गसे दूर कर करो ॥ ३ ॥

तू किसी भी उस दुरंगे पापीके शरीरपर अपने पांव खडा रह ॥ ४ ॥

हे शत्रुका दमन करनेवाले ज्ञानी पूषा! रक्षा-सामर्थ्य हम चाहते हैं कि जिससे तुमने पितरों दिया था ॥ ५ ॥

अधा नो विश्वसौभग हिरण्यवाशीमत्तम । धनानि सुषणा कृधि ६
अति नः सश्चतो नय सुगा नः सुपथा कृणु । पूषन्निह क्रतुं विदः ७
अभि सुवसं नय न नवज्वारो अध्वने । पूषन्निह क्रतुं विदः ८
शग्धि पूर्धि प्र यंसि च शिशीहि प्रास्युदरम् । पूषन्निह क्रतुं विदः ९
न पूषणं मेथामसि सूक्तैरभि गृणीमसि । वसूनि दस्ममीमहे १०

विश्वसौभग हिरण्यवाशीमत्तम ! अध नः धनानि
। कृधि ॥ ६ ॥

अतः नः अति नय, नः सुगा सुपथा कृणु । हे पूषन् !
तं विदः ॥ ७ ॥

पूषन् ! सुवसं (नः) अभि नय । अध्वने नवज्वारः
वतु) । हे पूषन्० ॥८॥

पूषन ! शग्धि, पूर्धि, प्र यंसि, शिशीहि । उदरं
॥ ९ ॥

तं न मेथामसि । सूक्तैः अभि गृणीमसि ! दस्मं
ईमहे ॥ १० ॥

हे विश्वमें सौभाग्ययुक्त और सुवर्णके अलंकारोंसे युक्त ! अब हमें धनोंको और उत्तम धनोंसे (अलंकृत) करो ॥ ६ ॥

बाधा करनेवाले दुष्टोंसे हमें पार ले जाओ । हमें सुगम उत्तम मार्गसे ले चलो । हे पूषन् ! तुम्हें यज्ञके कर्तव्यका ज्ञान है ॥ ७ ॥

हे पूषन् ! उत्तम जीविकाले देशमें (हमें) ले चलो । मार्गमें नवीन संताप न (होने पावे) । हे पूषन् ! तुम्हें यज्ञके कर्तव्यका पता है ॥ ८ ॥

हे पूषन् ! हमें सामर्थ्यवान् बनाओ, (हमें धनधान्यसे) संपन्न करो, (हमें) बलिष्ठ करो, (हमें) तेजस्वी करो, (हमारे) पेटको भर दो । हे पूषन् ! तुम्हें यज्ञके कर्तव्यका ज्ञान है ॥ ९ ॥

हम तुम्हारी भूख नहीं सकते । सूक्तोंसे उनकी स्तुति करते हैं । दर्शनीय धनोंको हम चाहते हैं ॥ १० ॥

वेदकी आज्ञाएँ

इस सूक्तमें अनेक आज्ञाएं हैं । यद्यपि 'पूषा' देवताके वेसेही ये प्रार्थनाएं हैं, तथापि मानवोंका सर्वसामान्य धर्म बनेके लिये और मानवोंको विशेष आदेश देनेके लिये भी प्रार्थनाओंका उपयोग आदेशोंके समान किया जा सकता यही नयी बात यहां बतानी है। ऐसी स्थितिमें 'पूषा' अर्थ 'अपना पोषण करनेवाला' होगा । देखिये, इन नाओंका रूपान्तर मानवधर्मकी आज्ञाओंमें किस तरह हो ता है—

१ पूषन्= जो पुष्टि चाहता है, पुष्टि करता है ।

२ विमुचः न-पात्= विमुक्त होनेकी आशंकासे न नेवाला । अपने मुक्तिकी, बंधननिवृत्तिकी आशंकासे रत-त रहनेवाला ।

३ अध्वनः सं तिर- इस मार्गको तैरकर परे पहुंच जा । ार इसके पार हो जा । अपने प्रयत्नसे दुःखसे परे हो जा । ख २२ ६२ । अपना उद्धार आप निश्चयसे कर ।

४ अंहः वि तिर- मार्गसे निश्चय कर तैरकर पार हो जा । पायसे दूर हो । मार्गसे अपने आपको अलग कर ।

५ पुरः प्र तारय— आगे बढ़ो, आगे बढ़ो । (ऋ. १)

६ यः अधः पृक्तः दुरोवः अदेदिशति ते रयिः अप जहि— जो तेरी कुछ सेवा करके तुझसे कुछ प्राप्त करना चाहता है, उसकी आशासे इसे दे, उसकी तृष्णा न बढ़ा, तुझसे जो कुछ चाहते हैं उन सबसे अपनेको अलग कर । पृक्तः= सेवा, दिक्षा, दान; दुरोवः=सेवाके लिये आये हुए । ऋ. १

७ परिपन्थिनं मुषीवाणं दुरश्चिदं क्षुधिः दूरं नयि अप अज— चारों ओर घेरा डालकर आगे आनेवाले दुष्ट मनुष्योंको विनष्ट कर । परिपन्थी—चारों ओर घेरा डालकर रहनेवाला । मुषीवाणः=चोर । दुरश्चित्= दुष्टोंके समान आचरण करनेवाला । क्षुधिः= भूखा । ऋ. १

८ दुश्शंसिनः अदेवस्य तनूपे रक्षा नाभिं विष्ट- दुष्टोंसे रक्षा कर । अपने शरीरमें ये दुष्ट (ऋ. १)

९ पितून् अचोदय— रक्षकोंको (सत्कर्ममें) प्रेरित करो। पिता = जनक, उत्पादक, संरक्षक। (मं. ५)

१० धनाने सुपणा कृधि— धनोंको प्राप्त करनेयोग्य करो। सुखसाधन सबको सुलभ हों। (मं. ६)

११ सश्चतः अति नय— बाधा करनेवाले दुष्टोंको दूर हटा दो। (मं. ७)

१२ सुगा सुपथा कृणु— सुखसे जानेयोग्य उत्तम मार्ग तैयार करो।

१३ इह क्रतुं विदः— यहांके कर्तव्यको जानो। (मं. ७)

१४ सुयवसं नय— उत्तम धान्यवाले प्रदेशके प्रति ले जा। जो भूमि उपजाऊ नहीं है, वहां न जा। (मं. ८)

१५ अध्वने नवज्वारः न भवतु— मार्गमें नया ज्वर, नया कष्ट, नया संताप न हो। (मं. ८)

१६ शग्धि, पूर्धि, प्र यंसि, शिशीहि, उदरं प्रासि— समर्थ बनो, पूर्ण करो (अधूरा न छोडो), संपन्न बनो, तेजस्वी बनो, उदर भर दो। शक् = समर्थ बनना, शक्तिका संपादन करना; पृ = भरपूर भरना, समाधान प्राप्त करना, परिपूर्ण होना; प्र-यस् = देना, संतुष्ट करना, स्वतंत्र तीक्ष्ण करना, शत्रुको पराभूत करना, उत्साहित करना। (मं. ९)

१७ पूर्णं न मेघामसि = पोषणकर्ता (मं. १०)

इस तरह मूल प्रार्थना-वाक्योंके दो अर्थ बनते हैं। 'हे पिता! हमें भज दो' इसमें पुत्र प्रार्थना करता है और भक्त मांगता है। पर इसमें 'भज दान करो' यह अन्नदानकी आज्ञा भी है। तथा अस्मान् सुपथा राये नय) हमें उत्तम पास ले जाओ, इसमें प्रभुकी प्रार्थना ही है, परंतु राये नय) धन प्राप्त करनेके लिये उत्तम कभी बुरे मार्गसे न जाओ; यह आदेश भी जनताके लिये है। इस तरह प्रार्थना होते हुए भी दुहरे अनेक प्रकारसे मनुष्यको धर्मका उपदेश पाठक इसका अधिक मनन करें और इस तरह बोध जानें।

(८) जलाचिकित्सक

(ऋ. १।४३) कण्वो घौरः। रुद्रः, ३ रुद्रः मित्रावरुणौ च, ७–९ सोमः। गायत्री, ९ अनुष्टुप्।

कद् रुद्राय प्रचेतसे मीळ्हुष्टमाय तव्यसे । वोचेम शंतमं हृदे
यथा नो अदितिः करत् पश्वे नृभ्यो यथा गवे । यथा तोकाय रुद्रियम्
यथा नो मित्रो वरुणो यथा रुद्रश्चिकेतति । यथा विश्वे सजोषसः
गाथपतिं मेधपतिं रुद्रं जलाषभेषजम् । तच्छंयोः सुम्नमीमहे

अन्वयः— प्रचेतसे मीळ्हुष्टमाय तव्यसे रुद्राय हृदे कत् शंतमं वोचेम ? ॥१॥

अदितिः नः रुद्रियं यथा करत्, यथा पश्वे नृभ्यः गवे, यथा तोकाय (करत्) ॥२॥

मित्रः वरुणः नः यथा चिकेतति, रुद्रः यथा चिकेतति, सजोषसः विश्वे (देवाः चिकेतन्ति) ॥३॥

गाथपतिं मेधपतिं जलाषभेषजं रुद्रं शंयोः तत् सुम्नं ईमहे ॥४॥

अर्थ— विशेष ज्ञानी, अत्यंत सुखदायी महान् [illegible] हृदयसे कब (हम) शान्तिपाठकके स्तोत्र बोलेंगे ! ॥ १ ॥

अदिति हमारे लिये (रोग दूर करनेका चिकित्सक) जैसा करे, वैसाही पशु, मानव, गाय और बालकोंके [illegible] करे ॥ २ ॥

मित्र और वरुण हमारे लिये (हित करना) [illegible] है, रुद्र जैसा जानता है, (वैसाही) सब [illegible] जानते हैं ॥ ३ ॥

गाथाओंके स्वामी, यज्ञोंके प्रभु जलचिकित्सक रुद्रसे (हम) शान्ति (की प्राप्ति और अनिष्टको) दूर ([illegible] मिलनेवाला) वह सुख हम प्राप्त करना चाहते हैं ॥ ४ ॥

यः शुक्र इव सूर्यो हिरण्यमिव रोचते	।	श्रेष्ठो देवानां वसुः ५
शं नः करत्यर्वते सुगं मेषाय मेष्ये	।	नृभ्यो नारिभ्यो गवे ६
अस्मे सोम श्रियमधि नि धेहि शतस्य नृणाम्	।	महि श्रवस्तुविनृम्णम् ७
मा नः सोमपरिबाधो मारातयो जुहुरन्त	।	आ न इन्दो वाजे भज ८
यास्ते प्रजा अमृतस्य परस्मिन् धामन्नृतस्य ।		
मूर्धा नाभा सोम वेन आभूषन्तीः सोम वेदः		९

शुक्रः इव सूर्यः, हिरण्यं इव रोचते, (सः) देवानां सुः ॥५॥

अर्वते मेषाय मेष्ये नृभ्यः नारिभ्यः गवे सुगं शं ॥६॥

सोम ! नृणां शतस्य महि तुविनृम्णं श्रवः श्रियं अस्मे नि धेहि ॥७॥

नपरिबाधः नः मा जुहुरन्त, अरातयः मा। हे इन्दो ! ः मा भज ॥८॥

सोम ! परस्मिन् धामन् ऋतस्य अमृतस्य ते याः न्तीः प्रजाः मूर्धा नाभा वेनः वेद ॥९॥

जो सामर्थ्यवान् होनेसे सूर्यके समान तथा सुवर्णके समान प्रकाशता है, (वह) देवोंमें वैभववान् है ॥ ५ ॥

हमारे घोडे, मेढे, मेंढी, पुरुषों, नारियों और गौके लिये वह (रुद्र देव) सुख प्रदान करता है ॥ ६ ॥

हे सोम ! (हमें) सैकडों मानवोंके लिये पर्याप्त होनेवाला महान् तेजस्वी अन्न (बल या धन) देदो ॥ ७ ॥

सोममें विघ्न करनेवाले शत्रु हमारा घातपात न करें। दुष्ट कंजूस भी (हमें) न (सतावे)। हे सोम ! हमारा बल बढाओ ॥ ८ ॥

हे सोम ! श्रेष्ठ स्थानमें रहनेवाले, सत्य और अमृतसे युक्त, ऐसे तेरी पूजा करनेवाली यह प्रजा उच्च स्थानमें अपनेही घरमें विराजे ॥ ९ ॥

वैद्यके लक्षण

रुद्र देवताके अनेक रूप हैं, जो रुद्रसूक्तमें वर्णन किये इनमें 'वैद्य' भी एक रूप है जिसका वर्णन इस सूक्तमें रुद्र नाम प्रमुख है और प्रभु विश्वरूप है और उस विश्व-वैद्य भी एक है। यहांका वैद्य, (जलाप-भेषजः) जल-त्सेक है। जलं= जल, उदक, पानी; अपः= सेवन करना, त करना, खाना; भेषजः= जलके प्रयोग करनेद्वारा वैद्य रोगोंको दूर करता है, वह (जलाप-भेषजः) जलचिकि-वैद्य है। इसका वर्णन यहां है । इसका और वर्णन वे—

१ प्रचेताः– विशेष ज्ञानी, प्रबुद्ध, ज्ञानविज्ञानवान्,

३ मीळ्हुष्टमः= अत्यंत सुख देनेवाला, रोग दूर करके नन्द बढानेवाला,

४ तव्यस्— बल बढानेवाला, आयु बढानेवाला, शक्ति नेवाला, रोग दूर करके सामर्थ्यकी वृद्धि करनेवाला,

५ रुद्रः (रुद्-रः)– रोगके कारणका नाश करनेवाला, रोग करनेवाला। (मं. १)

६ अदितिः (अदनात् अदितिः)— खानपानका प्रबंध करनेवाली सुखपरिचारिका। खाने, पीने, दवा देने आदिका प्रबंध करनेवाली देवमाता जैसी देवी।

७ अदितिः रुद्रियं करत्— खानपान यथायोग्य रीतिसे यथासमय करनेवाली जो होती है, वही रोग दूर करनेका औषध सचमुच करती है। क्योंकि पथ्यकी सुव्यवस्थासे ही रोग दूर होते हैं। (मं. २)

८ मनुष्य, पशु, गायें, बालबच्चे इन सबके लिये यह खान-पानका पथ्य आवश्यक है। (मं. २)

९ मित्र (सूर्य), वरुण (जलदेव), रुद्र तथा सब अन्य देव रोग दूर करते हैं। सूर्यकिरणोंसे, औषधिके रसोंसे, जलसे, विद्युत्से, इस तरह सब अन्य देवोंके सामर्थ्यसे रोग दूर होते हैं। मानवी जीवन सुखमय करना यह सब इन देवोंके सामर्थ्यपरही पूर्णतया अवलंबित है। (मं. ३)

१० गाथपतिः— वैद्य गाथाओंको जाने, पूर्वकालके लोगोंके अनुभव गाथामें लिखे रहते हैं। उनको जानना चाहिये। (मं. ४)

११ मेयपतिः— (मिय्-मेथ्-संगमने) औषधियोंके परस्पर मेलमिलाप, अनेक औषधियोंका मिश्रण करनेका नाम 'मेथ' है। किन औषधियोंका मेल करनेसे क्या लाभ होते हैं, यह जाननेवाला वैद्य चाहिये। इसीका नाम 'संगति-करण' है, जो यज्ञका विषय है।

१२ जलाष-भेषजः = जलचिकित्सक।

१३ शं+योः सुम्नं = शान्ति देनेवाले, रोगको शान्त करनेवाले उपायका नाम 'शं' है और रोग बीज तथा अनिष्ट भावको दूर करनेका नाम 'यु' है। इससे 'सु-मनः (सु-म्नं)' सुख होता है। प्रसन्न मन होता है। वैद्यका यही कर्तव्य है। (मं. ४)

१४ सूरेः शुक्रः- सूर्य तेजोमय है।

१५ हिरण्यं रेतो = सुवर्ण तेजस्विता बढानेवाला है।

१६ [illegible] = देवताओंमें जो मूल सत्त्व हैं, ये [illegible] देनेवाले हैं। (मं. ५)

[illegible] आदिको (के [illegible] है। (मं. २; ६)

[illegible]) सबको जीवनोंको पुष्टि करनेवाला अन्न देती हैं। यहां वनस्पतियोंके [illegible] (हे सोम ! तुवि-नृम्णं श्रवः अस्मे [illegible] तू विशेष सामर्थ्य बढानेवाला अन्न हमें दे। [illegible] तिसे उत्पन्न ही है। तुवि-नृ-मनः (नृ) [illegible] में उत्पन्न करनेवाला (श्रवः) अन्न, यहां 'मनः' [illegible] सिक सामर्थ्यका वाचक है। जिसका मन बलवान् [illegible] भी समर्थ होता है। (मं. ७)

१९ सोम-परिबाधः— सोमादि [illegible] वाले अन्नमें जो बाधा डालते हैं वे [illegible] जुहुरन्त) हमें प्रतिबंध न करें अर्थात् वनस्पति [illegible] प्रमाणमें मिलती रहें। (अ-रातयः मा) [illegible] विघ्न न करें। इस तरह औषधियोंसे [illegible] बनें। (मं. ८)

२० हे इन्दो ! नः वाजे आ भज- [illegible] बल बढावे। अर्थात् यह रस बल बढाता है। ([illegible]

२१ ऋतस्य अमृतस्य वेनः- यही सोमरस [illegible] अमृतयुको दूर करनेवाला है, वह सेवनसे [illegible]

इस तरह वैद्यकीय ज्ञान इस सूक्तमें है। [illegible] जानें।

द्विता व्यूर्ण्वन्नमृतस्य धाम स्वर्विदे भुवनानि प्रथन्त ।
धियः पिन्वानाः स्वसरे न गाव ऋतायन्तीरभि वावश्र इन्दुम् २
परि यत्कविः काव्या भरते शूरो न रथो भुवनानि विश्वा ।
देवेषु यशो मर्ताय भूषन्दक्षाय रायः पुरुभूषु नव्यः ३
श्रिये जातः श्रिय आ निरियाय श्रियं वयो जरितृभ्यो दधाति ।
श्रियं वसाना अमृतत्वमायन्भवन्ति सत्या समिथा मितद्रौ ४
इषमूर्जमभ्यर्षाश्वं गामुरु ज्योतिः कृणुहि मत्सि देवान् ।
विश्वानि हि सुषहा तानि तुभ्यं पवमान बाधसे सोम शत्रून् ५

मृतस्य धाम द्विता व्यूर्ण्वन्! स्वर्विदे भुवनानि प्रथन्त ।
: ऋतायन्तीः इन्दुं पिन्वानाः गावः न स्वसरे अभि
श्रे ॥२॥

कविः काव्या यत् परि भरते, शूरः न रथः विश्वा
नानि (परि याति)। देवेषु यशः, मर्ताय भूषन्, दक्षाय
ः, पुरुभूषु नव्यः (भवति) ॥३॥

श्रिये जातः, श्रिये आ निः इयाय, जरितृभ्यः श्रियं वयः
ाति । श्रियं वसानाः अमृतत्वं आयन् । मितद्रौ समिथा
या भवन्ति ॥४॥

हे सोम ! इषं ऊर्जं अभि अर्ष । अश्वं गां उरु ज्योतिः
णुहि । देवान् मत्सि । तुभ्यं तानि विश्वानि हि सुसहा । हे
वमान सोम ! शत्रून् बाधसे ॥५॥

अमृतके स्थानको (सोम) दोनों ओरसे खुला करता है । आत्मज्ञानी (सोम) के लिये सब भुवन विस्तृत होते हैं । सरल-भावसे चलनेवाली (कविकी) बुद्धियाँ, सोमरसको (दुग्ध आदिसे मिला कर) बढाती हुई, गौवें जैसी अपनी गोशालामें शब्द करती हैं, (वैसी काव्यगानका शब्द करती हैं) ॥ २ ॥

कवि (को स्फूर्ति देनेवाला सोम) काव्योंमें जैसा सब ओरसे भरा रहता है, वैसा शूरका रथ सब भुवनोंमें (भ्रमण करता है । यह सोम) देवोंमें यश, मनुष्यके लिये भूषण और दक्षके लिये संपत्ति (देता हुआ), बहुतसी भूमियोंमें नया (होता है, उत्पन्न होता है) ॥ ३ ॥

संपत्ति (बढाने) के लिये जो उत्पन्न हुआ है, संपत्ति (बढाने) के लिये जो प्रकट हुआ है, वह (सोम) स्तोताओंके लिये दीर्घायु देता है । संपत्तिको प्राप्त करते हुए (उपासक) अमृतत्वको पहुंचते हैं । (इस) सोमके प्रभावमें युद्ध सत्य (यशस्वी) होते हैं ॥ ४ ॥

हे सोम ! अन्न और बल (हमें) दो। घोडे, गौवें तथा महान् तेज (हमारे लिये) कर दो । देवोंको तृप्त करो । तुम्हारे लिये वे सभी (राक्षस) पराजय करनेयोग्य हैं । हे छाने जानेवाले सोम ! (तू सारे) शत्रुओंको पराभूत करो ॥ ५ ॥

सोम, सोमरस और अन्न

यह सोमका सूक्त है । हरएक ऋषिका प्रायः कुछ न कुछ ाव्य सोमपर है । (अपः वृणानः । मं. १) यह सोम लको वरता है, जलको अपने अन्दर स्वीकारता है । अर्थात् ल सोमरसमें मिलाया जाता है । यह सोम (इषं ऊर्जं । . ५) अन्न और बल देता है अर्थात् सोमरस यह एक बल ानेवाला अन्न है। इससे (मत्सि) तृप्ति होती है और आनन्द प उत्साह बढता है, जिससे ' विश्वा रक्षांसि सुषहा । शत्रून् बाधसे (मं. ५)' सब राक्षसों और सब शत्रुओंका पराभव किया जाता है । अर्थात् वीर सोम पीते हैं, उससे उनका उत्साह बढता है, जिससे उनके शत्रु परास्त होते हैं ।

यह सोम (श्रिये) शोभा, ऐश्वर्य और यश बढानेके लिये उत्पन्न हुआ है, वह (वयः) दीर्घायु देनेवाला अन्न है । इसलिये इसके उत्साहसे (सत्या समिथा भवन्ति । मं. ४) युद्ध यशस्वी होते हैं, कभी पराभव नहीं होता । सोम पीकर वीर यशके भागी होते हैं ।

११ मेथपतिः— (मिथ्-मेथृ-संगमने) औषधियोंके परस्पर मेलमिलाप, अनेक औषधियोंका मिश्रण करनेका नाम 'मेथ' है। किन औषधियोंका मेल करनेसे क्या लाभ होते हैं, यह जाननेवाला वैद्य चाहिये। इसीका नाम 'संगति-करण' है, जो यज्ञका विषय है।

१२ जलाष-भेषजः = जलचिकित्सक।

१३ शं+योः सुम्नं = शान्ति देनेवाले, रोगको शान्त करनेवाले उपायका नाम 'शं' है और रोग बीज तथा अनिष्ट भावको दूर करनेका नाम 'यु' है। इसीसे 'सु-मनः (सु-म्नं)' सुख होता है। प्रसन्न मन होता है। वैद्यका यही कर्तव्य है। (मं. ४)

१४ सूर्यः शुक्रः- सूर्य वीर्यवर्धक है।

१५ हिरण्यं रोचते = सुवर्ण तेजस्विता बढानेवाला है।

१६ देवानां वसुः- देवताओंमें जो मूल सत्त्व हैं, ये सब मनुष्योंको लाभ देनेवाले हैं। (मं. ५)

१७ घोडे, मेष, मेषी, पुरुष, स्त्रियाँ, गायें आदिको (के रोग दूर होकर इनको इनसे ही) सुख मिलता है। (मं.२;६)

१८ सोम (आदि औषधियाँ) सैकडों मानवोंको पुष्टि करनेवाला अन्न देती हैं। यहां वनस्पतियोंके अन्न (हे सोम ! तुवि-नृम्णं श्रवः अस्मे नि धेहि तू विशेष सामर्थ्य बढानेवाला अन्न हमें दो। यह तिसे उत्पन्न ही है। तुवि-नृ-मनः (नृ) बहुत में उत्पन्न करनेवाला (श्रवः) अन्न, यहां 'नृ' मसिक सामर्थ्यका वाचक है। जिसका मन समर्थ है, भी समर्थ होता है। (मं. ७)

१९ सोम-परिबाधः— सोमादि वनस्पतिवाले अन्नमें जो बाधा डालते हैं वे मानवोंके शत्रु हैं जुहुरन्त) हमें प्रतिबंध न करें अर्थात् वनस्पतिका प्रमाणमें मिलती रहें। (अ-रातयः मा) कंजूस विघ्न न करें। इस तरह औषधियोंसे हम दीर्घायु बनें। (मं. ८)

२० हे इन्दो ! नः वाजे आ भज- सोमका बल बढावे। अर्थात् यह रस बल बढाता है। (मं.

२१ ऋतस्य अमृतस्य वेनः- यही सोमरस अपमृत्युको दूर करनेवाला है, वह सेवनके योग्य है।

इस तरह वैद्यकीय ज्ञान इस सूक्तमें है। वह जानें।

(नवम मण्डल)

(९) सोम

(ऋ. ९।१४) कण्वो घौरः। पवमानः सोमः। त्रिष्टुप्।

अधि यदस्मिन्वाजिनीव शुभः स्पर्धन्ते धियः सूर्ये न विशः।
अपो वृणानः पवते कवीयन्व्रजं न पशुवर्धनाय मन्म ॥ १

अन्वयः- वाजिनी इव शुभः, सूर्ये न विशः, यत् अस्मिन् [सोमे] धियः स्पर्धन्ते। अपः वृणानः कवीयन् पवते, पशुवर्धनाय मन्म व्रजं न [नियच्छति] ॥ १ ॥

अर्थ- ओजस्विनी सेनाके समान शुभ्र (अर्थात् में जैसे प्रजाजन (रहते हैं, वैसे) जब इस (सोम (कवियोंकी) बुद्धियाँ स्पर्धा करती हैं। (तब) मिलता हुआ (और) कवियोंकी (इच्छा पूर्ण करता हुआ, (सोम) पशुवर्धन करनेके लिये [लोग (निर्माण करता है) ॥ १ ॥

द्विता व्यूर्ण्वन्नमृतस्य धाम स्वर्विदे भुवनानि प्रथन्त ।
धियः पिन्वानाः स्वसरे न गाव ऋतायन्तीरभि वावश्र इन्दुम् २
परि यत्कविः काव्या भरते शूरो न रथो भुवनानि विश्वा ।
देवेषु यशो मर्ताय भूषन्दक्षाय रायः पुरुभूषु नव्यः ३
श्रिये जातः श्रिय आ निरियाय श्रियं वयो जरितृभ्यो दधाति ।
श्रियं वसाना अमृतत्वमायन्भवन्ति सत्या समिथा मितद्रौ ४
इषमूर्जमभ्यर्षाश्वं गामुरु ज्योतिः कृणुहि मत्सि देवान् ।
विश्वानि हि सुषहा तानि तुभ्यं पवमान बाधसे सोम शत्रून् ५

तस्य धाम द्विता व्यूर्ण्वन्! स्वर्विदे भुवनानि प्रथन्त। ऋतायन्तीः इन्दुं पिन्वानाः गावः न स्वसरे अभि ॥२॥

यः काव्या यत् परि भरते, शूरः न रथः विश्वा नि (परि याति)। देवेषु यशः, मर्ताय भूषन्, दक्षाय पुरुभूषु नव्यः (भवति) ॥३॥

ये जातः, श्रिये आ निः इयाय, जरितृभ्यः श्रियं वयः । श्रियं वसानाः अमृतत्वं आयन्। मितद्रौ समिथा भवन्ति ॥४॥

सोम ! इषं ऊर्जं अभि अर्ष । अश्वं गां उरु ज्योतिः । देवान् मत्सि । तुभ्यं तानि विश्वानि हि सुसहा । हे न सोम ! शत्रून् बाधसे ॥५॥

अमृतके स्थानको (सोम) दोनों ओरसे खुला करता है। आत्मज्ञानी (सोम) के लिये सब भुवन विस्तृत होते हैं। सरल-भावसे चलनेवाली (कविकी) बुद्धियाँ, सोमरसको (दुग्ध आदिसे मिला कर) बढाती हुई, गौवें जैसी अपनी गोशालामें शब्द करती हैं, (वैसी काव्यगानका शब्द करती हैं) ॥ २ ॥

कवि (को स्फूर्ति देनेवाला सोम) काव्योंमें जैसा सब ओरसे भरा रहता है, वैसा शूरका रथ सब भुवनोंमें (भ्रमण करता है। यह सोम) देवोंमें यश, मनुष्यके लिये भूषण और दक्षके लिये संपत्ति (देता हुआ), बहुतसी भूमियोंमें नया (होता है, उत्पन्न होता है) ॥ ३ ॥

संपत्ति (बढाने) के लिये जो उत्पन्न हुआ है, संपत्ति (बढाने) के लिये जो प्रकट हुआ है, वह (सोम) स्तोताओंके लिये दीर्घायु देता है। संपत्तिको प्राप्त करते हुए (उपासक) अमृतत्वको पहुंचते हैं। (इस) सोमके प्रभावमें युद्ध सत्य (यशस्वी) होते हैं ॥ ४ ॥

हे सोम ! अन्न और बल (हमें) दो। घोडे, गौवें तथा महान् तेज (हमारे लिये) कर दो। देवोंको तृप्त करो। तुम्हारे लिये वे सभी (राक्षस) पराजय करनेयोग्य हैं। हे छाने जानेवाले सोम ! (तू सारे) शत्रुओंको पराभूत करो ॥ ५ ॥

सोम, सोमरस और अन्न

ह सोमका सूक्त है। हरएक ऋषिका प्रायः कुछ न कुछ सोमपर है। (अपः वृणानः । मं. १) यह सोम ा करता है, जलको अपने अन्दर स्वीकारता है। अर्थात् सोमरसमें मिलाया जाता है। यह सोम (इषं ऊर्जं ।) अन्न और बल देता है अर्थात् सोमरस यह एक बल ाला अन्न है। इससे (मत्सि) तृप्ति होती है और आनन्द उत्साह बढता है, जिससे ' विश्वा रक्षांसि सुषहा । शत्रून् बाधसे (मं. ५)' सब राक्षसों और सब शत्रुओंका पराभव किया जाता है। अर्थात् वीर सोम पीते हैं, उससे उनका उत्साह बढता है, जिससे उनके शत्रु परास्त होते हैं।

यह सोम (श्रिये) शोभा, ऐश्वर्य और यश बढानेके लिये उत्पन्न हुआ है, वह (वयः) दीर्घायु देनेवाला अन्न है। इसलिये इसके उत्साहसे (सत्या समिथा भवन्ति । मं. ४) युद्ध यशस्वी होते हैं, कभी पराभव नहीं होता। सोम पीकर वीर यशके भागी होते हैं।

अथर्ववेदमें कण्व-ऋषि

अथर्ववेदमें कण्वऋषि रोगजन्तुओंकी खोज करने और उनके नाशका उपाय ढूंढनेवाले दीखते हैं। कृमिनाशनमें विद्याका स्थान बडा श्रेष्ठ है। अथर्ववेदमें कण्वके ३ सूक्त हैं—

अथर्व काण्ड २	सूक्त ३१	मंत्र ५
	,, ३२	६
,, ,, ५	,, २३	१३
	कुल मंत्रसंख्या	२४ हैं

तीनों सूक्त कृमिनाशकाही विचार कर रहे हैं। इनका अर्थ देखिये —

(१०) क्रिमिजम्भनम्

(अथर्व. २।३१) कण्वः। मही, चन्द्रमाः। अनुष्टुप्; २,४ उपरिष्टाद्विराड् बृहती; ३,५ आर्षी त्रिष्टुप्।

इन्द्रस्य या मही दषत्क्रिमेर्विश्वस्य तर्हणी।
तया पिनष्मि सं क्रिमीन्दषदा खल्वाँ इव १
दृषदृषन्मतृन्मथो कुरूरुमतृन्मम्।
अगण्डूनसर्वान्छत्रुनाक्रिमीन्वचसा जम्भयामसि २
अगण्डून्हन्मि महता वधेन दूना अदूना अरसा अभूवन्।
विश्वानादिष्टानि तिरामि वाचा यथा क्रिमीणां नकिरुच्छिषातै ३
अन्यान्यं शीर्षण्यमथो पार्ष्ण्यं क्रिमीन्।
अवस्कवं व्यध्वरं क्रिमीन्वचसा जम्भयामसि

ये क्रिमयः पर्वतेषु वनेष्वोषधीषु पशुष्वप्स्वन्तः ।
ये अस्माकं तन्वमाविविशुः सर्वं तद्धन्मि जानिम क्रिमीणाम् ५

पर्वतोंपर, जो वनोंमें और औषधियोंपर रहते हैं जो पशुओं और जलोंमें होते हैं, जो हमारे शरीरोंमें घुसते हैं, उन सब रोगक्रिमियोंका मैं नाश करता हूं ॥ ५ ॥

क्रिमियोंकी उत्पत्ति

रोगोत्पादक क्रिमियोंकी उत्पत्ति 'पर्वत, वन, औषधि, पशु और जलके बीचमें होती है' ऐसा यहां कहा है, अर्थात् यदि इनोंकी पूर्णतासे स्वच्छता की जाय तो रोगक्रिमि उत्पन्न ही होंगे ऐसी यहां सूचना मिलती है। ये क्रिमी उत्पन्न :—

अस्माकं तन्वं आविविशुः । (मं. ५)

हमारे शरीरमें घुसते हैं और हमें पीडा देते हैं, इसीलिये के नाशका उपाय ढूंढकर निकालना चाहिये' उक्त स्थानोंमें ाट न हो ऐसा प्रबंध करना चाहिये। ये मानवी शरीरमें , पसलियोंमें, आंतोंमें तथा अन्यान्य स्थानोंमें उत्पन्न ैं, अथवा घुसकर व्यथा उत्पन्न करते हैं।

इनके नाशका उपाय

'वचा' यह एक वनस्पति है। इसको 'वच' बोलते हैं। इसकी वू (गन्ध) बडी उग्र होती है। क्रिमिनाशक औषधियोंमें यह बडे महत्त्वकी औषधि है। इसका चूरण, इसका धूप, इसके तुकडोंकी माला, घोलकर पीनेसे तथा अन्य प्रकारके सेवनसे क्रिमी दूर होते हैं।

'इन्द्र-शिला' (इन्द्रस्य नही इषत्।) इन्द्रका बडा पत्थर। यह क्या वस्तु है, अभीतक समझमें नहीं आया। 'मनः शिला' जैसा कोई पदार्थ होगा। मनःशिला विषनाशक है। इसी तरह यह कोई औषधि वस्तु होगी। यह वस्तु खोज करनेयोग्य है।

(११) क्रिमिनाशनम्

(अथर्व. २।३२) कण्वः। आदित्यः। अनुष्टुप्, १ त्रिपाद्गुरिग्नायत्री, ६ भुरिक्पथ्यापंक्तिः, ७ पथ्यापंक्तिः।

उद्यन्नादित्यः क्रिमीन्हन्तु निम्रोचन्हन्तु रश्मिभिः । ये अन्तः क्रिमयो गवि १
विश्वरूपं चतुरक्षं क्रिमिं सारङ्गमर्जुनम् । शृणाम्यस्य पृष्टीरपि वृश्चामि यच्छिरः २
अत्रिवद्वः क्रिमयो हन्मि कण्ववज्जमदग्निवत् । अगस्त्यस्य ब्रह्मणा सं पिनष्म्यहं क्रिमीन् ३
हतो राजा क्रिमीणामुतैषां स्थपतिर्हतः । हतो हतमाता क्रिमिर्हतभ्राता हतस्वसा ४
हतासो अस्य वेशसो हतासः परिवेशसः । अथो ये क्षुल्लका इव सर्वे ते क्रिमयो हताः ५
प्र ते शृणामि शृङ्गे याभ्यां वितुदयासि । निनम्मि ते मुखमुस्ते यथाऽसानः ६

अर्थ- उदय होता हुआ सूर्य क्रिमियोंका नाश करे, अस्त हुआ सूर्य अपने किरणोंसे, क्रिमियोंका नाश करे। जो भीतर क्रिमि हैं ॥ १ ॥

अर्थ- हरणके, चार आंखवाले, सारंग और श्वेत वर्णके क्रिमि हैं। इसकी हड्डियोंको और सिरको तोडता हूं ॥ २ ॥

अर्थ- वत्स, जमदग्निके समान मैं क्रिमियोंका नाश करता हूं। अगस्तिके विषयमें मैं क्रिमियोंका नाश करता हूं ॥ ३ ॥

सूर्य-किरणका प्रभाव

सूर्य किरणका प्रभाव ऐसा है कि जिससे सब प्रकारके रोग-जन्तु विनष्ट होते हैं। यह प्रथम मंत्रकी बातही यहां मुख्य है। जहां सूर्यकिरण पहुंचते हैं वहां रोगक है, अतः घर ऐसे बनाने चाहिये कि, कि सूर्यकिरण पहुंचते रहें।

(१२) क्रिमिघ्नम्

(अथर्व. ५।२३) कण्वः। इन्द्रः। अनुष्टुप्, १३ विराट्।

ओते मे द्यावापृथिवी ओता देवी सरस्वती। ओतौ म इन्द्रश्चाग्निश्च क्रिमिं जम्भयतामिति
अस्येन्द्र कुमारस्य क्रिमीन्धनपते जहि। हता विश्वा अरातय उग्रेण वचसा मम
यो अक्ष्यौ परिसर्पति यो नासे परिसर्पति। दतां यो मध्यं गच्छति तं क्रिमिं जम्भयामसि
सरूपौ द्वौ विरूपौ द्वौ कृष्णौ द्वौ रोहितौ द्वौ। वभ्रुश्च बभ्रुकर्णश्च गृध्रः कोकश्च ते हताः
ये क्रिमयः शितिकक्षा ये कृष्णाः शितिबाहवः। ये के च विश्वरूपास्तान्क्रिमीन्जम्भयामसि
उत्पुरस्तात्सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा। दृष्टांश्च घ्नन्नदृष्टांश्च सर्वांश्च प्रमृणन्क्रिमीन्
येवाषासः कष्कषास एजत्काः शिपविष्टुकाः। दृष्टश्च हन्यतां क्रिमिरुतादृष्टश्च हन्यताम्
हतो येवाषः क्रिमीणां हतो नदनिमोत। सर्वान्नि मष्मषाकरं दृषदा खल्वाँ इव
त्रिशीर्षाणं त्रिककुदं क्रिमिं सारङ्गमर्जुनम्। शृणाम्यस्य पृष्टीरपि वृश्चामि यच्छिरः
अत्रिवद्वः क्रिमयो हन्मि कण्ववज्जमदग्निवत्। अगस्त्यस्य ब्रह्मणा सं पिनष्म्यहं क्रिमीन्
हतो राजा क्रिमीणामुतैषां स्थपतिर्हतः। हतो हतमाता क्रिमिर्हतभ्राता हतस्वसा
हतासो अस्य वेशसो हतासः परिवेशसः। अथो ये क्षुल्लका इव सर्वे ते क्रिमयो हताः
सर्वेषां च क्रिमीणां सर्वासां च क्रिमीणाम्। भिनद्म्यश्मना शिरो दहाम्यग्निना मुखम्

अर्थ— द्यावापृथिवी, देवी सरस्वती, इन्द्र, अग्नि ये सब परस्पर मिले जुले हैं, ये मिलकर क्रिमियोंका नाश करें ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! इस कुमारके क्रिमियोंका नाश कर । मेरे पासके उग्र गंधि वचासे सब शत्रुभूत क्रिमि विनष्ट हुए हैं ॥२॥

जो क्रिमि आंख नाक और दांतोंमें घूमता है उसका नाश करते हैं ॥३॥

दो समान रूपवाले, दो विभिन्न रूपवाले, दो काले और दो लाल, एक भूरा और दूसरा भूरे कानवाला, गंध और भेडियेके समान जो क्रिमि हैं, वे मारे गये हैं ॥४॥

जो श्वेतकोखवाले, जो काले काली भुजावाले, जो अनेक रंगरूपवाले रोग क्रिमी हैं, उनका नाश करते हैं ॥५॥

यह सूर्य आगे उदयको प्राप्त हो रहा है, जो सबको देखनेवाला और अदृष्ट दोषको दूर करनेवाला है, वह सब दृष्ट तथा अदृष्ट क्रिमियोंका नाश करे ॥६॥

येवाष, कष्कष, एजत्क, शिपिविष्टुक ये क्रिमि वा अदृष्ट हों, ये सब नाश करनेयोग्य हैं ॥७॥

जिस तरह पत्थरोंसे चनोंको पीसते हैं, उस तरह क्रिमियोंका नाश करना चाहिये ॥ ८ ॥

तीन सिरोंवाले, तीन कुदानवाले सारंग और [illegible] नाश करता हूं। इसकी पसुलियों और सिरको [illegible]

अत्रि, कण्व, जमदग्निके समान, अगस्त्यकी [illegible] का नाश मैं करता हूं। (अथर्व २।३२।३,४,५ का अर्थ यही वे मंत्र हैं। अर्थ पूर्वस्थान पृष्ठ ३३पर देखो) (१०

सब क्रिमियोंका सिर पत्थरसे तोड देता हूं और मुख जला देता हूं ॥१३॥

रोगक्रिमियोंका नाश

सूर्यकिरणसे रोगक्रिमियोंका नाश होता है यह स्पष्ट है। क्रिमियोंके वर्णन आदि तथा उनके उपद्रवके खोज करनेके विषय हैं। —

कण्व ऋषिके मंत्र समाप्त।

(ऋग्वेद, प्रथम मण्डल)

प्रस्कण्व ऋषिके मन्त्र

(१३) सुवीर्य चाहिये

(४४) प्रस्कण्वः काण्वः । अग्निः, १–२ अग्निः, अश्विनौ, उषाश्च । प्रगाथः= विषमा बृहत्यः, समाः सतोबृहत्यः ।

अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रं राधो अमर्त्य ।
आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवाँ उषर्बुधः १
जुष्टो हि दूतो असि हव्यवाहनोऽग्ने रथीरध्वराणाम् ।
सजूरश्विभ्यामुषसा सुवीर्यमस्मे धेहि श्रवो बृहत् २
अद्या दूतं वृणीमहे वसुमग्निं पुरुप्रियम् ।
धूमकेतुं भाऋजीकं व्युष्टिषु यज्ञानामध्वरश्रियम् ३
श्रेष्ठं यविष्ठमतिथिं स्वाहुतं जुष्टं जनाय दाशुषे ।
देवाँ अच्छा यातवे जातवेदसमग्निमीळे व्युष्टिषु ४
स्तविष्यामि त्वामहं विश्वस्यामृत भोजन ।
अग्ने त्रातारमृतं मियेध्य यजिष्ठं हव्यवाहन ५
सुशंसो बोधि गृणते यविष्ठ्य मधुजिह्वः स्वाहुतः ।
प्रस्कण्वस्य प्रतिरन्नायुर्जीवसे नमस्या दैव्यं जनम् ६

अन्वयः– हे अमर्त्य जातवेदः अग्ने! त्वं उषसः विवस्वद् राधः दाशुषे आ वह, अद्य उषर्बुधः देवान् (आ वह) ॥ १ ॥

हे अग्ने ! जुष्टः दूतः हव्यवाहनः अध्वराणां रथीः असि अश्विभ्यां उषसा सजूः सुवीर्यं बृहत् श्रवः अस्मे धेहि ॥ २ ॥

अद्या दूतं वसुं पुरुप्रियं धूमकेतुं भाऋजीकं व्युष्टिषु यज्ञानामध्वरश्रियं अग्निं वृणीमहे ॥ ३ ॥

श्रेष्ठं यविष्ठं अतिथिं स्वाहुतं व्युष्टिषु देवान् अच्छ यातवे जुष्टं जनाय दाशुषे जातवेदसं अग्निं ईळे ॥ ४ ॥

हे अमृत विश्वस्य भोजन हव्यवाहन मियेध्य अग्ने! त्रातारं यजिष्ठं त्वां अहं स्तविष्यामि ॥ ५ ॥

हे यविष्ठ्य ! गृणते सुशंसः मधुजिह्वः स्वाहुतः बोधि । प्रस्कण्वस्य जीवसे आयुः प्रतिरन् दैव्यं जनं नमस्य ॥ ६ ॥

अर्थ— हे अमर ज्ञानी अग्निदेव ! तुम उषाके साथ अनेक प्रकारका तेजस्वी धन दाताको देनेके लिये ला दो, आज उषःकालमें जागनेवाले देवोंको (यहां ले आओ) ॥ १ ॥

हे अग्ने ! (तुम देवोंके द्वारा) सेवित दूत हव्य लानेवाला और हिंसारहित कर्मोंको निभानेवाला हो। अश्विदेवों और उषाके साथ उत्तम वीर्य बढ़ानेवाला बड़ा धन हमें दो ॥ २ ॥

आज (हम) दूतकर्म करनेवाले सबके निवास हेतु, सबके प्रिय, धूमही जिसका चिह्न है, ऐसे ज्वालाओंसे अलंकृत, उषःकालोंमें आहुतिक यज्ञकर्मोंके कर्ता (हे अग्ने) अग्निका हम स्वीकार करते है ॥ ३ ॥

उषःकालोंमें देवोंको प्राप्त करनेके लिये, श्रेष्ठ अतिथि, उत्तम रीतिसे हुलमे गये, दाता मनुष्यके लिये सेवनीय, सर्वत्र अग्नियों में स्तुति करता हूँ ॥ ४ ॥

हे अमर, सबको भोजन देनेवाले, हविसे बढ़ानेवाले अग्निदेव ! (तुम) सबके तारक, अमर पूजा हो, अतः तुम्हारा मैं प्रशंसा करता हूँ ॥ ५ ॥

हे तरुण ! स्तुतिकर्ताको तुम स्तुति सुनानेवाले हो, अतः अच्छीवाले तुम उत्तम रीतिसे बोलनेवाले बनकर (हमारी प्रार्थना को) समझ लो । प्रस्कण्वको दीर्घ आयुके लिये अनुकूल दिव्य मनुष्यको सम्मान दो ॥ ६ ॥

होतारं विश्ववेदसं सं हि त्वा विश इन्धते ।
स आ वह पुरुहूत प्रचेतसोऽग्ने देवाँ इह द्रवत् ७
सवितारमुपसमश्विना भगमग्निं क्षुष्टिषु क्षपः ।
कण्वासस्त्वा सुतसोमास इन्धते हव्यवाहं स्वध्वर ८
पतिर्ह्यध्वराणामग्ने दूतो विशामसि ।
उपबुध आ वह सोमपीतये देवाँ अद्य स्वर्दृशः ९
अग्ने पूर्वा अनूषसो विभावसो दीदेथ विश्वदर्शतः ।
असि ग्रामेष्वविता पुरोहितोऽसि यज्ञेषु मानुषः १०
नि त्वा यज्ञस्य साधनमग्ने होतारमृत्विजम् ।
मनुष्वद् देव धीमहि प्रचेतसं जीरं दूतममर्त्यम् ११
यद् देवानां मित्रमहः पुरोहितोऽन्तरो यासि दूत्यम् ।
सिन्धोरिव प्रस्वनितास ऊर्मयोऽग्नेर्भ्राजन्ते अर्चयः १२
श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर्देवैरग्ने सयावभिः ।
आ सीदन्तु बर्हिषि मित्रो अर्यमा प्रातर्यावाणो अध्वरम् १३

होतारं विश्ववेदसं त्वा विशः सं इन्धते हि । हे पुरुहूत अग्ने ! सः (त्वं) प्रचेतसः देवान् इह द्रवत् आ वह ॥७॥

हे स्वध्वर ! क्षपः व्युष्टिषु सवितारं उपसं अश्विना भगं अग्निं (आ वह) । सुतसोमासः कण्वासः हव्यवाहं त्वा इन्धते ॥ ८ ॥

हे अग्ने ! विशां अध्वराणां पतिः दूतः असि हि । उपर्बुधः स्वर्दृशः देवान् अद्य सोमपीतये आ वह ॥ ९ ॥

हे विभावसो अग्ने ! विश्वदर्शतः पूर्वाः उपसः अनु दीदेथ । ग्रामेषु अविता असि । यज्ञेषु मानुषः पुरोहितः असि ॥१०॥

हे अग्ने देव ! मनुष्वत् त्वा यज्ञस्य साधनं, होतारं ऋत्विजं, प्रचेतसं जीरं अमर्त्यं दूतं नि धीमहि ॥ ११ ॥

हे मित्रमहः ! यत् पुरोहितः अन्तरः देवानां दूत्यं यासि, सिन्धोः प्रस्वनितासः ऊर्मयः इव, अग्नेः अर्चयः भ्राजन्ते ॥ १२ ॥

हे श्रुत्कर्ण अग्ने ! श्रुधि । मित्रः अर्यमा प्रातर्यावाणः (तैः) सयावभिः वह्निभिः देवैः अध्वरं बर्हिषि आ सीदन्तु ॥१३॥

हवन करनेवाले सर्वज्ञानी ऐसे तुमको यज्ञ करती हैं । हे बहुतों द्वारा हवन किये गये अ (तुम) ज्ञानी देवोंको यहां दौडते हुए ले आओ ॥

हे उत्तम अहिंसक कर्मके कर्ता ! रात्रीके अंत सविता, उषा, दोनों अश्विदेवों, भग और अग्निको आओ) । सोमका रस निकालकर ये कण्व होत्र हुए तुम्हें प्रदीप्त करते हैं ॥ ८ ॥

हे अग्ने ! तुम प्रजाओंका तथा अहिंसक कर्मोंक नेवाला हो । उषःकालमें जागनेवाले आत्मदर्श सोमपान करनेके लिये ले आओ ॥ ९ ॥

हे विशेष प्रभावान् अग्ने ! विश्वमें दर्शनीय ऐसा पश्चात् प्रदीप्त होते हो । तुम ग्रामोंके रक्षक हो । मनुष्योंमें अग्रगामी नेता हो ॥ १० ॥

हे अग्निदेव ! हम मनुष्यकी तरह तुम्हें यज्ञ होता, याजक, ज्ञानी, वृद्ध, अमर दूत करके करते हैं ॥ ११ ॥

हे मित्रोंमें पूजनीय! जब यज्ञके पुरोहित करके दूतकर्म करनेके लिये जाते हो, तब समुद्रका प्रचण्ड वाली लहरोंके समान, अग्निकी ज्वालाएँ प्रदीप्त होती

हे सुननेवाले अग्ने ! (हमारा कथन) सुन लो । तथा और जो प्रातःकालमें जानेवाले हैं उन देवोंके देव) अहिंसक कर्मके पास आसनपर बैठें ॥ १३॥

शृण्वन्तु स्तोमं मरुतः सुदानवोऽग्निजिह्वा ऋतावृधः ।
पिबतु सोमं वरुणो धृतव्रतोऽश्विभ्यामुषसा सजूः १४

दानवः अग्निजिह्वाः ऋतावृधः मरुतः स्तोमं शृण्वन्तु ।
तः वरुणः अश्विभ्यां उषसा सजूः सोमं पिबतु ॥१४॥

उत्तम दानी अग्निरूप जिह्वावाले, यज्ञकर्मका वर्धन करनेवाले मरुत् वीर इस स्तोत्रको सुनें। व्रतपालन करनेवाला वरुण अश्विदेवोंके और उषाके साथ सोमरसका पान करे ॥ १४ ॥

उषःकालमें जागनेवाले देव

स स्तोत्रमें तथा अन्यत्र भी देवोंको उषःकालमें जागने कहा है–

१ उपर्बुधः देवाः (१;९) –उषःकालमें जागनेवाले,
२ व्युष्टिषु देवान् यातवे (४)– विशेष प्रातः उषःकालमें देवोंको बुलाना चाहिये,
३ क्षपः व्युष्टिषु उषसं सवितारं अश्विना भगं अग्निं आ वह (८)– रात्री रहनेके समयही प्रातः की उषा, सविता, अश्विदेव, भग और अग्निको बुलाओ,
४ प्रातर्यावाणः देवाः (१३)– प्रातःकालमें उठकर यज्ञ करनेके लिये जानेवाले देव होते हैं ।

इस तरह अनेक बार वर्णन वेदमंत्रोंमें होता है। इससे यह होता है कि देव बडी प्रभातमें, जब कि बहुतसी रात भी होती है, तब उठते हैं और अपने कार्यमें लगते हैं। इसीका नाम ब्राह्म-मुहूर्त है। (क्षपः व्युष्टिषु) रात्रीके अवशिष्ट भागके उषःकालमें उठना चाहिये यह वैदिक कालसे चली आयी परिपाठी है। आर्योंके घरोंमें कोई भी ऐसा मनुष्य नहीं होना चाहिये कि जो उषःकालमें सोया रहता हो। ब्राह्ममुहूर्तमें उठनेकी स्मृतियोंकी आज्ञा इन वैदिक मन्त्रभागोंपर आश्रित है।

धन कैसा हो ?

धन अन्न आदि कैसा हो इस विषयमें इस सूक्तके आदेश ऐसे हैं–

१ विवस्वत् चित्रं राधः (१)— तेजस्वी धन हो, जो निवासका हेतु बने, सिद्धितक पहुंचावे और तेजस्विता बढावे,

२ सुवीर्यं बृहत् ध्रुवः अस्मे धेहि (२)— उत्तम वीर्य, ज्ञानवर्धक और पराक्रम बढानेवाला धन, अन्न और यश हमें देवे,

ऐसा धन या अन्न नहीं चाहिये कि जो वीर्यको घटावे पराक्रमकी शक्ति कम करे और यशमें बाधक हो ।

अहिंसक कर्म

अहिंसक कर्म करने चाहिये । कर्म ऐसे करने चाहिये कि जिनमें हिंसा न हो, कुटिलता न हो, कपट या तेढापन न हो, इस विषयमें निम्नलिखित मंत्रभाग देखनेयोग्य हैं–

१ अध्वरः (अ+ध्वरः)— अहिंसायुक्त कर्म, हिंसारहित कर्म, कुटिलतारहित कर्म, ऐसे कर्म कि जिनमें तेढापन या कपट नहीं है। (मं. २;३;८;१३) अध्वरका दूसरा अर्थ (अध्व+रः) मार्ग बतानेवाला, सन्मार्गदर्शक है। अध्वरका अर्थ यज्ञ है, परन्तु यज्ञ वह कि जिसमें हिंसा नहीं होती ।

देवताओंके लक्षण

इस सूक्तमें देवताओंके अनेक लक्षण कहे हैं, उनका विचार इस तरह है—

१ उपर्बुधः— उषःकालमें उठनेवाले, (१)
२ जुष्टः– प्रीतिसे सेवा करनेयोग्य, (२)
३ अध्वराणां रथीः— हिंसा, कुटिलता, कपट आदिसे रहित कर्मोंको करनेवाला,
४ वसुः— मनुष्योंका निवास सुखमय करनेवाला, (३)
५ पुरुप्रियः– बहुतोंको प्रिय,
६ भा-ऋजीकः— प्रभासे युक्त, तेजस्वी,
७ मियेध्यः— पवित्र, (५)
८ त्राता– संरक्षक,
९ मधुजिह्वः– मीठा भाषण करनेवाला, मधुरभाषी (६)
१० दैव्यः– दिव्यभावयुक्त,
११ विश्ववेदाः— सब जाननेवाला, (७)
१२ जातवेदाः– जो बना है उसको यथार्थ जाननेवाला (४)
१३ प्रचेताः– विशेष ज्ञानी, मननशील (५;११)
१४ स्वर्दृश्– आत्मज्ञानी. (९)

होतारं विश्ववेदसं सं हि त्वा विश इन्धते ।
स आ वह पुरुहूत प्रचेतसोऽग्ने देवाँ इह द्रवत् ७
सवितारमुपसमश्विना भगमग्निं व्युष्टिषु क्षपः ।
कण्वासस्त्वा सुतसोमास इन्धते हव्यवाहं स्वध्वर ८
पतिर्ह्यध्वराणामग्ने दूतो विशामसि ।
उपबुध आ वह सोमपीतये देवाँ अद्य स्वर्दृशः ९
अग्ने पूर्वा अनूषसो विभावसो दीदेथ विश्वदर्शतः ।
असि ग्रामेष्वाविता पुरोहितोऽसि यज्ञेषु मानुषः १०
नि त्वा यज्ञस्य साधनमग्ने होतारमृत्विजम् ।
मनुष्वद् देव धीमहि प्रचेतसं जीरं दूतममर्त्यम् ११
यद् देवानां मित्रमहः पुरोहितोऽन्तरो यासि दूत्यम् ।
सिन्धोरिव प्रस्वनितास ऊर्मयोऽग्नेर्भ्राजन्ते अर्चयः १२
श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर्देवैरग्ने सयावभिः ।
आ सीदन्तु बर्हिषि मित्रो अर्यमा प्रातर्यावाणो अध्वरम् १३

होतारं विश्ववेदसं त्वा विशः सं इन्धते हि । हे पुरुहूत अग्ने ! सः (त्वं) प्रचेतसः देवान् इह द्रवत् आ वह ॥७॥

हे स्वध्वर ! क्षपः व्युष्टिषु सवितारं उषसं अश्विना भगं अग्निं (आ वह) । सुतसोमासः कण्वासः हव्यवाहं त्वा इन्धते ॥ ८ ॥

हे अग्ने ! विशां अध्वराणां पतिः दूतः असि हि । उपबुधः सर्वदेवान् अद्य सोमपीतये आ वह ॥ ९ ॥

हे विभावसो अग्ने ! विश्वदर्शतः पूर्वाः उषसः अनु दीदेथ । ग्रामेषु आविता असि । यज्ञेषु मानुषः पुरोहितः असि ॥१०॥

हे अग्ने देव ! मनुष्वद् त्वा यज्ञस्य साधनं, होतारं ऋत्विजं, हे अग्ने जीरं अमर्त्यं दूतं नि धीमहि ॥ ११ ॥

हे अग्ने ! त्वं पुरोहितः अन्तरः देवानां दूत्यं यासि, सिन्धोः प्रस्वनितासः ऊर्मयः इव, अतः अर्चयः ते अग्नेः भ्राजन्ते ॥ १२ ॥

हे स्वध्वर अग्ने ! त्वं श्रुत्कर्णः वह्निभिः सयावभिः (तैः) देवैः सह बर्हिषि आ सीदन्तु ॥१३॥

हवन करनेवाले सर्वज्ञानी ऐसे तुमको सब प्रजा करती हैं । हे बहुतों द्वारा हवन किये गये अग्ने ! (तुम) ज्ञानी देवोंको यहां दौडते हुए ले आओ ॥ ७ ॥

हे उत्तम अहिंसक कर्मके कर्ता ! रात्रीके अंत सविता, उषा, दोनों अश्विदेवों, भग और अग्निको (यहां आओ) । सोमका रस निकालकर ये कण्व ऋषि हुए तुम्हें प्रदीप्त करते हैं ॥ ८ ॥

हे अग्ने ! तुम प्रजाओंका तथा अहिंसक कर्मोंका रक्षण नेवाला हो । उषःकालमें जागनेवाले आत्मदर्शी सोमपान करनेके लिये ले आओ ॥ ९ ॥

हे विशेष प्रभावान् अग्ने ! विश्वमें दर्शनीय ऐसा पश्चात् प्रदीप्त होते हो । तुम ग्रामोंके रक्षक हो । मनुष्योंमें अग्रगामी नेता हो ॥ १० ॥

हे अग्निदेव ! हम मनुष्यकी तरह तुमें यज्ञका होता, याजक, ज्ञानी, वृद्ध, अमर दूत धरते हैं करते हैं ॥ ११ ॥

हे मित्रोंमें पूजनीय अग्ने ! तुम यज्ञके पुरोहित होते देवों यज्ञकर्म करनेके लिये जाते हो, तब समुद्रकी प्रचण्ड लहरोंके समान, अग्निकी ज्वालाएं प्रदीप्त होती हैं ॥

हे सुननेवाले अग्ने ! (हमारा हवन) सुनो और (हमारे तथा और जो प्रातःकालमें आनेवाले हैं उन देवोंके साथ देव) अहिंसक कर्मके पास आसनपर बैठो ॥ १३ ॥

शृण्वन्तु स्तोमं मरुतः सुदानवोऽग्निजिह्वा ऋतावृधः ।
पिबतु सोमं वरुणो धृतव्रतोऽश्विभ्यामुषसा सजूः १४

दानवः अग्निजिह्वाः ऋतावृधः मरुतः स्तोमं शृण्वन्तु ।
: वरुणः अश्विभ्यां उषसा सजूः सोमं पिबतु ॥१४॥

उत्तम दानी अग्निरूप जिह्वावाले, यज्ञकर्मका वर्धन करनेवाले मरुत् वीर इस स्तोत्रको सुनें। व्रतपालन करनेवाला वरुण अश्विदेवोंके और उषाके साथ सोमरसका पान करे ॥ १४ ॥

उषःकालमें जागनेवाले देव

स स्तोत्रमें तथा अन्यत्र भी देवोंको उषःकालमें जागकहा है–

उपर्बुधः देवाः (१;९) –उषःकालमें जागनेवाले,
व्युष्टिषु देवान् यातवे (४)– विशेष प्रातः उषःमें देवोंको बुलाना चाहिये,
क्षपः व्युष्टिषु उषसं सवितारं अश्विना भगं न आ वह (८)– रात्री रहनेके समयही प्रातः की उषा-उषा, सविता, अश्विदेव, भग और अग्निको बुलाओ,
प्रातर्यावाणः देवाः (१३)– प्रातःकालमें उठकर करनेके लिये जानेवाले देव होते हैं।

इस तरह अनेक वार वर्णन वेदमंत्रोंमें होता है। इससे होता है कि देव बडी प्रभातमें, जब कि बहुतसी रात भी है, तब उठते हैं और अपने कार्यमें लगते हैं। इसीका ब्राह्म-मुहूर्त है। (**क्षपः व्युष्टिषु**) रात्रीके अवशिष्ट के उषःकालमें उठना चाहिये यह वैदिक कालसे चली ी परिपाठी है। आर्योंके घरोंमें कोई भी ऐसा मनुष्य नहीं ा चाहिये कि जो उषःकालमें सोया रहता हो। ब्राह्ममुहूर्तमें नेकी स्मृतियोंकी आज्ञा इन वैदिक मन्त्रभागोंपर आश्रित

धन कैसा हो ?

धन अन्न आदि कैसा हो इस विषयमें इस सूक्तके आदेश ये हैं–

१ वियस्यत् चित्रं राधः (१)— तेजस्वी धन हो,
निवासका हेतु बने, सिद्धितक पहुंचावे और तेजस्विता आवे,
२ सुवीर्यं बृहत् श्रवः अस्मे धेहि (२)— उत्तम वीर्य, धैर्य और पराक्रम बढानेवाला धन, अन्न और यश हमें देवे,

ऐसा धन या अन्न नहीं चाहिये कि जो वीर्यको घटावे पराक्रमकी शक्ति कम करे और यशमें बाधक हो।

अहिंसक कर्म

अहिंसक कर्म करने चाहिये। कर्म ऐसे करने चाहिये कि जिनमें हिंसा न हो, कुटिलता न हो, कपट या तेडापन न हो, इस विषयमें निम्नलिखित मंत्रभाग देखनेयोग्य हैं–

१ अध्वरः (अ+ध्वरः)— अहिंसायुक्त कर्म, हिंसारहित कर्म, कुटिलतारहित कर्म, ऐसे कर्म कि जिनमें तेडापन या कपट नहीं है। (सं. २;३;८;१३) अध्वरका दूसरा अर्थ (अध्व+रः) मार्ग बतानेवाला, सन्मार्गदर्शक है। अध्वरका अर्थ यज्ञ है, परन्तु यज्ञ वह कि जिसमें हिंसा नहीं होती।

देवताओंके लक्षण

इस सूक्तमें देवताओंके अनेक लक्षण कहे हैं, उनका विचार इस तरह है—

१ उपर्बुधः— उषःकालमें उठनेवाले, (१)
२ जुष्टः– प्रीतिसे सेवा करनेयोग्य, (२)
३ अध्वराणां रथीः— हिंसा, कुटिलता, कपट आदिसे रहित कर्मोंको करनेवाला,
४ वसुः— मनुष्योंका निवास सुखमय करनेवाला, (३)
५ पुरुप्रियः– बहुतोंको प्रिय,
६ भा-ऋजीकः— प्रभासे युक्त, तेजस्वी,
७ मियेध्यः— पवित्र, (५)
८ त्राता– संरक्षक,
९ मधुजिह्वः– मीठा भाषण करनेवाला, मधुरभाषी (६)
१० दैव्यः– दिव्यभावयुक्त,
११ विश्ववेदाः— सब जाननेवाला, (७)
१२ जातवेदाः– जो बना है उसको भलीभांत जाननेवाला (४)
१३ प्रचेताः– विशेष ज्ञानी, मननशील (७;११)
१४ स्वर्दृश्– आत्मदर्शी. (९)

होतारं विश्ववेदसं सं हि त्वा विश इन्धते ।
स आ वह पुरुहूत प्रचेतसोऽग्ने देवाँ इह द्रवत् ७
सवितारमुषसमश्विना भगमग्निं क्षुपः ।
कण्वासस्त्वा सुतसोमास इन्धते हव्यवाहं स्वध्वर ८
पतिर्विश्वस्याधीमग्ने दूतो विशामसि ।
उपबुध आ वह सोमपीतये देवाँ अद्य स्वर्दृशः ९
अग्ने पूर्वा अनूषसो विभावसो दीदेथ विश्वदर्शतः ।
असि ग्रामेष्वविता पुरोहितोऽसि यज्ञेषु मानुषः १०
नि त्वा यज्ञस्य साधनमग्ने होतारमृत्विजम् ।
मनुष्वद् देव धीमहि प्रचेतसं जीरं दूतममर्त्यम् ११
यद् देवानां मित्रमहः पुरोहितोऽन्तरो यासि दूत्यम् ।
सिन्धोरिव प्रस्वनितास ऊर्मयोऽग्नेर्भ्राजन्ते अर्चयः १२
श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर्देवैरग्ने सयावभिः ।
आ सीदन्तु बर्हिषि मित्रो अर्यमा प्रातर्यावाणो अध्वरम् १३

होतारं विश्ववेदसं त्वा विशः सं इन्धते हि । हे पुरुहूत अग्ने ! सः (त्वं) प्रचेतसः देवान् इह द्रवत् आ वह ॥७॥

हे स्वध्वर ! क्षपः व्युष्टिषु सवितारं उषसं अश्विना भगं अग्निं (आ वह) । सुतसोमासः कण्वासः हव्यवाहं त्वा इन्धते ॥ ८ ॥

हे अग्ने ! विशां अध्वराणां पतिः दूतः असि हि । उपबुधः स्वर्दृशः देवान् अद्य सोमपीतये आ वह ॥ ९ ॥

हे विभावसो अग्ने ! विश्वदर्शतः पूर्वाः उषसः अनु दीदेथ । ग्रामेषु अविता असि । यज्ञेषु मानुषः पुरोहितः असि ॥१०॥

हे अग्ने देव ! मनुष्वत् त्वा यज्ञस्य साधनं, होतारं ऋत्विजं, प्रचेतसं जीरं अमर्त्यं दूतं नि धीमहि ॥ ११ ॥

हे मित्रमहः ! यत् पुरोहितः अन्तरः देवानां दूत्यं यासि, सिन्धोः प्रस्वनितासः ऊर्मयः इव, अग्नेः अर्चयः भ्राजन्ते ॥ १२ ॥

हे श्रुत्कर्ण अग्ने ! श्रुधि । मित्रः अर्यमा प्रातर्यावाणः (तैः) सयावभिः वह्निभिः देवैः अध्वरं बर्हिषि आ सीदन्तु ॥१३॥

हवन करनेवाले सर्वज्ञानी ऐसे तुमको यज्ञ करती हैं । हे बहुतों द्वारा हवन किये गये अ (तुम) ज्ञानी देवोंको यहां दौड़ते हुए ले आओ ॥

हे उत्तम अहिंसक कर्मके कर्ता ! रात्रीके अंत सविता, उषा, दोनों अश्विदेवों, भग और अग्निको आओ) । सोमका रस निकालकर ये कण्व हवनक हुए तुम्हें प्रदीप्त करते हैं ॥ ८ ॥

हे अग्ने ! तुम प्रजाओंका तथा अहिंसक अध्व नेवाला हो । उषःकालमें जागनेवाले आत्मदर्शी सोमपान करनेके लिये ले आओ ॥ ९ ॥

हे विशेष प्रभावान् अग्ने ! विश्वमें दर्शनीय ऐसा पश्चात् प्रदीप्त होते हो । तुम प्रानोंके रक्षक हो । मनुष्योंमें अग्रगामी नेता हो ॥ १० ॥

हे अग्निदेव ! हम मनुष्यकी तरह तुम्हें यज्ञके होता, याजक, ज्ञानी, वृद्ध, अमर दूत करके वर्ण करते हैं ॥ ११ ॥

हे मित्रोंमें पूजनीय ! जब यज्ञके पुरोहित करके देवोंके दूतकर्म करनेके लिये जाते हो, तब समुद्रका प्रचण्ड श वाली लहरोंके समान, अग्निकी ज्वालाएँ प्रदीप्त होती हैं ।

हे सुननेवाले अग्ने ! (हमारा कथन) सुन लो । मित्र तथा और जो प्रातःकालमें जानेवाले हैं उन देवोंके सा देव) अहिंसक कर्मके पास आसनपर बैठें ॥ १३ ॥

शृण्वन्तु स्तोमं मरुतः सुदानवोऽग्निजिह्वा ऋतावृधः।
पिबतु सोमं वरुणो धृतव्रतोऽश्विभ्यामुषसा सजूः १४

दानवः अग्निजिह्वाः ऋतावृधः मरुतः स्तोमं शृण्वन्तु।
ः वरुणः अश्विभ्यां उषसा सजूः सोमं पिबतु ॥१४॥

उत्तम दानी अग्निरूप जिह्वावाले, यज्ञकर्मका वर्धन करनेवाले मरुत् वीर इस स्तोत्रको सुनें। व्रतपालन करनेवाला वरुण अश्विदेवोंके और उषाके साथ सोमरसका पान करे ॥ १४ ॥

उषःकालमें जागनेवाले देव

स स्तोत्रमें तथा अन्यत्र भी देवोंको उषःकालमें जागकहा है-

उपर्बुधः देवाः (१;९) -उषःकालमें जागनेवाले,

व्युष्टिषु देवान् यातवे (४)- विशेष प्रातः उषःमें देवोंको बुलाना चाहिये,

क्षपः व्युष्टिषु उषसं सवितारं अश्विना भगं न आ वह (८)- रात्रौ रहनेके समयही प्रातः की उषा, सविता, अश्विदेव, भग और अग्निको बुलाओ,

प्रातर्यावाणः देवाः (१३)- प्रातःकालमें उठकर करनेके लिये जानेवाले देव होते हैं।

इस तरह अनेक वार वर्णन वेदमंत्रोंमें होता है। इससे होता है कि देव बडी प्रभातमें, जब कि बहुतसी रात भी है, तब उठते हैं और अपने कार्यमें लगते हैं। इसीका ब्राह्म-मुहूर्त है। (क्षपः व्युष्टिषु) रात्रीके अवशिष्ट कि उषःकालमें उठना चाहिये यह वैदिक कालसे चली ी परिपाठी है। आर्योंके घरोंमें कोई भी ऐसा मनुष्य नहीं चाहिये कि जो उषःकालमें सोया रहता हो। ब्राह्ममुहूर्तमें नेकी स्मृतियोंकी आज्ञा इन वैदिक मन्त्रभागोंपर आश्रित

धन कैसा हो ?

धन अन्न आदि कैसा हो इस विषयमें इस सूक्तके आदेश ा है-

१ विवस्वत् चित्रं राधः (१)— तेजस्वी धन हो, निवासका हेतु बने, सिद्धितक पहुंचावे और तेजस्विता दावे,

२ सुपेशं बृहत् श्रवः अस्मे धेहि (२)— उत्तम वीर्य, निर्भय और पराक्रम बढानेवाला धन, अन्न और यश हमें ाने,

ऐसा धन या अन्न नहीं चाहिये कि जो वीर्यको घटावे पराक्रमकी शक्ति कम करे और यशमें बाधक हो।

अहिंसक कर्म

अहिंसक कर्म करने चाहिये। कर्म ऐसे करने चाहिये कि जिनमें हिंसा न हो, कुटिलता न हो, कपट या तेडापन न हो, इस विषयमें निम्नलिखित मंत्रभाग देखनेयोग्य हैं-

१ अध्वरः (अ+ध्वरः)— अहिंसायुक्त कर्म, हिंसारहित कर्म, कुटिलतारहित कर्म, ऐसे कर्म कि जिनमें तेडापन या कपट नहीं है। (मं. २;३;८;१३) अध्वरका दूसरा अर्थ (अध्व+रः) मार्ग बतानेवाला, सन्मार्गदर्शक है। अध्वरका अर्थ यज्ञ है, परन्तु यज्ञ वह कि जिसमें हिंसा नहीं होती।

देवताओंके लक्षण

इस सूक्तमें देवताओंके अनेक लक्षण कहे हैं, उनका विचार इस तरह है—

१ उपर्बुधः— उषःकालमें उठनेवाले, (१)

२ जुष्टः- प्रीतिसे सेवा करनेयोग्य, (२)

३ अध्वराणां रथीः— हिंसा, कुटिलता, कपट आदिसे रहित कर्मोंको करनेवाला,

४ वसुः— मनुष्योंके निवास सुखमय करनेवाला, (३)

५ पुरुप्रियः- बहुतोंको प्रिय,

६ भा-ऋजीकः— प्रभासे युक्त, तेजस्वी,

७ मियेध्यः— पवित्र, (५)

८ त्राता- संरक्षक,

९ मधुजिह्वः- मीठा भाषण करनेवाला, मधुरभाषी (६)

१० दैव्यः- दिव्यभावयुक्त,

११ विश्ववेदाः— सब जाननेवाला, (७)

१२ जातवेदाः- जो बना है उसको भलीभांति जाननेवाला (४)

१३ प्रचेताः- विशेष ज्ञानी, मननशील (७;११)

१४ स्वर्दृशू- आत्मज्ञानी. (९)

(३६) ऋग्वेदका सुबोध भाष्य [म. १

होतारं विश्ववेदसं सं हि त्वा विश इन्धते । ७
स आ वह पुरुहूत प्रचेतसोऽग्ने देवाँ इह द्रवत्
सवितारमुषसमश्विना भगमग्निं व्युष्टिषु क्षपः । ८
कण्वासस्त्वा सुतसोमास इन्धते हव्यवाहं स्वध्वर
पतिर्होध्वराणामग्ने दूता विशामसि । ९
उषर्बुध आ वह सोमपीतये देवाँ अद्य स्वर्दृशः
अग्ने पूर्वा अनूषसो विभावसो दीदेथ विश्वदर्शतः । १०
असि ग्रामेष्वविता पुरोहितोऽसि यज्ञेषु मानुषः
नि त्वा यज्ञस्य साधनमग्ने होतारमृत्विजम् । ११
मनुष्वद् देव धीमहि प्रचेतसं जीरं दूतममर्त्यम्
यद् देवानां मित्रमहः पुरोहितोऽन्तरो यासि दूत्यम् । १२
सिन्धोरिव प्रस्वनितास ऊर्मयोऽग्नेर्भ्राजन्ते अर्चयः
श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर्देवैरग्ने सयावभिः । १३
आ सीदन्तु बर्हिषि मित्रो अर्यमा प्रातर्यावाणो अध्वरम्

होतारं विश्ववेदसं त्वा विशः सं इन्धते हि । हे पुरुहूत अग्ने ! सः (त्वं) प्रचेतसः देवान् इह द्रवत् आ वह ॥७॥

हे स्वध्वर ! क्षपः व्युष्टिषु सवितारं उषसं अश्विना भगं अग्निं (आ वह) । सुतसोमासः कण्वासः हव्यवाहं त्वा इन्धते ॥ ८ ॥

हे अग्ने ! विशां अध्वराणां पतिः दूतः असि हि । उषर्बुधः स्वर्दृशः देवान् अद्य सोमपीतये आ वह ॥ ९ ॥

हे विभावसो अग्ने ! विश्वदर्शतः पूर्वाः उषसः अनु दीदेथ । ग्रामेषु अविता असि । यज्ञेषु मानुषः पुरोहितः असि ॥१०॥

हे अग्ने देव ! मनुष्वत् त्वा यज्ञस्य साधनं, होतारं ऋत्विजं, प्रचेतसं जीरं अमर्त्यं दूतं नि धीमहि ॥ ११ ॥

हे मित्रमहः ! यत् पुरोहितः अन्तरः देवानां दूत्यं यासि, सिन्धोः प्रस्वनितासः ऊर्मयः इव, अग्नेः अर्चयः भ्राजन्ते ॥ १२ ॥

हे श्रुत्कर्ण अग्ने ! श्रुधि । मित्रः अर्यमा प्रातर्यावाणः (तैः) सयावभिः वह्निभिः देवैः अध्वरं बर्हिषि आ सीदन्तु ॥१३॥

हवन करनेवाले सर्वज्ञानी ऐसे तुमको सब [illegible] करती हैं । हे बहुतों द्वारा हवन किये गये (तुम) ज्ञानी देवोंको यहां दौडते हुए ले आओ ॥

हे उत्तम अहिंसक कर्मके कर्ता ! रात्रीके नंतर सविता, उषा, दोनों अश्विदेवों, भग और अग्निको आओ) । सोमका रस निकालकर ये कण्व हविष्य हुए तुम्हें प्रदीप्त करते हैं ॥ ८ ॥

हे अग्ने ! तुम प्रजाओंका तथा अहिंसक कर्मोंका नेवाला हो । उषःकालमें जागनेवाले आत्मदर्शी सोमपान करनेके लिये ले आओ ॥ ९ ॥

हे विशेष प्रभावान् अग्ने ! विश्वमें दर्शनीय ऐसा पश्चात् प्रदीप्त होते हो । तुम ग्रामोंके रक्षक हो । मनुष्योंमें अग्रगामी नेता हो ॥ १० ॥

हे अग्निदेव ! हम मनुष्यकी तरह तुम्हें यज्ञके होता, याजक, ज्ञानी, वृद्ध, अमर दूत करके करते हैं ॥ ११ ॥

हे मित्रोंमें पूजनीय! जब यज्ञके पुरोहित करके दूतकर्म करनेके लिये जाते हो, तब समुद्रका प्रचण्ड वाली लहरोंके समान, अग्निकी ज्वालाएँ प्रदीप्त होती

हे सुननेवाले अग्ने ! (हमारा कथन) सुन लो। मित्र, तथा और जो प्रातःकालमें जानेवाले हैं उन देवोंके साथ देव) अहिंसक कर्मके पास आसनपर बैठें ॥ १३॥

शृण्वन्तु स्तोमं मरुतः सुदानवोऽग्निजिह्वा ऋतावृधः ।
पिवतु सोमं वरुणो धृतव्रतोऽश्विभ्यामुषसा सजूः १४

ानवः अग्निजिह्वाः ऋतावृधः मरुतः स्तोमं शृण्वन्तु ।
ः वरुणः अश्विभ्यां उषसा सजूः सोमं पिवतु ॥१४॥

उत्तम दानी अग्निरूप जिह्वावाले, यज्ञकर्मका वर्धन करनेवाले मरुत् वीर इस स्तोत्रको सुनें। व्रतपालन करनेवाला वरुण अश्विदेवोंके और उषाके साथ सोमरसका पान करे ॥ १४ ॥

उषःकालमें जागनेवाले देव

ा स्तोत्रमें तथा अन्यत्र भी देवोंको उषःकालमें जागकहा है–

उपर्बुधः देवाः (१;९) –उषःकालमें जागनेवाले,

व्युष्टिषु देवान् यातवे (४)– विशेष प्रातः उषःदेवोंको बुलाना चाहिये,

क्षपः व्युष्टिषु उषसं सवितारं अश्विना भगं न आ वह (८)– रात्री रहनेके समयही प्रातः की उषा-उषा, सविता, अश्विदेव, भग और अग्निको बुलाओ,

प्रातर्यावाणः देवाः (१३)– प्रातःकालमें उठकर करनेके लिये जानेवाले देव होते हैं ।

स तरह अनेक वार वर्णन वेदमंत्रोंमें होता है । इससे होता है कि देव बडी प्रभातमें, जब कि बहुतसी रात भी है, तब उठते हैं और अपने कार्यमें लगते हैं । इसीका ाह्म-मुहूर्त है । (**क्षपः व्युष्टिषु**) रात्रीके अवशिष्ट के उषःकालमें उठना चाहिये यह वैदिक कालसे चली ी परिपाठी है । आर्योंके घरोंमें कोई भी ऐसा मनुष्य नहीं । चाहिये कि जो उषःकालमें सोया रहता हो । ब्राह्ममुहूर्तमें वेकी स्मृतियोंकी आज्ञा इन वैदिक मन्त्रभागोंपर आश्रित

धन कैसा हो ?

धन अन्न आदि कैसा हो इस विषयमें इस सूक्तके आदेश ा हैं–

१ **विवस्वत् चित्रं राधः** (१)— तेजस्वी धन हो,
निवासका हेतु बने, सिद्धितक पहुंचावे और तेजस्विता गावे,

२ **सुवीर्यं बृहत् श्रवः अस्मे धेहि** (२)— उत्तम वीर्य, निर्भय और पराक्रम बढानेवाला धन, अन्न और यश हमें ाओ,

ऐसा धन या अन्न नहीं चाहिये कि जो वीर्यको घटावे पराक्रमकी शक्ति कम करे और यशमें बाधक हो ।

अहिंसक कर्म

अहिंसक कर्म करने चाहिये । कर्म ऐसे करने चाहिये कि जिनमें हिंसा न हो, कुटिलता न हो, कपट या तेढापन न हो, इस विषयमें निम्नलिखित मंत्रभाग देखनेयोग्य हैं–

१ **अध्वरः** (अ+ध्वरः)— अहिंसायुक्त कर्म, हिंसारहित कर्म, कुटिलतारहित कर्म, ऐसे कर्म कि जिनमें तेढापन या कपट नहीं है । (मं. २;३;८;१३) अध्वरका दूसरा अर्थ (अध्व+रः) मार्ग बतानेवाला, सन्मार्गदर्शक है । अध्वरका अर्थ यज्ञ है, परन्तु यज्ञ वह कि जिसमें हिंसा नहीं होती ।

देवताओंके लक्षण

इस सूक्तमें देवताओंके अनेक लक्षण कहे हैं, उनका विचार इस तरह है—

१ **उपर्बुधः**— उषःकालमें उठनेवाले, (१)
२ **जुष्टः**– प्रीतिसे सेवा करनेयोग्य, (२)
३ **अध्वराणां रथीः**— हिंसा, कुटिलता, कपट आदिसे रहित कर्मोंको करनेवाला,
४ **वसुः**— मनुष्योंके निवास सुखमय करनेवाला, (३)
५ **पुरुप्रियः**– बहुतोंको प्रिय,
६ **भा-ऋजीकः**— प्रभासे युक्त, तेजस्वी,
७ **मियेध्यः**— पवित्र, (५)
८ **त्राता**– संरक्षक,
९ **मधुजिह्वः**– मीठा भाषण करनेवाला, मधुरभाषी (६)
१० **दैव्यः**– दिव्यभावयुक्त,
११ **विश्ववेदाः**— सब जाननेवाला, (७)
१२ **जातवेदाः**– जो बना है उसको यथार्थ जाननेवाला (४)
१३ **प्रचेताः**– विशेष ज्ञानी, मनस्वी (७;११)
१४ **स्वर्दृश्**– आत्मज्ञानी. (९)

होतारं विश्ववेदसं सं हि त्वा विश इन्धते ।
स आ वह पुरुहूत प्रचेतसोऽग्ने देवाँ इह द्रवत् ७
सवितारमुपसमश्विना भगमग्निं व्युष्टिषु क्षपः ।
कण्वासस्त्वा सुतसोमास इन्धते हव्यवाहं स्वध्वर ८
पतिर्ह्यध्वराणामग्ने दूतो विशामसि ।
उपवुध आ वह सोमपीतये देवाँ अद्य स्वर्दृशः ९
अग्ने पूर्वा अनूषसो विभावसो दीदेथ विश्वदर्शतः ।
असि ग्रामेष्वाविता पुरोहितोऽसि यज्ञेषु मानुषः १०
नि त्वा यज्ञस्य साधनमग्ने होतारमृत्विजम् ।
मनुष्वद् देव धीमहि प्रचेतसं जीरं दूतममर्त्यम् ११
यद् देवानां मित्रमहः पुरोहितोऽन्तरो यासि दूत्यम् ।
सिन्धोरिव प्रस्वनितास ऊर्मयोऽग्नेर्भ्राजन्ते अर्चयः १२
श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर्देवैरग्ने सयावभिः ।
आ सीदन्तु बर्हिषि मित्रो अर्यमा प्रातर्यावाणो अध्वरम् १३

होतारं विश्ववेदसं त्वा विशः सं इन्धते हि । हे पुरुहूत अग्ने ! सः (त्वं) प्रचेतसः देवान् इह द्रवत् आ वह ॥७॥

हे स्वध्वर ! क्षपः व्युष्टिषु सवितारं उषसं अश्विना भगं अग्निं (आ वह) । सुतसोमासः कण्वासः हव्यवाहं त्वा इन्धते ॥ ८ ॥

हे अग्ने ! विशां अध्वराणां पतिः दूतः असि हि । उपर्बुधः स्वर्दृशः देवान् अद्य सोमपीतये आ वह ॥ ९ ॥

हे विभावसो अग्ने ! विश्वदर्शतः पूर्वाः उषसः अनु दीदेथ । ग्रामेषु आविता असि । यज्ञेषु मानुषः पुरोहितः असि ॥१०॥

हे अग्ने देव ! मनुष्वत् त्वा यज्ञस्य साधनं, होतारं ऋत्विजं, प्रचेतसं जीरं अमर्त्यं दूतं नि धीमहि ॥ ११ ॥

हे मित्रमहः ! यत् पुरोहितः अन्तरः देवानां दूत्यं यासि, सिन्धोः प्रस्वनितासः ऊर्मयः इव, अग्नेः अर्चयः भ्राजन्ते ॥ १२ ॥

हे श्रुत्कर्ण अग्ने ! श्रुधि । मित्रः अर्यमा प्रातर्यावाणः (तैः) सयावभिः वह्निभिः देवैः अध्वरं बर्हिषि आ सीदन्तु ॥१३॥

हवन करनेवाले सर्वज्ञानी ऐसे तुमको वर करती हैं । हे बहुतों द्वारा हवन किये गये (तुम) ज्ञानी देवोंको यहां दौडते हुए ले आओ ।

हे उत्तम अहिंसक कर्मके कर्ता ! रात्रीके अंत सविता, उषा, दोनों अश्विदेवों, भग और अग्निको आओ) । सोमका रस निकालकर ये कण्व होता हुए तुम्हें प्रदीप्त करते हैं ॥ ८ ॥

हे अग्ने ! तुम प्रजाओंका तथा अहिंसक कर्मों नेवाला हो । उषःकालमें जागनेवाले आत्मदर्शी सोमपान करनेके लिये ले आओ ॥ ९ ॥

हे विशेष प्रभावान् अग्ने ! विश्वमें दर्शनीय ऐसा पश्चात् प्रदीप्त होते हो । तुम ग्रामोंके रक्षक हो । मनुष्योंमें अग्रगामी नेता हो ॥ १० ॥

हे अग्निदेव ! हम मनुष्यकी तरह तुम्हें यज्ञ होता, याजक, ज्ञानी, वृद्ध, अमर दूत करते हैं ॥ ११ ॥

हे मित्रोंमें पूजनीय ! जब यज्ञके पुरोहित होके दूतकर्म करनेके लिये जाते हो, तब समुद्रमें उठने वाली लहरोंके समान, अग्निकी ज्वालाएँ प्रदीप्त होती

हे सुननेवाले अग्ने ! (हमारा कथन) सुन लो । तथा और जो प्रातःकालमें आनेवाले हैं उन देवोंके देव) अहिंसक कर्मके पास आसनपर बैठें ॥ १३ ॥

१५ विश्वदर्शतः- विश्वको दिखानेवाला, सबमें सुंदर, (१०)

१६ सुदानुः— उत्तम दाता, (१८)

१७ अग्निजिह्वः- तेजस्वी भाषण करनेवाला,

१८ ऋतावृधः— सत्य, यज्ञको वृद्धि करनेवाला,

१९ घृतव्रतः-नियमका योग्य पालन करनेवाला,

२० विभावसुः- तेजस्वी, विशेष तेजस्वी । (१०)

देवत्वकी प्राप्ति इन गुणोंसे होती है, अतः ये गुण अपनाना मनुष्यके लिये योग्य है ।

कुछ कर्तव्य

निम्नलिखित मंत्रभाग मानवोंके कुछ कर्तव्य बताते हैं, उनका अब विचार करेंगे—

१ त्रातारं इंद्रं स्तविष्यामि— दूसरोंकी रक्षा करनेवाले वीरकी मैं प्रशंसा करता हूं (५), अर्थात् जो दूसरोंकी सुरक्षा नहीं करता वह स्तुतिके योग्य नहीं है ।

२ आयुः प्रतिरन्- आयुको बढाओ (६), आयु जिससे घटे ऐसा कोई कर्म नहीं करना चाहिये ।

३ दैव्यं जनं नमस्य- दिव्य गुणवालोंको ही प्रणाम कर (६) जिसमें शुभगुण नहीं होंगे वह सत्कारके योग्य नहीं है ।

४ ग्रामेषु अविता असि- ग्रामोंमें सुरक्षा करनेवाला हो । (१०)

५ यतेषु पुरोहितः असि- [illegible]

६ शुष्कर्णे । भूयि- [illegible]

७ स्तोमं शृण्वन्तु- परोपकारयोग्य [illegible] दूसरोंकी निंदा आदि न सुनो ।

८ विश्वस्य भोजन— सबको भोजन

इस तरह कर्तव्यबोधक बातोंसे मंत्र है । इन बातोंसे विशेष और विशेष हित [illegible] यह ऊपर बताया है ।

सोमपान

सोमपानका विषय इस सूक्तमें अनेक बार सूक्तके वाक्य ये हैं—

१ सुतसोमासः- मिलकर सोमरस निकाल

२ सोमपीतये देवान् आ वह- सोमपान [illegible] को ले आओ, (९)

३ बर्हिषि आ सीदन्तु— वे देव आकर बैठें, (१३)

४ वरुणः सोमं पिबतु— वरुण सोम पीवे

इस सूक्तके १४ मंत्रोंमेंसे चार मंत्रोंमें सोमका [illegible] इस तरह यह सूक्त सुवीर्यवर्धक उत्तम उपदेश देता

(१४) तैंतीस देवता

(ऋ. १।४५) प्रस्कण्वः काण्वः । अग्निः, १० (उत्तरार्धस्य) देवाः । अनुष्टुप् ।

त्वमग्ने वसूँरिह रुद्राँ आदित्याँ उत । यजा स्वध्वरं जनं मनुजातं घृतप्रुषम्
श्रुष्टीवानो हि दाशुषे देवा अग्ने विचेतसः । तान् रोहिदश्व गिर्वणस्त्रयस्त्रिंशतमा वह

अन्वयः— हे अग्ने ! त्वं इह वसून् रुद्रान् आदित्यान् यज । उत स्वध्वरं घृतप्रुषं मनुजातं जनं आ यज ॥ १ ॥

हे अग्ने ! विचेतसः देवाः दाशुषे श्रुष्टीवानो हि । हे रोहिदश्व गिर्वणः ! त्रयस्त्रिंशतं तान् आ वह ॥ २ ॥

अर्थ— हे अग्ने ! तुम यहां वसुओं, रुद्रों और (सन्तुष्टिके लिये) यज्ञ कर ॥ तथा उत्तम यज्ञ करनेवाले घृताहुति देनेवाले मनुसे उत्पन्न हुए मानवोंकी (सन्तुष्टिके भी) यज्ञ कर ॥ १ ॥

हे अग्ने ! विशेष ज्ञानसंपन्न देव सदाही दाताके फल देतेही हैं । हे लाल रंगोंके घोडे (जोतने)वाले (अग्ने) ! उन तैंतीस देवोंको तुम यहां ले आ ॥ २ ॥

यमेधवदत्रिवज्जातवेदो विरूपवत्	।	अङ्गिरस्वन्महिव्रत प्रस्कण्वस्य श्रुधी हवम् ३
हिकेरव ऊतये प्रियमेधा अहूषत	।	राजन्तमध्वराणामग्निं शुक्रेण शोचिषा ४
तृताहवन सन्त्येमा उ षु श्रुधी गिरः	।	याभिः कण्वस्य सूनवो हवन्तेऽवसे त्वा ५
वां चित्रश्रवस्तम हवन्ते विक्षु जन्तवः	।	शोचिष्केशं पुरुप्रियाऽग्ने हव्याय वोळ्हवे ६
नि त्वा होतारमृत्विजं दधिरे वसुवित्तमम्	।	श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमं विप्रा अग्ने दिविष्टिषु ७
भा त्वा विप्रा अचुच्यवुः सुतसोमा अभि प्रयः	।	बृहद्भा बिभ्रतो हविरग्ने मर्ताय दाशुषे ८
मातर्याणिः सहस्कृत सोमपेयाय सन्त्य	।	इहाद्य दैव्यं जनं बर्हिरा सादया वसो ९
अर्वाञ्चं दैव्यं जनमग्ने यक्ष्व सहूतिभिः	।	अयं सोमः सुदानवस्तं पात तिरोअह्नयम् १०

महिव्रत जातवेदः ! प्रियमेधवत् अत्रिवत् विरूपवत् अङ्गिरस्वत् प्रस्कण्वस्य हवं श्रुधि ॥ ३ ॥

हे महान् कर्म करनेवाले ज्ञानी (अग्ने) ! (तुमने) जैसी प्रियमेध, अत्रि, विरूप, और अङ्गिरसकी प्रार्थनाएं सुनी थीं, वैसी प्रस्कण्वकी भी प्रार्थना सुनो ॥ ३ ॥

हविष्केशवः प्रियमेधाः अध्वराणां शुक्रेण शोचिषा राजन्तं अग्निं ऊतये अहूषत ॥ ४ ॥

महान् कर्म करनेवाले प्रियमेध (ऋषियोंने) यज्ञोंके मध्यमें पवित्र प्रकाशसे तेजस्वी हुए अग्निकी (सबकी) सुरक्षाके लिये प्रार्थना की थी ॥ ४ ॥

घृताहवन सन्त्य ! इमा उ गिरः सु श्रुधि । कण्वस्य याभिः अवसे त्वा हवन्ते ॥ ५ ॥

हे घृतकी आहुतियां लेनेवाले दाता (अग्ने) ! ये प्रार्थनाएं सुनो । कण्वके पुत्र जिन (प्रार्थनाओं)से (सबकी) सुरक्षाके लिये तुम्हारी प्रार्थना करते हैं ॥ ५ ॥

चित्रश्रवस्तम पुरुप्रिय अग्ने ! शोचिष्केशं त्वां हव्याय वोळ्हवे विक्षु जन्तवः हवन्ते ॥ ६ ॥

हे विलक्षण यशवाले और सबको प्रिय अग्ने ! तेजस्वी किरणवाले तुम्हें हविको ले जानेके लिये प्रजाओंमें ये लोग बुलाते हैं ॥ ६ ॥

हे अग्ने ! विप्राः दिविष्टिषु होतारं ऋत्विजं वसुवित्तमं श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमं त्वा नि दधिरे ॥ ७ ॥

हे अग्ने ! ज्ञानी लोग यज्ञोंमें, (देवोंको) बुलानेवाले ऋतुके अनुकूल यज्ञ करनेवाले, बहुत धनके दाता, प्रार्थना सुननेमें तत्पर और सर्वत्र प्रसिद्ध ऐसे तुम्हें स्थापित करते हैं ॥ ७ ॥

हे अग्ने ! दाशुषे मर्ताय हविः बिभ्रतः सुतसोमाः विप्राः बृहद् भाः त्वा अभि अचुच्यवुः ॥ ८ ॥

हे अग्ने ! दाता मानवोंके लिये अन्न देनेवाले और जिन्होंने सोमरस तैयार किया है ऐसे ज्ञानी लोगोंने (हविरूप) अन्नके पास (रहनेवाले) अत्यंत तेजस्वी तेरा (मन अन्नों)ओंमें स्थिर किया है ॥ ८ ॥

हे वसो ! सहस्कृत सन्त्य वसो ! इह अद्य सोमपेयाय प्रातर्याणिः जनं दैव्यं बर्हिः आ सादय ॥ ९ ॥

हे बलके उत्पन्नकर्ता दानशील (तथा सबके) निवासक (अग्ने)! यहां आज सोमपानके लिये प्रातःकालमें आनेवाले दिव्य विद्वानोंको (तू) अन्तरीक्ष (लोक) बिछा दो ॥ ९ ॥

हे अग्ने ! अर्वाञ्चं दैव्यं जनं सहूतिभिः यक्ष्व । हे सुदानवः अयं सोमः, तं तिरोअह्नयं पात ॥ १० ॥

हे अग्ने ! पास आने दिव्य जनोंका उत्तम आदरपूर्वक यजन कर । हे दानशील ! यह सोमरस है, इसको एकही दिन हुआ है, उसका पान करो ॥ १० ॥

तैंतीस देवताओंका सत्कार

'वसु' आठ हैं, 'वसु' का अर्थ— धन, धाम, घर, शुभकर्मोंकर्ता, रत्न, सुवर्ण, अन्न, नमक, 'मोती' नामक औषधि, प्रकाशकिरण, अग्नि, सूर्य, प्रकाश यह है। वसु आठ हैं—

धरो ध्रुवश्च सोमश्च अहश्चैवानिलोऽनलः।
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टाविति स्मृताः॥

'धर, ध्रुव, सोम, दिन, वायु, अग्नि, प्रत्यूष, प्रभास ये आठ वसु हैं।' शतपथमें पृथ्वी, तेज, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्यौः, नक्षत्र और चन्द्रमा ये वसु हैं ऐसा कहा है।

अग्निश्च पृथिवी च वायुश्चान्तरिक्षं चादित्यश्च द्यौश्च चन्द्रमाश्च नक्षत्राणि चैते वसव एते हीदं सर्वं वासयन्ति॥ (श. ब्रा. ११।६।३।६)

ये सबका निवास कराते हैं, इनके आधारसे सब स्थावर जंगम विश्व रहा है। इसलिये इनका नाम वसु है।

'**रुद्र**' नाम ग्यारह प्राणोंका है। इसी तरह वायुका भी नाम रुद्र है, क्योंकि वायु प्राणोंका पोषक है। ये रुद्र ११ हैं।

'**आदित्य**' नाम १२ महिनोंका है। बारह महिनोंमें सूर्यका तेज न्यूनाधिक होता है। चैत्रका सूर्य और पौषका सूर्य इनमें प्रकाशकी तीव्रताका अन्तर है। यही प्रकाशकी न्यूनाधिकताका भेद एक आदित्यके १२ सूर्य बना देता है।

८ वसु+११रुद्र+१२ आदित्य= मिलकर ३१ देव होते हैं, यज्ञ और **प्रजापति** मिलकर ३३ देव हैं। इनका उल्लेख "**गिर्वणसः त्रयस्त्रिंशतं**" (मं. २) इस मंत्रमें किया है। अग्निदेव अपने रथपर इन तैंतीस देवोंको बिठलाकर यज्ञभूमिमें लाता है।

जैसे विश्वमें ये ३३ देवताएं हैं वैसीही अंशरूपसे प्रत्येक शरीरमें भी येही देवताएं हैं। यह शरीररूपी अग्निका रथ है, इसको इन्द्रियरूप घोडे जोते हैं। इस शरीररूपी रथमें ३३ देवताओंको बिठलाकर यह अग्नि इस विश्वरूपी यज्ञभूमिमें लाता है। और इस तरह मनुष्यकी पूर्ण आयुतक यह यज्ञ चलता है। रोगरूपी असुर इस यज्ञका नाश करते हैं और देव इसकी सुरक्षा चाहते हैं, संक्षेपसे यह रूपक यहां है।

देवोंके लिये यज्ञ

वसून्, रुद्रान्, आदित्यान् इह यज। (मं. १) वसु, [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हैं। [illegible] [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] हैं। [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] हैं। [illegible] है। पृथ्वी, आप, तेज, वायु, [illegible] [illegible], औषधियां, अन्न, [illegible], [illegible], [illegible] इन्हींसे मनुष्यको सुख मिल सकता है। [illegible] [illegible] हैं।

[illegible] [illegible] यज। (मं. ६) मनुष्यमात्रके [illegible]। यज्ञका मुख्य उद्देश मानवका हित हो। [illegible] न हो, तो वह कोई हेतुवाला नहीं। मनुष्य [illegible] [illegible] [illegible] हैं, और इसीलिये वेद आदि [illegible] [illegible] आदि इसीलिये हैं। धर्म इसीके लिये है। कहा है 'मनुके वंशजों अर्थात् मानवोंके हित करना चाहिये।' (मं. १) मनुष्य सदा [illegible] यह उन्नत होता रहे, उसके अन्दरके दिव्यभाव यह नरका नारायण बने, जीवका शिव बने, इन्द्रका महेन्द्र बने, इसके लिये यज्ञ आवश्यक है।

दातृत्व-भाव

मनुष्यमें दातृत्वका भाव रहे। 'अराति' माना है। अ-राति (अ-दाता)का अर्थ वेदमें [illegible] है। यह समाजका दुश्मन् है। इसीसे [illegible] 'दाता' ही समाजका संगठन करता है, दाताही और यज्ञसे 'देवपूजा, संगतिकरण (संगठन) होता है। इसमें दान मुख्य है। दान न होगा, तो [illegible] होगा। दानही यज्ञका जीवन है। इसीलिये कहा है।

विचेतसः दाशुषे श्रुष्टीवानो हि। (मं. [illegible])

'विशेष ज्ञानी दाताकी सहायता हरएककाले [illegible]' विशेष ज्ञानी वे हैं कि जो समाजकी संगठना [illegible] होती है, इसका शास्त्र जानते हैं। 'श्रुष्टिः' का अर्थ [illegible] यता, मदत, उन्नति, प्रगति' है। दाता जो हो [illegible] सहायता तथा उन्नति विज्ञानी करते हैं। इसका [illegible] कि दाताके दानसेही समाज बलवान् और समर्थ होता [illegible] लिये उसकी सहायता करना ज्ञाताओंका कर्तव्यही है।

सूक्तका द्रष्टा प्रस्कण्व

सूक्तका द्रष्टा प्रस्कण्व ऋषि है। इसका नाम तृतीय है। (**प्रस्कण्वस्य हवं श्रुधि**। मं. ३) प्रस्कण्व । प्रार्थना सुनो, ऐसा अग्निसे कहा है। इस मन्त्रमें प्रस्क- र्व समयके चार ऋषियोंका उल्लेख है। प्रियमेधा, अत्रि, और अङ्गिरा इन ऋषियोंकी प्रार्थना जैसी सुनी थी, वैसी री (प्रस्कण्वकी) प्रार्थना सुने, यह इस मन्त्रका आशय

यमेध (आंगिरसः) ऋ. ८।२।१–(४०); ६८-); ६९–(१८); ८७–(६); ९।२८–(६) कुलमन्त्र

त्रिः (भौमः) ऋ. ५।२७–(६), ३७–४३–(७९); (५); ७७–(५); ८३–८६–(२७); ९।६७।१०–१२ ; ८६।४१–४५ (५) कुलमंत्र १३०

रूप (आङ्गिरसः) ८।४३–(३३); ४४– (३०); (१६), कुलमंत्र ७९

ङ्गिराः–अङ्गिरा ऋषिके मंत्र अथर्ववेदमें बहुत हैं, इसलिये वेदका नाम ' अङ्गिरोदेवः ' ऐसा हुआ है।

। चार ऋषि प्रस्कण्वके पूर्व समयके प्रतीत होते हैं। क्यों जैसी इनकी प्रार्थना सुनी गयी थी, वैसी मेरी सुनो' ऐसा मंत्रमें कहा है।

ं. ४ में ' **प्रियमेध** ' ऋषिका नाम पुनः आया है। **ङ्गिरवः**' अर्थात् उत्तमसे उत्तम बडे बडे यज्ञकर्म करने- , महान् शुभकर्म करनेवाले प्रियमेध ऋषि जिस तरह **ग्निं ऊतये अहूषत**। मं. ४) अग्निदेवकी सबकी ाके लिये प्रार्थना करते थे, उसी तरह मैं प्रस्कण्व भी उसी की प्रार्थना कर रहा हूं, इसलिये मेरी प्रार्थना सुननी हिये, ऐसा इसका कथन है।

सबकी सुरक्षा, सबकी उन्नति ही प्रार्थनाका विषय होता है। में ' **ऊति** ' शब्द ही प्रमाण है। इसका अर्थ— सुनना, ा, संरक्षण, सुरक्षा, आनंद, मर्दानी खेल, प्रीति, सहायता, ा, कामना, भला करना, शुभ कार्य, उत्साह यह है। में सबकी सुरक्षा, सबकी उन्नति, सबकी भलाईही मुख्य है; ीके बलके लिएही यह सब है और बल तो संगठन कर- लिएही होता है। इसलिये वेदमें जहां ' ऊति ' पद आयेगा वहां ' सबकी संगठनपूर्वक सुरक्षा ' ऐसाही अर्थ लेना चाहिये।

पांचवे मन्त्रमें प्रस्कण्व ऋषि अपना गोत्र कहता है, (**कण्व- स्य सूनवः**। मं. ५) कण्वके पुत्र जिन मंत्रोंसे तुम्हारी प्रार्थना करते थे, वे ही ये मंत्र हैं। (**याभिः हवन्ते इमा गिरः**) जिन वाक्योंसे कण्वके पुत्र प्रभुकी प्रार्थना करते थे, वेही ये मन्त्र हैं। वैसीही प्रार्थनाएं हम करते हैं, इसलिये इनको सुनो। यहां बताया है कि हमने परंपरा नहीं छोडी है, जैसी प्रार्थनाकी परंपरा चली आयी है, वैसीही हमने रखी है। परंपरासे सभ्यता सुरक्षित रहती है, इसलिये परंपराका आदर करना चाहिये। इस मन्त्रमें ' **अवसे** ' पद है, जिसका अर्थ पूर्वोक्त ' ऊति ' के समानही सबकी सुरक्षा, सबकी भलाई, सबकी उन्नति है। इसलिये जैसी प्रार्थना करनेकी रीति पहि- लेसे चली आती है वैसीही प्रार्थना हम कर रहे हैं। इसलिये हे प्रभो! तुम हमारी प्रार्थना सुनो, अर्थात् सबको उन्नत करो।

(**विश्वे जन्तवः हवन्ते** । मं. ६) बडे जनसंमर्दमें बैठे ज्ञानी लोग तेरी प्रार्थना करते हैं। यहां यह मंत्रभाग सामुदायिक उपासनाका वर्णन कर रहा है। (**विश्वे- प्रजासु**) प्रजाजनोंमें, सभामें, बडी परिषदमें बैठे (**जन्तवः**) ज्ञानीजन (**हवन्ते**) प्रभुकी प्रार्थना करते हैं, (**अवसे**) सबकी सुरक्षा तथा उन्नतिके लिये वैसीही प्रार्थना सब करें जायँ।

इस सूक्तका सर्वसाधारण उपदेश यह है।

' **दैव्यं जनं बर्हिः आसादय**। (मं. ९) **यक्षि**। (मं. १०) दिव्य विद्वानोंको आसनोंपर बिठाओ और उनका सत्कार करो। यह एक बडा भारी, अच्छा आदेश इस सूक्तमें दोबार दिया है। सर्व साधारण जनोंकी पूजा नहीं कही, परन्तु दिव्य जनोंकी अर्थात् वैसी योग्यतावाले गुण ज्ञानियोंकेही पूजा यहां कही है। सत्कारोंके ही पूजा समारंभ होनी चाहिये। जहां दुर्जन पूजे जायेंगे, वहां अनर्थ होना इसमें संदेह ही नहीं है।

आदर्श पुरुष

इस सूक्तमें जिस आदर्श पुरुषका वर्णन हुआ है, [illegible] लिखित विशेषणोंसे यह व्यक्त हुआ है—

१ **रोहिदश्वः**– लाल रंगके घोडोंपर [illegible] लाल रंगके घोडे जिसके रथको जोडे हैं,

वच्यन्ते वां ककुहासो जूर्णायामधि विष्टपि	यद् वां रथो विभिष्पतात्	३
हविषा जारो अपां पिपर्ति पपुरिर्नरा	पिता कुटस्य चर्षणिः	४
आदारो वां मतीनां नासत्या मतवचसा	पातं सोमस्य धृष्णुया	५
या नः पीपरदश्विना ज्योतिष्मती तमास्तिरः	तामस्मे रासाथामिषम्	६
आ नो नावा मतीनां यातं पाराय गन्तवे	युञ्जाथामश्विना रथम्	७
अरित्रं वां दिवस्पृथु तीर्थे सिन्धूनां रथः	धिया युयुज्र इन्दवः	८
दिवस्कण्वास इन्दवो वसु सिन्धूनां पदे	स्वं व्रिं कुह धित्सथः	९
अभूदु भा उ अंशवे हिरण्यं प्रति सूर्यः	व्यख्यज्जिह्वयासितः	१०
अभूदु पारमेतवे पन्था ऋतस्य साधुया	अदर्शि वि द्युतिर्दिवः	११

रथः जूर्णायां अधि विष्टपि यत् विभिः पतात्, वां सः वच्यन्ते ॥ ३ ॥

नरा ! पपुरिः पिता कुटस्य चर्षणिः अपां जारः हविषा र्ति ॥ ४ ॥

मतवचसा नासत्या ! वां मतीनां आदारः सोमस्य या पातम् ॥ ५ ॥

अश्विना ! ज्योतिष्मती या तमः तिरः नः पीपरत् तां अस्मे रासाथाम् ॥ ६ ॥

अश्विना ! पाराय गन्तवे मतीनां नावा नः आयातम्। युञ्जाथाम् ॥ ७ ॥

वां दिवः पृथु अरित्रं सिन्धूनां तीर्थे, रथः (भूत्वा), वः धिया युयुज्रे ॥ ८ ॥

हे कण्वासः ! दिवः इन्दवः सिन्धूनां पदे वसु, स्वं व्रिं कुह धित्सथः ॥ ९ ॥

भाः उ अंशवे अभूत् उ। सूर्यः हिरण्यं प्रति, असितः जिह्वया व्यख्यत् ॥ १० ॥

पारं एतवे ऋतस्य पन्थाः साधुया अभूत् उ। दिवः द्युतिः वि अदर्शि ॥ ११ ॥

आप दोनोंका रथ प्रशंसित स्वर्गधाममें जब पक्षियोंके वेगसे दौडता जाता है, (तब) आपकी उत्कृष्ट स्तुतियां कही जाती हैं ॥ ३ ॥

हे नेताओं ! सबको परिपूर्ण करनेवाला, पालक, कृतकर्मका दर्शक, जलोंका शोषक (सूर्यदेव) अन्नसे (आपको) तृप्त करे ॥ ४ ॥

हे स्तुतिप्रिय सत्यवालकों ! आपकी बुद्धियोंका द्वार खोलनेवाले (इस) सोमका (अपनी) शक्तिके अनुसार पान करो ॥५॥

हे अश्विदेवों ! प्रकाश देता हुआ जो हमें अन्धकारके परे पहुंचाता है, वह अन्न हमें प्रदान करो ॥ ६ ॥

हे अश्विदेवों ! (दुःखरूप समुद्रके) पार जानेके लिये बुद्धियोंकी नौकाके साथ हमारे पास आइये। अपने रथको भी जोतो ॥ ७ ॥

तुम्हारा द्युलोकके (समान) विस्तृत नौकास्थान नदियोंके पार होनेके लिये उतारके स्थानपर (खडा है, तुम्हारा) रथ (भूमिपर खडा है। अब तुम) सोमरस (अपनी) बुद्धियोंके किये कर्मके साथ संयुक्त करो ॥ ८ ॥

हे कण्ववंशके उत्पन्नो ! द्युलोकसे (यह) सोमरस (आया है,) सिन्धुओंके स्थानमें यह धन (रखा है, अब आप) देवको, स्वर्गको, कहां रखेंगे ? ॥ ९ ॥

(उषाके) किरण सूर्यके लिये (प्रकाशित) हुए हैं। (इस) सूर्य सुवर्णरूप (ही उषा रखा है। अब आप) किरणों (को छोडकर) उषाओंके प्रकाशित होने रखा है ? ॥ १० ॥

(दुःखके) पार जानेके लिये मार्ग हुआ है। अब (यह) सरल हुआ है। दिव्य ज्योति भी दीखने लगी है ॥ ११ ॥

सोमस्य प्रिपतोः मदे अश्विनोः तत् तत् इत् अवः जरिता प्रति भूषति ॥ १२ ॥

सोमपानके आनन्दमें (किये हुए) अश्विदेवोंके (प्रसिद्ध) संरक्षणके कार्योंकी स्तोता लोग करते हैं ॥ १२ ॥

शंभू ! मनुष्वत् विवस्वति ववसाना, सोमस्य पीत्या गिरा आ गतम् ॥ १३ ॥

हे सुखदायी अश्विदेवों ! (आप दोनों) मेरे स्थानमें जाकर बैठे थे, (वैसेही) सोमपान हमारे द्वारा की गई) स्तुति सुननेके लिये यहां

परिज्मनोः युवोः श्रियं अनु उषाः उपाचरत् । अक्तुभिः ऋता वनथः ॥ १४ ॥

चारों ओर परिभ्रमण करनेवाले तुम दोनोंकी साथ उषा भी आ रही है । रात्रियोंसे सिद्ध किये हविष्यान्नका तुम दोनों) स्वीकार करो ॥ १४ ॥

हे अश्विना! उभा पिबतम् उभा अविद्रियाभिः ऊतिभिः नः शर्म यच्छतम् ॥ १५ ॥

हे अश्विदेवों ! तुम दोनों रसपान करो । तथा अविच्छिन्न संरक्षणोंसे हमें सुख दो ॥ १५ ॥

आदर्श वीर

इस सूक्तमें आदर्श वीरोंका वर्णन है, उनके ये गुण इस सूक्तमें वर्णित हुए हैं—

१ **दस्रौ**— शत्रुका नाश करनेवाले शूरवीर,

२ **सिन्धु-मातरौ**– सिन्धुदेश, सिंधु नदीका देश अथवा नदी प्रदेशको अपनी मातृभूमि माननेवाले,

३ **रयीणां मनोतरौ**— धनोंकी खोज करनेवाले, धनोंका प्रबंध करनेवाले, धनोंसे सम्मान करनेवाले, धनोंके दाता, धनोंके कारण मनोहर,

४ **धिया वसुविदा**– उत्तम कर्म और बुद्धिके अनुकूल धन या स्थान देनेवाले, (मं. २)

५ **मतवचसौ**– मननपूर्वक मननीय भाषण करनेवाले,

६ **नासत्यौ** (न-अ-सत्यौ)–कभी असत्य भाषण या अयोग्य कर्म न करनेवाले, (मं. ५)

७ **अश्विनौ**– घोडोंकी पालना करनेवाले (मं. ७)

८ **शं-भू**– सुख देनेवाले, (मं. १३)

९ **परि-ज्मानौ**– चारों ओर परिभ्रमण करके सबकी स्थितिका निरीक्षण करनेवाले, (मं. १४)

इनमें '**सिन्धु-मातरौ**' यह पद इन वीरोंके जन्मस्थानकी सूचना देता है । 'सिन्धु' पदसे आजके सिंधदेशकी ही कल्पना करनी चाहिये ऐसी कोई बात नहीं है। नदीके पासका कोई प्रदेश होगा ।

वीरोंके वाहन

इस सूक्तमें अश्विदेवोंके विमानका स्पष्ट उल्लेख है।

१ **वां रथः अधि विष्टपि विभिः पतात्**– दोनोंका रथ आकाशमें पक्षियोंसे उडता जाता है। पदसे तीन या तीनसे अधिक पक्षियोंका बोध होता है। नको पक्षी जोते जाते थे, ऐसा इससे पता लगता है। गीध आदि पक्षी हैं और उत्तरी ध्रुवके पास इनके प्रतिघण्टेमें ३०० मीलोंके वेगसे उडनेवाले पक्षी हैं। पक्षी जोते जाते होंगे । (मं. ३)

२ **वां दिवः पृथु अस्त्रिं सिन्धूनां युयुज्रे**– आपका द्युलोकके समान विस्तृत आरोंसे जानेवाला रथ नदियोंके उतारके स्थानपर सज्ज होता है । यहांका ' अस्त्रि ' पद बता रहा है कि यह अन्य स्थानोंके वर्णनोंसे पता ऐसा लगता है कि रथ आकाशमें विमानोंके समान, जलमें नौकाके समान भूमिपर रथके समान चल सकता था । जलमें आरोंसे जाता था, भूमिपर घोडोंसे और आकाशमें वेगवान् । ' **तीर्थ** ' का अर्थ ' उतारका स्थान ' है । (मं. ८)

अश्विना मधुमत्तमं पातं सोममृतावृधा ।
अथाद्य दस्रा वसु विभ्रता रथे दाश्वांसमुप गच्छतम् ३
त्रिपधस्थे बर्हिषि विश्ववेदसा मध्वा यज्ञं मिमिक्षतम् ।
कण्वासो वां सुतसोमा अभिद्यवो युवां हवन्ते अश्विना ४
याभिः कण्वमभिष्टिभिः प्रावतं युवमश्विना ।
ताभिः ष्वस्माँ अवतं शुभस्पती पातं सोममृतावृधा ५
सुदासे दस्रा वसु विभ्रता रथे पृक्षो वहतमश्विना ।
रयिं समुद्रादुत वा दिवस्पर्यस्मे धत्तं पुरुस्पृहम् ६
यन्नासत्या परावति यद् वा स्थो अधि तुर्वशे ।
अतो रथेन सुवृता न आ गतं साकं सूर्यस्य रश्मिभिः ७
अर्वाञ्चा वां सप्तयोऽध्वरश्रियो वहन्तु सवनेदुप ।
इषं पृञ्चन्ता सुकृते सुदानव आ बर्हिः सीदतं नरा ८

हे ऋतावृधा ! मधुमत्तमं सोमं पातम् । हे दस्रा अश्विना ! अथ अद्य रथे वसु बिभ्रता दाश्वांसं उप गच्छतम् ॥ ३ ॥

हे विश्ववेदसा ! त्रिपधस्थे बर्हिषि मध्वा यज्ञं मिमिक्षतम् । हे अश्विना ! वां सुतसोमाः अभिद्यवः कण्वासः युवां हवन्ते ॥ ४ ॥

हे अश्विना ! युवं याभिः अभिष्टिभिः कण्वं प्र अवतम् । हे शुभः पती ! ताभिः अस्मान् सु अवतम् । हे ऋतावृधा ! सोमं पातम् ॥ ५ ॥

हे दस्रा अश्विना ! सुदासे रथे वसु बिभ्रता पृक्षः वहतम् । समुद्रात् उत वा दिवः परि पुरुस्पृहं रयिं अस्मे धत्तम् ॥ ६ ॥

हे नासत्या ! यत् परावति स्थः, यत् वा अधि तुर्वशे (स्थः), अतः सूर्यस्य रश्मिभिः साकं सुवृता रथेन नः आ गतम् ॥ ७ ॥

अध्वरश्रियः सप्तयः सवना इत् उप अर्वाञ्चा वां वहन्तु ।

हे नरा ! सुकृते सुदानवे इषं पृञ्चन्ता बर्हिः आ सीदतम् ॥ ८ ॥

हे सत्यके संवर्धक देवों ! अत्यंत मधुर सोमरस पीओ । हे शत्रुनाशक अश्विदेवों ! और आज रथमें धन धारण कर दाताके पास आओ ॥ ३ ॥

हे सर्वज्ञाता ! तीन स्थानोंमें (फैलाये हुए कुशोंपर) मधुररससे यज्ञको भरपूर करो । हे अश्विदेवो ! तुम दोनोंके लिये सोमरस निकालकर तेजस्वी स्तोता बुला रहे हैं ॥ ४ ॥

हे अश्विदेवों ! तुम दोनोंने जिन अभीष्ट साधनोंसे कण्वकी सुरक्षा की थी, हे शुभके पालनकर्ता ! उन साधनोंसे सुरक्षा करो । हे सत्यके रक्षकों ! सोमरस पीओ ॥ ५ ॥

हे शत्रुविनाशक अश्विदेवों ! सुदासके लिये रथमें धन रखकर (तुमने लाया था और) अन्न भी लाये थे, समुद्रसे अथवा आकाशसे अत्यंत प्रशंसनीय धन हमारे लिये लाकर दो ॥ ६ ॥

हे सत्यके पालकों ! यदि तुम दूर हो, अथवा अत्यंत समीप (ही हो, वहांसे) सूर्यके किरणोंके साथ अपने सुंदर रथसे हमारे पास आओ ॥ ७ ॥

हिंसारहित कर्मकी शोभा बढानेवाले घोडे तुम्हारे पास तुम्हें ले जाँय । हे नेता वीरों ! उत्तम कर्म करनेवाले दाताके लिये अन्न देते हुए (तुम दोनों) आकाशमें बैठो ॥ ८ ॥

तेन नासत्या गतं रथेन सूर्यत्वचा ।
येन शश्वदूहथुर्दाशुषे वसु मध्वः सोमस्य पीतये ९
उक्थेभिर्वागवसे पुरूवसू अर्कैश्च नि ह्वयामहे ।
शश्वत् कण्वानां सदसि प्रिये हि कं सोमं पपथुरश्विना १०

नासत्या ! सूर्यत्वचा तेन रथेन आ गतम् । येन दाशुषे [वसु मध्वः सोमस्य पीतये ऊहथुः ॥९॥

रूवसू अवसे उक्थेभिः अर्कैः च अर्वाक् नि ह्वयामहे । हे ना ! कण्वानां प्रिये सदसि शश्वत् कं सोमं पपथुः हि १०

हे सत्यपालकों ! सूर्यके समान तेजस्वी रथसे आओ । जिससे दाताके लिये सदा धन (देनेके लिये और) मधुर सोमरस पीनेके लिये (तुम दोनों) लाये जाते हैं ॥ ९ ॥

बहुत धनवाले (आप दोनोंकी हम अपनी) सुरक्षाके लिये स्तोत्रों और काव्योंसे स्तुति करते हैं । हे अश्विदेवों ! कण्वोंकी प्रिय सभामें सदा आनन्ददायक सोमका पान तुमने किया ही है ॥ १० ॥

सूक्तका ऋषि

इस सूक्तमें सूक्तकर्ता ऋषिका और उसके पूर्वजोंका वर्णन है, वह देखिये—

कण्वासः वां ब्रह्म कृण्वन्ति (मं. २)- कण्वपुत्र या गोत्रमें उत्पन्न ऋषि तुम्हारा स्तोत्र करते हैं । यहां (कृण्वन्ति) 'करते हैं' पद है ।

सुतसोमाः कण्वासः युवां हवन्ते (मं. ४)- सोम निकालकर कण्वगोत्रके ऋषि तुम्हें बुलाते हैं, तुम्हारी स्तुति करते हैं ।

कण्वानां सदसि सोमं पपथुः (मं. १०)- कण्वोंकी सोमपान तुम दोनोंने किया था ।

युवं कण्वं प्रावतं (मं. ५)- तुम दोनोंने कण्वकी सुरक्षा की थी ।

इस तरह कण्व ऋषिका और कण्वके गोत्रमें उत्पन्न हुए ऋषियोंका उल्लेख इस सूक्तमें है ।

वीरोंके गुण

इस सूक्तमें आये हुये वीरोंके गुणोंका विवरण इससे पूर्व हो चुका है, इसलिये उसके दुहरानेकी कोई आवश्यकता नहीं है । **नासत्यौ**= सत्यको, यज्ञको फैलानेवाले, **अश्विनौ**= घोडोंको तैयार रखनेवाले (मं. १), **शुभस्पती**= शुभ कार्य करनेवाले, (मं. ५), **विश्ववेदसौ**=सब ज्ञान जाननेवाले, विद्वान्, बहुधनी, (मं. ४), **दसौ**= शत्रुविनाशक, (मं. ६), **नासत्यौ** = सबके पालनकर्ता (मं. ७), **नरौ** = नेता (मं. ८), **पुरुवसू**= बहुतोंको बसानेवाले (मं. १०) ये गुण यहां प्रमुखस्थान रखते हैं ।

सोमरस

' तिरो-अह्नयं सोमं पिवतं ' (मं. १) = कल निचोडा हुआ सोमरस पीओ। इससे पता लगता है कि सोमसे रस निकालकर १२ या २४ घण्टे हो जानेके बाद भी वह पीया जाता था। उसी समय पीया जाता था और कलका आज भी पीया जाता था । **' मधुमत्तम '** (मं. ३) उसमें = शहद मिलाया जाता था, अति मधुर बनाया जाता था। **'मध्वा यज्ञं मिमिक्षतं ।'** (मं. ४)= इसकी मधुरिमासे यज्ञ भरपूर हो। अर्थात् याजकोंको भरपूर मीठा रस पीनेके लिये मिले और उपस्थित देवोंको भी मिले

रथ

अश्विदेवोंके रथमें (**त्रि-बन्धुरः** । मं. २) तीन स्थानोंपर तीन बैठकें, तीन वीर बैठनेके लिये तीन स्थान थे। (**त्रिवृतः** मं. २) तीन वेष्टनोंसे वह रथ वेष्टित था। तीन चर्मोंके वेष्टन, अथवा सबसे बाहरका वेष्टन सोने चांदीका भी होता था। गैंडेका चर्म भी अधिक सुरक्षाके लिये बर्ता जाता था । (**सुपेशसा**) उस रथपर सुन्दर चमक दमक रहती थी। (**सुवृतः** । मं. ७) अच्छी तरह कवचसे वेष्टित होनेसे रथ सुरक्षित रहता था (**सप्तयः वहन्तु** । मं. ८) रथको घोडे आगे आगे ले जाते थे । (**सूर्यत्वचा** । मं. ९) सूर्यके समान सुनहरी चमक रथपर रहती थी । इससे स्पष्ट होता है कि वह रथ बडी सावधानीसे बनाया जाता था ।

अध्वरः

यहां यज्ञका नाम ' अ-ध्वर ' आया है जिसमें हिंसा, कुटिलता, कपट, छल, मिथ्याचार, ढोंग न हो वही यज्ञका वर्णन यहां किया है। अर्थात् हिंसा न अध्वर कहलाता है।

(१७) उषा

(ऋ. १।४८) प्रस्कण्वः काण्वः। उषाः। प्रगाथः=विषमा बृहत्यः, समाः सतोबृहत्यः।

सह वामेन न उषो व्युच्छा दुहितर्दिवः।
सह द्युम्नेन बृहता विभावरि राया देवि दास्वती १
अश्वावतीर्गोमतीर्विश्वसुविदो भूरि च्यवन्त वस्तवे।
उदीरय प्रति मा सूनृता उषश्चोद राधो मघोनाम् २
उवासोषा उच्छाच्च नु देवी जीरा रथानाम्।
ये अस्या आचरणेषु दध्रिरे समुद्रे न श्रवस्यवः ३
उषो ये ते प्र यामेषु युञ्जते मनो दानाय सूरयः।
अत्राह तत् कण्व एषां कण्वतमो नाम गृणाति नृणाम् ४
आ घा योषेव सूनर्युषा याति प्रभुञ्जती।
जरयन्ती वृजनं पद्वदीयत उत्पातयति पक्षिणः ५

अन्वयः— हे दिवः दुहितः उषः ! नः वामेन सह वि उच्छ। हे विभावरि ! बृहता द्युम्नेन सह (वि उच्छ)। हे देवि ! दास्वती राया (वि उच्छ) ॥ १ ॥

अश्वावतीः गोमतीः विश्व-सुविदः (उषाः) वस्तवे भूरि च्यवन्त। हे उषः। मा प्रति सूनृताः उदीरय। मघोनां राधः चोद ॥ २ ॥

रथानां जीरा, अस्याः आचरणेषु ये दध्रिरे, श्रवस्यवः समुद्रे न, उषाः देवी उवास, च नु उच्छात् ॥ ३॥

हे उषः ! ते यामेषु ये सूरयः दानाय मनः प्र युञ्जते, एषां नृणां तत् नाम कण्वतमः कण्वः अत्र अह गृणाति ॥४॥

वृजनं जरयन्ती उषाः प्रभुञ्जती आ याति घ। सूनरी योषा इव। पद्वत् ईयते, पक्षिणः उत् पादयति ॥ ५ ॥

अर्थ— हे द्युलोककी पुत्री उषा। हमारे पास सुख साथ प्रकाशित हो। हे तेजस्वी उषा ! बडे प्रकाश (प्रकाशित हो), हे देवी ! दातृत्व गुणके साथ (प्रकाशित हो) ॥ १ ॥

घोडों, गौओं और सब धनोंके साथ (रहनेवाली सबके उत्तम निवासके लिये बहुत रीतिसे प्रकट होती उषा ! मेरे लिये सत्ययुक्त होकर उदित हो। धनवानोंके (हमारे पास) प्रेरित कर ॥ २ ॥

रथोंको प्रेरणा करनेवाली (उषा है), अतः इसके ये (रथ वैसे) आगे बढाये जाते हैं, जैसे धनके वीर समुद्रमें नौका छोडते हैं। यह उषा (जैसी प्रकाशित होती रही (वैसी भविष्यमें भी) प्रकाशित रहेगी ॥ ३ ॥

हे उषा ! तेरे आगमन होनेपर ज्ञानी लोग अपना मन लगा देते हैं, उन (दानी) मनुष्योंका यह (यशस्वी) कण्वोंमें विद्वान् कण्व ऋषि यहां (उषःकालमेंही) लेता

पापका नाश करनेवाली, उषा देवी, (सबको) हुई आती है। जैसी साध्वी स्त्री (घरका पालन पांववालोंको चलाती है, और पक्षियोंको उडाती है ॥ ५ ॥

वि या सृजति समनं व्यर्थिनः पदं न वेत्योदती ।
वयो नकिष्टे पप्तिवांस आसते व्युष्टौ वाजिनीवति ६

एषायुक्त परावतः सूर्यस्योदयनादधि ।
शतं रथेभिः सुभगोषा इयं वि यात्यभि मानुषान् ७

विश्वमस्या नानाम चक्षसे जगज्ज्योतिष्कृणोति सूनरी ।
अप द्वेषो मघोनी दुहिता दिव उषा उच्छदप स्रिधः ८

उष आ भाहि भानुना चन्द्रेण दुहितर्दिवः ।
आवहन्ती भूर्यस्मभ्यं सौभगं व्युच्छन्ती दिविष्टिषु ९

विश्वस्य हि प्राणनं जीवनं त्वे वि यदुच्छसि सूनरि ।
सा नो रथेन बृहता विभावरि श्रुधि चित्रामघे हवम् १०

उषो वाजं हि वंस्व यश्चित्रो मानुषे जने ।
तेना वह सुकृतो अध्वराँ उप ये त्वा गृणन्ति वह्नयः ११

॥ समानं वि सृजति, अर्थिनः वि (सृजति), नोदती न वेति । हे वाजिनीवति ! ते व्युष्टौ पप्तिवांसः वयः नः आसते ॥ ६ ॥

एषा शतं अयुक्त । सुभगा इयं उषाः परावतः सूर्यस्य उदयात् अधि मानुषान् अभि रथेभिः वि याति ॥ ७ ॥

विश्वं जगत् अस्याः चक्षसे ननाम । सूनरी ज्योतिः कृणोति । मघोनी दिवः दुहिता उषाः द्वेषः अप उच्छत् स्रिधः (उच्छत्) ॥ ८ ॥

हे दिवः दुहितः उषः ! चन्द्रेण भानुना दिविष्टिषु भूरि भगं अस्मभ्यं आवहन्ती व्युच्छन्ती आ भाहि ॥ ९ ॥

हे सूनरि ! विश्वस्य प्राणनं जीवनं त्वे हि, यत् वि उच्छसि । हे विभावरि ! सा (त्वं) नः बृहता रथेन (आ वहि) । हे चित्रामघे ! (नः) हवं श्रुधि ॥ १० ॥

हे उषः ! यः चित्रः मानुषे जने (तं) वाजं हि वंस्व । ये वह्नयः त्वा गृणन्ति (तान्) सुकृतः अध्वरान् उप वह ॥ ११ ॥

जो समान (कर्मचारी) को बाहर (कर्म करनेके लिये) निकालती है, धन चाहनेवालोंको (भी बाहर लाती है) । यह जलयुक्त उषा (क्षणभर भी) विश्राम नहीं करती । हे धन-युक्त देवी । तेरे उदय होनेपर उड सकनेवाले पक्षी (अपने घोंसलोंमें) नहीं बैठते ॥ ६ ॥

यह (उषा) सैकडों रथोंको जोतती है । यह धनवाली उषा देवी दूरसे सूर्यके उदयस्थानसे मनुष्योंके पास रथोंके साथ आती है ॥ ७ ॥

सब जगत् इस (उषा)के प्रकाशके लिये प्रणाम करता है । (क्योंकि यही) उत्तम प्रेरणा करनेवाली ज्योति (प्रकाश) करती है । धनवाली द्युलोककी पुत्री उषा द्वेष करनेवालोंको दूर करती है, और हिंसक शोषकोंको भी (दूर भगाती है ॥ ८ ॥

हे द्युलोककी पुत्री उषा देवी ! आह्लाददायक प्रकाशके साथ यहाँमें अखण्ड सौभाग्य हमें देती हुई, और अन्धकारको दूर करती हुई प्रकाशित हो ॥ ९ ॥

हे उत्तम नेत्री ! सबका प्राण और जीवन तुम्हारेमेंही है, क्योंकि (तुम) अन्धकारको दूर करती हो । हे तेजस्विनी ! वह (तुम) हमारे पास बडे रथसे (आओ) । हे विलक्षण धनवाली ! (हमारी) प्रार्थना सुनो ॥ १० ॥

हे उषा ! जो विलक्षण (अश्व) मनुष्यके पास है, उसे तुम स्वीकार करो । और जो आगे तुम्हें स्वीकारते हैं उनके द्वारा यहां उत्तम रीतिसे किये यज्ञोंको वहन करो ॥ ११ ॥

विश्वान् देवाँ आ वह सोमपीतयेऽन्तरिक्षादुपस्त्वम् ।
सास्मासु धा गोमदश्वावदुक्थ्यमुषो वाजं सुवीर्यम् ११
यस्या रुशन्तो अर्चयः प्रति भद्रा अदृक्षत ।
सा नो रयिं विश्ववारं सुपेशसमुषा ददातु सुग्म्यम् १३
ये चिद्धि त्वामृषयः पूर्व ऊतये जुहूरेऽवसे महि ।
सा नः स्तोमाँ अभि गृणीहि राधसोषः शुक्रेण शोचिषा १३
उषो यदद्य भानुना वि द्वारावृणवो दिवः ।
प्र नो यच्छतादवृकं पृथु च्छर्दिः प्र देवि गोमतीरिषः १५
सं नो राया बृहता विश्वपेशसा मिमिक्ष्वा समिळाभिरा ।
सं द्युम्नेन विश्वतुरोषो महि सं वाजैर्वाजिनीवति १६

हे उषः ! त्वं सोमपीतये अन्तरिक्षात् विश्वान् देवान् आ वह । हे उषः ! सा (त्वं) गोमत् अश्वावत् उक्थ्यं सुवीर्यं वाजं अस्मासु धाः ॥ १२ ॥

यस्याः अर्चयः रुशन्तः भद्राः प्रति अदृक्षत, सा उषाः नः विश्ववारं सुपेशसं सुग्म्यं रयिं ददातु ॥ १३ ॥

हे महि ! त्वां ये चित् हि पूर्वे ऋषयः ऊतये अवसे जुहूरे। हे उषः ! सा (त्वं) राधसा शुक्रेण शोचिषा नः स्तोमान् अभि गृणीहि ॥ १४ ॥

हे उषः ! अद्य यत् भानुना दिवः द्वारौ वि ऋणवः, नः अवृकं पृथु च्छर्दिः प्र यच्छतात् । हे देवि ! गोमतीः इषः प्र (यच्छतात्) ॥ १५ ॥

हे उषः ! नः बृहता विश्वपेशसा राया सं मिमिक्ष्व । इळाभिः आ सं (मिमिक्ष्व)। हे महि ! विश्वतुरा द्युम्नेन सं (मिमिक्ष्व)। हे वाजिनीवति ! वाजैः सं (मिमिक्ष्व) ॥ १६ ॥

हे उषे ! (तुम) सोमपानके लिये अन्तरिक्षसे ले आओ । हे उषा ! गौओं और घोड़ोंसे युक्त उत्तम वीर्य बढानेवाले अन्नको हम सबमें धारण

जिसकी ज्योतियां प्रकाशित और कल्याण- हैं, वह उषा हमारे लिये सब प्रकार वरणीय उत्तम दायी धन देवे ॥ १३ ॥

हे बडी उषा ! तुम्हें जिन प्राचीन ऋषियोंने के लिये और पालनके लिये बुलाया था। हे तू पवित्र तेजसे युक्त सिद्धिके साथ हमारे स्तोत्रों कर ॥ १४ ॥

हे उषा ! आज अपने तेजसे खुलोकके दोनों द्वारों दिया है । इसलिये हमें क्रूरतारहित विस्तृत धा हे देवी ! गौओंसे युक्त अन्न (हमें दो) ॥१५॥

हे उषा ! हमें बडे अनेक रूपोंवाले धनसे युक्त हमें (दो)। हे पूजनीय उषा ! सब शत्रुओंसे दो। हे बलवाली उषा ! हमें बल दो ॥१६॥

उषाके साथ गौवें

इस सूक्तमें उषाका उत्तम काव्यमय वर्णन है। जो पाठक अर्थावबोधपूर्वक इसका पाठ करेंगे, वेही इस काव्यकी रमणीयताको जान सकते हैं। उषाके साथ गौवों और घोडोंके वर्णनका वर्णन इस सूक्तमें है–

१ अश्वावतीः गोमतीः (मं. १)– घोडों और गौवोंसे युक्त उषा है।

२ रथानां जीरा (मं. १)— रथोंको प्रेरणा करनेवाली उषा है,

३ पशुं न इयते, पक्षिणः उत् पातयति (मं. पांववाले प्राणियोंको–मनुष्यों और पशुओंको- प्रेरित करती है, पक्षियोंको उडनेके लिये उत्साहित

४ समनं अर्थिनः वि सृजति (मं. चाहनेवाले उद्यमी पुरुषोंको कर्म करनेके लिये प्रेरित

५ पतिवांसः वयः नकिः आसते (मं. पंखवाले पक्षी अपने घोसलोंमें नहीं ठहरते।

६ एषा शतं अयुक्त, रथेभिः वि याति (मं. यह उषा सैकडों रथोंको जोडती और रथोंसे

गोमत् अश्वावत् वाजं धाः (मं. १२)- गौओं घोडोंसे युक्त अन्न हमें दो ।

गोमतीः इषः प्र यच्छतात् (मं. १५)- गौओंसे अन्न हमें दो ।

इ गौवें, घोडे, रथ, पक्षी, पशु, कर्मचारी ये सब उषाके रहते हैं ऐसा वर्णन है। अर्थात् उषःकालमें गौवें के लिये गोशालासे खुली की जाती हैं, वे हम्भारव करती गरसे वनमें जाती हैं, घोडे भी इसी तरह जाते हैं और था अन्य पशु भी। पक्षी अपने घोसलोंको छोडकर भक्ष्य के लिये आकाशमें उडते है, वीर अपने रथोंको जोतकर दूर अपने कार्य करने जाते हैं, कर्मचारी अपने अपने काम के लिये जानेकी तैयारी करते हैं, इस तरह उषाके साथ विश्व जाग उठता और अपने कर्ममें लग जाता है।

उषःकालमें ऐसाही होता है। यह उषःकालका ाक काव्यमय वर्णन है। उषःकालमें उठकर अपने : करनेसे सबको धन, रत्न आदि मिलते हैं।

दान धर्म

सूरयः मनः दानाय प्रयुञ्जते (मं. ४)- ज्ञानी जन मन दान देनेके कार्योंमें लगाते हैं अर्थात् उषःकालसे र्म और यज्ञ शुरू होते हैं।

नामजप

० कण्वतमः कण्वः नाम गृणाति (मं. ४)- ाह्मणोंमें जो विशेष विद्वान् है, वह श्रेष्ठ पुरुषोंके नामका करता है।

हां 'नामजप' का भी वर्णन है और श्रेष्ठसे श्रेष्ठ कण्व वंशज ी नाम है। इससे स्पष्ट है कि कण्वगोत्रमें कई ऋषि बडे भारी विद्वान् हुए थे और कई साधारण थे।

उषाको प्रणाम

११ विश्वं जगत् अस्याः चक्षसे ननाम (मं. ८)- सब विश्व इस उषाके दृश्यको नमस्कार करता है, सूर्यको प्रणाम करता है।

सूर्य, उषा आदि देवताओंको उदयके समय नमस्कार करनेकी वैदिक प्रथा यहां दिखाई देती है। आज भी उदयके समय सूर्यको प्रणाम करनेवाले हिंदुओं और पार्सीयोंमें बहुत हैं। दीप लगातेही दीपको प्रणाम करते हैं। नदी, सागर आदिको प्रणाम करते हैं। इस मंत्रमें उषाको प्रणाम करनेकी रीतिका उल्लेख है।

शत्रुको दूर करना

१२ उषाः द्वेषः स्निधः अप उच्छत् (मं. ८)- उषा शत्रुओं, हिंसकोंको दूर करती है। अर्थात् रात्रीके समय चोर-डाकू, लुटेरे, घातक घूमते रहते हैं, उषःकाल होतेही वे अपने गुप्त स्थानमें जाकर छिपकर रहते हैं। इस तरह उषा इनको दूर करती है।

पूर्व ऋषि

१३ त्वां (उषसं) पूर्वे ऋषयः जुहूरे (मं. १४)— प्राचीन ऋषियोंने उषाका काव्य किया था। वैसाही काव्य हम कर रहे हैं, अतः—

१४ नः स्तोमान् अभि गृणीहि (मं. १४)- हमारे स्तोत्रोंको भी सुनो और उनकी प्रशंसा करो।

यहां जैसा पूर्व ऋषियोंने उषा देवताका काव्य किया था वैसा हम नूतन ऋषि भी स्तोत्र कर रहे हैं ऐसा कहा है।

इस सूक्तके अन्यभाव मंत्रोंके अर्थमें स्पष्ट हुए हैं।

(१८) उषा

(ऋ. १।४९) प्रस्कण्वः काण्वः । उषाः । अनुष्टुप् ।

उषो भद्रेभिरा गहि दिवश्चिद् रोचनादधि । वहन्त्वरुणप्सव उप त्वा सोमिनो गृहम् १

अन्वयः- हे उषः भद्रेभिः दिवः चित् रोचनात् आ-हि । अरुणप्सवः सोमिनः गृहं त्वा उप वहन्तु ॥ १ ॥

अर्थ- हे उषा ! कल्याणकारक तुलोकके तेजस्वी मार्गसे (यहां) आओ। अरुण रंगवाले किरण (घोडे या गौवें) सोमयाजकके घरमें तुम्हें ले आवें ॥ १ ॥

सुपेशसं सुखं रथं यमध्यस्था उषस्त्वम् । तेना सुश्रवसं जनं प्रावाद्य दुहितर्दिवः ॥ २ ॥
वयश्चित् ते पतत्रिणो द्विपच्चतुष्पदर्जुनि । उषः प्रारन्नृतूँरनु दिवो अन्तेभ्यस्परि ॥ ३ ॥
व्युच्छन्ती हि रश्मिभिर्विश्वमाभासि रोचनम् । तां त्वामुषर्बुधो वसूयवो गीर्भिः कण्वा अहूषत ॥ ४ ॥

हे उषः ! त्वं यं सुपेशसं सुखं रथं अध्यस्थाः । हे दिवः दुहितः ! तेन अद्य सुश्रवसं जनं प्र अव ॥ २ ॥

हे अर्जुनि उषः ! ते ऋतून् अनु द्विपत् चतुष्पत् पतत्रिणः वयः चित् दिवः अन्तेभ्यः परि प्र अरन् ॥ ३ ॥

हे उषः ! व्युच्छन्ती रश्मिभिः विश्वं रोचनं आ भासि । हि तां त्वां वसूयवः कण्वा गीर्भिः अहूषत ॥ ४ ॥

हे उषा ! तुम जिस सुन्दर सुखदायी रथ द्युलोककी पुत्री ! उससे आज सुश्रवस करो ॥ २ ॥

हे शुभ्र वर्णवाली उषा ! तेरे (आ द्विपाद मानव, चतुष्पाद पशु और उड़ने अन्ततक गमन करते हैं (और अपने कर्म हैं) ॥ ३ ॥

हे उषा ! अन्धकारको दूर करती हुई तुम जगत्को प्रकाशित करती हो। धनकी इच्छ अपने स्तोत्रोंसे उस तुम्हारा यश गाते हैं।

ऋषिनाम

इस सूक्तके अन्तिम मंत्रमें ऋषिनामका उल्लेख है- 'कण्वाः गीर्भिः अहूषत (मं. ४)' कण्व ऋषि अपनी वाणियोंसे उषाके काव्य गाते हैं।

'अर्जुनि उषः '(मं. ३)- श्वेत वर्णवाली उषा। प्रातः- कालकी उषाकाही वर्णन है। श्वेतवर्ण दिनका है वह जिसमें क्षण क्षणमें अधिकाधिक मिलता जाता है वह भी उषा है।

इस समय मनुष्य, पशु, पक्षी, अपने अपने हैं। यह भी प्रभात समयही है। इसके विरुद्ध यमें होता है। पशु पक्षी घोसलोंमें आते हैं, मनु हैं, अपने कार्योंसे शामके समय निवृत्त होते हैं।

(१९) सूर्यसे आरोग्य

(ऋ. १।५०) प्रस्कण्वः काण्वः। सूर्यः (११-१३ रोगघ्न्य उपनिषदः, १३ अन्त्योऽर्धर्चः द्विपदाऽनु गायत्री, १०-१३ अनुष्टुप्।

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् १
अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः । सूराय विश्वचक्षसे २
अदृश्रमस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु । भ्राजन्तो अग्नयो यथा ३

अन्वयः— केतवः त्यं जातवेदसं देवं सूर्यं विश्वाय दृशे उदु वहन्ति ॥ १ ॥

त्ये तायवः यथा, नक्षत्रा अक्तुभिः, विश्वचक्षसे सूराय अप यन्ति ॥ २ ॥

अस्य केतवः रश्मयः जनान् अनु वि अदृश्रम्, यथा भ्राजन्तः अग्नयः ॥ ३ ॥

अर्थ— किरण उस वेदके प्रकाशक दिव्य सूर्य दर्शन करानेके लिये ऊपर उठाते हैं ॥ १ ॥

चोरोंके समान, वे नक्षत्र रात्रीके साथ, (आगमन होनेपर) दूर भाग जाते हैं ॥ २ ॥

इस (सूर्यके सूचक) किरण लोगोंको अनुकूल निरीक्षण करके देखते हैं। वे तेजस्वी अग्नि जैसे

तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य	। विश्वमा भासि रोचनम्	४
प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषान्	। प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे	५
येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु	। त्वं वरुण पश्यसि	६
वि द्यामेषि रजस्पृथ्वहा मिमानो अक्तुभिः	। पश्यञ्जन्मानि सूर्य	७
सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य	। शोचिष्केशं विचक्षण	८
अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः	। ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः	९
उद् वयं तमसस्परि ज्योतिष्पश्यन्त उत्तरम्	। देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्	१०
उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम्	। हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय	११
शुकेषु मे हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि	। अधो हारिद्रवेषु मे हरिमाणं नि दध्मसि	१२

र्य ! (त्वं) तरणिः विश्वदर्शतः ज्योतिष्कृत् असि । विश्वं आ भासि ॥ ४ ॥

र) देवानां विशः प्रत्यङ् उत् एषि । मानुषान् प्रत्यङ्,) विश्वं स्वः दृशे (प्रत्यङ् उत् एषि) ॥ ५ ॥

ावक वरुण ! त्वं जनान् भुरण्यन्तं येन चक्षसा अनु र ॥ ६ ॥

सूर्य ! (त्वं) पृथु रजः द्यां, अहा अक्तुभिः मिमानः, नि पश्यन् वि एषि ॥ ७ ॥

विचक्षण सूर्य देव ! सप्त हरितः शोचिष्केशं त्वा रथे व ॥ ८ ॥

ः रथस्य नप्त्यः शुन्ध्युवः सप्त अयुक्त । ताभिः स्वयु- ः याति ॥ ९ ॥

वं उत्तरः परि ज्योतिः, उत्तरं देवत्रा देवं सूर्यं पश्यन्तः, र ज्योतिः उत् अगन्म ॥ १० ॥

सूर्य मित्रमहः ! अद्य उद्यन्, उत्तरां दिवं आरोहन्, द्रोगं हरिमाणं च नाशय ॥ ११ ॥

रे हरिमाणं शुकेषु रोपणाकासु दध्मसि । अधो हारिद्रवेषु रिमाणं वि दध्मसि ॥ १२ ॥

हे सूर्य ! (तू आकाशमें) तैरता है, सबका दर्शन करता है, प्रकाशको फैलाता है। दीप्तिमान् विश्वको भी प्रकाशित करता है ॥ ४ ॥

(तुम) देवोंकी प्रजाके सामने उदित होते हो। मनुष्योंके सामने, (तथा) सब प्रकाशके दर्शन होनेके लिये प्रत्यक्ष उदित होते हो ॥ ५ ॥

हे पवित्रता करनेवाले वरणीय देव ! तुम सब जनोंको और इस गतिमान् जगत्को जिस प्रकाशसे (कृपासे) देखते हो, (वही हम चाहते हैं) ॥ ६ ॥

हे सूर्य ! (तुम) विस्तृत रजोलोकसे और द्युलोकसे, दिनसको रात्रियोंके साथ नापन करते हुए और सबके जन्मोंका निरीक्षण करते हुए जाते हैं ॥ ७ ॥

हे प्रकाशक सूर्य देव ! सात किरणरूप घोड़े, शुद्ध किरणवाले तुम्हें रथमें उठाकर ले जाते हैं ॥ ८ ॥

सूर्यके रथको ले जानेवाली, शुद्धि करनेवाली सात (घोड़ियोंको रथके साथ) जोत दिया है। उन स्वयं जोती हुई (घोड़ियोंसे सूर्यदेव) जाते हैं ॥ ९ ॥

हम सब अन्धकारसे ऊपर उठी ज्योतिको (देखकर), उससे भी अधिक तेजस्वी देव सूर्यको देखते हुए, अन्तमें उत्कृष्ट ज्योतिको प्राप्त करते हैं ॥ १० ॥

हे मित्रसदृश महनीय सूर्य ! तू आज उदित होता हुआ, उत्तर दिशाके द्युलोकपर चढ़ता हुआ, मेरे हृदयरोग और पीलक रोगका नाश कर ॥ ११ ॥

तू मेरा हरिमा (पीलक) रोग शुक (तोते) नाम के वृक्षोंमें तथा रोपणाकाओंमें रख देता है। और दूर वृक्षोंपर मेरे हरिमा रोगको रख देता है ॥ १२ ॥

उदगादयमादित्यो विश्वेन सहसा सह । द्विषन्तं मह्यं रन्धयन् मो अहं

अयं आदित्यः विश्वेन सहसा सह उत् अगात् । मह्यं द्विषन्तं रन्धयन्, अहं द्विषते मो रधम् ॥ १३ ॥

यह सूर्य सब बलके साथ उदित हुआ शत्रुका नाश करे, पर मैं अपने द्वेषीके वश (ऐसा भी वही करे) ॥ १३ ॥

सूर्यकिरणोंसे रोगोंकी चिकित्सा

इस सूक्तका देवता सूर्य है और सूर्यकिरणोंसे रोग दूर करनेकी सूचना इस सूक्तमें है । विशेष कर हृद्रोग, हृदयकी दुर्बलता और पीलक रोग, पाण्डु रोग आदिको दूर करनेका इसमें निःसंदेह उल्लेख है । **' रोगघ्न्य उपनिषदः '** ऐसा इस सूक्तका संकेत सूत्रकारने दिया है वह योग्यही है । रोग दूर करनेकी यह विद्या है ।

मन्त्र १ से ७ तक सूर्यका वर्णन है । आठवें मन्त्रमें **' शोचिष्-केशं '** पद सूर्यका विशेषण है जिसमें सूर्य-प्रकाशमें शुद्धता करनेका गुण है ऐसा सूचित हुआ है । शुद्धता करनेका ही अर्थ रोगबीजोंका नाश करके आरोग्य देना है । सूर्यके किरणोंमें सात रंगोंके किरण होते हैं । सूर्यकिरण श्वेत रंगका है, उसको काचसे विभिन्न किया तो सात रंग स्पष्ट दीखते हैं । इनमें रोग दूर करनेकी शक्ति है । वर्ण-चिकित्साका इस तरह संबंध आता है ।

आगे ९ म मन्त्रमें किरणोंका नाम ' शुन्ध्युवः ' है यह भी किरणोंका शोधक गुण बता रहा है । शोधनसेही शुद्धता होकर रोग दूर होते हैं ।

मन्त्र ११ और १२ में **'हृद्रोग, हरिमा'** इन रोगोंके दूर करनेका उल्लेख है । हरिमा रोगको शुकों और वृक्षोंमें फेकनेका भाव यही है कि यह हरिमा यदि किसी रूपमें वह मनुष्योंके शरीरमें न रहे, वृक्षों और तोतोंके हरिमा, हरापन रहनेके लिये परमेश्वरने प्रतिष्ठित और स्थावरोंमें वृक्ष बनाये हैं । मनुष्यमें नहीं होना चाहिये । शुद्ध रक्त न होनेसे हरिमा दिखाई देता है, सूर्यकिरणोंसे वह हरिमा मनुष्य हृष्टपुष्ट और आरोग्यसंपन्न हो जाता है ।

सूर्यकिरणमें (**विश्वेन सहसा सह**) प्रकारका बल रहता है । सूर्यकिरणसे शरीरको तपानेसे वह बल प्राप्त होता है । भोजन पूर्व सूर्यकिरणोंको शरीरपर रखना योग्य नहीं है । जलसे स्नान करके सूर्यकिरणोंमेंही संध्या, गायत्री जप, सूर्योपस्थान आदि षण्टा करनेसे पर्याप्त प्रमाणमें सूर्यकिरण-स्नान होता है । अच्छा होता है । अतिशीत जहां होता है वहां लिये सुबह ९।१० बजेका समय या सायं ३।४ निकालना योग्य होगा । यह शरीरका अपने शरीरकी शक्ति देखकर शनैः शनैः करना

' मेरे शत्रु मरें, पर मैं शत्रुके अधीन न होऊं सूक्तका आन्तिम संदेश स्मरण रखनेयोग्य है ।

(अष्टम मण्डल)

अथ वालखिल्यम्

(२०) प्रभावी वीर

(ऋ. ८।४९) प्रस्कण्वः काण्वः । इन्द्रः । प्रगाथः= (विषमा बृहती, समा सतोबृहती)

अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे ।
यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति २

अन्वयः— वः सुराधसं इन्द्रं, यथा विदे (तथा), अभि प्र अर्च । यः मघवा पुरूवसुः जरितृभ्यः सहस्रेण इव शिक्षति ॥ १ ॥

अर्थ- आपके लिये उत्तम सिद्धि देनेवाले इन्द्र, तरह विधि-पूर्वक है (उस तरह), पूजा करो । धनवान् इन्द्र बहुतसी धनवाला होनेके कारण स्तोताओं को संख्यामें (धन) देता है ॥ १ ॥

अङ्गिरासो हरयो ये ते आशवो वाताइव प्रसक्षिणः ।
येभिर्मनुः परीयसे येभिर्विश्वं स्वर्दृशे ८
एतावतस्ते ईमह इन्द्र सुम्नस्य गोमतः ।
यथा प्राचो मघवन्मेध्यातिथिं यथा नीपातिथिं धने ९
यथा कण्वे मघवन्त्रसदस्यवि यथा पक्थे दशव्रजे ।
यथा गोशर्ये असनोर्ऋजिश्वनीन्द्र गोमादिरण्यवत् १०

ये ते हरयः, वाता इव, प्रसक्षिणः अङ्गिरासः आशवः, येभिः मनुषः अपत्यं परि ईयसे, येभिः विश्वं स्वः दृशे, (तैः आगहि) ॥ ८ ॥

हे मघवन् इन्द्र ! धने यथा मेध्यातिथिं प्र आवः, यथा नीपातिथिं (प्र आवः), एतावतः ते गोमतः सुम्नस्य ईमहे ॥ ९ ॥

हे मघवन् इन्द्र ! यथा कण्वे गोमत् हिरण्यवत् असनोः । यथा त्रसदस्यवि, यथा पक्थे, दशव्रजे, यथा गोशर्ये, ऋजिश्वनि (असनोः) ॥१०॥

जो तुम्हारे घोड़े, वायुके समान शत्रुनाशक, अंगिरागण हैं, जिनसे तुम मनुष्योंके यज्ञ जाते हो और जिनसे सब विश्वका निरीक्षण करते हो, (वे आओ) ॥ ८ ॥

हे धनवान् इन्द्र ! तुममें जैसी तुमने मेध्यातिथिकी रक्षा की थी, जैसी नीपातिथिकी (की थी) हमें गौओंके साथ धन (मिलकर) तुमसे चाहते हैं ॥ ९ ॥

हे धनवान् इन्द्र ! जैसा तुमने कण्वके लिये गौ सह धन दिया था, जैसा त्रसदस्यु, पक्थ, दशव्रज और ऋजिश्वाको दिया था (वैसा हमें दो) ॥ १० ॥

सूक्तमें ऋषियोंके नाम

इस सूक्तके मंत्र ५ और १३ में 'कण्व' का नाम आया है। यह इसी सूक्तके ऋषि प्रस्कण्वका पिता या गोत्रप्रवर्तक है। इस कण्व ऋषिके मंत्र इसी ग्रंथमें प्रारंभमें दिये हैं। 'मेध्यातिथि और नीपातिथि' ये भी कण्वके गोत्रमें ही उत्पन्न हुए ऋषि हैं। मेध्यातिथिके मंत्र ऋ. ८।१।३-२९ (मंत्र २७), ८।३ में मंत्र २४ हैं, ८।३३ में मंत्र १९ हैं मिलकर ७० मंत्र हुए।

नीपातिथि के मंत्र ऋ. ८।३४।१-१५ कुलमंत्र १५ है। इसके अतिरिक्त त्रसदस्यु, पक्थ, दशव्रज, गोशर्य, ऋजिश्वा ये नाम इस सूक्तके १० वें मंत्रमें हैं। इनके ऋग्वेदमें ये स्थान हैं—

ऋजिश्वा भारद्वाजः— ऋ. ६।४९-५२ (मंत्र ६३); ९।९८ (मं. १२); ९।१०८।६,७ (मं. २) कुलमन्त्र ७७ हैं।

त्रसदस्युः पौरुकुत्स्यः— ऋ. ४।४२ (मं. १०); ५।२७ (मं. ६); ९।१११० (मं. १२) कुलमंत्र २८ हैं।

पक्थ, दशव्रज, गोशर्यके मंत्र मिलते नहीं हैं। ये ऋषि प्रस्कण्व ऋषिके पूर्व समयके प्रतीत होते हैं। क्योंकि 'जैसा इनको तुमने दान दिया था वैसा हमें दो। ऐसी प्रार्थना यहां है। इसलिये इन ऋषियोंका प्रस्कण्वके पूर्व समयमें होना

आदर्श पुरुष

इस सूक्तमें इन्द्रको आदर्श पुरुष बताते हुए [illegible] किया गया है—

१ सुरावसः— उत्तम धनवान्, उत्तम हवि
२ मघवा, पुरुवसुः— धनवान्, (मं. १)
३ शतानीकः— सैकड़ों सेना-विनाशक सैन्य वाला,
४ दाशुषे वृत्राणि हन्ति— दाताके लिये शत्रुओंका नाश करता है।
५ पुरुभोजाः— बहुत भोजन देनेवाला, (मं. २)
६ मन्दसानः— आनन्द प्रसन्न, (मं. ३)
७ विभूतिः— विशेष प्रभावी,
८ अक्षितवसुः— अक्षय धनवाला,
९ उग्रः— शूरवीर,
१० वज्री— वज्र-धारी, (मं. ६)
११ महेमतिः— महा बुद्धिमान् (मं. ७)

इस सूक्तका आदर्श मानव इन गुणोंसे युक्त है। सूक्तके अर्थमें पाठक देख सकते हैं।

(नवम मण्डल)

(२१) सोमरस

(ऋ. ९।९५) प्रस्कण्वः काण्वः । पवमानः सोमः । त्रिष्टुप् ।

कनिक्रन्ति हरिरा सृज्यमानः सीदन्वनस्य जठरे पुनानः ।
नृभिर्यतः कृणुते निर्णिजं गा अतो मतीर्जनयत स्वधाभिः १
हरिः सृजानः पथ्यामृतस्येयर्ति वाचमरितेव नावम् ।
देवो देवानां गुह्यानि नामाऽऽविष्कृणोति बर्हिषि प्रवाचे २
अपामिवेदूर्मयस्तर्तुराणाः प्र मनीषा ईरते सोममच्छ ।
नमस्यन्तीरुप च यन्ति सं चाऽऽच विशन्त्युशतीरुशन्तम् ३
तं मर्मृजानं महिपं न सानावंशुं दुहन्त्युक्षणं गिरिष्ठाम् ।
तं वावशानं मतयः सचन्ते त्रितो बिभर्ति वरुणं समुद्रे ४

:— सृज्यमानः हरिः आ कनिक्रन्ति । पुनानः
ः सीदन् । नृभिः यतः गाः निर्णिजं कुरुते । अतः
ाभिः जनयत ॥ १ ॥

: हरिः ऋतस्य पथ्यां वाचं इयर्ति, अरिता नावं
: देवानां गुह्यानि नाम बर्हिषि प्रवाचे आविः
। २ ॥

इव ऊर्मयः इत् तर्तुराणाः मनीषाः सोमं अच्छ
। नमस्यन्तीः उप यन्ति च सं (यन्ति) च।
च उशन्तं आ विशन्ति ॥ ३ ॥

ानं, महिषं न, सानौ उक्षणं गिरिष्ठां तं अंशुं दुहन्ति।
ानं मतयः सचन्ते । त्रितः वरुणं समुद्रे बिभर्ति ॥४॥

अर्थ— धोया जानेवाला हरेरंगवाला सोम शब्द करता है। शुद्ध होता हुआ (सोम) पात्रके पेटमें जा बैठता है। मनुष्यों-द्वारा तैयार किया गया (सोम) गौ (के दुग्धका) रूप धारण करता है। इसके लिये मनन करनेयोग्य (स्तोत्र) अपनी शक्तिके अनुसार बनाओ ॥ १ ॥

निचोडा जानेवाला हरेरंगका सोम सत्यमार्गके प्रचारकी भाषा बोलता है, जैसे नाविक नौका (चलाता है)। यह सोम देव देवताओंके गुह्य नाम, आसनपर बैठे प्रवचनकारके लिये (उसके प्रवचनमें) प्रकट करता है ॥ २ ॥

जलतरङ्गोंके समान स्वराशील कवियोंकी बुद्धियाँ सोमके पासही (वर्णन करनेके लिये) दौडती हैं। नमन करनेवाली (बुद्धियाँ, सोमके पास) जाती हैं और उस (के वर्णनमें रमती हैं)। इच्छा करनेवाली (मतियाँ) अभीष्ट (सोमके वर्णनमें) प्रविष्ट होती हैं ॥ ३ ॥

धोते हुए, भैंसेके समान, पर्वत-शिखरपर रहनेवाले बैलके (समान बलवर्धक) उस दीप्तिमान् (सोमसे याचक) दुहते हैं। उस इष्ट (सोम) को (सबकी) बुद्धियाँ चाहती हैं (प्राप्त करती हैं)। तीन स्थानों (में रहकर लहने) वाला (इन्द्र) वरणीय (सोम) को जलमें धारण करता (और धोता है) ॥ ४ ॥

(२२) आपः

(अथर्व. ७।३९) प्रस्कण्वः । आपः, सुपर्णः, वृषभः । त्रिष्टुप् ।

दिव्यं सुपर्णं पयसं बृहन्तमपां गर्भं वृषभमोषधीनाम् ।
अभीपतो वृष्ट्या तर्पयन्तमा नो गोष्ठे रयिष्ठां स्थापयाति १

(२३) सरस्वान्

(अथर्व. ७।४०) प्रस्कण्वः । सरस्वान् । २ भुरिक्, त्रिष्टुप् ।

यस्य व्रतं पशवो यन्ति सर्वे यस्य व्रत उपतिष्ठन्त आपः ।
यस्य व्रते पुष्टपतिर्निविष्टस्तं सरस्वन्तमवसे हवामहे १
आ प्रत्यञ्चं दाशुषे दाश्वंसं सरस्वन्तं पुष्टपतिं रयिष्ठाम् ।
रायस्पोषं बृहवस्युं वसाना इह हुवेम सदनं रयीणाम् २

(२४) सुपर्णः

(अथर्व. ७।४१) प्रस्कण्वः । श्येनः । १ जगती, २ त्रिष्टुप् ।

अति धन्वान्यत्यपस्ततर्द श्येनो नृचक्षा अवसानदर्शः ।
तरन्विश्वान्यवरा रजांसीन्द्रेण सख्या शिव आ जगम्यात् १

सू. ७।३९।१)= (दिव्यं पयसं सुवर्णं) दिव्य जल धारण वाले उत्तम वर्णवाले, (अपां बृहन्तं वृषभं) जलको बडी करनेवाले, (ओषधीनां गर्भं) औषधियोंका गर्भ बढानेवाले, अभीपतो वृष्टया तर्पयन्तं) सब प्रकारसे वृष्टिसे तृप्ति करनेवाले, ये देव (नः गोष्ठे आ स्थापयतु) हमारी गोशालाकी ओर पन करे ।

अर्थात् हमारी गोशालाके चारों ओर अच्छी तरह वृष्टि हो । और गाइयोंको हरा घास पर्याप्त प्रमाणमें खानेको मिले ।

(सू. ७।४०।१-२)= (सर्वे पशवः यस्य व्रतं यन्ति) सब जिसके नियमानुसार चलते हैं, (यस्य व्रते आपः उदति-ष्ठन्) जिसके नियममें जल रहते हैं, (यस्य व्रते पुष्टपतिः निविष्टः) उसके नियममें पोषणकर्ता रहता है, (तं सरस्वन्तं अवसे हवा-महे) उस रसवान् देवको हम अपनी सुरक्षाके लिये प्रार्थना करते हैं ॥ १ ॥

दाताको प्रत्यक्ष दान देनेवाले, पोषण और पालन करनेवाले, रसवान्, धनदाता, धनके पोषक, यशके दाता, धनका स्थान जैसे इस देवकी हम यहां रहकर प्रार्थना करते हैं ॥ २ ॥

यह भी मेघदेवकीही प्रार्थना है । मेघकेही आधारपर पशु जीवित रहते हैं, उसीकी वृष्टिसे नदियाँ बहती हैं, उसीसे धान्य फळ फूल उत्पन्न होकर सबकी पुष्टि होता है, यह रसवान् देवही सबका पोषणकर्ता है।

(सू. ७।४१।१-२)= (अवसान-दर्शः, नृचक्षाः श्येनः) अन्तिम अवस्थाको जाननेवाला, मनुष्योंको जाननेवाला, श्येन पक्षी जैसा आकाशमें घूमनेवाला, (धन्वानि अति अपः ततर्द) रेतीले देशोंपर अति वृष्टि करता है, तथा (विश्वानि अवरा रजांसि) सब अवर भूमियोंपर भी वृष्टि होती है, इन्द्र नामक मित्रके साथ (शिवः) कल्याणरूप होकर (तरन्) सबको दुःखोंसे पार करता है और (आ जगम्यात्) सबको प्राप्त होता है ॥१॥

श्येनो नृचक्षा दिव्यः सुपर्णः सहस्रपाच्छतयोनिर्वयोधाः ।
स नो नि यच्छाद्वसु यत्पराभृतमस्माकमस्तु पितृषु स्वधावत् १

(२५) पापमोचनम्

(अथर्व. ७।४२) प्रस्कण्वः । सोमारुद्रौ । त्रिष्टुप् ।

सोमारुद्रा वि वृहतं विषूचीममीवा या नो गयमाविवेश ।
बाधेथां दूरं निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्र मुमुक्तमस्मत् १
सोमारुद्रा युवमेतान्यस्मद्विश्वा तनूषु भेषजानि धत्तम् ।
अव स्यतं मुञ्चतं यन्नो असत्तनूषु बद्धं कृतमेनो अस्मत् १

(२६) वाक्

(अथर्व. ७।४३) प्रस्कण्वः । वाक् । त्रिष्टुप् ।

शिवास्त एका अशिवास्त एकाः सर्वा विभर्षि सुमनस्यमानः ।
तिस्रो वाचो निहिता अन्तरस्मिन्तासामेका वि पपातानु घोषम् १

(नृचक्षाः दिव्यः सुपर्णः) मनुष्योंका निरीक्षक, दिव्य सुपर्ण जैसा (सहस्रपात् शतयोनिः) सहस्रों किरणोंसे युक्त और सैकडों प्रकारकी उत्पत्तियोंकी शक्तिसे संपन्न, (वयोधाः श्येनः) अन्न देनेवाला श्येन जैसा आकाशमें संचार करनेवाला, यह मेघ देव श्रेष्ठ धन हमें देवे । हमारे पितरोंको भी यही अन्न देता है ॥२॥

यह सूक्त भी विशेष कर मेघकाही वर्णन करता है । मेघ वृष्टि करके अन्न उत्पन्न करता है, उस अन्नसे सबका पोषण होता है । पिता माता और पुत्र पौत्रोंका भी वही पोषण करता है । वही वैसीकी भूमिपर, उर्वरा तथा हीन भूमिपर वृष्टि करता है और सबका पोषण करता है ।

(सू. ७।४२।१-२)= (या अमीवा) जो रोग (नः गयं आ विवेश) हमारे घरोंमें प्रविष्ट हुआ है, उस (विषूचीं वि बृहतं) [illegible] रोगको दूर करो, (निर्ऋतिं पराचैः दूरं बाधेथां) [illegible] दूर कर दो । (कृतं चित् एनः) हमारा किया [illegible] (अस्मद् मुञ्चतं) हमसे छुडाओ ॥ १ ॥

(युवं अस्मत् तनूषु) तुम दोनों हमारे शरीरोंमें (एतानि [illegible]) ये सब औषध धारण करो । (यः नः तनूषु [illegible]) जो हमारे शरीरोंमें वैसा पाप है उससे हमारा [illegible] करो । हमें उस पापसे छुडाओ ॥ २ ॥

आत्मके रोग

[illegible] अर्थात् अन्न है, इससे [illegible] अन्नमय कोश है । 'वह और [illegible] । 'सोम' औषधियोंका प्रतीक है और रुद्र प्राणशक्ति बढानेवाले वैद्यका सब प्रकारकी शुद्धि करनेद्वारा रोग दूर करनेका है । शरीरकी दुर्गति न हो, शरीरमें दोष न हों नीरोग रहे । इस कार्यके लिये अनेक औषधियोंका चाहिये । नीरोगिताके संपादन करनेमें यह सूक्त है । हरएक पदका पाठक विशेष विचार करें और प्राप्त करनेका बोध लें ।

(सूक्त ७।४३)— एक प्रकारके शब्द (शिवाः) कारक होते हैं, दूसरे प्रकारके शब्द (अशिवाः) (सु-मनस्यमानः) उत्तम शुभ विचारवाला उन धारण करता है । इस पुरुषमें (तिस्रः वाचः) परा पश्यन्ती, मध्यमा ये पुरुषके अन्दर गुप्त रहती एक वाणी (घोषं अनु वि पपात) घोषणा रूपको प्राप्त

यह मंत्र ' वाणी ' के विषयमें है । परा, पश्यन्ती, ये वाणियां गुप्त हैं । चौथी वैखरी भाषारूपसे प्रकट मनुष्यको जानना चाहिये कि ये शब्द शिव और अशिव बोले जाते हैं । अशुभ रूप शब्द उच्चारण करना छोडे जो शुभ शब्द हैं उनकाही प्रयोग मानवोंको करना चाहिये ।

सब प्राणियोंमें वक्तृत्व शक्ति मनुष्यमेंही है । प्राणीमें यह शक्ति नहीं है। आत्माकीही यह शक्ति होती है । वाणीमें आत्माकी शक्ति है । यदि वाणी आत्माकी शक्ति व्यर्थ खर्च होगा । है कि अशिव शब्दोंका बोलना उचित नहीं है, करना योग्य नहीं है । यह मंत्र हमेंही मनन करनेका

(२७) इन्द्राविष्णू

(अथर्व. ७।४४) प्रस्कण्वः । इन्द्र, विष्णुः । भुरिक् त्रिष्टुप् ।

उभा जिग्यथुर्न परा जयेथे न परा जिग्ये कतरश्चनैनयोः ।
इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां त्रेधा सहस्रं वि तदैरयेथाम् १

(२८) ईर्ष्यानिवारणम्

(अथर्व. ७।४५) प्रस्कण्वः, २ अथर्वा । ईर्ष्यापनयनं, भेषजम् । अनुष्टुप् ।

जनाद्विश्वजनीनात्सिन्धुतस्पर्याभृतम् । दूरात्त्वा मन्य उद्भृतमीर्ष्याया नाम भेषजम् १
अग्नेरिवास्य दहतो दावस्य दहतः पृथक् । एतामेतस्येर्ष्यामुद्दाग्निमिव शमय २

७।४४।१)— दोनों इन्द्र और विष्णु (वि जिग्यथुः) करते हैं । वे कभी (न परा जयेथे) पराजित नहीं होते । कोई भी पराजित नहीं होता। हे इन्द्र और विष्णो! जब (अपस्पृधेथां) शत्रुके साथ स्पर्धा करते हैं तब (तत् वह शत्रुका सैन्य (त्रेधा वि ऐरयेथां) तीन प्रकारसे है ॥ १ ॥

कहा है कि अपनी तैयारी ऐसी करो कि सदा शत्रुका और अपना जय होता रहे । शत्रुका बल अनेक विभाग होकर तितरबितर होकर भाग जावे ।

७।४५।१-२)= (विश्वजनीनात् जनात्) सब जनताके हित करनेवाले जनोंसे (सिन्धुतः परि आभृतं) सिन्धुके भी पारसे यह (ईर्ष्यायाः नाम भेषजं) ईर्ष्याका प्रसिद्ध औषध है, दूरसे तुझे लाया है यह मैं जानता हूं ॥ १॥

हे औषधे ! तू इस ईर्ष्याकी अग्निको, इस दावानलको अर्थात् (एतस्य एतां ईर्ष्यां) इसके इस ईर्ष्याकी अग्निको (शमय) शान्त कर ॥ २ ॥

ईर्ष्या, स्पर्धा, अर्थात् बुरी स्पर्धाको शान्त करना चाहिये । इस सूक्तमें औषधिका नाम नहीं है । यहां कौनसी औषधि कही है इसकी खोज करनी चाहिये ।

यहां प्रस्कण्वके अथर्ववेदके
मंत्र समाप्त हैं ।

कण्व दर्शनका द्वितीय विभाग समाप्त ।

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(६)

सव्य ऋषिका दर्शन

(ऋग्वेदका दशम अनुवाक)

लेखक

भट्टाचार्य पण्डित श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,

अध्यक्ष स्वाध्याय-मण्डल, औन्ध, [जि० सातारा]

संवत् २००३

मूल्य १) रु०

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(६)

सव्य ऋषिका दर्शन

(ऋग्वेदका दशम अनुवाक)

लेखक

भट्टाचार्य पण्डित श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,

अध्यक्ष स्वाध्याय-मण्डल, औन्ध, [जि० सातारा]

संवत् २००३

मूल्य १) रु०

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(६)

सव्य ऋषिका दर्शन

(ऋग्वेदका दशम अनुवाक)

लेखक

भट्टाचार्य पण्डित श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,

अध्यक्ष स्वाध्याय-मण्डल, औन्ध, [जि० सातारा]

संवत् २००३

मूल्य १) रु०

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

स व्य ऋ षि का द र्श न

(ऋग्वेदका दशम अनुवाक)

(१) इन्द्र

(ऋ. १।५१) सव्य आङ्गिरसः । इन्द्रः । जगती, १४–१५ त्रिष्टुप् ।

अभि त्यं मेषं पुरुहूतमृग्मियमिन्द्रं गीर्भिर्मदता वस्वो अर्णवम् ।
यस्य द्यावो न विचरन्ति मानुषा भुजे मंहिष्ठमभि विप्रमर्चत ॥ १
अभीमवन्वन्स्वभिष्टिमूतयोऽन्तरिक्षप्रां तविषीभिरावृतम् ।
इन्द्रं दक्षास ऋभवो मदच्युतं शतक्रतुं जवनी सूनृतारुहत् ॥ २
त्वं गोत्रमङ्गिरोभ्योऽवृणोरपोतात्रये शतदुरेषु गातुवित् ।
ससेन चिद्विमदायावहो वस्वाजावद्रिं वावसानस्य नर्तयन् ॥ ३

अन्वयः— त्यं मेषं, पुरु-हूतं, ऋग्मियं, वस्वः अर्णवं गीः-भिः अभि मदत । यस्य मानुषा (कर्माणि) द्यावः न वि-चरन्ति, भुजे (तं) मंहिष्ठं विप्रं (इन्द्रं) अभि अर्चत ॥ १ ॥

ऋभवः दक्षासः ऋभवः ईं सु-अभिष्टिं अन्तरिक्ष-प्रां तवि-षीभिः आ वृतं मद-च्युतं इन्द्रं अभि अवन्वन्, (तं) शत-क्रतुं जवनी सूनृता (च) आ अरुहत् ॥ २ ॥

(हे इन्द्र !) त्वं अङ्गिरः-भ्यः गोत्रं अप अवृणोः, उत अत्रये शत-दुरेषु गातु-वित् (अभूः) । वि-मदाय ससेन चित् वसु अवहः । अद्रिं वावसानस्य आजौ (सति) नर्तयन् (असि) ॥ ३ ॥

अर्थ– उस पुरुषों इच्छा करनेयोग्य बहुतोंसे आमंत्रित स्तुतिके योग्य धनके समुद्र इन्द्रकी स्तुतिमें द्वारा प्रसन्न करो । जिस इन्द्रके कर्मोंसे मनुष्य-इतिहासरूपी कर्म सूर्यों किरणोंके समान (सुखकारी होते) हैं । भोजनके लिये [illegible] इन्द्रकी पूजा करो ॥१॥

रक्षण और कर्मोंमें दक्ष ऋभुओंने उस अच्छे कर्मोंके आकारमें व्याप्त अनेक कर्मोंसे पुष्ट (अभुओं द्वारा) स्तुति-योग्य इन्द्रका आश्रय लिया । तब उस सैकड़ों कर्मोंका अभिलाषी इन्द्रके पास प्रेरणा देनेवाली सत्य वाणियाँ [illegible] ।

(इन्द्रके कर्मोंका वर्णन करनेके लिये) ।

हे इन्द्र ! तूने अङ्गिरा लोगोंके लिये [illegible] अत्रिके पुत्रोंको भोजन करा दिया, और [illegible] अभुओंके [illegible] । तूने इन्द्रके लिये अन्न-कर्मोंसे पुष्ट धन दिया । [illegible] तूने [illegible] ।

[illegible] ऋषिका तत्त्वज्ञान

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

स्वाध्यायमण्डल
औंध जि. सातारा
१ आषाढ सं. [illegible]

[illegible]
[illegible] दामोदर सातवळेकर

मुद्रक और प्रकाशक
व० श्री० सातवळेकर, B. A., भारत-मुद्रणालय, औंध (जि. सातारा)

आ यं पृणन्ति दिवि सप्तवर्हिषः समुद्रं न सुभ्वरः स्वा अभिष्टयः ।
तं वृत्रहत्ये अनु तस्थुरूतयः शुष्मा इन्द्रमवाता अहूतप्सवः ४
अभि स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यतो रघ्वीरिव प्रवणे सस्रुरूतयः ।
इन्द्रो यद् वज्री धृषमाणो अन्धसा भिनद् वलस्य परिधीँरिव त्रितः ५
परीं घृणा चरति तित्विषे शवोऽपो वृत्वी रजसो बुध्नमाशयत् ।
वृत्रस्य यत् प्रवणे दुर्गृभिश्वनो निजघन्थ हन्वोरिन्द्र तन्यतुम् ६
हूदं न हि त्वा न्यृषन्त्यूर्मयो ब्रह्माणीन्द्र तव यानि वर्धना ।
त्वष्टा चित् ते युज्यं वावृधे शवस्ततक्ष वज्रमभिभूत्योजसम् ७
अघन्वाँ उ हरिभिः संभृतक्रतविन्द्र वृत्रं मनुषे गातुयन्नपः ।
अयच्छथा बाह्वोर्वज्रमायसमधारयो दिव्या सूर्यं दृशे ८

प्र-वर्हिषः सु-भ्वः स्वाः अभिष्टयः यं दिवि, समुद्रं न पृणन्ति, शुष्माः अवाताः अहूत-प्सवः ऊतयः वृत्र-हत्ये इन्द्रं अनु तस्थुः ॥ ४ ॥

अयः अस्य युध्यतः मदे, रघ्वीः- इव प्रवणे, सु-वृष्टि सस्रुः । यत् अन्धसा धृषमाणः वज्री इन्द्रः त्रितः वीर्-इव वलस्य भिनत् ॥ ५ ॥

यत् (हे) इन्द्र ! दुः-गृभिश्वनः प्रवणे वृत्रस्य हन्वोः तं नि-जघन्थ (तदा) घृणा ईं परि चरति, शवः तित्विषे । (वृत्रः) अपः वृत्वी रजसः बुध्नं आ अ-शयत् ॥ ६ ॥

(हे) इन्द्र ! यानि तव वर्धना ब्रह्माणि (सन्ति, नि) ऊर्मयः हूदं न हि त्वा नि-ऋषन्ति । त्वष्टा ते युज्यं वृषभः ववृधे, अभिभूति-ओजसं (च) वज्रं ततक्ष ॥ ७ ॥

(हे) संभृत-क्रतो इन्द्र ! (त्वं) बाह्वोः आयसं वज्रं अयच्छथाः । मनुषे अपः गातु-यन् हरि-भिः वृत्रं अघन्वान् । दिवि सूर्यं दृशे आ अधारयः ॥ ८ ॥

दर्भके आसनपर बैठनेवालोंकी उत्तम प्रकारसे उत्पन्न निजी इच्छायें द्युलोकके संबंधमें, जैसे समुद्रको नदियाँ वैसे, पूर्ण की जाती हैं। तथा बलवती शत्रु-रहित सुन्दर रूपवाली रक्षक शक्तियाँ युद्धमें उसी इन्द्रके पीछे पीछे जाती हैं ॥४॥

रक्षक शक्तियाँ इस युद्ध करनेवाले इन्द्रके साथ आनन्दमें रहकर, जैसे बहनेवाले जलप्रवाह नीचेकी ओर जाते हैं वैसे वे अपनी वृष्टिके जलप्रवाहके समान उसके पास जाती हैं। उस समय उत्तम अन्नद्वारा बलवान् बने वज्रधारी इन्द्रने, त्रितने जैसे अपने जारके घेरेको तोड़ दिया, वैसेही बलके भी तोड़ा ॥५॥

जब, हे इन्द्र ! तूने कठिनतासे पकड़ने योग्य वृत्रकी दाढ़ीके उतरार्धपर उसके हनुओंपर अपना वज्र मारा, तब तेरा तेज उसके ऊपर छा गया और तेरा बल चमक उठा। उस समय वृत्र जल रोककर भूमिके ऊपर सो रहा था ॥६॥

हे इन्द्र ! जिन्हें तेरे वर्णन करनेवाले स्तोत्र हैं, वे, तरंगें जैसे तालाबको पहुँचती हैं, वैसे तेरे पास आते हैं। तेरा तेज देनेवाला बल बढ़ गया और तेरे लिये यज्ञको चमकाने वाले त्वष्टाने बड़ा तेजस्वी वज्र बनाया था ॥७॥

हे अनेक हमारी ओर लाये हुए इन्द्र ! तूने अपने हाथोंमें लोहेका वज्र धारण किया। मनुष्यके लिये जलोंको प्राप्त होते हुए, अपने घोड़ोंसे शत्रुको मारते हुए, और आकाशमें सूर्यको देखनेके लिये तूने उसे धारण किया था ॥८॥

इन्द्रो अश्रायि सुध्यो निरेके पज्रेषु स्तोमो दुर्यो न यूपः ।
अश्वयुर्गव्यू रथयुर्वसूयुरिन्द्र इद्रायः क्षयति प्रयन्ता १३
इदं नमो वृषभाय स्वराजे सत्यशुष्माय तवसेऽवाचि ।
अस्मिन्निन्द्र वृजने सर्ववीराः स्मत् सूरिभिस्तव शर्मन्त्स्याम १४

(२)

(ऋ. १।५२) सव्य आङ्गिरसः । इन्द्रः । जगती; १३, १५ त्रिष्टुप् ।

त्यं सु मेषं महया स्वर्विदं शतं यस्य सुभ्वः साकमीरते ।
अत्यं न वाजं हवनस्यदं रथमेन्द्रं ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः १
स पर्वतो न धरुणेष्वच्युतः सहस्रमूतिस्तविषीषु वावृधे ।
इन्द्रो यद् वृत्रमवधीन्नदीवृतमुज्जन्नर्णांसि जर्हृषाणो अन्धसा २
स हि द्वरो द्वरिषु वव्र ऊधनि चन्द्रबुध्नो मदवृद्धो मनीषिभिः ।
इन्द्रं तमह्वे स्वपस्यया धिया मंहिष्ठारातिं स हि पप्रिरन्धसः ३

इन्द्र निरेके सु-ध्यः अश्रायि (यथा) पज्रेषु दुर्यः यूपः न स्तोमः (स्थितः भवति) । अश्व-युः गव्युः रथ-युः वसु-युः रायः प्र-यन्ता इन्द्रः (सर्वत्र) इत् क्षयति ॥ १४ ॥

(अस्माभिः) इदं नमः वृषभाय स्व-राजे सत्य-शुष्माय तवसे अवाचि । (हे) इन्द्र ! अस्मिन् वृजने (वयं) सर्व-वीराः (स्याम, तथा) तव स्मत् शर्मन् सूरि-भिः स्याम ॥ १५ ॥

शतं सु-भ्वः यस्य साकं ईरते, त्यं मेषं स्वःविदं (इन्द्रं) सु महय । (अहं) इन्द्रं अवसे सुवृक्ति-भिः अत्यं वाजं न हवन-स्यदं रथं आ ववृत्याम् ॥ १ ॥

अन्धसा जर्हृषाणः अर्णांसि उज्जन् इन्द्रः यत् नदी-वृतं वृत्रं अवधीत्, (तदा) धरुणेषु पर्वतः न अच्युतः सहस्रं ऊतिः सः तविषीषु वावृधे ॥ २ ॥

चन्द्र-बुध्नः मनीषि-भिः मद-वृद्धः सः हि द्वरिषु द्वरः, ऊधनि (च) वव्रः (अस्ति) । (यतः) सः हि अन्धसः पप्रिः (अस्ति तस्मात् अहं) तं मंहिष्ठ-रातिं इन्द्रं सु-अपस्य-या धिया अह्वे ॥ ३ ॥

इन्द्रका विपत्कालमें सुकर्मी यजमानोंने आश्रय इसलिये आंगिरसोंमें, द्वारपर गढे खम्भेके समान, रहते हैं । वह घोडों, गायों, रथों और धनोंका ऐश्वर्यका दाता इन्द्र सर्वत्रही (भक्तोंमें) निवास

हम लोगोंद्वारा यह नमस्कार बलवान्, स्वतः अटूट बलवाले, समर्थ इन्द्रके लिये कहा गया है। हे दयासे हम इस युद्धमें सब प्रकारके वीरोंसे युक्त हों सुख-पूर्ण गृहमें अनेक प्रकारके विद्वानोंसे सम्मान

सैकडों ज्ञानी जिसका साथ साथ वर्णन करते हैं साथ युद्ध करनेवाले स्वयं तेजस्वी वीर इन्द्रको, स्थान दो । मैं इन्द्रको, रक्षाके निमित्त अपनी अश्वके समान केवल इशारेसे ही चलनेवाले रथपर, लाता हूँ ॥१॥

अन्नसे प्रसन्न और जलोंको नीचे प्रवाहित करनेवाले इन्द्रने जब नदीके अवरोधक वृत्रको मार दिया, तब जैसे पर्वत (अटल रहता है वैसे) युद्धमें अटल, साधनोंसे युक्त वह इन्द्र अपनी सेनाओंमें बढ गया।

आनन्दका मूल और बुद्धिमानोंके साथ रहनेवाले नंदित होनेवाला वह इन्द्र घेरनेवाले शत्रुओंपर भी वेग वाला और गुप्त स्थानमें रहनेवाला है। वह अन्नको देनेवाला है, इस कारण मैं उस श्रेष्ठ दानी इन्द्रको करनेवाले अपने मनसे बुलाता हूँ ॥३॥

सव्य ऋषिका दर्शन

[सू.५२]

आ यं पृणान्ति दिवि सद्मबर्हिषः समुद्रं न सुभ्व१ः स्वा अभिष्टयः । ४
तं वृत्रहत्ये अनु तस्थुरूतयः शुष्मा इन्द्रमवाता अह्रुतप्सवः
अभि स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यतो रघ्वीरिव प्रवणे सस्रुरूतयः । ५
इन्द्रो यद् वज्री धृषमाणो अन्धसा भिनद् वलस्य परिधीँरिव त्रितः
परीं घृणा चरति तित्विषे शवोऽपो वृत्वी रजसो बुध्नमाशयत् । ६
वृत्रस्य यत् प्रवणे दुर्गृभिश्वनो निजघन्थ हन्वोरिन्द्र तन्यतुम्
ह्रदं न हि त्वा न्यृषन्त्यूर्मयो ब्रह्माणीन्द्र तव यानि वर्धना । ७
त्वष्टा चित् ते युज्यं वावृधे शवस्ततक्ष वज्रमभिभूत्योजसम्
जघन्वाँ उ हरिभिः संभृतक्रतविन्द्र वृत्रं मनुषे गातुयन्नपः । ८
अयच्छथा बाह्वोर्वज्रमायसमधारयो दिव्या सूर्यं दृशे

हिंषः सुभ्वः स्वाः अभिष्टयः यं दिवि, समुद्रं
[illegible]न्ति, शुष्माः अवाताः अह्रुत-प्सवः ऊतयः वृत्र-
[illegible]न्द्रं अनु तस्थुः ॥ ४ ॥
[illegible]ः अस्य युध्यतः मदे, रघ्वीः- इव प्रवणे, स्व-वृष्टिं
[illegible]स्रुः । यत् अन्धसा धृषमाणः वज्री इन्द्रः त्रितः
[illegible]-इव वलस्य भिनत् ॥ ५ ॥

[illegible] (हे) इन्द्र ! दुः-गृभिश्वनः प्रवणे वृत्रस्य हन्वोः
[illegible] नि-जघन्थ (तदा) घृणा ईं परि चरति, शवः
[illegible]षे । (वृत्रः) अपः वृत्वी रजसः बुध्नं आ अ-
[illegible]त ॥ ६ ॥
(हे) इन्द्र ! यानि तव वर्धना ब्रह्माणि (सन्ति,
[illegible]ते) ऊर्मयः ह्रदं न हि त्वा नि-ऋषन्ति । त्वष्टा ते युज्यं
[illegible] शवः ववृधे, अभिभूति-ओजसं (च) वज्रं ततक्ष ॥ ७ ॥
[illegible]) संभृत-क्रतो इन्द्र ! (त्वं) बाह्वोः आयसं वज्रं
[illegible]नाः । मनुषे अपः गातु-यन् हरि-भिः वृत्रं जघन्वान्
[illegible] सूर्यं दिवि आ अधारयः ॥ ८ ॥

दर्भके आसनपर बैठनेवालोंकी उत्तम प्रकारसे उत्पन्न निजी इच्छायें द्युलोकके संबंधमें, जैसे समुद्रको नदियाँ वैसे, पूर्ण की जाती हैं। तथा बलवती शत्रु-रहित सुन्दर रूपवाली रक्षक शक्तियाँ युद्धमें उसी इन्द्रके पीछे पीछे जाती हैं ॥४॥

रक्षक शक्तियाँ इस युद्ध करनेवाले इन्द्रके साथ आनन्दमें रहकर, जैसे बहनेवाले जलप्रवाह नीचेकी ओर जाते हैं वैसे वे अपनी वृष्टिके जलप्रवाहके समान उसके पास जाती हैं। उस समय उत्तम अन्नद्वारा बलवान् बने वज्रधारी इन्द्रने, त्रितने जैसे अपने ऊपरके घेरेको तोड दिया, वैसेही बलको भी तोडा ॥५॥

जब, हे इन्द्र ! तूने [illegible] वृत्रको [illegible] उसी उतराईपर उसके हनुओंपर अपना वज्र मारा, तब तेरा [illegible] उठा। [illegible] तेज उसके ऊपर छा गया और तेरा बल [illegible] समय वृत्र जल रोककर भूमिके ऊपर सो रहा था ॥६॥

हे इन्द्र ! [illegible] तेरे वर्णन करनेवाले [illegible] जैसे [illegible] तेरे [illegible] और तेरे लिये [illegible] [illegible] ॥७॥

हे [illegible] इन्द्र ! [illegible] [illegible] ॥८॥

वृहत् स्वश्चन्द्रममवद् यदुक्थ्य१मकृण्वत भियसा रोहणं दिवः।
यन्मानुषप्रधना इन्द्रमूतयः स्वर्नृषाचो मरुतोऽमदन्ननु ९
द्यौश्चिदस्यामवाँ अहेः स्वनादयोयवीद् भियसा वज्र इन्द्र ते।
वृत्रस्य यद् वद्वधानस्य रोदसी मदे सुतस्य शवसाऽभिनच्छिरः १०
यदिन्निवन्द्र पृथिवी दशभुजिरहानि विश्वा ततनन्त कृष्टयः।
अत्राह ते मघवन् विश्रुतं सहो द्यामनु शवसा बर्हणा भुवत् ११
त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः स्वभूत्योजा अवसे धृषन्मनः।
चकृषे भूमिं प्रतिमानमोजसो ऽपः स्वः परिभूरेष्या दिवम् १२
त्वं भुवः प्रतिमानं पृथिव्या ऋष्ववीरस्य बृहतः पतिर्भूः।
विश्वमाप्रा अन्तरिक्षं महित्वा सत्यमद्धा नकिरन्यस्त्वावान् १३
न यस्य द्यावापृथिवी अनु व्यचो न सिन्धवो रजसो अन्तमानशुः।
नोत स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यत एको अन्यच्चकृषे विश्वमानुषक् १४

यत् (स्तोतारः) भियसा स्व-चन्द्रं, अम-वत्, उक्थ्यं दिवः रोहणं वृहत् अकृण्वत, यत् मानुष-प्रधनाः ऊतयः नृ-साचः मरुतः इन्द्रं स्वः अनु अमदन् ॥ ९ ॥

(हे) इन्द्र ! यत् ते अम-वान् वज्रः सुतस्य मदे रोदसी वद्धधानस्य वृत्रस्य शिरः शवसा अभिनत्, (तदा) अस्य अहेः स्वनात् भियसा द्यौः चित् अयोयवीत् ॥ १० ॥

(हे) मघ-वन् इन्द्र ! यत् इत् नु पृथिवी दश-भुजिः (स्यात्), कृष्टयः विश्वा अहानि ततनन्त, अत्र अह ते सदः वि-श्रुतं (भवेत्) । (ते) बर्हणा शवसा द्यां अनु भुवत् ॥ ११ ॥

(हे) धृषत्-मनः ! स्वभूति-ओजाः त्वं अवसे अस्य व्योमनः रजसः पारे ओजसः प्रति-मानं भूमिं चकृषे । परि-भूः (त्वं) अपः स्वः दिवं आ एषि ॥ १२॥

(हे इन्द्र !) त्वं पृथिव्याः प्रति-मानं भुवः । ऋष्व-वीरस्य बृहतः पतिः भूः । (त्वं) सत्यं महित्वा विश्वं अन्त-रिक्षं आ अप्राः । अद्धा त्वा-वान् अन्यः नकिः (अस्ति) ॥ १३

द्यावापृथिवी यस्य व्यचः न अनु (आनशाते), रजसः [illegible] यस्य) अन्ते न आनशुः, उत (वृत्रादयः) नदे स्व-वृष्टिं युध्यतः अस्य (अन्ते) न (आनशुः), (सः) एकः अन्यत् विश्वं आनुषक् चकृषे ॥ १४ ॥

जब लोगोंने वृत्रके भयसे अन्तःकरणमें [illegible] बलयुक्त प्रशंसनीय दिवूमें चढानेवाला वृहत् साम... जब प्रजाके हितार्थ युद्ध करनेवाले रक्षक प्रजामें... वाले वीरोंने इन्द्रका स्वर्गमें अनुमोदन किया, तब... मारा ॥९॥

हे इन्द्र ! जब तेरे शक्तिशाली वज्रने सोम-रसके लोकोंको पीडित करनेवाले वृत्रका शिर बलमें तोड़ इस वृत्रके शब्दसे भयभीत होकर द्यौ भी काँपने

हे धनवन्त इन्द्र ! यदि यह पृथिवी दशगुनी बल प्रजाएँ सब दिन अपनी शक्तिका विस्तार करती रहें भी तेरा बल उससे अधिकही होगा । तेरी [illegible] अपनी शक्तिसे द्यौका सामना करती है ॥११॥

हे निडर मनवाले इन्द्र ! स्वयं निज बलसे रक्षाके लिये इस व्यापक आकाशके पार तेरे अर्थात् ज्ञान करानेवाली भूमि बनाई है । सर्वत्र अन्तरिक्ष और दिवूके साथ रहता है ॥१२॥

हे इन्द्र ! तू पृथिवीका दूसरा रूप हुआ है । वीरोंवाले बडे स्वर्गका स्वामी हुआ । तूने महत्व शालतासे आकाशको व्याप लिया । यह भी सत्य है दूसरा कोई नहीं है ॥१३॥

द्यौ और पृथिवी जिसके विस्तारको नहीं व्याप रिक्षके जल भी जिसका अन्त नहीं पा सके, रोकनेवाले अगुर भी लडनेवाले इस इन्द्रके नहीं पा सकते, वही एक इन्द्र दूसरे सारे [illegible] है ॥१४॥

समिन्द्र राया समिषा रभेमहि सं वाजेभिः पुरुश्चन्द्रैरभिद्युभिः ।
सं देव्या प्रमत्या वीरशुष्मया गोअग्रयाश्वावत्या रभेमहि
ते त्वा मदा अमदन् तानि वृष्ण्या ते सोमासो वृत्रहत्येषु सत्पते ।
यत् कारवे दश वृत्राण्यप्रति वर्हिष्मते नि सहस्राणि बर्हयः
युधा युधमुप घेदेषि धृष्णुया पुरा पुरं समिदं हंस्योजसा ।
नम्या यदिन्द्र सख्या परावति निबर्हयो नमुचिं नाम मायिनम्
त्वं करञ्जमुत पर्णयं वधीस्तेजिष्ठयातिथिग्वस्य वर्तनी ।
त्वं शता वङ्गृदस्याभिनत् पुरोऽनानुदः परिषूता ऋजिश्वना
त्वमेताञ्जनराज्ञो द्विर्दशाऽबन्धुना सुश्रवसोपजग्मुषः ।
षष्टिं सहस्रा नवतिं नव श्रुतो नि चक्रेण रथ्या दुष्पदावृणक्
त्वमाविथ सुश्रवसं तवोतिभिस्तव त्रामभिरिन्द्र तूर्वयाणम् ।
त्वमस्मै कुत्समतिथिग्वमायुं महे राजे यूने अरन्धनायः

(हे) इन्द्र ! (वयं) राया सं (रभेमहि), इषा रभेमहि, पुरु-चन्द्रैः अभिद्युभिः वाजे-भिः सं (रभेमहि), (तथा च) वीर-शुष्मया गो-अग्रया अश्व-वत्या देव्या प्र-मत्या सं रभेमहि ॥ ५ ॥

(हे) सत्-पते ! ते मदाः, तानि वृष्ण्या, ते सोमासः (च) त्वा वृत्र-हत्येषु अमदन्, यत् दश सहस्राणि अप्रति वृत्राणि बर्हिष्मते कारवे नि बर्हयः ॥६॥

(हे) इन्द्र ! धृष्णु-या (त्वं) युधा युधं उप घ इत् एषि, ओजसा इदं पुरा पुरं सं हंसि । यत् परा-वति नम्या सख्या नमुचिं नाम मायिनं नि-बर्हयः ॥ ७ ॥

(हे इन्द्र !) त्वं अतिथि-ग्वस्य तेजिष्ठया वर्तनी करञ्जं उत पर्णयं वधीः । त्वं ऋजिश्वना परि-सूताः वङ्गृदस्य शता पुरः अनानु-दः अभिनत् ॥ ८ ॥

(हे इन्द्र !) श्रुतः त्वं अबन्धुना सु-श्रवसा उप-जग्मुषः एतान् द्विः दश जनराज्ञः षष्टिं सहस्रा नवतिं नव (च) रथ्या दुष्पदा चक्रेण अवृणक् ॥ ९ ॥

(हे) इन्द्र ! त्वं तव ऊति-भिः सु-श्रवसं (तथा) तव त्राम-भिः तूर्वयाणं आविथ । त्वं अस्मै महे यूने (सु-श्रवसे) राजे कुत्सं अतिथि-ग्वं आयुं अरन्धनायः । १० ॥

हे इन्द्र ! हम लोग धनसे उत्तम कार्यका आरम्भ करें, बहुत उत्तम बलोंसे उत्तम कार्योंका आरम्भ करें और वैसी युक्त, जिसमें गायकी प्रधानता है ऐसी, युक्त उत्तम बुद्धिसे सम्यक् कार्यका आरम्भ करें ।

हे उत्तम स्वामी इन्द्र ! उन आनन्दित करनेवाले अन्नों और उन सोम-रसोंने तुझे वृत्रोंके मारनेके लिये किया जब कि तूने दश सहस्र दुर्धर्ष, वृत्रोंके लिये गरकके हित करनेके लिये नष्ट-भ्रष्ट कर दिया ॥६॥

हे इन्द्र ! शत्रुका नाश करनेके लिये तू युद्धको करनेके लिये शत्रुपर हमला करता है और इस शत्रुके एक नगरके पश्चात् दूसरे नगरको तो तब दूर स्थानमें शत्रुकी ओर झुकनेवाले नमुचि नामके मायावी असुरको नष्ट कर देता है ॥७॥

हे इन्द्र ! तूने अतिथि-ग्वके लिए और पर्णयको मारा। और तूने ऋजिश्वामें पैदा हुए नगर दूसरेकी सहायताके विनाही तोड़ दिये ॥८॥

हे इन्द्र ! सब वीरोंमें प्रसिद्ध तूने लड़नेको जानेवाले इन बीस जनपद-राजाओं और सहस्र निन्यानवे अनुचरोंको रथके बीच चक्रसे कुचल दिया ॥९॥

हे इन्द्र ! तूने अपने रक्षा-साधनोंसे सुश्रवा और उन्हीं रक्षाओंसे तूर्वयाण की रक्षा की । तूने इस सुश्रवा राजाके निमित्त कुत्स, अतिथिग्व और आयु किया ॥१०॥

नि यद्वृणक्षि श्वसनस्य मूर्धनि शुष्णस्य चिद् वन्दिनो रोरुवद् वना।
प्राचीनेन मनसा बर्हणावता यदद्या चित् कृणवः कस्त्वा परि ५
त्वमाविथ नर्यं तुर्वशं यदुं त्वं तुर्वीतिं वय्यं शतक्रतो।
त्वं रथमेतशं कृत्व्ये धने त्वं पुरो नवतिं दम्भयो नव ६
स घा राजा सत्पतिः शूशुवज्जनो रातहव्यः प्रति यः शासमिन्वति।
उक्था वा यो अभिगृणाति राधसा दानुरस्मा उपरा पिन्वते दिवः ७
असमं क्षत्रमसमा मनीषा प्र सोमपा अपसा सन्तु नेमे।
ये त इन्द्र ददुषो वर्धयन्ति महि क्षत्रं स्थविरं वृष्ण्यं च ८
तुभ्येदेते बहुला अद्रिदुग्धाश्चमूषदश्चमसा इन्द्रपानाः।
व्यश्नुहि तर्पया काममेषामथा मनो वसुदेयाय कृष्व ९
अपामतिष्टद्धरुणद्धरं तमोऽन्तर्वृत्रस्य जठरेषु पर्वतः।
अभीमिन्द्रो नद्यो वव्रिणा हिता विश्वा अनुष्ठाः प्रवणेषु जिघ्नते १०

(हे इन्द्र !) यत् रोरुवत् वना श्वसनस्य वन्दिनः शुष्णस्य चित् मूर्धनि नि वृणक्षि, यत् अद्य चित् बर्हणा-वता प्राचीनेन मनसा कृणवः, त्वा परि कः (अस्ति ?) ॥ ५ ॥

(हे) शत-क्रतो ! त्वं नर्यं तुर्वशं यदुं आविथ, त्वं वय्यं तुर्वीतिं (तथा) त्वं कृत्व्ये धने रथं एतशं (आविथ)। त्वं नवतिं नव पुरः दम्भयः ॥ ६ ॥

यः रात-हव्यः (इन्द्रस्य) शासं प्रति इन्वति, यः वा राधसा उक्था अभि-गृणाति सः घ राजा सत्-पतिः जनः शूशुवत्। दानुः असै दिवः उपरा पिन्वते ॥ ७ ॥

(हे) इन्द्र ! ये ते ददुषः महि क्षत्रं स्थविरं वृष्ण्यं च वर्धयन्ति, (ते) नेमे सोम-पाः अपसा प्र सन्तु । (यतः ते) क्षत्रं असमं, मनीषा असमा अस्ति ॥ ८ ॥

(हे इन्द्र !) एते इन्द्र-पानाः अद्रि-दुग्धाः चमू-सदः बहुलाः चमसाः तुभ्य इत्। (त्वं) वि अश्नुहि, एषां (इन्द्रियाणां) कामं तर्पय अथ वसु-देयाय मनः कृष्व ॥ ९ ॥

अपां धरुण-द्धरं तमः अतिष्टत् वृत्रस्य जठरेषु अन्तः पर्वतः (आसीत्)। इन्द्रः ईं वव्रिणा हिताः प्रवणेषु अनु-स्थाः विश्वाः नद्यः अभि जिघ्नते ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! अब तू गर्जना करता हुआ अपने वज्र समान पबल शत्रुसमूहयुक्त शुष्णके ऊपर फेंकता है, कुछ तूने आजही, तत्कालही अपने शत्रु-नाशक सनातन भावसे युक्त अपने मनसे योग्य कार्य किया अधिक श्रेष्ठ और कौन है ? ॥५॥

हे अनेकविध कर्म करनेवाले इन्द्र ! तूने मनुष्यों कारी तुर्वश और यदुकी रक्षा की। तूने वय्य, तुर्वी तूनेही शत्रु-हिंसक युद्धमें रथी एतशकी रक्षा की। शम्बरके निन्यानवे नगर विध्वंस कर डाले ॥६॥

जो अन्नका दान करनेवाला मनुष्य इन्द्रकी आज्ञा है, अथवा जो मनुष्य धनसे युक्त वक्तृत्व करता हुआ है, वही मनुष्य राजा और सच्चा पालक होकर बढ़ता दानी इन्द्र इसीके लिये दिव् लोकसे ऊपर जलोंको नीचे गिराता है ॥७॥

हे इन्द्र ! जो लोग तुझ दानीके महान् बल और पौरुषको वर्णन करते हैं, वे ये सोमपान कर्ता अपने उत्कृष्ट बनें। क्योंकि तेरे बल और बुद्धि अद्वितीय हैं

हे इन्द्र ! ये तेरे पीनेयोग्य, पत्थरपर कूटकर निष्पन्न पात्रमें स्थित बहुत सोम-रस तेरे लियेही हैं। तू इन्हें और अपने इन इन्द्रियोंकी इच्छाको तृप्त कर दे। और धन देनेके लिये अपना मन कर, इच्छा कर ॥९॥

पहले, जलोंकी धाराओंको रोकनेवाला अन्धकार फैला था और उस तमोमय वृत्रके पेटमें पर्वत पड़ा हुआ था। इन, अवरोधक वृत्रसे घिरे, और निम्न प्रवाहकी ओर तैय्यार सारे जलोंको गतिमान् करता है ॥१०॥

स इन्महानि समिथानि मज्मना कृणोति युध्म ओजसा जनेभ्यः ।
अध चन श्रद् दधति त्विषीमत इन्द्राय वज्रं निघनिघ्नते वधम् ५
स हि श्रवस्युः सदनानि कृत्रिमा क्षमया वृधान ओजसा विनाशयन् ।
ज्योतींषि कृण्वन्नवृकाणि यज्यवेऽव सुक्रतुः सर्तवा अपः सृजत् ६
दानाय मनः सोमपावन्नस्तु ते ऽर्वाञ्चा हरी वन्दनश्रुदा कृधि ।
यमिष्ठासः सारथयो य इन्द्र ते न त्वा केता आ दभ्नुवन्ति भूर्णयः ७
अप्रक्षितं वसु बिभर्षि हस्तयोरषाळ्हं सहस्तन्वि श्रुतो दधे ।
आवृतासोऽवतासो न कर्तृभिस्तनूषु ते क्रतव इन्द्र भूरयः ८

(६)

(ऋ. १।५६) सव्य आङ्गिरसः । इन्द्रः । जगती ।

एष प्र पूर्वीरव तस्य चिध्रिषोऽत्यो न योषामुदयंस्त भुर्वणिः ।
दक्षं महे पाययते हिरण्ययं रथमावृत्या हरियोगमृभ्वसम् १

सः इत् युध्मः मज्मना ओजसा जनेभ्यः महानि सम्-इथानि कृणोति, अध चन त्विषि-मते, वधं वज्रं नि-घनि-घ्नते इन्द्राय (जनाः) श्रत् दधति ॥ ५ ॥

सः हि श्रवस्युः सु-क्रतुः (इन्द्रः) क्षमया वृधानः ओजसा कृत्रिमा सदनानि वि-नाशयन्, यज्यवे अवृकाणि ज्योतींषि कृण्वन्, सर्तवै अपः अव सृजत् ॥ ६ ॥

(हे) सोम-पावन् वन्दन-श्रुत् इन्द्र ! ते मनः दानाय अस्तु, हरी अर्वाञ्चा आ कृधि । ये ते सारथयः (ते) यमिष्ठासः (सन्तु), केताः भूर्णयः त्वा न आ दभ्नुवन्ति ॥ ७ ॥

(हे) इन्द्र ! (त्वं) हस्तयोः अप्र-क्षितं वसु बिभर्षि । श्रुतः (त्वं) तन्वि अषाढं सहः दधे । कर्तृ-भिः आवृतासः अवतासः न ते तनूषु भूरयः क्रतवः (सन्ति) ॥ ८॥

भुर्वणिः एषः तस्य पूर्वीः चिध्रिषः अत्यः न योषां प्र अव उत् अयंस्त । (सः) हिरण्ययं हरि-योगं ऋभ्वसं रथं आ-वृत्य महे दक्षं पाययते ॥ १ ॥

वही योद्धा इन्द्र अपने पाप-शोधक बलसे ... लिये बड़े-बड़े युद्ध करता है । तब इस तेजस्वी, वज्रका प्रहार करनेवाले इन्द्रके लिये प्रजाजन ... हैं ॥५॥

उस धनकी कामनावाले उत्तम कर्मकारी ... साथ बढते, बलसे शत्रुके निर्माण किये ... और यजनशीलके निमित्त क्रूरतारहित प्रज्ञ ... बहनेके लिये जलोंको छोड दिया ॥६॥

हे सोम-रस पीनेवाले और स्तुतियोंपर ध्यान ... तेरा मन दानकी इच्छावाला हो । तू अपने दोनों ... समीप कर दे, हमारी ओर आ । जो तेरे सारथी, ... न्त्रणमें कुशल हों, जिससे तेरे शिक्षित घोडे ... सकें ॥७॥

हे इन्द्र ! तू अपने दोनों हाथोंमें क्षय-रहित ध ... रहा है । तूने अपने शरीरमें जिसे सब सुन चुके हैं ... रहित बल धारण किया है । निर्माता लोगों द्वा ... कूपोंकी भाँति तेरे शरीरोंमें बहुतसे कर्म आश्रित ... हैं ॥८॥

खनिकी इच्छा करनेवाला यह इन्द्र उसके अर्थ ... रखे हुए अन्नोंको, घोडा जैसे घोडीको वेगे, ... है । वह सुनहरे, जिसमें घोडे जुडे हैं ऐसे बहु ... युक्त रथको अधीन कर बडे कर्मके लिये बलवान् ... पिलाता है ॥१॥

(७)

(ऋ० १।५३) सप्त आङ्गिरसः । इन्द्रः । जगती ।

प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये सत्यशुष्माय तवसे मतिं भरे ।
अपामिव प्रवणे यस्य दुर्धरं राधो विश्वायु शवसे अपावृतम् १
अध ते विश्वमनु हासदिष्टय आपो निम्नेव सवना हविष्मतः ।
यत्पर्वते न समशीत हर्यत इन्द्रस्य वज्रः श्नथिता हिरण्ययः २
अस्मै भीमाय नमसा समध्वर उषो न शुभ्र आ भरा पनीयसे ।
यस्य धाम श्रवसे नामेन्द्रियं ज्योतिरकारि हरितो नायसे ३
इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो ।
नहि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत् क्षोणीरिव प्रति नो हर्य तद्वचः ४
भूरि त इन्द्र वीर्यं१ तव स्मस्यस्य स्तोतुर्मघवन् काममा पृण ।
अनु ते द्यौर्बृहती वीर्यं मम इयं च ते पृथिवी नेम ओजसे ५

शवसे अप-वृतं यस्य विश्व-आयु राधः, प्रवणे अपां-इव, दुः-धरं (अस्ति), (अहं तस्मै) मंहिष्ठाय बृहते बृहत्-रये सत्य-शुष्माय तवसे मतिं प्र भरे ॥१॥

यत् श्नथिता हिरण्ययः हर्यतः इन्द्रस्य वज्रः पर्वते न सम्-अशीत, अध विश्वं ते इष्टये आपः निम्ना-इव हविष्मतः सवना अनु ह असत् ॥ २ ॥

(हे) शुभ्रे उषः ! न अध्वरे अस्मै भीमाय पनीयसे नमसा सं आ भर। यस्य धाम हरितः न अवसे श्रवसे नाम इंद्रियं ज्योतिः अकारि ॥ ३ ॥

(हे) पुरु-स्तुत प्रभु-वसो इन्द्र ! ये त्वा आ-रभ्य चरामसि इमे ते ते वयं (स्मः)। (हे) गिर्वणः ! त्वत् अन्यः गिरः नहि सघत्, (त्वं) क्षोणीः-इव नः तत् वचः प्रति हर्य ॥४॥

(हे) इन्द्र ! ते वीर्यं भूरि (अस्ति। वयं) तव स्मसि। (हे) मघ-वन् ! (त्वं) अस्य स्तोतुः कामं आ पृण। बृहती द्यौः ते वीर्यं अनु ममे, इयं च पृथिवी ते ओजसे नेमे ॥ ५ ॥

शक्तिके लिये आवरण-रहित विश्व [illegible] आयुतक रहनेवाला यश नीचे स्थानमें [illegible] समान दुर्धर है, अपराजित है। मैं उस श्रेष्ठ, [illegible] वाले, सच्चे बलशाली और प्रभाववुक्त इन्द्र [illegible] करता हूं ॥ १ ॥

जब शत्रुनाशक सुनहरा सुन्दर इन्द्र [illegible] नहीं सोया, उसे मारही दिया तब हे इन्द्र! [illegible] स्वागतके लिये, जल जैसे नीचे स्थलोंकी ओर [illegible] हविवाले यजमानके यज्ञोंकी ओर झुका ॥ २ ॥

हे सुन्दरि उषा ! इस समय तू यज्ञमें [illegible] नीय इन्द्रके लिये नमस्कारपूर्वक हवि ले आ, [illegible] जिस इन्द्रका स्थान घोड़ोंके समान सुरक्षाके लिये [illegible] लिये विख्यात सामर्थ्ययुक्त और तेजस्वी बनाता [illegible]

हे बहुतोंद्वारा प्रशंसनीय और प्रभुतायुक्त [illegible] जो तेरा आश्रय लेकर कर्म करते हैं ये तेरे भक्त [illegible] हे प्रशंसनीय इन्द्र ! तेरे विना दूसरा कोई हमारे [illegible] नहीं पाता। तू प्रजाओंके समान हमारी उस [illegible] कर ॥ ४ ॥

हे इन्द्र! तेरा पराक्रम बहुत है। हम तो तेरे [illegible] हैं। हे धनिक इन्द्र ! तू इस स्तोताकी कामना [illegible] बहुत बड़ी द्यौने तेरे पराक्रमको मान लिया है [illegible] पृथिवी भी तेरे बलके सम्मुख झुक चुकी है ॥ ५ ॥

(७)

(ऋ० १।५१) सत्य आङ्गिरसः । इन्द्रः । जगती ।

प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये सत्यशुष्माय तवसे मतिं भरे ।
अपामिव प्रवणे यस्य दुर्धरं राधो विश्वायु शवसे अपावृतम् ॥ १ ॥
अध ते विश्वमनु हासदिष्टय आपो निम्नेव सवना हविष्मतः ।
यत्पर्वते न समशीत हर्यत इन्द्रस्य वज्रः श्वथिता हिरण्ययः ॥ २ ॥
अस्मै भीमाय नमसा समध्वर उषो न शुभ्र आ भरा पनीयसे ।
यस्य धाम श्रवसे नामेन्द्रियं ज्योतिरकारि हरितो नायसे ॥ ३ ॥
इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो ।
नहि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत् क्षोणीरिव प्रति नो हर्य तद्वचः ॥ ४ ॥
भूरि त इन्द्र वीर्यं१ तव स्मस्यस्य स्तोतुर्मघवन् कामम्रा पृण ।
अनु ते द्यौर्बृहती वीर्यं मम इयं च ते पृथिवी नेम ओजसे ॥ ५ ॥

शवसे अप-वृतं यस्य विश्व-आयु राधः, प्रवणे अपां-इव, दुः-धरं (अस्ति), (अहं तस्मै) मंहिष्ठाय बृहते बृहत्-रये सत्य-शुष्माय तवसे मतिं प्र भरे ॥१॥

यत् श्वथिता हिरण्ययः हर्यतः इन्द्रस्य वज्रः पर्वते न सम्-अशीत, अध विश्वं ते इष्टये आपः निम्ना-इव हविष्मतः सवना अनु ह असत् ॥ २ ॥

(हे) शुभ्रे उषः ! न अध्वरे अस्मै भीमाय पनीयसे नमसा सं आ भर। यस्य धाम हरितः न अवसे श्रवसे नाम इंद्रियं ज्योतिः अकारि ॥ ३ ॥

(हे) पुरु-स्तुत प्रभु-वसो इन्द्र ! ये त्वा आ-रभ्य चरामसि इमे ते ते वयं (स्मः)। (हे) गिर्वणः ! त्वत् अन्यः गिरः नहि सघत्, (त्वं) क्षोणीः-इव नः तत् वचः प्रति हर्य ॥४॥

(हे) इन्द्र ! ते वीर्यं भूरि (अस्ति। वयं) तव स्मसि । (हे) मघ-वन् ! (त्वं) अस्य स्तोतुः कामं आ पृण। बृहती द्यौः ते वीर्यं अनु ममे, इयं च पृथिवी ते ओजसे नेमे ॥ ५ ॥

शक्तिके लिये आवरण-रहित विश्व [illegible] आयुतक रहनेवाला यश नीचे स्थानमें [illegible] समान दुर्धर है, अपराजित है। मैं उस श्रेष्ठ, [illegible] वाले, सच्चे बलशाली और प्रभावयुक्त इन्द्र [illegible] करता हूं ॥ १ ॥

जब शत्रुनाशक सुनहरा सुन्दर इन्द्र [illegible] नहीं सोया, उसे मारही दिया तब हे इन्द्र! [illegible] स्वागतके लिये, जल जैसे नीचे स्थलोंकी ओर [illegible] हविवाले यजमानके यज्ञोंकी ओर द्रुत ॥ २ ॥

हे सुन्दरि उषा ! इस समय तू यहां [illegible] नीय इन्द्रके लिये नमस्कारपूर्वक हवि ले [illegible] जिस इन्द्रका स्थान घोडोंके समान सुरक्षाके लिये [illegible] लिये विख्यात सामर्थ्ययुक्त और तेजस्वी [illegible]

हे बहुतोंद्वारा प्रशंसनीय और प्रभुतायुक्त [illegible] जो तेरा आश्रय लेकर कर्म करते हैं वे तेरे [illegible] हे प्रशंसनीय इन्द्र ! तेरे विना दूसरा कोई [illegible] नहीं पाता। तू प्रजाओंके समान हमारी [illegible] कर ॥ ४ ॥

हे इन्द्र! तेरा पराक्रम बहुत है। हम तो तेरे [illegible] हैं। हे धनिक इन्द्र ! तू इस स्तोताकी [illegible] बहुत बडी द्यौने तेरे पराक्रमको मान लिया है [illegible] पृथिवी भी तेरे बलके सम्मुख झुक चुकी है ॥ ५ ॥

(ऋ. १।५१) सप्त आङ्गिरसः । इन्द्रः । जगती ।

प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये सत्यशुष्माय तवसे मतिं भरे ।
अपामिव प्रवणे यस्य दुर्धरं राधो विश्वायु शवसे अपावृतम् १
अध ते विश्वमनु हासदिष्टय आपो निम्नेव सवना हविष्मतः ।
यत्पर्वते न समशीत हर्यत इन्द्रस्य वज्रः श्वथिता हिरण्ययः २
अस्मै भीमाय नमसा समध्वर उषो न शुभ्र आ भरा पनीयसे ।
यस्य धाम श्रवसे नामेन्द्रियं ज्योतिरकारि हरितो नायसे ३
इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो ।
नहि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत् क्षोणीरिव प्रति नो हर्य तद्वचः ४
भूरि त इन्द्र वीर्यं१ तव स्मस्यस्य स्तोतुर्मघवन् काममा पृण ।
अनु ते द्यौर्बृहती वीर्यं मम इयं च ते पृथिवी नेम ओजसे ५

शवसे अप-वृतं यस्य विश्व-आयु राधः, प्रवणे अपां-इव, दुः-धरं (अस्ति), (अहं तस्मै) मंहिष्ठाय वृहते बृहत्-रये सत्य-शुष्माय तवसे मतिं प्र भरे ॥१॥

यत् श्वथिता हिरण्ययः हर्यतः इन्द्रस्य वज्रः पर्वते न सम्-अशीत, अध विश्वं ते इष्टये आपः निम्ना-इव हविष्मतः सवना अनु ह असत् ॥ २ ॥

(हे) शुभ्रे उषः ! न अध्वरे अस्मै भीमाय पनीयसे नमसा सं आ भर। यस्य धाम हरितः न अवसे श्रवसे नाम इंद्रियं ज्योतिः अकारि ॥ ३ ॥

(हे) पुरु-स्तुत प्रभु-वसो इन्द्र ! ये त्वा आ-रभ्य चरामसि इमे ते ते वयं (स्मः)। (हे) गिर्वणः ! त्वत् अन्यः गिरः नहि सघत्, (त्वं) क्षोणीः-इव नः तत् वचः प्रति हर्य ॥४॥

(हे) इन्द्र ! ते वीर्यं भूरि (अस्ति। वयं) तव स्मसि। (हे) मघ-वन् ! (त्वं) अस्य स्तोतुः कामं आ पृण। बृहती द्यौः ते वीर्यं अनु ममे, इयं च पृथिवी ते ओजसे नेमे ॥ ५ ॥

शक्तिके लिये आवरण-रहित जिस [illegible] आयुतक रहनेवाला यश नीचे स्थानमें [illegible] समान दुर्धर है, अपराजित है। मैं उस श्रेष्ठ, [illegible] वाले, सच्चे बलशाली और प्रभावयुक्त इन्द्र [illegible] करता हूं ॥ १ ॥

जब शत्रुनाशक सुनहरा सुन्दर इन्द्र [illegible] नहीं सोया, उसे मारही दिया तब हे इन्द्र ! [illegible] स्वागतके लिये, जल जैसे नीचे स्थलोंकी ओर [illegible] हविवाले यजमानके यज्ञोंकी ओर झुका ॥ २ ॥

हे सुन्दरि उषा ! इस समय तू यज्ञमें इन्द्र [illegible] नीय इन्द्रके लिये नमस्कारपूर्वक हवि ले आ, [illegible] जिस इन्द्रका स्थान घोड़ोंके समान सुरक्षाके लिये [illegible] लिये विख्यात सामर्थ्ययुक्त और तेजस्वी बनाता [illegible]

हे बहुतोंद्वारा प्रशंसनीय और प्रभुतायुक्त [illegible] जो तेरा आश्रय लेकर कर्म करते हैं वे तेरे भक्त [illegible] हे प्रशंसनीय इन्द्र ! तेरे बिना दूसरा कोई [illegible] नहीं पाता। तू प्रजाओंके समान हमारी [illegible] कर ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! तेरा पराक्रम बहुत है। हम तो तेरे [illegible] हैं। हे धनिक इन्द्र ! तू इस स्तोताकी कामना [illegible] बहुत बड़ी द्यौने तेरे पराक्रमको मान लिया [illegible] पृथिवी भी तेरे बलके सम्मुख झुक चुकी है ॥ ५ ॥

(ऋ. १।५३)

७. अभितः इदं वसु तव इत् चेकिते— चारों ओर जो धन दीख रहा है, वह सब तेराही है।

८. संगृभ्य आ भर—उस धनको लेकर हमें दे दो। (मं. ३)

इन्द्रका दान

इन्द्रके पास धन है, उसका वह दान करता है और जनताकी उन्नति करता है—

(ऋ. १।५३)

१. अश्वस्य, गोः, यवस्य दुरः, वसुनः इनः पतिः- इन्द्र घोडों, गौओं, जौ आदिका दाता, तथा धनका स्वामी है। (मं. २)

२. शिक्षानरः अकामकर्शनः सखिभ्यः सखा— इंद्र शिक्षा देनेवाला नेता, किसी भक्तकी आशाका भंग न करनेवाला और मित्रोंका भी मित्र (अर्थात् हर प्रकारके दानसे सहायता करनेवाला) है। (मं. २)

(ऋ. १।५५)

३. हस्तयोः अप्रक्षितं वसु विभर्षि— तू अपने हाथोंमें (दान करनेके लिये) अक्षय धन धारण करता है। (मं. ८)

इन्द्रके पास धन है, उसका व्यय वह अपने भोग बढानेके लिये नहीं करता, परंतु जनताकी भलाईके कार्यमें करता है। वह गौवें बाँटता है, वीरोंको घोडे देता है, धन और अन्न देता है और सब जनताका सुख जिस कार्यसे बढ सकता है, वही कार्य करता है। विशेषतः सब जनताकी सुरक्षा वह करता है, क्योंकि सुरक्षासे ही जनता अपनी हरएक प्रकारकी उन्नति कर सकती है।

अब इन्द्रके कुछ कर्म देखिये—

इन्द्रके मनुष्य-हितकारी कर्म

इन्द्र सब जनताके हित करनेके लिये कर्म करता है। इसके सभी कर्म जनताका हित करनेके लिये होते रहते हैं—

(ऋ. १।५१)

१. यस्य मानुषा (कर्माणि), द्यावः न, विचरन्ति- जिसके मनुष्योंका हित करनेके लिये किये जानेवाले कर्म, सूर्य-किरणोंके समान, चारों ओर फैले हैं। (मं. १)

२. शत-क्रतुः— सैकडों कर्म करनेवाला (मं. २)

३. सुक्रतुः— उत्तम जनताके हित करनेवाला (मं. ३)

(ऋ. १।५२)

४. संभृतक्रतुः— अनेक (मनुष्योंके लिये भरण-पोषणके कार्य करनेवाला। (मं. ८)

५. मानुषप्रवनाः ऊतयः नृषाचः इन्द्रं अनु अमदन्— मनुष्योंके हितार्थ संरक्षक संघटित वीरोंने स्वयं तेजस्वी इन्द्रके प्रदान करके आनंदित किया। (मं. ३)

(ऋ. १।५३)

६. त्वं ऊतिभिः सुश्रवसं, वामभिः आविथ। त्वं यूने सचे कुत्सं न्यधयः— तूने सुरक्षाकी साधनोंसे सुश्रवा की रक्षा की। तूने तरुण सुश्रवा राजाके लिये कुत्स, आयुको वशमें कर दिया। (मं. १०)

इन्द्रने निम्नलिखित कार्य किये, ऐसा इस

(ऋ. १।५१)

७. त्वं अंगिरोभ्यः गोत्रं अप वृणोः— अंगिरा वंशके लोगोंके लिये गौओंकी सुरक्षाके लिये खुला कर दिया। (मं. ३)

८. अन्नये शतदुरेषु गातुवित्- द्वारोंवाले असुरोंके कारागृहमें बंद किया गया था, उसको छुटकारा होनेका मार्ग बताया। (मं. ३)

९. विमदाय ससेन चित् वसु अवः लिये सस्य-धान्य-के साधन धन दिया। (मं. ३)

१०. ववसानस्य आजौ रक्षिता- सुरक्षित किया। (मं. ३)

११. त्वं अपां अपिधाना अप वृणोः— जलोंके बंधनोंको तोडकर जल-प्रवाह बहनेयोग्य (शत्रुका वध करके उसने जलोंको रोक रखा था, वे सब मानवोंके हितके खुले किये, जिससे जल बहने जनताको पीनेके लिये मिलने लगा।) (मं. ४)

१२. पर्वते दानुमत् वसु अधारयः- किलेमें) दान देनेयोग्य धन रख दिया। (कि इसका उपयोग जनताके हितके लिये किया (मं. ४)

२. पिप्रोः पुरः प्र अरुजः- तू (इन्द्र) ने पिपु- के नगरोंका नाश किया ।

दस्युहत्येषु ऋजिश्वानं प्र आविध- असुरोंका के युद्धोंमें ऋजिश्वाकी सुरक्षा की । (मं. ५)

त्वं शुष्णहत्येषु कुत्सं आविध- तू (इन्द्र) ने ुरोंके साथ किये जानेवाले युद्धोंमें कुत्सकी रक्षा की।

अतिथिग्वाय शम्बरं अरन्धयः— अतिथिग्व लिये शंबर असुरका वध किया ।

महान्तं अर्बुदं पदा नि क्रमीः- बडे अर्बुद पांवसेही लताड दिया ।

सनात् त्वं दस्युहत्याय जज्ञिषे- तू सदाही । वध करनेके लिये बल करता है । (मं. ६)

आर्यान् दस्यवः विजानीहि- आर्य और दस्यु- हिचान ।

अव्रतान् शासत् वर्हिष्मते रन्धय— अनियम- वालोंको दण्ड देते हुए, संयमी लोगोंके हित करनेके नको छिन्नभिन्न कर ।

शाकी यजमानस्य चोदिता भव- शक्तिमान् यज्ञकर्मकी प्रेरणा कर । (मं. ८)

अनुव्रताय अपव्रतान् रन्धयन्- अनुकूल कर्म ालोंके हितके लिये अपव्रती कुकर्मी दुष्टोंका नाश कर ।

आभूभिः अनाभुवः शयन्- मातृभूमिके द्वारा मातृभूमिके विरोधकोंका नाश कर ।

वृद्धस्य चित् वर्धतः स्तवानः- बढनेवालेसे भी बढनेवालेकी स्तुति कर ।

वज्रः संदिहः वि जघान— (तेरे भक्त) मिलकर बढनेवाले शत्रुओंको मार दिया । (यह प्रभुकी उनका फल है ।) (मं. ९)

ते सहः सहसा तक्षत्- तेरे बलको अपने बलसे या । (परस्परकी संघटनासे बल बढाया ।)

ते शवः मज्मना वि बाधते- तेरा बल वेगसे को विद्ध करता है । (मं. १०)

इन्द्रः काव्ये उशने सचा मन्दिष्ट- इन्द्र कवि- उशनाके घर साथ बैठकर तृप्त हुआ ।

उग्रः यायिं स्रोतसा अपः निः अस्रजत्— वीरने बर्फके पहाडसे झरनोंका जलप्रवाह बहा दिये ।

शुष्णस्य दंहिताः पुरः वि ऐरयत्— शुष्ण असुरके सुदृढ नगर तोड दिये । (मं. ११)

वृषपानेषु रथः आतिष्ठसि— बलवर्धक सोम- पान करनेके स्थानको पहुंचनेके लिये रथपर चढता है ।

शार्यातस्य (सोमाः) प्रभृताः— शर्यात- पुत्रके सोमरस (तुम्हारे लिये) भरकर रखे हैं । (मं. १२)

कक्षीवते अर्मां वृचयां अददाः— कक्षीवान्को तरुणी वृचयाका प्रदान किया ।

वृषणश्वस्य मेना अभवः— वृषणश्वके लिये तू मेना (स्त्री) बना । (मं. १३)

इन्द्रः निरेके सुध्यः अश्रायि— इन्द्रकाही विपत्कालमें उत्तम बुद्धिमान् लोगोंको आश्रय करनेयोग्य है ।

पञ्चेषु दुर्यः— अंगिरस कुलवालोंका इन्द्र सहायक है ।

इन्द्रः अश्वयुः, गव्युः, रथयुः, वसूयुः, रायः प्रयन्ता क्षयति- इन्द्र घोडे, गायें, रथ, धन और ऐश्वर्यका दाता है । (मं. १४)

त्वं नर्ये तुर्वशं यदुं वय्यं तुर्वीतिं, कुत्स्ये धने रथं एतशं आविथ— तूने मनुष्योंके हित करनेवाले तुर्वश यदु, वय्य तुर्वीति और शत्रुनाशक युद्धमें रथी एतशकी रक्षा की । (मं. ५४।६)

इन मन्त्रभागोंमें अग्निरोंको सहायता की, अग्निके लिये कारागारमें मदद दी,विनदको धान्य और धन दिया, वक्षणको युद्धभूमिपर सहायता की, ऋजिश्वाको शत्रुनाश करनेमें सहायता दी, कुत्स पिप्रु और अतिथिग्वको सहायता की, आर्य और दस्युओंका विभाग करके आर्योंको सहायता दी, धार्मिक लोगों- की सुरक्षा की और अधार्मिकों अपने कुकर्मोंसे रोक दिया, कविपुत्र उशनाको तृप्त किया, कक्षीवान्को अर्मा स्त्रीका दान दिया, इसी तरह वृषणश्वको मेना दी, तुर्वश, नर्य, यदु, वय्य और तुर्वीतिको युद्धमें सहायता देकर विजय प्राप्त कराया ।

इस तरह इन्द्रने सैकडों जनताके हितके कर्म किये हैं । अंगिरस, उशना आदिकोंके बडे बडे गुरुकुल थे, जहां सहस्रों छात्र पढते थे, अंगिरसोंका कुल विद्या-प्रचारके लिये प्रसिद्ध है। अग्नि प्रदीप्त करनेका अधिष्कर अंगिरसोंनेही किया था । आयुर्वेदका विस्तार करनेवाले भी वेही थे । इसलिये इनको सहायता करनेका अर्थ जनताकी सहायता करनाही है ।

ान् बलको और स्थायी सामर्थ्यको बढाते हैं, वे अपने । बढें । तेरा क्षात्र बल बडा है और तेरी बुद्धि भी य है। (मं. ८)

४. अपां धरुण-हरं तमः अतिष्ठत्, वृत्रस्य जठरन्तः पर्वतः । वज्रिणा हिताः प्रवणेषु अनुस्थाः अभि जिघ्नते–जलोंको रोकनेवाला अन्धकार था, वृत्रके बीचमें पर्वत था, घेरनेवाले वृत्रने रुकी हुई नदियों गतिहर दीं। (मं. १०)

(ऋ. १।५५)

१. भीमः तुविष्मान् चर्षणिभ्यः आतपः तेजसे शिशीते— भयंकर शक्तिशाली वीर सब प्रजाजनोंको ता बढ़ानेके हेतु अपना वज्र तीक्ष्ण करता है (मं. १)

२. सः युध्मः ओजसा सनात् पनस्यते— वह कुशल वीर अपने प्रतापसे सदाही स्तुतिके लिये योग्य । मं. २)

३. देवता (त्वं) वीर्येण अति प्रचेकिते— तू अपने वीर्य पराक्रमसे अत्यंत तेजस्वी दीखता है। (मं.३)

७. विश्वस्मै कर्मणे पुरोहितः— सब कर्मोंका नेता । (मं. ३)

११. सः जनेषु इंद्रियं चारु प्रब्रुवाणः वचस्यते-इन्द्र सब मानवोंमें विशेष प्रभाव दिखानेके कारण प्रशंसित है। (मं. ४)

१२. वृषा मघवा धेनां क्षेमेण इन्वति, हर्यतः प्रियः भवति- वह बलवान् इन्द्र जब रक्षा करनेसे स्तुति करता है, तब वह भक्तके लिये प्रिय होता है।

१३. श्रुतः अपाढं सहः तन्वि दधे । कर्तृभिः कृतासः ते तनूषु भूरयः क्रतवः- प्रसिद्ध और घो बल तेरे शरीरमें है । कर्ताओंसे घेरे हुए, तेरे रोमें अनेक कर्म हैं। (मं. ८)

(ऋ. १।५६)

४४. सः हरियोगं हिरण्ययं ऋभ्वसं रथं आवृत्य रक्षं पाययते— वह इन्द्र घोडे जोते हुए ऐसे सोनेके सुंदर रथको पास रखकर बडे कार्यके लिये बल प्राप्त ताहै । (बलवर्धक सोमरस पीता है)। (मं. १)

४५. दस्रस्य विदथस्य पतिं सहः तेजसा अधि रोह (ति)— बलसे होनेवाले युद्धके अधिपति इन्द्रको शत्रुनाशका सामर्थ्य तेजके साथ प्राप्त होता है (मं. २)

४६. सः तुर्वणिः महान्, अरेणु तुजा शवः, गिरेः भृष्टिः न, पौंस्ये भाजते- वह शत्रुनाशक इन्द्र बडा है, उसका निर्मल शत्रुनाशक बल, पर्वतके शिखरके समान, युद्धमें चमकता है। (मं. ३)

४७. आयसः दुध्रः मायिनं शुष्णं आभूषु दामनि नि रमयत्- लोहेका वज्र वर्तनेवाले दुर्धर इन्द्रने कपटी शुष्णको कारागृहमें बेडियोंमें रख दिया। (मं. ३)

(ऋ. १।५७)

४८. शवसे अपवृतं यस्य विश्वायुः राधः दुर्धरं- शक्तिके लिये जिसकी सब आयुभर प्रसिद्धि है, (वह सचमुच) दुर्धर बल है, अजिंक्य सामर्थ्य है। (मं. १)

४९. सत्यशुष्मः- जिसका बल सच्चा सामर्थ्य है। (मं. १)

५०. बृहत्-रयिः- बडे धनवाला।

५१. तवस्- सामर्थ्यवान् (मं. १)

५२. अथिता हिरण्ययः वज्रः पर्वते न सं अशीत- शत्रुनाशक सुनहरा वज्र पर्वत-निवासी (वृत्र) पर सोया नहीं (पडा, उसे मारकर कामयाब हुआ।) (मं. २)

५३. यस्य धाम अवसे श्रवसे इंद्रियं ज्योतिः अकारि— जिस वीरका स्थान (सब लोगोंकी) सुरक्षाके लिये, अन्नके लिये और बलके लिए एक तेजस्वी ज्योति जैसा बनाया है। (मं. ३)

५४. ते वीर्यं भूरि- तेरा पराक्रम बडा भारी है। (मं.५)

५५. विश्वं केवलं सहः सत्रा (त्वं) दधिषे— सब शुद्ध बल तू अपने साथ धारण करता है। (मं.६)

इन्द्रकी वीरतामें उसका बल, सामर्थ्य, प्रभुत्व, वीर्य, पराक्रम, प्रभाव, शत्रुका पराभव करनेका सामर्थ्य आदि सब गुण आगये हैं। अब इन्द्रकी युद्ध-शक्ति देखिये—

इन्द्रकी युद्धविद्या

सव्य ऋषिके ७२ मंत्र हैं और वे केवल इन्द्र देवताके ही हैं। इनमें क्षत्रियोंके युद्धविद्याका विशेष तर वर्णन है, देखिये-

(ऋ. १।५१)

१. आजौ अर्दि नर्तयन्— युद्धमें पर्वतके समान ऊंचे

ऋको नचाता रहता है। विविध प्रकारसे शत्रुपर शस्त्र-प्रहार करता है। (मं. १)

२. अहिं वृत्रं शवसा अवधीः— अहि वृत्रको अपने बलसे मारा, वृत्रका वध किया। (मं. ४)

३. त्वं (तान्) मायिनः मायाभिः अप अधमः— तू (इन्द्र) ने उन कपटी शत्रुओंको कपटोंसेही नीचे गिरा दिया। (कपटीके साथ कपटयुक्तियोंसे, कुशल शत्रुसे कुशलतापूर्वक किये युद्धसे लडना चाहिये।) (मं. ५)

४. शत्रोः विश्वानि वृष्ण्या अव वृश्च— शत्रुके सब बलोंको काट दे। (मं. ७)

(ऋ. १।५२)

५. सः सहस्रं ऊतिः तविषीषु वावृधे— वह इन्द्र सहस्रों रक्षाके साधनोंसे युक्त सेनाओंमें बढता है, उसका पराक्रम बढता है। (मं. २)

६. सः द्वरिषु द्वरः— वह इन्द्र घेरनेवाले शत्रुओंको भी घेरनेवाला है। (मं. ३)

७. धृषमाणः वज्री इन्द्रः बलस्य भिनत्, त्रितः परिधीन् इव— शत्रुपर हमला करनेवाले वज्रधारी इन्द्रने बल असुरको मारा, जैसा त्रितने किलेकी दिवारोंको तोड दिया था। (मं. ५)

८. दुर्गृभिश्वनः प्रवणे वृत्रस्य हन्वोः तन्यतुं वि जघान— युद्धमें पकडनेके लिये कठिन वृत्रके हनुपर निम्नभागमेंही वज्र मारा, तब (घृणा ईं परिचरति) उस वज्रसे तेजका फैलाव हुआ और (शवः तित्विषे) बल भी चमक उठा, पश्चात् (अपः वृत्वी रजसः बुध्नं आ अशयत्) जलको रोकनेवाला वह असुर भूमिके ऊपर गिर गया, मर गया। (मं. ६)

९. त्वष्टा ते युज्यं शवः ववृधे, अभिभूति-ओजसं वज्रं ततक्ष— त्वष्टाने तेरे योग्य बल बढाया और शत्रुका पराभव करनेवाला वज्र निर्माण किया। (मं. ७)

१०. मनुषे अपः गातूयन् हरिभिः वृत्रं जघन्वान्— मनुष्यका हित करनेके लिये जलप्रवाहोंको बहाते हुए अपने घोडोंसे— किरणोंसे— वृत्रको मारा। (मं. ८)

११. बाह्वोः आयसं वज्रं अयच्छथाः— हाथोंमें तुमने फौलादका वज्र धारण किया। (मं. ८)

१२. ते अमवान् वज्रः सुतस्य धानस्य वृत्रस्य शिरः शवसा अहेः स्वनात् भियसा द्यौः चित् बलवान् वज्र जब सोमके उत्साहमें, मस्तमें वृत्रके सिरको बलसे तोडने लगा, तब इस शब्दसे भयके कारण आकाश भी कांप उठा।

१३. युध्यतः अस्य (अन्तं) न करते समय इस इन्द्रकी शक्तिका पार (इसके नहीं सकते। (मं. १४)

१४. मरुतः आजौ त्वा अनुमदन्— युद्धमें तेरे साथ रहकर आनंद पाया, तब वधेन वृत्रस्य आनं प्रति नि जघन्थ— वाले वज्रसे वृत्रके मुखपर तुमने प्रहार किया।

(ऋ. १।५३)

१५. गोभिः अश्विना अमतिं निरुन्धानः युभिः पथिः इन्दुभिः सुमना भव— युक्त सैनिकोंद्वारा निर्बुद्ध शत्रुको घेरकर इन ते पान कर उत्तम उत्साही मनसे युक्त बन।

१६. दस्युं दरयन्तः युतद्वेषसः इषा शत्रुका नाश करनेके बाद हम शत्रुरहित होक भोगोंकी प्राप्तिके कार्योंका प्रारंभ करेंगे। (मं. ४)

१७. यदा ते मदाः, तानि वृष्ण्या, ते त्वा वृत्रहत्येषु अमदन्, (तदा) दक्ष अप्रति वृत्राणि कारवे नि वर्धयः— जब ते वीर उन बलसे होनेवाले कर्मोंको करने लगे, कर्मोंमें जब तुम्हें सोमपानसे आनंद हुआ, तब अप्रतिम वृत्रोंको ज्ञानीके हित करनेके लिये बढा दिया। (मं. ६)

१८. धृष्णुया युधा युधं उप धृषि, हंसि, परावति नमुचिं मायिनं नग्या नि हमला करते हुए तुम एक युद्धसे दूसरे युद्धको जाते हो शत्रुके नगर या किलेको तोड देते हैं, दूसरके वाले कपटी नमुचि असुरको वज्रसे नष्ट कर देते हैं।

१९. त्वं अतिथिग्वस्य तेजिष्ठया वर्तनी उत पर्णयं वधीः, त्वं ऋजिश्वना परिषूतः

पुरः अनानुदः अभिनत्— तूने अतिथिपनके हित लिये तेज वज्रसे करञ्ज और पर्णय नामक शत्रुका वध और ऋजिश्वासे घेरे गये वंगृदके सौ नगर या किले बिना दूसरेकी सहायताके नष्ट कर दिये। (मं. ८)

(ऋ. १।५४)

७. यत् व्रन्दिनः मायिनः धृषत् मन्दिना शितां स्त अशनिं पृतन्यसि धृषतात्मना शम्बरं अव-त्, बृहतः दिवः सानु कोपयः— जब झुण्डके साथ करनेवाले कपटी असुरपर शान्तिके साथ, तीक्ष्ण ो वज्र फेंक दिया, तब धैर्यसे स्वयं ही शम्बर असुरको ेष किया और बड़े द्युलोकमें पहुंचे शिखर कांपने (मं. ४)

८. यत् रोरुवत् वना शुष्मस्य मूर्धनि नि वृणक्षि- गर्जना करता हुआ वज्र शुष्णके सिरपर फेंकता है। ५)

९. बर्हणावता प्राचीनेन मनसा कृणवः, त्वा कः ?- शत्रुका नाश करनेकी बुद्धि सदासे रखनेवाले तेरे (जो तू यह शत्रुनाशका कार्य) करता है, इसलिये तुझसे क श्रेष्ठ और दूसरा कौन है ? (मं. ५)

१३. त्वं नवतिं नव पुरः दम्भयः- तू शत्रुके निन्या-नगर अथवा किले तोड़ दिये। (मं. ६)

(ऋ. १।५५)

१४. स इन्द्रः, अर्णवः न, समुद्रियः नद्यः प्रति णाति- वह इन्द्र, महासागरके समान, समुद्रकी ओर जाने-। नदियोंको अपने अधीन कर लेता है। (मं. २)

१५. उग्रः त्वं तं पर्वतं न मदः नृम्णस्य धर्भणां ज्यासि— तू उग्रवीर उस पर्वतपर बड़े पौरुषके कर्मोंके न स्वामित्व करता है। (मं. ३)

१६. स शुष्मः मज्मना ओजसा जनेभ्यः महानि सेधानि कृणोति, वधं वज्रं निघनिघ्नते त्विषीमते राय (जनाः) धत् दधाति— वह बड़ा इन्द्र अपने ल बलसे जनसमूह हित करनेके लिये बड़े युद्ध करता है, लिये मारक वज्रका प्रहार करनेवाले इन्द्रके ऊपर सब लोग वह हमारी रक्षा करेगा ऐसा) श्रद्धा रखते हैं। (मं. ५)

१७. सः अपस्युः सुयज्युः इमया धिया, ओजसा शिक्षा सदना नि विन्नाशयन्, अधुक्षत् द्योतनीः

कृण्वन्, सर्तवे अपः अवसृजत्- वह कीर्तिमान् उत्तम कर्म करनेवाला, वीर मातृभूमिके साथ बढ़नेवाला, अपने सामर्थ्य-से शत्रुके बनावटी किले नष्ट करता है, आवरणरहित तेज फैलाता है और जलप्रवाहोंको बहाता है। (मं. ६)

२८. ते सारथयः यामिष्ठासः, केताः भूर्णयः त्वा न आदभ्नुवन्ति- तेरे सारथी रथनियन्त्रणमें कुशल हों, तेरे शिक्षित घोड़े (समयपर) तुझे कष्ट न दें। (मं. ७)

(ऋ. १।५६)

२९. त्वावृधा देवी तविषी ऊतये सिषक्ति- तुझसे बढ़ाई गयी दिव्य सेना (जनताकी) रक्षा करनेके लिये (समय-पर) तेरी सेवा करती है। (मं. ४)

३०. वृत्रं अहन्, अपां अर्णवं औब्जः- तूने वृत्रको मारा और जलप्रवाहोंको नीचे बहाया। (मं. ५)

३१. समया पाष्या वृत्रस्य वि अरुजः, अपः अरिणाः— कठोर शस्त्रसे वृत्रको मारा और जलप्रवाहोंको बहा दिया। (मं. ६)

(ऋ. १।५७)

३२. त्वं तं महान् पर्वतं वज्रेण पर्वशः चकर्तिथ- तूने उस बड़े पर्वत (पर रहनेवाले शत्रुके) वज्रसे टुकड़े कर दिये। (मं. ६)

३३. नियुतः अपः सर्तवे अव सृजः- इसके जल-प्रवाहोंको बहा दिया। (मं. ६)

इन मन्त्रभागोंमें युद्धविद्याके पर्वमें अनेक बातोंका उल्लेख है। कपटी शत्रुसे कपटी युद्ध करना, शत्रुके संहा-स्त्रोंसे अपने शस्त्रास्त्र अधिक पैनी बनाना और बनाना, शत्रुसे युद्ध करना, घेरनेवाले शत्रुओंको तोड़कर निकल न दे करना, पर्वतपर रहनेवाले शत्रुसे पर्वतपर युद्ध करना, रखने रथ दौड़ा कर, भूमि-युद्ध करनेवालोंसे भूमिपर युद्ध करना और उनको करना, ये बातें प्रमुख स्थान रखती हैं।

अहि, इन, नमुचि, शम्बर, दस्यु, वर्चि, पर्वत, वृत्र आदि नाम शत्रुके हैं। (वेनुदस्य शतः पुरः अभिनत् । ५।३०।८) वेनुदके सौ किले तोड़ दिये, (नवतिं नव पुरः दम्भयः । ५।३०।६) शत्रुके तिन्यानवे नगर तोड़ दिये। इस शब्द शत्रुका सम्बन्ध इन नामोंसे जोड़ा है। ५।३०।८ का अर्थ ये करते हैं ... तोड़ दिये हैं ... तोड़ दिये हैं। इस तरह ये ... तोड़ दिये हैं ...

नगर ऐसे थे। इससे पता चलता है कि इन्द्रके शत्रु बडे प्रबल थे। इन शत्रुओंका पराभव करनेका कार्य इन्द्रने किया है। कई समझते हैं कि वृत्र आदि शत्रु अनाडी, अपढ और गंवार थे। पर यह कल्पना अशुद्ध है। उक्त प्रकारके बडे भारी नगर बसानेवाले ये शत्रु थे, उत्तम सामर्थ्यवान् किलोंमें वे रहते थे, उनके दुर्ग पर्वतपर, भूमिपर और जलमें रहते थे और ऐसे सैकडों किले थे जिनको तोडकर इन्द्रने शत्रुका पराभव किया था। अर्थात् बडेही प्रबल शत्रुके साथ सामना इन्द्रको करना पडा था, इसमें संदेह नहीं है।

पूर्वोक्त स्थानोंमें कहा है कि इन असुरोंका वध करनेमें इन्द्रकी सहायता कई ऋषियोंको प्राप्त हुई थी। यहां प्रश्न होता है कि, ये ऋषि असुरोंका विरोध क्यों करते थे? ये सब ऋषि हमेशा असुरोंका विरोध करते हैं। असुर अनाडी नहीं थे, उनके नगर सब सुखसाधनोंसे संपूर्ण थे अर्थात् वे उत्तम ज्ञान-विज्ञान-कार्य-कुशलतासे संपन्न थे। उनके बडे राज्य थे। पर ऋषि उनकी राज्यव्यवस्थासे सन्तुष्ट न थे। इसलिये ऋषि उनके साम्राज्यको तोडकर नयी अच्छी शासन व्यवस्थाकी स्थापना करना चाहते थे। यही ऋषियों और असुरोंके मध्यमें झगडेकी बात थी। इन्द्रने ऋषियोंकी सहायता की और असुरोंका नाश किया। इस विषयका विशेष वर्णन 'अत्रि' ऋषिके दर्शनमें विशेष विस्तारसे आनेवाला है। पाठक इसको वहीं देखें।

असुर राक्षसोंका नाम 'पूर्व-देवाः' है। अर्थात् ये पहिले देवही थे। साम्राज्य करनेके बाद वे स्वार्थी होनेके कारण वध्य हुए। ऐसाही हुआ करता है। देवोंकेही दानव अथवा 'रक्षोंके ही राक्षस' बनते हैं। राक्षस प्रारंभमें सुरक्षाके कार्य करते थे, अधिपतीही ये थे। पर येही जनताकी रक्षा करते करते जनताको सताने लगे, इसलिये ऋषियोंको उनके विरुद्ध होना पडा।

राज्य चलानेवाले प्रथम अच्छेही होते हैं, पर कुछ समयके बाद येही अनेः अनेः स्वार्थपरायण होनेके कारण दुष्ट समझे जाते हैं। 'पूर्वदेव' शब्दका यह अर्थ देखिये। राक्षस प्रथम देवही थे, पश्चात् घोर कर्म करने लगे। 'असुर' शब्दके भी येही दो अर्थ हैं, पहिले ये जनताकी भलाईके लिये [illegible] करते थे, पश्चात् ये अपने प्राणोंके [illegible] जनताको दुःख देने लगे, तो येही (असुरः) राक्षस कहलाये। यह कारण है कि ये ऋषि हलचल करते थे। इन्द्र अश्विनौ आदि ऋषियोंके साधारणतः देवासुर-संग्रामका यह मुख्य कारण है का उसके साथ यह संबंध है।

इन्द्र शत्रुका नाश करके जलप्रवाहोंको [illegible] करता है। यही युद्ध-नीति है। जिसके [illegible] विजयी होता है। इसलिये असुर [illegible] करते थे और इन्द्र उन प्रवाहोंको [illegible] लेता था।

उक्त मंत्रभागोंमें संक्षेपसे इस तरहकी [illegible] है। पाठक अधिक विचार करके अधिक [illegible] सकते हैं।

आज्ञा-पालन

(ऋ. १।५४)

१. यः शासं प्रति इन्वति- जो (इन्द्रका) पालन करता है, (इन्द्रका) शासन मानता है। (मं. ७)

२. जनः सत्पतिः राजा शूशुवत्- जनोंका सच्चा पालन-कर्ता राजा बढ जाता है, उन्नत (मं. ७)

इन्द्र सबका राजा है और प्रायः वह [illegible] सदा युद्ध करना पडे तो राज्य-शासनमें आ [illegible] अधिक रहना आवश्यकही है। असुर-राज्योंमें ऋषियोंकी हलचलें और ऋषियोंकी सुरक्षा करनेके वीरोंके युद्ध येही वर्णन वेद भरमें प्रायः अनेक अतः हम कह सकते हैं कि वेदमें वीर-इतिहासही है। समय राजाकी आज्ञापालन करना आवश्यकही है।

सोम-पान

(ऋ. १।५४)

१. इन्द्रपानाः अद्रिदुग्धाः चमूसदः चमसाः तुभ्यं इत्, वि अश्नुहि, कामे [illegible] देवाय मनः कृधि- पीने योग्य, पत्थरोंसे दूहे [illegible] कलशोंमें रखे, बहुत पात्रोंमें भरे, ये सोमरस तुम्हारे हैं, इनका पान करो, इन भक्तोंकी इच्छा पूर्ण इनको धन देनेका विचार करो। (मं. ५)

इन्द्रके सूक्तोंमें तथा अन्य सूक्तोंमें भी सोमपानका वर्णन
इन्द्र तथा सब युध्यमान सैनिक प्रथम सोमपान करते थे
पश्चात् युद्ध करनेके लिये शत्रुपर कूद पडते थे और विजय
थे । इस तरह सोमपानका संबंध आर्यजीवनके साथ
त घनिष्ठ है ।

लूट

(ऋ. १।५३)

१) **ससतां इव (शत्रूणां) रत्नं अविदत्**– असावध
वाले शत्रुओंके धनको वह इन्द्र प्राप्त करता है । (मं.१)
र अपने सैनिकोंको साथ लेकर शत्रुपर हमला करता था,
। परास्त करनेके पश्चात् उसकी संपत्ति लूटकर लाता
और वह धन अपने लोगोंमें यथायोग्य रीतिसे बांट
था ।

वृत्र

(ऋ. १।५२)

१. **इन्द्रः नदीवृतं वृत्रं अवधीत्**– इन्द्रने नदीमें रहने-
, नदीको घेरनेवाले वृत्रका वध किया । (यहां नदीपर
वाला वृत्र है, यह बर्फही हो सकता है, मेघ नहीं ।)

२. **धरुणेषु पर्वतः न अच्युतः**– जलस्थानों-तालाब
दिकोंमें यह वृत्र पर्वत जैसा स्थिर रहता है । (अर्थात् यह
जल-स्थानोंमें स्थिर रहता है, नीचेसे जल बहते रहनेपर
परका बर्फका कवच स्थिर रहता है ।

३. **अर्णांसि उज्जन्**– (इन्द्र) जलप्रवाहोंको नीचेकी
चलाता है । (मं. २)

। मेघ है, ऐसा निरुक्त आदि ग्रंथोंमें कहा है । वेदमंत्रोंमें
र्णन आया है उसका विचार करनेसे वृत्र मेघ ही है, ऐसा
। नहीं होता । सूर्य आतेही वृत्रसे जलप्रवाह शुरू होते
र वृत्र पर्वत, भूमि, नदी आदिपर पडा रहता है, जल-
। इसके कारण रुक जाते है । अर्थात् बर्फ ही वृत्र है जो
ालमें भूमिपर पडता है और सूर्य आनेसे पिघलता है
नदियोंको भरपूर लाते है । नदीही वृत्रको मारा और
प्रवाह बहने लगे ऐसे वर्णन है । ये मेघोंके विषयमें संभव
होते, क्योंकि सूर्य आनेसे मेघोंसे जल नहीं बहने लगते ।
ु बर्फसे जलप्रवाह सूर्यके कारण बहने लगते है ।

अन्धेरेके साथ भी वृत्रका संबंध है । उत्तरीय ध्रुवके पास
तथा उसके आसपासके भूमिप्रदेशमें अनेक मास रहनेवाली
रात्रियां होती हैं, उसी समय अन्धेरा होता है, सर्दी शुरू होती
है, बर्फ पडता है, जलप्रवाह रुक जाते हैं। जब योग्य समयपर
सूर्यका उदय होता है, तब अन्धेरा दूर होता है, प्रकाश
आता है, बर्फ पिघलकर जलप्रवाह बहने लगते हैं, धनधान्य
अन्नादिकी समृद्धि होती है। अस्तु । वृत्र बर्फही है ऐसा
प्रतीत होता है ।

अर्थात् ये युद्ध काल्पनिक, आलंकारिक तथा काव्यमय हैं ।
तथापि वेदमें क्षत्रियकी विद्या इनही काव्योंसे दिखाई देती है
और वर्णन ऐसे शब्दोंसे किये हैं कि वे सदाही सत्य प्रतीत हों ।
अध्यात्मक्षेत्रमें भी ये युद्ध वैसेही सत्य हैं । इसलिये ऐसे
शब्दप्रयोग वेदमंत्रोंमें किये हैं कि जो ये सब अर्थ व्यक्त
करनेमें सदा समर्थ दिखाई देते हैं । इस कारण इनही सूक्तोंमें
ऐसे भी वर्णन हैं कि जो परमात्मामें ही घट सकते हैं। देखिये–

परमात्माके कार्य

निम्नलिखित कर्म इन्द्रके हैं, परन्तु यहां इन्द्र परमात्माका
रूप मानना उचित है–

(ऋ. १।५१)

१. **दृशे सूर्यं दिवि आ अरोहयः**– सबको प्रकाश
दिखानेके लिये सूर्यको द्युलोकमें ऊपर चढाया । (मं. ४)

(ऋ. १।५२)

२. **दृशे सूर्यं दिवि आ अधारयः**– प्रकाश दिखानेके
लिये सूर्यको द्युलोकमें ऊपर धारण किया । (मं. ८)

३. **स्वभूति-ओजाः त्वं अवसे अस्य द्योमनः रजसः पारे ओजसः प्रतिमानं चकृषे, पथिभिः दिवं अपि**– अपने निज बलसे युक्त तूने मानवोंकी सुरक्षाके लिये
इस आकाशके और अन्तरिक्षके भी परे अपने बलकी प्रतिमा
जैसी करके रखी है, शत्रुका पराभव करता हुआ तू द्युलोक-
तक व्याप्त है । (मं. १२)

४. **त्वं पृथिव्याः प्रतिमानं भुवः**— [illegible]
रूप हुआ है, अर्थात् तेरे लिये पृथ्वीको उपमा है ।

५. **ऋष्ववीरस्य बृहतः पतिः भूः**— [illegible]
[illegible] इस विस्तृत द्युलोकका तू स्वामी है ।

६. **त्वं महिम्ना सत्यं विश्वं अन्तरिक्षं आपृणः**— [illegible]
[illegible]

७. **त्वावान् अन्यः नकिः**- तेरे जैसा दूसरा कोई भी नहीं है। (मं. १३)

८. **द्यावापृथिवी यस्य व्यचः न अनु आनशे**— द्युलोकसे पृथ्वीपर्यंतका सब विश्व जिसके विस्तारको नहीं व्याप सकता।

९. **रजसः सिन्धवः अन्तं न आनशुः**— अन्तरिक्ष और समुद्र जिसका पार नहीं व्याप सकते।

१०. **एकः अन्यत् विश्वं आनुषक् चकृपे**— एकही प्रभु दूसरे विश्वको क्रमपूर्वक करता है। (मं. १४)

(ऋ. १।५४)

११. **ते शवसः अन्तः नहि**— तेरे बलका अन्त नहीं है। (मं. १)

१२. **रोरुवत् नद्यः वना अक्रन्दयः**- गर्जना करनेवाली नदियोंको गर्जना करते हुए तुमने प्रवाहित किया।

१३ **क्षोणीः भियसा कथा न सं आरत ?**— पृथ्वी तेरे भयसे क्यों न कांपेगी ? अवश्य भयभीत होगी। (मं. १)

(ऋ. १।५५)

१४. **अस्य वरिमा दिवः वि पप्रथे, पृथ्वी महा इन्द्रं न प्रति**— इस इन्द्रका बडापन द्युलोकसे भी और पृथ्वीसे भी विस्तृत है। (मं. १)

ये वर्णन परमात्माके विषयमें ही सार्थ दीखते हैं।

प्रार्थना

(ऋ. १।५३)

१. **राया, इषा, वाजेभिः, वीरशुष्मया, गोअग्रया, अश्ववत्या, प्रमत्या सं रभेमहि**—हमें धन, अन्न, वीरोंका प्रभाव, गौ और घोडोंसे युक्त उत्तम बुद्धि और उससे हम बडे कार्योंका प्रारंभ करें। (मं. ५)

२. **उदचि देवगोपाः सखायः शिवतमाः सुवीराः द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः**- मंत्रोंका यन होनेके बाद हम देवोंसे रक्षित, उनके मित्र और अत्यंत प्रिय हों। हम उत्तम वीर होते हुए लंबी आयुको लंबी करके धारण करें। (मं. ११)

(ऋ. १।५४)

३. **शेवृधं जनायाद् महि तव्यं क्षत्रं अस्मे धाः**- शान्तिको बढानेवाला, शत्रुको परास्त करनेवाला महान् क्षात्रबल हमें दे। (मं. ११)

४. **सूरीन् पाहि, मघोनः रक्ष, नः सु अपत्ये रायै धाः**- विद्वानोंकी और धनवानोंकी सुरक्षा कर, उत्तम संतान, अन्न और धन दे। (मं. ११)

युद्धसे उपरति

(ऋ. १।५४)

१. **अस्मिन् अंहसि पृत्सु नः मा (प्रक्षेष्टमी)**, इस पापमय युद्धमें हमें न डाल। (मं. १)

इस तरह युद्धसे निवृत्त होनेके विचार भी यहां हैं। अस्तु, इस रीतिसे सव्य ऋषिके ये दिव्य काव्य बडे उत्साहपूर्ण स्फूर्ति देनेवाले और बडे बोधप्रद हैं। पाठक इनका विचार करें।

सव्य ऋषिका दर्शन समाप्त

सव्य ऋषिके दर्शनकी

विषयसूची

विषय	पृष्ठ
सव्य-ऋषिका तत्त्वज्ञान	२
(ऋ. १।५१–५७ तकके सभी सूक्त तथा सभी मंत्र 'इन्द्र' देवताके हैं)	३
सव्य-ऋषिका दर्शन	,,
(प्रथम मण्डल, दशमानुवाक)	,,
(१) इन्द्र	६
(२) ,,	९
(३) ,,	११
(४) ,,	१३
(५) ,,	१४
(६) ,,	१६
(७) ,,	१७
इन्द्रका अप्रतिम प्रभाव	,,
वीरकी विद्या-प्रवीणता	,,
धनवान् इन्द्र	१८
इन्द्रका दान	,,
इन्द्रके मनुष्य-हितकारी कर्म	२०
वीर इन्द्र	२१
इन्द्रकी युद्ध-विधा	२४
आज्ञा-पालन	,,
सोम-पान	२५
लट्ट	,,
वृत्र	,,
परमात्माके कार्य	२६
प्रार्थना	,,
युद्धसे उपरति	

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(७)

नोधा ऋषिका दर्शन

(ऋग्वेदमें एकादशवाँ अनुवाक)

लेखक

भट्टाचार्य पण्डित श्रीपाद दामोदर सातवलेकर,

अध्यक्ष स्वाध्याय-मण्डल, औन्ध [illegible]

मुद्रक तथा प्रकाशक- पंडित श्रीपाद सातवळेकर, B. A.
सातवलेकर मुद्रणालय, औंध (जि. सातारा)

नोधा ऋषिका तत्त्वज्ञान

गौतम ऋषिका पुत्र नोधा नामक ऋषि है। इसका दर्शन ऋग्वेदके ग्यारहवें अनुवाकमें है। इसके साथ आठवें मण्डलमें ८८ वाँ सूक्त और नवम मण्डलमें ९९ वाँ सूक्त इसीके दर्शन से सम्बन्धित हैं। इसके दर्शनकी सूक्तवार गणना ऐसी है—

सूक्तानुसार मन्त्र-गणना

ऋग्वेदमें प्रथम मण्डल

एकादश अनुवाक

नोधा गौतम ऋषि

सूक्त	देवता	मंत्र-संख्या
५८	अग्निः	९
५९	,, वैश्वानरः	७
६०	,,	५
६१	इन्द्रः	१६ (अथर्ववेद २०।३५।१-१६)
६२	,,	१३
६३	,,	९
६४	मरुतः	१५

अष्टम मण्डल प्रथम दो मन्त्र

८८	इन्द्रः	६ (अथर्व. २०।९१।१-२; ,, २०।४९।४-५)

नवम मण्डल

९३	पवमानः सोमः	५

कुल मन्त्र-संख्या ८५

देवतावार मन्त्र-संख्या

१ इन्द्रः	५०
२ अग्निः	११
३ मरुतः	१५
४ सोमः	५
कुल मन्त्र-संख्या	८५

अग्निके मंत्रोंमें ५९ वे सूक्तके मंत्र 'वैश्वानर अग्नि' के हैं। इस नोधा ऋषिके मंत्र अथर्ववेदमें हैं पर ऋग्वेदके ही मंत्र वैसेके वैसे अथर्ववेदमें हैं—

ऋग्वेद	देवता	अथर्ववेद
१।६१।१-१६	इन्द्रः	२०।३५।१-१६
८।८८।१-२	,,	२०।९१।१-२
		२०।४९।४-५

अर्थात् ऋ. ८।८८ सूक्तके प्रथम दो मंत्र अथर्ववेदमें दो बार आये हैं। अथर्ववेदके नोधाके मंत्र ऋग्वेदके ही हैं इसलिये उनका पृथक् विचार करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। अथ. २०।३५) का ऋषि ऋग्वेदमें नोधा गौतम है, सर्वानुक्रमणीमें इसका ऋषि नोधा गौतम कहा है, [illegible] भारद्वाज भी कहा है पर निश्चित [illegible] है। [illegible] इस तरहकी भूलें बहुत [illegible] है, नोधाका ही है।

[illegible]

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

नोधा ऋषिका दर्शन

[ऋग्वेदका एकादश अनुवाक]

(१) अजर अमर अग्नि।

(ऋ.१।१४८) नोधा गौतमः । अग्निः । जगती, ३—५ त्रिष्टुप् ।

नू चिन् सहोजा अमृतो नि तुन्दते होता यद् दूतो अभवद् विवस्वतः ।
वि साधिष्ठेभिः पथिभी रजो मम आ देवताता हविषा विवासति
था स्वमग्न उचथमो अजरस्तृष्वविष्यन्नतसेषु तिष्ठसि ।
अत्यो न पृष्ठं प्रुषितस्य रोचते दिवो न सानु स्तनयन्नचिक्रदत्
क्राणा रुद्रेभिर्वसुभिः पुरोहितो होता निषत्तो मनुषो विशामुभे ।
रथो न विक्ष्वृजसान आयुषु व्यानुषग्वार्या देव ऋण्वसि

'नौधस्' नामक सामगान है जो नोधा ऋषिका गाया है। 'अस्मा इदु' (ऋ.१।६१) यह सूक्त नोधा ऋषिका है। नोधाके मंत्र राज्याभिषेकके समय बोले जाते हैं। यह ऐतरेय ब्राह्मणमें नोधा ऋषिके विषयमें कहा है।

ऋग्वेदमें इस ऋषिका नाम निम्नलिखित मंत्रोंमें आया है–

सद्यो भुवद् वीर्याय नोधाः। (ऋ. १।६१।१४)
सनायते गोतम इन्द्र नव्यं।
सुनीथाय नः शवसान नोधाः (ऋ. १।६२।१३)
नोधः सुवृक्तिं प्रभरा मरुद्भ्यः। (ऋ. १।६४।१)
नोधा इवाविरकृत प्रियाणि। (ऋ. १।१२४।४)

इन मंत्रोंमें 'नोधा' ऋषिका नाम आया है और गोत्र भी 'गोतम' कहा है। ये मंत्र यहां दिये हैं। विषयमें इतनाही पता लगता है। षड्विंश ब्राह्मणमें नोधा का थोडासा उल्लेख आया है।

अस्तु इस तरह नोधा ऋषिका तत्त्वज्ञान इस से विदित हो सकता है।

भाद्रपद
संवत् २००३

निवेदक
श्री. दा. सातवलेकर
स्वाध्याय-मण्डल
औंध, जि. सातारा

ॐ

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

नोधा ऋषिका दर्शन

[ऋग्वेदका एकादश अनुवाक]

(१) अजर अमर अग्नि।

(ऋ.१।१५८) नोधा गौतमः। अग्निः। जगती, ६—९ त्रिष्टुप्।

नू चित् सहोजा अमृतो नि तुन्दते होता यद् दूतो अभवद् विवस्वतः।
वि साधिष्टेभिः पथिभी रजो मम आ देवताता हविषा विवासति १
आ स्वमग्न युवमानो अजरस्तृष्वविष्यन्नतसेषु तिष्ठति।
अत्यो न पृष्ठं प्रुषितस्य रोचते दिवो न सानु स्तनयन्नचिक्रदत् २
क्राणा रुद्रेभिर्वसुभिः पुरोहितो होता निषत्तो रयिषाळमर्त्यः।
रथो न विक्ष्वृञ्जसान आयुषु व्यानुषग्वार्या देव ऋण्वति ३

अन्वयः— १ नू चित् सहो-जाः अमृतः (अग्निः) नि तुन्दते। यत् विवस्वतः दूतः अभवत्, साधिष्टेभिः पथिभिः रजः वि ममे, देवताता हविषा आ विवासति॥

२ अजरः (अग्निः) स्वं नभ्य युवमानः तृषु अविष्यन् नतसेषु तिष्ठति। प्रुषितस्य पृष्ठं, अत्यः न, रोचते। दिवः सानु न स्तनयन् अचिक्रदत्॥

३ क्राणा, रुद्रेभिः वसुभिः पुरोहितः, होता, अमर्त्यः रयिषाट् निषत्तः देवः, रथः न, विक्षु ऋञ्जसानः आयुषु आनुषग् वार्या वि ऋण्वति॥

अर्थ— १ निःसन्देह बलके साथ उत्पन्न हुआ यह अमर (अग्नि देव) कभी व्यथित नहीं होता। जिस समय यह विवस्वानका सहायकारी हुआ, उस समय उत्तम सहायक मार्गोंसे उसने अन्तरिक्ष-लोकमें गमन किया (प्रकाश किया और) देवताओंकी शक्ति फैलानेके कार्यमें (यज्ञमें) हविके अर्पणसे (देवोंका) अदरातित्व भी किया॥

२ जरारहित (अग्नि) अपने मित्रके साथ मिलता हुआ, तुरन्तही (साथ) रहकर, काष्ठोंपर (जलता) रहता है। घी सिंचित होनेपर वह, घोड़ेके समान, शोभता है। और पुलोंके शिखर (पर रहनेवाले मेघ) के समान गर्जता हुआ (कारबार) शब्द करता है॥

३ कर्तृत्वशाली, रुद्रों और वसुओंद्वारा पहले स्थापन किया हुआ, हवनकर्ता, अमर (मनुष्य। मनोंमें ओज धर लेनेवाला (यहां) विराजमान् (हुआ) देव, रथी जैसा, प्रजाओंमें वर्तनेवाला होकर, सब लोगोंने अपने, स्वीकार करने योग्य धन को लाता है॥

वि वातजूतो अतसेषु तिष्ठते वृथा जुहूभिः सृण्या तुविष्वणिः ।
तृषु यदन्ने वनिनो वृषायसे कृष्णं त एम रुशदूर्मे अजर ४
तपुर्जम्भो वन आ वातचोदितो यूथे न साह्वाँ अव वाति वंसगः ।
अभिव्रजन्नक्षितं पाजसा रजः स्थातुश्चरथं भयते पतत्रिणः ५
दधुष्टा भृगवो मानुषेष्वा रयिं न चारुं सुहवं जनेभ्यः ।
होतारमन्ने अतिथिं वरेण्यं मित्रं न शेवं दिव्याय जन्मने ६
होतारं सप्त जुह्वो३ यजिष्ठं यं वावृतो वृणते अध्वरेषु ।
अग्निं विश्वेषामरतिं वसूनां सपर्यामि प्रयसा यामि रत्नम् ७
अच्छिद्रा सूनो सहसो नो अद्य स्तोतृभ्यो मित्रमहः शर्म यच्छ ।
अन्ने गृणन्तमंहस उरुष्योर्जो नपात् पूर्भिरायसीभिः ८
भवा वरूथं गृणते विभावो भवा मघवन् मघवद्भ्यः शर्म ।
उरुष्याग्ने अंहसो गृणन्तं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ९

---

४ वात-जूतः अतसेषु जुहूभिः सृण्या तुविष्वनिः वृथा वि तिष्ठते । हे अजर रुशदूर्मे अग्ने ! यत् तृषु वनिनः वृषायसे, ते एम कृष्णम् ॥

५ वातचोदितः तपुर्जम्भः वने साह्वान्, यूथे वंसगः न, अव आ वाति । अक्षितं रजः पाजसा अभि व्रजन्, पतत्रिणः स्थातुः चरथं भयते ॥

६ हे अग्ने ! भृगवः मानुषेषु, जनेभ्यः सुहवं चारुं रयिं न, होतारं अतिथिं वरेण्यं त्वा दिव्याय जन्मने, सेवं मित्रं न, आ दधुः ॥

७ होतारं यजिष्ठं यं अध्वरेषु वावृतं सप्त जुह्वः वृणते, (तं) विश्वेषां वसूनां अरतिं प्रयसा सपर्यामि, रत्नं यामि ॥

८ हे सहसः सूनो, मित्रमहः ! अद्य नः स्तोतृभ्यः अच्छिद्रा शर्म यच्छ । हे ऊर्जो नपात् अग्ने ! आयसीभिः पूर्भिः गृणन्तं अंहसः उरुष्य ॥

९ हे विभावः ! गृणते वरूथं भव । हे मघवन् ! मघवद्भ्यः शर्म भव । हे अग्ने ! गृणन्तं अंहसः उरुष्य । धियावसुः मक्षु जगम्यात् ॥

४ वायुद्वारा प्रेरित होकर लकड़ियोंमें (जब अग्नी) ओंको तेजस्विताके साथ बड़ा शब्द करता हुआ तू ठहरता है, हे जरारहित तेजस्वी ज्वालाओंवाले अग्ने तत्काल वृक्षोंमें अपना बल प्रकट करते हुए तुम्हारा (दिखाई देता है) ॥

५ वायुद्वारा प्रेरित हुआ, ज्वालारूप दंष्ट्रावाला (वनमें बलसे, गौसमुदायमें सांडकी तरह, घूमता है। अक्षय अन्तरिक्षमें अपने बलसे घूमता है, तब सारे जंगम इस पक्षी (के समान वेगसे जानेवाले) से डरते

६ हे अग्ने ! भृगुलोगोंने मानवोंमें, लोगोंको सुखसे करनेयोग्य, सुंदर धनकी तरह (पास रखनेयोग्य) अतिथि ऐसे तुझको, दिव्य जन्मवालोंको भी सेवा मित्रकी तरह, धारण किया ॥

७ देवोंको बुलानेवाले यजनीय, हिंसारहित यज्ञोंमें जिस (देवको) सात ऋत्विज स्वीकार करते हैं, उस धनोंके दाताकी अन्नके समर्पणद्वारा मैं सेवा करता हूं। मैं धन भी (प्राप्त करना) चाहता हूं।

८ हे बलसे उत्पन्न होनेवाले (अग्ने) ! मित्रको बढ़ानेवाले अग्ने ! आज हम सब स्तोताओंके लिये अक्षय दो। हे बलको न गिरानेवाले (अग्ने) ! लोहेकी नगरियोंसे जनताका बचाव करते हैं वैसा) स्तोताका पापसे रक्षण

९ हे तेजस्वी देव ! स्तोताको सुख दो। हे धनवान् ! वानोंको सुख दो। हे अग्ने ! स्तोताको पापसे बचाओ। धन देनेवाला अग्निदेव आज प्रातःसमयमें शीघ्रही आवे ॥

अग्निके विशेषणोंका विचार

सूक्तमें अग्निका वर्णन है। इस अग्निका स्वरूप निर्णय लिये जो विशेषण अर्थात् गुणवर्णन करनेके लिये एक या अनेक शब्द प्रयुक्त किये गये हैं, उनका विचार करना चाहिये। इसका संक्षिप्त वर्णन यह है —

१. सहोजाः— बलसे उत्पन्न, बलके लिये उत्पन्न। बल उत्पन्न करनेवाला। दो अग्नियोंका घर्षण करनेके लिये यंत्र तैयार किया जाता है, इस घर्षणसे अग्नि उत्पन्न होता है, इसलिये इसे 'सहोजाः' कहते हैं। द्युलोक पिता है 'दौर्हि पितः, द्युपितः पितर्' और पृथ्वी माता है, इनके संयोगसमेत सूर्यकी उत्पत्ति होती है। उत्तरीय ध्रुवमें द्युलोकका गोल घूमता हुआ प्रतीत होता है। दक्षिण-ध्रुवमें घूमता नहीं प्रतीत होता, यह सूर्य भी एवं अग्नि कवि-कल्पनासे पुत्रही है। पिता माता ये दो अरणी हैं, और 'पुत्र' अग्निही है। इसलिये सूर्य और पुत्र ये भी एकार्थी हैं। यह एकही सहोजा शब्द अग्नि, सूर्य और पुत्ररूपसे दिखाता है।

२. अमृतः— (अ-मृतः) अमर अग्नि है, सूर्य भी अमर है। ज्ञेय आत्मा भी अमर है। अनेक देहोंमें एकही आत्मा होनेके कारण वह अमर कहलाता है।

३. सहोजाः अमृतः नि तुन्दते— बलके साथ उत्पन्न हुआ अमर व्यथित नहीं होता। जो बलवान् है और जो अमर होनेवाला नहीं है उसको किसी तरहके कष्ट नहीं हो सकते, यह स्पष्टही है। क्योंकि जो निर्बल है और जिसको मरनेका भय है वही सदा दुःखी होगा। इसलिये सुख प्राप्त करनेकी इच्छा है तो बल प्राप्त करना चाहिये और अपना आत्मविश्वास अखंड रखना चाहिये।

४. साधिष्टेभिः पथिभिः रजः वि नमे— उत्कृष्ट मार्गसे मार्गका आक्रमण करना चाहिये। एक स्थानसे दूसरे स्थानको जाना हो तो जो उनमेंसे उत्तम मार्ग हो उसीसे जाना सुखकारक है। अन्य मार्गोंसे जानेका यत्न किया जाय तो भी क्लेशदेह यह दुःख बढ़ाएगा।

५. देवताता— (देव-ताता) देवताका विस्तार, दैवी कार्योंका फैलाव करनेके कर्मोंमें यह है। सब मनुष्योंको दैवी कार्य करने सुख होता है। जो अग्नि है वह ऐसे कर्मोंका संचय करता है, (अग्निः देवताता आ विवासति) अग्नि कहनेका — देवताका विस्तार करनेवाले कर्मोंको संपन्न करना है। मनुष्य अग्निरूप है, इसलिये उसको ऐसे कर्म करने चाहिये। (मं. १)

६. अजरः (अ-जरः)-जरारहित,

७. स्वं अग्न युवमानः— अपने लिये जो भक्षणयोग्य वस्तु है उसको खानेवाला। 'अग्न' वह वस्तु है कि जो खाने-योग्य है। बालक, तरुण, वृद्ध, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, पशु आदिकोंके लिये, एकेकके लिये 'अग्न' खानेयोग्य वस्तु-पृथक् होती है। जो जिसको खानेके लिये योग्य है वही उसने खायी तो उसको सुख हो सकता है, अन्यथा दुःख निश्चित है।

८. तृपु अविष्यन् अतसेषु तिष्ठति- शीघ्रही अपनी सुरक्षाका उपाय करता हुआ अपने कवचोंमें ठहरो। तृपु= तत्काल, शीघ्र। अतसः= वायु, प्राण, आत्मा, कवच, कोठेकी दिवार, छत, समिधा, लकडी। शीघ्र अपनी सुरक्षा करो और अपने आपको कवचोंमें, कीलोंमें, सुरक्षित स्थानमें रखो। यह सर्व सामान्य उपदेश हरएकके स्मरणमें रखनेयोग्य है। अग्नि शीघ्रही अपनी सुरक्षा करता हुआ बढता है और लकडियोंके आश्रयसे जलता रहता है।

९. प्रुषितस्य पृष्ठं, अत्यः न रोचते- घीकी आहुति देनेपर अग्नि, घुडदौडके लिये सिद्ध घोडेके समान चमकता है। वैदिक समयमें घुडदौड होती थी, उस कार्यके लिये घोडे तैयार किये जाते थे और लोग उसमें भाग भी लेते थे। (मं. २)

१०. क्राणा— कर्ममें कुशल, उद्यमी, पुरुषार्थी,

११. पुरोहितः— (पुरः हितः) आगे रखा हुआ, नेता, अग्रगामी,

१२. अमर्त्यः— अमर,

१३. रविषाड्— (रवि-षाड्)— अन्यके परास्त करके उसका धन छीनकर लानेवाला,

१४ देवः — दैवी संपत्तिसे युक्त, दिव्य गुणवाला, गुण गुणोंसे युक्त, प्रकाशमान,

१५ विशु क्रतुसातः— मनुष्योंने जो अपने भोगके लिये यज्ञ करना है, उसीके लिये समर्थ, प्रगति करनेवाला,

१६. **आयुषु आनुषक् वार्या वि ऋण्वति**— मानवोंमें सदा स्वीकार करनेयोग्य जो धन हैं उनको लाता है, प्राप्त करता है। अयोग्य वस्तुका स्वीकार नहीं करता, प्रत्युत योग्य वस्तुकाही स्वीकार करता है। (मं.३.)

१७. **वातजूतः**— वायुसे प्रेरित। सदाही वायुकी साथ रहनेसेही अग्नि जलता है।

१८. **अतसेषु तिष्ठति**- (देखो टिप्पणी मं. ८)

१९ **जुहुभिः सृण्या**— ज्वालारूपी शस्त्रके साथ, ज्वालारूप शस्त्रसे अग्नि लकडियोंको काटता है, लकडियोंको जला देता है,

२०. **रुशदूर्मिः**— (रुशत्-ऊर्मिः)- तेजस्वी लहरोंवाला, तेजस्वी ज्वालाओंसे युक्त। यहा ऊर्मि' पद ज्वालाके लिये प्रयुक्त हुआ है, जो समुद्रकी लहर का वाचक है।

२१. **वनिनः वृषायसे**— वनमें रहनेवाले वृक्षों, उनकी लकडियोंपर अपना प्रभाव जमा देता है। यहांका 'वनिन्, वन' पद वृक्ष, लकडी, समिधाका वाचक है। लकडीपर प्रभाव जमानेका तात्पर्य जलाना है।

२२. **ते कृष्णं एम**— तेरा काला मार्ग है। वनमें अग्नि वृक्षोंको जलाता हुआ जब जाता है तो वह उसका गमन मार्ग काला दीखता है। इस काले मार्गको देखनेसे पता चलता है कि इस मार्गसे अग्नि गया है। (मं. ४)

२३. **वात-चोदितः**— वायुसे प्रेरित। (टिप्पणी १७ देखो)

२४. **तपुर्जम्भः** — तपुः = उष्णता, आग, ज्वाला। जम्भः- जबडा, मुख, दंष्ट्रा। ज्वाला ही जिसका जबडा है।

२५. **वने साह्वान्**— वनका-वृक्षोंका-पराभव करता है, वृक्षोंको जलाता है।

२६. **अक्षितं रजः पाजसा अभिव्रजन्**–अक्षय अन्तरिक्षमें बलसे भ्रमण करता है। धधकती हुई दावानलकी ज्वालाएं अन्तरिक्षमें घूमती हैं।

२७. **पतत्रिणः स्थातुः चरथं भयते**– इस पक्षीसदृश वेगसे घूमनेवाले दावानल–अग्नि–को देखकर स्थावर जंगम, सबका सब वस्तुजात भयभीत होता है। (मं. ५)

२८. **भृगवः मानुषेषु जनेभ्यः दिव्याय जन्मने वरेण्यं आ दधुः**- भृगुवंशके ऋषियोंने सब मानव समाजमें सब मानवोंके (कल्याण करनेके) लिये, उनका दिव्यत्व सिद्ध करनेके लिये, उनमें इष्ट परिवर्तन करनेके लिये इस श्रेष्ठ (अग्नि) को धारण किया। यज्ञमें भृगुवंशके ऋषियोंने सब जनताकी उन्नति करनेके संस्थाके द्वारा जो रचना की उसमें अग्नि-उपासना रखती है।

२९. **सुहवः, चारुः, होता, अतिथिः**- उत्तम करनेयोग्य, सुंदर रमणीय, देवोंको बुलानेवाला, सबका समान पूजनीय। **अतिथिः**- (अति, अतति) जाता है। जब अग्नि लकडियोंको खाता हुआ आगे तब उसको ' अतिथि ' कहा जाता है। (मं. ६)

३०. **अध्वरेषु वाघतः**- हिंसारहित अनुष्ठिजिसकी प्रशंसा की जाती है।

३१. **यजिष्ठः**- पूजनीय, यजनीय,

३२. **विश्वेषां वसूनां अरतिः**- सब धनों (मं. ७)

३३. **सहसः सूनुः**— बलका पुत्र (देखो टिप्पणी

३४. **मित्रमहः**- मित्रकी महत्ता बढानेवाला,

३५. **अच्छिद्रं शर्म यच्छ**- अक्षय सुख देता है

३६. **ऊर्जः न पातु**- शक्तिका नाश–पतन–न (टिप्पणी १ और ३३ देखो) शक्तिको बढानेवाला।

३७. **आयसीभिः पूर्भिः गृणन्तं उरुष्य**- नगरियोंसे–कीलोंसे स्तोताकी सुरक्षा कर। स्तोताके कीलोंकी दिवारें हों, ऐसा और इतना धन उसके पास भक्तके पास हो। (मं. ८)

३८. **वि-भा-वसुः**— विशेष प्रकाशसे युक्त,

३९. **मघवा**- धनवान्, प्रकाशरूप धनसे युक्त,

४०. **धिया-वसुः**- बुद्धिसे, कर्मसे धन देनेवाला, बुद्धि सुसंस्कृत करे, तत्पश्चात् उत्तम कर्म करे, तो धन

परमेश्वरका स्वरूप

यहां इस सूक्तमें 'अमृतः, अजरः, अमर्त्यः, देवः, ये पद परमेश्वर, परमात्माके स्पष्ट वाचक हैं।

क्राणा, पुरोहितः, रयिषाट्, रुशदूर्मिः, सुहवः, चारुः, होता, अतिथिः, अध्वरेषु यजिष्ठः, विश्वेषां वसूनां अरतिः, मित्रमहः, सहसः सूनुः, ऊर्जो न पातु, विभावसुः, धियावसुः

परमात्माके वाचक हो सकते हैं। इसी तरह कई वर्णन तके परमात्माके वर्णन जैसेही हैं।

ा कारण यह है कि ऋषि 'अग्नि' पदसे जीव, शिव वर, परमात्मा, परब्रह्म) और प्राकृतिक अग्नि आदि देव हण करते थे। 'तत् पव अग्निः' (वा. य. ३२।१) सत्, विप्रा बहुधा वदन्ति, अग्निं यमं।' ।।६४।४६) वह ब्रह्मही अग्नि है, सत् एकही है, ोग उसी एकका वर्ण अग्नि, यम आदि अनेक नामोंसे । ऋषिलोग इस सचाईसे परिचित थे। इसलिये वे ा वर्णन करते करते वह परमात्माका रूप है ऐसा अनुभव उसके वर्णनमेंही परमात्माकाही वर्णन करते हैं।

ई 'सत्' एकही है, तब तो अग्नि परमात्माकाही है। वास्तवमें विश्वरूपही परमात्मा है। अर्थात् तर्गत अग्नि भी परमात्माका रूप हुआ। इसलिये अग्नि नके साथ परमात्माका वर्णन होना युक्तियुक्तही है।

ही सत् है, परमात्मा विश्वरूप है, अतः सब विश्व एकही रूप है। हमारी इंद्रियां संपूर्ण सत्का ग्रहण कर नहीं , परन्तु एक एक गुणका ग्रहण कर सकती हैं। आंखने रूपका ग्रहण किया और कानने शब्दका ग्रहण किया, इससे रूपवान् अग्नि और शब्दगुणवान् आकाश परस्पर तत्त्वतः विभिन्न नहीं हो सकते। जो विश्वरूपमें एक 'सत् तत्त्व' प्रकट हुआ उसके ही गुण शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध हैं। एक सत् तत्त्व ये पांच गुण हैं। हमारी इंद्रियां एक एक गुणका ग्रहण करती हैं, दूसरे गुणका नहीं करतीं, यह हमारे इंद्रियोंकी कमजोरी है, उस कारण उस सत्में किसी तरह न्यूनता नहीं होती।

ऋषि दिव्यदृष्टिसे संपूर्ण सत्तत्त्वका ग्रहण कर सकते थे, इसलिये वे अग्निके रूपमें परमात्माका अनुभव करते थे। यह उनकी दृष्टिकी दिव्यता है। जिसको यह दिव्यता नहीं प्राप्त हुई वह अग्निको परमात्मासे विभिन्न मानता है, यह अपूर्ण दृष्टि है। ऋषिकी दृष्टि संपूर्ण दिव्यदृष्टि थी इसीलिये वे विश्वको परमात्मस्वरूप मानते और विश्वान्तर्गत अग्नि आदि देवताओंको भी भगवद्रूपही अनुभव करते थे। इसलिये उनके वर्णनमें, अग्निके वर्णनमें भी-परमात्माका वर्णन हुआ करता था। पूर्ण दृष्टि और अपूर्ण दृष्टिका यह भेद है। जिसकी दृष्टि पूर्ण होगी वह विश्वभरमें एकही सत्को देखेगा और ऐसाही वर्णन करेगा।

(२) विश्वका नेता

(ऋ. १।५९) नोधा गौतमः। अग्निर्वैश्वानरः। त्रिष्टुप्।

वया इदग्ने अग्नयस्ते अन्ये त्वे विश्वे अमृता मादयन्ते।
वैश्वानर नाभिरसि क्षितीनां स्थूणेव जनाँ उपमिद् ययन्थ ॥ १
मूर्धा दिवो नाभिरग्निः पृथिव्या अथाभवदरती रोदस्योः।
तं त्वा देवासोऽजनयन्त देवं वैश्वानर ज्योतिरिदार्याय ॥ २

अन्वयः- १ हे अग्ने ! अन्ये अग्नयः ते वयाः इत्। विश्वे ... त्वे मादयन्ते। हे वैश्वानर ! क्षितीनां नाभिः असि। ... स्थूणा इव जनान् उपमित् ययन्थ ॥

... अग्निः दिवः मूर्धा, पृथिव्याः नाभिः। अथ रोदस्योः ... अभवत्। तं त्वा देवं देवासः अजनयन्त। हे वैश्वानर! ... ज्योतिः इत् ॥

अर्थ- १ हे अग्ने ! ... देव तेरे ... हे वैश्वानर ! ... २ ...

... ।

आ सूर्ये न रश्मयो ध्रुवासो वैश्वानरे दधिरेऽग्ना वसूनि ।
या पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु या मानुषेष्वसि तस्य राजा ३
बृहती इव सूनवे रोदसी गिरो होता मनुष्यो३ न दक्षः ।
स्वर्वते सत्यशुष्माय पूर्वीर्वैश्वानराय नृतमाय यह्वीः ४
दिवश्चित् ते बृहतो जातवेदो वैश्वानर प्र रिरिचे महित्वम् ।
राजा कृष्टीनामसि मानुषीणां युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ ५
प्र नू महित्वं वृषभस्य वोचं यं पूरवो वृत्रहणं सचन्ते ।
वैश्वानरो दस्युमग्निर्जघन्याँ अधूनोत् काष्ठा अव शम्बरं भेत् ६
वैश्वानरो महिम्ना विश्वकृष्टिर्भरद्वाजेषु यजतो विभावा ।
शातवनेये शतिनीभिरग्निः पुरुणीथे जरते सूनृतावान् ७

३ सूर्ये ध्रुवासः रश्मयः न, वैश्वानरे अग्ना वसूनि आ दधिरे । या पर्वतेषु ओषधीषु अप्सु या मानुषेषु तस्य राजा असि ॥

४ रोदसी सूनवे बृहती इव । मनुष्यः न, दक्षः होता स्वर्वते सत्यशुष्माय नृतमाय वैश्वानराय पूर्वीः यह्वीः गिरः ॥

५ हे जातवेदः वैश्वानर ! ते महित्वं बृहतः दिवः चित् प्र रिरिचे । मानुषीणां कृष्टीनां राजा असि । युधा देवेभ्यः वरिवः चकर्थ ॥

६ वृषभस्य महित्वं प्र वोचं नु । पूरवः यं वृत्रहणं सचन्ते । वैश्वानरः अग्निः दस्युं जघन्वान् । काष्ठाः अधूनोत्, शम्बरं अव भेत् ॥

७ वैश्वानरः महिम्ना विश्वकृष्टिः, भरद्वाजेषु यजतः विभावा । शातवनेये पुरुणीथे सूनृतावान् अग्निः शतनीभिः जरते ॥

३ सूर्यमें जिस तरह स्थायी प्रकाश किरण रहते हैं, इस विश्वके नेता अग्निमें सब धन रहते हैं। जो पर्वतों, जलों, तथा मानवोंमें संपत्तियाँ हैं, उसका तू राजा है ॥

४ द्यावापृथिवी इस पुत्र (रूप विश्वनेता) के भारी विस्तृत सी हो गयी हैं। मनुष्यके समान इस सामर्थ्यवान्, सत्य बलसे युक्त, मानवश्रेष्ठ प्राचीनकालसे चली आयी विशाल स्तुतियां गाते हैं ॥

५ हे वेदज्ञाता विश्वनेता ! तेरी महिमा बड़ी बड़ी है । मानवी प्रजाओंका तू राजा है । तुम पुत्रके लिये धन देते हो ॥

६ मैं बलवान् देवका महात्म्य वर्णन करता हूं। जन इस वृत्रनाशकके पास पहुंचते हैं । विश्वनेता वध करता है, दिशाओंको हिला देता है, और करता है ॥

७ यह विश्वनेता अपनी महिमासे सब मानवों का दान करनेवालोंमें यह पूजनीय और वैभवशाली है वनके पुत्र पुरुणीथ (के यज्ञ) में यह सत्यवान् सैकड़ों गानोंसे गाया जाता है ॥

विश्वका संचालक

यह सूक्त विश्वके नेताका वर्णन करता है। यह भी एक अग्निही है। इस सूक्तमें सात मंत्र हैं। प्रत्येक मंत्रमें एकबार 'वैश्वानर' पद है, अर्थात् इस सूक्तमें ७ बार 'वैश्वानर' पद है। 'अग्नि' पद केवल पांचही बार आया है। इस कारण इस सूक्तका देवता 'वैश्वानर' है और गौण रूपसे 'अग्नि' है।

१. वैश्वानरः— विश्व + नरः— विश्वका नेता, प्रमुख, विश्वका संचालक, सबका अगुआ चालक (सं,

२. वैश्वानरः महिम्ना विश्वकृष्टिः— (सं,

यह वैश्वानर कौन है ? यह अपनी महिमासे सब प्राणीका रूप धारण करके है। यह वैश्वानर ही जनता जनार्दन है। यही 'नारायण' (नरोंका) है। नरोंका समूहही नारायणका रूप है।

रुष एव इदं सर्वं यद् भूतं यच्च भव्यम् ।
तामान् अस्य महिमा० ॥ (ऋ. १०।९०।२-३)

पुरुषही यह सब है जो भूतकालमें था और जो भविष्य
था। यह इस पुरुषकी महिमाही है ।' पुरुष-सूक्तम
महिमा ' पद है वही यहां इस सूक्तमें है और दोनों
सब मानव-समाजही उस प्रभुका स्वरूप है ऐसा बताया

तुष्पदं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्य कौ बाहू का ऊरू पादा उच्येते ॥
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥
(ऋ. १०।९०।११-१२)

सिस पुरुषका वर्णन किया गया उसके मुख, बाहु, ऊरू और
कौनसे हैं ? ब्राह्मण इसका मुख है, क्षत्रिय इसके बाहु है,
यह है जो वैश्य कहे जाते हैं और पावोंके लिये शूद्र हैं ।'
यह पुरुष 'ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र' रूप है। इसीका
' विश्वसृष्टि ' अथवा ' सब मानवसंघ ' है, वही वैश्वानर

१. या पर्वतेषु ओषधीषु अप्सु मानुषेषु तस्य
ता (मं. ३)- जो भी कुछ पर्वतों, औषधियों, जलों और
लोगोंमें है अर्थात् जो इस विश्वमें है, उसका यह राजा है, उस
का यह स्वामी या अधिपति है। इस सबका व्यय इसकी
पूर्तिके लिये होना चाहिये। इसके यजनके लिये सबका सम-
र होना उचित है।

२. मानुषीणां कृष्टीनां राजा असि (मं. ५)—
सभी प्रजाजनोंका यह राजा है। सब मानवी प्रजाजनोंका
सब मानवी प्रजाओंके द्वारा ही होवे। इसीका नाम स्व-
राज्य है। सब मनुष्यही अपना शासन अपनी संमतिके अनुसार
हो। सम्राट्का शासन समाजद्वारा समाजकी उन्नतिके लिये हो।

३. बुधा देवेभ्यः वरिवः चकर्थ (मं.५)- बुद्धसे देवोंके
लिये धन दो। धन देवोंहीको मिलना चाहिये। देव वे हैं जो
सबके सुख हैं। उनकी धनपर अधिकार है, धन इनको
मिलना चाहिये। मानवसमाजमें देव-असुर, देव-दनु,
देव-दैत्य, देव-दस्यु, सुर-असुर, सुर-दुष्ट ऐसे दो प्रकारके
लोग होते हैं। इनमें देवोंहीको धन पानेका अधिकार
है। ये देव उस धनका उपयोग करके सबकी पालना योग्यरीति-
से करें। किसी तरह असुरोंका अधिकार धनपर नहीं होना
चाहिये। इसलिये युद्ध करना आवश्यक हो तो युद्ध भी करना
चाहिये और देवोंके हाथमेंही धन रहे ऐसा प्रबंध करना चाहिये।
धनपर कब्जा राक्षसोंका हुआ तो जगत्में अनर्थ होते हैं,
जनता इससे दुःखी होती है। इसलिये युद्ध करके असुरोंका नाश
करके देवोंके अधीन शासनप्रबंध रखना चाहिये।

४. आर्याय ज्योतिः (मं. २)- आर्योंके लिये ही प्रकाश
का मार्ग खुला किया है। राक्षस असुरोंका नामही 'निशाचर'
है, क्योंकि उनका मार्ग अन्धेरेका है। इसीलिये असुरोंके
अधीन राज्यप्रबंध नहीं रहना चाहिये। जो आर्य हैं उनकेही
अधीन राज्यप्रबंध, सब धन (खजाना), और सब बल रहना
चाहिये। इसलिये अन्यत्र कहा है —

विजानीहि आर्यान् ये च दस्यवो बर्हिष्मते
रंधय शासद् अव्रतान् ॥८॥
अनुव्रतान् रन्धयन्नपव्रतानाभूभिरिन्द्रः शचयन्त-
नाभुवः। (ऋ. १।५१)

सभ्य ऋषि कहते हैं कि- 'आर्य कौन हैं और दस्यु कौन हैं
इसको जान लो, नियमानुसार कौन चलते हैं और नियमोंको
कौन तोडते हैं, इसको देखो। अनुव्रत सभ्य आर्योंके पोषण
लिये अव्रतियोंका नाश हो। यज्ञ करनेवाले मनुष्योंके
करनेके लिये जो मनुष्योंका
दण्ड हो।

आर्य	दस्यु
सभ्य	असभ्य
अनुव्रत	अव्रत
अनुयोग	अयोग
देव	असुर

इस वर्णसे वैदिक-काल [illegible]

७. पूरवः कृष्टयः सचन्ते । पौरुहूतः पुरुहूत इन्द्रः
उदन्वान् (मं. ६)— [illegible]
होही ऐसा करते हैं। [illegible]
है। क्योंकि आर्य और दस्यु ये [illegible]
यज्ञ आर्योंके अधीनके और [illegible]
[illegible]

अपनी पेट पूर्तिके लिये दूसरोंसे लूटते हैं। इसलिये उनसे रक्षा देकर आर्योंकी सुरक्षा करना जरूरी होता है। यज्ञकर्मसे आर्य और दस्यु निश्चित होते हैं।

'वैश्वानर, विश्वनर, सार्वजन, सार्वजनीन, सार्वलौकिक' ये शब्द समान भाव बतानेवाले हैं। वेदमें 'वैश्वानर' शब्दसे जो भाव प्रकट होता था, वही आज 'सार्वजनीन, सार्वलौकिक' पदोंसे प्रकट होता है।

८. स्वर्यंत सत्यशुष्माय वैश्वानराय नृतमाय यह्वीः गिरः (मं. ८)— अत्यज्ञानी सत्यबली सार्वजनिक हित करनेवाले अत्यन्त श्रेष्ठ नेताके लिये ही विशेष प्रशंसा योग्य है। सब मानवरूपी वैश्वानर है, सभी मानवही प्रभुका रूप है इसमें संदेह नहीं है, पर इस जनसंमर्दमें नेतृत्व किसको मिलना चाहिये इसका उत्तम निर्देश इस मंत्रभागमें है। वह ज्ञानी चाहिये, सत्यनिष्ठाका बल उसके पास चाहिये, सार्वजनिक हित करनेमें वह तत्पर होना चाहिये और सब मानवोंमें वह श्रेष्ठ चाहिये। वही प्रशंसायोग्य है अर्थात् वही पूज्य है और वही उनका नेता होनेयोग्य है।

९. वैश्वानरः नाभिः क्षितीनां (मं. १)- सार्वजनिक हित करनेवाला यह श्रेष्ठ पुरुषही सब मानवोंका, सब जनताका नाभि या केन्द्र अथवा मध्य बिन्दु है। सबके आंख इसी नेता पर लगने चाहियें। शरीरमें जैसी नाभी, वैसा यह नेता राष्ट्रमें होगा।

१०. स्थूणा इव जनान् ययन्थ (मं. १)- जिस तरह स्तंभ सब घरके लिये आधार होता है, उसी तरह यह नेता सब मानवोंके लिये आधार होता है। यह श्रेष्ठ नेता सब जनोंको इस तरह चलाता है जिससे वे उत्कृष्ट सुख शीघ्र ही प्राप्त कर सकते हैं।

११. अन्ये अग्नयः ते वया इत् (मं. १)— सभी मानव इस वैश्वानरका रूप है ऐसा कहां है (देखो टिप्पणी सं. २ मं. १) इसलिये सभी मानव वैश्वानरके रूप हुए, फिर कहा है कि जो 'नृ-तमः' अत्यंत श्रेष्ठ मानव होगा वही उनका नेता होनेयोग्य है (टिप्प. ८)। फिर अन्य मानवों का स्थान कहा है? इस प्रश्नका उत्तर इस मन्त्रभागने दिया है— 'अन्य अग्नि इसकी शाखाएं है।' यह नेता वृक्ष है और अन्य मानव उस वृक्षकी शाखाएं, टहनियाँ, पत्ते आदि हैं। सब मिलकर एकही अखण्ड वृक्ष है। तथापि नेता स्कंध है और अन्य मानव [illegible] भाग यही होना चाहिये।

१२. दिवो नमूना [illegible] इस उसमेंसे आनन्द पाता रहे। मानवोंही देवताका वसन है। यही 'ते' है अर्थात् सभी मानव-समाज। इसके [illegible] याद करते हैं।

१३. दिवः मूर्धा, पृथिव्या नाभिः अग्निः (मं. २)— यह वैश्वानर [illegible] मध्य, और दोनों लोकोंका स्वामी है।' अग्नि' अर्थात् नेता, रक्षा न करना, विनाश, अंत, पर्यवेक्षक, स्वामी, बुद्धिमान ज्ञानी।

१४. देवासः वैश्वानरं अजनयन् (मं. [illegible] देवोंने वैश्वानरको प्रकट किया। सब उपास्य है, वही यहां मुख्य है यह तत्व बताया, प्रसिद्ध किया।

१५. सूर्ये रुचयः न, वैश्वानरे वसूनि (मं. २)— सूर्यमें जैसे किरन रहते हैं, वैसे नरमें सब धन रहते हैं। सूर्यमें जैसे किरन रहते हैं, वैसेही सब धन इस मानवरूप देवमें अर्थात् सब धन मानवसंघके है, किसी भी इसलिये व्यक्तिको सब धनोंका त्याग [illegible] करना आवश्यक है क्योंकि व्यक्तिका सब धन समाज, या समष्टिकाही है। (टिप्प. २ देखो)

१६. सूनवे रोदसी बृहती (मं. [illegible] सुपुत्रके लिये यह द्यावापृथिवी एक बड़ा अच्छे प्रत्येक मानवके लिये यही कार्यक्षेत्र है, यह [illegible] रखना चाहिये।

१७. दिवः चित् वैश्वानरस्य महित्वं (मं. ५)- द्युलोकसे भी इस वैश्वानर-[illegible] अधिक है, क्योंकि यही सबका उपास्य और [illegible] है।

१८. काष्ठाः अधूनोत्, शंबरं अव भेत् सब दिशाओंमें रहनेवाले शत्रुओंको इसने हिला दिया, नाश किया। सार्वजनिक शत्रुका नाश करनेमें [illegible] करनी नहीं चाहिये।

मरुद्भ्यो यजतः (मं. ७)— अन्नदान करनेवाले ही पूजनीय देव है। अन्नदान करनेमें सब जनोंकी ही मुख्यतया देखनी होती है।

इस सूक्तमें राज्यशासनका रहस्य कहा गया है। प्रकट तौरपर यह अग्निसूक्त है, इसलिये इसमें अग्नि है। पर अग्निके अनेक रूपोंमेंसे यहां 'वैश्वा-नर' (मानव) अग्निका विशेष रीतिसे वर्णन है।

यैको भुवनं प्रविष्टो रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव।
(कठ. २।५।९)

जो सब पदार्थोंमें प्रविष्ट हुआ है इसलिए प्रत्येक रूपमें वह उस रूपवाला बना है।' अर्थात् वही अग्नि मानवोंमें मानवरूप लिये कार्य कर रहा है। इसीलिये (वैश्वा-नर) सर्व मानवसंघ यह अग्निका रूप है जिसका वर्णन इस सूक्तमें है।

इस कारण जिस तरह इस सूक्तमें 'मानव-संघ'की सुव्यवस्था के निर्देश हैं, उसी तरह अग्निके और परमात्माके भी इन्हीं पदोंसे मुख्य तथा गौणवृत्तिसे वर्णन हैं। इस सूक्तके कौनसे वर्णन केवल अग्निपरक हैं और कौनसे परमात्मपरक हैं इसका विवेक पाठक स्वयं कर सकते हैं। यहां सार्वमानुषरूपका वर्णन स्पष्टीकरणके साथ बताया है, जो मानवों की उन्नतिके लिये अत्यावश्यक है।

शेष बातें पाठक मननद्वारा जान सकते हैं।

(३) आदर्श प्रजापालक

(ऋ. १।६०) नोधा गौतमः। अग्निः। त्रिष्टुप्।

वह्निं यशसं विदथस्य केतुं सुप्राव्यं दूतं सद्योअर्थम्।
द्विजन्मानं रयिमिव प्रशस्तं रातिं भरद् भृगवे मातरिश्वा १
अस्य शासुरुभयासः सचन्ते हविष्मन्त उशिजो ये च मर्ताः।
दिवश्चित् पूर्वो न्यसादि होता ऽऽपृच्छ्यो विश्पतिर्विक्षु वेधाः २
तं नव्यसी हृद आ जायमानमस्मत् सुकीर्तिर्मधुजिह्वमश्याः।
यमृत्विजो वृजने मानुषासः प्रयस्वन्त आयवो जीजनन्त ३

अन्वयः— १ यशसं विदथस्य केतुं सुप्राव्यं सद्योअर्थं दूतं, रयिं इव प्रशस्तं, रातिं वह्निं मातरिश्वा भृगवे भरत्॥

२ हविष्मन्तः उशिजः, ये च मर्ताः, उभयासः अस्य शासुः सचन्ते। आपृच्छ्यः वेधाः होता विश्पतिः दिवः चित् पूर्वः न्यसादि॥

३ हृदः आ जायमानं तं मधुजिह्वं अस्मत् नव्यसी सुकीर्तिः अश्याः। यं ऋत्विजः वृजने मानुषासः आयवः प्रयस्वन्तः जीजनन्त॥

अर्थ— १ यशस्वी, ज्ञानका केतु, उत्तम रक्षक, दूत, तत्काल अर्थ-प्राप्ति करानेवाला द्विजन्मा (२), रयि समान, दाता अग्निको, वायु (मातरिश्वा) भृगुओंके पास ले आवे॥

२ हविर्युक्त, उशिज (दूसरे अग्नियोंके संबंध और जो (साधारण) मानव हैं, वे दोनों इसके संबंधमें रहते हैं। यह प्रशंसनीय, सर्वपूजक, देवोंका होता, सब प्रजाओंमें उत्पन्न होनेके पूर्व का (बहुत पहिले का होता) बैठा है॥

३ (अग्नि के) हृदयसे बढ़ते हुए इससे उत्तम मधुर (अग्नि) को (अग्नि से) यह उत्तम कीर्ति मुझे प्राप्त हो। जिस (अग्नि) को (यज्ञ करनेवाले) ऋत्विज अन्नसंबंधमें मनुष्यहितार्थ और अन्नवान् होते हुए मनुष्य उत्पन्न करते हैं॥

उशिक् पावको वसुर्मानुषेषु वरेण्यो होताधायि विक्षु ।
दमूना गृहपतिर्दम आँ अग्निर्भुवद् रयिपती रयीणाम् ४
तं त्वा वयं पतिमग्ने रयीणां प्र शंसामो मतिभिर्गोतमासः ।
आशुं न वाजंभरं मर्जयन्तः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ५

४ उशिक् पावकः वसुः वरेण्यः होता विक्षु मानुषेषु अधायि । दमूना गृहपतिः रयीणां रयिपतिः अग्निः दमे आ भुवत् ॥

५ हे अग्ने ! वयं गोतमासः तं त्वा रयीणां पतिं मतिभिः प्र शंसामः । वाजंभरं आशुं न मर्जयन्तः, धियावसुः प्रातः मक्षू जगम्यात् ॥

४ (उशति) चाहनेवाले, शुद्ध करनेवाले, श्रेष्ठ आह्वान करनेवाले (अग्नि) को मानवी प्रजामें स्थापित किया है। (शत्रुका) दमन करनेवाला गृहस्थोंका अधिपति, अग्नि अपने स्थानमें प्रकट होता है ॥

५ हे अग्ने ! हम गोतमवंशी लोग उस तुझ (अग्नि) की अपनी बुद्धियोंसे प्रशंसा करते हैं जो ढोकर लानेवाले घोडेको शुद्ध करते हैं । (यह अग्नि) प्रातः सत्वर ही (हमारे पास) आ जावे

प्रजापतिका शासन

आदर्श स्वामी

इस सूक्तमें आदर्श स्वामीका वर्णन है, यह प्रजाओंका स्वामी है, यह प्रजाओंका पालक और रक्षक है, सब प्रकारकी प्रजाकी उन्नति करनेवाला है, देखिये इसका वर्णन किन शब्दोंसे किया है—

१. **यशाः**— यशस्वी, जो कार्य हाथमें लेगा वह यथा योग्य रीतिसे पूर्ण करनेवाला, अन्ततक पहुंचानेवाला,

२. **विदथस्य केतुः**—यज्ञका ध्वज, युद्धका झण्डा, ज्ञान-प्रसारका सूचक,

३. **सुप्राव्यः**— उत्तम रक्षा करनेवाला, रक्षणीय,

४. **सद्योअर्थः**— जो प्राप्तव्य अर्थ है उसको शीघ्र देनेवाला, अभीष्टकी सिद्धि करनेवाला,

५. **द्विजन्मा**— दोबार जन्मनेवाला, एक मातासे और दूसरा विद्यासे ऐसे जो जन्मोंसे युक्त, अर्थात् अत्यंत विद्वान्, विद्याव्रत स्नातक ।

६. **दूतः**— सेवकके समान प्रजाकी सेवा करनेवाला (नेता होना चाहिये),

७. **रयिः इव प्रशस्तः**— धनके समान प्रशंसायोग्य,

८. **रातिः**— दाता, दानशील,

९. **वह्निः**— पहुंचानेवाला, उन्नतितक ले जानेवाला (मं. १)

१०. **उभयासः अस्य शासुः सचन्ते**— लोक इस प्रजाशासककी आज्ञा मानते हैं, इसकी सेवा दोनों प्रकारके लोग अर्थात् ज्ञानी अज्ञानी, धनवान् सबल-निर्बल आदि,

११. **आपृच्छ्यः**— वर्णन करनेयोग्य, कठिनताके कठिनता दूर करनेके उपाय जिसके पास जाकर ले सकते हैं,

१२. **वेधाः**— जो नवीन रचना उत्तम रीतिसे कर है,

१३. **होता**— (ज्ञानी आदिकोंको) अपने पास वाला,

१४. **विशपतिः**— प्रजाजनोंका पालनकर्ता, रक्षक,

१५. **दिवः पूर्वे न्यसादि**— सूर्यके उदय होनेके अपना कर्तव्य करनेके लिये जो बैठता है, निरलस, (मं. १)

१६. **हृदः आ जायमानः**— प्रजाओंके प्रकट होता है, अन्तःकरणोंमें जिसने स्थान प्राप्त किया है।

१७. **मधुजिह्वः**— मधुरभाषण करनेवाला,

१८. **अस्मत् सुकीर्तिः अश्याः**— हमारी प्रशंसा प्राप्त होती है, हम जिसका वर्णन करते हैं, हमारी जिसका ध्येय है ,

१९. **आयवः मानुषासः यं वृजने जीजनन्त**— प्रगति करनेवाले मनुष्य जिसकी कठिन समयमें प्राप्ति करते हैं

शक्तिमान्, गतिमान्, पाप, आपत्ति, शक्ति,
मं. ३)
क्- उन्नतिकी इच्छा करनेवाला,
कः— शुद्धता, पवित्रता करनेवाला,
:— सबका निवासक, रहनेके लिये स्थान

यः— श्रेष्ठ, वरिष्ठ,
मनुषेषु अधायि— जो जनतामें मित्र है,
ना— शत्रुका दमन करनेवाला,
पतिः— अपने घरका संरक्षण करनेवाला, अपने क्षा करनेवाला,
णां रयिपतिः— धनोंका पालक, सब प्रका-रकी रक्षा करनेवाला.
आभुवत्— अपने घर, स्थान वा देशमें ते रहता है (मं. ४)
णां पतिः— धनोंका स्वामी,
जेभरः— अन्न और बलका पोषक,
यावसुः— बुद्धिसे धन प्राप्त करनेवाला, (मं.५)

यहां प्रजाका पालक कौन हो, उसमें कौनसे गुण हों, इसका वर्णन इन शब्दोंमें पाठक देख सकते हैं। इन शब्दोंसे जिन गुणोंका वर्णन होता है वे गुण आदर्श शासकमें होने चाहिये। अथवा इन गुणोंसे जो युक्त हो, उसको प्रजापतिके स्थानके लिये नियुक्त करना योग्य है। पाठक इन गुणोंका अच्छी तरह मनन करें।

यहां वास्तवमें अग्निका वर्णन है, पर अग्निके वर्णनके मिष-से उत्तम नेताके, उत्कृष्ट प्रजाशासकके गुण यहां बताये हैं, वे निःसंदेह उत्तम आदर्श शासनाधिकारीके सूचक हैं।

ऋषिका नाम

इस सूक्तके अन्तिम सप्तम मन्त्रमें ' वयं गोतमासः ' (हम गोतम-गोत्रमें उत्पन्न हुए ऋषिगण) ऐसा अपना गोत्र नाम ऋषि बता रहा है।

ऋ. १।५८ में ' भृगवः ' पद भृगु गोत्रके ऋषियोंका वाचक दीखता है। ऋ. १।५९में 'भरद्वाज' पद है। 'शात-वनेय' पद है। शातवनेय यह राजा भरद्वाज ऋषिका आश्रय-दाता प्रतीत होता है। ऋषि भरद्वाज शातवनेयका पुरोहित होगा।

इन तीन सूक्तोंमें ऋषिका पता इतनाही लगता है।

(४) प्रभावी इन्द्र

(ऋ. २।६२; अथर्व २०।३५।१-१६) नोधा गौतमः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्।

अस्मा इदु प्र तवसे तुराय प्रयो न हर्मि स्तोमं माहिनाय।
ऋचीषमायाध्रिगव ओहमिन्द्राय ब्रह्माणि राततमा १
अस्मा इदु प्रय इव प्र यंसि भरान्याङ्गूषं वाघे सुवृक्ति।
इन्द्राय हृदा मनसा मनीषा प्रत्नाय पत्ये धियो मर्जयन्त २

पदः- १ अस्मै इत् उ तवसे तुराय माहिनाय
ऋचीषमायाध्रिगवे इन्द्राय, प्रयः न, हर्मि स्तोमं राततमा
ब्रह्माणि हर्मि ॥
अस्मै इत् उ, प्रयः इव, प्र यंसि । वाघे सुवृक्ति
भरानि । प्रत्नाय पत्ये इन्द्राय हृदा मनसा मनीषा
धियः मर्जयन्तः ॥

अर्थ- १ इस (अथर्व संहितामें, महिमावाले, वर्णनीय गुणवाले, अपरिमेयप्रभावशाले इन्द्रके लिये मैं, अन्नके (दानके) समान, मननीय स्तोत्र। और सूक्तोंसे जिनमें अधिक वर्णना है ऐसे मंत्र अर्पण करता हूं (करता हूं)।

२ (मैं) इस (इन्द्र) के लिये, अन्न देनेके समानही (सोनारथ) रेता हूं। पवित्र वाणी इन्द्रके लिये उत्तम स्तोत्र अर्पण करता हूं। (जिसके) पुराने (और सबके लिये इष्ट, मन और बुद्धिसे स्तोत्रोंसे पूजा जानेवाले (और रक्षक) लिये हैं ॥

अस्मा इदु त्यमुपमं स्वर्षां भराम्याङ्गूषमास्येन ।
मंहिष्ठमच्छोक्तिभिर्मतीनां सुवृक्तिभिः सूरिं वावृधध्यै ॥ १
अस्मा इदु स्तोमं सं हिनोमि रथं न तष्टेव तत्सिनाय ।
गिरश्च गिर्वाहसे सुवृक्तीन्द्राय विश्वमिन्वं मेधिराय ॥ २
अस्मा इदु सप्तिमिव श्रवस्येन्द्रायार्कं जुह्वा समञ्जे ।
वीरं दानौकसं वन्दध्यै पुरां गूर्तश्रवसं दर्माणम् ॥ ३
अस्मा इदु त्वष्टा तक्षद् वज्रं स्वपस्तमं स्वर्यं१ रणाय ।
वृत्रस्य चिद् विदद् येन मर्म तुजन्नीशानस्तुजता कियेधाः ॥ ४
अस्येदु मातुः सवनेषु सद्यो महः पितुं पपिवाञ्चार्वन्ना ।
मुषायद् विष्णुः पचतं सहीयान् विध्यद् वराहं तिरो अद्रिमस्ता ॥ ५
अस्मा इदु ग्नाश्चिद् देवपत्नीरिन्द्रायार्कमहिहत्य ऊचुः ।
परि द्यावापृथिवी जभ्र उर्वी नास्य ते महिमानं परि ष्टः ॥ ६

३ मतीनां सुवृक्तिभिः अच्छोक्तिभिः मंहिष्ठं सूरिं वावृधध्यै अस्मै इत् उ त्यं उपमं स्वर्षां आंगूषं आस्येन भरामि ॥

४ (अहं) त्वष्टा इव रथं न, अस्मै इत् उ तत्सिनाय गिर्वाहसे मेधिराय इन्द्राय स्तोमं गिरः विश्वं इन्वं च सुवृक्ति सं हिनोमि ॥

५ वीरं दान-ओकसं पुरां दर्माणं गूर्तश्रवसं वन्दध्यै अस्मै इत् उ इन्द्राय, सप्तिं इव, श्रवस्या जुह्वा अर्कं सं अञ्जे ॥

६ कियेधा ईशानः तुजन् येन तुजता वृत्रस्य मर्म चित् विदत् रणाय (तं) स्वपस्तमं स्वर्यं वज्रं त्वष्टा अस्मै इत् उ तक्षत् ॥

७ सहीयान् अद्रिं अस्ता विष्णुः अस्य इत् उ महः मातुः सवनेषु सद्यः पितुं चारु अन्ना पपिवान् पचतं मुषायत्, वराहं तिरः अस्ता ॥

८ देवपत्नीः ग्ना चित् अस्मै इत् उ इन्द्राय अहिहत्ये अर्कं ऊचुः । (अयं) उर्वी द्यावापृथिवी परि जभ्रे, ते अस्य महिमानं न परि ष्टः ॥

३ बुद्धिपूर्वक किये उत्तम शत्रुभावनाशक इस द्वारा महान विद्वान् (इन्द्र) की महत्ता बढ़ानेके इन्द्रको, उस उपमायोग्य धनप्रापक घोषको भर देता हूं, बोल देता हूं ॥

४ जैसे कारीगर रथको (बनाता है वैसे) सिद्धि करनेवाले प्रशंसनीय बुद्धिमान् इन्द्रके वाणियोंके द्वारा सबको उत्तेजित करनेवाले करता हूँ ॥

५ वीर, दानका घर, शत्रुके कीलोंको तोड़नेवाले, अन्नवाले इन्द्रकी वन्दनाके लिये इसी इन्द्रके पास, यशस्वी जिह्वासे स्तुतिस्तोत्रको हम प्रेरित करते हैं ॥

६ कईयोंका धारण करनेवाले इस (विश्वके) (वृत्रको) मारते हुए जिस मारक वज्रसे वृत्रके ठीक तरह प्राप्त किया था, (मर्मपरही आघात किया रणके समय उत्तम कर्म करनेवाले शत्रुपर फेंकने योग्य त्वष्टाने इसी इन्द्रके लिये बनाया था ॥

७ शत्रुका पराभव करनेवाले, वज्र फेंकनेवाले महान् जगत्के निर्माता इन्द्रके सवनोंमें शीघ्रही अन्न भोजनका सेवन किया, पके हुए (शत्रुके) अन्नको उठा और जलभोजी (वृत्र) को तिरच्छा करके वज्र मार,

८ पृथिवी आदि देवपत्नियाँ इसी इन्द्रके लिये समय स्तुतिस्तोत्र गाती रहीं। यह इन्द्र इन बड़ी भी अपने अधीन रखता है पर वे (दोनों लोक) इसकी नहीं घेर सकते । (क्योंकि इसका महिमा बहुतही बड़ा

अस्येदेव प्र रिरिचे महित्वं दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात् ।
स्वराळिन्द्रो दम आ विश्वगूर्तः स्वरिरमत्रो ववक्षे रणाय ९
अस्येदेव शवसा शुषन्तं वि वृश्चद् वज्रेण वृत्रमिन्द्रः ।
गा न व्राणा अवनीरमुञ्चदभि श्रवो दावने सचेताः १०
अस्येदु त्वेषसा रन्त सिन्धवः परि यद् वज्रेण सीमयच्छत् ।
ईशानकृद् दाशुषे दशस्यन् तुर्वीतये गाधं तुर्वणिः कः ११
अस्मा इदु प्र भरा तूतुजानो वृत्राय वज्रमीशानः किये धाः ।
गोर्न पर्व वि रदा तिरश्चेष्यन्नर्णांस्यपां चरध्यै १२
अस्येदु प्र ब्रूहि पूर्व्याणि तुरस्य कर्माणि नव्य उक्थैः ।
युधे यदिष्णान आयुधान्यृघायमाणो निरिणाति शत्रून् १३
अस्येदु भिया गिरयश्च दृळ्हा द्यावा च भूमा जनुषस्तुजेते ।
उपो वेनस्य जोगुवान ओर्णो सद्यो भुवद् वीर्याय नोधाः १४

अस्य इत् एव महित्वं दिवः पृथिव्याः अन्तरिक्षात् रिरिचे । स्वराट् दमे विश्वगूर्तः स्वरिः अमत्रः इन्द्रः आ ववक्षे ॥

२ इन्द्रः अस्य इत् एव शवसा शुषन्तं वृत्रं वज्रेण वि । सचेताः श्रवः दावने, गाः न, व्राणाः अवनीः अभि अमुञ्चत् ॥

३ यत् सीं वज्रेण परि अयच्छत्, (ततः) सिन्धवः अस्य इत् उ त्वेषसा रन्त । ईशानकृत् तुर्वणिः दशस्यन् (इन्द्रः) तुर्वीतये गाधं कः ।

४ इन्द्रानः किये धाः ईशानः अस्मै इत् उ वृत्राय वज्रं हन्तवे । अपां चरध्यै अर्णांसि इच्छन् तिरश्चा, गोः न, पर्व रदत् ॥

५ उक्थैः नव्यः अस्य इत् उ तुरस्य पूर्व्याणि कर्माणि नूतनः । यत् युधे आयुधानि इच्छानः ऋघायमाणः शत्रून् निरिणाति ॥

६ गिरयः च अस्य इत् उ भिया दृळ्हाः । (अस्य) द्यावा भूम च जनुषः तुजेते । नोधा वेनस्य ओर्णो उप जोगुवानः सद्यः वीर्याय भुवत् ॥

१ इस (इन्द्र) की ही महिमा द्यु, अन्तरिक्ष और पृथ्वीसे बहुतही बडा है। स्वर्गशासक, सर्वत्र गमनमें सब प्रकारके सामर्थ्योंसे युक्त, उत्तम प्रकारसे शत्रुसे लडनेवाला, अपने बलसे सुरक्षा करनेवाला इन्द्र युद्धके लिये सेनाको आगे बढाता है ॥

२ इन्द्रने इसी अपने बलसे शोषक शत्रुका बलपूर्वक काटा। सचेत इन्द्रने अपने दानमें प्रगति रखकर, गायोंके समान, रुके हुए नीचेकी ओर जानेवाले जलप्रवाहोंको मुक्त किया (बहा दिया) ॥

३ जिस कारण वज्रसे इन्द्र (अपने) दो हाथों और अपने दिया, उस कारण उसे नदियाँ इच्छित तेजसे ही जोरदार करनेवाले, स्वामित्व करनेवाले, त्वरासे लिये और दान करनेवाले इन्द्रने तुर्वीतिके लिये अपनी योग्यता उत्पन्न की है ॥

४ शत्रुका नाश करनेवाले बलवान् इन्द्रने (अहि) ने इसी कारण वज्र मारा । जलके लिये बहनेके लिये प्रेरित करने, अपने बलसे, किरणोंके समान, किरण रिये ।।

५ जो इन्द्रके नूतन किये हुए पूर्व कर्मोंकी स्तुति करनेवाले (इन्द्र) के आयुध बढ़ते हुओंके लिये शत्रुओंको चकनाचूर करते हैं, [illegible] करता हुआ, वह शत्रुओंको नष्ट करता है।

६ पर्वत इन्द्रके ही [illegible] उसीके भयसे दृढ़ हैं। द्यावा-पृथिवी भी इन्द्रके [illegible] उत्पन्न होनेसे [illegible] नोधा वेनके ओर्णा [illegible] शीघ्र ही बलके लिये [illegible]

अस्मा इदु त्यदनु दाय्येषामेको यद् वन्ने भूरेरीशानः ।
प्रैतशं सूर्ये पस्पृधानं सौवश्व्ये सुष्विमावदिन्द्रः १५
एवा ते हारियोजना सुवृक्तीन्द्र ब्रह्माणि गोतमासो अक्रन् ।
एषु विश्वपेशसं धियं धाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् १६

१५ इन्द्रः सौवश्व्ये सूर्ये पस्पृधानं सुष्विं एतशं प्र आवत् । यत् भूरेः ईशानः एकः वन्ने, (तदा) अस्मै इत् उ एषां त्यत् अनु दायि ॥

१६ हे हारियोजन इन्द्र ! गोतमासः एव ते सुवृक्ति ब्रह्माणि अक्रन् । एषु विश्वपेशसं धियं आ धाः । (सः) धियावसुः प्रातः मक्षु जगम्यात् ॥

१५ इन्द्रने स्वपुत्र सूर्यके साथ सर्वो करने योग्य यज्ञयाग करनेवाले एतशके सुरक्षा दी । इस प्रकार स्वामी इन्द्र प्रसन्न होता है, तब इसी इन्द्रके लिये ये स्तोत्र जाते हैं, (गाये जाते हैं) ॥

१६ हे घोडोंके रथवाले इन्द्र ! गोतम गोत्रके लोगोंने ये उत्तम स्तोत्र किये हैं । इनमें अपनी सब प्रकारकी बुद्धि रख (एकाग्रतासे श्रवण कर) । वह बुद्धिरूपी धन प्राप्त करनेवाला इन्द्र सवेरे अतिशीघ्र यज्ञमें आ जावे ॥

आदर्श वीर

इस सूक्तमें इन्द्रके वर्णनसे आदर्श वीरका वर्णन किया है, वह देखिये—

१. **तवस्**— शक्तिमान्, सामर्थ्यवान् ।
२. **तुरः**— त्वरासे कर्म करनेमें प्रवीण,
३. **माहिनः**— आनंदपूर्ण, दर्पयुक्त, नित्य उत्साही, बडा, महान्, आनन्द देनेवाला, राज्याधिकार, राजशक्ति, राज्यशासनमें समर्थ,
४. **ऋचीषमः**— (ऋचि-समः) विद्यामें निपुण,
५. **अघ्रिगुः**— जिसकी गौ या संपत्ति कोई चुरा नहीं सकता, ऐसा सामर्थ्यवाला, (मं.१)
६. **पत्नः**— पुरातन (प्रथाको सुरक्षित रखनेवाला),
७. **पतिः**— रक्षक, अधिपति, (मं.२)
८. **मंहिष्ठः**— बडा, महान्, प्रशंसनीय दाता,
९. **सूरिः**— ज्ञानी, विद्वान्, भाष्यकार,
१०. **उपमः**— उपमा देनेयोग्य, उत्तम, सर्वोत्कृष्ट, सबसे श्रेष्ठ, (मं.३)
११. **तत्सिनः**— अन्नवान्
१२. **गिर्वाहाः**— प्रशंसनीय,
१३. **मेधिरः**— (मेधि-रः)— बुद्धि देनेवाला, ज्ञानदाता, (मं.४)
१४. **वीरः**— शूर, पराक्रमी
१५. **दान-ओकाः**— दान देनेका घर, दानका घर,
१६. **पुरां दर्मा**— शत्रुके कोटोंको तोडनेवाला,
१७. **गूर्तश्रवाः**— प्रशंसनीय यशवाला, (मं.५)
१८. **कियेधाः**— (कियत् धाः)— कितनी विशेष धारण-शक्तिसे युक्त,
१९. **ईशानः**— स्वामी, राजा, अधिपति,
२०. **तुजन्**— शत्रुका नाश करनेवाला, वज्र, इस,
२१. **मर्म विदत्**— शत्रुके मर्मस्थलका वेध करनेवाला,
२२. **स्वपस्तमः**— (सु-अपः-तमः) उत्तम कर्म प्रवीण, (मं. ६)
२३. **सहीयान्**— शत्रुका पराभव करनेवाला,
२४. **अद्रिं अस्ता**— शत्रुपर शस्त्र फेंकनेवाला,
२५. **विष्णुः**— शत्रुकी सेनामें घुसकर उसका नाश करनेवाला वीर, (मं. ७)
२६. **स्वराट्**— अपना अधिकार चलानेवाला, शासक,
२७. **दमे विश्वगूर्तः**— शत्रुदमनके कार्यमें
२८. **स्वरिः**— उत्तम प्रकारसे शत्रुके साथ युद्ध करनेवाला, (मं.८)
२९. **अमत्रः**— (अम-त्रः)— अपने बलसे करनेवाला, (मं.९)

३०. इन्द्रः शवसा वज्रेण शुष्णं वृत्रं वि वृश्चत्- इन्द्रने अपने बलसे वज्रसे बलवान् वृत्रको काटा,
३१. सचेताः- बुद्धिमान्, उत्साही, दक्ष,
३२. श्रवः दावन्- अन्नका दान करनेवाला, (मं. १०)
३३. वज्रेण परि अयच्छत्- शत्रुको वज्रसे मारा,
३४. ईशान-कृत्- अधिपति, शासकका निर्माण करनेवाला,
३५. तुर्वणिः- शत्रुका त्वरासे नाश करनेवाला,
३६. दशस्यन्- दाता, शत्रुका संहारकर्ता, (मं. ११)
३७. तूतुजानः- शत्रुका नाश करनेवाला, (मं. १२)
३८. युधे आयुधानि इष्णानः शत्रून् निक्रणाति- युद्धमें शत्रुपर शस्त्रास्त्र फेंकता है और शत्रुका नाश करता है। (मं. १३)

इस तरह आदर्शवीरका वर्णन इस सूक्तमें इन शब्दोंसे किया है। इन शब्दोंके बारंबार मनन करनेसे उत्कृष्ट आदर्श वीरका चित्र सामने आ जाता है। क्षत्रियोंमें ये गुण उत्कट रीतिसे रहने चाहिए।

ऋषिका नाम

इस सूक्तके मंत्र १४में (नोधाः) पद है और मंत्र १३ में (गोतमासः) पद गोत्रनाम है। इसलिये इस सूक्तका ऋषि 'नोधा गौतमः' माना गया है। (गोतमासः ब्रह्माणि अक्रन्) गोतम गोत्रीय ऋषियोंने स्तोत्र किये। (नोधा वेनस्य ओर्णे जोगुवानः) नोधा ऋषि अपने प्रिय उपास्य देवकी रक्षाशक्तिका गुणगान करता है। इस तरह इस सूक्तमें वीरका वर्णन है।

(५) वीर इन्द्र

(ऋ० १।६२) नोधा गौतमः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्।

प्र मन्महे शवसानाय शूषमाङ्गूषं गिर्वणसे अङ्गिरस्वत्।
सुवृक्तिभिः स्तुवत ऋग्मियायार्चामार्के नरे विश्रुताय १
प्र वो महे महि नमो भरध्वमाङ्गूष्यं शवसानाय साम।
येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञा अर्चन्तो अङ्गिरसो गा अविन्दन् २
इन्द्रस्याङ्गिरसां चेष्टौ विदत् सरमा तनयाय धासिम्।
बृहस्पतिर्भिनदद्रिं विदद् गाः समुस्रियाभिर्वावशन्त नरः ३

अन्वयः-१ (वयं) अङ्गिरस्वत् शवसानाय शूषं आङ्गूषं मन्महे। स्तुवते ऋग्मियाय नरे विश्रुताय सुवृक्तिभिः अर्कं अर्चाम ॥

२ नः पूर्वे पदज्ञाः अङ्गिरसः येन अर्चन्तः गाः अविन्दन्, (हे स्तोतारः!) वः महे शवसानाय (तत्) महि नमः आङ्गूष्यं साम प्र भरध्वम् ॥

३ सरमा इन्द्रस्य अङ्गिरसां च इष्टौ तनयाय धासिं विदत्। बृहस्पतिः अद्रिं भिनत्, गाः विदत्। नरः उस्रियाभिः सं वावशन्त ॥

अर्थ- १ (हम) अङ्गिरा गोत्रमें उत्पन्न जैसे [illegible] बलवान् और प्रशंसनीय इन्द्रके लिये सुन्दर [illegible] स्तुत्य वर्णनीय नेता सुप्रसिद्ध इन्द्रकी स्तुति [illegible] करते हैं ॥

२ हमारे पूर्व मार्ग जाननेवाले अंगिरस् गोत्रमें [illegible] ऋषियोंने जिस (साम)से (इन्द्रकी) स्तुति [illegible] प्राप्त की, तुम भी बड़े बलवान् इन्द्रके लिये [illegible] बड़ी नम्रतासे आदरसे गाओ (आराधना करो) ॥

३ सरमाने इन्द्रकी और अंगिरसोंकी [illegible] में अपने [illegible] लिये अन्न प्राप्त किया। बृहस्पतिने मेघ (या [illegible]) को तोड़ डाला और उसके गौएं [illegible] उन गौओंके साथ इन्द्र [illegible]

स सुष्टुभा स ऋक्वता गणेन वलं रुरोज फलिगं रवेण ।
सरण्युभिः फलिगमिन्द्र शक्त ऋवद्भिरृक्वभिस्त्वं तदुश्मसि ।
गृणानो अङ्गिरोभिर्दस्म विद्वानभि द्युमन्तं नि पणिं वर्ताय ।
वि भूम्या अप्रथय इन्द्र सानु दिवो रज उपरमस्तभायः ।
तन्नु प्रयक्षणमस्य कर्म दस्मस्य चारुतममस्मिन्नंसः ।
उपह्वरे यदुपरा अपिन्वन्मध्वर्णसो नद्यश्चतस्रः ।
द्विता वि वव्रे सनजा सनीळे अयास्यः स्तवमानेभिरर्कैः ।
भगो न मेने परमे व्योमन्नधारयद्रोदसी सुदंसाः ।
सनाद्दिवं परि भूमा विरूपे पुनर्भुवा युवती स्वेभिरेवैः ।
कृष्णेभिरक्तोषा रुशद्भिर्वपुर्भिरा चरतो अन्यान्या
सनेमि सख्यं स्वपस्यमानः सूनुर्दाधार शवसा सुदंसाः ।
आमासु चिद्दधिषे पक्वमन्तः पयः कृष्णासु रुशद्रोहिणीषु

---

४ हे शक इन्द्र ! सः सः सुष्टुभा स्तुभा स्वेन रवेः सरण्युभिः नवभिः दशभिः सत विधैः स्वेन अद्रिं फलिगं वलं दरयः ॥

५ हे दस्म इन्द्र ! अङ्गिरोभिः गृणानः उषसा सूर्येण गोभिः अन्धः वि वः । भूम्याः सानु वि अप्रथयः । दिवः रजः उपरं अस्तभायः ॥

६ यत् उपह्वरे उपराः मधु-अर्णसः चतस्रः नद्यः अपिन्वन् । तत् उ अस्य प्रयक्षतमं कर्म । दस्मस्य चारुतमं देसः अस्ति ॥

७ अयास्यः स्तवमानेभिः अर्कैः सनजा सनीळे द्विता वि वव्रे । सुदंसाः भगः न, परमे व्योमन् मेने रोदसी अधारयत् ॥

८ विरूपे पुनर्भुवा युवती स्वेभिः पूर्वैः दिवं भूम सनात् परि (चरतः) । अक्ता कृष्णेभिः उषाः रुशद्भिः वपुभिः अन्या अन्या आ चरतः ॥

९ सुदंसाः शवसा सूनुः स्वपस्यमानः सनेमि सख्यं दाधार । आमासु चित् अन्तः पक्वं (पयः) दधिषे । कृष्णासु रोहिणीषु रुशत् पयः (दधिषे) ॥

४ हे शक्र इन्द्र ! यह तू उत्तम स्तुति और नये अनेपर प्रवर्तित हुआ । उस तेजस्वी (इन्द्रने) नवमी और दशमी शक्ति विभेदिनी गौसे भरे हुए बादल पर रहनेवाले जलको रोकनेवाले बलको छिन्न भिन्न कर

५ हे दर्शनीय इन्द्र ! तूने अङ्गिरा लोगोंसे उषा और सूर्यके साथ और किरणोंसे अन्धकारको दू भूमिके उच्च भागको विशेष फैला दिया, (फिर तूने सूर्यके और अन्तरिक्षको ऊपर खड़ा किया ।

६ (इन्द्रने) जो उतरदेशमें चलनेवाली मीठे अन्न नदियाँ पुष्ट थीं, (वहां दी) वह इसका अत्यन्त पु वह उस दर्शनीय इन्द्रका अत्यन्त सुन्दर कर्म है ।

७ नष्ट करनेवाले (इन्द्र) ने गाये जानेवाले स्तोत्रों सदा एकत्र रहनेवाली तथा एक घरमें रहनेवालोंके विभक्त किया । उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्रने, बड़े आकाशमें सम्मान्य द्यावा-पृथिवीको धारण किया ।

८ भिन्न रूपवाली पुनःपुनः उत्तम होनेवाली (दिन-रात्रिभागों) दो स्त्रियां अपनी गतिसे द्यु और भूमिको चारों ओर घूम रही हैं । उनमेंसे रात्री काले और उषा शरीरोंसे एक दूसरेके पीछे चलती हैं ॥

९ उत्तम कर्म करनेवाले बलके साथ उत्तम हुए इन्द्रने कर्मोंकी इच्छा करते हुए, सनातन मित्रताको धारण किया । छोटी आयुवाली (गायों) में भी पक्व दूध धारण किया है । काली तथा लाल रंगवाली गौओंमें भी उज्ज्वल वेग दूध रखा

सनात् सनीळा अवनीरवाता व्रता रक्षन्ते अमृताः सहोभिः ।
पुरू सहस्रा जनयो न पत्नीर्दुवस्यन्ति स्वसारो अह्रयाणम् ॥ १०
सनायुवो नमसा नव्यो अर्कैर्वसूयवो मतयो दस्म दद्रुः ।
पतिं न पत्नीरुशतीरुशन्तं स्पृशन्ति त्वा शवसावन् मनीषाः ॥ ११
सनादेव तव रायो गभस्तौ न क्षीयन्ते नोप दस्यन्ति दस्म ।
द्युमाँ असि क्रतुमाँ इन्द्र धीरः शिक्षा शचीवस्तव नः शचीभिः ॥ १२
सनायते गोतम इन्द्र नव्यमतक्षद् ब्रह्म हरियोजनाय ।
सुनीथाय नः शवसान नोधाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ १३

---

१० सनीडाः अवाताः अमृताः पत्नीः अवनीः सहोभिः [illegible]षः न, सनात् (इन्द्रस्य) पुरु सहस्रा व्रताः रक्षन्ते । [illegible]सारः अह्रयाणं दुवस्यन्ति ॥

११ हे दस्म ! (त्वं) अर्कैः नव्यः । सनायुवः वसूयवः [illegible]यः नमसा (त्वा) दद्रुः । हे शवसावन् ! मनीषाः, [illegible]तीः पत्नीः उशन्तं पतिं न, त्वा स्पृशन्ति ॥

१२ हे दस्म ! गभस्तौ तव रायः सनात् एव, न क्षीयन्ते, [illegible] दस्यन्ति । हे इन्द्र ! (त्वं) धीरः द्युमान् क्रतुमान् असि । [illegible] शचीवः ! तव शचीभिः नः शिक्ष ॥

१३ हे शवसान इन्द्र ! नोधाः गोतमः सनायते, हरि[illegible]योजनाय सुनीथाय नः नव्यं ब्रह्म अतक्षत् । (सः) धिया[illegible]वसुः प्रातः मक्षु जगम्यात् ॥

१० एक घरमें रहनेवाली चञ्चलतारहित अमर पालनेवाली पत्नियाँ, परंपरासंरक्षक स्त्रियोंके समान, सदासे इन्द्रके अनेक सहस्रों कर्मोंकी सुरक्षा करती हैं । ये बहिनें अकुटिल इन्द्रकी सेवा करती हैं ।

११ हे दर्शनीय इन्द्र ! तू स्तोत्रोंद्वारा स्तुति करनेयोग्य है । सनातन कालसे धनकी इच्छा करनेवाले बुद्धिमान् लोग [illegible] भावसे तेरे पास पहुँचते हैं । हे बलवान इन्द्र ! हमारे मनसे [illegible] हुई प्रार्थनाएँ, प्यारी पत्नियाँ प्यार करनेवाले पतिके पास जैसी जाती हैं, वैसी तुम्हारे पास पहुँचें ॥

१२ हे दर्शनीय इन्द्र ! तेरे हाथमें [illegible] सदा रहते हैं । तेरे धन कभी [illegible] नहीं [illegible] । हे इन्द्र ! [illegible] ॥

१३ [illegible]

(२२) ऋग्वेदका सुबोध भाष्य [ऋ. मं. १

१४. शचीवान्— शक्तिवान्, बुद्धिमान्, मतिमान् (१२)

१५. धीरः द्युमान् क्रतुमान् असि— धीर, तेजस्वी, पुरुषार्थी है।

१६. शचीभिः शिक्ष— अपनी बुद्धियोंसे पढाओ। (१२

१७. सुनीथः— उत्तम प्रकारसे चलानेवाला, (मं. १३)

ये पद आदर्श-वीरके गुण बता रहे हैं। पाठक इनका मनन करें।

आदर्श स्त्री

इस सूक्तमें आदर्श स्त्रीका वर्णन देखनेयोग्य है। निम्नलिखित पद आदर्श स्त्रीके गुणोंका वर्णन कर रहे हैं-

१. विरूपाः- विशेष रूपवाली,

२. पुनर्भूः- पुनः पुनः अपनी सजावट करके नयीसी बननेवाली, वारंवार अपनी सजावट करनेमें दक्ष। [सूचना— 'पुनर्भूः' पद लौकिक संस्कृतमें विधवा, मृतभर्तृकाका तथा पुनः विवाहित हुई स्त्री-पुनर्विवाहित स्त्रीका वाचक है। परंतु यहां यह अर्थ नहीं हैं। यहां दिनप्रभा उषा और रात्री ये दो स्त्रियाँ पुनः पुनः सजकर आती हैं और इस वर्णनमें यहां यह शब्द प्रयुक्त हुआ है।]

३. युवती- तरुण स्त्री,

४. एवः- चलनेका सुंदर ढंग

५. एवैः सनात् परि (चरति)- अपने चलनेके अपूर्व ढंगसे चलती है।

६. कृष्णेभिः रुशद्भिः वपुभिः आचरति- काले रंगकी और चमकीले रंगकी साडियां अपने शरीरपर पहनकर चलती है।

७. अन्या अन्या- दूसरी दूसरी सी बनकर, अपनी सजावटके ढंगसे विलक्षण शोभावाली बन कर जाती आती है, (मं. ८)

८. सनीडा- समान रीतिसे घरमें रहनेवाली,

९. अ-वाता- जो चचल नहीं है, स्त्रियोंमें चचलता यह दोष है अतः जिनमें वह दोष नहीं है, शान्त चित,

१०. अ-मृता- मुरदा जैसी जो नहीं है, पूर्ण जीवित, पूर्ण उत्साही, दक्ष,

११. पत्नी- घरका, कुटुंबका उचित पालन-पोषण करनेवाली,

१२. अवनी- सुरक्षा करनेवाली, घरकारी तासे करनेवाली,

१३. सहोभिः (युक्ता)— अनेक बलोंसे,

१४. जनिः- उत्तम संतान उत्पन्न करनेवाली,

१५. सहस्रा व्रता रक्षन्ते- सैकडों सहस्रों व्रत करते हैं।

१६. स्वसा— बहिनके समान (अन्य रहनेवाली, (मं. १०)

१७. मनीषा— बुद्धिमती,

१८. उशती— पतिका हित करनेकी इच्छावाली,

गृहस्थकी गृहिणी किन गुणोंसे युक्त होनी चाहिये वर्णन हैं। वेदमें स्त्रियोंके वर्णन बहुतही थोडे हैं पाठकोंको इन पदोंका विशेष मननपूर्वक अभ्यास है।

यहां यह स्त्रीका वर्णन नहीं हैं, पर उषा, दो स्त्रियाँ हैं ऐसा मानकर उनके मिषसे यहां वर्णन किया है, जो अत्यंत मननके योग्य है।

ऋषिका नाम

इस सूक्तके १३ वें मंत्रमें 'नोधा गौतमः' वे इस सूक्तके ऋषिके वाचक हैं। 'नोधा गोतम ब्रह्म अतक्षत' = गोतमपुत्र नोधा ऋषिने यह बनाया ऐसा यहां कहा है। अतः यह वर्णन

'नवग्व, दशग्व' (मं.४)- नौ गौवें रखनेवाले, दस गौवें अपने पास रखनेवाले। नौ मास मांसैतक यज्ञ करनेवाले। 'अङ्गिरस्' ऋषिका नाम चार वार आया है। यह ऋषि नोधाके पूर्व समकाल होता है।

दृश्यका वर्णन

१. उषसा सूर्येण गोभिः अन्धः वि वः सानु वि अप्रथयः—उषःकालके बाद सूर्य-उदय हुआ, किरणोंसे अन्धकार दूर हुआ और भूमिपर जो कुछ प्रकाशित हुए। यह सूर्योदयके दृश्यका मनोहर वर्णन है

पहरे उपराः मध्वर्णसः चतस्रः नद्यः अपि- वर्णनीय कर्म और अत्यंत सुंदर कर्म है।
त् अस्य प्रयक्षतमं कर्म, चारुतमं दंसः ये दृश्यके काव्यमय वर्णन हैं। ये काव्यमाधुरीकी दृष्टिसे बडेही
—पर्वतकी उतराईपरसे नीचे बहनेवाली मीठे जलकी उत्तम वर्णन हैं। अन्य उपदेश मंत्रोंमें है, जो मनन करनेसे
दीं महापूरसे भरी हुई बह रही हैं, यही इस इन्द्रका अधिक बोधक हो सकता है।

(६) प्रबल वीर

(ऋ० ३।६२) नोधा गौतमः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

त्वं महाँ इन्द्र यो ह शुष्मैर्द्यावा जज्ञानः पृथिवी अमे धाः । १
यद्ध ते विश्वा गिरयश्चिदभ्वा भिया दळ्हासः किरणा नेजन् ।
आ यद्धरी इन्द्र विव्रता वेरा ते वज्रं जरिता बाह्वोर्धात् । २
येनाविहर्यतक्रतो अमित्रान् पुर इष्णासि पुरुहूत पूर्वीः ।
त्वं सत्य इन्द्र धृष्णुरेतान् त्वमृभुक्षा नर्यस्त्वं पाट् । ३
त्वं शुष्णं वृजने पृक्ष आणौ यूने कुत्साय द्युमते सचाहन् ।
त्वं ह त्यदिन्द्र चोदीः सखा वृत्रं यद् वज्रिन् वृषकर्मन्नुभ्नाः । ४
यद्ध शूर वृषमणः पराचैर्वि दस्यूँर्योनावकृतो वृथापाट् ।

अन्वयः— १ हे इन्द्र ! त्वं महान् (असि), यः ह
ल्लः शुष्मैः द्यावापृथिवी अमे धाः । यत् ह ते भिया
दळ्हा अभ्वा दळ्हासः गिरयः चित् किरणाः न ऐजन् ॥
२ हे इन्द्र ! यत् विव्रता हरी आ वेः, (तदा) जरिता
बाह्वोः वज्रं आ धात् । हे अविहर्यतक्रतो पुरुहूत ! येन
मित्रान् पूर्वीः पुरः इष्णासि ॥
३ हे इन्द्र ! (त्वं) सत्यः, एतान् धृष्णुः । त्वं ऋभुक्षाः
नरः त्वं पाट् । त्वं वृजने पृक्षे आणौ द्युमते यूने कुत्साय
सचा शुष्णं अहन् ॥
४ हे वृषकर्मन् वज्रिन् शूर वृषमणः इन्द्र ! यत् ह वृषा-
पाट् दस्यून् पराचैः वि अकृतः यत् वृत्रं उभ्नाः, (तदा)
सखा त्वं ह त्यत् चोदीः ॥

अर्थ— १ हे इन्द्र ! तू महान् है, जिसने प्रकट होतेही अपने बलोंसे द्यावापृथिवीको शक्तिमें धारण किया । तब तेरे भयसे सब बडे बडे पर्वत भी, किरणोंके समान, कांपने लगे थे ॥

२ हे इन्द्र ! जब (तूने) विविध कर्म करनेवाले घोडोंको चलाया, (तब) स्तोताने तेरे दोनों हाथोंमें वज्र रखा, (तुझने ग्रहण कराया)। हे निष्पतिबंधतासे कर्म करनेवाले बहु प्रशंसित (इन्द्र)! जिससे तूने शत्रुओंको और उनके प्राचीन नगरों- को— या कोटोंको— गिरा दिया, (तोड दिया या उजाड दिया) ॥

३ हे इन्द्र ! तू सत्य है। तू इन शत्रुओंका नाशकर्ता है। तू मनुष्योंको चलानेवाला है । तूने अनेकोंका हिंसकों और शत्रुका पराभव करनेवाला है। तूने तुझसे समय अंधकारके समय तथा रात्रीके बुद्धमें, तेजस्वी अजन तुझसे स्नेह करनेके लिये उसके साथ रहकर शुष्णका वध किया ॥

४ हे बलके कर्म करनेवाले वज्रधारी शूर बलिष्ठ समर्थ इन्द्र ! जब बहादुरीसे शत्रुका नाश करनेवाले तूने दुष्टस्वभावी दस्युओंको पीछे हटाकर नष्ट किया, और उनको अलग, नि- र्बल बनाकर छोडी हुई रहीम को यह (अनेक धन) दिया ।

त्वं ह त्यदिन्द्रारिषण्यन् दळहस्य चिन्मर्तानामजुष्टौ ।
व्यर्स्मदा काष्ठा अर्वते वर्घनेव वज्रिञ्छ्नथिह्यमित्रान् ५
त्वां ह त्यदिन्द्रार्णसातौ स्वर्मीळ्हे नर आजा हवन्ते ।
तव स्वधाव इयमा समर्य ऊतिर्वाजेष्वतसाय्या भूत् ६
त्वं ह त्यदिन्द्र सप्त युध्यन् पुरो वज्रिन् पुरुकुत्साय दर्दः ।
बर्हिर्न यत् सुदासे वृथा वर्गहो राजन् वरिवः पूरवे कः ७
त्वं त्यां न इन्द्र देव चित्रामिषमापो न पीपयः परिज्मन् ।
यया शूर प्रत्यस्मभ्यं यंसि त्मनमूर्जं न विश्वध क्षरध्यै ८
अकारि त इन्द्र गोतमेभिर्ब्रह्माण्योक्ता नमसा हरिभ्याम् ।
सुपेशसं वाजमा भरा नः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ९

५ हे इन्द्र ! त्वं ह मर्तानां त्यत् दृढस्य चित् अजुष्टौ अरिषण्यन्, अस्मत् अर्वते काष्ठाः आ वि वः । हे वज्रिन् ! घ्नन् इव, अमित्रान् अथिहि ॥

६ हे इन्द्र ! नरः अर्णसातौ स्वर्मीळे आजा त्यत् त्वां ह हवन्ते । हे स्वधावः ! समर्ये वाजेषु तव इयं ऊतिः अतसाय्या भूत् ॥

७ हे वज्रिन् इन्द्र ! युध्यन् त्वं ह त्यत् सप्त पुरः पुरुकुत्साय दर्दः । हे राजन् ! यत् सुदासे बर्हिः न वृथा वर्कः (तदा) अंहोः वरिवः पूरवे कः ॥

८ हे देव इन्द्र ! त्वं नः त्यां चित्रां इषं, आपः न, परिज्मन् पीपयः, हे शूर ! यथा विश्वध क्षरध्यै, अस्मभ्यं, ऊर्जं न, त्मनं प्रति यंसि ॥

९ हे इन्द्र ! गोतमेभिः ते (स्तोत्रं) अकारि । (तव) हरिभ्यां नमसा ब्रह्माणि आ उक्ता । (त्वं) नः सुपेशसं वाजं आभर । (सः) धियावसुः प्रातः मक्षु जगम्यात् ॥

५ हे इन्द्र ! तूही मनुष्योंकी उस सुदृढ शत्रुके कारण उसका नाश करता हुआ, हमारे घोड़ेके दिशाएँ खुली कर दीं- मार्ग खुला कर दिया। हे तू वज्रके समान, शत्रुओंका नाश कर ॥

६ हे इन्द्र ! नेता लोग सोमरसपानके समय बलके बढानेके समय, आवश्यक हुए युद्धमें उस बुलाते हैं । हे अपनी शक्तिके धारक ! मनुष्यों होनेवाले युद्धोंमें तेरी यह सुरक्षा प्राप्त करनेयोग्य है।

७ हे वज्रधारी इन्द्र ! शत्रुओंसे लडनेके समय शत्रुओंकी वे सात पुरियाँ पुरु कुत्सकी सुरक्षाके लिये हे राजन् ! जब सुदासके हित करनेके लिये शत्रु समान, सहजहीसे काट दिया, तब अंहुका-पापी नागरिकोंके हितके लिये किया, दिया ॥

८ हे देव इन्द्र ! तूने हमारे ऊपर उस श्रेष्ठ समान, चारों ओरसे ऐसी वृष्टी की, हे शूर ! कि जो बढने लगी, हमारे लिये, बल प्राप्त होनेके समान, उत्साह भी प्राप्त हुआ ॥

९ हे इन्द्र ! गोतम-वंशियोंने तेरे लाभ लिये घोड़ोंके लिये अन्नदानके साथ जल (या स्तोत्र) (दिया)। तू हमारे लिये सुन्दर खानेवाला बल नर है, वह बुद्धिसे धन देनेवाला इन्द्र प्रातःसमय शीघ्र ही आ जाय ॥

अनुपम प्रतापी वीर

मन्त्रोंमें आये हुए वीरके विशेषण उस सूक्तमें है। यह वर्णन इन्द्र या किसी वीरके लिये भी वीरका गुण-वर्णन किया है—

१. त्वं महान्- तू बड़ा है,
२. जघानः शुष्णमः अमे धाः- प्रबल शत्रुके बलोंको सर्वत्र शक्तिका प्रभाव जमा दिया,
३. ते भिया विश्वा दृढासः पेजन्- तुझ

द्युक्षं सुदानं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम् ।
क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे २
न त्वा बृहन्तो अद्रयो वरन्त इन्द्र वीळवः ।
यद्दित्ससि स्तुवते मावते वसु नकिष्टदा मिनाति ते ३
योद्धासि क्रत्वा शवसोत दंसना विश्वा जाताभि मज्मना ।
आ त्वायमर्क ऊतये ववर्तति यं गोतमा अजीजनन् ४
प्र हि रिरिक्ष ओजसा दिवो अन्तेभ्यस्परि ।
न त्वा विव्याच रज इन्द्र पार्थिवमनु स्वधां ववक्षिथ ५
नकिः परिष्टिर्मघवन्मघस्य ते यद्दाशुषे दशस्यसि ।
अस्माकं बोध्युचथस्य चोदिता महिष्ठो वाजसातये ६

२ द्युक्षं, सुदानुं, तविषीभिः आवृतं, गिरिं न, पुरुभोजसं, क्षुमन्तं, गोमन्तं शतिनं सहस्रिणं वाजं मक्षु ईमहे ॥

३ हे इन्द्र ! यत् मावते स्तुवते वसु दित्ससि, बृहन्तः वीडवः अद्रयः त्वा न वरन्ते । ते तत् नकिः आ मिनाति ॥

४ क्रत्वा शवसा उत दंसना योद्धा असि । मज्मना विश्वा जाता अभि (भवसि) । गोतमाः यं अजीजनन्, अयं अर्कः त्वा ऊतये आ ववर्तति ॥

५ हे इन्द्र ! (त्वं) ओजसा दिवः परि अन्तेभ्यः प्र रिरिक्षे हि । पार्थिवं रजः त्वा न विव्याच । (त्वं) स्वधां अनु ववक्षिथ ॥

६ हे मघवन् ! यत् दाशुषे दशस्यसि, ते मघस्य परिष्टिः नकिः । चोदिता महिष्ठः वाजसातये अस्माकं उचथस्य बोधि ॥

२ हम द्युलोकमें निवास करनेवाले, दान देनेवाले, शक्तियोंसे युक्त, पर्वतके समान, बहुतोंको भोजन स्वयं अन्नरूप, गौओंके (दूधके) साथ मिले सहस्रोंको बल देनेवाले (सोमको) शीघ्रही चाहते

३ हे इन्द्र ! जब मेरे सदृश भक्तको तू धन देता है, तब बड़े सुदृढ पर्वत भी तुझे नहीं रोक सकते। कर्मको कोई नहीं तोड सकता ॥

४ तू अपनी बुद्धि, बल और कर्मसे योद्धा है। तू सब उत्पन्न पदार्थोंको घेरता है । गोतम गोत्रके बनाया, वह यह स्तोत्र तुझे सुरक्षाके लिये हमारी (प्रवृत्त) करता है ॥

५ हे इन्द्र ! तू अपने बलसे द्युलोकके परले बहुतही बडा है। पृथ्वी और अन्तरिक्ष भी तुझे रोक (तुमने हमारा दिया शरीर) धारक अन्न (देनेको) है ॥

६ हे धनसंपन्न इन्द्र । जो धन तू दाताको देता उसकी मर्यादा नहीं है । (सबका) प्रेरक और (सबसे) तू अन्नदानके समय हमारे स्तोत्रकी ओर ध्यान दे ।

वीरताके गुण

इस सूक्तमें वीरताके साथ रहनेवाले निम्नलिखित गुण वर्णन किये गये हैं—

१. ऋतीषाट्— (ऋति-षाट्)- 'ऋति' का अर्थ है= सेना, गति, शत्रुका हमला, शत्रुका आक्रमण, गाली, दुःख, आपत्ति, कष्ट । इनका प्रतिकार करना वीरका कर्तव्य है अतः उसको 'ऋति-षाट्' कहते हैं (मं. १)

२ बृहन्तः वीडवः अद्रयः त्वा न वरन्ते— स्थायी प्रबल पर्वत अथवा शत्रु तुझे नहीं रोक सकते।

३. ते तत् नकिः आ मिनाति- तेरे शुभकर्मोंमें भी तोड नहीं सकता। तेरी योजना बीचहीमें कभी नहीं होती । (मं. ३)

४. क्रत्वा शवसा उत दंसना योद्धा असि— पुरुषार्थ, बल और शत्रुनाशक सामर्थ्यकी दृष्टिसे तू

है।

मज्मना विश्वा जाता अभि भवसि- अपने सब उत्पन्न हुई आपत्तियोंको दूर करता है, सब शत्रु-रास्त करता है।

ऊतये त्वा आ ववर्तति— अपनी सुरक्षाके लिये बुलाते हैं। (मं. ४)

ओजसा (त्वं) प्र रिरिक्षे, त्वा न विव्याच- अपने बलसे तू सबसे बढकर श्रेष्ठ है, तेरेसे श्रेठ कोई नहीं है। (मं.५)

८. ते मघस्य परिष्टिः नकिः— तेरे धनकी कोई सीमा नहीं है, तेरे सामर्थ्यकी कोई सीमा नहीं है।

इस सूक्तके ये गुण अन्य इन्द्र सूक्तोंके वर्णनोंके साथ देखने योग्य हैं। इन्द्र सूक्त जिस क्षात्रविद्याका उपदेश करते हैं वह विद्या यही है। ये गुण जो लोग अपनेमें बढा लेंगे वेही वीर बनकर दिग्विजयी होंगे।

(८) वीर काव्य

(ऋ० १।६४) नोधा गौतमः। मरुतः। जगती, १५ त्रिष्टुप्।

वृष्णे शर्धाय सुमखाय वेधसे नोधः सुवृक्तिं प्र भरा मरुद्भ्यः।
अपो न धीरो मनसा सुहस्त्यो गिरः समञ्जे विदथेष्वाभुवः १

ते जज्ञिरे दिव ऋष्वास उक्षणो रुद्रस्य मर्या असुरा अरेपसः।
पावकासः शुचयः सूर्या इव सत्वानो न द्रप्सिनो घोरवर्पसः २

युवानो रुद्रा अजरा अभोग्घनो ववक्षुरध्रिगावः पर्वता इव।
दृळ्हा चिद् विश्वा भुवनानि पार्थिवा प्र च्यावयन्ति दिव्यानि मज्मना ३

अन्वयः—१ हे नोधः। वृष्णे सुमखाय वेधसे शर्धाय मरुद्भ्यः सुवृक्तिं प्र भर। धीरः सुहस्त्यः मनसा, विदथेषु आभुवः गिरः, अपः न, सं अञ्जे॥

२ ते ऋष्वासः उक्षणः असुराः अरेपसः, सूर्या इव शुचयः पावकासः द्रप्सिनः न घोरवर्पसः रुद्रस्य मर्याः दिवः जज्ञिरे॥

३ युवानः रुद्राः अजराः अभोग्घनः अध्रिगावः पर्वता इव रुद्राः ववक्षुः, पार्थिवा दिव्यानि विश्वा भुवनानि दृळ्हा चिद् मज्मना प्र च्यावयन्ति॥

अर्थ— १ हे नोधा नामक ऋषे! [illegible] यज्ञ करनेके लिये, उत्तम यज्ञ करनेके लिये, ज्ञानी बननेके लिये, मरुतोंके उत्तम काव्य निर्माण कर। [illegible] कुशल मैं मनसे (उनको सजा करता हूँ और) तुमसे उत्तम युक्त भाषण, जल पवित्रके समान, [illegible] करता हूँ।

२ वे ऊँचे बढे (अनेक) [illegible] रहित और पवित्रता करनेवाले, सूर्य ([illegible]) करनेवाले (द्रप्सिनः) [illegible] समान बडे शरीरवाले, [illegible] और स्वर्गसे प्रकट हुए हैं।

३ युवा अजर हैं, [illegible] बलसे [illegible] वाले, पर्वतोंके समान अपने स्थानसे [illegible] करनेवाले वे मरुत ([illegible]) [illegible] पार्थिव दिव्य [illegible] दृढ [illegible] वनों [illegible] को [illegible]

चर्कृत्यं मरुतः पृत्सु दुष्टरं द्युमन्तं शुष्मं मघवत्सु धत्तन ।
धनस्पृतमुक्थ्यं विश्वचर्षणिं तोकं पुष्येम तनयं शतं हिमाः ॥१३
नू ष्टिरं मरुतो वीरवन्तमृतीषाहं रयिमस्मासु धत्त ।
सहस्रिणं शतिनं शूशुवांसं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥१४

१४ हे मरुतः ! मघवत्सु चर्कृत्यं पृत्सु दुष्टरं द्युमन्तं शुष्मं धनस्पृतं उक्थ्यं विचर्षणिं तोकं तनयं धत्तन, शतं हिमाः पुष्येम ॥

१५ हे मरुतः ! अस्मासु स्थिरं वीरवन्तं ऋतीषाहं शतिनं सहस्रिणं शूशुवांसं रयिं नु धत्त, प्रातः धियावसुः मक्षु जगम्यात् ॥

१४ हे मरुत् वीरो ! धनिकोंमें उत्तम कर्म युद्धोंमें विजयी, तेजस्वी, बलिष्ठ धनसे युक्त, [illegible] का हितकारी पुत्र और पौत्र प्राप्त हो और हम सौ होते रहें ॥

१५ हे मरुतो ! हममें स्थायी, वीरोंसे युक्त, शत्रुओं करनेवाला, सैकडों और सहस्रों प्रकारका बढानेवाला हमारे पास प्रातःकालही बुद्धिद्वारा कर्मोंका संपादन वीर शीघ्रही आजावे ॥

वीरोंका कर्म

यह वीर काव्य है। इसमें वीरोंके कर्मोंका उत्तम वर्णन है। इस काव्यका प्रत्येक शब्द वीरोंके शुभ गुणोंका वर्णन करता है। मंत्रोंका सरल अर्थ दिया है और वहीं प्रत्येक पदका अर्थ स्पष्ट कर दिया है, इसलिये इसका अधिक स्पष्टीकरण करनेकी आवश्यकता नहीं है। जो भी मंत्र पाठक पढकर देखेंगे वह निःसंदेह बोधप्रद और वीरताकी उत्तेजना करनेवाला प्रतीत होगा।

बल प्राप्त करना और बढाना, ज्ञान प्राप्त करना और बढाकर उसका फैलाव करना, संघशक्ति बढाना, प्रत्येक कर्म कुशलतासे और पूर्णतासे करना, युद्धभूमिपर अपना प्रभाव जमाना, पापरहित हो कर पवित्र जीवन व्यतीत करना, शरीरको हृष्टपुष्ट बलवान् और सामर्थ्यवान् रखना और उसको कार्योंमें लगाना, युद्धमें अपने स्थानमें सुस्थिर रहना, कैसा भी हमला आ जाय, उससे न डरते हुए [illegible] रहना, पर जिस समय शत्रुपर हमला किया जाय उस शत्रु कितना भी बलवान् हुआ तो भी उसको उखाडकर इत्यादि अनेक बातें इन मंत्रोंमें हैं. जो माननीय रखनेयोग्य हैं। इन मंत्रोंका प्रत्येक शब्द मननीय प्रद है। इसलिये पाठक प्रत्येक मंत्रका एक एक पूर्वक देखें और उसका अभ्यास करके बोध प्राप्त

वीरता बढानेवाला यह सूक्त है। इन्द्रके साथ संबंध है, वह वीरताकाही संबंध है।

(नवम मण्डल)

(९) सोमरस

(ऋ० ९।९३) नोधा गौतमः । पवमानः सोमः । त्रिष्टुप् ।

साकमुक्षो मर्जयन्त स्वसारो दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः ।
हरिः पर्यद्रवज्जाः सूर्यस्य द्रोणं ननक्षे अत्यो न वाजी ॥१

अन्वयः– १ साकमुक्षः स्वसारः मर्जयन्तः दश धीतयः धीरस्य धनुत्रीः । हरिः सूर्यस्य जाः परि अद्रवत् । अत्यः वाजी न द्रोणं ननक्षे ॥

अर्थ— १ साथ साथ जलका छिडकाव करनेवाली, दलचल करनेवाली, शुद्धता करनेवाली दस अंगुलियाँ (सोम) को प्रेरणा करनेवाली हैं। हरे रंगका यह सूर्यसे उत्पन्न दिशाओंके चारों ओर भ्रमण कर रहा है। शील घोडेके समान (यह सोम) द्रोणके पास पहुंचता है।

मेधा ऋषिके दर्शनकी

विषयसूची

विषय	पृष्ठ
मेधा ऋषिका तत्त्वज्ञान	३
सूक्तानुसार मन्त्र-गणना	
(ऋग्वेदमें प्रथम, अष्टम, नवम मण्डल)	,,
देवतावार मन्त्रसंख्या	,,
	५
मेधा ऋषिका दर्शन	
(प्रथम मण्डल, एकादश अनुवाक)	,,
(१) अजर-अमर-अग्नि	,,
अग्निके विशेषणोंका विचार	७
परमेश्वरका स्वरूप	८
(२) विश्वका नेता	९
विश्वका संचालक (अग्नि-वैश्वानर)	१०
(३) आदर्श प्रजापालक	१३
प्रजापतिका शासन	१४
आदर्श स्वामी (अग्नि)	,,
ऋषिका नाम	१५
(४) प्रभावी इन्द्र	,,
आदर्श वीर (इन्द्र)	१८
ऋषिका नाम	१९
(५) वीर इन्द्र	,,
आदर्श वीर (इन्द्र)	२१
आदर्श स्त्री	२२
ऋषिका नाम	,,
उदयका वर्णन	,,
(६) प्रबल वीर	२३
अतुल प्रतापी वीर (इन्द्र)	२४
(अष्टम मण्डल, नवम अनुवाक)	
(७) वीर भाव	२५
वीरताके गुण	२६
(प्रथम मण्डल)	
(८) वीर काव्य	२७
वीरोंका धर्म	३०
(नवम मण्डल, पञ्चम अनुवाक)	
(९) सोमरस	३१
सोमरस बनानेकी रीति	

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(८)

पराशर ऋषिका दर्शन

(ऋग्वेदका बारहवाँ अनुवाक)

लेखक

पं० श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,

अध्यक्ष स्वाध्याय-मण्डल, औन्ध, [जि० सातारा]

संवत् १००३

मूल्य १) रु०

मुद्रक तथा प्रकाशक- वसंत श्रीपाद सातवळेकर, B. A.
भारत-मुद्रणालय, औंध (जि. सातारा)

पराशर ऋषिका तत्त्वज्ञान

पराशर ऋषिके मंत्र प्रथम मण्डलके बारहवें अनु- और सोमके मंत्र नवम मण्डलमें ९७ वें सूक्तमें हैं, ऐसा है-

सूक्तवार मन्त्र-संख्या

द प्रथममण्डल
दशवाँ अनुवाक

देवता	मंत्रसंख्या	छन्द	
अग्निः	१०	द्विपदा विराट्	
,,	१०	,,	
,,	१०	,,	
,,	१०	,,	
,,	१०	,,	
,,	११	,,	
,,	१०	त्रिष्टुप्	
,,	१०	,,	
	१०	,,	९१

वम-मंडल

वमानः सोमः	१४	,,	१४

कुलमंत्र-संख्या १०५

देवतावार मंत्र-संख्या

मंत्र-संख्या इस तरह होती है—

ग्निदेवता	९१
वमानः सोमः	१४
लमंत्र-संख्या	१०५

ऋषिके मंत्रोंमें अग्निदेवताकेही मंत्र विशेषतया र सोमके सिवाय अन्य देवतापर इस ऋषिके मंत्र

पदा विराट् (दो चरणोंवाले विराट् छन्द) के और चार चरणोंके त्रिष्टुप् छन्दके मंत्र ७४ हैं। अर्थात् पहिले ९१ मंत्र चार चरणोंके बनाये तो वे केवल ३०॥ ही होंगे। द्विपदा विराट् छन्दका मंत्र आधे मंत्रके समान ही होता है।

अथर्ववेदमें इस ऋषिके मंत्र नहीं हैं।

'पराशरः' पद निघण्टु ४।३ में पदनामोंमें लिया है। इसका विवरण श्री. यास्कमुनि निरुक्तमें ऐसा लिखते हैं-

पराशरः पराशीर्णस्य वसिष्ठस्य स्थविरस्य जज्ञे। 'पराशरः शतयातुर्वसिष्ठः' (ऋ. ७।१८।२१) इत्यपि निगमा भवति। इन्द्रोऽपि पराशरउच्यते, पराशातयिता यातूनाम्। 'इन्द्रो यातूनां अभवत् पराशरः' (ऋ. ७।१०४।२१) इत्यपि निगमो भवति॥ निरुक्त. [३।३।३०।(१२१)]

अत्यंत वृद्ध वसिष्ठका (माना हुआ) पुत्र पराशर है। इन्द्रको भी पराशर कहते हैं, क्योंकि वह शत्रुओंका बडा दमन करता है। इस विषयमें दो मंत्र देखनेयोग्य है-

प्र ये गृहादममदुस्त्वाया पराशरः शतयातुर्वसिष्ठः। न ते भोजस्य सख्यं मृषन्ताधा सूरिभ्यः सुदिना व्युच्छान्॥ (ऋ. ७।१८।२१)

इन्द्रो यातूनामभवत्पराशरो हविर्मथीनामभ्याविवासताम्। अभीदु शक्रः परशुर्यथा वनं पात्रेव भिन्दन्त्सत एति रक्षसः॥

(ऋ. ७।१०४।२१; अथर्व. ८।४।२१)

'पराशर, शतयातु और वसिष्ठ ये तीनों ऋषि तेरी भक्ति करके यज्ञगृहमें बडे आनन्दित हो रहे हैं। ये तीनों तेरी मित्रताका कभी निरादर नहीं करते हैं। नव दिनोंके लिये शुभदायक दिनोंकाही उदय हो जावे।' इस मंत्रमें पराशर, शतयातु और वसिष्ठ इन तीनोंके नाम हैं और यह मंत्र ऐतिहासिक है।

और दिया दूसरा मंत्र भी वसिष्ठ ऋषिकाही है— "इन्द्र दुष्ट शत्रुओंका पूर्ण नाश करता है, वे शत्रु यज्ञके हविका नाश करते थे। इसने इनका नाश ऐसा किया जैसे किसी

मुद्रक तथा प्रकाशक- वसंत श्रीपाद सातवळेकर, B. A.
भारत-मुद्रणालय, औंध (जि. सातारा)

पराशर ऋषिका तत्त्वज्ञान

ऋग्वेदमें पराशर ऋषिके मंत्र प्रथम मण्डलके बारहवें अनुवाकमें हैं और सोमके मंत्र नवम मण्डलमें ९७ वें सूक्तमें हैं, ऐसा ब्यौरा ऐसा है–

सूक्तवार मन्त्र-संख्या

ऋग्वेद प्रथममण्डल

द्वादशवाँ अनुवाक

सूक्त	देवता	मंत्रसंख्या	छन्द	
६५	अग्निः	१०	द्विपदा विराट्	
६६	,,	१०	,,	
६७	,,	१०	,,	
६८	,,	१०	,,	
६९	,,	१०	,,	
७०	,,	११	,,	
७१	,,	१०	त्रिष्टुप्	
७२	,,	१०	,,	
७३		१०	,,	९१

नवम-मंडल

९७	पवमानः सोमः	१४	,,	१४

कुलमंत्र-संख्या १०५

देवतावार मंत्र-संख्या

देवतावार मंत्र-संख्या इस तरह होती है—

अग्निदेवता	९१
पवमानः सोमः	१४
कुलमंत्र-संख्या	१०५

पराशर ऋषिके मंत्रोंमें अग्निदेवताकेही मंत्र विशेषतया हैं। अग्नि और सोमके सिवाय अन्य देवतापर इस ऋषिके मंत्र नहीं है।

इनमें द्विपदा विराट् (दो चरणोंवाले विराट् छन्द) के मंत्र ६१ हैं और चार चरणोंके त्रिष्टुप् छन्दके मंत्र ४४ हैं। अर्थात् पहिले ६१ मंत्र चार चरणोंके बनाये तो वे केवल ३०॥ ही होंगे। द्विपदा विराट् छन्दका मंत्र आधे मंत्रके समान ही होता है।

अथर्ववेदमें इस ऋषिके मंत्र नहीं हैं।

'पराशरः' पद निघण्टु ४।३ में पदनामोंमें लिखा है। इसका विवरण श्री. यास्कमुनि निरुक्तमें ऐसा लिखते हैं–

पराशरः पराशीर्णस्य वसिष्ठस्य स्थविरस्य जज्ञे। 'पराशरः शतयातुर्वसिष्ठः' (ऋ. ७।१८।२१) इत्यपि निगमा भवति। इन्द्रोऽपि पराशरउच्यते, पराशातयिता यातूनाम्। 'इन्द्रो यातूनां अभवत् पराशरः' (ऋ. ७।१०४।२१) इत्यपि निगमो भवति॥ निरुक्त. [६।६।२०।(१२१)]

अत्यंत वृद्ध वसिष्ठका (माना हुआ) पुत्र पराशर है। इन्द्रको भी पराशर कहते हैं, क्योंकि वह शत्रुओंका बडा दमन करता है। इस विषयमें दो मंत्र देखनेयोग्य है–

प्र ये गृहादममदुस्त्वाया पराशरः शतयातुर्वसिष्ठः। न ते भोजस्य सख्यं मृषन्ताधा सूरिभ्यः सुदिना व्युच्छान्॥ (ऋ. ७।१८।२१)

इन्द्रो यातूनामभवत्पराशरो हविर्मथीनामभ्याविवासताम्। अभीदु शक्रः परशुर्यथा वनं पात्रेव भिन्दन्त्सत एति रक्षसः॥

(ऋ. ७।१०४।२१; अथर्व. ८।४।२१)

'पराशर, शतयातु और वसिष्ठ ये तीनों ऋषि तेरी भक्ति करके यज्ञगृहमें बडे आनन्दित हो रहे हैं। ये तीनों तेरी मित्रताका कभी निरादर नहीं करते हैं। सब दिनोंके लिये शुभदायक दिनोंकाही उदय हो जावे।' इस मंत्रमें पराशर, शतयातु और वसिष्ठ इन तीनोंके नाम हैं और यह मंत्र वसिष्ठका है।

ऊपर दिया दूसरा मंत्र भी वसिष्ठ ऋषिकाही है— "इन्द्र दुष्ट शत्रुओंका पूर्ण नाश करता है, ये शत्रु यज्ञके हविका नाश करते थे। इन्द्रने इनका नाश ऐसा किया कि जैसा कुल्हाडेसे

मुद्रक तथा प्रकाशक- वसंत श्रीपाद सातवळेकर, B. A.
भारत-मुद्रणालय, औंध (जि. सातारा)

पराशर ऋषिका तत्त्वज्ञान

ऋग्वेदमें पराशर ऋषिके मंत्र प्रथम मण्डलके बारहवें अनुवाक हैं और सोमके मंत्र नवम मण्डलमें ९७ वें सूक्तमें हैं, ऐसा ब्यौरा ऐसा है–

सूक्तवार मन्त्र-संख्या

ऋग्वेद प्रथममण्डल

द्वादशवाँ अनुवाक

सूक्त	देवता	मंत्रसंख्या	छन्द
६५	अग्निः	१०	द्विपदा विराट्
६६	,,	१०	,,
६७	,,	१०	,,
६८	,,	१०	,,
६९	,,	१०	,,
७०	,,	११	,,
७१	,,	१०	त्रिष्टुप्
७२	,,	१०	,,
७३		१०	,, ९१
	नवम-मंडल		
९७	पवमानः सोमः	१४	,, १४

कुलमंत्र-संख्या १०५

देवतावार मंत्र-संख्या

देवतावार मंत्र-संख्या इस तरह होती है—

अग्निदेवता	९१
पवमानः सोमः	१४
कुलमंत्र-संख्या	१०५

पराशर ऋषिके मंत्रोंमें अग्निदेवताकेही मंत्र विशेषतया हैं। अग्नि और सोमके विवाय अन्य देवतापर इस ऋषिके मंत्र नहीं हैं।

इनमें द्विपदा विराट् (दो चरणोंवाले विराट् छन्द) के मंत्र ९१ हैं और चार चरणोंके त्रिष्टुप् छन्दके मंत्र ४४ हैं। अर्थात् पहिले ९१ मंत्र चार चरणोंके बनाये तो वे केवल ३०॥ ही होंगे। द्विपदा विराट् छन्दका मंत्र आधे मंत्रके समान ही होता है।

अथर्ववेदमें इस ऋषिके मंत्र नहीं हैं।

'पराशरः' पद निघण्टु ४।३ में पदनामोंमें लिखा है। इसका विवरण श्री. यास्कमुनि निरुक्तमें ऐसा लिखते हैं–

पराशरः पराशीर्णस्य वसिष्ठस्य स्थविरस्य जज्ञे। 'पराशरः शतयातुर्वसिष्ठः' (ऋ. ७।१८।२१) इत्यपि निगमा भवति। इन्द्रोऽपि पराशर उच्यते, पराशातयिता यातूनाम्। 'इन्द्रो यातूनां अभवत् पराशरः' (ऋ. ७।१०४।२१) इत्यपि निगमो भवति॥ निरुक्त. [३।६।३०।(१२१)]

अत्यंत वृद्ध वसिष्ठका (माना हुआ) पुत्र पराशर है। इन्द्रको भी पराशर कहते हैं, क्योंकि वह शत्रुओंका बडा दमन करता है। इस विषयमें दो मंत्र देखनेयोग्य है–

प्र ये गृहादममदुस्त्वाया पराशरः शतयातुर्वसिष्ठः। न ते भोजस्य सख्यं मृषन्ताधा सूरिभ्यः सुदिना व्युच्छान्॥ (ऋ. ७।१८।२१)

इन्द्रो यातूनामभवत्पराशरो हविर्मथीनामभ्याविवासताम्। अभीदु शक्रः परशुर्यथा वनं पात्रेव भिन्दन्त्सत एति रक्षसः॥

(ऋ. ७।१०४।२१; अथर्व. ८।४।२१)

'पराशर, शतयातु और वसिष्ठ ये तीनों ऋषि तेरी भक्ति करके यज्ञगृहमें बडे आनन्दित हो रहे हैं। ये तीनों तेरी मित्रताका कभी निरादर नहीं करते हैं। सब विघ्नोंके लिये सुखदायक दिनोंकाही उदय हो जावे।' इस मंत्रमें पराशर, शतयातु और वसिष्ठ इन तीनोंके नाम हैं और यह मंत्र वसिष्ठका है।

और दिया दूसरा मंत्र भी वसिष्ठ ऋषिकाही है— "इंद्र शत्रुओंका पूर्ण नाश करता है, वे शत्रु यज्ञके हवि करते थे। इन्द्रने इनका नाश ऐसा किया कि जैसे

वस्तुका नाश होता है, अथवा (मिट्टीके) बर्तन जैसे तोड़े जा सकते हैं," यहां इन्द्रका विशेषण 'परा-शर' (दूर करके-नाशकर्ता) इस अर्थका आया है। पूर्व मंत्रमें यह नाम ऋषिका नाम है और यहां यह पद इन्द्रका सामर्थ्य बता रहा है। ऋग्वेदमें इन दोही मंत्रोंमें 'पराशर' पद आया है। अथर्ववेदमें दो वार पराशर पद है वे मंत्र अब देखिये—

अव मन्युरवायताव बाहू मनोयुजा।
पराशर त्वं तेषां पराञ्चं शुष्ममर्दयाधा नो
रयिमा कृधि ॥ (अ. ६।६५।१)

अथर्ववेदमें आया दूसरा मंत्र, ऊपर दिया दूसरा मंत्रही है, अतः उसके यहां पुनः लिखनेकी आवश्यकता नहीं है।

'क्रोध दूर हो, शस्त्र दूर रहें, मनसे (मारनेके लिये) प्रेरित हुए हाथ दूर हों, हे (पराशर) दूरसे शत्रुको मारनेवाले वीर! तू उन शत्रुओंके बलको दूर करके नष्ट कर और हमें धन दे।' यहां भी दूरसे शत्रुका नाश करनेवाले वीर इन्द्रकाही यह वर्णन है। यह पराशर ऋषिका वाचक पद नहीं है। अन्यत्र संहिताओंमें पराशर पद नहीं है। ऊपर दिये मंत्र 'पराशर' का अर्थ तथा उसकी व्युत्पत्ति बताते हैं। **'यातूनां पराशरः'** (शत्रुओंका नाश करनेवाला), **'परा शुष्मं अर्दय'** (दूर करके शत्रुके बलका नाश कर) ये मंत्रभाग 'परा-शर' की व्युत्पत्ति तथा अर्थ बता रहे हैं।

पराशीर्णस्य स्थविरस्य जज्ञे ॥ (६।३०)

इसके अर्थका अक्षरशः ग्रहण करते हुवे कई लोग **पराशरको वसिष्ठ** पुत्र मानते हैं, परन्तु यह मानना ठीक नहीं। आगे लिखी हुई कथासे ऐसा निश्चय हो जाता है कि, वृद्धावस्थामें सब पुत्रोंका निधन होनेसे दुखी होगये हुवे **वसिष्ठको पराशर** आधारभूत हुवे। यही निश्चय ठीक है। महाभारतमें भी इसीका अनुवाद किया है।

एक वार पुत्र-निधनसे विरक्त होकर **वसिष्ठजी** अपने आश्रमसे चल पड़े। वसिष्ठके मृत पुत्र **शक्तिकी** विधवा पत्नी **अदृश्यन्ती** भी उनके पीछे चलने लगी। अचानक **वसिष्ठ**-को ज्ञात हुवा कि अपने पीछेसे कहींसे वेदध्वनि सुनाई दे रहा है। ध्यान देकर सुननेपर वे समझ गये कि **अदृश्यन्ती**के उदरमें जो गर्भ है, वही वेदगान कर रहा है। तब उन्हें विश्वास हुआ कि वंश अभी जीवित है। वे वापस लौटे। कुछ दिनोंके बाद **'अदृश्यन्ती'** प्रसूत होकर जन्म हुवा। इनका लालन-पालन इनके पितामह ही किया। इसलिये ये **वसिष्ठजीको ही "** यह पराशर बालपनमें पुकारा करते। **अदृश्यन्ती** इन्हें समझाया कि वे तुम्हारे दादा हैं, नकि पिता विचारे छोटे बच्चेको दादा और पिता इनका भेद परन्तु **पराशर** बड़े हो जानेपर **अदृश्यन्तीने** इस राक्षसके द्वारा मृत हो गये हुवे उनके [illegible] सुनाई। **पराशरजी** अत्यन्त क्रुद्ध होकर सारे करनेके लिये प्रवृत्त हुवे। जब **वसिष्ठजीको** इस चला, तब उन्होंने **पराशरजीको** और्वकी कथा इस निश्चयसे परावृत्त किया। फिर भी **पराशरजीके** राक्षसोंके विषयमें जो क्रोध निर्माण हुवा था, वह पाया। आगे चलकर इन्होंने सर्व आबाल वृद्ध [illegible] करनेके हेतुसे राक्षस-सत्रका प्रारम्भ किया। **वसिष्ठजी** कुछ नहीं बोले। परन्तु निरपराध [illegible] क्षण करनेके लिये **पुलह, पुलस्त्य, क्रतु,** [illegible] बड़े बड़े मुनि वहां आ पहुंचे। महर्षि **पुलस्त्यने जीको** कहा कि निरपराध, निर्दोष राक्षसोंकी हत्या ही हो जायगी। यह बात उचित नहीं है। तब **ने** अपने पौत्रको उपदेश कर उस राक्षससत्रमें किया। फिर **पुलस्त्यजीने** सन्तुष्ट होकर प [illegible] "तुम सकलशास्त्रपारंगत और पुराणवक्ता हो जाओगे। दो वर दिये।

पुराणसंहिताकर्ता भवान्वत्स भविष्यति।
देवतापारमार्थ्यं च यथावद्वेत्स्यते भवान्॥
(विष्णु० १।२।

पराशरजीने राक्षससत्रके लिये जो अग्नि सिद्ध था उसे उन्होंने हिमाचलके उत्तरी दिशाके एक अरण्यमें दिया। ऐसा कहते हैं कि वह अग्नि आज भी पर्वत राक्षस, पाषाण और वृक्षोंको खाता है।

ततो दृष्ट्वाऽऽश्रमपदं रहितं तैः सुतैर्मुनिः।
निर्जगाम सुदुःखार्तः पुनरप्याश्रमात्ततः॥
अथ शुश्राव संगत्या वेदाध्ययननिःस्वनम्।
अस्त्यन्वति को न्वेष मामित्येवाथ सोऽब्रवीत्।

अदृश्यन्त्युवाच—

शक्तेर्भार्या महाभाग तपोयुक्ता तपस्विनम् ।
अहमेकाकिनी चापि त्वया गच्छामि नापरः ॥१५॥

वसिष्ठ उवाच—

पुत्रि कस्यैष साङ्गस्य वेदस्याध्ययनस्वनः ॥ १६ ॥

अदृश्यन्त्युवाच—

अयं कुक्षौ समुत्पन्नः शक्तेर्गर्भः सुतस्य ते ॥१७॥

गन्धर्व उवाच-

एवमुक्तस्तया हृष्टो वसिष्ठः श्रेष्ठभागृषिः ।
अस्ति सन्तानमित्युक्त्वा मृत्योः पार्थं न्यवर्तत १८
(म. आ. १९३)

गन्धर्व उवाच—

आश्रमस्था ततः पुत्रमदृश्यन्ती व्यजायत ।
शक्तेः कुलकरं राजन् द्वितीयमिव शक्तिनम् ॥१॥
जातकर्मादयस्तस्य क्रियाः स मुनिसत्तमः ।
पौत्रस्य भरतश्रेष्ठ चकार भगवान्स्वयम् ॥२॥
पराशुः स यतस्तेन वसिष्ठः स्थापितो मुनिः ।
गर्भस्थेन ततो लोके पराशर इति स्मृतः ॥३॥
स तात इति विप्रर्षिं वसिष्ठं प्रत्यभाषत ॥५॥
तातेति परिपूर्णार्थं तस्य तन्मधुरं वचः ।
अदृश्यन्त्यश्रुपूर्णाक्षी शृण्वन्ती तमुवाच ह ॥६॥
मा तात तात तातेति ब्रूहीमं पितरं पितुः ।
रक्षसा भक्षितस्तात तव तातो वनान्तरे ॥७॥
स एवमुक्तो दुःखार्तः सत्यवागृषिसत्तमः ।
सर्वलोकविनाशाय मतिं चक्रे महामनाः ॥९॥
तं तथा निश्चितात्मानं स महात्मा महातपाः ॥१०॥
वसिष्ठो वारयामास ... ... ॥११॥
(म. अ. १९४)

वसिष्ठ उवाच—

तस्मात्त्वमपि भद्रं ते न लोकान्हन्तुमर्हसि ॥२३॥
(अ. १९६)

एवमुक्तः स विप्रर्षिर्वसिष्ठेन महात्मना ।
न्ययच्छदात्मानः क्रोधं सर्वलोकपराभवात् ॥१॥
ईजे च स महातेजाः सर्ववेदविदां वरः ।
ऋषी राक्षससत्रेण शक्तेर्योऽथ पराशरः ॥२॥
न हि तं वारयामास वसिष्ठो रक्षसां वधात् ॥४॥
तथा पुलस्त्यः पुलहः क्रतुश्चैव महाक्रतुः ।
तत्राजग्मुरभिप्रेत्य रक्षसां जीवितेप्सया ॥९॥

पुलस्त्य उवाच—

कच्चित्तातापविघ्नं ते कच्चिन्नन्दसि पुत्रक ।
अजानतामदोषाणां सर्वेषां रक्षसां वधात् ॥११॥

गन्धर्व उवाच—

एवमुक्तः पुलस्त्येन वसिष्ठेन च धीमता ।
तदा समापयामास सत्रं शाक्तो महामुनिः ॥१२॥
सर्वराक्षससत्राय संभृतं पावकं तदा ।
उत्तरे हिमवत्पार्श्वे उत्ससर्ज महावने ॥१३॥
स तत्राद्यापि रक्षांसि वृक्षानश्मन एव च ।
भक्षयन्दृश्यते वह्निः सदा पर्वणि पर्वणि ॥२४॥
(म. आ. १९७)

एकबार जबकि पराशरजी तीर्थयात्रा कर रहे थे, उन्होंने यमुनाके जलमें नाव चलाती हुई सत्यवतीको देखा। पराशरजी उसपर लुब्ध हुवे और उन्होंने उसके पास कामपूर्तिकी इच्छा प्रकट की, उन्होंने चारों ओर धूंवा निर्माण किया। सत्यवतीने कौमार्यभंग होनेकी शंका प्रकट करनेपर इन्होंने तपश्चर्याके बलपर उसे दूर किया और सत्यवतीके शरीरको मछलियाँ पकडनेके कारण जो दुर्गंधि आया करती थी उसे हटाकर उसके शरीरकी सुगंधि एक योजनतक पहुंचेगी ऐसी व्यवस्था की। इन दोनोंके समागमसे वेद व्यासजी जन्म पा चुके। वे द्वीपमें पैदा हो गये थे, इसलिये उन्हे द्वैपायन कहने लगे।

भीष्मस्तु··· सत्यवतीमानयामास मातरं ।
यामाहुः कालीति । तस्यां पूर्वं पराशरात्कन्यागर्भो द्वैपायनः॥ (म. आ. ६३।५१,५२)
सत्यवतीकाही दूसरा नाम काली है।

महाभारतमें पराशरजीके धर्मविषयक मतोंका उल्लेख बडे गौरवके साथ किया हुवा है।

वृद्धः पराशरः प्राह धर्मं शुभ्रमनामयम् ॥
(म. अ. १४६.४)

इन्होंने युधिष्ठिरको ब्रह्माद्वैत्य कथन किया है। परीक्षितके प्रायोपवेशनके समयपर ये गंगातटपर उपस्थित हुवे थे। ऐसा भी उल्लेख पाया जाता है कि आप इन्द्रसभामें उपस्थित थे।

पराशरः पर्वतश्च। (म. भा. शां.)

इनके वंशमें वसिष्ठ, मित्रायवरुण तथा कुण्डिन इन तीन प्रवरोंके **गौरपराशर, नीलपराशर, कृष्णपराशर, श्वेतपराशर, श्यामपराशर** और **धूम्रपराशर** ये छः भेद हो गये। इन छः में फिर पांच उपभेद हुये। जिनके नाम—

गौरपराशर— कोडशय (काण्डशय), गोमालि, मेधार (समय), भीमतापन (समतापन), बादनय (बाडवीज).

नीलपराशर— केतुजातय, सातेय, प्रमोदय नवायन, हर्यधि.

कृष्णपराशर— कपिमुख (कपिलास्य), कार्केयस्य (कार्कीय) कार्ष्णायन जपातप (ऋषातपायन), पुष्कर.

श्वेतपराशर— इषीकहस्त, उपग, बालेय, आग्निष्टायन, स्थायष्ट।

श्यामपराशर— क्रोधनायन, क्षौमि, बादरि, वाटिका, स्तंब

पराशरजीने जनकको किये हुये तत्त्वज्ञानके उपदेशका अनुवादही **भीष्मजीने युधिष्ठिरसे** महाभारतके शान्ति पर्वमें २९६ वे अध्यायसे लेकर ३०४ वे अध्यायतक कहा है, जिसका कि नाम **पराशर गीता है। सारस्वतने पराशर-जीको** और उन्होंने **मैत्रेयको** विष्णुपुराण कहा। भागवतमें कहा है कि सांख्यायन ऋषीने **पराशर** और **बृहस्पति** इन्हें भागवत पुराण कथन किया। आगे चलकर **पराशर-जीने मैत्रेयको** भागवत कथन किया।

पराशरजीके नामपर और भी कुछ ग्रन्थ हैं।

(१) बृहत्पाराशर होराशास्त्र। (१२००० श्लोकोंका ज्योति-षविषयक ग्रन्थ)

(२) लघु पाराशरी।

(३) बृहत्पाराशरीय धर्मसंहिता। (३३०० श्लोक)

(४) पाराशर धर्मसंहिता। (स्मृति)

(५) पाराशरोदितं वास्तुशास्त्रम्। (जिसका कि उल्लेख विश्व-कर्माने किया है।)

(६) पाराशर संहिता। (वैद्यकशास्त्र)

(७) पराशरोपपुराण (माधवाचार्यद्वारा इसके कुछ उद्ध-रण किये गये हैं।)

(८) पराशरीयं नीतिशास्त्रम्। (जिसका उल्लेख मेधातिथि, तथा चण्डेश्वरने किया है।)

(९) पराशरोदितं कृषिशास्त्रम्।

पराशरजीने अपने **पराशरीय-स्मृतिमें** वर्णाश्रमधर्मका वर्णन किया है। इस परसे यह अनुमान किया जाता है कि वर्णाश्रमधर्मोंका वर्णन करनेवाले ऋषियोंमें **पराशरजी** अपना नीचेही क्रममें जन्म ले चुके थे।

पराशरजी स्मृतिकार हैं। इनकी स्मृति याज्ञवल्क्यजीसे भी प्राचीन है। धर्मशास्त्रके अनेक लेखकोंने **पराशर** को मानकर उसके वचन उद्धृत किये हैं। गरुडपुराणमें इसका सारांश दिया हुआ है। कौटिल्यने राजधर्म वर्णन करते समय इसका उल्लेख किया है। इस स्मृतिमें १२ अध्याय तथा ५९२ श्लोक हैं। उनमें आचार और व्यवहार का विचार किया है। इस स्मृतिमें क्षत्रियोंके कर्तव्योंका अधिक विवेचन किया है। यह स्मृति कलियुगके लिये कृत, त्रेता, द्वापार और कलि इन युगोंमें **गौतम, शंख-लिखित** और **पराशर** ये क्रमसे करेंगे, ऐसा भी एक विधान इसमें है।

कलौ पाराशरः स्मृतः।

पराशरजीने पुत्रोंके औरस, क्षेत्रज, दत्तक तथा ऐसे चार भेद किये हैं। सती होनेके सम्बन्धमें भी विचार प्रकट किये हैं। इनकी स्मृतिमें मनु आदि कारोंका उल्लेख है। **मनुके** उल्लेखमें इन्होंने उन्हें धर्म ज्ञाता बताया है। इन्होंने वेद, वेदांग, धर्मशास्त्र स्मृति, इनका भी विचार किया है। अपने स्मृतिके अध्यायमें इन्होंने कुछ ऋग्वेदके तथा शुक्ल यजुर्वेदके मन्त्र किये हैं। मिताक्षरा, अपरार्क, स्मृतिचन्द्रिका, हेमादि ग्रन्थकारोंने इनकी स्मृतिके उल्लेख किये हुये हैं। विश्वरूप कई वार इनकी स्मृतिका उल्लेख किया है, इससे होता है कि, नौवे शतकके पूर्वार्धमें इस स्मृतिके वचन भूत माने जाते थे। जीवानन्द संग्रहमें बृहत्पाराशर पायी जाती है। उसमें १२ अध्याय तथा ३३०० श्लोक यह संहिता **पराशरजीने** सुव्रतसे कही है। आज जो स्मृति उपलब्ध है, वह **सुव्रतने** की हुई संक्षिप्त आवृत्ति है। बृहत्पाराशर यह ग्रन्थ इस स्मृतिके पश्चात्का हो सकता है। **अपरार्क** और **माधवने** वृद्ध पाराशरका उल्लेख किया

और हेमाद्रि तथा भट्टोजी दीक्षित ने भी
शरका उल्लेख किया है।

राशर- सत्यायन, तन्ति (जर्ति), तैलेय, यूथप,

के प्रवर **पराशर**, वसिष्ठ और शक्ति ये तीन

ायो वाहनपो जैह्मपो भौमतापनः ।
लेरेषां पञ्चम एते गौराः पराशराः ॥३३॥
या वाह्यमयाः ख्यातेयाः कौतुजातयः ।
यः पञ्चमो येषां नीला ज्ञेयाः पराशराः॥३४॥
यनाः कपिमुखाः काकेयस्था जपातयः ।
: पञ्चमश्चैषां कृष्णा ज्ञेयाः पराशराः ॥३५॥
ायनवालेयाः स्वायष्टाश्चोपयाश्च ये ।
हस्तश्चैषे वै पञ्च श्वेताः पराशराः ॥३६॥
को बादरिश्चैव स्तम्बा वै क्रोधनायनाः ।
षां पञ्चमस्तु एते श्यामाः पराशराः ॥३७॥
यना वार्ष्णायनास्तैलेयाः खलु यूथपाः ।
रेषां पञ्चमस्तु एते धूम्राः पराशराः ॥३८॥
राणां सर्वेषां त्र्यार्षेयः प्रवरो मतः ।
रश्च शक्तिश्च वसिष्ठश्च महातपाः ॥३९॥

यह **पराशर** व्यासजीके ऋक्शिष्यपरम्पराके वाष्क-
शिष्य था। इसके नामको उद्देश करके इसकी शाखाको पाराशरी नाम मिला है। यह ऋग्वेदका श्रुतर्षि तथा ऋषिक ब्रह्मचारी है।

(२) वायु और ब्रह्माण्ड पुराणके मतानुसार एक **पराशर** व्यासजीके सामशिष्यपरम्पराके हिरण्यनाभका शिष्य है।

(३) व्यासजीके सामशिष्यपरम्पराके कुथुमीके एक शिष्यका नाम **पराशर** है।

(४) ब्रह्माण्ड पुराणके मतानुसार व्यासजीके यजुःशिष्य-परम्पराके याज्ञवल्क्यका एक वाजसनेय शिष्य भी **पराशर** नामका था।

(५) एक **पराशर** ऋषभ नामक शिवावतारका शिष्य है।

(६) **पराशर** यह नाम जनमेजयके सर्पसत्रमें मरे हुवे एक सर्पका भी पाया जाता है।

पराशरके विषयमें इस तरह महाभारतादिमें लिखा मिलता है। पराशर अनेक हुए हैं, उनमें सूक्त द्रष्टा पराशर वसिष्ठका पौत्र और शक्तिऋषिका पुत्र है, इसलिये उसको 'पराशरः शाक्त्यः' सूत्रकारने कहा है। अन्य पराशर उसके पश्चात्के हैं। तथापि इस बारेमें और अधिक खोज होनी चाहिये।

औंध जि. सातारा
१५ भाद्रपद संवत् २००१

लेखक
औं. दा. सातवळेकर
स्वाध्याय-मण्डल

ॐ

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

रा श र ऋ षि का द र्श न

[ऋग्वेदका बारहवाँ अनुवाक]

(१) अग्निः

(ऋ. १।६५) पराशरः शाक्त्यः । अग्निः । द्विपदा विराट् ।

न तायुं गुहा चतन्तं नमो युजानं नमो वहन्तम्	१	१
ा धीराः पदैरनु ग्मन्नुप त्वा सीदन् विश्वे यजत्राः	२	२
य देवा अनु व्रता गुर्भुवत् परिष्टिर्द्यौर्न भूम	३	३
ोनापः पन्वा सुशिश्विनृतस्य योना गर्भे सुजातम्	४	४
रण्वा क्षितिर्न पृथ्वी गिरिर्न भुज्म क्षोदो न शंभु	५	५
नाज्मन्त्सर्गप्रतक्तः सिन्धुर्न क्षोदः क ईं वराते	६	६

गुहा चतन्तं, नमः युजानं, नमः

जोषाः धीराः पदैः अनुग्मन्, विश्वे

॥

ता अनु गुः । परिष्टिः द्युवत्, भूम ।

स्य योना गर्भे सुजातं पन्वा सुशिप्रि

, क्षितिः न पृथ्वी, गिरिः न भुज्म,

न अज्मन् सर्गप्रतक्तः, सिन्धुः न

अर्थ- १-२ गुहामें रहनेवाले, नमको सिद्ध करनेवाले, अन्नको साथ रखनेवाले, पशुओं (चौपाये अर्थात् अन्नके आश्रय रहनेवाले) वीरको जैसे, निडर रहनेवाले और तेज तेज चलनेवाले, अन्नके पात्रोंके विरोधी (पतालजातिके) असुर आदि हैं, वैसे नमस्कार करनेवाले तेरे समीप चारों ओर बैठते हैं ॥

३-४ देवोंने जिसके अनुसार यज्ञ आदि कर्मोंका पालन किया) । वह द्यौ के समान ऊँचे हुई । मनुष्य देवोंके सम्बन्धी (सुख देनेवाली अन्न की वृद्धि) । जिसके लिये सम्पन्न अन्नवाले, सुन्दर मुखवाले दूध (देनेवाले) अन्न [illegible] रहे हैं ॥

५-६ हुई जैसा स्थिर ([illegible]), मनुष्य जैसा [illegible] (होता है), और जैसा पर्वत ([illegible]) [illegible] होता है, वैसा जैसा [illegible] हुआ [illegible] होता हुआ [illegible] ([illegible]) [illegible] होती हुई (अन्न [illegible]), जैसे [illegible] ॥

जामिः सिन्धूनां भ्रातेव स्वस्रामिभ्याय राजा वनान्यत्ति	७	७
यद् वातजूतो वना व्यस्थादग्निह दाति रोमा पृथिव्याः	८	८
क्रत्वा विशां चेतिष्ठो विशामुषर्भुत्	९	९
सोमो न वेधा ऋतप्रजातः पशुर्न शिश्वा विभुर्दूरेभाः	१०	१०

(२) [ऋ. ११६]

रयिर्न चित्रा सूरो न संदृगायुर्न प्राणो नित्यो न सूनुः	१	११
तक्वा न भूर्णिर्वना सिषक्ति पयो न धेनुः शुचिर्विभावा	२	१२
दाधार क्षेममोको न रण्वो यवो न पक्वो जेता जनानाम्	३	१३
ऋषिर्न स्तुभ्वा विक्षु प्रशस्तो वाजी न प्रीतो वयो दधाति	४	१४
दुरोकशोचिः क्रतुर्न नित्यो जायेव योनावरं विश्वस्मै	५	१५
चित्रो यदभ्राट् श्वेतो न विक्षु रथो न रुक्मी त्वेषः समत्सु	६	१६

७-८ सिन्धूनां जामिः, स्वस्रां भ्राता इव, इभ्यान् न राजा, वनानि अत्ति। यत् वातजूतः वना वि अस्थात्, अग्निः ह पृथिव्याः रोम दाति ॥

९-१० क्रत्वा विशां चेतिष्ठः, उषर्भुत्, सोमः न वेधाः, ऋतप्रजातः, पशुः न शिश्वा, विभुः, दूरेभाः हंसः सीदन् न अप्सु क्षेति ॥

११-१२ रयिः न चित्रा, सूरः न संदृक्, आयुः न प्राणः, नित्यः न सूनुः, तक्वा न भूर्णिः, पयः न धेनुः, शुचिः विभावा वना सिषक्ति ॥

१३-१४ ओकः न रण्वः, पक्वः यवः न, क्षेमं दाधार। जनानां जेता, ऋषिः न स्तुभ्वा, विक्षु प्रशस्तः, प्रीतः वाजी न, वयः दधाति ॥

१५-१६ दुरोकशोचिः नित्यः क्रतुः न। योनौ जाया इव विश्वस्मै अरम्। चित्रः यत् अभ्राट् श्वेतः न, विक्षु रथः न रुक्मी, समत्सु त्वेषः ॥

७-८ यह नदियोंका मित्र, बहिनोंका भाई जैसा (शत्रुओंका जैसा राजा (नाश करता है, वैसा यह) जाता है। जब वायुसे प्रेरित होकर यह वनोंपर जाता है, (तब यह) अग्नि पृथ्वीके बालों (औषधियोंको)

९-१० कर्म करके सब प्रजाओंको जगानेवाला, समय-कालमें जागनेवाला, सोमके समान सबकी वृद्धि करनेवाला, लियेही जो प्रकट हुआ है, पशुके समान चपल, और दूरतक प्रकाश फैलानेवाला (यह अग्नि) हंसके जलोंमें-छिपा रहकर गति करता है ॥

११-१२ धनके समान वांछनीय, ज्ञानीके समान आयु देनेवाला जैसा प्राण है, निज पुत्रके समान हित (कारी), चपल घोडेके समान पोषणकारी अन्न लानेवाला, दूध गौ धारण करती है वैसा यह पवित्र और अग्नि वनोंमें रहता है ॥

१३-१४ घरके समान रमणीय (यह अग्नि) के समान कल्याण करता है। जनोंको विजय प्राप्त करा ऋषिके समान स्तुतिमें मग्न, प्रजाजनोंमें प्रशस्त, बलवान् (वीर) के समान (सबकी भलाईके लिये) अर्पण करता है ॥

१५-१६ जिसका तेज सहन करना अशक्य है (ऐसा अग्नि) नित्य शुभ कर्मके कर्ता (वीरके समान) कर्म है। घरमें स्त्रीके समान यह सबके लिये पर्याप्त (सुखदायी) है विलक्षण तेजस्वी होकर जब यह प्रकाशता है तब तेजस्वी के समान, प्रजाजनोंमें महारथी वीरकी तरह यह शोभता और समरोंमें तेजस्वी विजयी होता है ॥

जामिः सिन्धूनां भ्रातेव स्वस्रामिभ्यान्न राजा वनान्यत्ति	७	७
यद् वातजूतो वना व्यस्थादग्निह दाति रोमा पृथिव्याः	८	८
इयसित्यप्सु हंसो न सीदन् क्रत्वा चेतिष्ठो विशामुषर्भुत्	९	९
सोमो न वेधा ऋतप्रजातः पशुर्न शिश्वा विभुर्दूरेभाः	१०	१०

(१) [ऋ, १।६६]

रयिर्न चित्रा सूरो न संदृगायुर्न प्राणो नित्यो न सूनुः	१	११
तक्वा न भूर्णिर्वना सिषक्ति पयो न धेनुः शुचिर्विभावा	२	१२
दाधार क्षेममोको न रण्वो यवो न पक्वो जेता जनानाम्	३	१३
ऋषिर्न स्तुभ्वा विक्षु प्रशस्तो वाजी न प्रीतो वयो दधाति	४	१४
दुरोकशोचिः क्रतुर्न नित्यो जायेव योनावरं विश्वस्मै	५	१५
चित्रो यदभ्राट् छ्वेतो न विक्षु रथो न रुक्मी त्वेषः समत्सु	६	१६

७-८ सिन्धूनां जामिः, स्वस्रां भ्राता इव, इभ्यान् न राजा, वनानि अत्ति। यत् वातजूतः वना वि अस्थात्, अग्निः ह पृथिव्याः रोम दाति ॥

९-१० क्रत्वा विशां चेतिष्ठः, उषर्भुत्, सोमः न वेधाः, ऋतप्रजातः, पशुः न शिश्वा, विभुः, दूरेभाः हंसः सीदन् न अप्सु ऋसिति ॥

११-१२ रयिः न चित्रा, सूरः न संदृक्, आयुः न प्राणः, नित्यः न सूनुः, तक्वा न भूर्णिः, पयः न धेनुः, शुचिः विभावा वना सिषक्ति ॥

१३-१४ ओकः न रण्वः, पक्वः यवः न, क्षेमं दाधार। जनानां जेता, ऋषिः न स्तुभ्वा, विक्षु प्रशस्तः, प्रीतः वाजी न, वयः दधाति ॥

१५-१६ दुरोकशोचिः नित्यः क्रतुः न। योनौ जाया इव विश्वस्मै अरम्। चित्रः यत् अभ्राट् श्वेतः न, विक्षु रथः न रुक्मी, समत्सु त्वेषः ॥

७-८ यह नदियोंका मित्र, बहिनोंका भाई जैसा (शत्रुओंका जैसा राजा (नाश करता है, वैसा वह) जाता है। जब वायुसे प्रेरित होकर यह वनोंपर है, (तब यह) अग्नि पृथ्वीके बालों (औषधियोंको)

९-१० कर्म करके सब प्रजाओंको जगानेवाला, कालमें जागनेवाला, सोमके समान सबकी वृद्धि करनेवाला जो प्रकट हुआ है, पशुके समान चपल, और दूरतक प्रकाश फैलानेवाला (यह अग्नि) जलोंमें छिपा रहकर गति करता है ॥

११-१२ धनके समान वांछनीय, ज्ञानीके समान आयु देनेवाला जैसा प्राण है, निज पुत्रके समान सुखकारी), चपल घोडेके समान पोषणकारी अन्न देनेवाला, दूध गौ धारण करती है वैसा यह पवित्र और अग्नि वनोंमें रहता है ॥

१३-१४ घरके समान रमणीय (यह अग्नि) समान कल्याण करता है। जनोंको विजय प्राप्त ऋषिके समान स्तुतिमें मग्न, प्रजाजनोंमें प्रशस्त, बलवान् (वीर) के समान (सबकी भलाईके लिये) अर्पण करता है ॥

१५-१६ जिसका तेज सहन करना अशक्य है (ऐसा अग्नि) नित्य शुभ कर्मके कर्ता (वीरके समान) कर्म है। घरमें स्त्रीके समान यह सबके लिये पर्याप्त (सुखदायक) विलक्षण तेजस्वी होकर जब यह प्रकाशता है तब वीरके समान, प्रजाजनोंमें महारथी वीरकी तरह यह और समरोंमें तेजस्वी विजयी होता है ॥

जामिः सिन्धूनां भ्रातेव स्वस्रामिभ्यान् राजा वनान्यत्ति	७	७
यदू वातजूतो वना व्यस्थादग्निह दाति रोम पृथिव्याः	८	८
उपसित्वप्सु हंसो न सीदन् क्रत्वा चेतिष्ठो विशामुषर्भुत्	९	९
सोमो न वेधा ऋतप्रजातः पशुर्न शिश्वा विभुर्दूरेभाः	१०	१०

(२) [क. ११६]

रयिर्न चित्रा सूरो न संदृगायुर्न प्राणो नित्यो न सूनुः	१	११
तक्वा न भूर्णिर्वना सिषक्ति पयो न धेनुः शुचिर्विभावा	२	१२
दाधार क्षेममोको न रण्वो यवो न पक्वो जेता जनानाम्	३	१३
ऋषिर्न स्तुभ्वा विक्षु प्रशस्तो वाजी न प्रीतो वयो दधाति	४	१४
दुरोकशोचिः क्रतुर्न नित्यो जायेव योनावरं विश्वस्मै	५	१५
चित्रो यदभ्राट् श्वेतो न विक्षु रथो न रुक्मी त्वेषः समत्सु	६	१६

७-८ सिन्धूनां जामिः, स्वस्रां भ्राता इव, इभ्यान् न राजा, वनानि अत्ति । यत् वातजूतः वना हि अस्थात्, अग्निः ह पृथिव्याः रोम दाति ॥

९-१० क्रत्वा विशां चेतिष्ठः, उपभुत्, सोमः न वेधाः, ऋतप्रजातः, पशुः न शिश्वा, विभुः, दूरेभाः हंसः सीदन् न अप्सु श्वसिति ॥

११-१२ रयिः न चित्रा, सूरः न संदृक्, आयुः न प्राणः, नित्यः न सूनुः, तक्वा न भूर्णिः, पयः न धेनुः, शुचिः विभावा वना सिषक्ति ॥

१३-१४ ओकः न रण्वः, पक्वः यवः न, क्षेमं दाधार । जनानां जेता, ऋषिः न स्तुभ्वा, विक्षु प्रशस्तः, प्रीतः वाजी न, वयः दधाति ॥

१५-१६ दुरोकशोचिः नित्यः क्रतुः न । योनौ जाया इव विश्वस्मै अरम् । चित्रः यत् अभ्राट् श्वेतः न, विक्षु रथः न रुक्मी, समत्सु त्वेषः ॥

७-८ यह नदियोंका मित्र, बहिनोंका भाई जैसा (और) शत्रुओंका जैसा राजा (नाश करता है, वैसा यह) जाता है । जब वायुसे प्रेरित होकर यह वनोंपर है, (तब यह) अग्नि पृथ्वीके बालों (औषधियोंको)

९-१० कर्म करके सब प्रजाओंको जगानेवाला, कालमें जागनेवाला, सोमके समान सबकी वृद्धि के लियेही जो प्रकट हुआ है, पशुके समान चपल, और दूरतक प्रकाश फैलानेवाला (यह अग्नि) जलोंमें छिपा रहकर गति करता है ॥

११-१२ धनके समान वांछनीय, ज्ञानीके समान आयु देनेवाला जैसा प्राण है, निज पुत्रके समान हित कारी), चपल घोडेके समान पोषणकारी अन्न और दूध गौ धारण करती है वैसा यह पवित्र और अग्नि वनोंमें रहता है ॥

१३-१४ घरके समान रमणीय (यह अग्नि) समान कल्याण करता है । जनोंको विजय प्राप्त ऋषिके समान स्तुतिमें मग्न, प्रजाजनोंमें प्रशस्त, बलवान् (वीर) के समान (सबकी भलाईके लिये) अर्पण करता है ॥

१५-१६ जिसका तेज सहन करना अशक्य है (अग्नि) नित्य शुभ कर्मके कर्ता (वीरके समान) कर्म है । घरमें स्त्रीके समान यह सबके लिये पर्याप्त (सु- विलक्षण तेजस्वी होकर जब यह प्रकाशता है तब के समान, प्रजाजनोंमें महारथी वीरकी तरह यह और समरोंमें तेजस्वी विजयी होता है ॥

य ईं चिकेत गुहा भवन्तमा यः ससाद धारामृतस्य ७ २७
वि ये चृतन्त्यृता सपन्त आदिद्वसूनि प्र ववाचास्मै ८ २८
वि यो वीरुत्सु रोधन्महित्वोत प्रजा उत प्रसूष्वन्तः ९ २९
चित्तिरपां दमे विश्वायुः सद्मेव धीराः समाय चक्रुः १० ३०

(४) [ऋ. १।६८]

श्रीणन्नुप स्थादिवं भुरण्युः स्थातुश्चरथमक्तून् व्यूर्णोत् १ ३१
परि यदेषामेको विश्वेषां भुवद् देवो देवानां महित्वा २ ३२
आदित् ते विश्वे क्रतुं जुषन्त शुष्काद् यद् देव जीवो जनिष्ठाः ३ ३३
भजन्त विश्वे देवत्वं नाम ऋतं सपन्तो अमृतमेवैः ४ ३४
ऋतस्य प्रेषा ऋतस्य धीतिर्विश्वायुर्विश्वे अपांसि चक्रुः ५ ३५
यस्तुभ्यं दाशाद् यो वा ते शिक्षात्तस्मै चिकित्वान् रयिं दयस्व ६ ३६

२७-२८ यः ईं गुहा भवन्तं चिकेत, यः ऋतस्य धारां आ ससाद, ये ऋता सपन्तः वि चृतन्ति, आत् इत् अस्मै वसूनि प्र ववाच ॥

२९-३० यः वीरुत्सु महित्वा वि रोधत्, उत उत प्रजाः प्रसूषु अन्तः । चित्तिः अपां दमे विश्वायुः (तं) धीराः समाय, सद्म इव, चक्रुः ॥

३१-३२ भुरण्युः श्रीणन् दिवं उपस्थात्, स्थातुः चरथं अक्तून् वि ऊर्णोत् । एषां विश्वेषां देवानां एकः देवः महित्वा यत् परि भुवत् ॥

३३-३४ हे देव ! यत् जीवः शुष्कात् जनिष्ठाः, आत् इत् विश्वे ते क्रतुं जुषन्त ! अमृतं एवैः सपन्तः विश्वे नाम ऋतं देवत्वं भजन्त ॥

३५-३६ ऋतस्य प्रेषाः, ऋतस्य धीतिः (अग्निः) विश्वायुः विश्वे अपांसि चक्रुः । यः तुभ्यं दाशात्, यः वा ते शिक्षात्, चिकित्वान् रयिं दयस्व ॥

२७-२८ जो इस (अग्नि) को गुहामें रहनेके है, जो सत्यकी धाराको (प्राप्त करनेके लिये ही) है, जो सत्यसे (उसका) सन्मान करते हुए (गुणगान करते हैं, (वह) निःसन्देह उसके (प्राप्तिके मार्ग) कहता है ॥

२९-३० जो वृक्षोंमें अपनी महिमासे रहता है, सन्तान (जैसा होता हुआ भी अपनी) माताओं (रहता है । जो ज्ञानरूप जलोंके रूपमें विश्वका होकर रहता है, उसको) बुद्धिमानोंने सम्मानपूर्वक (अपना निवास-स्थान) बनाया है ॥

३१-३२ भरणपोषण कर्ता शोभाको बढाता हुआ समीप गया है । (उसने) स्थावर जंगमोंको और भी प्रकाशित किया है । इन सब देवोंमें यही एक महिमासे सर्वोपरि (मुख्य) हुआ है ॥

३३-३४ हे देव ! जब जीव (बनकर) दुष्ट जन्म लिया, तब सबोंने तेरी कर्तृत्वकी प्रशंसा की । (अमर (देवकी) सब प्रगति करनेवालोंने जब प्राप्ति की, हीको यश, सत्य और देवत्व प्राप्त हुआ ॥

३५-३६ सत्यका प्रेरक, सत्यका रक्षक, सब विश्व (यह अग्नि है, इसकी प्रेरणासे) सब अपने अपने रहते हैं । (हे अग्ने !) जो तुझे अर्पण करता है तुझसे ज्ञान प्राप्त करता है, उसको (योग्यता) तू) धन दे ॥

य ईं चिकेत गुहा भवन्तमा यः ससाद धारामृतस्य ७ २७
वि ये चृतन्त्यृता सपन्त आदिद्वसूनि प्र ववाचास्मै ८ २८
वि यो वीरुत्सु रोधन्महित्वोत प्रजा उत प्रसूष्वन्तः ९ २९
चित्तिरपां दमे विश्वायुः सद्मेव धीराः समाय चक्रुः १० ३०

(४) [ऋ. १।६८]

श्रीणन्नुप स्थादिवं भुरण्युः स्थातुश्चरथमक्तून् व्यूर्णोत् १ ३१
परि यदेषामेको विश्वेषां भुवद् देवो देवानां महित्वा २ ३२
आदित् ते विश्वे क्रतुं जुषन्त शुष्काद् यद् देव जीवो जनिष्ठाः ३ ३३
भजन्त विश्वे देवत्वं नाम ऋतं सपन्तो अमृतमेवैः ४ ३४
ऋतस्य प्रेषा ऋतस्य धीतिर्विश्वायुर्विश्वे अपांसि चक्रुः ५ ३५
यस्तुभ्यं दाशाद् यो वा ते शिक्षात्तस्मै चिकित्वान् रयिं दयस्व ६ ३६

२७-२८ यः ईं गुहा भवन्तं चिकेत, यः ऋतस्य धारां आ ससाद, ये ऋता सपन्तः वि चृतन्ति, आत् इत् अस्मै वसूनि प्र ववाच ॥

२९-३० यः वीरुत्सु महित्वा वि रोधत्, उत उत प्रजाः प्रसूषु अन्तः । चित्तिः अपां दमे विश्वायुः (तं) धीराः संमाय, सद्म इव, चक्रुः ॥

३१-३२ भुरण्युः श्रीणन् दिवं उपस्थात्, स्थातुः चरथं अक्तून् वि ऊर्णोत् । एषां विश्वेषां देवानां एकः देवः महित्वा यत् परि भुवत् ॥

३३-३४ हे देव ! यत् जीवः शुष्कात् जनिष्ठाः, आत् इत् विश्वे ते क्रतुं जुषन्त ! अमृतं एवैः सपन्तः विश्वे नाम ऋतं देवत्वं भजन्त ॥

३५-३६ ऋतस्य प्रेषाः, ऋतस्य धीतिः (अग्निः) विश्वायुः विश्वे अपांसि चक्रुः । यः तुभ्यं दाशात्, यः वा ते शिक्षात्, चिकित्वान् रयिं दयस्व ॥

२७-२८ जो इस (अग्नि) को गुहामें रहनेके समय है, जो सत्यकी धाराको (प्राप्त करनेके लियेही) है, जो सत्यसे (उसका) सन्मान करते हुए (उसीका) गुणगान करते हैं, (वह) निःसन्देह उसके (प्राप्तिके मार्ग) कहता है ॥

२९-३० जो वृक्षोंमें अपनी महिमासे रहता है, सन्तान (जैसा होता हुआ भी अपनी) माताओं (रहता है । जो ज्ञानरूप जलोंके रूपमें विश्वका जीवन होकर रहता है, उसको) बुद्धिमानोंने सम्मानपूर्वक (अपना निवास-स्थान) बनाया है ॥

३१-३२ भरणपोषण कर्ता शोभाको बढ़ाता हुआ समीप गया है । (उसने) स्थावर जंगमोंको और भी प्रकाशित किया है । इन सब देवोंमें यही एक देव महिमासे सर्वोपरि (मुख्य) हुआ है ॥

३३-३४ हे देव ! जब जीव (बनकर) शुष्क जन्म लिया, तब सबोंने तेरी कर्तृत्वकी प्रशंसा की । (अमर (देवकी) सब प्रगति करनेवालोंने जब प्राप्ति की, हीको यश, सत्य और देवत्व प्राप्त हुआ ॥

३५-३६ सत्यका प्रेरक, सत्यका रक्षक, सब विश्व (यह अग्नि है, इसकी प्रेरणासे) सब अपने अपने रहते हैं । (हे अग्ने !) जो तुझे अर्पण करता है तुझसे ज्ञान प्राप्त करता है, उसको (योग्यता) तू) धन दे ॥

नकिष्ट एता व्रता मिनन्ति नृभ्यो यदेभ्यः श्रुष्टिं चकर्थ ७ ४७
तत् तु ते दंसो यदहन्त्समानैर्नृभिर्यद् युक्तो विवे रपांसि ८ ४८
उषो न जारो विभावोस्रः संज्ञातरूपश्चिकेतदस्मै ९ ४९
त्मना वहन्तो दुरो व्यृण्वन् नवन्त विश्वे स्व१र्दृशीके १० ५०

(६) [ऋ. १।७०]

वनेम पूर्वीरर्यो मनीषा अग्निः सुशोको विश्वान्यश्याः १ ५१
आ दैव्यानि व्रता चिकित्वाना मानुषस्य जनस्य जन्म २ ५२
गर्भो यो अपां गर्भो वनानां गर्भश्च स्थातां गर्भश्चरथाम् ३ ५३
अद्रौ चिदस्मा अन्तर्दुरोणे विशां न विश्वो अमृतः स्वाधीः ४ ५४
स हि क्षपावाँ अग्नी रयीणां दाशद् यो अस्मा अरं सूक्तैः ५ ५५
एता चिकित्वो भूमा नि पाहि देवानां जन्म मर्ताँश्च विद्वान् ६ ५६

४७-४८ ते एता व्रता नकिः मिनन्ति, यत् एभ्यः नृभ्यः श्रुष्टिं चकर्थ । ते तत् तु दंसः, यत् अहन्, समानैः नृभिः युक्तः रपांसि, यत् विवेः ॥

४९-५० उषः न जारः विभावा उस्रः संज्ञातरूपः अस्मै चिकेतत् । त्मना वहन्तः, दुरः वि ऋण्वन्, दृशीके स्वः विश्वे नवन्त ॥

५१-५२ पूर्वीः मनीषा वनेम । सुशोकः अर्यः अग्निः विश्वानि अश्याः । दैव्यानि व्रता चिकित्वान् मानुषस्य जनस्य जन्म आ (जानन्) ॥

५३-५४ यः अपां गर्भः, वनानां गर्भः, स्थातां चरथां च गर्भः, अस्मै दुरोणे अद्रौ चित् अन्तः । अमृतः स्वाधीः । विश्वः विशां न ॥

५५-५६ सः हि अग्निः क्षपावान्, रयीणां दाशत्, यः अस्मै सूक्तैः अरं (करोति) । हे चिकित्वः ! (त्वं) देवानां मर्तान् च विद्वान्, एता भूम नि पाहि ॥

४७-४८ तेरे इन नियमोंको कोई नहीं तोड़ सकता, तू इन मानवोंके लिये सहायता करता है। वह [illegible] कमही है कि जो (शत्रुका) वध तुमने किया और मानवोंसे युक्त होकर दुर्गोंको भी भगा दिया ॥

४९-५० उषाके प्रियकरके समान तेजस्वी सबको वाला (अग्नि) इस (कर्मकर्ता) को जाने। स्वयं (फैलानेवाले (किरणोंने) सब द्वार खोल दिये और दर्शनके समय सभी आनन्दसे स्तुति करने लगे ॥

५१-५२ हम पूर्व (अर्थात् अपूर्व उत्तम) स्थान वृद्धिसे प्राप्त करेंगे। यह तेजस्वी स्वामी अग्नि सबको कर लेता है। दिव्य व्रतोंको यह जानता है, और मनुष्य जन्मका (भी ज्ञान इसको है) ॥

५३-५४ यह (अग्नि) जलोंके मध्यमें, वनोंके मध्यमें, और जंगलोंके मध्यमें है, इसके लिये घरमें अथवा पर्वतके (हवि अर्पण करते हैं), यह अमर देव (सबके लिये) ध्यान करनेयोग्य है। जैसा सब (प्रजाको बसानेवाला राजा प्रजाजनोंका आधार देता है ॥

५५-५६ यह अग्नि रात्रीमें (प्रज्वलित होकर) (उसको) दान करता है कि, जो इसको सूक्तोंसे अलंकृत है। हे ज्ञानी (अग्नि देव) ! तू देवोंके जन्मों और (के जीवनों) को जानता है, इन भूप्रदेशोंकी सुरक्षा कर

दधन्नृतं धनयन्नस्य धीतिमादिदर्यो दिधिष्वो३ विभृत्राः । ३ ६४
अतृप्यन्तीरपसो यन्त्यच्छा देवाञ्जन्म प्रयसा वर्धयन्तीः
मथीद् यदीं विभृतो मातरिश्वा गृहेगृहे श्येतो जेन्यो भूत् । ४ ६५
आदीं राज्ञे न सहीयसे सचा सन्ना दूत्यं१ भृगवाणो विवाय
महे यत् पित्र ईं रसं दिवे करव त्सरत् पृशन्यश्चिकित्वान् । ५ ६६
सृजदस्ता धृषता दिद्युमस्मै स्वायां देवो दुहितरि त्विषिं धात्
स्व आ यस्तुभ्यं दम आ विभाति नमो वा दाशादुशतो अनु द्यून् ६ ६७
वर्धो अग्ने वयो अस्य द्विबर्हा यासद् राया सरथं यं जुनासि
अग्निं विश्वा अभि पृक्षः सचन्ते समुद्रं न स्रवतः सप्त यह्वीः ।
न जामिभिर्वि चिकिते वयो नो विदा देवेषु प्रमतिं चिकित्वान् ७ ६८

६४ ऋतं दधन्, अस्य धीतिं धनयन् आत् इत् अर्यः दिधिष्वः विभृत्राः अतृप्यन्तीः अपसः प्रयसा देवान् जन्म वर्धयन्तीः अच्छ यन्ति ॥

६५ मातरिश्वा ईं यत् मथीत्, विभृतः, श्येतः गृहे गृहे जेन्यः भूत् । सचा सन् सहीयसे राज्ञे न आत् ईं भृगवाणः तूत्यं आ विवाय ।

६६ महे पित्रे दिवे ईं रसं यत् कः पृशन्यः चिकित्वान् अव त्सरत् । अस्ता धृषता अस्मै दिद्युं सृजत् । देवः स्वायां दुहितरि त्विषिं धात् ॥

६७ तुभ्यं स्वे दमे यः आ विभाति, अनु द्यून् उशतः नमः वा दाशात् । हे अग्ने ! अस्य द्विबर्हाः वयः वर्धो, सरथं यं जुनासि राया यासत् ॥

पृक्षः अग्निं अभि सचन्ते, स्रवतः सप्त यह्वीः
जामिभिः नः वयः न वि चिकिते, देवेषु प्रमतिं
विदाः ॥

६४ सत्यका धारण करनेवालोंने इसकी धारण धारण किया । पश्चात् स्वामिनीरूप धारण करनेवाली, करनेवाली, तृष्णारहित कर्मशील अन्नदानसे देवोंको (लेनेवाले मानवोंको) बढानेवाली (प्रजायें इस जमा होती हैं ॥

६५ वायुने जब इस (अग्नि) को मथकर प्रकट यह श्वेत प्रकाश (प्रकट करता हुआ) घर घरमें है । साथ रहकर बलिष्ठ राजाके लिये (सहायक हो प्रकट होनेके पश्चात् भृगु ऋषिपर प्रेम करनेवाले (इ उसकी सहायतार्थ) दूतकर्म किया ॥

६६ महान् पितृभूत द्युलोकको (अर्पण करनेके लि किये) इस (सोम) रसको कौन हमला करनेवाला इस अग्निके प्रभावको) जानता हुआ नीचे गिरा अस्त्र फेंकनेवाले वीरने इस (शत्रु) पर तेजस्वी अस्त्र (फेंका, तब इस (सूर्य देव) ने अपनीही पुत्री (उषा) रख दिया ॥

६७ तुम्हारे लिये अपने स्थानमें जो प्रकाशता है प्रतिदिन (तुम्हारा हित) चाहनेवाले (अग्निके लिये) देता है, हे अग्ने ! दोनों स्थानोंमें वृद्धिगत होता हुआ भक्तकी आयु बढा । जिसके रथमें सहायतार्थ तू रहता उसको धन देता है ॥

६८ सब अन्न अग्निकेही पास आते हैं, जैसी सात नदियां समुद्रको जा मिलती हैं । भाइयोंको भी आयुका पता नहीं है, (पर तू) देवोंके मनमें जो है भी अच्छी तरह जानता है ॥

तिस्रो यदग्ने शरदस्त्वामिच्छुचिं घृतेन शुचयः सपर्यान्।
नामानि चिद् दधिरे यज्ञियान्यसूदयन्त तन्वः सुजाताः ३ ७४
आ रोदसी बृहती वेविदानाः प्र रुद्रिया जभ्रिरे यज्ञियासः।
विदन्मर्तो नेमधिता चिकित्वानग्निं पदे परमे तस्थिवांसम् ४ ७५
संजानाना उप सीदन्नभिज्ञु पत्नीवन्तो नमस्यं नमस्यन्।
रिरिक्वांसस्तन्वः कृण्वत स्वाः सखा सख्युर्निमिषि रक्षमाणाः ५ ७६
त्रिः सप्त यद् गुह्यानि त्वे इत् पदाविदन्निहिता यज्ञियासः।
तेभी रक्षन्ते अमृतं सजोषाः पशूंश्च स्थातृञ्चरथं च पाहि ६ ७७
विद्वाँ अग्ने वयुनानि क्षितीनां व्यानुषक्छुरुधो जीवसे धाः।
अन्तर्विद्वाँ अध्वनो देवयानानतन्द्रो दूतो अभवो हविर्वाट् ७ ७८
स्वाध्यो दिव आ सप्त यह्वी रायो दुरो व्यृतज्ञा अजानन्।
विदद्गव्यं सरमा दृळ्हमूर्वं येना नु कं मानुषी भोजते विट् ८ ७९

७४ हे अग्ने ! शुचयः शुचिं त्वां इत् तिस्रः शरदः घृतेन यत् सपर्यान्। सुजाताः तन्वः सूदयन्तः यज्ञियानि नामानि चित् दधिरे ॥

७५ बृहतीः रोदसी आ वेविदानाः, यज्ञियासः रुद्रिया प्र जभ्रिरे। नेमधिता मर्तः परमे पदे तस्थिवांसं अग्निं चिकित्वान् विदत् ॥

७६ संजानानाः उप सीदन्, पत्नीवन्तः नमस्यं अभिज्ञु नमस्यन्। सख्युः निमिषि रक्षमाणाः सखा स्वाः तन्वः रिरिक्वांसः कृण्वत ॥

७७ त्रिः सप्त गुह्यानि यत् पदा त्वे इत् निहिताः, यज्ञियासः अविदन्। तेभिः अमृतं रक्षन्ते। सजोषाः पशून् च स्थातृन् चरथं च पाहि ॥

७८ हे अग्ने ! वयुनानि विद्वान् क्षितीनां जीवसे शुरुधः आनुषक् वि धाः। हविर्वाट् अध्वनः देवयानान् अन्तर्विद्वान् अतन्द्रः दूतः अभवः ॥

७९ स्वाध्यः सप्त यह्वीः दिवः आ (प्रवदन्ति)। ऋतज्ञाः रायः दुरः वि अजानन्। गव्यं दृळ्हं ऊर्वं सरमा विदत्। येन नु मानुषी विट् कं भोजते ॥

७४ हे अग्ने ! पवित्र होकर (याजकोंने) तुम्हारी तीन वर्षतक जब घृतसे पूजा की। तब उनके (याजकों)के (स्थूल-सूक्ष्म-कारण) शरीर पवित्र उनको पवित्र नाम (यश) भी प्राप्त हुए ॥

७५ बड़े द्युलोक और भूलोकके अन्दर सोये उन याजकोंको रुद्रके (अग्निके सामर्थ्यका) ज्ञान रहनेवाला मानव परम पदमें ठहरनेवाले प्राप्त करनेमें (समर्थ हुआ) ॥

७६ (वे) जानकर तेरे समीप गये, पत्नियोंके नीय (अग्नि) को घुटने टेक कर नमन करते रहे। निद्रा लगते ही जैसा दूसरा मित्र रक्षा करता है सुरक्षित हुए ये (याजक) मित्र अपने शरीरोंको (पवित्र करने लगे ॥

७७ जो तीन गुणा सात (अर्थात् इक्कीस) गुप्त रखे हैं, उनको यज्ञ करनेवालोंने जान लिया। उनकी सुरक्षा वे करते हैं। सबपर प्रीति करनेवाला तू हमारे और स्थावर जंगम सबका रक्षण कर ॥

७८ हे अग्ने ! (सब मनुष्योंके) विचार और कर तुम मानवोंके दीर्घजीवनके लिये क्षुधाके कष्ट दूर देनेमें सतत यत्नवान् होते हो। तुम अब पहुंचाते हो, मार्गोंको जानते हो अतः तुम (उनका) निरलस दूत हो

७९ शुभकर्म (जहां होते हैं) ऐसी सात नदियाँ बह रही हैं। सत्य जाननेवालोंने संपत्तिके द्वार (खोल जान ली है। गौओंको रसनेका सुदृढ कोला सरमाने प्राप्त किये मानवी प्रजा सुखसे भोजन करती है ॥

तं त्वा नरो दम आ नित्यमिद्धमग्ने सचन्त क्षितिषु ध्रुवासु ।
अधि द्युम्नं नि दधुर्भूर्यस्मिन् भवा विश्वायुर्धरुणो रयीणाम् ४ ८५
वि पृक्षो अग्ने मघवानो अश्युर्वि सूरयो ददतो विश्वमायुः ।
सनेम वाजं समिथेष्वर्यो भागं देवेषु श्रवसे दधानाः ५ ८६
ऋतस्य हि धेनवो वावशानाः स्मदूधीः पीपयन्त द्युमक्ताः ।
परावतः सुमतिं भिक्षमाणा वि सिन्धवः समया सस्रुरद्रिम् ६ ८७
त्वे अग्ने सुमतिं भिक्षमाणा दिवि श्रवो दधिरे यविष्ठ्यासः ।
नक्ता च चक्रुरुषसा विरूपे कृष्णं च वर्णमरुणं च सं धुः । ७ ८८
यान् राये मर्तान्त्सुषूदो अग्ने ते स्याम मघवानो वयं च ।
छायेव विश्वं भुवनं सिसक्ष्यापप्रिवान् रोदसी अन्तरिक्षम् ८ ८९
अर्वद्भिरग्ने अर्वतो नृभिर्नॄन् वीरैर्वीरान् वनुयामा त्वोताः ।
ईशानासः पितृवित्तस्य रायो वि सूरयः शतहिमा नो अश्युः ९ ९०

८५ हे अग्ने ! तं त्वा नरः ध्रुवासु क्षितिषु दमे नित्यं इद्धं आ सचन्त । अस्मिन् भूरि द्युम्नं अधि नि दधुः । विश्वायुः रयीणां धरुणः भव ॥

८६ हे अग्ने ! मघवानः पृक्षः वि अश्युः । सूरयः ददतः विश्वं आयुः वि (अश्युः) । समिथेषु अर्यः वाजं सनेम । देवेषु श्रवसे भागं दधानाः ॥

८७ वावशानाः स्मदूधीः द्युमक्ताः ऋतस्य हि धेनवः पीपयन्त । सिन्धवः सुमतिं भिक्षमाणाः अद्रिं समया परावतः वि सस्रुः ॥

८८ हे अग्ने ! सुमतिं भिक्षमाणाः यविष्ठ्यासः दिवि त्वे श्रवः दधिरे । विरूपे उषसा नक्ता च चक्रुः । कृष्णं च वर्णं अरुणं च सं धुः ॥

८९ हे अग्ने ! यान् मर्तान् राये सुषूदः ते वयं च मघवानः स्याम । रोदसी अन्तरिक्षं (च) आपप्रिवान्, विश्वं भुवनं छाया इव, सिसक्षि ॥

९० हे अग्ने ! त्वोताः अर्वद्भिः अर्वतः, नृभिः नॄन्, वीरैः वीरान् वनुयाम । पितृवित्तस्य रायः ईशानासः सूरयः नः शतहिमाः वि अश्युः ॥

८५ हे अग्ने ! तव तुभ्य (अग्नि) को स्तोता घरमें नित्य प्रदीप्त करके (तेरी) सेवा करते हैं। इस में बहुतही तेजस्वी धन अर्पण किया है। (तू) है, उनके वैभवोंका आश्रयदाता हो ॥

८६ हे अग्ने ! धनवान् (जो यज्ञ करनेवाले पर्याप्त) अन्न मिले । ज्ञानी दाताओंके पूर्ण आयु जानेवाले (हम सब वीर) बल प्राप्त करें । देवोंके (अर्पण करनेके लिये) हम धारण करें ॥

८७ (सेवा करनेकी) इच्छा करनेवाली, दुग्धाश्ववाली, तेजस्वी (देव) की सेवा करनेवाली, रखी गौवें (नवधो) दूध पिलाती हैं। (तेरी) स्तुति करनेवाली नदियाँ पर्वतके साथ साथ बड़ी दूरसे

८८ हे अग्ने ! (तेरी) कृपाकी इच्छा करनेवाले (विभूतियों) ने द्युलोकमें तेरे कारणही विभिन्न रूपवाली उषा और रात्रि निर्माण की। काला रंग (उनमें) धारण किया ॥

८९ हे अग्ने ! जिन मानवोंको वैभवके लिये (तू) दिया, वे हम सब धनवान् बन जावें । द्युलोक और (वे दो और) अन्तरिक्षको तूने (प्रकाशसे) सब भुवनोंको, छायाके समान, साथ देते हो ।

९० हे अग्ने ! तेरे द्वारा सुरक्षित (दूर हम) (शत्रुके) घोड़ोंको, अपने घोड़ोंसे (शत्रुके) वीरोंको, अपने वीरोंसे (शत्रुके) वीरोंको परास्त करेंगे। पितृ धनके होकर हमारे विद्वान् (वीर) सौ वर्ष (सौ वर्ष आयु)

तं त्वा नरो दम आ नित्यमिद्धमग्ने सचन्त क्षितिषु ध्रुवासु ।
अधि द्युम्नं नि दधुर्भूर्यस्मिन् भवा विश्वायुर्धरुणो रयीणाम् ४ ८५
वि पृक्षो अग्ने मघवानो अश्युर्वि सूरयो ददतो विश्वमायुः ।
सनेम वाजं समिथेष्वर्यो भागं देवेषु श्रवसे दधानाः ५ ८६
ऋतस्य हि धेनवो वावशानाः स्मदूधीः पीपयन्त द्युभक्ताः ।
परावतः सुमतिं भिक्षमाणा वि सिन्धवः समया सस्रुरद्रिम् ६ ८७
त्वे अग्ने सुमतिं भिक्षमाणा दिवि श्रवो दधिरे यज्ञियासः ।
नक्ता च चक्रुरुषसा विरूपे कृष्णं च वर्णमरुणं च सं धुः । ७ ८८
यान् राये मर्तान्त्सुषूदो अग्ने ते स्याम मघवानो वयं च ।
छायेव विश्वं भुवनं सिसक्ष्यापप्रिवान् रोदसी अन्तरिक्षम् ८ ८९
अर्वद्भिरग्ने अर्वतो नृभिर्नॄन् वीरैर्वीरान् वनुयामा त्वोताः ।
ईशानासः पितृवित्तस्य रायो वि सूरयः शतहिमा नो अश्युः ९ ९०

८५ हे अग्ने ! तं त्वा नरः ध्रुवासु क्षितिषु दमे नित्यं इद्धं आ सचन्त । अस्मिन् भूरि द्युम्नं अधि नि दधुः । विश्वायुः रयीणां धरुणः भव ॥

८६ हे अग्ने ! मघवानः पृक्षः वि अश्युः । सूरयः ददतः विश्वं आयुः वि (अश्युः) । समिथेषु अर्यः वाजं सनेम । देवेषु श्रवसे भागं दधानाः ॥

८७ वावशानाः स्मदूधीः द्युभक्ताः ऋतस्य हि धेनवः पीपयन्त । सिन्धवः सुमतिं भिक्षमाणाः अद्रिं समया परावतः वि सस्रुः ॥

८८ हे अग्ने ! सुमतिं भिक्षमाणाः यज्ञियासः दिवि त्वे श्रवः दधिरे । विरूपे उषसा नक्ता च चक्रुः । कृष्णं च वर्णं अरुणं च सं धुः ॥

८९ हे अग्ने ! यान् मर्तान् राये सुषूदः ते वयं च मघवानः स्याम । रोदसी अन्तरिक्षं (च) आपप्रिवान्, विश्वं भुवनं छाया इव, सिसक्षि ॥

९० हे अग्ने ! त्वोताः अर्वद्भिः अर्वतः, नृभिः नॄन्, वीरैः वीरान् वनुयाम । पितृवित्तस्य रायः ईशानासः सूरयः नः शतहिमाः वि अश्युः ॥

८५ हे अग्ने ! उस तुझ (अग्नि) को स्थायी घरमें नित्य प्रदीप्त करके (तेरी) सेवा करते हैं । इस में बहुतही तेजस्वी धन अर्पण किया है । (तू) है, उनके वैभवोंका आश्रयदाता हो ॥

८६ हे अग्ने ! धनवान् (जो यज्ञ करनेवाले हैं, पर्याप्त) अन्न मिले । ज्ञानी दाताओंको पूर्ण आयु मिले जानेवाले (हम सब वीर) बल प्राप्त करें । देवोंको (अर्पण करनेके लिये) हम धारण करें ॥

८७ (सेवा करनेकी) इच्छा करनेवाली, दूधसे दुराशयवाली, तेजस्वी (देव) की भक्ति करनेवाली, रखी गौवें (सबको) दूध पिलाती हैं । (तेरी) शुभ बुद्धि करनेवाली नदियाँ पर्वतके साथ साथ बडी दूरसे बहती हैं

८८ हे अग्ने ! (तेरी) कृपाकी इच्छा करनेवाले (विभूतियों) ने द्युलोकमें तेरे कारणही यश आप्त विभिन्न रूपवाली उषा और रात्रि निर्माण की। लाल और रंग (उनमें) धारण किया ॥

८९ हे अग्ने ! जिन मानवोंको वैभवके लिये (तू किया, वे हम सब धनवान् धन जायं । पृथ्वी और (ये दो और) अन्तरिक्षको तुमने (प्रकाशसे) सब भुवनको, छायाके समान, साथ देते हो ॥

९० हे अग्ने ! तेरे द्वारा सुरक्षित (हुए हम) (शत्रुके) घोडोंको, अपने नेताओंसे (शत्रुके) नेताओंको, वीरोंसे (शत्रुके) वीरोंको पराभूत करेंगे । पैतृक धनके ईश्वर होकर हमारे विद्वान् (वीर) सौ वर्ष (की दीर्घ आयु) वाले

सोमं गावो धेनवो वावशानाः सोमं विप्रा मतिभिः पृच्छमानाः ।
सोमः सुतः पूयते अज्यमानः सोमे अर्कास्त्रिष्टुभः सं नवन्ते ३५ ९६
एवा नः सोम परिषिच्यमान आ पवस्व पूयमानः स्वस्ति ।
इन्द्रमा विश बृहता रवेण वर्धया वाचं जनया पुरंधिम् ३६ ९७
आ जागृविर्विप्र ऋता मतीनां सोमः पुनानो असदच्चमूषु ।
सपन्ति यं मिथुनासो निकामा अध्वर्यवो रथिरासः सुहस्ताः ३७ ९८
स पुनान उप सूरे न धातोभे अप्रा रोदसी वि प आवः ।
प्रिया चिद्यस्य प्रियसास ऊती स तू धनं कारिणे न प्र यंसत् ३८ ९९
स वर्धिता वर्धनः पूयमानः सोमो मीढ्वाँ अभि नो ज्योतिषाऽऽवीत् ।
येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञाः स्वर्विदो अभि गा अद्रिमुष्णन् ३९ १००
अक्रान्त्समुद्रः प्रथमे विधर्मञ्जनयन्प्रजा भुवनस्य राजा ।
वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये बृहत्सोमो वावृधे सुवान इन्दुः ४० १०१

९६ धेनवः गावः सोमं वावशानाः । विप्राः मतिभिः सोमं पृच्छमानाः । सुतः सोमः अज्यमानः पूयते । त्रिष्टुभः अर्काः सोमे सं नवन्ते ॥

९७ हे सोम ! परिषिच्यमानः पूयमानः (त्वं) नः एव स्वस्ति आ पवस्व । बृहता रवेण इन्द्रं आ विश, वाचं वर्धय, पुरन्धिं जनय ॥

९८ जागृविः ऋता मतीनां विप्रः पुनानः सोमः चमूषु आ सदत् । मिथुनासः निकामाः रथिरासः सुहस्ताः अध्वर्यवः यं सपन्ति ॥

९९ पुनानः सः धाता, सूरे न उप, उभे रोदसी आ अप्राः, सः वि आवः । प्रिया चित् यस्य प्रियसासः ऊती । सः तु धनं कारिणे न प्र यंसत् ॥

१०० वर्धिता वर्धनः पूयमानः मीढ्वान् सः सोमः ज्योतिषा नः अभि आवीत् । येन पदज्ञाः स्वर्विदः नः पूर्वे पितरः गाः अद्रिं अभि उष्णन् ॥

१०१ समुद्रः राजा प्रथमे भुवनस्य विधर्मन् प्रजाः जनयन् अक्रान् । वृषा सुवानः इन्दुः सोमः अधि सानौ अव्ये पवित्रे बृहत् ववृधे ॥

९६ दूध देनेवाली गौवें सोमकी इच्छा करती हुई हैं) । ज्ञानी लोग अपनी बुद्धियोंसे सोमका वर्णन निचोडा हुआ सोमरस प्रवाहित होकर सबको पवित्र त्रिष्टुप् छन्दके स्तोत्र सोमके (वर्णनमें) संगत होते हैं

९७ हे सोम ! सिंचित हुआ छाना जानेवाला सोम हमारे लिये कल्याण लानेवाला हो । बडे स्वरसे हो, स्तुतिको बढा, और बुद्धिको (उत्साहित) कर ॥

९८ जागनेवाला, सत्यभक्त बुद्धियोंसे युक्त ज्ञानी, सोम पात्रोंमें भरा गया है । स्त्री पुरुष, शुभ इच्छा त्वरासे जानेवाले उत्तम हाथवाले याजक जिस (सोम जाते हैं ॥

९९ पवित्र होनेवाले उस धारक (सोम) ने, पास जाकर दोनों लोग भर दिये, और उसने (वे किये । प्रिय वस्तु जिससे अधिक प्रिय प्रतीत होत सोम सबकी) सुरक्षा करता है । वह, कारीगरको (समान) धन देता है ॥

१०० (सबका) संवर्धन करनेवाला, स्वयं संव वाला, पवित्र होता हुआ, रसका सिंचन करनेवाला अपने तेजसे हमारी सुरक्षा करता है । जिससे पद ज्ञानी हमारे प्राचीन पूर्वजोंने गौओंके लिये पर्वतको

१०१ जलसे पूर्ण हुआ राजा (सोम) प्रथम भुव विविध धर्मकी प्रजा उत्पन्न करता हुआ आकाश व बलवर्धक चूनेवाला तेजस्वी सोम उच्च स्थानमें पवित्रपर बहुत बढने लगा ॥

महत्तत्सोमो महिषश्चकारापां यद्गर्भोऽवृणीत देवान् ।	४१	१०२
अदधादिन्द्रे पवमान ओजोऽजनयत्सूर्ये ज्योतिरिन्दुः		
मत्सि वायुमिष्टये राधसे च मत्सि मित्रावरुणा पूयमानः ।	४२	१०३
मत्सि शर्धो मारुतं मत्सि देवान्मत्सि द्यावापृथिवी देव सोम		
ऋजुः पवस्व वृजिनस्य हन्ताऽपामीवां बाधमानो मृधश्च ।	४३	१०४
अभिश्रीणन्पयः पयसाभि गोनामिन्द्रस्य त्वं तव वयं सखायः		
मध्वः सूदं पवस्व वस्व उत्सं वीरं च न आ पवस्वा भगं च ।	४४	१०५
स्वदस्वेन्द्राय पवमान इन्दो रयिं च न आ पवस्वा समुद्रात्		

१०२ महिषः सोमः महत् तत् चकार । यत् अपां गर्भः आन् अवृणीत । पवमानः ओजः इन्द्रे अदधात् । इन्दुः र्ये ज्योतिः अजनयत् ॥

१०३ हे देव सोम ! त्वं वायुं इष्टये राधसे च मत्सि । पूयनः मित्रावरुणौ मत्सि । मारुतं शर्धः मत्सि । देवान् मत्सि । द्यावापृथिवी मत्सि ॥

१०४ वृजिनस्य हन्ता, अमीवां मृधः च अप बाधमानः ऋजुः पवस्व । पयः गोनां पयसा अभिश्रीणन् अभि (गच्छ-सि) । इन्द्रस्य (सखा) त्वं, वयं तव सखायः ॥

१०५ मध्वः सूदं वस्वः उत्सं पवस्व । नः वीरं च भगं च आ पवस्व । हे इन्दो । पवमानः इन्द्राय स्वदस्व । समुद्रात् नः रयिं च आ पवस्व ॥

१०२ बड़े शरीरवाला सोम बड़ा कर्म करने लगा । जो जलोंके बीचमें रहकर देवोंको वरने लगा । पवित्र सोमने बलको इन्द्रमें बढ़ाया । सोमने सूर्यके अन्दर तेज प्रकट किया ॥

१०३ हे सोम ! तू वायुको इष्टसिद्धि और प्रसन्नताके लिये आनंदित करता है । पवित्र होता हुआ तू मित्र तथा वरुणको हृष्ट करता है । मरुतोंके संघको प्रसन्न करता है, देवोंको आनन्द-युक्त करता है तथा द्युलोक और पृथिवीको सन्तुष्ट करता है ॥

१०४ कुटिलताका नाश करता हुआ, रोगों और शत्रुओंका निवारण करके, तू सरल छाना जा । (अपने) रसके साथ गौओंके दूधको मिश्रित करता हुआ आगे (चलता है) । इन्द्रका मित्र तू है, और हम तेरे मित्र हैं ॥

१०५ मधुर रसके परिपाकको, धनके हौज (की तरह), पवित्र कर । हमें वीर और धन दे । हे सोम ! पवित्र होता हुआ इन्द्रके लिये स्वादु बन । समुद्रसे हमें धन मिले ॥

अग्निका वर्णन

पराशर ऋषिके कुलमंत्र १०५ ऋग्वेदमें हैं । अन्य वेदोंमें ष ऋषिके इससे विभिन्न मन्त्र नहीं हैं । इन १०५ मंत्रोंमें १ मन्त्र अग्नि-देवताके हैं और शेष १४ मंत्र सोम देवताके । इसलिये प्रथम अग्नि-देवताके मंत्रोंका मनन करते हैं । पराशरके इस मंत्रसंग्रहरूप काव्यमें उपमा, रूपक, तुलना आदि ी इतनी भरमार है कि कई मंत्रोंमें तो प्रत्येकमें चार चार मनाएं हैं और एकसे एक अधिक रोचक है । इतनी उपमाएं किसी अन्य ऋषिके काव्यमें नहीं हैं । देखिये इस अग्निकाव्यका पहिला मन्त्र कितना गम्भीर है-

चोर और भगवान्

१ " गुहामें संसार करनेवाले, अमको अपने पास रखनेवाले, (गुहामें रहनेके कारण) अपने पासके अमसेही अपना गुजारा करनेवाले, पशुको (चुराकर पहाड़की गुहामें रहनेवाले) चोर-को उत्साही बुद्धिमान् पुरुष (गौओंके और चोरके) पदचिन्होंको देख देखकर उनके अनुसन्धानसे (उसे) ढूंढकर (उसे प्राप्त करते हैं और वे) सब लोग उसे घेरकर (उसके) चारों ओर उसके पास पासही बैठते हैं, ताकि वह न भाग सके । (मन्त्र १-२)

इस मन्त्रकी उपमाका विचार ठीक तरह समझमें आनेके लिये निम्नलिखित भाव ध्यानमें रखिये- " एक चोरने किसीकी गौवें चुरा लीं और वह किसी पहाड़की गुहामें छिपकर बैठा है। किसीको पता नहीं कि वह कौन है और कहां रहता है। स्वाभाविक इसके लिये खोजमें निकलकर चोरी देखने वालेका चतुर होना है और जो लोग पदचिन्होंसे पता लगानेमें समर्थ हैं वे अच्छे होते हैं और चोरके तथा गौओंके ढूंढकर लिये हैं देनेवाले पदचिन्हों से

पता निकालते निकालते उस पर्वतके पास पहुंचते हैं कि जहां वह चोर रहता है और गौवें भी वहीं होती हैं। वह उस गुहामें दिनभर छिपा रहता है और अपने पासके अन्नपरही गुजारा करता है। उसकी खोज करनेवालोंके साथ शूरवीर भी रहते हैं और वे बडी सावधानतासे उस पहाडीमें जाते हैं, उस चोरको पकडते हैं और उसको बीचमें रखकर, उसको इधर उधर भागने दौडने नहीं देते और उसके चारों ओर वे वीर बैठ जाते हैं। यह वर्णन इस मन्त्रमें है।

यहां चोरको ढूंढकर निकालनेका विषय है। यह चोरकी उपमा ' ईश्वरको ढूंढ ढूंढकर निकालनेके लिये ' यहां लिखी है। मुख्य विषय ईश्वरको ढूंढनेका है, गौण विषय अग्निको ढूंढनेका है और इसके लिये उपमा गौवें चुरानेवाले चोरकी दी है। यह उपमा ईश्वरकी निगूढता, गुप्तता, छिपे रहनेका भाव अच्छी तरह बताती है। देखिये इसका ईश्वरपरक भाव–

ईश्वर-परक अर्थ

(हृदयकी) गुहामें रहनेवाले, (भक्तोंके) नमस्कारके साथ युक्त होनेवाले, (भक्तके) नमस्कारको स्वीकारनेवाले, (इन्द्रियरूप) पशुओंको (अपनी ओर आकृष्ट करनेवाले) चोर (जैसे सर्वत्र गुप्त छिपकर रहनेवाले ईश्वर) को (ढूंढनेके लिये) जोशीले धीर वीर (भक्त वेदके) पदोंके अनुसंधानसे चलते हैं, (उसे प्राप्त करते हैं और उपासना करनेके लिये) ये सब भक्तिरूप यज्ञ करनेवाले साधक साथ साथ बैठते हैं, (सांघिक उपासना करते हैं)। (१–२)

यह अर्थ स्पष्ट है और अधिक विवेचनकी इसके लिये कोई आवश्यकता नहीं है। अब इसी मंत्रका अग्निविषयक भाव देखिये—

अग्निविषयक अर्थ

(अरणियोंमें) गुप्त रहनेवाले, (इन्धनरूप) अन्नके साथ संयुक्त होनेवाले, (आहुतिरूप) अन्नको (देवोंतक) पहुंचानेवाले (अग्निको), पशुके साथ रहनेवाले चोरकी तरह, प्रेमसे परस्पर प्रीतिसे सेवा करनेवाले बुद्धिमान् लोग, (मन्त्रोंके) पदोंसे पता लगाते हैं (और उस अग्निको) प्राप्त भी करते हैं। (इस तरह अरणियोंमें गुप्त रहा अग्नि घर्षणसे प्रदीप्त होनेके पश्चात्) सब याजक (उस अग्निके) समीप (चारों ओर) बैठते हैं (और यज्ञ करते हैं)। (१-२)

अरणिमें अग्नि छिपा है, लकडीमें अग्नि रहता है, चोरका गुहामें छिपकर रहना है। अरणीही पर्वत है, अन्दर गुप्त अग्नि है। परमेश्वर भी ऐसाही हृदयमें सर्वत्र छिपा है। इन दोनोंकी खोज करनेवाले वेदज्ञ होते हैं। वेदके पदोंसे वे उसे प्राप्त करते हैं और उस अग्निसे यज्ञ करते हैं, अथवा सांमुदायिक उपासना। दोनोंका परिणाम जनताकी भलाईही है।

पाठक विचार करें और देखें कि इस मंत्रमें कितनी रीतिसे ज्ञान दिया है। ईश्वरके लिये ' चोर ' शब्द बहुत सन्तोंके काव्योंमें भी है। अब दूसरा मंत्र ।

भूमिपर स्वर्गधाम

२ 'देवोंनें सत्यपालनके व्रतोंकी पालना की, बडी जिससे भूमि स्वर्गके समान रमणीय बन गई।' यह **(देवाः ऋतस्य व्रतानि अनु गुः, (महती) भुवत्, भूमिः द्यौः न (भुवत् ॥** मं. ३) इस भागका है। इस भूमिपर स्वर्गधाम स्थापन करनेका वैदिक धर्म कर रहा है। इसके लिये ' (१) सत्यके पालन, और (२) बडी खोज' ये दो बातें चाहिये। क्षेत्र संपूर्ण मानवजीवनभर है। सत्यमार्गकी खोज करनी चाहिये। खोज करना और जो सत्य मिलेगा पालन करना, इसीसे भूमिपर स्वर्गधाम स्थापन किया जा सकता है। यह मंत्रभाग विशेष महत्त्वका है, इसलिये अधिक विचार होनेकी आवश्यकता है—

' ऋतं ' का अर्थ= योग्य, ठीक, सत्य, खरा, पूज्य, न्य, तेजस्वी, प्रकाशमय, उदयको प्राप्त, यज्ञ, सूर्य, विधिनियम, निश्चित किये नियम, धर्मनियम, पवित्र, पावन कर्म, दिव्य नियम, दिव्य सत्य, मुक्ति, जीवन, सत्य भाषण, परमात्मा।

व्रतं= धर्मनियम, निश्चय, संकल्प, विश्वास, पद्धति, यज्ञ, आचार, योजना।

परिष्टिः = चारों ओर ढूंढना, खोज करना, ढूंढकर लेना। घातपात, हिंसा।

बडा परिश्रम करके सत्यकी खोज करना, जब मालूम लगे, तब उसका पालन करना और सत्यकी ही मांग यह व्रत है और इसके पालनसेही इस भूमिपर स्वर्ग

हो सकती है, जो धर्मका साध्य है। सत्यके साथ अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह (अपने पास भोगसाधनोंको अत्यधिक प्रमाणमें न करना), शुद्धता, संतोष, तितिक्षादि द्वन्द्व सहनेकी शक्ति),, स्वाध्याय (ज्ञानकी ईश्वरभक्ति आदि गुणोंका भी संबंध है। अर्थात् इन पालना करना आवश्यकही है। सत्यकी पालना होने क्रमशः इन सबकी पालना स्वयं हो जाती है। इसलिये महिमा विशेष है।

त और ऋत ये एकही जीवनके दो भाग है। इनमें एक है और दूसरी सरलता है। सत्य और सरल मिलकर सत्य होता है। यहां जिस सत्यकी पालनाका व्रत कहा ' ऋत और सत्य ' मिलकर है। सचाई भी हो, ठीक हो, सरल भी हो, कुटिलता न हो, इस तरहके सत्यकी ना भाव यहां है। केवल सत्य है, पर ठीक नहीं है, तो छोड देना चाहिये। यहां ' ऋत ' पद है, जो इन सब के साथ प्रयुक्त हुआ है। केवल सत्यसे ऋत कई गुणा है, यह परमात्माका निज स्वरूप है। पाठक इसका कर करें।

भूमिपर स्वर्गधामकी स्थापना करनेकी इच्छा है, तो सत्यका न अनिवार्य है, यह यहां बताया है।

२ ऋतस्य गर्भे योना सुजातं, पन्वा सुशिश्चि आपः वर्धयन्ति (मं. ४)— सत्यके मध्यमें उत्तम प्रसे प्रकट हुए, बढनेवाले, वर्णनके योग्य इसको कर्म बढाते । यहां भी अग्नि, सोम, जीव तथा आत्माके वर्णन साथ य है। ' **अग्नि** '= यज्ञनिष्पादक अरणीके मध्यसे उत्तम प्रार उत्पन्न हुए, (वेदमंत्रोंकी) स्तुतिके साथ उत्तम बालकसमान इस (अग्नि) को (यज्ञविषयक प्रशस्त) कर्म ते है। अरणिसे उत्पन्न हुए अग्निको प्रदीप्त करके हवनाके रूपमें बढा देते हैं। ' **सोम** ' सोमवल्लीसे उत्पन्न, र्णनीय रसको जल बढा देते हैं। सोमरसमें जल मिला ते है। ' **जीव** '= गार्हपत्यरूप यज्ञमें उत्पन्न, उत्तम पुरुषमें रहे (जीव) को जल आदि पदार्थ बढाते हैं, संवर्धन करते हैं, दुग्धादि देकर परिपुष्ट करते हैं। ' **आत्मा रमात्मा** '= विश्वके बीचमें प्रकट हुए आत्माको (वेद मंत्रोंकी) स्तुतिसे वर्णन करते हुए, अनेक शुभकर्मोंके द्वारा बढाते हैं॥ इस भूमिपर स्वर्गधामकी स्थापना करनेके लिये इस महत्तत्त्वरूप प्रकृतिके बीचमें जो आत्मा है, वह उत्तम रीतिसे प्रकट होकर, हरएकके अन्तःकरणमें सूर्यके समान स्पष्टरूपमें दिखाई देना चाहिये। इसीका वर्णन (वैदिक सूक्तोंमें) सर्वत्र हो रहा है और सब कर्म इसीकी बधाईके लिये अर्पण होने चाहिये।

३ क ईं वराते ? (मं. ६)= इसे कौन रोक सकता है ? इसे कौन प्रतिबंधमें रख सकता है ? इस मंत्रभागमें '**वृ**' धातुका प्रयोग है। ' **वृ** ' धातुका अर्थ ऐसा है— ' स्वीकार करना, पसंद करना, मांगना, याचना करना, ढांपना, आच्छादित करना, घेरना, चारों ओरसे घेरना, दूर रखना, प्रतिबंध करना, प्रेम करना, भूषित करना। ' चारों ओरसे घेरने, प्रतिबंधमें रखनेका भाव यहां है। इस (प्रभु) को कौन प्रतिबंधमें रख सकता है ?

४ यह प्रभु कैसा है ? (**पुष्टिः न रण्वा**। मं. ५)= पुष्टि जैसी रमणीय होती है, वैसाही यह पोषक भी है और रमणीय भी है। (**क्षतिः न पृथ्वी**)= भूमि जैसी विस्तृत है वैसाही यह बडा विस्तीर्ण है। (**गिरिः न भुज्म**)= पर्वत जैसा भोजन देता है वैसाही यह सबको भोजन देता है। (**क्षोदः न शंभु**)= जलके समान यह कल्याणकारी, जीवनदाता अथवा हितकर्ता है। (**अत्यः न अज्मन् सर्गप्रतक्तः**)= उत्तम दौडनेवाला घोडा जैसा ऊपर बैठनेवाले वीरसे प्रेरित होकर दौडता हुआ चला जाता है, बीचमें ठहरता नहीं, वैसाही यह प्रभु भक्तिके शब्दोंसे प्रेरित होकर भक्तके पास सहायतार्थ जाता है, बीचमें रुकता नहीं। (**सिन्धुः न क्षोदः**) = नदीमें जलप्रवाह भरनेसे जैसी वह दोनो ओरकी भूमिको काटती हुई आगे बढती है, उसी तरह यह प्रभु विरोधको हटाता है और भक्तकी सहायताके उसके पास पहुंचता है। इसी तरह अग्निके विषयमें भी पाठक मननपूर्वक भाव समझें।

पुष्टि रमणीयता बढाती है इसलिये प्राप्त करनी चाहिये। पृथ्वी मनुष्यका कार्यक्षेत्र है वह मनुष्यके लिये दिन प्रतिदिन विस्तृत होता रहना चाहिये। पर्वतसे भोजन मिलता है यह इस मंत्रका तीसरा विधान है। पर्वतपर अनेक तरह वनस्पति तथा औषधियां होती हैं, जो प्राणियोंके खानेमें आती हैं, पर्वतपर वृष्टि होती है और पर्वत मेघोंको आकर्षित करते हैं, जिससे वृष्टि होकर अन्नको उत्पन्न करती है, इस दृष्टिसे पर्वतसे अन्न मिलता

है। [illegible] सूचना यहां मिलती है।

[illegible] कोई [illegible] नहीं सकता। [illegible] अपनाही है। [illegible] जनताके हित साधनके लिये [illegible] यह यहां [illegible] है।

५ सिन्धूनां जामिः (मं. [illegible])= नदियोंका यह संबंधी है। अग्निसे जलकी उत्पत्ति हुई है ऐसा (अग्नेरापः) उपनिषदमें कहा है, अथवा मेघमें बिजली चमकती है और पश्चात् वृष्टि होती है इसलिये जलप्रवाहोंका अग्निके साथ घनिष्ठ संबंध है। सिन्धुनदी बहिन है और अग्नि उसका भाई है। यही बहिनभाईका संबंध आगे बताया है। (**स्वस्रां भ्राता इव**)= बहिनोंका जैसा भाई हित करता है वैसा यह अग्नि सबका भरणपोषण करने द्वारा हितकारी है। अग्नि अन्नादिका पाक करके सबका पोषण करता है।

६ इभ्यान् न राजा, वनानि अत्ति। (मं. [illegible])= शत्रुओंको जैसा राजा नष्टभ्रष्ट करता है वैसाही यह अग्नि वनोंको, लकडियोंको खा जाता है। लकडियोंका जलाना अग्निका कार्य है, यह राजाका या क्षत्रियका कर्तव्य बतानेके लिये यहां कहा है। जैसा अग्नि लकडीको जलाकर भस्म कर देता है वैसा क्षत्रिय वीर राजा अपने शत्रुओंका नाश करे।

७ वातजूतः अग्निः वना व्यस्थात्, पृथिव्या रोम दाति। (मं. ८)= वायुसे प्रेरित होकर अग्नि जब वनोंपर हमला करता है, तब वह अग्नि भूमिके बालोंको (वृक्षोंको) मानो काटता है। यहां भी क्षत्रियका शत्रुको काटनाही सूचित किया है।

जिस तरह अग्नि वृक्षोंको जलाकर नष्ट करता है वैसा क्षत्रिय जनताके शत्रुका नाश करे और जनताको सुखी करे।

[illegible]

९ [illegible] [illegible]

१० [illegible] [illegible] जीवन धारण करता है।

यहां [illegible] प्रथम सूक्त समाप्त हुआ है। अग्नि, आत्मा, परमात्मापरक अर्थ देखकर पाठक अधिक मनन करें।

११ रयिः न चित्रा= जैसा धन [illegible] वैसाही यह देव सबके लिये प्राप्तव्य है, धन जैसा [illegible] है वैसा यह देव अत्यंत सुख देता है। **सूरः न** ज्ञानीके समान यह देव सम्यक् द्रष्टा है, ज्ञानी बनकर मनुष्य सम्यक् द्रष्टा बने। **आयुः न प्राणः**= [illegible] देता है वैसाही यह जीवन देता है। **नित्यः न** जैसा सदा सुख देता है वैसाही यह सुखदायी है।

यहां धन, विद्या, सम्यक् दृष्टि, दीर्घ आयु, [illegible] अर्थात् दीर्घ जीवन और उत्तम संतान ये प्राप्तव्य सूचित किया है। पाठक इस सूचनाको ओर [illegible] दें।

१२ तका न भूर्णिः= चपल घोडा जैसा ([illegible] भव करके अन्न लाकर) पोषण करता है, चपल [illegible] जैसा पोषण करता है, फुर्तीला वीर जैसा शत्रुका [illegible] करके दिग्विजय करके पोषण करता है, वैसा यह [illegible]। **पयः न धेनुः**= गौ जिस तरह दूध देती है, वैसाही पोषण करता है। **शुचिः विभावा**= शुद्ध पवित्र

जारः [प्रियकरः भवतु] इति)— कन्याओंकी ऐसी हार्दिक इच्छा होती है कि ऐसाही वीर हमारा प्रियकर बने। **'जार'** का अर्थ = प्रियकर, प्रीति करनेवाला है। अग्निका भी यही वर्णन है, अग्निको भी यही नाम है। अस्तु, इस कारण इस मंत्रके सच्चे भावमें वस्तुतः कोई बुराई नहीं है।

'यमः जातं, यमः जनित्वं'— बना हुआ और बननेवाला संपूर्ण विश्व यह यम (अग्नि) ही है। यही अग्नि विश्वके सब पदार्थोंका रूप लिये है। ऐसाही आत्मा और परमात्मा है। यह सदैक्यका सिद्धांत यहां कहा है। **'यम'** का अर्थ— नियामक, नियंत्रणकर्ता, स्वयंशासक। जो नियामक है वह ऐसा प्रभुत्व करनेवाला हो।

१९. अस्तं गावः न तं चराथ, वसत्या वयं इद्धं नक्षन्ते— घरके पास जैसी (शामके समय) गौवें (वापस आती हैं और विश्राम करती हैं) वैसे हम सब (हे प्रभो !) तुम्हारे पास चलकर आते हैं, तुम्हें प्राप्त करते हैं (और तुम्हारे में विश्राम पाते हैं)। हमारी वस्तीके अन्दर रहनेवाले हम सब लोग तुझे प्रदीप्त करके तुम्हारीही सेवा करते हैं। हम सब यज्ञ करते हैं और तुझ विश्वरूपकी सेवा करते हैं।

२० सिन्धुः न क्षोदः नीचीः प्र एनोत्, स्वर्दृशे गावः नवन्ते।— नदीके जलप्रवाह जैसे एकही नीचेकी दिशासे वेगसे जाते हैं, (वैसाही सब विश्व प्रभुकी प्राप्ति करनेकी दिशासे वेगसे दौड रहा है।) जैसे प्रकाशित हुए दर्शनीय (अग्निके पास) गौवें प्राप्त होती हैं। यज्ञकी संपूर्णता करनेके लिये अग्निके पास जैसी गौवें पहुंचती हैं, वैसेही हम सब शुके यज्ञमें संमिलित होते हैं। उनका प्रतीकही यह यज्ञाग्नि । जैसे लोग यज्ञमें संमिलित होते हैं, वैसेही प्रभुके विश्व पक यज्ञके अंग बनकर सब मनुष्य विश्वयज्ञमें संमिलित हों।

हां द्वितीय सूक्त समाप्त होता है। यहांका प्रत्येक मंत्र के लिये विशेष सूचना दे रहा है, जिसका भाव हमने ी टिप्पणीमें दर्शाया है। अधिक मनन करके पाठक समझें और इसकी गंभीरताका अनुभव करें। ये सब ति संक्षिप्त और सूत्र जैसे हैं। पूर्वापर संबंधमेंही ानना चाहिये।

तरुण वीरको जैसा राजा अपने पास रखता है, वैसे ही **चूर्णीतं** = विजयी सहायकोंको स्वीकार करो। विजयी सहायकको अपने पास रखना अर्थात् उसको जाकर सुयोग्य औषधियों और वनस्पतियोंको प्राप्त करना है। सहायताएं लाना है और उनकी सहायतासे होनेवाले मानव जैसे मित्रको प्राप्त करते हैं और शत्रुओंको दूर करते हैं, वैसे राजा जैसा तरुण वीरोंको अपने पास रखता है और उनकी सहायतासे शत्रुको दूर करता है, उसी तरह करो। वीरकी सहायता प्राप्त करके निरुत्साही तथा सहायतासे वंचित रहनेवाले अधम मानवोंको दूर करता है। यह विवेक अत्यंत आवश्यक है। **जायुः** = वैद्य, विजयी वीर। **मतेषु** = मानवोंमें जैसा मुननेवाला, सहायक, मददगार, वर, वैभव, धन, सुख ॥

२२ साधुः क्षेमः न, भद्रः क्रतुः न, होता वाद् स्वाधीः भुवत्। = साधु जैसा कल्याण कर्तृत्वशक्तिसे जैसा वैभव मिलकर सुख मिलता है, जैसा सबका भला होता है, वैसाही यह होता अर्थात् पहुंचानेवाला अग्नी (अग्नि) धारणशक्तिसे युक्त सबको सुखी करता है। साधुता अपने अन्दर ... चाहिये और क्रतु भी करना चाहिये। इन दोनोंका ताका क्षेम और भद्र करनाही है। (होता) (हव्यवाट्) हविष्यान्न पहुंचानेवाला ये दो साधनभाव देना और अन्न पहुंचाना, इनके साथ साथ ' (सु–आ–धीः) होना है, यह अनुष्ठान है। (सु) (आ) पूर्णतया (धी) ध्यान करना यह अनुष्ठान है। धातुका अर्थ = रखना, स्थापन करना, एक दिशामें लगना, कार्यमें लगना, अपने आपको लगाना, आधार देना, उत्साहित करना, देना, नियुक्त करना, पवित्र करना, पालनमें लग जाना। ' इस धातुसे ' आ–धी ' पद बनता और ' सु ' लगकर ' स्वाधीः ' पद सिद्ध होता है। **(आधीयते स्थाप्यते प्रतिकाराय मनः मनेन इति आधिः, सु सुष्ठु आधिः स्वाधिः)** प्रतिकार करनेके लिये मन आदिका एक स्थानपर लगना आधि है। यहां प्रतिकार शत्रुका है, शरीर, मन, बुद्धि समाज, धर्म, राष्ट्र आदि क्षेत्रोंमें अनेक प्रकारके शत्रु होते उनका प्रतिकार करके वहां अपनी स्वाधीनता प्राप्त करना

क्षेम और भद्र सुस्थिर रखनेका सब कार्यक्रम यहां
त्रने बताया है। 'आधि' का अर्थ 'धर्म-चिन्तन,
चिंतन, उन्नतिकी आशा' आदि है, तथा मानसिक व्यथा-
भाव इसमें है।

३. विश्वानि नृम्णा हस्ते दधानः, गुहा निषीदन् देवान् धात्। = सब पौरुषसे प्राप्त होनेवाले धन हाथमें रखकर, स्वयं गुप्त स्थानमें रहकर, इसने सब ो बलमें धारण किया, बलिष्ठ किया है। इसमें दो पद व महत्त्वके हैं, उनके अर्थ ये हैं— 'नृम्णं' = सुख, ी होना, मानवता, बल, शक्ति, धैर्य, धन, (नृ-मनः) र्वोंका मानसिक सामर्थ्य, बौद्धिक बल, धैर्य, शौर्य, वीर्य। मनः' = अपक्व फल, गति, बल, शक्ति, भय, रोग, सेवक, न, अल्पशक्ति, असाप स्थिति।

इस मंत्रमें तीन विधान हैं (१) सब बलोंको अपने आधीन ना है, (२) स्वयं गुहामें बैठता है, गुप्त रहता है, और) दिव्य विबुधोंको बलमें स्थापन करता है, उनका बल बढाता । प्रथम सब बलोंको, मानसिक शक्तियोंको अपने हाथमें ना, अपने आधीन करना चाहिये। सब इंद्रियादिकोंपर पना प्रभुत्व रखना चाहिये। जो शक्ति अपने आधीन नहीं ी वह अपना लाभ करेगी या नहीं इस विषयमें कौन निश्चय र सकता है? इसीलिये सब शक्तियां अपने आधीन करना हिये और मुख्य बात है। इसके पश्चात् देवोंको बलमें धारण रना है, उनको शक्तिके साथ कर देना है। व्यक्तिमें इंद्रिय- ाय देव हैं, समाजमें दिव्य ज्ञानी देव हैं और विश्वमें अग्नि ादि देव हैं। ये देव सामर्थ्यसंपन्न रहने चाहिये और अपने कार्यमें भी रहने चाहिये। क्योंकि सब कार्य इन देवोंके द्वारा ही होते हैं। इनकी प्रतिकूलतासे कोई कर्म यथायोग्य रीतिसे होगेही नहीं। इसलिये इनको अपने अधीन रखकर, इनसे बलवान् भी बनाना चाहिये, तत्पश्चात् इनसे कार्य कराना है। पर यह सब अपने आपको अत्यंत गुप्त रखकरही करना चाहिये। कौन कहांसे कार्य करवाता है, इसका पता न लगे। इससे दो बातें सिद्ध होती हैं, एक तो कर्तामें निरभिमान और अविद्यासे लालसाका न होना और दूसरा शत्रुसे सुरक्षित रहना।

इसीके उपलब्धि साधन के लिये ये अग्नि बडेही महत्त्वके और आवश्यक है।

२४ धियंधाः नरः अत्र ईं विदन्ति, हृदा तष्टान् मंत्रान् अशंसन्— बुद्धिकी धारणा करनेवाले ज्ञानी नेतागण यहां इस अग्रणीको प्राप्त करते हैं और हृदयसे बनाये विचारोंको उससे कहते हैं, उसको अपने हृदयके विचार सुनाते हैं। यहां स्पष्ट प्रतीत होता है कि 'बुद्धिमान् नेता सभामें परस्परके साथ मिलें, अपने अपने मनसे या हृदयसे निर्धारित किये विचार मनन पूर्वक बोलें, और एक-मतसे जो सिद्ध हो जाय उसका ग्रहण करें। यज्ञमें यही होता है, प्रथम अग्नि (अग्रणी) यज्ञस्थानमें स्थापन किया जाता है, पश्चात् मननशील ऋत्विज उसको घेर कर बैठते हैं और अपने हृदयके मंत्र बारंबार गाते हैं। सभामें यही हो, प्रथम सभापति निश्चित हो, सब सदस्य उसके पास बैठें, पश्चात् अपने हृदयसे निर्धारित किए सूक्ष्मसे सूक्ष्म विचार कहें और इस तरह सभाका कार्य चले। (हृदा तष्टान् मंत्रान् अशंसन्) हृदयसे सूक्ष्मसे सूक्ष्म विचार निर्धारित करके कहनेकी बात अत्यंत मुख्य है। बारीक बारीक बातोंका विचार करनेका भाव यहां स्पष्ट है और वही मानवी उन्नतिका मार्ग बताता है।

२५ अजः न क्षां पृथिवीं दाधार, द्यां सत्यैः मन्त्रैः तस्तम्भ— अज (आत्मा अथवा सूर्य) ने इस विस्तृत भूमिका धारण किया है और सत्य अटल नियमोंसे प्रकाशलोकको भी सुस्थिर किया है। यहां 'अजः' पद मुख्य है इसका अर्थ— '(अ-जः) अजन्मा, (अजति इति अजः) गतिमान, गमन करनेवाला, हलचल करनेवाला। अज = संचालक, चलानेवाला, नेता, अग्रणी, सूर्यकिरण, किरण। नेता मातृभूमिका धारण करता है, अग्रणी राष्ट्रका संचालन सुयोग्य रीतिसे करता है, सत्य मन्त्र अर्थात् सबकी सुरक्षा करनेवाले सूचिकारोंसे, मनन-शील विचारोंसे प्रकाशमय स्थानकी सुरक्षा करता है। 'द्यु' का अर्थ है— 'दिन, आकाश, प्रकाश, तेजस्वी, तेजोमय स्थान, स्वर्ग, तीक्ष्णता, अग्नि।'

२६ विश्वायुः (त्वं) पदवः प्रिया पदानि नि पाहि, गुहा गुहं गाः।— दीर्घ आयुसे युक्त होकर [पक्षियों के] स्थानोंकी सुरक्षा कर और स्वयं गुप्त स्थानमें भी अधिक गुप्त स्थानमें जा कर रह॥

पक्षियोंके जो प्रिय स्थान होते हैं उनकी सुरक्षा करनी चाहिये। जहां घास उत्तम होता है, जहांका जिनके लिये [illegible] हो, जहां आनंदसे खेल [illegible] पक्षियोंके [illegible]

चाहिये । पशुओंकी सुरक्षा राष्ट्रीय उन्नति करनेवाली है । इसलिये इसका अवश्य विचार राष्ट्रप्रबंधमें होना चाहिये ।

२७ य ईं गुहा भवन्तं चिकेत, यः ऋतस्य धारां आ ससाद ।— जो गुप्त स्थानमें सर्वत्र व्यापक होकर रहनेवाले इस (अग्नि या आत्मा) को जानता है, वह सत्यकी धाराको, यज्ञके मार्गको प्राप्त करता है । यह यज्ञ मनुष्योंकी उन्नति करनेवाला है ।

२८ ये ऋता सपन्तः वि चृतन्ति, अस्मै वसूनि प्र ववाच— जो सत्यके साथ सत्यकी प्रशंसा करते हुए संगठन करते हैं, उनके लिये धनोंकी प्राप्तिके मार्गका वर्णन कर । उनको ही धन मिले कि जो सत्यका पालन करते हैं और सत्यके आश्रयसे सुसंगठित होते हैं ।

२९ यः वीरुत्सु महित्वा विरोधत्, उत प्रजाः प्रसुप अन्तः (विरोधत्)– जो अग्नि औषधियों, वृक्षों, लकडियोंमें अपनी महिमासे रहता है, और माताओंमें संतान जैसा लकडियोंमें रहता है । मातारूप अरणियोंसे उत्पन्न होता है । अग्नि वृक्षोंमें रहता है और उनसे प्रकट होता है । अग्नि लकडियोंमें रहता है, उनसे उत्पन्न होता है, लकडी इसकी माता है और अग्नि उसका पुत्र है, पर यह पुत्र अपनी माताका और माताके कुलका ही (विरोधत्) विरोध करता है, लकडियोंसे उत्पन्न होकर उन्हींका नाश करता है । यह विरोध यहां है, यह एक अलंकार यहां है ।

३० चित्तिः, अपां दमे विश्वायुः (तं) धीराः संमाय, सभ इव चक्रुः— जो ज्ञान स्वरूप है, जो जलधाराके स्थानोंमें संपूर्ण आयु व्यतीत करता है, अर्थात् जो नदीके किनारोंपर सदा यज्ञ करता है, अथवा यज्ञ करवाता है, उसको ज्ञानी या बुद्धिमान् पुरुष अच्छी तरह संमान करते हैं, और उसीको अपने घरके समान अपना आश्रय मानते हैं ।

ज्ञानी सत्कर्म कर्ता पुरुषही जनताके लिये आश्रयस्थानसा प्रतीत होता है ।

यहां तृतीय सूक्त समाप्त हुआ है ।

३१ भुरण्युः श्रीणन् दिवं उपस्थात्, स्थातुः चरथं अक्तून् वि ऊर्णोत् । = सबका भरणपोषण करनेवाला और सबकी शोभा बढानेवाला (अग्निदेव प्रदीप्त होकर) द्युलोकतक (अपने प्रकाशसे) फैल गया, वह स्थावर जंगमोंको और दिनोंको व्यक्त या प्रकट करता है । अग्नि प्रदीप्त होकर वह बडा दावानलका रूप धारण करता है, अन्न पकाकर सबका भरणपोषण करता है, वह आकाशमें प्रकाशता है, अग्निरूपसे भूमिपर प्रकाशता है, जिसके प्रकाशसे स्थावर तथा जंगम सभी पदार्थ व्यक्त रूपसे दिखाई देते हैं । सूर्य जब ऊगने लगता है तब रात्रिको भी वह प्रकाशित करता है । यही उषा लाता है । ' अक्तुः ' = रात्री, अन्धकार, प्रकाश, किरण, सुगंधित लेप । यह एकही अग्नि पृथ्वीरूपसे, अन्तरिक्षमें विद्युद्रूपसे और द्युलोकमें सूर्यरूपसे होता है । यह एकही तीन रूपोंमें दिखाई देता है ।

३२ विश्वेषां देवानां एकः देवः महित्वा भुवत् = सब देवोंमें एकही अपनी महिमासे है । सब देवोंमें एकही देव सबका प्रमुख है, मुखिया है, सबका नियामक है, जो सब विश्वपर शासन करता है ।

३३ जीवः शुष्कात् जनिष्टाः विश्वे तं जुषन्त । = जीव शुष्कसे जन्मा है, तब सबोंने उसकी प्रशंसा की । जीव सचेतन है, वह शुष्क प्रकृतिसे होता है । प्रकृति अचेतन है, पर जब वह चेतनासे संयुक्त होती है, तब जीव प्रकट होता है । यहां अग्नि और काष्ठका है । अग्नि जलता है, काष्ठ शुष्क स्वयं प्रदीप्त नही है, पर जब उसको अग्निका संयोग होता तब वह अग्निके समान प्रदीप्त होता है । जीव और अग्निका वर्णन यहां समानतया किया है । प्रकृति और शुष्क काष्ठ क्रमशः उनका कार्यक्षेत्र है । इस तरह प्रकट हुए सभी यज्ञकी सेवा करते हैं । अग्निपक्षमें हवनाग्निकी हवन करते हैं और जीवपक्षमें जीवनरूप जन्मसे मरणपर्यंत दीर्घ सत्रका अनुष्ठान करते हैं । जीवनको यज्ञमय बनाते हैं ।

३४ एवैः अमृतं सपन्तः विश्वे नाम भजन्त = अपने प्रयत्नोंसे अमरत्वकी प्राप्ति करनेवाले साधक यश, सत्य और देवत्वको प्राप्त करते हैं । (यन्ति इति) = प्रगति, प्रगतिका अनुष्ठान । इनसे ही मनुष्य अमरत्व प्राप्त कर सकता है । जिसका नाम होता है, सत्य और सरलता ये उसके सहज गुण होते हैं । जिसका परिणामस्वरूप वह देवत्व प्राप्त करता है । अमरत्वकी प्राप्तिके लिये अनुष्ठान किया है और जो पालन करता है वह देवत्व प्राप्त करता है । देव

पोषण दानसे करनेवाला ज्ञानी दिव्य प्रकाशमान होनेके लिये आत्माका उपस्थान करता है, उपासना करता है। वह आत्मा **(स्थातुः चरथं अक्तून् वि ऊर्णोत्। ३१)**– स्थावर जंगम अनंत वस्तुओंको प्रकाशित करता है और अज्ञान अन्धकारको दूर करता है। इस प्रकाशमें आकर **(ऋतस्य प्रेषाः, ऋतस्य धीतिः, विश्वायुः विश्वे अपांसि चक्रुः ३५)**– सत्यकी प्रेरणा और सत्यकी धारणा करते हुए संपूर्ण आयुभर सब ज्ञानी साधक प्रशस्ततम कर्म करते हैं। **(विश्वे ऋतं देवत्वं भजन्त। ३४)** ये सब सत्यकी और देवत्वकी प्राप्ति करते हैं। **(अस्य शासं तुरासः श्रोषन् ते ऋतुं जुषन्त। ३९)**— इस प्रभुके शासनको सत्वर सुनकर वे जीवन भरमें यज्ञही करते रहते हैं। **(पुरुक्षुः रायः दुरः वि ऊर्णोत्। ४०)**– जिसके पास बहुत अन्न है ऐसा दानी मनुष्य मानो धनके द्वारही सबके लिये खुला करता है, **(दमूना नाकं पिपेश)**— वह इंद्रियदमन करनेवाला साधक अपने संयमसे स्वर्गधामकी शोभा बढाता है। इतनी इसकी योग्यता मानी जाती है।

ऐसे साधक **(तनूषु मिथः रेतः इच्छन्। ३८)**— अपने शरीरोंमें रेतके संवर्धनकी इच्छा करते हुए वे **(अमूराः वेनाः दक्षैः सं जानत)**— ज्ञानीजन अपने बलोंसे संगतीकरणका मार्ग जानते हैं, और पश्चात् **(पितुः पुत्राः)** पितासे पुत्र उत्पन्न करते हैं और उसको अपना अधिकार पिता देता है।

इस ढंगसे इस चतुर्थ सूक्तके मंत्रोंकी संगति देखनेयोग्य है। पाठक इस ढंगसे सूक्तके मंत्रोंकी संगति लगाकर बहुत बोध प्राप्त कर सकते हैं।

चतुर्थ सूक्तका विवरण समाप्त।

४१ उषः जारः न, शुक्रः शुशुकान्, समीची दिवः न, ज्योतिः पप्रा। = उषाका प्रियपति जैसा **(सूर्य चारों** ओर अपनी प्रकाश विश्वभरमें फैलाता है, वैसाही **)** बलवान् तेजस्वी यह **(अग्निदेव)** दोनों द्युलोक और भूलोकमें अपनी ज्योति फैलाता है। सूर्य और अग्निके समान मनुष्योंको उचित है कि वे भी स्वयं तेजस्विता प्राप्त करके विश्वभरमें अपना तेज फैला देवें।

४२ अजानः जन्वा परि बभूथ = उत्पन्न होतेही प्रशस्ततम कर्म करके सबपर प्रभाव डालता है। सबसे श्रेष्ठ बनता है, सर्वोपरि स्थानपर विराजता है। हरएक नके उत्तमोत्तम कर्म करके श्रेष्ठ बने। **देवानां पिता भुवः** = देवोंका पुत्र होता हुआ भी सदृश आदरणीय होता है। अरणीसे निकला कर विश्वमें संमानयोग्य हो जाता है। आयुर्व हुआ भी विद्या, वीर्य और तेजसे सबसे बढकर एक मनुष्य विद्या, वीर्य आदिकी प्राप्ति करने यत्न करे।

४३ वेधाः अदृप्तः विजानन् अग्निः पितूनां स्वाद्म। = कर्ममें कुशल, गर्वहीन, गौवोंके दुग्धाशयके दूधको जैसा स्वादु बनाता है को भी स्वादु बनाता है। इसी तरह मनुष्य शक्तिसे युक्त होवे, घमंड न करे, ज्ञानी बने, तथा मधुर अन्नोंका स्वाद लेवे। **'वेधा'**= नयी नयी चीजें बनाता है। कुशल कर्म करनेवा यदि गर्वहीन और विज्ञानसंपन्न हुआ तो वह णीय होता है। गौके गर्भाशयसे दूध निकलतेही दूधका सेवन करना योग्य है। इसी तरह स्वादु करना योग्य है। ये दो सूचनाएँ यहां मननीय हैं।

४४ जने न शेवः = जनोंमें सेवा करनेयोग्य पार्थी ज्ञानी और नया विधान करनेमें समर्थ होता है विशेष सुखदायी वस्तुओंका कर्ता होता है, वही सेवा होता है। **(मध्ये आहुर्यः)**= कठिन समय जो सहाय्यार्थ बुलाया जाता है वही जनोंमें आदरणीय है। **(दुरोणे रण्वः निषत्तः)** = अपने घरमें होकर जो रहता है। (अपने घरमें, नगरमें, अथवा अपने राष्ट्रमें जो रमणीय समझा जाता है। हित करनेके कारण जो जनतामें सेवा करनेयोग्य नीय है। मनुष्य ऐसा बने।

४५ जातः पुत्रः न दुरोणे रण्वः। = समान घरमें सबके लिये रमणीय प्रतीत होवे। उसके विषयमें आदरका भाव उत्पन्न होवे।

(वाजी न प्रीतः विशः वि तारीत्)= बलवान् वीरके समान यह प्रजाजनोंका तारण करता है ताकी सुरक्षा करता है। इसी तरह जनताकी सुरक्षा कार्य हरएक मनुष्यको करना उचित है।

नृभिः सनीळाः विशः, यत् अग्ने, अग्निः नि देवत्वा अश्याः ।= नेताओंके द्वारा एक घरमें के प्रजाजनोंकी सुरक्षा करनेके निमित्त, जिस वीरसे जाता है, वह अपनी (अग्ने) देव सब प्रकारके ोंसे प्राप्त करता है। एक घरमें रहनेवाले प्रजाजन सबकोही समझने चाहिये। इनकी सुरक्षा करनी चाहिये। र्व विश्वको सहायतासे होता है वह निःसंदेह सब दैवी । धारण करता है, अथवा उसमें सब दिव्य भाव रहते हैं। की सुरक्षा करनेके लिये जो अपने आपका समर्पण करता देवत्वका अधिकारी निःसंदेह है। अग्नि जैसा जनताको । देनेके लिये संपूर्णतया आत्मसमर्पण करता है, वैसाही ोंको करना उचित है।

४७ ते एता व्रता नाकिः मिनन्ति, यत् एभ्यः भुष्टि चकर्थ ।= तुम्हारे इन नियमोंका कोई उल्ल कर नहीं सकता, जो कार्य इन मानवोंकी उन्नतिके लिये किये। मानवोंको उन्नतिके कार्य ऐसे करने चाहिये कि के अन्दर कोई भी विघ्न न कर सके।

४८ यत् अहन्, ते दंसः, समानैः नृभिः युक्तः ोसि, यत् विवेः ।= जो तुमने शत्रुका वध किया, वह ारा बड़ा भारी पराक्रमही है। इसी तरह तुमने साधारण ोंके द्वाराही (बड़े विघ्नकारी शत्रुओंका नाश करनेके) किये और उनको भगाया (यह भी तुम्हारा बड़ाही पौरुष ।। वीरोंके उचित है कि वे ऐसे पराक्रम करें।

४९ उषः न जारः, विभावा उरुः संज्ञातरूपः सम् चिकेतत् । उषाके प्रियकर सूर्यके समान, यह विशेष रूपसे सबको जाननेवाला (अग्नि) इस (मरुत्को) जाने। ये अपना विद मानें। इसपर कृपा करें। सूर्य जैसा अपने सब विश्वको प्रकाशित करके यथावत् जानता है, वैसे स्वयंप्रकाशी अग्नि जाने। और वैसाही राष्ट्रमें अपनी । राष्ट्रके पुरुषोंको जाने।

५० त्मना वहन्तः, दुरः वि ऋण्वन्, दृशीके स्वः दिवे नवन्त ।= अपने (प्रकाशके) फैलाते हुए, (उषः के) घर द्वार खोलकर, दर्शनीय आत्मा (के प्रकाशके) लिये (सब ज्ञानी) वर्णन करते हैं। प्रथमतः सभी कार्योंमें अग्र स्वयं उठना चाहिये, विघ्नोंको दूर करके सब उन्नतिके मार्ग इसके लिये खुले होने चाहिये। तब आत्माके प्रकाशका चारों ओर फैलाव होगा जिसका सब ज्ञानी सदा वर्णन करते हैं ॥

इस पांचवें सूक्तके उपदेश स्पष्ट समझमें आनेयोग्य और सबोंके व्यवहारमें लानेयोग्य हैं। अतः इनका विशेष विवरण करनेकी यहां आवश्यकता नहीं है।

यहां पांचवां सूक्त समाप्त है।

५१ पूर्वीः मनीषा वनेम । सुशोकः अर्यः अग्निः विश्वानि अश्याः ।— हम पूर्व (वैभव अपनी) बुद्धिसे प्राप्त करेंगे। यह तेजस्वी स्वामी अपनी (अग्निदेव) सबको अपने आधीन करता है। हरएकको अपना वैभव प्राप्त करना चाहिये। स्वामी अपनी सब शक्तियोंको अपने अधीन रखे।

५२ दैव्यानि व्रता चिकित्वान्, मानुषस्य जनस्य जन्म आ ।— दिव्य नियमोंको जानो, दिव्य नियम वे हैं कि जो सूर्य, विद्युत्, वायु आदि देवताओंके संबंधमें जाननेयोग्य हैं। क्योंकि इनपरही मानवका सुख अवलंबित है। मनुष्यका जन्म जिस तरह सफल और सुफल होगा, वह मार्ग भी तुम्हें जानना चाहिये।

५३ यः अपां, वनानां, स्थातां चरथां च गर्भः— जो जलों, वनों, स्थावरों और जंगमोंके अन्दर रहता है। वह अग्नि सब पदार्थोंमें व्यापक है। वैसाही आत्मा है।

५४ अस्मै दुरोणे अद्रौ चित् अन्तः । अमृतः स्वाधीः । विश्वः विशां न ।- इस (देव) के लिये घरमें तथा पर्वतपर अर्थात् सर्वत्र अपना अर्चन किया जाता है। वह अमर है और उत्तम ध्यान करनेयोग्य है। संपूर्ण सत्कारी राजा जिस तरह सब प्रजाजनोंको आधार देता है (निवास देता है) वह देव सबके लिये आश्रय देता है और सबकी उन्नति करता है)।

५५ सः हि अग्निः अपावान्, रयीणां दाशत् यः अस्मै सूक्तैः अरं (करति) ।- वह अग्नि रक्षणमें पटु होकर धनोंका दान उसके लिये करता है, कि जो इस अग्निको सूक्तोंसे अलंकृत करता है। जो यज्ञ करता है उसको वह धन देता है।

५६ देवानां जन्म, मर्तान् विद्वान्, एता भूम नि पाहि ।— यह देवोंका जन्म, क्या मनुष्योंके अन्दर जानेयोग्य है और इस मनुभूमिको तुम रक्षण करो। सूर्य, चन्द्र, वायु, जल

५७ **पूर्वीः इषः बिभृताः ये वसानाः।** स्याम॒ ते सं॑ नः प्रतयन्तीतम्।— पूर्वोंको अनेक रात्रियोंने अनेक वर्षोंसे बसाई हैं। स्थावर और जंगम जिनके द्वारा सं-निर्मोंसे पोषित जैसा हुआ है। अर्थात् अनेक शताब्दियोंसे जिनका संवर्धन किया है और स्थावर जंगम जिनसे व्याप्त है।

यहां क्रमसे अनेक रात्रियोंके होनेका उल्लेख है जो उषाके ध्रुवके स्थानमें ही संभव है। क्योंकि यहां छः माहोंकी रात्रि होती है और उस समय यहां अग्नि प्रज्वलित रखनेकी आवश्यकता होती है।

५८ स्वः निषत्तः होता अराधि, विदत्वग्निः अपांसि सत्या कृण्वन्।— अपने निज तेजमें प्रकाशित रहनेवाला, देवोंको बुलानेवाला यह अग्नि प्रसन्न हुआ है। यह सब पुरुषार्थोंको सत्य-फल-दायी करता है। अपने तेजसे तेजस्वी बनो, देवोंको बुलाकर उनको प्रसन्न करो, सब कर्मोंको सत्य फलदायी होने योग्य रीतिसे संपन्न करो।

५९ वनेषु गोषु प्रशस्ति धिषे— वनों और गौओंके विषयमें प्रशंसा करो। गौवें वर्णनीय हैं और गौवोंकी पालना करनेके कारण वन भी प्रशंसाके योग्य हैं। **(विदवे नः स्वः वार्लि भरन्त)**- सभी हम अपना आत्मसमर्पण करते हैं। सबकी भलाईके लिये हम यह दान करते हैं।

६० त्वा नरः पुरुत्रा वि सपर्यन्। जित्रेः पितुः न, वेदः वि भरन्त।— सब मनुष्य तेरी सर्वत्र पूजा करते हैं। जिस तरह वृद्ध पिताका धन (पुत्रको मिलता है, उस तरह) सब धन तुम्हारेसे हम सबको प्राप्त होता है।

६१ साधुः न गृध्नुः— साधुके समान (सबकी भलाई) चाहनेवाला, **(अस्ता इव शूरः)**- शूर पुरुषके समान अस्त्र चलानेवाला, **(याता इव भीमः)**- शत्रुपर हमला करनेवाले शूर सैनिकके समान भयंकर उग्र, **(समत्सु त्वेषः)** — संग्रामोंमें तेजस्वी अथवा उत्साहसे युद्ध करनेवाला जो होता है, वही विजयी होता है।

यहां छटाँ सूक्त समाप्त हुआ।

६२ **(समानजाः उषसः पूर्वीः अनूषत)**— एकत्र होनेवाली उषाओंने पहलेकी उषाओंकी प्रशंसा की, जैसा **(उषासो नित्यं पतिं न)** पति करनेवाली स्त्रियां अपने रहनेवाले पतिकी (उस पति का कर उसको प्रसन्न करती हैं। **यां उप ऊ जिन्वन्'** अर्थात् जिसको उषाओंने प्रसन्न करती हैं, ऐसा कहा है। पति अर्थ नहीं कहा। यास्क ही **'पतिः पत्नीः'** यह एक वचनमें (पत्नियां) यह बहुवचनमें है। इससे एक पतिके साथ साथ होनेकी बात स्पष्ट हो रही है। **(या-नीळाः)** एक वर्ण रहनेवाली हैं और कामना करनेवाली अर्थात् तरुणी हैं।

स्थाणौ उच्छन्तीं अरुषीं उषसं न स्थानेवाली परंतु अन्धकारको दूर करनेवाली जैसा गौर वर्ण होती है, अर्थात् सवेरे उषःकालमें के लिये खोल दी जाती हैं, वे दृश्यमान करती हुई और उषाको रमणीयता बढाती हैं। इसी तरह **सारः अजुषन्।**'- विविध प्रकाशवाले (दायकी अंगुलियां) सेवा करती हैं, अग्निमें घृत, तथा अन्यान्य हवनीय पदार्थ डालकर उसको बढाती हैं। ऋत्विजोंकी अंगुलियांही अग्निको इधर और उधर उषःकालके अग्निकी तथा सूर्यको बढाती हैं।

६३ नः अङ्गिरसः पितरः नवग्वाः अभि दक्षैः वावृधुः दस्यु दळ्हा अद्रिं रवेण रुजन्।— हमारे [illegible] रोंने सूक्तोंके द्वारा बडे सुदृढ शत्रुके पर्वतीय शब्दसे ही नाश किया। मन्त्रों द्वारा-सुविचारोंके ऐसी शक्ति अंगिरसोंने निर्माण की कि जिससे शत्रुके भी टूट गये। विचारवान् लोग सुविचारके प्रचारके वर्तन करते हैं और जनताके मनमें ऐसे क्रान्तिके करते हैं कि जिससे शत्रुका नाश सहजहीसे हो **' अस्मे बृहतः दिवः मातुं चक्रुः।**- हमारे लिये अंगिरसोंने बडे स्वर्गधामको प्राप्त करनेका मार्ग बता अंगिरसोंने शत्रुका नाश किया और सुखदायी साधन निर्माण करनेद्वारा मनुष्योंके लिये पृथ्वीपर स्वर्ग-धाम करनेका मार्ग बताया। (मंत्र क्रमांक १ की टिप्पणी

मिपर स्वर्ग निर्माण करनेका विचार विशेष रूपसे कहा

स्वः अहः केतुं उस्राः विविदुः '— उन अग्नि-
ही अपने लिये प्रकाश, दिन, ज्ञान, किरण (अथवा गौवें)
ें। अर्थात् प्रकाश और ज्ञानका राज्य हुआ। अन्धकार
के प्रकाशका फैलाव किया। (स्वः=स्व-र) स्व अर्थात्
का प्रकाश, अपने तेजका फैलाव, (अहः=अ-हः)
ं हानि नहीं ऐसा अवसर, (केतुं) अपना ध्वज फहरानेका
, विजयका अवसर, ज्ञानके प्रचारका समय, (उस्राः)
न और गायें। मानवी सुस्थितिके लिये प्रकाश और गायें
सहायक हैं।

६४ **ऋतं दधन् अस्य धीतिं धनयन्** = सत्यका
रण करनेवाले इस (प्रभु) की धारक शक्तिको धारण करने-
धन्य होते हैं। दिव्य शक्तिसे तबही लाभ हो सकता है
जब सत्य पालन और सरल आचरणकी उसको साथ हो।
ात् (अर्यः) सबकी स्वामिनी, (दिधिष्वः) धारण करने-
ी, (विमृत्राः) विशेष भरण पोषण करनेवाली, (अतृष्यन्तीः)
से रहित, निष्काम भावसे युक्त, (अपसः प्रयसा देवान्
वर्धयन्तीः) अपने कर्मोंके द्वारा तथा अन्न-दानसे देवोंको
अपने जन्मका संवर्धन करनेवाली प्रजाएं इसके पास
अच्छ यन्ति) पहुंचती हैं। प्रभुके पास वही जाते हैं जो
नो शक्तियोंपर स्वामित्व रखते हैं, संयम रखते हैं, अपने
रकी शक्ति बढाते और संयमसे उससे कार्य लेते हैं, यथा-
कि अन्योंका पोषण करते हैं, अन्न दान करते हैं, दिव्य
ोंका संवर्धन करते हैं और अपने जन्मको सफल करने हैं,
व कार्य वितृष्ण होकर निष्काम भावसे करते हैं। येही प्रभुके
ास पहुंचते हैं।

६५ **मातरिश्वा ईं यत् मथीत्, विभृतः, श्येतः गृहे गृहे जन्यः भूत्** = वायुने जब इस अग्निको मथकर प्रकट
किया, तब वह विशेष प्रकाशसे युक्त होकर श्वेत प्रकाशसे घर
घरमें विजयी हुआ। व्यक्तिके शरीरमें प्राणायामसे आत्माका
तेज प्रकट होता है और प्रत्येक देहमें यह धवल यशसे युक्त
होता हुआ, विजयी होता है। समाजमें यज्ञका अग्नि वायुसे
प्रकट होता है और प्रत्येक यज्ञ-शालामें यही यज्ञाग्नि यज्ञ
कराकर विजय देनेवाला होता है। राष्ट्रमें अग्रणीरूपमें नेता
वसुरूप क्षत्रियोंके साथ मिलकर प्रभावके कार्य करने द्वारा
विजयी होता है। इस तरह सर्व क्षेत्रोंमें देखना उचित है।

सचा सन्, सहीयसे राज्ञे न ईं भृगवाणः दूत्यं आ विवाय = साथ साथ रहकर बलवान् राजाकी सहायता करनेके समान, इसने भृगुवंशके लोगोंकी सहायता करनेके लिये दूत-कर्म भी किया। देवता आनन्द प्रसन्न होनेपर दूतकर्म करके भी सहायता करते हैं। जिस तरह अर्जुनका सारथ्य भगवान् श्रीकृष्णजीने किया था, वैसाही अग्नि यहां दूत हुआ है।

६६ **महे पित्रे दिवे ईं रसं कः पृशन्यः चिकित्वान् अव त्सरत्** = बडे पितृभूत द्युलोकको समर्पण करनेके लिये तैयार किये इस सोमरसको, कौन भला इस देवताके साथ संबंध रखनेका इच्छुक ज्ञानी मनुष्य, गिरावेगा ? अर्थात् कोई भी नहीं गिरावेगा, इतना इसका बडा प्रभाव है। (**अस्ता धृषता अस्मै दिद्युं सृजत्।**) = अस्त्र फेंकनेवाले धैर्य-युक्त वीरने अपने शत्रुपर तेजस्वी अस्त्र फेंक दिया। तब (**देवः स्वायां दुहितरि त्विषिं धात्।**) सूर्य देवने अपनीही दुहितामें— उषामें— अपना तेज रख दिया। उत्तरीय ध्रुवकी उषा जब आती है, तब उषःकालमें बडी विज-लियाँ प्रकाशती हैं और प्रतिक्षण सूर्य-किरणोंसे उषाका तेज बढता ही जाता है। इस देशकी उषा प्रतिदिन आती है और सूर्योदयके समय विद्युत्का चमकना नहीं होता। उधर यह होता है।

६७ **हे अग्ने ! स्वे दमे तुभ्यं यः आविवासति, अनु द्यून् उशतः वा नमः दाशात्, अस्य द्विबर्हाः वयः वर्धा।** = हे अग्नि देव ! अपने यज्ञस्थानमें तुम्हें तुला-कर प्रदीप्त करके जो तुम्हारा सत्कार करता है, प्रतिदिन तुम्हारा सत्कार करनेकी इच्छा करता हुआ जो तुम्हें अन्न दान करता है, इसके दोनों ओर रहकर इसकी आयु (या अन्न) तुम बढाओ। तुम्हारे भक्तकी तुम उन्नति करो। (**सरय्यं यं जुनासि तं राया यासत्**) = जिसके रथपर तू रहता है उसे तू धन देता है, उसे विजय देता है। भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनके रथपर सारथ्य करते थे और उन्होंने उनको विजय प्राप्त करनेमें अच्छी सहायता की, यह क्या इसके साथ तुलना करने योग्य है।

६८ **स्रवतः सप्त यह्वीः समुद्रं न, विद्याः पुरः अग्निं अभि सचन्ते।** = बहनेवाली सात नदियां जैसे समुद्रको जा कर मिलती हैं, वैसेही सब [illegible]

समय, अन्तर्धान' । 'निमीलिः= मुद, स्वप्न, विनाश । हरएक मनुष्य यहां मुदमें है । मुद अनेक प्रकारके हैं। धार्मिक, सामाजिक, राजकीय, आर्थिक ऐसे मुदोंके भेद हैं। मनुष्य यहां किसी न किसी मुदमें रहनेही है। वह उस मुदमें रहता हुआ 'अपना लक्ष्य परम पदमें रहनेवाले परमात्मा प्रभुकी ओर ही रखे'। उसीका सदा मनन करे और अपना कर्तव्य करे, जिससे वह विजयी हो सकेगा।

७६ **संजानानाः उपसीदन्, पत्नीवन्तः नमस्यं अभिषु नमस्यन्** = वे ज्ञानी लोग उसकी उपासना करने लगे, अपनी धर्म-पत्नियोंके समेत नमस्कार करने, योग्य प्रभुके सामने घुटने टेक कर नमस्कार करने लगे। पहिले प्रभुका ज्ञान प्राप्त किया, उपासना की, धर्मपत्नियोंके समेत उस वंदनीय के पास पंहुचे और घुटने टेककर वंदना करने लगे। यहां घुटने टेककर सामुदायिक उपासना करनेका भाव स्पष्ट है। पत्नियों-के समेत यह सामुदायिक उपासना है, यह ध्यानमें रखने योग्य विशेष बात है। जिसके पांवमें मोटे कपडेका पाजामा हो, शरीरपर मोटे मोटे अंगरक्षाके लिये कपडे हो, वही घुटने टेककर नमस्कार करेगा। जो पतली धोती पहना हो, जिसके शरीरपर धोतीही हो वह चौकी लगाकर आसानीसे ध्यान कर सकता है। इसलिये हम ऐसा अनुमान कर सकते है कि यह रिवाज उस देशका दिखता है कि जहां अधिक भारी कपडे पहननेके कारण चौकी लगाकर बैठना असंभव हो और घुटने टेकना आसान होता हो। यह हमारा विचार है और इसकी सत्यता अन्य प्रमाणोंसे प्रमाणित करनी चाहिये। यहां यह कहना चाहिये कि वेदमें कपासके कपडोंका उल्लेख नहीं है, ऊन-केही कपडोंका उल्लेख है। इससे कपडोंका भारी मोठा होना संभवनीय हो सकता है, कमसे कम शीतकालमें तो अनिवार्यही है। तथापि यह बात अन्वेषणीय है। **(सख्युः निमिषि रक्षमाणाः सखा स्वाः तन्वः रिरिक्षांसः कृण्वत)** = एक मित्रके आंख बंद होकर उसको निंदा लगनेके समय जैसे दूसरे मित्र वहांकी सुरक्षा करने लगते हैं, वैसेही अपने शरीरोंको पापों और अशुद्धियोंसे रिक्त करनेमें ये लगातार दत्तचित्त हुए हैं, अर्थात् लगातार अपने आपको पवित्र करनेका अनुष्ठान करते हैं और पवित्र बनते हैं। यहां भी 'तन्व' पद बहु-वचनमें है, कमसे कम तीन शरीर ऐसा अर्थ यहां है। स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर अथवा शरीर, मन और बुद्धिको वे [illegible] एक करते हैं। वे [illegible] बनाने [illegible] करनेके अनुष्ठानमें लगे हुए हैं।

७७ **त्रिः सप्त गुह्यानि पदा तेषां पदानि निहितानि गोभिः आविन्** = तीन गुना सात [illegible] स्थानमें रखे हैं, उसका पता पंडितोंको लग गया। इसीसे गुप्त चरोंका ज्ञान हुआ। इसीसे प्रभुने जो मानवोंका हित करनेवाले हैं यह उन विद्वानोंके **(तेभिः यमुनं रक्षमाणे)** = इस हेतुसे [illegible] की सुरक्षा की जाती है, यह ज्ञान उन विद्वानोंके 'अ-मृत' पद अविनाश या अमरत्वका बोधक है। **(सजोषाः पशून् च स्थातृन् पाहि)** = एक मनसे आने पशुओं और स्थावरोंकी रक्षा करो। जिसके गुप्त बातोंका ज्ञान प्राप्त करो, उस सब जंगमोंकी सुरक्षा करो, एक होकर एक मनसे और स्थावर जंगमोंकी सुरक्षा करो। यहां यह स्थान करके अमृत भोजन करनेका संकेत है। मानवोंकी सुरक्षा होनी चाहिये, पशुओंकी सुरक्षा होनी चाहिये और स्थावर जंगलकी भी सुरक्षा होनी चाहिये। क्योंकि इनसेही मानव सुखी हो सकते हैं।

७८ **वयुनानि विद्वान्, क्षितिनां जीवसे आनुषक् विधाः**। = सब मनुष्योंके आचार-विचार मानवोंके दीर्घ जीवनोंको सुखमय करनेके लिये, रोकनेके लिये, अर्थात् पर्याप्त अन्न प्राप्त होनेके विशेष यत्न कर। प्रथम आचार-विचारके [illegible] चाहिये, पश्चात् मानवोंके दीर्घ जीवनके लिये यत्न अर्थात् अपमृत्युको दूर करना चाहिये यह बतानेके लिये शोक उत्पन्न करनेवाली क्षुधा आदिकोंके कष्टोंके [illegible] लिये सतत अविरत विशेष यत्न करना चाहिये। विचारोंका यथार्थ ज्ञान, दीर्घ जीवनके लिये प्रयत्न और कष्टोंको दूर करना इन बातोंके लिये सतत यत्न करना **(देवयानान् अध्वनः अन्तर्विद्वान्, अमृतः वाट् दूतः अभवः)** = देवयानके मार्गोंको अन्दरसे आलस्यरहित होकर हवि पहुंचानेवाला दूत तू हुआ दिव्य विबुधोंके आने-जानेके मार्गोंको अन्दरसे [illegible] जानना चाहिये, जिससे पता लग सकता है कि [illegible]

पुरुषोंका शुभ व्यवहार होता है। इसको जानकर वैसा
। निरलस वृत्तिसे करना चाहिये। दिव्य जनोंको हवि-
पहुंचाना और हर प्रकारसे उनकी सेवा करना योग्य है।
ये करना चाहिये कि उसके सान्निध्यसे सन्मार्गका
जाय और अपना जीवन भी उसके समानही दिव्य

त्वाध्यः सप्त यह्वीः दिवः आ (प्रवहन्ति)= उत्तम
ल्य कर्म जिनके तट पर होते हैं, ऐसी सात नदियां
ये बह रही हैं। यहां का (दिवः) पद हिमालयके
बोधक है, हिम पर्वतका बर्फ पिघलकर सात नदियां
हैं, जहां (सु-आ-धीः) उत्तम प्रकार ध्यान धारणा
। योग होते हैं, ऐसे नदी किनारे इन नदियोंके साथ
अतक्षाः रायः दुरः वि अजानन्)= सत्यके
और यज्ञ-मार्गको जाननेवालोंने वैभवको प्राप्त करने-
बोलनेकी रीति जान ली है। अर्थात् यज्ञसेही सबको
हो सकती है, यह उन्होंने जान लिया है। (**गव्यं**
ऊर्वं सरमा विदत्) = गौओंके रखनेका सुदृढ
अर्थात् शत्रुने गौवें कहां रखी हैं, यह स्थान सरमाने
लिया है। वहां इन्द्रादि वीर जायेंगे, शत्रुका पराभव
उससे गौवें प्राप्त करके वे उनको वापस ले आवेंगे। इस
जो शत्रुका पराभव करते हैं वे अपने वैभवको प्राप्त
है। अतः कहा है कि (**येन मानुषी विट् कं**
ते) = जिससे मानवी जनता सुख भोग सकती है।

८० **ये अमृतत्वाय गातुं कृण्वानासः विश्वा स्वप-**
नि आतस्युः = जो अमरत्वकी प्राप्तिका मार्ग तैयार
ते हैं, वे सब शोभन कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं। क्योंकि
न कर्मके करनेके बिना अमरत्वकी प्राप्तिकी संभावनाही नहीं
। (**महद्भिः पुत्रैः माता अदितिः पृथिवी धायसे**
सा वि तस्थे, वेः)= अपने महान् पराक्रमी पुत्रोंके
य यही अदिति माता सबके धारण पोषण करनेके लिये
अपनी महिमासेही विशेष रूपसे विस्तृत रूपमें स्थिर रही है,
इस तरह पक्षिणी अपने बच्चोंके पोषणके लिये दान करती है।
(अदितिः अदनात्) अदिति वह है कि जो भोजन देकर
सबका और पोषण करती है। पृथ्वीको अदिति इसलिये
कहते हैं कि वह धान्य देकर सबका पोषण करती है। (महद्भिः
पुत्रैः) पुत्र बड़े वीर हों, पराक्रमी हों, यह जिस
पुत्रोंको देनी आवश्यक है। ऐसे वीर पुत्रोंके साथ माता
अन्योंका धारण-पोषण करे। यही माताका (महा) महत्त्व
है। जिस माताको आठ आदित्योंके समान आठ वीर पुत्र हों,
वह माता धन्य है।

८१ **दिवः अमृताः यत् अक्षी अकृण्वन्, अस्मिन्**
चारुं श्रियं अधि नि दधुः = द्युलोकके स्थानमें अमर
देवोंने जब दो आंख, सूर्य और और चन्द्र, बनाये, तब इस
अग्निमें उन्होंने सुन्दर शोभा, सुन्दर दीप्ति, रख दी। अर्थात्
इस अग्निको भी उन्होंने तेजस्विताके साथही बनाया। सूर्य
चन्द्र, विद्युत् और अग्नि इस तरह बनाया गया। (**अध**
सृष्टाः सिन्धवः न नीचीः अरुषी क्षरन्ति) इसके
पश्चात् निम्न गतिसे चलनेवाली नदियोंके समान तेजस्वी दीप्ति-
वाली ज्वालाएं उससे चल पडीं। (**हे अग्ने ! प्र अजानन्**)
हे अग्नि देव ! यह सब उन्होंने जान लिया है। ज्ञानी इसको
ठीक तरह समझते हैं।

इस आठवें सूक्तमें कई बातें विशेष महत्त्वकी कही गयी
हैं, जो उन्नति चाहनेवाले साधकोंको सदा मननीय हो सकती
हैं। सब तत्त्वज्ञान यहां अग्निके मिषसे कहा गया है, अग्निका
निमित्त करके मानवी जीवनका तत्त्वज्ञान यहां कहा गया है।
पाठक इसका विचार करें।

यहां आठवे सूक्तका मनन समाप्त है।

८२ **पितृवित्तः रयिः न यः वयोधाः**— पितासे प्राप्त
हुए धनके समान (यह अग्नि देव) अन्न धारण करनेवाला
है। जिस तरह पिता-पितामहसे आनेवाली संपत्ति मिलनेसे
अलगसे कमाई करनेकी आवश्यकता नहीं होती, उस धनसे
अन्नादि सब सुखभोग मिलते हैं, उसी तरह यह अग्नि सब
सुखभोग देता है। (**चिकितुषः न शासुः सु प्रणीतिः**)-
ज्ञानी शासक राजाकी तरह यह उत्तम रीतिसे चलाता है,
उन्नतिके मार्गका आक्रमण करनेमें वह वैसा सहायक होता है कि
जैसा उत्तम ज्ञानी राजा अपनी प्रजाका सहायक होता है।
(**स्योनशीः अतिथिः न प्रीणानः**)— सुखसे विश्राम
करनेवाले अतिथिके समान संतोष देनेवाला, अतिथि-सत्कारसे
संतुष्ट होकर सुखपूर्वक आसन लेनेवाले अतिथिके समान
आनन्द देनेवाला यह है। जिस तरह ऐसा संतुष्ट हुआ अतिथि
उत्तम उपदेश द्वारा गृहस्वका हित करता है, उसी तरह यह
भी हित करता है। (**विधितः सप्त, होता इव, वि**

तारीत्) यज्ञ-कर्ताके घरका, इवन-कर्ताके समान, तारण करता है। जिस तरह अग्नि-होत्र करनेवाला अग्निशालाका संरक्षण करता है, उस तरह यह यज्ञ तथा सत्कार करनेवालेके घरका तारण करता है। अग्निदेवका जहां सत्कार होता है वहां सुरक्षा रहती है। अन्नकी प्राप्ति, सन्मार्गका दर्शन, शान्ति, सुख और संरक्षण इतनी बातें इसकी उपासनासे होती हैं।

८३ देवः न सविता, यः सत्यमन्मा, क्रत्वा विश्वा वृजनानि नि पाति— सविता देवके समान जो सत्य व्रतका मननपूर्वक पालन करता है, वह अपने कर्तृत्वसे सभी पापोंसे साधकको बचाता है। सत्यका पालन करनेवाला बडे प्रशस्त कर्म करता है, जिससे सब कुटिलताओं और पापोंसे बचाव होता है। **(पुरु प्रशस्तः अमतिः न सत्यः, आत्मा इव शेवः, दिधिषाय्यः भूत्)**– अनेक लोगों द्वारा जिसकी प्रशंसा की जाती है, प्रगति करनेवालेके समान जो सत्यनिष्ठ है, आत्माके समान जो सेवाके योग्य है, वही सबका आश्रय-दाता हुआ है। **' अमति '** (अमति इति)— जो गतिमान्, उन्नतिकी ओर जानेवाला, बलवान् है, जो उन्नतिके लिये हलचल करता है, वैसा यह अग्निदेव भी प्रगति करनेवाला है। **' दिधिषाय्यः '** (धातुं योग्यः) आधार देने योग्य, जिसके आश्रयमें रहना योग्य है। संस्कृत भाषामें **'दिधिषाय्य'** का अर्थ ' आधार, आश्रय, असल मित्र, मद्य ' ऐसा है। **' दिधिषु '** का अर्थ ' पुनर्विवाहित पति ' है। यहां मूल धातुसे बननेवाला यौगिक अर्थ लेना चाहिये। ' आधार देने योग्य, आश्रय लेने योग्य ' यह इसका यौगिक अर्थ है। यह प्रभु आश्रयके योग्य है। जो इसका आश्रय करेगा, वह कदापि गिरेगा नहीं। सत्यकी पालना करने और प्रशस्त करनेसे पाप दूर हो सकते हैं। यदि किसीका आश्रय करनाही हो तो जो सबसे प्रशंसनीय है, जो सत्यनिष्ठ है, जो बलवान् और सबके हित करनेके लिये हलचल करता है और आत्मा जैसा सबको उत्साह देनेवाला है, उसीका आश्रय किया जावे।

८४ यः देवः न विश्वधायाः, हितमित्रः न राजा पृथिवीं उपक्षेति– जो देवताके समान सबका धारण पोषण करनेवाला है, जो हितकर्ता है और मित्र जैसा पालनकर्ता राजा है, जो पृथ्वीपर रहता है, वह अग्नि सबका पालनहारा, हित करनेवाला और मित्रके समान मान्य करनेवाला पृथ्वीपर रहता है। अग्निका पृथ्वी स्थानही है। जो सबका धारण कर सकता है, जो जनताका हित करता है, जो मित्र जैसा व्यवहार कर सकता है, वही योग्य है। **(पुरःसदः शर्मसदः न वीरा पतिजुष्टा इव नारी)**= युद्धस्थलमें आगेमें रहकर युद्ध करनेवाला, घरमें रहकर करनेवाला, अथवा इधर उधर न सरकते हुए अपने देशमें रहकर, उसकी सुरक्षा करनेवाले तथा निष्पाप पतिव्रता नारीके समान जो पृथ्वीपर वंदनीय है।

८५ हे अग्ने ! उस तुझको सब मनुष्य यज्ञ-स्थानमें प्रदीप्त करके इवनके द्वारा पूजित इस अग्निमें बहुतही तेजस्वी बन अरे तू सब पूर्ण दीर्घ आयु देकर धनोंका दाता हमें दान करनेवाला हो।

८६ हे अग्ने ! धनवान् लोग जो यज्ञ करते हैं अन्न प्राप्त करें। ज्ञानी, जो दान करते हैं, वे आयु, प्राप्त करें। युद्ध-स्थानमें युद्ध करनेवाले वीर, अन्न, धन और बल प्राप्त करें। देवोंको करनेके लिये इस अन्नका भाग धारण करें उसका अर्पण करें।

८७ यज्ञकी सेवा करनेकी इच्छा करनेवाली, दुग्धाशयवाली, देवताकी भक्ति करनेवाली, में विचरनेवाली, यज्ञके लिये रखी गौवें दूध लिये दूध देती है। साथ साथ नदियां पर्वतके पाससे दूर दूरसे बहती हैं। इन नदियोंके होते हैं, जिसका वर्णन ऊपरके तीन मंत्रोंमें है।

८८ हे अग्ने ! सुमति चाहनेवाले पवित्र तेरी सहायतासे ही यश प्राप्त किया। उषा रात्रि अन्धेरेसे युक्त बनायी गयी है।

इस तरह काले और लाल रंगोंका मिलाप हुआ। विभिन्न वर्णवाले लोगोंका यज्ञ द्वारा संगठन सूचना यहां दी है।

८९ हे अग्ने ! जिन मानवोंके तुमने तैयार किया है, वे इस सब ओर और यशस्वी बनें। आकाश और अन्तरिक्ष प्रकाशसे भर गया है। सब भुवन

है। जिस तरह छाया पदार्थके साथ रहती है, इस तरह भुवन इस अग्निदेवके साथ संगत हुआ है।

७ हे अग्ने! तेरे द्वारा सुरक्षित हुए हम सब अपने पैरोंसे के घोड़ोंका पराभव करेंगे, अपने नेताओंके द्वारा शत्रुके ओंको जीतेंगे, अपने वीरोंसे शत्रुके वीरोंको जीत जायेंगे। अपने पितृपितामहोंके धनोंके स्वामी बनकर, विद्वान्के ज्ञानी होकर सौ वर्षकी दीर्घ आयु प्राप्त करेंगे।

११ हे विधाता अग्निदेव! ये सूक्त तेरे मन और हृदयको हों। तेरे उत्तम नेतृत्वसे हम धनोंको प्राप्त करेंगे और का अच्छा उपयोग भी कर सकेंगे। तथा प्रभुके भक्तका बढ़ायेंगे।

ये मंत्र सरल और स्पष्ट हैं, इसलिये ८५-९१ तकके ७ ोंका विशेष स्पष्टीकरण, आवश्यकता न होनेके कारण, नहीं या है।

यहां नवम सूक्त समाप्त हुआ है।

सोमरसका पान

पराशर ऋषिका दसवां सूक्त सोमदेवताका है। यह सूक्त ग्म मण्डलके ९७ वे सूक्तका एक भाग, अर्थात् ३१ से ४४ के १४ मंत्र, हैं। इसका अर्थ पूर्व स्थानमें दिया है, परंतु शेष मंत्रभागपर, विचार करनेयोग्य पदोंपर, कुछ टिप्पणी ां देते हैं।

९३ **ते मधुमतीः धाराः प्र अस्रवन्**- सोमसे ठे स्वादवाले रस-प्रवाह निकल रहे हैं। सोम कूटकर उससे स निकाला जा रहा है। (**पूतः अव्यान् वारान् अति एति**) यह रस मेढ़ोके बालोंकी छाननीमेंसे छाना जा रहा है, छानकर दूसरे पात्रमें रखा जाता है। (**गोनां धाम अवसे**) छाननेके बाद यह रस गौओंके स्थानको पवित्र करता है अर्थात् इस रसमें गौओंका दूध मिलाया जाता है, मानो इससे गौओंका स्थान पवित्र हुआ। (**जज्ञानः अर्कैः सूर्यं अपिन्वः**) रस तैयार होनेके बाद वह तेजोंसे सूर्यको भर देता है। मनुष्यमें उत्साह बढ़ाता है।

९३ वह सोमरस यज्ञके मार्गका अनुसरण करता है, यज्ञके धामको प्रकाशित करता है। आनन्द बढ़ानेवाला वह सोमरस कवियोंके स्तोत्रोंके पाठोंके साथ इन्द्रको समर्पित होता है।

९४ **दिव्यः सुपर्णः देववीतौ धाराः पिन्वन् अव चक्षि**— द्युलोकमें अर्थात् पर्वत-शिखरपर उत्पन्न होनेवाला सुंदर पत्तोंवाला सोम यज्ञकर्ममें धारा-प्रवाहसे रस-रूपमें नीचे उतरता या चूता है। (**सोमधानं कलशं आविश**)— सोम रखनेके पात्रमें रखा जाता है। (**सूर्यस्य रश्मिं उप इहि**)— सूर्य-किरणोंमें रखा जावे। सोमरस कलशोंमें भर कर छाना जानेके बाद सूर्य-किरणोंमें रखा जाता है।

९५ **तिस्रः वाचः प्र ईरयति** = तीन सवनोंमें तीन स्वरोंमें स्तोत्र-पाठ करते हैं। (**ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणः मनीषां**) = यज्ञका धारण हो, यज्ञका कर्म सतत चले और ज्ञानकी मनीषा पूर्ण हो। ये दो कार्य अर्थात् कर्म और ज्ञान इन दो मार्गोंका प्रचार होना चाहिये। (**गोपतिं सोमं गावः पृच्छमानाः मन्ति**) = गौओंके पति सोमरसके प्रति गौवें जाती हैं अर्थात् सोमरसमें गौओंका दूध मिलाया जाता है। (**वावशानाः मतयः सोमं यन्ति**) = सोमपानकी इच्छा करनेवाली बुद्धियां सोमके पास जाती हैं। सोमपान करनेकी अथवा सोमका वर्णन करनेकी बुद्धियां जनोंकी हो जाती हैं।

९६ **धेनवः गाव सोमं वावशानाः**- गौवें दूध देनेवाली सोमको चाहती हैं अर्थात् गोदुग्ध सोमरसमें मिलाया जाता है। (**विप्राः मतिभिः सोमं पृच्छमानाः**) = ज्ञानी लोग स्तोत्रोंसे सोमका वर्णन करते हैं। (**सुतः सोमः अज्यमानः पूयते**)- निचोड़ा गया सोमरस छाना जाता है। (**त्रिष्टुभः अर्काः सोमे सं नवन्ते**)— त्रिष्टुप् छन्दके सामगान गाये जाते हैं। यह वर्णन सोमयागके अन्दर सोम तैयार करनेकी पद्धतिका है।

९७ छाना जानेवाला सोमरस ठीक तरह स्वच्छ हो जावे। (**बृहता रवेण इन्द्रं आविश**)— सोमरस बड़े शब्दके साथ, सामगानके बड़े आलापोंके साथ इन्द्रको दिया जावे। (**पुरंधिं जनय**)— बुद्धि बढ़े सोमपानसे बुद्धिको उत्तेजना मिले।

९८ **जागृविः पुनानः सोमः चमूषु आसदत्**-उत्साह बढ़ानेवाला छाना गया सोमरस पात्रोंमें भरा जाता है। (**सुहस्ताः अध्वर्यवः यं सर्पन्ति**) उत्तम हाथवाले अध्वर्यु सोमके पास जाते हैं, उसको ठीक करते हैं।

९९ छाना गया वह सोमरस धारक शक्ति बढ़ाता है। इससे (**ऊती**) उत्तम सुरक्षा होती है। यह सोम स्तोत्रकर्ताको धन देता है।

१०० बढाया जानेवाला और छाना जानेवाला वीर्यवर्धक सोमरस हमारी सुरक्षा करता है। जिस रसके पान करनेके बाद हमारे प्राचीन पूर्वजोंने गौओंकी खोज करनेके लिये शत्रुके कोलोंकी खोज की। रसपानसे उत्साहित होकर वीरोंने शत्रुके स्थानका पता लगाया और शत्रुको परास्त किया।

१०१ **समुद्रः राजा (सोमः)... प्रजाः जनयन् अक्तान्** = जलसे साथ मिला हुआ सोम (वनस्पतियोंका) राजा विविध वीरोंमें उत्साह उत्पन्न करके शत्रुपर आक्रमण करने लगा। सोमरस पीनेके बाद वीरोंमें शत्रुपर हमला करनेका उत्साह उत्पन्न हुआ। **(वृषा सुवानः इन्दुः सोमः अव्ये पवित्रे वव्रृधे)** = बलवर्धक निचोडा गया सोमरस मेंढीकी ऊनकी छाननीपर जलके साथ संमिश्रित होकर बढने लगा। जलका वारंवार छिडकाव करके उसको छान लेनेका कार्य होने लगा।

१०२ बलवर्धक सोमरसने बडे कार्य किये। जलोंके साथ मिश्रित होकर वह देवोंको पीनेके लिये दिया गया। इन्द्रने उसका पान किया। सूर्यकी ज्योति बढने लगी।

१०३ सोम, वायु, मित्र, वरुण, मरुत्, अन्य देव और द्यावापृथिवीको आनंदित करता है।

१०४ **(वृजिनस्य हन्ता)** सोम पाप और कुटिलताका नाश करता है, **(अमीवां मृधः च अपबाधमानः)** रोगों और शत्रुओंका नाश करता है। **(गोनां पयसा अभिश्रीणान्)** गौओंके दूधके साथ मिलाया जाता है। पश्चात् इन्द्र इस रसको पीता है। अन्य ऋत्विज् भी पीते हैं।

१०५ सोमरस मधुरताका द्योतक है। वह वीरता और मानवको बढावे। इन्द्र इस सोमरसको पीवे। यह हमारा धन बढावे।

इन चौदह मंत्रोंमें सोमरस तैयार करनेकी विधि है। सोम कूटनेके बाद वह ऊनकी छाननीसे छाना जाता है, उसमें पानी और गौका दूध मिलाया जाता है। पश्चात् देवताओंको देनेके बाद पिया जाता है। इतनाही वर्णन यहां है। सूक्तके आवश्यक मंत्रभाग ऊपर दिये हैं, शेष मंत्रोंका संक्षिप्त सारांश दिया है। इसमें और अधिक निर्देश नहीं है। सोमरस सिद्ध करनेके ये निर्देश पाठक इन मंत्रोंसे जान सकते हैं। सोमका यह सुंदर काव्य है, जो काव्यकी दृष्टिसे देखनेसे बडा आकर्षक प्रतीत होता है।

यहां पराशर ऋषिका दसवां सूक्त अर्थात् होता है। पराशरका जो तत्त्वज्ञान है, वह इन मंत्रोंका मनन करनेसे पाठकोंको वह ज्ञात हो सकता

परमात्माका दर्शन

पराशर ऋषिके दर्शनमें अग्निके ९१ मंत्र हैं १४ मंत्र हैं। सोमके मन्त्रोंमें सोमका रस निकालने और कुछ भी अन्य बातोंका उल्लेख नहीं मिलता। कि श्लेष आदिसे कुछ बोध मिल भी सके। मंत्रोंमें मानवी जीवनके तत्त्वज्ञानके निर्देश मिलते हैं। इनका निर्देश हमने टिप्पणीमें किया है और स्पष्ट रूपसे उसका ज्ञान होने यहां भी संक्षेपसे प्रकरणसे देते हैं। इस मिषसे यहां ऋषिने परमात्माका भी दर्शन देखिये—

१ प्रथम दो मंत्रोंमें कहा है कि परमात्मा स्थानमें छिपा है, उसकी खोज करनेके लिये उसके चिह्न दीखते हैं, उनके अनुसंधानसे साथ साथ चलना चाहिये, जिससे अन्तमें वह है, तब उसकी सानुग्रह उपासना करनी फिर दूर होने नहीं देना चाहिये। वह सर्वोत्तम है और ठीक तरह परमात्माका सहायक होनेवाली है। इसके अग्निपरक, परक अर्थ पूर्व स्थानमें टिप्पणीमें दिये हैं।

२ तृतीय मंत्रमें कहा है कि जो इस वे सत्यका व्रत पालन करनेसे इस भूमिपर स्वर्गराज्य करेंगे। यह भी ठीकही है, क्योंकि वह ज्ञान सब है और इस ज्ञानसे भूमिपर स्वर्गका राज्य निर्माण सकेगा।

३ **कई बराते ?** (मं. ६) इस परमात्माको कौन सकता है ? अर्थात् इसको रोकनेवाला कोई नहीं है, अतुलनीय सामर्थ्यका वर्णन है।

४ पुष्टि, स्थान, भोजन, शान्ति, उत्साह, बलवर्धक है और सबकी उन्नति करता है, यह मंत्र ५ में कहा है।

५ राजा जैसा शत्रुओंको प्रतिबंध करता है, भक्तोंके सब संकट दूर करता है (मं. ७)

विभुः दूरेभाः—यह विभु अर्थात् सर्वत्र व्यापक है दूरतक प्रकाश देनेवाला है। (मं. ९)

रमणीय घरके समान सबका आश्रयस्थान यह प्रभु है सबका क्षेम अर्थात् कल्याण करता है। (१३)

(अमं दधाति)- यह बल बढाता है, इसीसे सबको प्राप्त होता है।(१७)

(यमः जातं, यमः जनित्वं)— जो भूतकालमें था, जो भविष्यकालमें बननेवाला है और वर्तमानकालमें है वह सब सर्व नियन्ता प्रभुही है। यह सर्वेश्वरवादका तत्त्व यहाँ कहा है। विश्वरूपही प्रभु है यह सिद्धान्त इस ऋषि यहां कहा है। (१८)

१७ (मर्तेषु मित्रः) मर्त्योंमें यह सबका अमर मित्र है, जिसमें यह अविनाशी है। (२१)

२१ यह साधुके समान कल्याणकारी, यज्ञके समान हितकारी, उत्तम ध्यान लगानेयोग्य है। (२२)

२२ यह अजन्मा पृथ्वी अन्तरिक्ष और द्युलोकका धारण करता है। सब विश्वको आधार देनेवाला यही एक है। (२५)

२३ (यः वीरुत्सु प्रजाः प्रसुषु अन्तः महित्वा विरोचते) यह औषधियोंमें और सभी पदार्थों और प्राणियोंमें रहता सर्वव्यापक है। (२९)

२४ (स्थातुः चरथं व्यूर्णोत्)— स्थावर-जंगमोंको सृष्टि करता है। सब सृष्टिको प्रकट करता है (३१)

२५ (विश्वेषां देवानां एकः देवः महित्वा परिबभूव)— सब देवोंमें यह एकही परमात्मदेव ऐसा है कि अपनी महिमासे सबमें श्रेष्ठ और सबका नियामक हुआ है। (३२)

२६ (ते एता व्रता नकिः मिनन्ति)- इस प्रभुके नियम कोई तोड नहीं सकता। (४७)

२७ (स्थातां चरथां च गर्भः)- स्थावरों और जंगमोंमें अन्दर रहता है। (५३)

२८ (विश्वा अमृतानि सश्चा चक्राणः रयीणां रयिपतिः भुवत्)-- सब अमर भावोंको साथ साथ बनानेवाला यह प्रभु सब धनोंका स्वामी हुआ है। (७२)

२९ (हितमित्रः विश्वधायाः देवः)— सबका हितकारी और मित्र यह देव विश्वका धारण करता है।(८४)

संक्षेपसे विश्वाधिपति प्रभुका वर्णन स्पष्ट रूपसे करनेवाले मंत्र इन सूक्तोंमें है। उपनिषद्में कहा है—

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव। एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपंरूपं प्रतिरूपो बहिश्च॥ (कठ उ. २।५।९)

'अग्नि जैसा सब भुवनोंमें प्रविष्ट होकर प्रत्येक रूपमें प्रतिरूप बना है, वैसाही एक सर्वभूतान्तरात्मा प्रत्येक रूपके लिये प्रतिरूप हुआ है और बाहर भी है।' यहां विश्वात्माके लिये अग्निकी ही उपमा दी है। प्रत्येक वस्तुमें अग्नि व्यापक है और उस वस्तुका रूप लेकर रहा है, वैसाही ठीक परमात्मा है, इसलिये परमात्माके लिये अग्निका उत्कृष्ट साम्य है।

सब विश्व दीख रहा है। जो दीख रहा है वह रूपवान् है और रूप अग्निका गुण है, इसलिये अग्नि सब विश्वभर व्यापक है। अग्नि व्यापक होनेसेही सब विश्व दीख रहा है। एकही अखण्ड एक रस अग्नि सब विश्वका सब रूप लिये खडा है। वैसाही परमात्मा है, क्योंकि परमात्मा अग्निका अग्नि है। इसीलिये इन पराशर ऋषिके अग्निसूक्तोंमें उक्त प्रकार परमात्माका वर्णन हुआ है, अग्निका वर्णन करनेसे ही परमात्माका वर्णन करना है क्योंकि—

तत् एव अग्निः। (यजु. ३२।१)

'वह अग्नी अग्नि है।' जो अग्नि दीखता है वह अग्निका रूप है। इस कारण अग्निका वर्णन [illegible] वर्णन होना स्वाभाविक है।

[illegible] अग्नि [illegible], इसलिये अग्निके [illegible] वर्णन है, जो विश्वमें सब [illegible] है।

यहां पराशर ऋषिका दर्शन समाप्त

पराशर ऋषिका दर्शन

विषयसूची

विषय	पृष्ठांक
पराशर ऋषिका तत्त्वज्ञान	१
सूक्तवार मन्त्रसंख्या	,,
(प्रथम मण्डल, द्वादशानुवाक, ३५ से ७३ सूक्त।)	,,
(नवम मण्डल, षष्ठ अनुवाक, २० सूक्त।)	,,
देवतावार मन्त्रसंख्या	,,
वसिष्ठ-वंशमें पराशर ऋषि	८
पराशर ऋषिका दर्शन	९
(प्रथम मण्डल, बारहवाँ अनुवाक)	,,
अग्निः (के १ से ९ तकके ९ सूक्त)	१-१९
(१०) सोमः। (नवम मण्डल, छठा अनुवाक)	२१
अग्निका वर्णन (विवरण)	२२
चोर और भगवान्	,,
ईश्वर-परक अर्थ	२३
अग्निविषयक अर्थ	,,
भूमिपर स्वर्गधाम	,,
पहले सूक्तका विवरण	२५-२६
दूसरे ,, ,,	२६-२८
तीसरे ,, ,,	२८-३०
मानवी उन्नतिका ध्येय और मार्ग	३१
चौथे सूक्तका विवरण	३०-३२
पांचवे ,, ,,	३२-३३
छठे ,, ,,	३३-३४
सातवे ,, ,,	३४-३६
आठवे ,, ,,	३६-३९
नवव ,, ,,	३९-४१
सोमरसका पान	४१
दसवे सूक्तका विवरण	४१-४२
परमात्माका दर्शन	४२

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(९)

गोतम ऋषिका दर्शन

(ऋग्वेदके द्वादश और त्रयोदश अनुवाक)

लेखक

पं० श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,

अध्यक्ष, स्वाध्याय-मण्डल, औन्ध, [जि० सातारा]

संवत् २००३

मूल्य २) रु०

मुद्रक तथा प्रकाशक- वसंत श्रीपाद सातवळेकर, B. A.
भारत-मुद्रणालय, औंध (जि. सातारा)

गोतम ऋषिका तत्त्वज्ञान

वेदमें 'गोतम' ऋषिका स्थान बडा ऊँचा है। रहूगण
। यह पुत्र है। गोतमके दो पुत्र मंत्रोंके द्रष्टा ऋषि हुए
क नोधा ऋषि और दूसरा वामदेव है। नोधा ऋषिका
८५ मंत्रोंका दृश है। यह ऋग्वेदके ऋषि दर्शनोंमें ७
। वामदेवका दर्शन ऋग्वेदका चतुर्थ मण्डलहीं है, जो
, मंत्रोंका है और इसमें वामदेवके मन्त्र करीब करीब
है, और २३ मंत्र अन्योंके उसी चतुर्थ मंडलमें हैं।

रहूगण (१२ मंत्र)
|
गोतम (२१४ मंत्र)
|
(५६६ मंत्र) वामदेव — नोधाः (८५ मंत्र)

इस तरह इन ऋषियोंके देखे मंत्र एकएक पुस्तमें बडे हैं।
यह गोतम ऋषिका दर्शन है इसके मंत्रोंका ब्यौरा यह है—

सूक्तवार मन्त्र-संख्या

ऋग्वेद प्रथममण्डल

त्रयोदशोऽनुवाकः।

सूक्त	देवता	मंत्र-संख्या	
७४	अग्निः	९	
७५	,,	५	
७६	,,	५	
७७	,,	५	
७८	,,	५	
७९	,,	१२	३१
८०	इन्द्रः	१६	
८१	,,	६	
८२	,,	६	
८३	,,	६	
८४	,,	२०	७७

चतुर्दशोऽनुवाकः।

८५	मरुतः	१२	
८६	,,	१०	
८७	,,	६	
८८	,,	६	३४
८९	विश्वे देवाः	१०	
९०	,,	९	१९
९१	सोमः	२३	
९२	उषाः	१५	
,,	अश्विनौ	३	
९३	अग्नीषोमौ	१२	५

ऋग्वेद नवममण्डल

३१	पवमानः सोमः	६	
६१	,,	३	

ऋग्वेद दशममण्डल

२३	वाक्	१	
	कुल-मंत्र-संख्या		२

देवतावार मंत्र-संख्या

देवता	मंत्र-संख्या
१ इन्द्रः	५४
२ अग्निः	४१
३ मरुतः	१०
४ सोमः	२१
५ विश्वे देवाः	१९
६ उषाः	१५
७ अश्विनौ	११
८ अग्नीषोमौ	३
९ वाक्	१
	२१४

[illegible]

[illegible]

इस ऋषिके मंत्रोंमें छंदोंका विभाग [illegible]

१ गायत्री	..	[illegible]
२ त्रिष्टुप्	..	[illegible]
३ जगती	..	[illegible]
४ पंक्ति	..	[illegible]
५ उष्णिक्	..	[illegible]
६ अनुष्टुप्	..	११
७ बृहती	..	२
(बृहती [illegible])		
८ प्रस्तारपंक्ति		२
९ विराड्रूपा		१
१० विराट्स्थाना		१
कुलमंत्रसंख्या		२१४

[illegible]

[illegible] सकता है।

	गायत्री	त्रिष्टुप्	जगती	पंक्ति	उष्णिक्	अनुष्टुप्	बृहती	प्र.पंक्ति	विराड्रूपा	विराट्स्थाना
१ इन्द्रः	३	३	७	२२	३	२	२	..	...	...
२ अग्निः	२५	१३	...	...	२	...	...	...	...	...
३ मरुतः	१०	५	१६	...	...	...	...	२	१	...
४ सोमः	२१	१०	...	...	१	...	...	...	...	...
५ विश्वेदेवाः	८	३	६	...	...	१	...	...	...	१
६ उषाः	...	८	४	...	३	...	...	...	..	...
७ अग्नीषोमौ	२	५	१	...	...	३	...	...	...	...
८ अश्विनौ	...	...	...	...	३	...	...	...	...	...
९ वायुः	...	...	...	...	...	१	...	...	...	...
	७०	४७	३४	३३	१३	११	२	२	१	१

यहां इस ऋषिके मंत्रोंके अग्नि, इन्द्र, मरुत विश्वेदेवा, सोम, उषा, अश्विनौ, अग्नीषोमौ, पवमान सोम और वायु इतने देवताओंके प्रकरण हैं। प्रत्येक प्रकरणमें पहिला सूक्त अधिक मंत्रोंका और आगेके सूक्त कम मंत्रोंके क्रमसे हैं।

पहिले ५ सूक्तोंमें पहिला नौ मंत्रोंका है इसलिये प्रथम आया है। छठा सूक्त अनेक छंदोंवाला और विभिन्न देवताका, विभिन्न अग्निके स्वरूपका है, इसलिये [illegible] रखा है।

इसी तरह इन्द्र सूक्त ५ हैं, सूक्तोंकी मंत्रसंख्या [illegible] ९, ६, ६ है, यहांतक उतरता क्रम स्पष्ट है। [illegible]

र है, इसलिए यह अन्तमें रखा गया है। देवता-
एकएक छन्दके सूक्त प्रथम आते है, इनमें मन्त्र-
अधिकतासे सूक्तक्रम होता है। अनेक छन्दोंवाला सूक्त
वह इनके बाद आता है।

व 'मरुत् प्रकरण' है, इसमें १२;१०;६;६ मंत्रोंवाले
सूक्त उतरते क्रमसेही है।

र्थ प्रकरणमें 'विश्वे देवा' देवता है और इसके दो सूक्त
६ मे भी संख्याके उतरते क्रमसेही है।

तेके सूक्त एकएक देवताके एकएकही हैं। इसलिये
क्रमका संबंधही नहीं हो सकता। एकसे अधिक एक-
के सूक्त हों और उनमें मंत्रसंख्यामें विभिन्नता हो, तब
क्रम हो सकता है। ऋग्वेदमें जहां जहां एक देवताके
। सूक्त एक स्थानपर रखे गये हैं, वहां मंत्रसंख्याके उतरते
ही रखे हैं। देवताभेद अथवा छन्दभेदके कारण इस
में अपवाद हुआ है।

इस नियम क्रमसे आनेसे कोई भी सूक्त मिला तो उसका
, ऋषि, देवता, छन्द और मंत्रसंख्यासे जाना और वह
भी ठीक तरहसे निश्चित किया जा सकता है। जो आज
क्रमसे है वही ठीक आ जायगा।

गोतम ऋषिका वेदोंमें नाम

'गोतम' ऋषिका नाम वेदोंमें कहां आया है सो अब
देखें—

नोधा ऋषिके मंत्रोंमें

तं त्वा वयं पतिमग्ने रयीणां प्रशंसामो मतिभि-
र्गोतमासः। (ऋ. १।६०।५)

इन्द्र ब्रह्माणि गोतमासो अक्रन्। (ऋ १।६१।१६;
अथ. २०।३६।१५)

क्रतायते गोतम इन्द्र नव्यं अतक्षद् ब्रह्म हरि-
योजनाय। (ऋ. १।६२।१३)

अकारि त इन्द्र गोतमेभिः ब्रह्माणि० (ऋ १।६३।१)

गोतम ऋषिके मंत्रोंमें

दधन्निर्गोतमेभिर्ऋतावा विश्वेभिरग्ने अग्नि-
भिर्धनानाम्। (ऋ. १।७७।५)

अधि त्वा गोतमा गिरा जातवेदो विचर्षणे।

तमु त्वा गोतमो गिरा रायस्कामो दुवस्यति ॥२॥
(ऋ. १।७८)

प्र पूतास्तिग्मशोचिषे वाचो गोतमाग्नये।
भरस्व० ॥ (ऋ. १।७९।१०)

सिञ्चन्नुत्सं गोतमाय तृष्णजे। (ऋ. १।८५।११)

ब्रह्म कृण्वन्तो गोतमासो अर्कैः ०।
सस्वर्ह यन्मरुतो गोतमो वः॥ (ऋ. १।८८।४-५)

दिवः स्तवे दुहिता गोतमेभिः। (ऋ. १।९२।७)

कक्षीवान् ऋषिके मंत्रोंमें

क्षरन्नापो न पानाय राये सहस्राय तृष्यते गोत-
मस्य ॥ (ऋ. १।११६।२)

अगस्त्यो (मैत्रावरुणिः) ऋषिके मंत्रोंमें

युवां गोतमः पुरुमीळ्हो अत्रिः दस्रा हवते
अवसे०। (ऋ. १।१८३।५)

अथर्ववेदमें गोतमके मन्त्र

प्रायः ऋग्वेदकेही मंत्र अथर्ववेदमें लिये हैं, देखिये—

ऋग्वेद		अथर्ववेद	मन्त्रसंख्या
१।८६।१		२०।३।२	१
१।८५।६		२०।१३।२	१
(सन्यः) १।५७।१-६	(गोतमः)	२०।२५।१-६	६
१।८३।१-६		२०।२५।१-६	६
१।८४।१३-१५		२०।४२।१-३	३
१।८१।१-३,४-६		२०।५३।१-३,४-६	६
१।८४।७-९		२०।६३।४-६	३
१।८४।१०-१२		२०।१०१।१-३	३
			३५

कुल उनतीस मंत्र गोतम ऋषिके अथर्ववेदमें [illegible]
है। इनमें [illegible] है जो अथर्ववेदमें गोतमके [illegible]
है जो अथर्ववेदमें [illegible] हैं, [illegible]
अथर्वसंहितामें [illegible] है और [illegible]
ही मंत्र है [illegible]

अत्रिवंश ऋषिके मंत्रोंमें

जन्मा दिवो गोतमादित्र [illegible]

अवीवृधन्त गोतमा [illegible]

नोधा ऋषिके मंत्रोंमें

आ त्वायमर्क ऊतये ववर्तति यं गोतमा अजीजनन् ॥

(ऋ.८।८८।४)

अथर्ववेदमें

मृगार ऋषिके मंत्रोंमें

यौ गोतममवथः ॥ (अथ. ४।२९।६)

अथर्वा ऋषिके मंत्रोंमें

भरद्वाज गौतम वामदेव ।० मृडता नः ।

(अथ. १८।३।१६)

इतने ऋषियोंके इन मंत्रोंमें 'गोतम' पद आया है और यहां-के निर्देश मननीय हैं।(वयं गोतमासः त्वा प्रशंसामः) हम गोतम ऋषि तेरी प्रशंसा करते हैं। 'गोतमासः ब्रह्माणि अक्रन्' गोतम ऋषिओंने स्तोत्र किये। (गोतमः नव्यं ब्रह्म अतक्षत्) गोतम ऋषिने यह नया सूक्त तैयार किया। (गोतमेभिः ब्रह्माणि अकारि) गोतम ऋषियोंने अनेक सूक्त किये। (गोतमेभिः अग्निः अस्तोष्ट) गोतमोंके द्वारा अग्नि प्रशंसित हुआ। (गोतम दुवस्यति)गोतम स्तुति करता है। (गोतम! अग्नये वाचः भरस्व)हे गोतम! अग्निके लिये वाणीसे स्तोत्र भर दे। (गोतमासः ब्रह्म कृण्वन्तः) गोतमोंने स्तोत्र किये। (गोतमेभिः दिवः दुहिता स्तवे) गोतमोंने उषाकी स्तुति की। (गोतमः अवसे हवते) गोतम अपनी सुरक्षाके लिये स्तुति करता है। (गोतमाः इन्द्रं अवीवृधन्त) गोतमोंने इन्द्रकी वधाई की। (गोतमा यं अजीजनन्) गोतमोंने स्तोत्रको जन्म दिया। इस तरह पूर्वोक्त मंत्रोंमें गोतमोंने अग्नि, इन्द्र आदि देवताओंके स्तोत्र बनाये ऐसा कहा है। यहां 'अक्रन्, अतक्षत्, अकारि, कृण्वन्तः' ये क्रियापद विचार करनेयोग्य है। 'अतक्षत्' क्रियापद तो लकडीसे रथ निर्माण करनेके समान स्तोत्र निर्माण करनेका भाव बता रहा है।

यहां ' गोतमाः, गोतमासः ' ये पद अनेक ' गोतम' थे ऐसा भाव स्पष्ट रूपसे बता रहे हैं। अर्थात् यह पद गोतमके वंशमें उत्पन्न ऋषियोंका वाचक है। ' गोतम' पदसे मूल 'गोतम' ऋषिका बोध होता है, पर ' गोतमासः' पद गोतम कुलमें उत्पन्न अनेक ऋषियोंका वाचक है। संभव है कि गोतम ऋषिके गुरुकुलमें जो भी विद्वान् होंगे उनका सामान्यसे यह नाम भी होगा।

उक्त मंत्रोंमें कुछ अन्य बातें भी देखनेयोग्य हैं – (तृष्णजे गोतमाय उत्सं सिस्यन्) प्यासे गोतमके पानी पीनेके लिये पानीका हौज भर दिया। (तृष्यते गोतमाय क्षरन्) गोतमको पानी पीनेके लिये मिले इस प्रवाह बहा दिया। (यौ गोतमं अवथः) देवोंने गोतमकी सुरक्षा की थी।

इससे पता लगता है कि गोतम ऋषिके अश्विदेवोंने बडी दूरसे जलकी नहर लाकर दिये, जिसके बाद वहां जलकी विपुलता हो गयी

ब्राह्मणग्रंथोंमें गोतमका

विदेघो ह माथवोऽग्निं वैश्वानरं मुखे तस्य गोतमो राहूगण ऋषिः पुरोहित तस्मै ह स्मामन्त्र्यमाणो न नेन्मेऽग्निर्वैश्वानरो मुखान्निष्पद्यता इति तमृग्भिर्ह्वयितुं दध्रे। वीतिहोत्रं त्वा ॥११॥... स ह नैव प्रतिशुश्राव। घृतन्नवीमह इत्येवाभिव्याहरत्। घृतकीर्तावेवाग्निर्वैश्वानरो मु। तत्र शशाक धारयितुं, सोऽस्य स इमां पृथिवीं प्रापादः ॥१३॥ माथव आस। सरस्वत्यां स तत एव दहन्नभीयायेमां पृथिवीं, तं गोतमश्च विदेघश्च माथवः पश्चाद इमाः सर्वा नदीरतिददाह, गिरेर्निर्धावति, तां हैव नातिददाह, तां तां पुरा ब्राह्मणा न वैश्वानरेणेति ॥१४॥... स होवाच। माथवः, काहं भवानीत्यत एव ते भुवनमिति होवाच, सैषाप्येतर्हि हानां मर्यादा ते हि माथवाः ॥१७॥ वाच। गोतमो राहूगणः कथं नु न माणो न प्रत्यश्रौषीरिति स हे नरो मुखेऽभूत्, स नेन्मे तस्मात्ते न प्रत्यश्रौषमिति ॥१८॥ तथा भूदिति। यत्रैव त्वं घृतन्नवीमह हार्षीस्तदेव मे घृतकीर्तावग्निर्वैश्वानरो मु दुदज्वालीत्तं नाशकं धारयितुं स मे मु रपादीति ॥१९॥ (श. ब्रा. १४।१।१।१०-१९)

प्रातर्गौतमस्य चतुरुत्तरः स्तोमो भवति ।
(श. ब्रा. १४।५।१।१)

' गोतम ऋषिने अग्निष्टोमकी रचना की ' यहां ' प्रातः ' पद अग्निष्टोमका वाचक है । इस यज्ञका विधान सिद्ध करनेमें गोतम ऋषि मुख्य है । इस तरह ब्राह्मण और आरण्यक ग्रंथोंमें गोतम ऋषिका वर्णन बडे गौरवके साथ आया है । पुराणोंमें इसका नाम ' गौतम ' हुआ है, इसका वर्णन वहां जो मिलता है वह ऐसा है—

गौतम

अरुण, आग्निवेश्य, उद्दालक आरुणि, कुशि, साति तथा हारिद्रुमत इन ऋषियोंका पैतृक नाम अथवा गोत्र गौतम है । शांडिल्य, आनभिम्लात, भारद्वाज, आग्निवेश्य, मांटि सैतव तथा गार्ग्य ये सब गौतमके शिष्य हैं ।

महाभारतमें गौतम नाम कई स्थानोंमें पाया जाता है ।

स दीर्घतमा नाम शापादृषिरजायत ॥२२॥
ममत्वो वेदवित्प्राज्ञः पत्नीं लेभे स विद्यया २३
तरुणीं रूपसंपन्नां प्रद्वेषी नाम ब्राह्मणीम् ।
स पुत्रान्जनयामास गौतमादीन्महायशाः ॥२४॥
(म. भा. आ. १०४)

गौतमके पिताका नाम दीर्घतमा । दीर्घतमा उचथ्य ऋषिके पुत्र थे । ममत्वके छोटे बन्धु देवोंके पुरोहित बृहस्पतिके द्वारा अपहरण होनेसे दीर्घतमा जन्मान्ध हुये । वे वेदज्ञ, प्राज्ञ, बलवान तथा बुद्धिमान् थे । प्रद्वेषी नामक ब्राह्मणीके साथ दीर्घतमाका विवाह हुआ । प्रद्वेषीने कुलका यश बढानेवाले गौतम आदि कई पुत्रोंको जन्म दिया ।

यही कथा अन्य स्थानमें अन्य प्रकारसे पायी जाती है ।

स शापादृषिमुख्यस्य दीर्घं तम उपेयिवान् ।
स हि दीर्घतमा नाम नाम्ना चासीदृषिः पुरा ५४
आनुपूर्व्येण विधिना क्रमेणेति पुनः पुनः ।
स चक्षुष्मान्मनश्चक्षुर्गौतमश्चाभवत्पुनः ॥५६॥
(म. भा. शां. ३४१)

उशनसके शापसे जन्मान्ध होनेपर दीर्घतमा ऋषिने मनोवाक्, देहके संयमसे पुनः दृष्टिसे संपन्न हुये और इस कारण गौतम इस नामसे पहचाने जाने लगे ।

शरद्वतस्तु दायादमहल्या संप्रसूयत ।
शतानन्दमृषिश्रेष्ठं तस्यापि सुमहातपसः
(रामा. बा. ४९)

वैवस्वत मन्वन्तरके सप्तर्षियोंमेंसे गौतम एक । आपका नाम शरद्वत गौतम ऐसा भी पाया जाता है । प्रसिद्ध सती अहल्या आपकी पत्नी थी । इन्हें शतानन्द पुत्र हुवा । विद्वान् होनेपर शतानन्द जनकका पुरोहित हुवा ।

गौतम तथा आङ्गिरस इन दोनोंका दीर्घकाल संवाद हुआ था । महाभारतके अनुशासन पर्वके अध्यायमें भीष्मने उस संवादका अनुवाद किया है ।

महाभारतमें आपके विषयमें और एक कथा है—

कश्यपोऽत्रिर्वसिष्ठश्च भरद्वाजोऽथ गौतमः ।
विश्वामित्रो जमदग्निः साध्वी चारुन्धती च सा ॥
ते च सर्वे तपस्यन्तः पुरा चेरुर्महीमिमाम् ।
समाधिनोपशिक्षन्तो ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥
अथाभवदनावृष्टिर्महती कुरुनन्दन ।
कृच्छ्रप्राणोऽभवद्यत्र लोकोऽयं वै क्षुधातुरः
(म. भा. अनु.)

कश्यप, अत्रि, वसिष्ठ, भरद्वाज, गौतम, विश्वामित्र, जमदग्नि इत्यादि ऋषि और वसिष्ठपत्नी अरुन्धती, इन सबके द्वारा सनातन लोक पानेके लिये इस पृथ्वीपर तपस्या करते हुये विचरते थे । अनन्तर अनावृष्टि होनेके कारण लोग क्षुधातुर होनेके कारण बडे दुर्बल हुये ।

पृथ्वीनाथ शैव्य वृषादर्भिने उन क्षेत्र पाये हुये ऋषियोंको देखा और यह बोला—

वृषादर्भिरुवाच—
प्रतिग्रहस्तारयति पुरुषं प्रतिगृह्यताम् ।
मयि यद्विद्यते वित्तं तद्गृह्णध्वं तपोधनाः ॥

' हे तपस्विगण, दान लेनेसे पुरुष दूसरोंको तारता है, इसलिये आप लोग पुष्टिके लिये प्रतिग्रह ग्रहण करें । मेरे पास जो धन है, उसे आप मांगिये । '

परन्तु उन निर्लोभी ऋषियोंके मनमें यह बात नहीं जची । उन्होंने उत्तर दिया ।

ऋषय ऊचुः —
राजन्प्रतिग्रहो राज्ञां मध्यास्वादो विगर्हितः ।
तज्जानानः कस्मात्त्वं कुरुषे नः प्रलोभनम्
(म. भा. शां.)

महाराज, राजाओंका प्रतिग्रह मधुरकी भाँति स्वादयुक्त
किन्तु वह विषके समान है। तुम उसे जानते हुवे-भी
स लिये लोभ दिखा रहे हो?' ऐसा कहकर गौतमादि
ने अन्यत्र गमन किया।

इनके उत्तंक नामक एक प्रिय शिष्य थे। उनके गुरुभक्ति-
न्न हुवे हुवे गौतम उन्हे बोले—

त्थं च परितुष्टं मां विजानीहि भृगूद्वह।
वा षोडशवर्षो हि यद्यद्य भविता भवान् ॥२२॥
दद्यामि पत्नीं कन्यां च स्वां ते दुहितरं द्विज।
तामृतेऽङ्गना नान्या त्वत्तेजोऽर्हति सेवितुम् २३

हे मुनियोंमें श्रेष्ठ! तुम्हारी भक्तिसे मैं संतुष्ट हुआ हूं। हे
द्, आज यदि तुम सोलह वर्षोंके युवक होते, तो मैं अपनी
। तुम्हे पत्नी रूपसे दान करता। इस कन्याके अतिरिक्त
। कोई भी तुम्हारे तेजको धारण करनेमें समर्थ नहीं है।

—

स्तां प्रतिजग्राह युवा भूत्वा यशस्विनीम्।
गा चाभ्यनुज्ञातो ... ... ॥२४॥
(म. भा. आश्व. ५६)

इ मुनिने युवा होकर गुरुकी आज्ञानुसार उस यशस्विनी
। ग्रहण किया। गौतमके साथ यम तथा गौतमका संवाद

—

रियात्रं गिरिं प्राप्य गौतमस्याश्रमो महान्।
वास गौतमो ... ... ॥४॥
नुग्रतपसा युक्तं भवितं सुमहामुनिम् ॥ ५ ॥
पयातो नरव्याघ्र लोकपालो यमस्तदा।
मपश्यत्सुतपसमृषिं वै गौतमं तदा ॥ ६ ॥
स तं विदित्वा ब्रह्मर्षिर्यममागतमोजसा।
ञ्जलिः प्रयतो भूत्वा उपविष्टस्तपोधनः ॥ ७ ॥
तं धर्मराजो दृष्ट्वैव सत्कृत्यैव द्विजर्षभम्।
स्वमब्रवत धर्मेण क्रियतां किमिति ब्रुवन् ॥ ८ ॥

गौतम उवाच—

मातापितृभ्यामानुण्यं किं कृत्वा समवाप्नुयात्।
कथं च लोकानाप्नोति पुरुषो दुर्लभान्शुचीन् ९

यम उवाच—

तपःशौचवता नित्यं सत्यधर्मरतेन च।
मातापित्रोरुदारः पूजनं कार्यमञ्जसा ॥ १० ॥

अश्वमेधैश्च यष्टव्यं बहुभिः स्वाप्तदक्षिणैः।
तेन लोकानवाप्नोति पुरुषोऽद्भुतदर्शनान् ॥११॥
(म. भा. शा. १२९)

'पारियात्र पर्वतके समीप गौतमका विशाल आश्रम था। गौतम उसमें रहता था। उस महामुनिकी उग्र तपस्या देखकर लोकपाल यम उनके निकट गया और उस समय गौतम ऋषिको अत्यन्त कठोर तपश्चर्या करनेमें तत्पर देखा। तपस्वी ब्रह्मर्षि गौतम तेजयुक्त और प्रभावशाली यमको आया हुवा देखकर हाथ जोडकर उठकर खडे हुवे। धर्मराज यमने उन्हे देखतेही धर्मके अनुसार सत्कार करते हुवे उनसे पूछा "मैं आपका क्या कार्य करूं?"

गौतम बोले, "क्या करनेसे पुरुष मातापितासे उऋण होता है और किस प्रकार पवित्र तथा दुर्लभ लोगोंको प्राप्त करता है?

यम बोले, 'तपस्या और पवित्र आचारयुक्त तथा नियम और सत्य धर्ममें रत पुरुष सदा मातापिताकी पूजा करके उनका उऋण होता है। तथा बहुतसी दक्षणासे युक्त अश्वमेध यज्ञ करनेसे अद्भुत तथा दुर्लभ लोगोंको प्राप्त है।'

गौतमके उदार स्वभावके विषयमें नारदीय महापुराणमें एक कथा उपलब्ध है।

तपस्यन्तो मुनेस्तस्य द्वादशाब्दमवर्षणम्॥
बभूव घोरं विधिजे सर्वसत्त्वक्षयंकरम्॥ ६॥
तस्मिन्युगे तु दुर्भिक्षे बुभुक्षामा मुनयोऽखिलाः।
नाना देशेभ्य आयाता गौतमस्याश्रमं शुभम्॥
चक्रुर्विज्ञापनं तस्य गौतमस्य तपस्यतः।
देहि नो भोजनं येन प्राणास्त्यक्ष्यन्ति वर्षासु॥८॥

गौतम उवाच—

तिष्ठध्वं मुनयः सर्वे ममाश्रमसमीपतः।
भोजनं वः प्रदास्यामि यावद्भिक्षासमाहृताः॥९॥

(ब्र. भा. पू. ६. ५९)

[illegible] गौतम [illegible] के निकट [illegible] करते रहे। [illegible] एक [illegible] और [illegible] दया। उस [illegible] के [illegible] के [illegible] करनेके [illegible] गौतमके [illegible] करने [illegible] ।"

गौतम बोले, 'चिन्ता करनेका कारण नहीं है। जबतक अकाल रहेगा तबतक आप सब मेरे निकट रहिये। मैं आपके भोजनादिका प्रबंध करूंगा।'

बारह वर्षोंतक मुनिगण वहीं रहे। वर्षा होकर पृथ्वी धान्यादिसे संपन्न होनेपर प्रसन्न चित्तसे गौतमकी शुभ कामना करते हुवे वे वहांसे अपने अपने देश गये।

इस स्थानमें गौतमको मायादेवीका पुत्र कहा है। विचारक इस नामके बारेमें विचार करें।

गौतम एक धर्मशास्त्रकार थे। वे सामवेदकी राणायणी शाखाके नौ उपशाखाओंमें एक शाखाके अनुयायी थे। लाट्यायनीय श्रौतसूत्रमें—

उत्तमयोरिति गौतमः ॥१७॥

इस सूत्रकी टीका करते हुवे गौतमको आचार्य कहा है। सामवेदके गोभिल गृह्यसूत्रमें भी कई जगह गौतमका नाम आया है। गौतमस्मृति गद्यमय ग्रन्थ है। इसमें स्वयं ग्रन्थकारने किया हुवा अथवा अन्य किसीका एक भी श्लोक नहीं है। इस ग्रन्थके अट्ठाईस भाग हैं। कलकत्तामें छपी हुई गौतमस्मृतिमें उनत्तीस भाग हैं। परन्तु हरदत्तकी मिताक्षरामें इस उनत्तीसवे भागका उल्लेख न होनेसे संभवतः वह भाग प्राक्षिप्त है।

गौतम धर्मसूत्रमें व्यवहार, उपनयनादि संस्कार, विवाह तथा उसके प्रकार, प्रायश्चित्त, राजधर्म, स्त्रियोंके कर्तव्य, नियोग, महापातक तथा उपपातक, उनके प्रायश्चित्त, कृच्छ्र, अतिकृच्छ्र इत्यादिका विचार किया हुवा है। तथा इसमें संहिता, ब्राह्मण, पुराण इत्यादि ग्रंथोंके उल्लेख कई जगह किये हैं।

बौधायन धर्मसूत्रमें गौतम धर्मशास्त्रका उल्लेख पहलीबार किया हुवा पाया जाता है। वसिष्ठ धर्मशास्त्र, अपरार्क, तंत्रवार्तिक, शांकरभाष्य, इत्यादिमें भी गौतम धर्मशास्त्रका उल्लेख किया गया है। मनुस्मृतिमें गौतमका—

शूद्रापेदी पतत्यत्रेरनुत्यतनयस्य च।

इस प्रकार उत्थ्यतनय इस नामसे उल्लेख किया हुवा है। [illegible] ग्रन्थमें भी एक जगह गौतमका सुरापानका निषेध करके उल्लेख है। गौतमका नाम वसिष्ठ तथा बौधायन [illegible] कई विद्वानोंका मत है कि गौतम वसिष्ठ और बौधायन दोनों। कई विद्वानोंका मत है कि गौतम धर्म शास्त्रमें 'यवन' शब्दका उपयोग किया [illegible] देता है। और भारतको 'यवन' शब्दका [illegible] न्दरके आक्रमणके बाद (ख्रिस्ताब्दपूर्व ३२२ [illegible] गौतमका काल इस आक्रमण कालके बाद मानना परन्तु यह मत असंगत है। स्वयं गौतमही यवन 'क्षत्रिय और शूद्रीके संयोगसे जन्म पाई हुई [illegible] देते हैं। केवल 'यवन' शब्दपरसे गौतमका [illegible] करना योग्य नहीं है। तथापि कई ऐसा मानते हैं ६००–७०० वर्षके मध्यमें यह गौतम काल होना पर यह भी विवादास्पद है। गौतम धर्मसूत्रपर [illegible] क्षरा नामक ठीका, और मस्करी तथा असहाय इन [illegible] भाष्य लिखे हैं। परन्तु ये तीनों अर्वाचीन ग्रंथ हैं। स्मृतिचन्द्रिका इत्यादि ग्रन्थोंमें **लघुगौतम**, तथा दत्तक मीमांसामें **बृहद्गौतम** और उल्लेख है। जीवानन्दने १७०० श्लोकोंकी गौत [illegible] की है। श्रीकृष्णने धर्मराजको चातुर्वर्ण्य-धर्म-[illegible] लिये वह स्मृति कथन की, ऐसा उस स्मृतिसे ज्ञात होता है। परन्तु संभवतः वह स्मृति [illegible] मेधिक पर्वसे ली गई होगी। क्योंकि [illegible] अन्य कई ग्रन्थोंमें इस स्मृतिके श्लोक आये हुवे हैं। गौतमके नामपर और भी आह्निकसूत्र, दान चन्द्रिका, न्यायसूत्र, गौतमी शिक्षा इत्यादि [illegible] हैं। पर ये सब वैदिक कालके गौतम ऋषिके हैं कठिन है।

अब कुछ अन्य गौतमोंका वर्णन करते हैं—

द्वितीय गौतम— इस गौतमके बारेमें महा [illegible] पर्वमें—

आसन्पूर्वयुगे राजन्मुनयो भ्रातरस्त्रयः।
एकतश्च द्वितश्चैव त्रितश्चाग्निसमप्रभाः॥
तेषां तु तपसा प्रीतो नियमेन दमेन च [illegible]
अभवद्गौतमो नित्यं पिता धर्मरतः सदा॥
(म. भा. आ. [illegible]

'पूर्वकालमें सूर्यके सदृश तेजस्वी ऐसे एकत, द्वित त्रित ये तीन बन्धु थे। उनके पिताका नाम गौतम [illegible] उल्लेख है।

तृतीय गौतम— इस गौतमको विश्वकर्मा नामक [illegible]

ने गौतमने अपनी दुराचारी माताका वध करनेको
रन्तु चिरकाली विचारवान् होनेके कारण उसके हाथसे
न हो सका। यह कथा महाभारत शान्तिपर्वके २६६वे
में विस्तारसे कही हुई है।

तुर्थ गौतम— इस गौतमके बारेमें भागवतमें—

त्वादिषु द्वादशसु भगवान्कालरूपधृक् ।
कतन्त्राय चरति पृथग्द्वादशभिर्गणैः ॥३२॥
तार्चा गौतमश्चेति तपोमासं नयन्त्यमी ॥३९॥
(भा. १२।११)

पर्यन् 'गौतमादि भगवान् सूर्यके साथ भिन्नभिन्न मासोंमें
करते हैं' ऐसा कहा है।

ाम गौतम- महाभारतके शान्तिपर्वमें १६८ से लेकर
६६ एक दुराचारी गौतमकी कथा विस्तारसे कही हुई है।

ह गौतम- यह गौतम अत्रिकुलका एक ब्रह्मर्षि था।
बारेमें नीचे लिखी हुई कथा पाई जाती है।
क बार अत्रि ऋषि वैन्य राजाके यज्ञमें जाकर उसकी
करने लगे।

अत्रिरुवाच—

धन्यस्त्वमीशश्च भुवि त्वं प्रथमो नृपः ॥१३॥
हे राजन्, तुम धन्य हो। तुम ईश्वर सदृश हो। पृथ्वीपर
राजा तुमही हो।'

इस यज्ञमें बैठे हुये गौतम-नामा ऋषि क्रुद्ध होकर उन्हें

वैनय पुनर्मूया न ते प्रजा समादिता ।
नः प्रथमे स्थाता महेन्द्रो वै प्रजापतिः ॥१५
(म. भा. ५. १४५)

अत्रि ऋषि दक्षिणा पानेके लिये राजाकी स्तुति कर रहे
ऐसी आशंका हुई है, वैसा प्रजापति है। तुम ऐसे
कर मत करो। मेरी समझमें तुम्हारी बुद्धि मारी गई
है।' इस प्रकार होनेमें चर्चा छिड़नेपर अत्रिने उस
दिये उत्तर स्वयमेव दिया।

इसके बाद—

वै प्रथितो धर्मः प्रजानां पालनेऽपि च ।
स एव राजा पुरुषः स धाता स बृहस्पतिः ॥२६
(म. भा. ५. १४५)

'राजाही धर्म तथा प्रजापति है। इसीको इन्द्र, रुद्र, धाता, बृहस्पति इत्यादि नामोंसे पुकारते हैं। अतएव जो राजाकी स्तुति करता है, उसकी निन्दा न करनी चाहिये।' सनत्कुमारका यह वचन सुनकर गौतम ऋषि चुप हुए।

इस गौतमका उल्लेख और एक जगह उपलब्ध है। सावित्रीके पति सत्यवान्के पिता द्युमत्सेन अपने पुत्रके मृत्युकी आशंका कर शोक कर रहे थे। उन्हें सनझाते हुये गौतमने कहा—

अनेन तपसा वेद्मि सर्वं परिचिकीर्षितम् ।
सत्यमेतन्निबोधध्वं म्रियते सत्यवानिति ॥१३॥
(म. भा. व. २९८)

'अर्थात् मैं अपने तपो बलसे भविष्य तथा वर्तमान देख रहा हूं। आप विश्वास कीजिये कि सत्यवान् जीवित है।' सावित्री गौतमके भविष्यके अनुसार सत्यवान् [illegible]

गौतम और अहल्या

गौतम ऋषि और अहल्याकी कथा [illegible] तथा अन्यान्य पुराणोंमें है। [illegible] कथामें न्यूनाधिक भिन्नता है। इसे [illegible] विचार करना नहीं है, [illegible] स्थानके पते हम यहां देते हैं—

१ वाल्मीकीय रामायण [illegible] उत्तर-काण्ड स. २७।
२ शिवपुराण अ. २१
३ गणेशपुराण १.३०, १.३१
४ स्कन्दपुराण २ १३.[illegible]
५ पद्मपुराण सृ. ५५
६ स्कन्दपुराण
७ अध्यात्मरामायण, अ. ७
८ आनंदरामायण सर्ग. ३
९ [illegible]

मोक्ष चाहे, ' जिज्ञासा करनेका कारण नहीं है। जबतक एकाग्र रहेगा तबतक आप सब मेरे निकट रहिये। मैं आपके मोक्षका उपदेश करूंगा। '

बारह वर्षोंतक मुनिगण वहीं रहे। वर्षा होकर पृथ्वी धान्यादिसे संपन्न होनेपर पश्चात् जिससे गौतमकी शुभ कामना करते हुये वे वहांसे अपने अपने देश गये।

इस स्थानमें गौतमको माण्डव्यका पुत्र कहा है। विचारक इस नामके बारेमें विचार करें।

गौतम एक धर्मशास्त्रकार थे। वे सामवेदकी राणायणी शाखाके नौ उपशाखाओंमें एक शाखाके अनुयायी थे। लाट्यायनीय गौतमसूत्रमें—

उत्तमयोरिति गौतमः ॥२७॥

इस सूत्रकी टीका करते हुये गौतमको आचार्य कहा है। सामवेदके गोभिल गृह्यसूत्रमें भी कई जगह गौतमका नाम आया है। गौतमस्मृति गद्यमय ग्रन्थ है। इसमें स्वयं ग्रन्थकारने किया हुवा अथवा अन्य किसीका एक भी श्लोक नहीं है। इस ग्रन्थके अट्ठाईस भाग हैं। कलकत्तामें छपी हुई गौतमस्मृतिमें उनतीस भाग हैं। परन्तु हरदत्तकी मिताक्षरामें इस उनतीसवे भागका उल्लेख न होनेसे संभवतः वह भाग प्रक्षिप्त है।

गौतम धर्मसूत्रमें व्यवहार, उपनयनादि संस्कार, विवाह तथा उसके प्रकार, प्रायश्चित्त, राजधर्म, स्त्रियोंके कर्तव्य, नियोग, महापातक तथा उपपातक, उनके प्रायश्चित्त, कृच्छ्र, अतिकृच्छ्र इत्यादिका विचार किया हुवा है। तथा इसमें संहिता, ब्राह्मण, पुराण इत्यादि ग्रंथोंके उल्लेख कई जगह किये हैं।

बौधायन धर्मसूत्रमें गौतम धर्मशास्त्रका उल्लेख पहलीबार किया हुवा पाया जाता है। वसिष्ठ धर्मशास्त्र, अपरार्क, तंत्रवार्तिक, शांकरभाष्य, इत्यादिमें भी गौतम धर्मशास्त्रका उल्लेख पाया जाता है। मनुस्मृतिमें गौतमका—

शूद्रावेदी पतत्यत्रेरुतथ्यतनयस्य च।

इस प्रकार उतथ्यतनय इस नामसे उल्लेख किया हुवा है।

[illegible] एक जगह गौतमका सुरापानका निषेध कर[illegible]। गौतमका नाम वसिष्ठ तथा बौधायन [illegible] प्रतीत होता है कि गौतम वसिष्ठ और [illegible]ीन होंगे। कई सज्जनोंका मत है कि गौतम

धर्म शास्त्रमें ' यवन ' शब्दका उपयोग किया है। और भारतको ' यवन ' शब्दका [illegible]रके आक्रमणके बाद (ख्रिस्ताब्दपूर्व ३२२ गौतमका काल इस आक्रमण कालके बाद मानते परन्तु यह मत अमान्य है। स्वयं गौतमही यवन ' क्षत्रिय और शूद्रीके संयोगसे जन्म पाई हुई देते हैं। केवल ' यवन ' शब्दपरसे गौतमका करना योग्य नहीं है। तथापि कई ऐसा मानते हैं ४००–७०० वर्षके मध्यमें यह गौतम काल होना पर यह भी विवादास्पद है। गौ[illegible] धर्मसू[illegible] क्षरा नामक टीका, और मस्करी तथा असहाय भाष्य लिखे हैं। परन्तु ये तीनों अर्वाचीन ग्रंथ हैं। स्मृतिचन्द्रिका इत्यादि ग्रन्थोंमें श्लोक गौतम, तथा दत्तक मीमांसामें बृहद्गौतम और उल्लेख है। जीवानन्दने १७०० श्लोकोंकी गौतमस्मृति की है। श्रीकृष्णने धर्मराजको चातुर्वर्ण्य-धर्म-[illegible] लिये वह स्मृति कथन की, ऐसा उस स्मृतिसे ज्ञात होता है। परन्तु संभवतः वह स्मृति महाभारतके मेधिक पर्वसे ली गई होगी। क्योंकि पराशरमाधवीय अन्य कई ग्रन्थोंमें इस स्मृतिके श्लोक हुवे हैं। गौतमके नामपर और भी आह्निकसूत्र, दान चन्द्रिका, न्यायसूत्र, गौतमी शिक्षा इत्यादि ग्रंथ हैं। पर ये सब वैदिक कालके गौतम ऋषिके हैं, कठिन है।

अब कुछ अन्य गौतमोंका वर्णन करते हैं—

द्वितीय गौतम— इस गौतमके बारेमें [illegible] पर्वमें—

आसन्पूर्वयुगे राजन्मुनयो भ्रातरस्त्रयः ॥७॥
एकतश्च द्वितश्चैव त्रितश्चादित्यसन्निभाः ॥८॥
तेषां तु तपसा प्रीतो नियमेन दमेन च ॥९॥
अभवद्गौतमो नित्यं पिता धर्मरतः सदा
(म. भा. अ. ११)

' पूर्वकालमें सूर्यके सदृश तेजस्वी ऐसे एकत, द्वित त्रित ये तीन बन्धु थे। उनके पिताका नाम गौतम था,' उल्लेख है।

तृतीय गौतम– इस गौतमको चिवकुली नानक पुत्र था

गौतम बोले, ' चिन्ता करनेका कारण नहीं है। जबतक अग्नि रहेगा तबतक आप सब मेरे निकट रहिये। मैं आपके भोजनादिका प्रबंध करूंगा। '

बारह वर्षोंतक मुनिगण वहीं रहे। वर्षा होकर पृथ्वी धान्यादिसे संपन्न होनेपर प्रसन्न चित्तसे गौतमकी शुभ कामना करते हुवे वे वहांसे अपने अपने देश गये।

इस स्थानमें गौतमको मायादेवीका पुत्र कहा है। विचारक इस नामके बारेमें विचार करें।

गौतम एक धर्मशास्त्रकार थे। वे सामवेदकी राणायणी शाखाके नौ उपशाखाओंमें एक शाखाके अनुयायी थे। लाट्यायनीय श्रौतसूत्रमें—

उत्तमयोरिति गौतमः ॥१७॥

इस सूत्रकी टीका करते हुवे गौतमको आचार्य कहा है। सामवेदके गोभिल गृह्यसूत्रमें भी कई जगह गौतमका नाम आया है। गौतमस्मृति गद्यमय ग्रन्थ है। इसमें स्वयं ग्रन्थकारने किया हुवा अथवा अन्य किसीका एक भी श्लोक नहीं है। इस ग्रन्थके अट्ठाईस भाग हैं। कलकत्तामें छपी हुई गौतमस्मृतिमें उनत्तीस भाग हैं। परन्तु हरदत्तकी मिताक्षरामें इस उनत्तीसवे भागका उल्लेख न होनेसे संभवतः वह भाग प्राक्षिप्त है।

गौतम धर्मसूत्रमें व्यवहार, उपनयनादि संस्कार, विवाह तथा उसके प्रकार, प्रायश्चित्त, राजधर्म, स्त्रियोंके कर्तव्य, नियोग, महापातक तथा उपपातक, उनके प्रायश्चित्त, कृच्छ्र, अतिकृच्छ्र इत्यादिका विचार किया हुवा हैं। तथा इसमें संहिता, ब्राह्मण, पुराण इत्यादि ग्रंथोंके उल्लेख कई जगह किये हैं।

बौधायन धर्मसूत्रमें गौतम धर्मशास्त्रका उल्लेख पहलीबार किया हुवा पाया जाता है। वसिष्ठ धर्मशास्त्र, अपरार्क, तंत्रवार्तिक, शांकरभाष्य, इत्यादिमें भी गौतम धर्मशास्त्रका उल्लेख पाया जाया है। मनुस्मृतिमें गौतमका—

शूद्रावेदी पतत्यत्रेरुतथ्यतनयस्य च।

इस प्रकार उतथ्यतनय इस नामसे उल्लेख किया हुवा है। भविष्य पुराणमें भी एक जगह गौतमका सुरापानका निषेध करनेवाला करके उल्लेख है। गोतमका नाम वसिष्ठ तथा बौधायन के ग्रन्थोंमें आनेसे यह प्रतीत होता है कि गौतम वसिष्ठ और बौधायनके पूर्व कालीन होंगे। कई सज्जनोंका मत है कि गोतम धर्म शास्त्रमें ' यवन ' शब्दका उपयोग किया हुवा दिखता है। और भारतको ' यवन ' शब्दका परिचय अलक्षेन्दरके आक्रमणके बाद (ख्रिस्ताब्दपूर्व ३२२ वर्ष) होने गौतमका काल इस आक्रमण कालके बाद मानना पडता है परन्तु यह मत अयुक्त है। स्वयं गौतमही यवन शब्दका अ 'क्षत्रिय और शूद्रीके संयोगसे जन्म पाई हुई संतति ' ऐसा देते हैं। केवल ' यवन ' शब्दपरसे गौतमका काल निश्चय करना योग्य नहीं है। तथापि कई ऐसा मानते हैं कि ख्रि. पू. ६००–७०० वर्षके मध्यमें यह गौतम काल होना संभवनीय है पर यह भी विवादास्पद है। गौतम धर्मसूत्रपर हरदत्तने मिताक्षरा नामक टीका, और मस्करी तथा असहाय इन दो विद्वानोंने भाष्य लिखे हैं। परन्तु ये तीनों अर्वाचीन ग्रंथ हैं। मिताक्षरा, स्मृतिचन्द्रिका इत्यादि ग्रन्थोंमें **श्लोक गौतम**, और अपरार्क तथा दत्तक मीमांसामें **बृहद्गौतम** और **वृद्धगौतमके** उल्लेख है। जीवानन्दने १७०० श्लोकोंकी गौतमस्मृति प्रकाशित की है। श्रीकृष्णने धर्मराजको चातुर्वर्ण्य-धर्म-व्यवस्था कहनेके लिये वह स्मृति कथन की, ऐसा उस स्मृतिके उल्लेखपरसेही ज्ञात होता है। परन्तु संभवतः वह स्मृति महाभारतके आश्वमेधिक पर्वसे ली गई होगी। क्योंकि पराशरमाधवीय तथा अन्य कई ग्रन्थोंमें इस स्मृतिके श्लोक आश्वमेधिकपर्वसे लिये हुवे हैं। गौतमके नामपर और भी आह्निकसूत्र, पितृमेधसूत्र, दान चन्द्रिका, न्यायसूत्र, गौतमी शिक्षा इत्यादि ग्रंथ उपलब्ध हैं। पर ये सब वैदिक कालके गौतम ऋषिके हैं ऐसा कहना कठिन है।

अब कुछ अन्य गौतमोंका वर्णन करते हैं—

द्वितीय गौतम— इस गौतमके बारेमें महाभारतके शल्य पर्वमें—

आसन्पूर्वयुगे राजन्मुनयो भ्रातरस्त्रयः ॥७॥
एकतश्च द्वितश्चैव त्रितश्चादित्यसन्निभाः ॥८॥
तेषां तु तपसा प्रीतो नियमेन दमेन च ॥९॥
अभवद्गौतमो नित्यं पिता धर्मरतः सदा ॥१०॥
(म. भा. शा. ३६)

' पूर्वकालमें सूर्यके सदृश तेजस्वी ऐसे एकत, द्वित तथा त्रित ये तीन बन्धु थे। उनके पिताका नाम गौतम था, ' ऐसा उल्लेख है।

तृतीय गौतम– इस गौतमको चिरकाली नामक पुत्र था।

ये गौतमने अपनी दुराचारी माताका वध करनेको
परन्तु चिरकाली विचारवान् होनेके कारण उसके हाथसे
न हो सका। यह कथा महाभारत शान्तिपर्वके २६६वे
विस्तारसे कही हुई है।

र्य गौतम— इस गौतमके बारेमें भागवतमें—

वादिषु द्वादशसु भगवान्कालरूपधृक् ।
कतन्त्राय चरति पृथग्द्वादशभिर्गणैः ॥३२॥
ार्चा गौतमश्चेति तपोमासं नयन्त्यमी ॥३९॥
(भा. १२।११)

र्य 'गौतमादि भगवान् सूर्यके साथ भिन्नभिन्न मासोंमें
करते हैं' ऐसा कहा है।

म गौतम— महाभारतके शान्तिपर्वमें १६८ से लेकर
१६८ एक दुराचारी गौतमकी कथा विस्तारसे कही हुई है।

म गौतम— यह गौतम अत्रिकुलका एक ब्रह्मर्षि था।
में नीचे लिखी हुई कथा पाई जाती है।
एक बार अत्रि ऋषि वैन्य राजाके यज्ञमें जाकर उसकी
कर लाये।

अत्रिराज—

राजन्धन्यस्त्वमीशश्च भुवि त्वं प्रथमो नृपः ॥१३॥

हे राजन्, तुम धन्य हो। तुम ईश्वर सदृश हो। पृथ्वीपर
एक तुम्हीं हो।'

यज्ञ स्थानमें बैठे हुवे गौतम-नामा ऋषि क्रुद्ध होकर उन्हें
कहने लगे—

वैनस्य पुनर्मूया न ते प्रज्ञा समाहिता ।
अत्र नः प्रथमं स्थाता महेन्द्रो वै प्रजापतिः ॥१५
(म. भा. व. १८५)

'हे अत्रि! दक्षिणा पानेके लिये राजाकी स्तुति कर रहे
हो। हमारे अधिराजा इन्द्र हैं, वेही प्रजापति हैं। तुम ऐसे
अन्य मनुष्यकी स्तुति करो। मेरी समझसे तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट हो
गई।' इस प्रकार दोनोंमें चर्चा छिड़नेपर अन्तमें सब-
को मान्य समाधान किया।

अत्रिने कहा—

राजा हि नेतेमे धर्मः प्रजानां पतिरेव च ।
स एष शक्रः पुरुहूत स धाता स बृहस्पतिः ॥२६
(म. भा. व. १८५)

'राजाही धर्म तथा प्रजापति है। इसीको इन्द्र, शुक्र,
धाता, बृहस्पति इत्यादि नामोंसे पुकारते हैं। अत एव जो
राजाकी स्तुति करता है, उसकी निन्दा न करनी चाहिये।'
सनत्कुमारका यह वचन सुनकर गौतम ऋषि चुप हुए।

इस गौतमका उल्लेख और एक जगह उपलब्ध है। सावि-
त्रीके पति सत्यवान्के पिता द्युमत्सेन अपने पुत्रके मृत्युकी
आशंका कर शोक कर रहे थे। उन्हें सन्तुष्ट करते हुवे गौतमने
कहा—

अनेन तपसा वेद्मि सर्वं परिचिकीर्षितम् ।
सत्यमेतन्निबोधध्वं म्रियते सत्यवानिति ॥२३॥
(म. भा. व. २९८)

'अर्थात् मैं अपने तपो बलसे भविष्य तथा वर्तमान देख
रहा हूं। आप विश्वास कीजिये कि सत्यवान् जीवित है।' आ-
खिरी गौतमके भविष्यके अनुसार सत्यवान् वनसे लौट आया।

गौतम और अहल्या

गौतम ऋषि और अहल्याकी कथा वाल्मीकीय रामायणमें
तथा अन्यान्य पुराणोंमें है। परन्तु अधिक पुराणोंमें इस
कथामें न्यूनाधिक भिन्नता है। हमें इस जगहमें इस कथाका
विचार करना नहीं है, इसलिये यह कथा कहां कहां आती है, उस
स्थानके पते हम यहां देते हैं—

१ वाल्मीकीय रामायण बालकाण्ड, सर्ग ४८, श्लोक ३३ से ४१
उत्तर-काण्ड स. ३०।
२ लिंगपुराण अ. २९
३ गणेशपुराण १।३०; २।३२
४ ब्रह्मपुराण २।१६।२-४८
५ पद्मपुराण स. ५५
६ स्कन्दपुराण
७ अध्यात्मरामायण, [illegible]
८ आनंदरामायण स. २
९ धर्मसिंधु आह्निक (पू.१), [illegible]

इनमें स्कन्दपुराण [illegible]
ऋषि तपस्यामें मग्न [illegible]
अहल्याके साथ [illegible]
रहते थे।

एक बार ये तपस्याके लिये बाहर गये थे, उस समय इनके आश्रममें इन्द्र आया। वहां अकेली अहल्या थी। गौतम ऋषि वहां नहीं थे, अपने तप करनेके स्थानमें गये थे। इन्द्र और अहल्याकी बातचीत हुई और इन्द्रका संभोग अहल्यासे हुआ। वा० रामायणका कहना है कि यह गौतम नहीं है और इन्द्र है, यह जानकर अहल्याने इन्द्रके साथ संभोग किया। और पश्चात् "मैं सन्तुष्ट हुई हूं, अतः तुम इस मार्गसे जाओ, गौतम आनेका समय हुआ है" ऐसा भी कहा। अन्य ग्रन्थोंमें इससे विभिन्न कथा है। पश्चात् गौतम अपने आश्रममें आये और जो हुआ वह जानकर उसने अहल्याका त्याग कर तप करनेके लिये किसी दूसरे स्थानपर गये।

पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी आये और उन्होंने उसकी शुद्धि की और वह गौतम ऋषिके साथ पुनः प्रेमसे रहने लगी।

इस कथाका तात्पर्य यह है, कि तपश्चर्या करनेवाला पुरुष तरुणी सुन्दरी युवतीसे विवाह न करें, और यदि करें, तो उसको गृहस्थ धर्मसे रहकर सन्तुष्ट करता रहे और उतनाही समय तपस्याके लिये दे कि जिससे अपनी धर्मपत्नीको कुकर्म करने तक संयम करनेका भार सहनेकी आपत्ति न भोगनी पडे। मनके कामादि विकार बडे प्रबल रहते हैं और दबानेपर भी अवसर आनेपर भडक उठते हैं। इसलिये पतिका ही यह उत्तरदायित्व है, यह बतानेके लिये वा० रामायणमें यह कथा इस तरह दी है।

परमें गौतम मुनिका रूप धरकर यह गौतम ऋषि आश्रममें रहता है। गौतम करनेपर भी अहल्यासे समागम हुआ अर्थात् यह आपका गौतम था, ऐसा वा०रामायणका आशय है। अन्य पुराणोंमें कुछ अन्य प्रकारसे यह कथा लिखी

गौतम का पारलक्ष दोनेके लिये यह इतनी ही कथा पर्याप्त है। इस आश्रममें गौतम को देव सेना का सेनापति बताया है। युद्ध करते करते थकने पर वे किसी जगह विश्राम तथा लेने लगे और सेना-संचालन इन्द्र करने लगा। ऐसी अवस्था इन्द्र और अहल्या का संभोग हुआ। यहां तथ्यका नामनिशान दै। कुछ भी हो, यहां इतना सत्य है कि वा० रामायण आदि ब्राह्मण ग्रंथोंमें कथा आने इतना गौतम अतिप्राचीन है।

इस तरह गौतम ऋषिके विषयमें महाभारत, रामायण तथा पुराणोंमें वर्णन है। पाठक इसका मनन करें। इस वर्णन देखनेसे अनेक गौतम थे यह बात स्पष्ट हो जाती है। इनमें प्राचीन थे वेही वैदिक गौतम हैं ऐसा मानना योग्य है।

औंध जि. सातारा
१।११।४६

निवेदक कर्ता
श्रीपाद दामोदर सातवळेकर
अध्यक्ष स्वाध्याय-मण्डल

न योरुपब्दिरश्व्यः शृण्वे रथस्य कच्चन	। यदग्ने यासि दूत्यम्	७
त्वोतो वाज्यद्र्योऽभि पूर्वस्मादपरः	। प्र दाश्वाँ अग्ने अस्थात्	८
उत द्युमत् सुवीर्यं बृहदग्ने विवाससि	। देवेभ्यो देव दाशुषे	९

७ हे अग्ने ! यत् दूत्यं यासि, रथस्य योः अङ्गः कञ्चन उपब्दिः न शृण्वे ॥

८ हे अग्ने ! दाशान् त्वोतः वाजी अद्र्यः पूर्वस्मात् अपरः अभि प्र अस्थात् ॥

९ हे देव अग्ने ! देवेभ्यः दाशुषे द्युमत् उत बृहत् सुवीर्यं विवाससि ॥

७ हे अग्ने ! जब तू दूतकर्म करनेके लिये जाता है, तब तुम्हारे रथके अथवा घोड़ोंके गमनका कोई भी शब्द सुनाई नहीं देता है ॥

८ हे अग्ने ! जब दाताको तेरी सुरक्षा प्राप्त हुई, तब वह बलवान् बना और उसकी हीन अवस्था हट गयी, तथा वह पहिली अवस्थासे उच्च अवस्थामें पहुंच चुका (ऐसा समझना चाहिये।)

९ हे अग्निदेव ! देवोंके लिये जो हवि देता है उस दाताके लिये तू तेजस्वितासे युक्त बड़ा प्रभावी वीर्य देता है

अग्रणी क्या करे ?

अग्नि अग्रणी है, क्योंकि वह जो कार्य शुरू करता है वह अग्रतक, अन्ततक (अग्रं नयति) पहुंचाता है, बीचमें नहीं छोड़ता। अग्निके जो कर्तव्य यहां कहे हैं वे समाज या राष्ट्रमें अग्रणीके कर्तव्य हैं, देखिये इस दृष्टिसे इस सूक्तका आशय क्या होता है। यह टिप्पणी पूर्वोक्त मंत्रोंके क्रमसेही देखनी चाहिये —

१ हे अग्रणे ! तू (अपने अनुयायियोंके) जो हिंसारहित कार्य होंगे उनमें जा, और समीपसे अथवा दूरसे उनके कथनोंको सुन, (और उनके कष्टोंको दूर करनेका यत्न कर।

२ जो वीर युद्ध करनेके लिये जाते हैं, उनमें जो दाता होंगे, अथवा उदार होंगे, उनके घरोंकी सुरक्षा सबसे प्रथम कर (और पीछेसे अन्योंकी सुरक्षा कर, इससे सब वीर उदार बनेंगे और उनमें कोई स्वार्थतत्पर नहीं रहेगा।)

३ (तुम्हें देखकर) सब लोग यही कहें की युद्धोंमें निःसंदेह विजय प्राप्त करनेवाला और शत्रुका समूल नाश करनेवाला (यह अग्रणी अपने प्रभावसेही इन लोकोंमें) प्रकट हुआ है ।

४ जिन लोगोंके सत्कर्ममें तू सहायक होता है, उनके उन कर्मोंसे सब दिव्य विबुधोंको योग्य भोग मिलते हैं और उनके सभी हिंसारहित कर्म दर्शनीय तथा चित्ताकर्षक होते हैं।

५ हे अंगप्रत्यंगको बलवान् बनानेवाले और बलके कार्योंके लियेही उत्पन्न हुए वीर ! (जो पूर्वोक्त प्रकार प्रशस्ततम कर्म करता है।) उसीको उत्तम हविष्यान्न देनेवाला, उत्तम तेजस्वी और उत्तम सत्कार्य करनेवाला (सब लोग) कहते हैं।

६ हे तेजस्वी अग्रणे ! तू उत्तम दिव्य विबुधों, ज्ञानियोंको यहां बुला ले आ, हम उनका वर्णन करेंगे (अथवा उनका उपदेश सुनेंगे) और उनको उत्तम अन्न अर्पण करेंगे। (अग्रणीका कर्तव्य है कि वह ज्ञानियोंको इकट्ठा करे और उनके दिव्य उपदेश जनताको सुनावे।)

७ अग्रणी जनताकी सहायता ऐसी गुप्तताके साथ करे की किसीको भी यह पता न लगे कि यह आज कहां गया और इसने इसकी सहायता इस रीतिसे की। (किसीको पता न लगे ऐसी गुप्त रीतिसे वह अनुयायियोंके पास जावे और उनकी सहायता करे।)

८ हे अग्रणे ! अपने अनुयायियोंमें जो दाता हों उनकी ऐसी सहायता कर कि जिससे वे बलवान् बनें, उनकी हीनदीन अवस्था पूर्ण रीतिसे दूर हो, और वे पूर्वकी अपेक्षा अधिक अच्छी स्थितिमें पहुंच जांय। किसी भी तरह उनकी अवस्था अधिक दीन न बने, पर अधिक उच्च और श्रेष्ठ बने।

९ हे अग्रणे ! देवोंके लिये जो अर्पण कर देते हैं, उन दाताओंके लिये दिव्य तेज और विजयी वीर्य प्राप्त हो।

पाठक इस भावार्थको पूर्वोक्त मंत्रों और उनके अर्थोंके साथ पढ़ें और जानें कि अग्निके मंत्रोंमें किस ढंगसे अग्रणीके कर्तव्य बताये हैं। अब इन मंत्रोंमें जो बोधवचन हैं उनका थोड़ासा विचार करते हैं —

यथा विप्रस्य मनुषो हविर्भिर्देवाँ अयजः कविभिः कविः सन् ।
एवा होतः सत्यतर त्वमद्याग्ने मन्द्रया जुह्वा यजस्व ५

५ कविः सन् कविभिः विप्रस्य मनुषः हविर्भिः यथा देवान् अयजः, (एवं) एव हे होतः सत्यतरं अग्ने ! त्वं अद्य मन्द्रया जुह्वा यजस्व ॥

५ (तू) कवि होता हुआ, (अनेक) कवियोंके (रहकर) ज्ञानी मनुष्यके हवियोंसे जैसा देवोंका यजन क है, वैसाही हे होता सत्यस्वरूप अग्ने ? तू आज आन दायक चमससे (उन देवोंको हवि) अर्पण कर ॥

हमारा पुरोगामी वीर

इस सूक्तमें हमारा नेता, अग्रेसर, कैसा हो, वह उत्तम शब्दोंमें कहा है। "**नः पुरएता अ-दब्धः**। (मं. २)= हमारा नेता, अग्रणी, अगुवा, अग्रेसर अथवा हमारा पथप्रदर्शक, मार्गदर्शक, नायक (पुरः एता) अग्रभागमें रहकर सबका यथायोग्य संचालन करनेवाला (अ-दब्धः) कभी किसीसे न दब जानेवाला हो। 'अ-दब्धः' का अर्थ 'न दबाया हुआ, न दब जानेवाला, दूसरेके दबावमें न आनेवाला, किसीसे हिंसित न होनेवाला, किसीसे जखमी न हुआ हुआ'। हमारा वीर नेता ऐसा पुरोगामी हो और हम उसके अनुयायी बनें और उन्नत होते रहें।

"**महे सौभगाय देवान् यज** (२)= महान् सौभाग्यकी प्राप्तिके लिये सत्कार-संगति-दानात्मक प्रशस्ततम कर्म करो। यह यज्ञ देवोंकेही उद्देश्यसे होना चाहिये। असुरोंके लिये नहीं। देव वे हैं कि जो दैवी संपत्तिसे सुशोभित होते हैं।

इस तरहके नेताको आदरसे बुलाना चाहिये, उसको उत्तम आसन देना चाहिये और उसका अच्छी तरह सत्कार करना चाहिये। '**आ इहि, इह नि षीद**' (मं.२)= हे नेता, हे अग्रणी ! यहां हमारे पास आ, यहां इस आसनपर बैठ, तुम्हारा सत्कार हम करते हैं। **अस्मै आतिथ्यं चक्रुम** (मं. ३)= इसका हम बडा सत्कार करते हैं। यह सत्कार करनेकी रीति देखिये—

हे अग्रणे वीर !

१ **आ इहि** (२)— यहां आ,

२ **इह नि षीद**— यहां बैठ,

३ **अस्मै आतिथ्यं चक्रुम** (३)— इसका हम सत्कार करेंगे,

४ **इह नि सत्सि** (४)- यहां आरामसे बैठ जा,

५ **ते मनसः वराय का उपेतिः भुवत्** ? (१)- मनके संतोषके लिये हम तेरे साथ कैसा बर्ताव करें ?

६ **का मनीषा शंतमा?** (१)- कौनसी मनकी इच्छा शान्तिसुख देगी ?

७ **केन मनसा ते दाशेम ?** (१)- किस मनोभावसे तेरा सत्कार करें? किस भावसे तेरी भेंट करें?

८ **कः ते दक्षं परि आप?** (१)- कौन भला तेरे बुद्धिबलको प्राप्त कर सकता है, क्या करनेसे तुम्हारा बल हमें प्राप्त होगा?

९ **विश्वान् रक्षसः प्र सु धाक्षि** (३)- सब (घातक) राक्षसोंको ठीक तरह जला दे।

१० **देवान् यज** (२); **देवैः नि सत्सि** (४)- देवोंका यजन कर। देवोंके उद्देश्यसे प्रशस्त कर्म कर, क्योंकि तू देवोंके साथ रहता है। [पूर्वोक्त मंत्रमें 'राक्षसोंको जला दे' ऐसा कहा है और यहां देवोंके उद्देश्यसे उनकी प्रीतिके लिये शुभ कर्म कर ऐसा कहा है। राक्षसोंको दूर हटाना और दिव्य विबुधोंको अपने पास करना यहां स्पष्ट उद्देश्य है।]

११ **वसूनां जनितः प्रयन्तः, बोधि** (४)- तू अनेक प्रकारके धनोंको उत्पन्न करता है और उनका यथायोग्य बटवारा करता है, इसलिये हमारी आवश्यकताका विचार कर, अर्थात् हमें आवश्यक धनादि दे।

१२ **होत्रं उत पोत्रं वेषि** (४)- तू दिव्य विबुधोंको बुलाना, उनके लिये अर्पण करना और उस कार्यके लिये आवश्यक पवित्रता करनेकी विधि जानता है।

१३ **कविः सन् कविभिः यजस्व** (५)- स्वयं ज्ञानी बनकर ज्ञानियोंके साथ प्रशस्त कर्म कर।

१४ **विप्रस्य मनुषः हविर्भिः देवान् अयजः** (५)- ज्ञानी मनुष्यके हविष्यान्नोंसे दिव्य विबुधोंका सत्कार कर।

यहां 'रहूगणाः गोतमाः' ये पद बहुवचनमें हैं और 'गोतमः' पद एकवचनमें हैं। रहूगणके अनेक पुत्र होंगे, उनका वंश नाम यह होगा अथवा आदरके लिये भी बहुवचन हो सकता है। पर स्तुति करनेवाला, देवताकी उपासना करनेवाला स्वयं अपनाही नाम आदरके लिये बहुवचनमें लिखेगा, ऐसा प्रतीत नहीं होता। इसलिये गोत्रमें उत्पन्न हुए सब ऋषियोंके लिये यह बहुवचनका प्रयोग यहां किया है ऐसा मानना युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

शत्रुका नाश

इस सूक्तमें थोडासा वीरकी वीरताका वर्णन है। इसमें निम्नलिखित पद विचारणीय है।

१ **दस्यून् अवधूनुषे** (४)— शत्रुओंको जडसे उखाडकर दूर फेंक देता है।

२ **वृत्रहन्तमः**— वृत्रका, घेरनेवाले, घेर कर लडनेवाले शत्रुका नाश करता है।

३ **जातवेदाः**— वेद, ज्ञान और धन देनेवाला।

विचर्षणिः— विशेष ज्ञानी, सूक्ष्म दृष्टिसे देखनेवाला

४ **वाजसातमः**— अन्नका बटवारा करनेवाला (शत्रुनाशक वीरके ये विशेषण हैं। इन गुणोंसे युक्त यहांका

अङ्गिरा ऋषि

इस सूक्तमें अङ्गिरा ऋषिका नाम आया है। 'अंगि**रस्वत् हवामहे**' (३) अङ्गिरा ऋषिने जैसी स्तुति की वैसीही हम कर रहे हैं। इस वर्णनसे अङ्गिरा ऋषि गोत पूर्व समयका प्रतीत होता है।

अङ्गिराः

|

रहूगणः

|

गोतमः

यह वंश है। गोतमका पिता रहूगण, और पिताम अंगिरा ऋषि है। शेष मंत्र स्पष्ट हैं। यहां पांचवे सूक्तक स्पष्टीकरण समाप्त होता है।

(६) वलका स्वामी

(ऋ. १।७९) गोतमो राहूगणः। १–३ अग्निः मध्यमोऽग्निर्वा; ४–१२ अग्निः।
१—३ त्रिष्टुप्; ४-६ उष्णिक्; ७-१२ गायत्री।

हिरण्यकेशो रजसो विसारेऽहिर्धुनिर्वात इव ध्रजीमान्।
शुचिभ्राजा उषसो नवेदा यशस्वतीरपस्युवो न सत्याः १
आ ते सुपर्णा अमिनन्तँ एवैः कृष्णो नोनाव वृषभो यदीदम्।
शिवाभिर्न स्मयमानाभिरागात् पतन्ति मिहः स्तनयन्त्यभ्रा २

अन्वयः— १ हिरण्यकेशः, रजसः विसारे अहिः धुनिः वात इव ध्रजीमान्, शुचिभ्राजाः। यशस्वतीः अपस्युवः सत्याः न उषसः नवेदाः॥

२ ते सुपर्णाः एवैः आ अमिनन्त। कृष्णः वृषभः नोनाव। यदि इदं शिवाभिः न स्मयमानाभिः आ अगात्। मिहः पतन्ति अभ्रा स्तनयन्ति॥

अर्थ— १ (यह अग्नि आकाशमें) सुवर्ण जैसे तेजस्वी केशों– किरणोंसे युक्त (सूर्यके रूपमें) विस्तृत अन्तरिक्षमें वायुके समान गतिमान् (तथा विद्युत् रूपमें) सर्पके समान हिलने-वाला, (और पृथ्वीपर) शुद्ध प्रकाशवाला है। यशस्विनी अपने कर्मोंमें कुशल सच्ची पतिव्रता स्त्रियोंके समान (शुद्ध) उषाएं (इसको) जानती हैं॥

२ (हे विद्युत् अग्ने!) तेरे पक्षी जैसे (किरण) अपनी शक्तियोंके साथ (मेघमें) चारों ओरसे घुसने लगे। काला बैल (मेघ तब) वारंवार गर्जना करने लगा। तब शुभफलदायीनी हंसनेवाली (स्त्रियोंके समान बिजलियोंके साथ पर्जन्य) चारों ओरसे आगया, शुरू हुआ। धूंवाधार वृष्टि गिरने लगी, और मेघ भी गर्जने लगे।

बडा सेनापति

गोतम ऋषिके अग्नि-सूक्तोंमें यह अग्निसूक्त अन्तिम है। इसमें अग्निको 'बलका स्वामी' मानकर उसका वर्णन किया है। पांचवें मंत्रमें **'पुर्वणीक'** (पुरु + अनीक) पद है, इसका अर्थ 'बडी सेनावाला' है। **'अनीक'** पदका अर्थ- 'सेना, सैन्य, युद्ध, द्वन्द्व, हमला, पंक्ति, नोक, अग्रभाग, मुख, रूप' यह है। बडी सेनावाला, बडा युद्ध करनेवाला, प्रबल हमला करनेवाला वीर यह इसका आशय है। 'बल' पदके अर्थ 'सामर्थ्य और सैन्य' ऐसे दो प्रकारके होते हैं। यहां इस सूक्तमें अग्निका इन दोनों तरहसे वर्णन किया है॥

१ **'सहसः यहुः'** (मं.४)- बलका पुत्र, बलके कार्य करनेके लिये जन्मा हुआ, बलसे प्रभाव दिखानेवाला। ये बलके अर्थात् शक्तिसे होनेवाले अथवा सेनासे होनेवाले कार्य ये हैं—

२ **हे राजन्! 'त्मना क्षपः। रक्षसः प्रति दह** (६)- हे राजा! हे सेनापते, हे अग्ने! तू स्वयं जनताके सब शत्रुओंको प्रतिबंध कर, शान्त कर। वैरी प्रभावी न बनें ऐसा कर। असुरों राक्षसों और दुष्टोंको जलाकर नष्ट कर दे। यहां अग्निका विशेषण 'राजन्' है। अग्निका 'अग्रणी' रूप मानकर 'हे राजन् अग्ने' ऐसा अर्थ करनेसे सब अर्थ प्रकरणानुकूल बनता है।

३ **यः नः अन्तिं दूरे वा अभिदासति, सः पदीष्ट** (११)- जो दूरसे या समीपसे हमें दास बनाना चाहता है, जो हमारा नाश करना चाहता है वह नीचे गिर जावे।

४ **सहस्राक्षः विचर्षणिः रक्षांसि सेधति** (१२) सहस्र आंखवाला सब देखनेवाला अग्रणी दुष्टोंका नाश करता है। यहां राज-प्रकरणमें सहस्राक्ष पद सहस्रों दूतोंसे राष्ट्रके सब व्यवहारोंको देखनेवाला इस अर्थमें है। राजा, अग्रणी अपने दूतोंके सहस्रों आंखोंसे देखता है और राष्ट्रमें या राष्ट्रके बाहर जो दुष्ट शत्रु होते हैं, उनको ठीक तरह पहचान कर उनका नाश अपने बलसे अथवा सैनिकोंसे करता है।

५ **गोमतः वाजस्य ईशानः** (४)- गौओंसे युक्त अन्नका वह स्वामी है। अर्थात् वह गौओं और विविध अन्नोंकी सुरक्षा अपने राज्यमें करता है। इससे जनताका पालन-पोषण करता है।

६ **जातवेदाः** (४); **कविः** (५); **धीपु वन्द्य** (७)- ये तीनों पद इसकी ज्ञानी होनेकी साक्षी दे रहे हैं। **जातवेदा** जिससे वेद, ज्ञानग्रंथसहके मंत्र, प्रकाशित हुए, जो ज्ञानका प्रकाश करता है। **कविः**- ज्ञानी, अतीन्द्रिय ज्ञानसे देखनेवाला क्रान्तदर्शी। **धीपु वन्द्य**- बुद्धिके कामोंमें ज्ञानके लिये पूजाके योग्य। यह सेनापति अग्रणी इस तरह ज्ञानी है। इस लिये वह पूजनीय माना गया है। सेनापति और अग्रणी ये ज्ञानी होना चाहिये।

७ **तिग्मजम्भः** (६)- तीखे दांतोंवाला, शत्रुको खा जानेवाला, शत्रुका नाश करनेवाला वीर।

धन कैसा चाहिये

इस सूक्तमें जो धन मानवोंको स्वीकार करनेयोग्य उसका उत्तम वर्णन है, देखिये—

१ **अस्मे महि श्रवः धेहि** (४)- हमें बडा यश देनेवाला, कीर्ति बढानेवाला धन दे।

२ **अस्मभ्यं रेवत् दीदिहि** (५)- हमें धनसे युक्त करके प्रकाशित कर अर्थात् हमें ऐसा धन दे कि जिससे हम तेजस्वी बनें।

३ **सवासाहं विश्वासु पृत्सु दुष्टरं वरेण्यं रयिं आ भर** (८)-हमें ऐसा धन दे कि, जिससे हम सुसंगठित होकर कितने भी युद्ध करने पडे तो भी उनमें कोई शत्रु उस धनको छीन न सके, ऐसे बलवान् हम बनें। यह मंत्रभाग विशेषही मनन करनेयोग्य है। इसमें धन संगठित करनेवाला, शत्रुके लिये अजेय तथा शत्रुका पराभव करनेवाला और इस कारण अपने पास रखनेयोग्य हो, ऐसा वर्णन किया है।

४ **जीवसे मार्डीकं विश्वायुपोपसं रयिं नः आ धेहि** (९)- ऐसा धन हमें मिले कि जो हमें दीर्घ आयु देवे, सुख देवे, आयुभर हमारा पोषण करता रहे अर्थात् वह हमारी क्षीणता न करे, हमें अल्पायु न बना देवे, हमारा दुःख न बढावे। धन चाहनेवालोंको उचित है कि वे इन मंत्रोंका मनन अच्छी तरह करें।

५ **नः ऊतिभिः अव** (७)- हमारी सब तरहसे सुरक्षा कर। अनुयायियोंकी सुरक्षा करना अग्रणीका कार्य है।

इस तरह पहिले तीन मंत्रोंको छोडकर शेष नौ मंत्रोंमें यह बोध कराया है। राजा, सेनापति, अग्रणी आदिके कर्तव्य इस तरह यहां वर्णन किये गये हैं।

(८) निडर वीर

(ऋ. १।८१) गोतमो राहूगणः । इन्द्रः । पंक्तिः । *

इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः ।
तमिन्महत्स्वाजिपूतेमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् १
असि हि वीर सेन्योऽसि भूरि पराददिः ।
असि दभ्रस्य चिद् वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते वसु २
यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धना ।
युक्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधोऽस्माँ इन्द्र वसौ दधः ३
कृत्वा महाँ अनुष्वधं भीम आ ववृधे शवः ।
श्रिय ऋष्व उपाकयोर्नि शिप्री हरिवान् दधे हस्तयोर्वज्रमायसम् ४
आ पप्रौ पार्थिवं रजो बद्बधे रोचना दिवि ।
न त्वावाँ इन्द्र कश्चन न जातो न जनिष्यतेऽति विश्वं ववक्षिथ ५

अन्वयः— १ वृत्र-हा इन्द्रः मदाय शवसे नृ-भिः ववृधे, तं इत् महत्-सु आजिषु उत ईं अर्भे हवामहे । सः वाजेषु नः प्र अविषत् ॥

२ हे वीर ! सेन्यः असि, भूरि परा-ददिः असि । दभ्रस्य चित् वृधः असि । (त्वं) यजमानाय शिक्षसि । सुन्वते ते वसु भूरि ॥

३ यत् आजयः उत्-ईरते, (तदा) धृष्णवे धना धीयते । (हे) इन्द्र ! मद-च्युता हरी युक्ष्व । (त्वं) कं हनः, कं वसौ दधः । अस्मान् वसौ दधः ॥

४ कृत्वा महान् भीमः अनु-स्वधं शवः आ ववृधे । ऋष्वः शिप्री हरि-वान् (इन्द्रः) उपाकयोः हस्तयोः श्रिये आयसं वज्रं नि दधे ॥

५ (हे) इन्द्र ! पार्थिवं रजः आ पप्रौ । दिवि रोचना बद्बधे । (सम्प्रति) कः चन त्वा-वान् न । (त्वा-वान्) न जातः, न जनिष्यते । (त्वं) विश्वं अति ववक्षिथ ॥

अर्थ— १ वृत्रनाशक इन्द्र आनन्द और बलके लिये मनुष्यों द्वारा बढाया जाता है । हम उसी इन्द्रको बडे युद्धों और उसीको छोटे युद्धोंमें बुलाते हैं । वह युद्धोंमें हमारी रक्षा करे ।

२ हे वीर ! तू सेनासे युक्त है । बहुत धन दान देनेवाला है । छोटेको भी बडा करनेवाला है । तू यज्ञ करनेवालेके लिये धन देता है । सोमयाग करनेवालेको देनेके लिये तेरे पास बहुत धन है ।

३ जिस समय युद्ध छिड जाते हैं, तब तेरे द्वारा निडर वीरके लिये धन दिया जाता है । हे इन्द्र ! तू अपने मद चुवानेवाले घोडोंको रथमें जोड । तूने किसी दुष्टको मारा और किसीको धनके बीचमें रखा, धनवान् बना दिया । तूने हमें धनके बीच रख धनवान् बनाया है ।

४ क्रियाशील होनेके कारण श्रेष्ठ और भयङ्कर प्रभावशाली इन्द्रने योग्य अन्नके सेवनसे अपना बल बढा दिया । उस वन्दनीय, शिरस्त्राणधारी, घोडेवाले इन्द्रने अपने समीपवर्ती दोनों हाथोंमें श्रीकी प्राप्तिके लिये लोहेका बना हुआ वज्र धारण किया है ।

५ हे इन्द्र ! तूने अपनी व्यापकतासे पार्थिव लोकोंको पूरा भर दिया है । तूने दिव् लोकमें प्रकाशमय लोक स्थापित किये हैं । कोई भी तेरे समान नहीं है । तेरे समान न कोई उत्पन्न हुआ था और न आगे उत्पन्न होगा । तू सम्पूर्ण विश्वको चला रहा है ।

* ऋ. १।८३।१-३ तथा ७-९ ये छः मंत्र अथर्ववेदमें २०।५६।१-६ में हैं ।

(८) निडर वीर

(ऋ. १।८१) गोतमो राहूगणः । इन्द्रः । पंक्तिः । *

इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः ।
तमिन्महत्स्वाजिषूतेमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् १
असि हि वीर सेन्योऽसि भूरि पराददिः ।
असि दभ्रस्य चिद् वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते वसु २
यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धना ।
युक्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधोऽस्माँ इन्द्र वसौ दधः ३
कृत्वा महाँ अनुष्वधं भीम आ ववृधे शवः ।
श्रिय ऋष्व उपाकयोर्नि शिप्री हरिवान् दधे हस्तयोर्वज्रमायसम् ४
आ पप्रौ पार्थिवं रजो बद्बधे रोचना दिवि ।
न त्वावाँ इन्द्र कश्चन न जातो न जनिष्यतेऽति विश्वं ववक्षिथ ५

अन्वयः— १ वृत्र-हा इन्द्रः मदाय शवसे नृ-भिः ववृधे, तं इत् महत्-सु आजिषु उत ईं अर्भे हवामहे । सः वाजेषु नः प्र अविषत् ॥

२ हे वीर ! सेन्यः असि, भूरि परा-ददिः असि । दभ्रस्य चित् वृधः असि । (त्वं) यजमानाय शिक्षसि । सुन्वते ते वसु भूरि ॥

३ यत् आजयः उत्-ईरते, (तदा) धृष्णवे धना धीयते । (हे) इन्द्र ! मद-च्युता हरी युक्ष्व । (त्वं) कं हनः, कं वसौ दधः । अस्मान् वसौ दधः ॥

४ कृत्वा महान् भीमः अनु-स्वधं शवः आ ववृधे । ऋष्वः शिप्री हरि-वान् (इन्द्रः) उपाकयोः हस्तयोः श्रिये आयसं वज्रं नि दधे ॥

५ (हे) इन्द्र ! पार्थिवं रजः आ पप्रौ । दिवि रोचना बद्बधे । (जनित्रि) कः चन त्वा-वान् न । (त्वा-वान्) न जातः, न जनिष्यते । (त्वं) विश्वं अति ववक्षिथ ॥

अर्थ— १ वृत्रनाशक इन्द्र आनन्द और बलके लि मनुष्यों द्वारा बढाया जाता है । हम उसी इन्द्रको बढ़ा और उसीको छोटे युद्धोंमें बुलाते हैं । वह युद्धोंमें हमारी र करे ।

२ हे वीर! तू सेनासे युक्त है । बहुत धन दान देनेवाला है। छोटेको भी बडा करनेवाला है। तू यज्ञ करनेवालेके लिये धन दे है । सोमयाग करनेवालेको देनेके लिये तेरे पास बहुत धन है

३ जिस समय युद्ध छिड जाते हैं, तब तेरे द्वारा लि वीरके लिये धन दिया जाता है । हे इन्द्र ! तू अपने चुचानेवाले घोडोंको रथमें जोड । तूने किसी दुष्टको मारा अ किसीको धनके बीचमें रखा, धनवान् बना दिया । तूने धनके बीच रख धनवान् बनाया है ।

४ क्रियाशील होनेके कारण श्रेष्ठ और भयङ्कर प्रशंसनी इन्द्रने योग्य अन्नके सेवनसे अपना बल बढा दिया । उस प्र नीय, शिरस्त्राणधारी, घोडेवाले इन्द्रने अपने समीपवर्ती दो हाथोंमें श्रीकी प्राप्तिके लिये लोहेका बना हुआ वज्र धा किया है ।

५ हे इन्द्र ! तूने अपनी व्यापकतासे पार्थिव लोकोंको पू भर दिया है । तूने दिव् लोकमें प्रकाशमय लोक स्थापित किये हैं । कोई भी तेरे समान नहीं है । तेरे समान न कोई उत्पन्न हुआ था और न आगे उत्पन्न होगा । तू सम्पूर्ण विश्वको चला रहा है ।

* ऋ. १।८१।१–६ तथा ७–९ ये छः मंत्र अथर्ववेदमें २०।५६।१–६ में हैं ।

-

'तेन अन्धसः मन्दानः प्रियां जायां उप याहि । (मं. ५)'– उस अपने रथपर आरूढ होकर, तथा अन्नसे तृप्त होकर, अपनी प्रिय पत्नीके पास जा । अर्थात् रथपरसे यज्ञमें आकर बैठ, यज्ञका अवलोकन कर, यज्ञीय अन्नका सेवन कर और पश्चात् उसी रथपर सवार होकर, अपने घरमें पहुंच कर अपनी प्रिय जायाके पास जा और उससे वार्तालाप आदि कर तथा और देखिये–

'उप प्र याहि, गभस्त्योः दधिषे । सुतासः त्वा उत् अमन्दिषुः । (त्वं) पत्न्या सं अमदः (मं. ६)– तू अपने घर जा, (जानेके समय) घोडोंके लगाम हाथमें सोमरस पीकर तुझे आनन्द हुआ है । (अब तू घरमें अपनी) पत्नीसे मिलकर आनन्द कर, आनन्दित हो ।

यहां इन्द्रकी धर्मपत्नीका उल्लेख है । पर पत्नीका नाम नहीं है । 'इन्द्राणी, शची' ये नाम अन्यत्र अन्य आये हैं । इन्द्रको "कौशिक" कहा है । देखो मधु ऋषिका दर्शन (ऋ.१।१०।११) कुशिकका पुत्र वा गोत्रमें उत्पन्न अथवा कुशिकोंपर कृपा करनेवाला ऐसे इसको होना संभवनीय है ।

(१०) यज्ञका मार्ग

(ऋ. १।८३; अथर्व. २०।२५।१-६) गोतमो राहूगणः । इन्द्रः । जगती ।

अश्वावति प्रथमो गोषु गच्छति सुप्रावीरिन्द्र मर्त्यस्तवोतिभिः ।
तमित् पृणक्षि वसुना भवीयसा सिन्धुमापो यथाऽभितो विचेतसः १
आपो न देवीरुप यन्ति होत्रियमवः पश्यन्ति वितनं यथा रजः ।
प्राचैर्देवासः प्र णयन्ति देवयुं ब्रह्मप्रियं जोषयन्ते वरा इव २
अधि द्वयोरदधा उक्थ्यं१ वचो यतस्रुचा मिथुना या सपर्यतः ।
असंयत्तो व्रते ते क्षेति पुष्यति भद्रा शक्तिर्यजमानाय सुन्वते ३

अन्वयः– १ (हे) इन्द्र ! तव ऊति-भिः सुप्र-अवीः मर्त्यः अश्ववति गोषु प्रथमः गच्छति । (त्वं) वि-चेतसः आपः अभितः सिन्धुं यथा तं इत् भवीयसा वसुना पृणक्षि ॥

२ (हे इन्द्र !) देवासः देवीः आपः न होत्रियं उप यन्ति । वि-ततं रजः यथा अवः पश्यन्ति । देव-युं प्राचैः प्र नयन्ति । वराः–इव ब्रह्म-प्रियं जोषयन्ते ॥

३ (हे इन्द्र !) या मिथुना यत-स्रुचा (त्वां) सपर्यतः, द्वयोः अधि उक्थ्यं वचः अदधाः । असं-यत्तः ते व्रते क्षेति पुष्यति। सुन्वते यजमानाय भद्रा शक्तिः (भवति) ॥

अर्थ— १ हे इन्द्र ! तेरी सुरक्षाओं द्वारा सुरक्षित भक्त मनुष्य बहुत घोडोंवाले और बहुत गौओंसे युक्त प्रथम प्राप्त करता है । तू चित्तको प्रसन्न करनेवाले जल ओरसे जैसे समुद्रको पहुंचते हैं, वैसे उसही भक्तको धनसे पूर्ण करता है ।

२ हे इन्द्र ! दिव्य लोग दिव्य जलोंके पास जानेके यज्ञके समीप जाते हैं । वे फैले हुए विस्तृत यज्ञस्थानको हैं । देवोंकी भक्ति करनेवालेको वे पूर्वकी ओर ले जाते और श्रेष्ठोंके समान ज्ञानसे प्रिय उपदेशका सेवन करते

३ जो दो जुडे हुए अन्नपात्र तेरी पूजाके लिये रखे इन्द्र ! तूने उन दोनोंमें रखे अन्नका स्तुतिके वचनके स्वीकार किया । युद्धके लिये उद्यत न होनेवाला मनुष्य तेरे नियममें रहनेसे सुरक्षित रहता और पुष्ट भी होता यज्ञ करनेवालेके लिये तेरी ओरसे मङ्गलकारी शक्ति दी जा है ।

इन्द्रसे गौओंकी प्राप्ति

इन्द्रकी सहायतासे गौयें प्राप्त होती हैं ऐसा यहां बहुतवार कहा है—

१ तव ऊतिभिः सुप्रावीः मर्त्यः अश्वावति गोषु प्रथमः गच्छति (१)– इन्द्रकी सुरक्षाओंसे सुरक्षित हुआ मनुष्य घोडों और गायोंके झुण्ड प्रथम प्राप्त करता है।

२ नरः पणेः सर्वं अश्वावन्तं गोमन्तं पशुं आसं अविन्दन्त (४)– नेता लोग पणिसे सब घोडे, गौवें और पशुको प्राप्त करता है और सब धन प्राप्त करता है।

यज्ञसे इन्द्रकी प्रसन्नता होती है, इन्द्रसे गौओंकी प्राप्ति होती है, इस तरह गौओंके घृतसे यज्ञ होते हैं और यज्ञोंसे जनताका कल्याण होता है। यज्ञके प्रवर्तनका यह क्रम है

(११) दधीचीकी अस्थिसे वज्र

(ऋ. १।८४) गोतमो राहूगणः। इन्द्रः। १–६ अनुष्टुप्; ७–९ उष्णिक्; १०–१२ पंक्तिः; १३–१५ गायत्री; १६–१८ त्रिष्टुप्; (प्रगाथः=) १९ बृहती; २० सतोबृहती।

असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवा गहि। आ त्वा पृणक्त्विन्द्रियं रजः सूर्यो न रश्मिभिः १
इन्द्रमिद्धरी वहतोऽप्रतिधृष्टशवसम्। ऋषीणां च स्तुतीरुप यज्ञं च मानुषाणाम् २
आ तिष्ठ वृत्रहन् रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी। अर्वाचीनं सु ते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना ३
इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम्। शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन् धारा ऋतस्य सादने ४
इन्द्राय नूनमर्चतोक्थानि च ब्रवीतन। सुता अमत्सुरिन्दवो ज्येष्ठं नमस्यता सहः ५
नकिष्ट्वद् रथीतरो हरी यदिन्द्र यच्छसे। नकिष्ट्वाऽनु मज्मना नकिः स्वश्व आनशे ६

अन्वयः— १ (हे) इन्द्र ! सोमः ते असावि। (हे) शविष्ठ धृष्णो ! (त्वं) आ गहि। इन्द्रियं सूर्यः न रश्मिभिः रजः त्वा आ पृणक्तु ॥

२ हरी ऋषीणां च स्तुतीः मानुषाणां च यज्ञं अप्रतिधृष्टशवसं इन्द्रं इत् उप वहतः ॥

३ (हे) वृत्र-हन् ! रथं आ तिष्ठ, ब्रह्मणा ते हरी युक्ता। ग्रावा वग्नुना ते मनः अर्वाचीनं सु कृणोतु ॥

४ (हे) इन्द्र ! इमं सुतं ज्येष्ठं अमर्त्यं मदं पिब। ऋतस्य सादने शुक्रस्य धाराः त्वा अभि अक्षरन् ॥

५ (हे ऋत्विजः) नूनं इन्द्राय अर्चत (तस्मै) उक्थानि च ब्रवीतन। सुताः इन्दवः अमत्सुः। ज्येष्ठं सहः नमस्यत ॥

६ (हे) इन्द्र ! यत् हरी यच्छसे, त्वत् रथितरः नकिः। मज्मना त्वा अनु नकिः। (अन्यः) सु-अश्वः (त्वां) नकिः आनशे ॥

अर्थ— १ हे इन्द्र ! यह सोम तेरे लिये निचोडा गया है हे बलयुक्त शत्रु-नाशक इन्द्र ! तू यहाँ आ। तेरे लिये हुआ, यह सूर्य जैसे किरणोंसे आकाशको व्यापता है, वैसे यह सोमरस व्याप ले। (यह तेरे शरीरमें जावे।)

२ घोडे ऋषियोंके स्तोत्र और मनुष्योंके यज्ञके पास बल अटूट है ऐसे इन्द्रहीको ले जाते हैं, पहुंचाते हैं।

३ हे वृत्र-घातक इन्द्र ! तू रथपर चढकर बैठ। द्वारा तेरे घोडे रथमें जोड दिये गये हैं। ये सोम पत्थर अपनी वाणीसे तेरा मन इस ओर आकर्षित करें।

४ हे इन्द्र ! तू इस निचोडे हुए सर्वोत्तम अमर कारक रसको पी। यज्ञके स्थानमें बलवर्धक सोमकी धारा तेरी ओर बह रही हैं।

५ हे ऋत्विक् लोगो ! निश्चय तुम इन्द्रकी पूजा करो उसके लिये स्तोत्र पढो। ये निचोडे हुए सोम-रस इन्द्र तृप्त करें। तुम इस बडे बलधारी इन्द्रको नमस्कार करो।

६ हे इन्द्र ! जिस कारण तू अपने घोडोंको चलाता है इस कारण तुझसे बढा रथी कोई नहीं। तेरी समानता करनेवाला कोई नहीं। तेरे समान उत्तम घोडे भी तुझे नहीं पा सकते।

मरुत्-प्रकरण

वीरोंका काव्य

(१२) वीर मरुत्

(ऋ. १।८५) गोतमो राहूगणः । मरुतः । जगती; ५, १२ त्रिष्टुप् ।

प्र ये शुम्भन्ते जनयो न सप्तयो यामन् रुद्रस्य सूनवः सुदंससः ।
रोदसी हि मरुतश्चक्रिरे वृधे मदन्ति वीरा विदथेषु घृष्वयः १
त उक्षितासो महिमानमाशत दिवि रुद्रासो अधि चक्रिरे सदः ।
अर्चन्तो अर्कं जनयन्त इन्द्रियमधि श्रियो दधिरे पृश्निमातरः २
गोमातरो यच्छुभयन्ते अञ्जिभिस्तनूषु शुभ्रा दधिरे विरुक्मतः ।
बाधन्ते विश्वमभिमातिनमप वर्त्मान्येषामनु रीयते घृतम् ३
वि ये भ्राजन्ते सुमखास ऋष्टिभिः प्रच्यावयन्तो अच्युता चिदोजसा ।
मनोजुवो यन्मरुतो रथेष्वा वृषव्रातासः पृषतीरयुग्ध्वम् ४

[illegible] रुद्रस्य सूनवः यामन् [illegible]

अर्थ- १ ये जो अच्छे कार्य करनेवाले, [illegible] वीर मरुत् बाहर जाते हैं, [illegible] आपको सुशोभित करते हैं। [illegible] लिये द्युलोक एवं भूलोककी [illegible] [illegible] हो रहे हैं ॥

२ [illegible]

३ [illegible]

४ [illegible]

प्र यद् रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं वाजे अद्रिं मरुतो रंहयन्तः ।
उतारुषस्य वि ष्यन्ति धाराश्चर्मेवोदभिर्व्युन्दन्ति भूम
आ वो वहन्तु सप्तयो रघुष्यदो रघुपत्वानः प्र जिगात बाहुभिः
सीदता बर्हिरुरु वः सदस्कृतं मादयध्वं मरुतो मध्वो अन्धसः
तेऽवर्धन्त स्वतवसो महित्वना नाकं तस्थुरुरु चक्रिरे सदः ।
विष्णुर्यद्धावद् वृषणं मदच्युतं वयो न सीदन्नधि बर्हिषि प्रिये
शूरा इवेद् युयुधयो न जग्मयः श्रवस्यवो न पृतनासु येतिरे ।
भयन्ते विश्वा भुवना मरुद्भयो राजान इव त्वेषसंदृशो नरः

त्वष्टा यद् वज्रं सुकृतं हिरण्ययं सहस्रभृष्टिं स्वपा अवर्तयत् ।
धत्त इन्द्रो नर्यपांसि कर्तवेऽहन् वृत्रं निरपामौब्जदर्णवम् ९
ऊर्ध्वं नुनुद्रेऽवतं त ओजसा दाद्हाणं चिद् विभिदुर्विं पर्वतम् ।
घमन्तो वाणं मरुतः सुदानवो मदे सोमस्य रण्यानि चक्रिरे १०
जिह्मं नुनुद्रेऽवतं तया दिशासिञ्चन्नुत्सं गोतमाय तृष्णजे ।
आ गच्छन्तीमवसा चित्रभानवः कामं विप्रस्य तर्पयन्त धामभिः ११
या वः शर्म शशमानाय सन्ति त्रिधातूनि दाशुषे यच्छताधि ।
अस्मभ्यं तानि मरुतो वि यन्त रयिं नो धत्त वृषणः सुवीरम् १२

९ सु-अपाः त्वष्टा यत् सु-कृतं हिरण्ययं सहस्र-भृष्टिं वज्रं अवर्तयत् इन्द्रः नरि अपांसि कर्तवे धत्ते, अर्णवं वृत्रं अहन्, अपां निः औब्जत् ॥

१० ते ओजसा ऊर्ध्वं अवतं नुनुद्रे, दद्हाणं पर्वतं चित् वि विभिदुः, सु-दानवः मरुतः सोमस्य मदे वाणं धमन्तः रण्यानि चक्रिरे ॥

११ अवतं तया दिशा जिह्मं नुनुद्रे, तृष्णजे गोतमाय उत्सं असिञ्चन्, चित्रः-भानवः अवसा इं आ गच्छन्ति, धामभिः विप्रस्य कामं तर्पयन्त ॥

१२ (हे) मरुतः ! शशमानाय त्रि-धातूनि वः या शर्म सन्ति, दाशुषे अधि यच्छत, तानि अस्मभ्यं वि यन्त, (हे) वृषणः ! नः सु-वीरं रयिं धत्त ॥

९ अच्छे कौशल्यपूर्ण कार्य करनेवाले कारीगरने जो अ
तरह बनाया हुआ, सुवर्णमय, सहस्र धाराओंसे युक्त
इन्द्रको दे दिया, उस हथियारको इन्द्रने मानवोंमें प्रवि
युद्धोंमें वीरतापूर्ण कार्य कर दिखानेके लिये धारण किया
जलको रोकनेवाले शत्रुको मार डाला तथा जलको जानेके लि
उन्मुक्त कर दिया ।।

१० वे वीर अपनी शक्तिसे ऊँची जगह विद्यमान
या झीलके पानीको प्रेरित कर चुके और इस कार्यके लि
राहमें रोडे अटकानेवाले पर्वतको भी छिन्नविच्छिन्न कर चुके
पश्चात् उन अच्छे दानी मरुतोंने सोमपानसे उद्भूत आनन्द
वाण बाजा बजा कर रमणीय गानोंका सृजन किया ।।

११ वे वीर झीलका पानी उस दिशामें तेजी राहसे ले
और प्यासके मारे अकुलाते हुए गोतमके लिये जलकुंडमें
जलका झरना बहने दिया । इस भाँति वे अति तेजस्वी
संरक्षक शक्तियोंके साथ आ गये और अपनी शक्तियोंसे
ज्ञानीकी लालसाको तृप्त किया ।।

१२ हे वीर मरुतो ! शीघ्र गतिसे जानेवालोंको देनेके लि
तीन प्रकारकी धारक शक्तियोंसे मिलनेवाले तुम्हारे जो
विद्यमान् हैं और जिन्हें तुम दानीको दिया करते हो, उन्हें
दो । हे बलवान् वीरो ! हमें अच्छे वीरोंसे युक्त धन दो ।

(१३) वीर मरुत्

(ऋ. १।८६) गोतमो राहूगणः । मरुतः । गायत्री ।

मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः । स सुगोपातमो जनः ×१

अन्वयः- १ (हे) वि-महसः मरुतः ! दिवः यस्य हि क्षये पाथ, सः सु-गोपातमः जनः ॥

अर्थ-१ हे विलक्षण तेजसे तेजस्वी वीर मरुतो ! अन्तरि
से पधार कर जिसके घरमें तुम सोमरस पीते हो, वह अत्यन्त
ही सुरक्षित मानव है ॥

× अथर्व. २०।७।२.

यज्ञैर्वा यज्ञवाहसो विप्रस्य वा मतीनाम् । मरुतः शृणुता हवम् २
उत वा यस्य वाजिनोऽनु विप्रमतक्षत । स गन्ता गोमति व्रजे ३
अस्य वीरस्य बर्हिषि सुतः सोमो दिविष्टिषु । उक्थं मदश्च शस्यते ४
अस्य श्रोषन्त्वा भुवो विश्वा यश्चर्षणीरभि । सूरं चित् सनुषीरिषः ५
पूर्वीभिर्हि ददाशिम शरद्भिर्मरुतो वयम् । अवोभिश्चर्षणीनाम् ६
सुभगः स प्रयज्यवो मरुतो अस्तु मर्त्यः । यस्य प्रयांसि पर्षथ ७
शशमानस्य वा नरः स्वेदस्य सत्यशवसः । विदा कामस्य वेनतः ८
यूयं तत् सत्यशवस आविष्कर्त महित्वना । विध्यता विद्युता रक्षः ९
गूहता गुह्यं तमो वि यात विश्वमत्रिणम् । ज्योतिष्कर्ता यदुश्मसि १०

---

१ (हे) यज्ञ-वाहसः मरुतः ! यज्ञैः वा विप्रस्य मतीनां [illegible], इमं शृणुत ॥

२ उत वा यस्य वाजिनः विप्रं अनु अतक्षत, सः [illegible]गोमति व्रजे गन्ता ॥

४ दिविष्टिषु बर्हिषि अस्य वीरस्य सोमः सुतः, उक्थं [illegible]दः च शस्यते ॥

५ विश्वाः चर्षणीः, सूरं चित्, इषः सनुषीः, यः अभि-[illegible]तः अस्य वा श्रोषन्तु ॥

६ (हे) मरुतः ! चर्षणीनां अवोभिः वयं पूर्वीभिः [illegible]द्भिः हि ददाशिम ॥

७ (हे) प्र-यज्यवः मरुतः ! सः मर्त्यः सु-भगः अस्तु, [illegible]स प्रयांसि पर्षथ ॥

८ (हे) सत्य-शवसः मरुतः ! शशमानस्य स्वेदस्य [illegible]दः वा कामस्य विद ॥

९ (हे) सत्य-शवसः ! यूयं तत् महित्वना कर्त, विद्युता [illegible]विध्यता रक्षः विध्यत ॥

१० गुह्यं तमः गूहत, विश्वं अत्रिणं वि यात, यत् ज्योतिः [illegible]ष्कर्ता यदुश्मसि कर्त ॥

२ हे यज्ञका गुरुतर भार उठानेवाले मरुतो! यज्ञोंके द्वारा या विद्वान्की बुद्धिकी सहायतासे तुम हमारी प्रार्थना सुनो ॥

३ अथवा जिसके बलवान् वीर ज्ञानीके अनुकूल हो, उसे श्रेष्ठ बना देते हैं, वह अनेक गौओंसे भरे प्रदेशमें चला जाता है, अर्थात् वह अनगिनती गौएँ पाता है ॥

४ इष्टिके दिनमें होनेवाले यज्ञमें इस वीरके लिये सोमका रस निचोडा जा चुका है। अब स्तोत्रका गान होता है और सोमरससे उद्भूत आनन्दकी प्रशंसा की जाती है ॥

५ सभी मानवोंको तथा विद्वान्को भी अन्न मिल जाय, इसलिये जो शत्रुका पराभव करता है, उसका काव्य-गायन सभी वीर सुन लें ॥

६ हे वीर मरुतो ! कृषकोंकी तथा मानवोंकी समुचित रक्षा करनेकी शक्तियोंसे युक्त हम लोग अनेक वर्षोंसे सचमुच दान देते आ रहे हैं ॥

७ हे पूज्य मरुतो ! वह मनुष्य अच्छे भाग्यवाला रहता है कि जिसके अन्नका सेवन तुम करते हो ॥

८ हे सत्यसे उद्भूत बलसे युक्त मरुतो ! शीघ्र बलिदे द्वारा पसीनेसे भीगे हुए, तथा तुम्हारी सेवा करनेवालेके अभिलाषा पूर्ण करो ॥

९ हे सत्यके बलसे युक्त वीरो ! तुम बड़ा अपना बल प्रकट करो ! उस अपने तेजस्वी बलसे राक्षसोंको मार डालो ॥

१० गुफामें विद्यमान अँधेरा दूँढ दो, विनष्ट करो। सभी पेटू दुरात्माओंको दूर कर दो। जिस तेजको हम पानेके लिये आवश्यक है, वह हमें दिला दो ॥

(१४) वीर मरुत्

(ऋ. १।८७) गोतमो राहूगणः । मरुतः । जगती ।

प्रत्वक्षसः प्रतवसो विरप्शिनोऽनानता अविथुरा ऋजीषिणः ।
जुष्टतमासो नृतमासो अञ्जिभिर्व्यानज्रे के चिदुस्रा इव स्तृभिः १
उपह्वरेषु यदचिध्वं यायिं वय इव मरुतः केन चित् पथा ।
श्रोतन्ति कोशा उप वो रथेष्वा घृतमुक्षता मधुवर्णमर्चते २
प्रैषामज्मेषु विथुरेव रेजते भूमिर्यामेषु यद्ध युञ्जते शुभे ।
ते क्रीळयो धुनयो भ्राजदृष्टयः स्वयं महित्वं पनयन्त धूतयः ३
स हि स्वसृत् पृषदश्वो युवा गणोऽया ईशानस्तविषीभिरावृतः ।
असि सत्य ऋणयावानेद्योऽस्या धियः प्रावितोथा वृषा गणः ४

अन्वयः— १ प्र-त्वक्षसः प्र-तवसः वि-रप्शिनः अन्-आनताः अ-विथुराः ऋजीषिणः जुष्ट-तमासः नृ-तमासः के चित् उस्राः-इव स्तृभिः वि आनज्रे ॥

२ (हे) मरुतः ! वयः इव केन चित् पथा यत् उप-ह्वरेषु यायिं अचिध्वं, वः रथेषु कोशाः उप श्रोतन्ति, अर्चते मधु-वर्णं घृतं आ उक्षत ॥

३ यत् ह शुभे युञ्जते, एषां अज्मेषु यामेषु भूमिः विथुरा इव प्र रेजते, ते क्रीळयः धुनयः भ्राजत्-ऋष्टयः धूतयः स्वयं महित्वं पनयन्त ॥

४ सः हि गणः युवा स्व-सृत् पृषत्-अश्वः तविषीभिः आवृतः अया ईशानः । अथ सत्यः ऋण-यावा अ-नेद्यः वृषा गणः अस्याः धियः प्र अविता असि ॥

अर्थ— १ शत्रुदलको क्षीण करनेवाले, अच्छे बल बडेभारी वक्ता, किसीके सम्मुख शीश न झुकानेवा बिछुडनेवाले अर्थात् एकतापूर्वक जीवनयात्रा बितानेवाले, रस पीनेवाले या सीदा-सादा तथा सरल बर्ताव रख जनताको अतीव सेव्य प्रतीत होनेवाले तथा नेताओंमें प्र वीर सूर्यकिरणोंके समान वस्त्र तथा अलंकारोंसे युक्त प्रकाशमान होते हैं ॥

२ हे वीर मरुतो ! पंछीकी नाईं किसीभी मार्गसे जब हमारे समीप आनेवालोंको तुम इकट्ठे करते हो, तब तु रथोंमें विद्यमान भण्डार हमपर धनकी वर्षा करने ल और पूजा करनेवाले उपासकके लिये मधुकी नाईं स्वच्छ वाले घी या जलकी तुम वर्षा करते हो ॥

३ जब सचमुच ये वीर अच्छे कर्म करनेके लिये कटिब उठते हैं, तब इनके वेगवान् हमलोंमें पृथ्वीतक अनाथ न समान बहुतही काँपने लगती है । वे खिलाडीपनके भावसे प्रे गतिशील, चपल, चमकीले हथियारोंसे युक्त, शत्रुको विच कर देनेवाले वीर अपना महत्त्व या बडप्पन विख्यात डालते हैं ॥

४ वह वीरोंका संघ सचमुचही यौवनपूर्ण, स्वयंप्रेरक, र धब्बेवाले घोडे जोडनेवाला और भाँतिभाँतिके बलोंसे यु रहनेके कारण इस संसारका प्रभु एवं स्वामी बननेके लि उचित एवं सुयोग्य है । और वह सचाईसे बर्ताव करनेव तथा ऋण दूर करनेवाला, अनिन्दनीय और बलवान् दे पडनेवाला यह संघ इस हमारे कर्म तथा बातकी रक्षा क वाला है ॥

पितुः प्रत्नस्य जन्मना वदामसि सोमस्य जिह्वा प्र जिगाति चक्षसा ।
यदीमिन्द्रं शम्यृक्वाण आशतादिन्नामानि यज्ञियानि दधिरे ५
श्रियसे कं भानुभिः सं मिमिक्षिरे ते रश्मिभिस्त ऋक्वभिः सुखादयः ।
ते वाशीमन्त इष्मिणो अभीरवो विद्रे प्रियस्य मारुतस्य धाम्नः ६

प्रत्नस्य पितुः जन्मना वदामसि, सोमस्य चक्षसा
प्र जिगाति, यत् शमि ईं इन्द्रं ऋक्वाणः आशत,
इत् यज्ञियानि नामानि दधिरे ॥
६ ते कं श्रियसे भानुभिः रश्मिभिः सं मिमिक्षिरे, ते
ऋक्वभिः सु-खादयः वाशी-मन्तः इष्मिणः अभीरवः ते
विद्रे प्रियस्य मारुतस्य धाम्नः ॥

५ पुरातन पितासे जन्म पाये हुए हम कहते हैं कि, सोमके दर्शनसे जीभ (वाणी) प्रगति करती है, अर्थात् वीरोंके काव्यका गायन करती है । जब ये वीर शत्रुको शान्त करनेवाले युद्धमें उस इन्द्रको स्फूर्ति देकर सहायता करते हैं, तभी वे प्रशंसनीय नाम-यश धारण करते हैं ॥

६ वे वीर मरुत् सबको सुख मिले, इसलिये तेजस्वी किरणोंसे सब मिलकर वर्षा करना चाहते हैं । वे कवियोंके साथ उत्तम अन्नका सेवन करनेहारे या अच्छे आभूषण धारण करनेवाले, कुल्हाडी धारण करनेवाले, वेगसे जानेवाले तथा न डरनेवाले वे वीर प्रिय मरुतोंके स्थानको पाते हैं ॥

(१५) वीर मरुत्

(ऋ. १।८८) गोतमो राहूगणः । मरुतः । त्रिष्टुप्; १, ६ प्रस्तारपंक्तिः; ३ विराड्रूपा ।

आ विद्युन्मद्भिर्मरुतः स्वर्कै रथेभिर्यात ऋष्टिमद्भिरश्वपर्णैः । १
आ वर्षिष्ठया न इषा वयो न पप्तता सुमायाः
तेऽरुणेभिर्वरमा पिशङ्गैः शुभे कं यान्ति रथतूर्भिरश्वैः । २
रुक्मो न चित्रः स्वधितीवान् पव्या रथस्य जङ्घनन्त भूम

अन्वयः— १ (हे) मरुतः ! विद्युन्मद्भिः सु-अर्कैः ऋष्टिमद्भिः अश्व-पर्णैः रथेभिः आ यात, (हे) सु-मायाः ! वर्षिष्ठया इषा, वयः न, आ पप्तत ॥

२ ते मरुतेभिः पिशङ्गैः रथ-तूर्भिः अश्वैः शुभे वरं कं आ यान्ति, रुक्मः न चित्रः, स्वधितिवान्, रथस्य पव्या भूम जङ्घनन्तः ॥

अर्थ- १ हे वीर मरुतो! बिजलीसे युक्त या बिजलीकी नाईं अति तेजस्वी, अतिशय पूज्य, हथियारोंसे सजे हुए तथा घोडोंसे युक्त होनेके कारण वेगसे जानेवाले रथोंसे इधर आओ । हे अच्छे कुशल वीरो ! तुम श्रेष्ठ अन्नके साथ पंछियोंके समान वेगपूर्वक हमारे निकट चले आओ ॥

२ वे वीर रुक्मि दीख पडनेवाले तथा भूरे बदामी वर्णवाले और त्वरापूर्वक रथ-खींचनेवाले घोडोंके साथ शुभ कार्य करनेके लिये और उच्च कोटिका कल्याण संपादन करनेके लिये, सुख देनेके लिये आते हैं । वह वीरोंका संघ सुवर्णकी भाँति प्रेक्षणीय तथा शस्त्रोंसे युक्त है । ये वीर वाहनके पहियोंकी लोहपट्टिकाओंसे बनूची पृथ्वीपर गति करते हैं, गतिशील बनते हैं ॥

श्रिये कं वो अधि तनूषु वाशीर्मेधा वना न कृणवन्त ऊर्ध्वा।
युष्मभ्यं कं मरुतः सुजातास्तुविद्युम्नासो धनयन्ते अद्रिम् ३
अहानि गृध्राः पर्या व आगुरिमां धियं वार्कार्यां च देवीम्।
ब्रह्म कृण्वन्तो गोतमासो अर्केरूर्ध्वं नुनुद्र उत्सधिं पिबध्यै ४
एतत् त्यन्न योजनमचेति सस्वर्हं यन्मरुतो गोतमो वः।
पश्यन् हिरण्यचक्रानयोदंष्ट्रान् विधावतो वराहून् ५
एषा स्या वो मरुतोऽनुभर्त्री प्रति ष्टोभति वाघतो न वाणी।
अस्तोभयद् वृथासामनु स्वधां गभस्त्योः ६

---

३ श्रिये कं वः तनूषु अधि वाशीः (वर्तते), वना न मेधा ऊर्ध्वा कृणवन्ते, (हे) सु-जाताः मरुतः ! तुवि-द्युम्नासः युष्मभ्यं कं अद्रिं धनयन्ते ॥

४ (हे) गोतमासः ! गृध्राः वः अहानि परि आ आ अगुः, वार्कार्यां च इमां देवीं धियं अर्कैः ब्रह्म कृण्वन्तः, पिबध्यै उत्स-धिं ऊर्ध्वं नुनुद्रे ॥

५ (हे) मरुतः ! हिरण्य-चक्रान् अयो-दंष्ट्रान् वि-धावतः वर-आहून् वः पश्यन् गोतमः यत् एतत् योजनं सस्वः ह त्यत् न अचेति ॥

६ (हे) मरुतः ! गभस्त्योः स्व-धां अनु स्या एषा अनु-वावतः वाणी न वः प्रति स्तोभति, आसां वृथा [illegible]

३ विजयश्री तथा सुख पानेके लिये तुम्हारे शरीरोंपर आभूषण लटकते रहते हैं; वनके वृक्षोंके समान (अर्थात् वनोंमें वृक्ष जैसे ऊँचे बढते हैं, उसी तरह तुम्हारे उपासक तथा भक्त) अपनी बुद्धिको उच्च कोटिकी बना देते हैं। हे अच्छे परिवारमें उत्पन्न वीर मरुतो ! अत्यन्त दिव्य मनसे युक्त तुम्हारे भक्त, तुम्हें सुख देनेके लिये पर्वतसे भी धनका सृजन करते हैं। [पर्वतोंपरसे सोमसदृश वनस्पति लाकर तुम्हारे लिये अन्न तैयार करते हैं।]

४ हे गोतमो ! जलकी इच्छा करनेवाले तुम्हें अब अच्छे दिन प्राप्त हो चुके हैं। अब तुम जलसे करनेयोग्य इन दिव्य कर्मोंको पूज्य मंत्रोंसे ज्ञानसे पवित्र करो। पानी पीनेके लिये मिले, सुगमता हो, इसलिये अब ऊपर रखे हुए कुंडके जलको तुम्हारी ओर नहरद्वारा पहुंचाया गया है॥

५ हे वीर मरुतो ! स्वर्णविभूषित पहियेकी शकलके हथियार धारण करनेवाले फौलादकी तेज डाढोंसे धाराओंसे युक्त हथियार लेकर भाँति भाँतिके प्रकारोंसे शत्रुओंपर दौडकर टूट पडनेवाले और बलिष्ठ शत्रुओंका विनाश करनेवाले तुम्हें देखनेवाले ऋषि गोतमने जो यह तुम्हारी आयोजना-छन्दोबद्ध स्तुति गुप्त रूपसे वर्णित कर रखी है, वह सचमुच अवर्णनीय है।

६ हे वीर मरुतो ! तुम्हारे बाहुओंकी धारक शक्तिको (सूक्तों को) ध्यानमें रख कर वही यह तुम्हारे यशका पोषण करनेवाली हम जैसे स्तोताओंकी वाणी अब तुममेंसे प्रत्येकका वर्णन करती है। पहले भी इन वाणियोंने किसी विशेष हेतुके बिना इसी भाँति सराहना की थी॥

वीर-काव्यमें वीररस

(ऋ. १।८५)

यह मरुद्देवताका प्रकरण है और इसमें मरुतोंका काव्य है। (सद्य उत्) मरनेतक उठकर लडनेवाले ये वीर हैं। मरनेके लिये तैयार ये वीर हैं। देश, धर्म, जातिका समान सुरक्षित रखनेके लिये ये वीर कटिबद्ध रहते हैं, इसलिये इनका महत्त्व वीर काव्यमें अत्यंत अधिक है। यहां गोतम ऋषिके मरुद्देव सूक्तसे गाये चार सूक्त और १४ मंत्र हैं। इन मंत्रोंमें वीररस बढानेवाला बहुतही अच्छा वर्णन है। ये मंत्र अर्थ ध्यानपूर्वक पढनेसे पढनेवालेके मनमें वीरश्री उत्पन्न होती है, उत्साह बढ जाता है और कुछ शुभ कर्म करके दिखानेका भाव बढता है। इन मंत्रोंमें विशेष मनन करनेयोग्य विषय ये हैं—

१ सप्तसप्तसः सप्तयः, जनयः न, प्रशुम्भन्ते(१२।१)- ये शुभ कर्म करनेवाले, सात सातकी कतारोंमें जानेवाले ये वीर मरुत्, स्त्रियोंके समान, अपने आपको सजाते हैं। यहां वेद कैसे अपने शोभासे सजकर रहते हैं, वह पाठक देखें। वीर तो आजकलके सैनिकोंके समानही सजते थे।

२ धृष्वयः वीराः विदथेषु मदन्ति (१२।१)- शत्रुका नाश करनेवाले ये प्रबल वीर युद्धोंमें जानेसे आनन्दित होते हैं। युद्ध करनेके लिये ये उत्सुक तथा उत्साहित रहते हैं।

३ पृश्निमातरः महिमानं आशत (१२।२)- जन्मभूमिको माता माननेवाले ये वीर अपने पराक्रमके कारण महत्त्वको प्राप्त करते हैं। ये वीर मातृभूमिके भक्त हैं और यही उनके महत्त्वका कारण है।

४ गोमातरः अञ्जिभिः शुभयन्ते, तनूषु विक्रमतः धृषिरे (१२।३)- गौको माता माननेवाले अथवा मातृभूमिको माता माननेवाले ये वीर अलंकारोंसे अपने शरीरोंको सजाते हैं, शरीरोंपर विशेष अलंकार धारण करते हैं। सैनिक अपने शरीर सदाही सजाते हैं और प्रत्येक शस्त्र और शस्त्र चमकदार रखते हैं। इसलिये अच्छी तरह दीखती है।

५ विश्वं अभिमातिनं अपवाधन्ते (१२।३)- सब दुष्ट अच्छी तरह प्रतिकार करते हैं, शत्रुको रहने नहीं देते। वे लडकर शत्रुपर पूर्णतया पराभव करते हैं।

६ ये सुमखासः ऋष्टिभिः विभ्राजन्ते (१२।४)- ये उत्तम कर्म करनेवाले वीर चमकदार शस्त्रास्त्र धारण करनेसे विशेषही शोभते हैं।

७ मनोजुवः वृषव्रातासः रथेषु पृषतीः आ अयुग्ध्वं अच्युता चित् ओजसा प्र च्यावयन्तः (१२।४)- अपने रथोंमें मनके समान वेगवाले, प्रबल संघ करनेवाले, धब्बोंवाले घोडियोंको जोतते हैं और सुस्थिर हुए शत्रुओंको भी अपने बलसे उखाडकर फेंक देते हैं।

८ रघुष्यदः सप्तयः आ वहन्तु (१२।६)- शीघ्रगामी घोडोंसे ये वीर आते हैं अर्थात् इनके घोडे वेगवाले होते हैं।

९ रघुपत्वानः बाहुभिः प्र जिगात (१२।६)- शीघ्रगामी वीरो! अपने शक्तिवाले बाहुओंके द्वारा पराक्रम प्रकट करते हुए आओ।

१० वः ऊरु सदः कृतं बर्हिः आसादित (१२।६)- इन वीरोंके लिये बडा घर बनाया है, उसमें आसनोंपर ये बैठते हैं। आजकल सैनिकोंका घर अनेकोंके लिये जैसा एक होता है, वैसाही यह घर है, जो सब मरुतोंके लिये एकही है।

११ ते स्वतवसः अवर्धन्त (१२।७)- ये वीर अपने बलसेही बढते हैं। इनका बल इतना होता है कि इसी बलके कारण इनका महत्त्व समझा जाता है।

१२ उरु सदः चक्रिरे (१२।७) इनके रहनेके लिये बडा विस्तृत घर बनाया है, जिसमें ये सब रहते हैं।

१३ शूरा इव, युयुधयः न जग्मयः, अवस्यवः न पृतनासु येतिरे, राजान इव त्वेषसंदृशः नरः, मरुद्भ्यः विश्वा भुवना भयन्ते (१२।८)- ये शूर हैं, युद्ध करनेवाले वीरोंके समान ये शत्रुपर चढाई करके इकट्ठा होते हैं, यशप्राप्तिकी इच्छासे लडनेवाले वीरोंके समान ये सेनामें कार्य करते हैं, राजाओंके समान ये तेजस्वी नेता वीर हैं। इन वीरोंसे सब लोग भयभीत होते हैं।

(ऋ. १।८६)

१४ विश्वाः चर्षणीः एषः सक्षुवीः, यः अभिभूवः (१२।५)- सब मनुष्योंको अच्छे लिये, इन वीरोंने शत्रुका पराभव किया है। यही वीर है।

१५ सत्यश्रवसः [illegible] आदित् कर्म, विद्युता महिना रक्षः विश्वत (१३।५)- [illegible]

तुम अपना वह बल प्रकट करो कि जिस महत्त्वपूर्ण तेजस्वी बलसे राक्षकोंको मारते हो।

१६ विश्वं अत्रिणं वि यात (१३।१०)- सब पेटू दुष्टोंको दूर करो।

(ऋ. १।८७)

१७ (प्रत्वक्षसः) शत्रुदलको परास्त करनेवाले,(प्र-तवसः) बडे बलशाली,(विरप्शिनः) अच्छे वक्ता, (अनानतः) किसीके सामने सिर न झुकानेवाले, (अविथुराः) विभक्त न होनेवाले, एकतामें रहनेवाले, (नृतमासः) मनुष्योंमें श्रेष्ठ, वीरोंमें श्रेष्ठ, नेताओंमें श्रेष्ठ नेता वीर ये मरुत् हैं। (१४।१)

१८ ते धुनयः भ्राजदृष्टयः धूतयः स्वयं महित्वं पनयन्त (१४।३)— वे वेगवान् वीर तेजस्वी शस्त्र ले कर शत्रुको उखाड कर फेंक देते हैं और स्वयं महत्त्वको प्राप्त करते हैं। इस तरह ये पराक्रमी वीर शूर योद्धा हैं।

१९ सः गणः युवा स्वसृत् नविषीभिः आवृतः अया ईशानः (१४।४)— वह तरुण वीरोंका संघ स्वयं तेजसे आगे बढनेवाला, अनेक शक्तियोंसे युक्त तथा आगे बढकर शत्रुका स्वामी बननेवाला है।

२० सः नृपा गणः ऋणयावा अनेद्यः धिया प्र [illegible] (१४।५)- वह बलवान् वीरोंका संघ ऋण दूर करने- [illegible] करनेवाला है, अपनी बुद्धिसे सबकी सुरक्षा करता है।

२१ ते वाशीमन्तः इष्मिणः अभीरवः वे वीर शस्त्र धारण करनेवाले, वेगसे शत्रुपर हमला तथा निर्भय है। निडर वीर हैं।

(ऋ. १।८८)

२२ ऋष्टिमद्भिः अश्वपर्णैः रथेभिः आ य १)- शस्त्रास्त्रोंके साथ वेगवान् घोडोंसे युक्त रथ यहां आवें।

२३ स्वधीतिमान् रथस्य पव्या भूम ज (१५।२)- यह वीरोंका संघ अपने शस्त्र लेता है चक्रकी पट्टीसे भूमिको खोदता जाता है। इतना वेग है कि जिसके रथके चक्रसे भूमि खुदी जाती है।

२४ तनूपु अधि वाशीः (१५।३)- इन वीरोंके पर शस्त्र लटक रहे हैं।

२५ अयोदंष्ट्रान् विधावतः वराहून् पश्यन ५)— फौलादकी तेज डाढोंके सदृश भालाओंसे युक्त लेकर शत्रुपर टूट पडनेवाले और बलिष्ठ शत्रुओंको देकर लडनेवाले ये वीर हैं।

इस तरह इस वीर-काव्यमें वीरोंका वर्णन है। पाठ काव्य इस तरह पढें, वीरताके उपदेश लेवें और बोध लेकर जीवनमें डालें।

यहां मरुत्प्रकरण समाप्त हुआ।

विश्वे देव-प्रकरण

(१६) दीर्घायुकी प्राप्ति

[illegible] (ऋ. १।८९) गोतमो राहूगणः। विश्वे देवाः; (१–२, ८–९ देवाः, १० अदितिः)। जगती; २ विराट्-स्थाना; ८–१० त्रिष्टुप्।

[illegible]

[illegible]

अर्थ— १ कल्याणकारक, न दब जानेवाले, [illegible] देनेवाले, उन्नताको पहुंचनेवाले सुख कभी नहीं आवें [illegible] आवें। पर्वतोंका न रोकनेवाले, प्रतिदिन सुखको [illegible] देवा हमारा सदा संरक्षण करनेवाले हों।

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानां रातिरभि नो नि वर्तताम् । २
देवानां सख्यमुप सेदिमा वयं देवा न आयुः प्र तिरन्तु जीवसे
तान् पूर्वया निविदा हूमहे वयं भगं मित्रमदितिं दक्षमस्रिधम् । ३
अर्यमणं वरुणं सोममश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत्
तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत् पिता द्यौः । ४
तद् ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम्
तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियंजिन्वमवसे हूमहे वयम् । ५
पूषा नो यथा वेदसामसद् वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः । ६
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु
पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभंयावानो विदथेषु जग्मयः । ७
अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा अवसा गमन्निह

१ ऋजूयतां देवानां भद्रा सुमतिः, (तथा) देवानां रातिः
अभि नि वर्तताम् । वयं देवानां सख्यं उप सेदिम ।
नः आयुः जीवसे प्र तिरन्तु ॥

३ तान् पूर्वया निविदा वयं हूमहे, भगं, मित्रं, अदितिं,
दक्षं, अस्रिधं (नरुद्गणं), अर्यमणं, वरुणं, सोमं, अश्विना,
भगा सरस्वती नः मयः करत् ॥

४ तत् नः वातः मयोभु वातु । माता पृथिवी

२ सरल मार्गसे जानेवाले देवोंकी कल्याणकारक सुबुद्धि, (तथा) देवोंकी उदारता हमें प्राप्त होती रहे। हम देवोंकी मित्रता प्राप्त करें। देव हमें दीर्घ आयु हमारे दीर्घ जीवनके लिये देवें ॥

३ उन (देवों) को प्राचीन मंत्रोंसे हम बुलाते हैं। भग, मित्र, अदिति, दक्ष, विश्वासयोग्य (मरुतोंके गण), अर्यमा, वरुण, सोम, अश्विनीकुमार, भाग्ययुक्त सरस्वती हमें सुख देवें ॥

४ वायु उस सुखदायी औषधको हमारे पास बहा देवे ।

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ८
शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम् ।
पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः ९
अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।
विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् १०

८ हे देवाः ! कर्णेभिः भद्रं शृणुयाम। हे यजत्राः! अक्षभिः भद्रं पश्येम । स्थिरैः अङ्गैः तनूभिः तुष्टुवांसः यत् आयुः देवहितं वि अशेम ॥

९ हे देवाः ! शरदः शतं अन्ति इत् नु । नः तनूनां जरसं यत्र चक्र, यत्र पुत्रासः पितरः भवन्ति । नः आयुः गन्तोः मध्या मा रीरिषत ॥

१० अदितिः द्यौः, अदितिः अन्तरिक्षं, अदितिः माता, सः पिता, सः पुत्रः, अदितिः विश्वे देवाः, अदितिः पञ्चजनाः, अदितिः जातं जनित्वं (च) ॥

८ हे देवो ! कानोंसे हम कल्याणकारक (भाषण) सु
हे यज्ञके योग्य देवो ! आंखोंसे हम कल्याणकारक वस्तु दे
स्थिर सुदृढ अवयवोंसे युक्त शरीरोंसे (युक्त हम तुम्हारी) स्
करते हुए, जितनी हमारी आयु है, वहांतक हम देवोंका
ही करेंगे ॥

९ हे देवो! सौ वर्षतकही (हमारे आयुष्यकी मर्यादा)
उसमें भी हमारे शरीरोंका बुढापा (तुमने) किया है, तथा
जो पुत्र हैं वेही आगे पिता होनेवाले हैं, इसलिये हमारी
बीचमेंही न टूट जाय (ऐसा करो) ॥

१० अदितिही द्युलोक है, अन्तरिक्ष, माता, पिता, पु
सब देव, पञ्चजन (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद),
बन चुका है और जो बननेवाला है, वह सब अदिति ही है ॥

(१७) ऋजु नीति

(ऋ. १।९०) गोतमो राहूगणः । विश्वे देवाः । गायत्री; ९ अनुष्टुप् ।

ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयतु विद्वान् । अर्यमा देवैः सजोषाः १
ते हि वस्वो वसवानास्ते अप्रमूरा महोभिः । व्रता रक्षन्ते विश्वाहा २
ते अस्मभ्यं शर्म यंसन्नमृता मर्त्येभ्यः । बाधमाना अप द्विषः ३
वि नः पथः सुविताय चियन्त्विन्द्रो मरुतः । पूषा भगो वन्द्यासः ४

अन्वयः– १ विद्वान् मित्रः वरुणः च नः ऋजुनीती नयतु । देवैः सजोषाः अर्यमा च (नयतु) ॥

२ ते हि वस्वः वसवानाः, ते अप्रमूराः, महोभिः विश्वाहा व्रता रक्षन्ते ॥

३ द्विषः अपबाधमानाः अमृताः ते मर्त्येभ्यः अस्मभ्यं शर्म यंसन् ॥

४ वन्द्यासः इन्द्रः मरुतः पूषा भगः (देवाः) सुविताय नः पथः वि चियन्तु ॥

अर्थ– १ ज्ञानी मित्र और वरुण हमें सरल नीतिके मार्गसे ले जावें। देवोंके साथ उत्साही अर्यमा भी(हमें वैसेही सरल मार्ग से ले जावे)॥

२ वे धनके स्वामी, वे विशेष ज्ञानी, अपने सामर्थ्योंसे सर्वदा अपने नियमोंकी सुरक्षा करते हैं ॥

३ दुष्टोंका नाश करनेवाले वे अमर देव हम मानवोंके लिये शान्तिसुख देते हैं ॥

४ वन्दनके योग्य इन्द्र, मरुत्, पूषा, भग (ये देव) कल्याण करनेके हेतु हमारे लिये मार्ग निश्चित करें ॥

उत नो धियो गोअग्राः पूषन् विष्णवेवयावः । कर्ता नः स्वस्तिमतः ५
मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः । माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ६
मधु नक्तमुतोषसो मधुमत् पार्थिवं रजः । मधु द्यौरस्तु नः पिता ७
मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः । माध्वीर्गावो भवन्तु नः ८
शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा । शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः ९

हे पूषन्, हे विष्णो, हे एवयावः (मरुतः) ! (नः धियः गोअग्राः कर्त। उत नः स्वस्तिमतः कुरुत)।

ऋतायते वाताः मधु क्षरन्ति, सिन्धवः मधु (क्षरन्ति)। ओषधीः नः माध्वीः सन्तु ॥

नक्तं नः मधु, उत उषसः (मधुमन्ति), पार्थिवं रजः मधुमत्, पिता द्यौः मधु (भवतु) ॥

वनस्पतिः नः मधुमान्, सूर्यः मधुमान् अस्तु। गावः नः माध्वीः भवन्तु ॥

मित्रः नः शं, वरुणः शं, अर्यमा नः शं भवतु। इन्द्रः (च) नः शं, उरुक्रमः विष्णुः नः शं करोतु) ॥

५ हे पूषा ! हे विष्णो ! हे गतिमान् (मरुतो) ! तुम हमारी बुद्धियोंको मुख्यतः गौओंका विचार करनेवाली बनाओ। और हमें कल्याणसे युक्त करो।

६ सरल आचरण करनेवालेके लिये वायु माधुर्यको बहा कर ले आवे, नदियां मीठा रस (बहाते ले आवें), औषधियां हमारे लिये मीठी हों।

७ रात्रि मधुरता देवे, उषाएं (मधुरता लावें), पृथ्वी और अन्तरिक्ष मधुरता ले आवे, पिता द्युलोक मधुर होवे ॥

८ वनस्पतियां हमारे लिये मधुर हों, सूर्य मधुरता देवे। गौवें हमारे लिये मधुर हों।

९ मित्र हमारे लिये शान्ति देवे, वरुण और अर्यमा हमें शान्ति देनेवाले हों। बृहस्पति और इन्द्र हमें शान्ति देवे, विशेष प्रगति करनेवाला विष्णु हमें शान्ति देवे।

दशम मण्डल

(१८) वायु

(ऋ. १०।१३७) गोतमः । विश्वे देवाः, वातः । अनुष्टुप् ।

आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद्रपः । त्वं हि विश्वभेषजो देवानां दूत ईयसे १

हे वात ! भेषजं आ वाहि, हे वात ! यद् रपः वि वाहि । हि त्वं विश्वभेषजः देवानां दूतः ईयसे ॥

१ हे वायु ! औषध यहां ले आ। हे वायु ! जो रोग है वह यहां ले आ। क्योंकि तू सब औषधियोंसे युक्त है और देवोंका दूत होकर चलता है।

विश्वे देवा देवता

इस सूक्तोंका देवता 'विश्वे देवाः' है। यह मेरे एक मित्र कहते हैं। 'विश्वे देवाः' का अर्थ 'सब देवता' है। सब देवताएं जिन मंत्रोंमें होती हैं, उन मंत्रोंका 'विश्वे देवा' देवता है। 'विश्वे देवाः', 'सर्व देवाः', 'सर्वे देवाः', 'सकल देवाः' आदि शब्दोंका अर्थ समानही है। इस सूक्तके मंत्रोंमें जिन देवताओंके नाम हैं वे अब देखिये, इनमें कितने [illegible] देवता हैं—

मंत्र	देवता
ऋ. १।८९। १	ऋतवः, देवाः
२	देवाः
३	भगः, मित्रः, अदितिः, दक्षः, अस्रिधः (मरुतः), अर्यमा, वरुणः, सोमः, अश्विनौ, सरस्वती,
४	वातः, पृथ्वी, द्यौः, प्रावाणः, अश्विनौ
५	ईशानः, पूषा
६	इन्द्रः, पूषा, तार्क्ष्यः, बृहस्पतिः
७	मरुतः, विश्वे देवाः
८	देवाः, यजत्राः
९	देवाः
१०	अदितिः, द्यौः, अन्तरिक्षं, माता, पिता, पुत्रः, विश्वे देवाः, पञ्चजनाः,
ऋ. १।९०। १	मित्रः, वरुणः, अर्यमा
२	ते (देवाः)
३	अमृताः
४	इन्द्रः, मरुतः, पूषा, भगः,
५	पूषा, विष्णुः, एवयावः (मरुतः)
६	वाताः, सिन्धवः, ओषधीः
७	नक्तं, उषसः, पार्थिवं रजः, द्यौः
८	वनस्पतिः, सूर्यः, गावः
९	मित्रः, वरुणः, अर्यमा, बृहस्पतिः, इन्द्रः, विष्णुः ।

इन मंत्रोंके इन देवताओंको देखनेसे पाठकोंको पता लग जायगा कि इन देवताओंकी गणना करना कठिन है और गणना की भी, तो वह मंत्रके समान लंबी चौडी पंक्ति बनेगी। इसलिये ऐसे सूक्तोंके देवता 'विश्वे देवाः' कहे गये हैं। विश्वे देवा देवताके अन्य मंत्रोंमें इनसे भिन्न परंतु ऐसेही अनेक देवताओंके नाम आयेंगे। किंवा केवल 'देवाः' पदही रहेगा जैसे ऊपरके दो तीन मंत्रोंमें है। इसका आशय "अनेक देवता" इतनाही है।

पाठक इस बातको स्मरण रखें कि विश्वे देवा करके कोई विशिष्ट देवता नहीं है, परंतु अनिश्चित तथा अनेक देवताओंका उल्लेख विभिन्न मंत्रोंमें विभिन्न रीतिसे आता है। इसका विश्वे देवा देवता है। अनेक देवताओंसे अपने कल्याणकी प्रार्थना उपासक करता है, यही मुख्य विषय ऐसे सूक्तोंका होता है।

दीर्घ आयुकी प्राप्ति

इस सूक्तका मुख्य विषय यह है कि मनुष्यकी सुरक्षा होकर वह दीर्घ आयुसे युक्त होकर आनन्द प्रसन्न हो। इसके लिये जो उपाय इस सूक्तमें दिये हैं, उनका मनन करना चाहिये-

कर्म कैसे करें ?

१ ऋतवः भद्राः अदब्धासः अपरीतासः उद्भिदः (मं. १)- कर्म ऐसे हों कि जो निःसन्देह (भद्राः) कल्याण करनेवाले हों, उच्चतर अवस्थाको पहुंचानेवाले हों, (अ-दब्धासः) जिनके करनेके लिये किसीके नीचे दब जाना न पडे, किसी दबावके अन्दर आकर कर्म न किये जायँ, प्रत्युत स्वयंस्फूर्त कर्म किये जायं, और (उत्-भिदः) ऊपरके दबावको दूर कर उन्नतिके मार्गको खोलनेवाले हों, जो उन्नतिका मार्ग दबाव कारण रुका है उसको खोलनेवाले हैं, ऊपरके दबावका दूर करनेवाले कर्म हों।

२ अ-प्रा-युवः दिवेदिवे रक्षितारः देवाः (मं. १)- प्रगतिके मार्गको प्रतिबंध न हो और प्रति दिन सुरक्षितता होती रहे, यह करनेवाले दिव्य विबुध संबंधी कार्य करनेमें सहायक हों।

३ ऋजूयतां भद्रा सुमतिः (मं. २)- सरल मार्ग जानेवालोंकी कल्याण करनेवाली सुबुद्धिकी सहायता मिले। सरल स्वभाववालोंकी प्रतिकूलता कभी न हो।

४ देवानां रातिः नः अभि निवर्तताम् (मं.२)-दिव्य विबुधोंकी दानरूप सहायता हमें प्राप्त हो। हम ऐसा शुभ कर्म करें कि जिससे देवताओंकी सहायता मिलती जाय॥

५ वयं देवानां सख्यं उप सेदिम (मं.२)- हमें देवोंकी मित्रता प्राप्त हो। हम ऐसे शुभ कर्म करें कि जिससे दैवी संपत्तिवाले विबुध हमारे मित्र बनें।

६ नः जीवसे देवाः आयुः प्रतिरन्तु (मं.२)- हमारे आयु दीर्घ होनेके लिये देव हमें अधिक आयु प्रदान करें। अर्थात् देवोंकी सहायतासे हम दीर्घायु बनें।

१ मित्र, वरुण, अर्यमा आदि देव हमें सरल मार्गसे चलावें। टेढ़े मार्गपर हमें न चलावें। (मं. १)

२ (ते महोभिः व्रता रक्षन्ते)–वे अपनी शक्तियोंसे सबको सुराक्षित रखते हैं, नियमोंको नहीं तोड़ते, इसलिये नियमोंकी रक्षा करनेके कारणही उनकी शक्ति बढ़ी है। अर्थात् जो सुनियमोंका यथायोग्य पालन करेंगे उनकी भी शक्ति बढ़ेगी और वे श्रेष्ठ बनेंगे। यहां व्रतपालनका आदेश दिया है। (मं. २)

३ (द्विषः अपबाधमानाः) दुष्ट शत्रुओंको दूर करो, उनको प्रतिषेध करो, उनके दुष्ट कर्मोंको प्रतिषेध करो, यह है स्वास्थ्य-प्राप्तिका साधन। राजव्यवस्थासे दुष्टोंको शासन होना चाहिये। (अमृताः मर्त्येभ्यः शर्म यंसन्) अमर बनकर मरनेवालोंको सुख दो। यह नियम समाजके स्वास्थ्यका है। ज्ञानी बनकर अज्ञानियोंको ज्ञान देना चाहिये। शक्तिवान् बनकर निर्बलोंकी सुरक्षा करनी चाहिये। धनवान् बनकर गरीबोंकी सहायता करनी चाहिये। कर्मकुशल बनकर अकुशलोंको कौशल सिखाना चाहिये। यह भाव अमर बनकर मरनेवालोंको अमर बननेका मार्ग दिखाना चाहिये, इस सूक्तमय वेदमंत्रमें पाठक देखें। (मं. ३)

४ वन्दनके योग्य देव हमारी सुविधाका मार्ग (नः सुविताय पथः) हमें बतावें। उस मार्गसे हम जायँ और उन्नति प्राप्त करें। (मं. ४)

५ (गोअग्राः धियः कर्त) तुम्हारी बुद्धिमें गौओंको अग्र स्थान प्राप्त हो। माननी जीवनमें गौको मुख्य स्थान है (स्वस्तिमतः कर्त) गौको मानी जीवनमें अग्र स्थान देनेसे मानवोंको कल्याण प्राप्त होगा। (मं. ५)

६ (ऋतायते सर्वं मधु भवति) सरल मार्गसे जानेवालेके लिये सब जगत् अर्थात् वायु, नदियां, समुद्र, ओषधियां, दिन, रात, उषा, पृथ्वी, अन्तरिक्ष, आकाश, वनस्पति, सूर्य, गौवें, मित्र, वरुण, अर्यमा, बृहस्पति, इन्द्र, विष्णु आदि सब मीठा होगा। इसलिये ऋतका मार्ग सब मनुष्य अपने आचरणमें लावें। 'ऋत' का अर्थ 'सरल, सरल, सच, अटल नियम' आदि है। सभी मानवी जीवनको सुखमय बनानेकी शक्ति इस ऋतमें है।

यहां विश्वे देवा का द्वितीय सूक्त समाप्त होता है।

१ तृतीय सूक्तमें कहा है कि 'वायु औषधिगुणोंको हमारे तक पहुंचाते और हमारे अन्दर जो दोष हैं उनको दूर करे।' श्वास और उच्छ्वास, तथा वायुके बहनेसे अशुद्धिका दूर होना और जीवन प्राप्त होना, यह सब क्रिया इसमें वर्णन की है। श्वाससे प्राण-वायु अन्दर जाता और वह रक्तके साथ मिलता है और उच्छ्वाससे शरीरसे दोष दूर होते हैं। इस तरह शरीर रोगरहित होता है। वायुके वेगसे बहनेसे भी नगरमें शुद्ध वायु आता है, जो नगरके दोषोंको दूर करता है। इस तरह वा (देवानां दूतः) देवोंका दूतही है, जो सब औषधिगुणोंको देकर सबको नीरोग करता है।

इस तरह यह मंत्र आरोग्य-रक्षणके उत्तम निर्देश दे रहा है। इसलिये यह मननीय है।

यहां विश्वे देव-प्रकरण समाप्त हुआ।

उषा-प्रकरण

(१९) उषाः

(ऋ. १।९२) गोतमो राहूगणः। उषाः, १६–१८ अश्विनौ। १–४ जगती; ५–१२ त्रिष्टुप्; १३–१८ उष्णिक्।

एता उ त्या उषसः केतुमक्रत पूर्वे अर्धे रजसो भानुमञ्जते।
निष्कृण्वाना आयुधानीव धृष्णवः प्रति गावोऽरुषीर्यन्ति मातरः १

अन्वयः— १ त्याः एताः उषसः केतुं अक्रत। रजसः पूर्वे अर्धे भानुं अञ्जते। धृष्णवः आयुधानि इव, निष्कृण्वानाः गावः अरुषीः मातरः प्रति यन्ति॥

अर्थ–१ इन उषाओंने अपना ध्वज फहराया है। अन्तरिक्षके पूर्व आधे भागमें (इन्होंने) प्रकाश किया है। साहसी योद्धा जिस तरह अपने शस्त्र (तेजस्वी करता है, उस तरह), तेज फैलाती हुई ये गौवें, तेजस्वी माताएँ जैसी, इसही ओर आ रही हैं॥

उदपप्तन्नरुणा भानवो वृथा स्वायुजो अरुषीर्गा अयुक्षत ।
अक्रन्नुषासो वयुनानि पूर्वथा रुशन्तं भानुमरुषीराशिश्रयुः २
अर्चन्ति नारीरपसो न विष्टिभिः समानेन योजनेना परावतः ।
इषं वहन्तीः सुकृते सुदानवे विश्वेदह यजमानाय सुन्वते ३
अधि पेशांसि वपते नृतूरिवापोर्णुते वक्ष उस्रेव बर्जहम् ।
ज्योतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वती गावो न व्रजं व्युषा आवर्तमः ४
प्रत्यर्ची रुशदस्या अदर्शि वि तिष्ठते बाधते कृष्णमभ्वम् ।
स्वरुं न पेशो विदथेष्वञ्जिभिं दिवो दुहिता भानुमश्रेत् ५
अतारिष्म तमसस्पारमस्योषा उच्छन्ती वयुना कृणोति ।
[illegible] ६

घूमने है। जिस तरह देखनेको परिक्रमा की जाती है, उस तरह उषा चारों ओर परिक्रमा करती है। देखनेवाले मानवोंके पूर्व दक्षिण पश्चिम और उत्तर दिशाओंमें वह घूमती है, इस कारण इसको नटी कहा है। यह नटी जैसा होती है जो (वेशां·सि अधि वपते) अनेक प्रकारके रूपोंको और वर्णोंको पहनती है। उषाके रंग पल्ले पल्लेमें बदलते रहते हैं, इसपर कविने यह वर्णन किया है। (उच्छः अप ऊर्णुते) छाती खुली रखती है, स्तन खुले करके दिखाती है। पतिव्रता ऐसा नहीं करती, नर्तकी जैसा ऐसा करती है यह फर्क सूचकता और नर्तकीमें है।

गोतम ऋषि

सातवें मंत्रमें(दिवः स्तवे दुहिता गोतमेभिः) इस युक्तिसे उषाकी पुत्रीका समान गोतम ऋषियोंने किया। गोतम गोत्रमें उत्पन्न हुए ऋषियोंने यह स्तोत्र किया है। गोतम गोत्रमें अनेक ऋषि होंगे, उनका यह नाम इस मंत्रमें आया है।

घरमें सेवक

आठवें मंत्रमें 'दास-प्र-वर्ग' पद है। दास नौकरको कहते हैं, उन सेवकोंका बड़ा वर्ग अर्थात् दस बीस या अधिक सेवक घरमें रहें, वे घरवालोंके समान काम करें।

वैदिक ऋषि अपने घरमें बीसियों नौकर चाकर सेवक रहें, ऐसी प्रार्थना करते थे, इससे उनके बड़े विस्तृत प्रपंचका पता लगता है। घरमें बहुत आदमी कर्तृत्ववान् न होंगे तो इतने नौकर क्योंकर वहां रहेंगे? इससे सिद्ध होता है कि ऋषियोंका घर बहुत नर-नारियोंसे और अनेक बालबच्चोंसे भरा रहता था। इसीलिये इस सूक्तमें अनेक बार अनेक गौवें, घोड़े और विशाल धन चाहिये, ऐसा कहा है।

कसाई स्त्री

इस सूक्तके दसवें मंत्रमें 'कृत्नु' पद 'कसाई स्त्री' का वाचक है। 'कृत्' धातुका अर्थ 'काटना' 'छेदना, टुकडा करना' है। 'कृत्नु'का अर्थ काटनेवाली स्त्री, कसाई स्त्री। यह स्त्री 'श्व-घ्नी' कुत्तेको काटकर टुकड़े करती है और 'विजः आमिमाना' पक्षियोंके पंखोंको काटती है। श्वपाक चांडाल जातिकी यह स्त्री होगी। इसका यह धंदाही होगा। उषाके लिये यह उपमा है। जैसी यह कसाई स्त्री पशुको काटकर रक्तके लाल रंगसे रंगित होकर लाल दीखती है, वैसीही उषा (मर्तस्य आयुः नर-पत्नी) मानवोंकी आयुको काटती है, इस कारण वह लाल दिखती है। यह सुन्दर उपमा इस मंत्रमें है।

जार के बनसे शोभना

जो स्त्री पतीको छोड़कर दूसरे मनुष्यके साथ संबंध रखती है, उस स्त्रीको जारिणी कहते, है और जिसके साथ संबंध रखती है, उसको जार कहते हैं। जार उस स्त्रीके लिये नया नया कपड़े देता है और वह स्त्री जारके दिये आभूषणोंसे सुशोभित होती है। यहां उषा स्त्री है, उसका जार सूर्य है, सूर्यके प्रकाशसे यह उषा सुशोभित होती है। (योषा जारस्य चक्षसा वि भाति। ११) स्त्री जारके आभूषणोंसे सुशोभित होती है। 'जार' शब्दका अर्थ 'प्रेम करनेवाला पति' ऐसा भी होना संभव है। इस अर्थसे व्यभिचारके दोषकी कल्पना दूर हो जायगी। 'जार' का अर्थ 'प्रियकर' (lover) है। यह उषा अपने प्रियकरपर प्रेम करती है, अपनी बहन (स्वसारं अप गुहति। ११) अपने बहिनको गुप्त करती है। अपने बहिनपर भी प्रेम नहीं रखती। यह काव्य उषाके आनेसे रात्रि दूर होती है, इसपर है।

इस उषा-सूक्तका शेष वर्णन समझनेमें आ सकता है। उषा अपना गेरुआ ध्वज फहराती है, आकाशमें प्रकाश फैलाती है। साहसी वीर अपने शत्रुओंको चमकाता है वैसा तेज फैलाती है। रही है, उषाके रथको लाल घोड़े या बैल जोते जाते हैं, ये सूर्यकी किरणही हैं। उषा आनेके बाद मानवोंको प्रकाश मिलता है और वे अनेक कर्म करने लगते हैं। अर्थात् उषाही ये सब कर्म करती है। इस तरह इस काव्यका वर्णन समझने योग्य है।

पदोंकी उलटी योजना

हिंदी भाषाके साथ तुलना करनेपर वैदिक भाषाकी पद-योजना उलटी प्रतीत होती है, जैसी अंग्रेजीकी होती है, देखिये–

१ अर्चन्ति, नारीः अपसो न विष्टिभिः।
२ इयं वहन्तीः, सुकृते यजमानाय।
३ अपोर्णुते वक्षः।
४ वाधते कृष्णं अभ्वम्।
५ अतारिष्म तमसः पारम्।
६ नेत्री सूनृतानाम्।
७ उप मासि वाजान्।

र्षि ।
ो दिवो अन्तान् ।
ती मनुष्या युगानि ।
ती दैव्या व्रतानि ।

ो अनुवाद ऐसा होता है, इसमें शब्दोंका स्थान
र ऐसाही रहता है–

sing their song, like women,
their tasks.
ging refreshment, to the liberal

covers her breast.
res away the darksome monster.
e have overcome the limit of this
ss.
e leader of charm of pleasent

onferrest on us strength.
May I gain that wealth.
Discovering heaven's borders.
Diminishing the days of human
ures.

11 Never transgressing the divine commandments.

हिंदीमें इसके उलटे शब्द-प्रयोग होते हैं। जैसा—

१ स्त्रियाँ कर्ममें लगीं हुईं स्तोत्र-पाठ करती हैं,
२ उत्तम कर्म करनेवाले यजमानके लिये अन्न ले जाती हैं,
३ छाती खोलती है,
४ काले अन्धकारको हटाती है,
५ अन्धकारके पार हम पहुंचे,
६ सत्य भाषणोंकी चलानेवाली,
७ बलोंको देती है,
८ धन प्राप्त करें,
९ आकाशके अन्तोंको प्रकट करती है,
१० मानवी युगोंको कम करती है, आयुष्य क्षीण करती है,
११ दिव्य नियमोंका उल्लंघन नहीं करती।

यहां छन्दके कारण शब्द आगे पीछे हुए होंगे, पर संस्कृतमें और वेदमें भी ऐसेही पद आते हैं। 'पुस्तकं रामस्य' (रामका पुस्तक) ऐसा हिंदीके उलटे क्रमसे शब्द रखकर बोलना और लिखना संस्कृतमें अधिक अच्छा माना जाता है। अंग्रेजीमें तो यही क्रम सदाही रखा जाता है।

॥ उषा-प्रकरण समाप्त हुआ ॥

अग्नीषोम-प्रकरण

(२०) बल, वीर्य और दीर्घायु

(ऋ. १।९३) गोतमो राहूगणः । अग्नीषोमौ । १-३ अनुष्टुप्; ४-७, १२ त्रिष्टुप्; ८ [illegible]; ९-११ गायत्री ।

अग्नीषोमाविमं सु मे शृणुतं वृषणा हवम् । प्रति सूक्तानि हर्यतं भवतं दाशुषे मयः ।
अग्नीषोमा यो अद्य वामिदं वचः सपर्यति । तस्मै धत्तं सुवीर्यं गवां पोष स्वश्व्यम् ।

अन्वयः— १ हे वृषणा अग्नीषोमौ ! इमे मे हवं
२ शृणुतं । सूक्तानि प्रति हर्यतं । दाशुषे मयः भवतम् ॥
३ हे अग्नीषोमौ ! यः अद्य वां इदं वचः सपर्यति, तस्मै
[illegible] ॥

घूमते हैं। जिस तरह देवताकी प्रदक्षिणा की जाती है, उस तरह उषा चारों ओर प्रदक्षिणा करती है। देखनेवाले मानवोंके पूर्व दक्षिण पश्चिम और उत्तर दिशाओंमें वह घूमती है,इस कारण इसको नटी कहा है। यह नटी वेश्या जैसी होती है जो (**पेशांसि अधि वपते**) अनेक प्रकारके रूपोंको और वस्त्रोंको पहनती है। उषाके रंग घण्टे घण्टेमें बदलते रहते हैं, इसपर कविने यह वर्णन किया है। (**वक्षः अप ऊर्णुते**) छाती खुली रखती है, स्तन खुले करके दिखाती है। धर्मपत्नी ऐसा नहीं करती, नर्तकी वेश्या ऐसा करती है यह फर्क गृहपत्नी और नर्तकीमें है।

गोतम ऋषि

सातवें मंत्रमें(**दिवः स्तवे दुहिता गोतमेभिः**) इस द्युलोककी पुत्रीका स्तवन गोतम ऋषियोंने किया। गोतम गोत्रमें उत्पन्न हुए ऋषियोंने यह स्तोत्र किया है। गोतम गोत्रमें अनेक ऋषि होंगे, उनका यह नाम इस मंत्रमें आया है।

घरमें सेवक

आठवें मंत्रमें '**दास-प्र-वर्ग**' पद है। दास सेवकको कहते हैं, उन सेवकोंका बडा वर्ग अर्थात् दस बीस या अधिक सेवक घरमें रहें, वे घरवालोंके समान काम करें।

वैदिक ऋषि अपने घरमें बीसियों नोकर चाकर सेवक रहें, ऐसी प्रार्थना करते थे, इससे उनके बडे विस्तृत प्रपंचका पता लगता है। घरमें बहुत आदमी कर्तृत्ववान् न होंगे तो इतने नौकर क्योंकर वहां रहेंगे ? इससे सिद्ध होता है कि ऋषियोंका घर बहुत नर-नारियोंसे और अनेक बालबच्चोंसे भरा रहता था। इसीलिये इस सूक्तमें अनेक वार अनेक गौवें, घोडे और विशाल धन चाहिये, ऐसा कहा है।

कसाई स्त्री

इस सूक्तके दसवें मंत्रमें '**कृत्नु**' पद 'कसाई स्त्री' का वाचक है। 'कृत्' धातुका अर्थ 'काटना' छेदना, टुकडा करना' है। '**कृत्नु**'का अर्थ काटनेवाली स्त्री, कसाई स्त्री। यह स्त्री '**श्वघ्नी**' कुत्तेको काटकर टुकडे करती है और '**विजः आमिमाना**' पक्षियोंके पंखोंको काटती है। श्वपाक चांडाल जातिकी यह स्त्री होगी। इसका यह धंदाही होगा। उषाके लिये यह उपमा है। जैसी यह कसाई स्त्री पशुको काटकर रक्तके लाल रंगसे रंगित होकर लाल दीखती है, वैसीही उषा (**मर्तस्य आयुः नरयन्ती**) मानवोंकी आयुको काटती है, इस कारण वह लाल दिखती है। यह सुन्दर उपमा इस मंत्रमें दी है।

जारके धनसे शोभना

जो स्त्री पतिको छोडकर दूसरे मनुष्यके साथ संबंध रखती है, उस स्त्रीको जारिणी कहते हैं और जिसके साथ संबंध रखती है, उसको जार कहते हैं। जार उस स्त्रीको जेवर तथा कपडे देता है और वह स्त्री जारके दिये आभूषणोंसे सुशोभित होती है। यहां उषा स्त्री है, उसका जार सूर्य है, सूर्यके प्रकाशसे यह उषा सुशोभित होती है (**योषा जारस्य चक्षसा वि भाति**। ११) स्त्री जारके आभूषणोंसे सुशोभित होती है। 'जार' शब्दका अर्थ प्रेम करनेवाला पति ऐसा भी होना संभव है। इस अर्थसे व्यभिचार दोषकी कल्पना दूर हो सकेगी। 'जार' का अर्थ 'प्रियकर' (lover) है। यह उषा अपने प्रियकरपर प्रेम करती है, अतः वह (**स्वसारं अप युयोति**। ११) अपने बहिनको भी दूर करती है। अपने बहिनपर भी प्रेम नहीं रखती। यह काव्य उषाके आनेसे रात्रि दूर होती है, इसपर है।

इस उषा-सूक्तका शेष वर्णन समझमें आ सकता है; उसने अपना गेरुआ ध्वज फहराया है, आकाशमें प्रकाश फैलाया है, साहसी वीर अपने शत्रोंको चमकाता है वैसा तेज फैलाया जा रहा है, उषाके रथको लाल घोडे या बैल जोते जाते हैं, ये सूर्यकिरणही हैं। उषा आनेके बाद मानवोंको प्रकाश मिलता है और वे अनेक कर्म करने लगते हैं। अर्थात् उषाही ये सब कर्म कराती है। इस तरह इस काव्यका वर्णन समझने योग्य है।

पदोंकी उलटी योजना

हिंदी भाषाके साथ तुलना करनेपर वैदिक भाषाकी पद-योजना उलटी प्रतीत होती है, जैसी अंग्रेजीकी होती है, देखिये-

१ **अर्चन्ति, नारीः अपसो न विष्टिभिः।**
२ **इयं वहन्तीः, सुकृते यजमानाय।**
३ **अपोर्णुते वक्षः।**
४ **वाधते कृष्णं अभ्वम्।**
५ **अतारिष्म तमसः पारम्।**
६ **नेत्री सूनृतानाम्।**
७ **उप मासि वाजान्।**

स्यां रायें ।
र्वन्ती दिवो अन्तान् ।
प्रजनयन्ती मनुष्या युगानि ।
अजनयन्ती दैव्या व्रतानि ।

क क्रमेसे अनुवाद ऐसा होता है, इसमें शब्दोंका स्थान
म और ऐसाही रहता है–

They sing their song, like women,
in their tasks.
Bringing refreshment, to the liberal
ree.
Discovers her breast.
Drives away the darksome monster.
We have overcome the limit of this
ness.
The leader of charm of pleasent
ds,
Conferrest on us strength.
May I gain that wealth.
Discovering heaven's borders.
Diminishing the days of human
atures.

11 Never transgressing the divine commandments.

हिंदीमें इसके उलटे शब्द-प्रयोग होते हैं। जैसा—

१ स्त्रियाँ कर्ममें लगी हुई स्तोत्र-पाठ करती हैं,
२ उत्तम कर्म करनेवाले यजमानके लिये अन्न ले जाती हैं,
३ छाती खोलती हैं,
४ काले अन्धकारको हटाती हैं,
५ अन्धकारके पार हम पहुंचे,
६ सब भाषाओंको चलानेवाली,
७ दाताओंको देती है,
८ धन प्राप्त करें,
९ आकाशके अन्तोंको प्रकट करती है,
१० मानवी युगोंको कम करती है, आयुष्य क्षीण करती है,
११ दिव्य नियमोंका उल्लंघन नहीं करती।

यहां छन्दके कारण शब्द आगे पीछे हुए होंगे, पर संस्कृतमें और वेदमें भी ऐसेही पद आते हैं। 'पुस्तकं रामस्य' (रामका पुस्तक) ऐसा हिंदीके उलटे क्रमसे शब्द रखकर बोलना और लिखना संस्कृतमें अधिक अच्छा माना जाता है। अंग्रेजीमें तो यही क्रम सदाही रखा जाता है।

॥ उषा-प्रकरण समाप्त हुआ ॥

अग्नि-प्रकरण

(२०) बल, वीर्य और दीर्घायु

अग्नीषोमा य आहुतिं यो वां दाशाद्धविष्कृतिम् ।
स प्रजया सुवीर्यं विश्वमायुर्व्यश्नवत् ३

अग्नीषोमा चेति तद् वीर्यं वां यदमुष्णीतमवसं पणिं गाः ।
अवातिरतं वृसयस्य शेषोऽविन्दतं ज्योतिरेकं बहुभ्यः ४

युवमेतानि दिवि रोचनान्यग्निश्च सोम सक्रतू अधत्तम् ।
युवं सिन्धूँरभिशस्तेरवद्यादग्नीषोमावमुञ्चतं गृभीतान् ५

आन्यं दिवो मातरिश्वा जभारामथ्नादन्यं परि श्येनो अद्रेः ।
अग्नीषोमा ब्रह्मणा वावृधानोरुं यज्ञाय चक्रथुरु लोकम् ६

अग्नीषोमा हविषः प्रस्थितस्य वीतं हर्यतं वृषणा जुषेथाम् ।
सुशर्माणा स्ववसा हि भूतमथा धत्तं यजमानाय शं योः ७

यो अग्नीषोमा हविषा सपर्याद् देवद्रीचा मनसा यो घृतेन ।
तस्य व्रतं रक्षतं पातमंहसो विशे जनाय महि शर्म यच्छतम् ८

---

३ हे अग्नीषोमौ ! यः आहुतिं वां दाशात्, यः हविष्कृतिं (च दाशात्), सः प्रजया सुवीर्यं विश्वं आयुः व्यश्नवत् ॥

४ हे अग्नीषोमौ ! वां तत् वीर्यं चेति, यत् गाः अवसं पणिं अमुष्णीतम् । वृसयस्य शेषः अवातिरतम् । ज्योतिः एकं बहुभ्यः अविन्दतम् ॥

५ हे सोम ! (त्वं) अग्निः च सक्रतू, युवं रोचनानि एतानि दिवि अधत्तम् । हे अग्नीषोमौ ! गृभीतान् सिन्धून्, अभिशस्तेः अवद्यात् अमुञ्चतम् ॥

६ हे अग्नीषोमौ ! अन्यं मातरिश्वा दिवः आ जभार । अन्यं श्येनः अद्रेः परि अमथ्नात् । ब्रह्मणा वावृधानौ यज्ञाय उरुं लोकं चक्रथुः ॥

७ हे अग्नीषोमा ! प्रस्थितस्य हविषः वीतम् । हर्यतं (च) । हे वृषा ! जुषेथाम् । सुशर्माणा स्ववसा हि भूतम् । अथ यजमानाय शं योः धत्तम् ॥

८ यः देवद्रीचा मनसा अग्नीषोमा हविषा सपर्यात् । यः घृतेन, तस्य व्रतं रक्षतम् । अंहसः पातम् । विशे जनाय महि शर्म यच्छतम् ॥

---

३ हे अग्निसोमो ! जो आपको आहुति अर्पण करता है, आपके लिये हवन (करता है), वह प्रजाके साथ उत्तम वीर्य पूर्ण आयु प्राप्त करे ॥

४ हे अग्निसोमो ! आपका वह पराक्रम (उस समय) प्रकट हुआ कि जिस समय गौओंको रखनेवाले पणिसे (छल गौओंको तुमने) हरण किया । वृसयके शेष अनुचरोंको तिरोहित किया और (सूर्यकी) एक ज्योति सबके लिये प्राप्त की ॥

५ हे सोम ! (तू) और अग्नि एकही कर्म करनेवाले हैं । तुमने ये नक्षत्रज्योतियाँ आकाशमें रख दी हैं । हे अग्निसोमो ! प्रतिबंधित नदियोंको अमंगल निन्दासे मुक्त किया ।

६ हे अग्निसोमो ! (तुममेंसे) एक अग्निको वायुने आकाशसे यहां लाया । और दूसरे सोमको श्येनने पर्वत-शिखरपरसे उखाडकर लाया है । स्तोत्रोंसे बढाते हुए (तुम दोनोंने) यज्ञके लिये (यहां) बडाही विस्तृत क्षेत्र बनाया है ।

७ हे अग्निसोमो ! यहां रखे हविरन्नका स्वाद लो । (और) स्वीकार करो । हे बलवान् देवो ! इसका भक्षण करो ! तुम हमारा कल्याण करनेहारे और हमारी सुरक्षा करनेवाले होओ । और यज्ञकर्ताको सुख (देकर उसका दुःख) दूर करो ॥

८ जो देवोंकी भावित करनेवाले मनसे अग्निसोमोंको हवि अर्पण करता है, और घीका हवन करता है, उसके यज्ञव्रतको सुरक्षित रखो । (उसको) पापसे बचाओ । मानवोंके लिये बहुत सुख देवो ॥

अग्नीषोमा सवेदसा सहूती वनतं गिरः । सं देवत्रा बभूवथुः ९
अग्नीषोमावनेन वां यो वां घृतेन दाशति । तस्मै दीदयतं बृहत् १०
अग्नीषोमाविमानि नो युवं हव्या जुजोषतम् । आ यातमुप नः सचा ११
अग्नीषोमा पिपृतमर्वतो न आ प्यायन्तामुस्रिया हव्यसूदः ।
अस्मे बलानि मघवत्सु धत्तं कृणुतं नो अध्वरं श्रुष्टिमन्तम् १२

अग्नीषोमौ ! सवेदसा सहूती गिरः वनतम् । संदेवत्रा बभूवथुः ॥
१० हे अग्नीषोमौ ! वां यः अनेन घृतेन वां दाशति, तस्मै बृहत् दीदयतम् ॥
११ हे अग्नीषोमौ ! युवं नः इमानि हव्या जुजोषतम् । सचा उप मा यातम् ॥
१२ हे अग्नीषोमौ ! नः अर्वतः पिपृतम् । हव्यसूदः उस्रियाः आ प्यायन्ताम् । मघवत्सु अस्मै बलानि धत्तम् । अध्वरं श्रुष्टिमन्तं कृणुतम् ॥

९ हे अग्निसोमो ! आप एक साथ सब जानते हैं, इसलिये (एक साथ हुई हमारी की) प्रार्थना सुनो । (यहां) देवोंमें तुम एकदम प्रकट हुए हैं ।

१० हे अग्निसोमो ! जो तुम्हें इस घीका अर्पण करता है, उसे बडा (धन) दो ॥

११ हे अग्निसोमो ! तुम दोनों हमारे ये हवन स्वीकारो । मिलकर हमारे पास आओ ॥

१२ हे अग्निसोमो ! हमारे घोडोंको पुष्ट करो । (हमारी) दूध देनेवाली गौओंको पुष्ट करो । हमारे धनवान् (यजकों) को अनेक प्रकारके बल स्थापन करो । हमारे यज्ञको यशस्वी करो ॥

सबको सुखी करो

इस सूक्तमें सुख, उत्तम वीर्य पराक्रम करनेका सामर्थ्य, पुष्ट [illegible] और चपल घोडे, तथा विपुल धन और पूर्ण आयु चाहिये, [illegible] कहा है । उत्तम संतान वीर पुत्र हों ऐसा भी कहा है । (९.१-३)

यहां अग्नि और सोम इन दो देवताओंकी प्रार्थना है । [illegible] वायुने आकाशसे लाया (मं.६)। विद्युतसे जो अग्नि उत्पन्न [illegible] है, उसका यह वर्णन है । क्योंकि विद्युत और वायु साथ [illegible] रहते हैं और आकाशसे अग्नि विद्युतमें आया और [illegible] गिरनेसे वह अग्नि पृथ्वीपर उत्पन्न हुआ । यह कल्पना [illegible] है ।

[illegible] पर्वत-शिखरपरसे उखाडकर, मथकर, लाया है । [illegible] यह एक औषधि, वनस्पति, वल्लि है । हिमालयके [illegible] शिखरोंपर यह होती है, वहांसे उखाडकर यह लायी जाती है । (मं. ६) अग्नि और सोमने यज्ञका विस्तृत क्षेत्र बनाया है, क्यों कि सभी यज्ञ अग्नि और सोमरसको ही बनते हैं ।

सोमरस इंद्र पीता है, अग्नि सब देवोंको मिलता है, उससे सब देव बलवान् बनते हैं और इनके द्वारा [illegible] यज्ञका संरक्षण होता है और वह पणीने चुरायी गौयें हरण करके पुनः [illegible] लायी जाती है । पणीके सब अधुरा देवोंका संरक्षण करना [illegible] है और सबके प्रकाशके लिये सूर्यका उदय होता है । (मं.७) उत्तराय मुखको प्रदीप्त रात्रिके [illegible] सूर्यका उदय होता है ।

प्रदीप्त रात्रिमें अंधेरा होनेके कारण कभी सूर्य [illegible] सूर्य निकलनेपर उसे कहते हैं, यह [illegible] कल्पना है । (मं.८)

[illegible]

॥ यहां अग्नि-सोम-[illegible]

सोम-प्रकरण

(२१) सोमरस

(ऋ. १।९१) गोतमो राहूगणः । सोमः । त्रिष्टुप्; ५-१६ गायत्री; १७ उष्णिक् ।

त्वं सोम प्र चिकितो मनीषा त्वं रजिष्ठमनु नेषि पन्थाम् ।
तव प्रणीती पितरो न इन्दो देवेषु रत्नमभजन्त धीराः १
त्वं सोम क्रतुभिः सुक्रतुर्भूस्त्वं दक्षैः सुदक्षो विश्ववेदाः ।
त्वं वृषा वृषत्वेभिर्महित्वा द्युम्नेभिर्द्युम्न्यभवो नृचक्षाः २
राज्ञो नु ते वरुणस्य व्रतानि बृहद्गभीरं तव सोम धाम ।
शुचिष्ट्वमसि प्रियो न मित्रो दक्षाय्यो अर्यमेवासि सोम ३
या ते धामानि दिवि या पृथिव्यां या पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु ।
तेभिर्नो विश्वैः सुमना अहेळन् राजन्त्सोम प्रति हव्या गृभाय ४
त्वं सोमासि सत्पतिस्त्वं राजोत वृत्रहा । त्वं भद्रो असि क्रतुः ५
त्वं च सोम नो वशो जीवातुं न मरामहे । प्रियस्तोत्रो वनस्पतिः ६
त्वं सोम महे भगं त्वं यून ऋतायते । दक्षं दधासि जीवसे ७

अन्वयः- १ हे सोम ! त्वं मनीषा प्र चिकितः । त्वं रजिष्ठं पंथां अनुनेषि । हे इन्दो ! तव प्रणीती नः धीराः पितरः देवेषु रत्नं अभजन्त ॥

२ हे सोम ! त्वं क्रतुभिः सुक्रतुः भूः । विश्ववेदाः त्वं दक्षैः सुदक्षः (भवसि)। त्वं वृषत्वेभिः महित्वा वृषा, नृचक्षाः द्युम्नेभिः द्युम्नी अभवः ॥

३ हे सोम ! राज्ञः वरुणस्य ते नु व्रतानि । तव धाम बृहत् गभीरम् । हे सोम ! त्वं शुचिः असि । प्रियः न मित्रः अर्यमा इव दक्षाय्यः असि ॥

४ ते दिवि या धामानि, या पृथिव्यां, या पर्वतेषु ओषधीषु अप्सु(वर्तन्ते), हे सोम राजन् ! तेभिः विश्वैः सुमनाः अहेळन्, नः हव्या प्रति गृभाय ॥

५ हे सोम ! त्वं सत्पतिः असि । उत त्वं राजा, वृत्रहा त्वं भद्रः क्रतु असि ॥

६ हे सोम ! नः जीवातुं प्रियस्तोत्रः वनस्पतिः त्वं च वशः, न मरामहे ॥

७ हे सोम ! त्वं महे ऋतायते त्वं यूने जीवसे दक्षं भगं असि ॥

अर्थ —१ हे सोम ! तू बुद्धिमान् और विशेष ज्ञानी प्रसिद्ध है । तू (सबको) भूलोकपर सरल मार्गसे ले जा है । हे सोम ! तेरे मार्गदर्शनसे हमारे बुद्धिमान् पितरो देवोंमें भी रमणीय भोग प्राप्त हुए थे ॥

२ हे सोम ! तू अनेक कर्म करनेसे उत्तम कर्मकर्ता प्रसिद्ध है । तू सब जाननेवाला अनेक चतुरताओंसे युक्त बडा चतुर कहा जाता है । तू अनेक शक्तियोंसे युक्त बडा बलवान् हुआ है, तथा मानवोंका निरीक्षक तू अनेक पास रखनेके कारण धनी हुआ है ॥

३ हे सोम ! राजा वरुणके ये सब नियम हैं । तेरा बडा विशाल भव्य है । हे सोम ! तू शुद्ध है । तू हमारा मित्र और अर्यमाके समान चतुर कुशल है ॥

४ तेरे निवासस्थान आकाश, पृथ्वी, पर्वत, ओषधि जलोंमें हैं । हे राजा सोम ! उन सब स्थानोंसे तू आनन्द तथा विद्वेष न करता हुआ, हमारे हविष्यान्नोंका स्वीकार

५ हे सोम ! तू उत्तम पालक है । तू राजा है, तू नाश करता है, तू सब हित करनेवाला है ॥

६ हे सोम ! हमारे दीर्घ जीवनके लिये तू प्रशंसनीय है, तेरे अनुकूल होनेपर हम नहीं मरेंगे ॥

७ हे सोम ! तू सत्यपालक बडे तरुण मनुष्यों के लिये बल और भाग्य देता है ॥

त्वं नः सोम विश्वतो रक्षा राजन्नघायतः । न रिष्येत् त्वावतः सखा ८
सोम यास्ते मयोभुव ऊतयः सन्ति दाशुषे । ताभिर्नोऽविता भव ९
इमं यज्ञमिदं वचो जुजुषाण उपागहि । सोम त्वं नो वृधे भव १०
सोम गीर्भिष्ट्वा वयं वर्धयामो वचोविदः । सुमृळीको न आ विश ११
गयस्फानो अमीवहा वसुवित् पुष्टिवर्धनः । सुमित्रः सोम नो भव १२
सोम रारन्धि नो हृदि गावो न यवसेष्वा । मर्य इव स्व ओक्ये १३
यः सोम सख्ये तव रारणद् देव मर्त्यः । तं दक्षः सचते कविः १४
उरुष्या णो अभिशस्तेः सोम नि पाह्यंहसः । सखा सुशेव एधि नः १५
आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् । भवा वाजस्य संगथे १६
आ प्यायस्व मदिन्तम सोम विश्वेभिरंशुभिः । भवा नः सुश्रवस्तमः सखा वृधे १७
सं ते पयांसि समु यन्तु वाजाः सं वृष्ण्यान्यभिमातिषाहः ।
आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवांस्युत्तमानि धिष्व १८

---

८ हे सोम राजन् ! त्वं अघायतः विश्वतः नः रक्ष । एवं सखा न रिष्येत् ॥

९ हे सोम ! ते दाशुषे मयोभुवः याः ऊतयः सन्ति, ताभिः अविता भव ॥

१० हे सोम ! त्वं इमं यज्ञं इदं वचः जुजुषाणः उप आगहि । नः वृधे भव ॥

११ हे सोम ! वचोविदः वयं गीर्भिः त्वा वर्धयामः । सुमृळीकः आ विश ॥

१२ हे सोम ! नः गयस्फानः अमीवहा वसुवित् पुष्टिवर्धनः सुमित्रः भव ॥

१३ हे सोम ! गावः न यवसेषु आ, मर्यः इव स्वे ओक्ये नः हृदि ररन्धि ॥

१४ हे देव सोम ! तव सख्ये यः मर्त्यः आरणत्, तं कविः दक्षः सचते ॥

१५ हे सोम ! नः अभिशस्तेः उरुष्यः, अंहसः नि पाहि, सखा सुशेवः एधि ॥

१६ हे सोम ! आ प्यायस्व, ते वृष्ण्यं विश्वतः समेतु, वाजस्य संगथे भव ॥

१७ हे मादिन्तम सोम ! विश्वेभिः अंशुभिः आ प्यायस्व । नः सुश्रवस्तमः सखा वृधे भव ॥

१८ हे सोम ! अभिमातिषाहः ते पयांसि सं यन्तु । वृष्ण्यानि सं (यन्तु) । वृष्ण्यानि सं (यन्तु) । अमृताय दिवि उत्तमानि श्रवांसि आप्यायमानः धिष्व ॥

८ हे राजा सोम ! तू हमारा पापियोंसे चारों ओरसे रक्षण कर, तेरेसे सुरक्षित हुआ भक्त नाशको नहीं पास होगा ॥

९ हे सोम ! दाताके लिये जो सुखदायक संरक्षण तेरे पास हैं, उनसे हमारी सुरक्षा कर ॥

१० हे सोम ! तू इस यज्ञका और इस स्तोत्रका स्वीकार करके हमारे पास आ और हमारा संवर्धन कर ॥

११ हे सोम ! स्तोत्र जाननेवाले हम अपनी वाणीसे तेरी बधाई करते हैं, इसलिये हमारे पास सुखदायक होकर आ ॥

१२ हे सोम ! तू हमारी वृद्धि करनेवाला, रोग दूर करने-वाला, धन-दाता, पोषणकर्ता और उत्तम मित्र बन ॥

१३ हे सोम ! गौवें जैसे अपने घरमें संतुष्ट होती हैं, वैसे तू हमारे हृदयमें अपने घरमें संतुष्ट होकर रह, हमारे हृदयमें उत्पन्न कर ॥

१४ हे सोम देव ! तेरी मित्रतामें [illegible] उसीको बुद्धि और कुशल [illegible]

१५ हे सोम ! [illegible] सुरक्षा कर और [illegible]

१६ [illegible]

१७ [illegible]

१८ [illegible]

या ते धामानि हविषा यजन्ति ता ते विश्वा परिभूरस्तु यज्ञम् ।
गयस्फानः प्रतरणः सुवीरोऽवीरहा प्र चरा सोम दुर्यान् ॥९
सोमो धेनुं सोमो अर्वन्तमाशुं सोमो वीरं कर्मण्यं ददाति ।
सादन्यं विदथ्यं सभेयं पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै ॥१०
अषाळ्हं युत्सु पृतनासु पप्रिं स्वर्षामप्सां वृजनस्य गोपाम् ।
भरेषुजां सुक्षितिं सुश्रवसं जयन्तं त्वामनु मदेम सोम ॥११
त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वं गाः ।
त्वमा ततन्थोर्वन्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ ॥१२
देवेन नो मनसा देव सोम रायो भागं सहसावन्नभि युध्य ।
मा त्वा तनदीशिषे वीर्यस्योभयेभ्यः प्र चिकित्सा गविष्टौ ॥१३

दो द्युम्नवर्धनः	। भवा वाजानां पतिः	२
द्भ्यमर्षन्ति सिन्धवः	। सोम वर्धन्ति ते महः	३
विश्वतः सोम वृष्ण्यम्	। भवा वाजस्य संगथे	४
चम्रो दुदुह्रे अक्षितम्	। वर्षिष्ठे अधि सानवि	५
भुवनस्य पते वयम्	। इन्दो सखित्वमुश्मसि	६

) दिवः पृथिव्याः	२ हे सोम लोकोंका स्वामी तू है, द्युलोक और पृथ्वीपर ऐश्वर्यका वर्धन करनेवाला हो ॥
यः, (तथा) सिन्धवः	३ हे सोम ! वायु तेरे लिये बहता है, नदियां भी तेरे लिये बहती हैं, सब तेराही वर्धन करते हैं ॥
विश्वतः वृष्ण्यं सं पृच,	४ हे सोम ! तू बढ जा । तेरे पास चारों ओरसे शक्ति इकट्ठी हो जावे । बलके संमेलनमें तू उपस्थित रह ॥
नवि तुभ्यं गावः घृतं पयः	५ हे भूरे रंगवाले सोम ! बडे पर्वत-शिखरपर तुम्हारे लिये गायें घी और दूधके अक्षय प्रवाह बहाती हैं ॥
! वयं स्वायुधस्य ते सतः	६ हे भुवनोंके स्वामी सोम ! हम उत्तम शस्त्रवाले तेरी मित्रता प्राप्त करना चाहते हैं ॥

(२३) सोमरस

(९।६७।७-९) गोतमो राहूगणः । पवमानः सोमः । गायत्रीः ।

नास इन्दवस्तिरः पवित्रमाशवः	। इन्द्रं यामोभिराशत	७
हः सोम्यो रस इन्दुरिन्द्राय पूर्व्यः	। आयुः पवत आयवे	८
वन्ति सूरमुस्रयः पवमानं मधुश्चुतम्	। अभि गिरा समस्वरन्	९

पवमानासः आशवः इन्दवः यामेभिः	७ छाननीसे छाने जानेवाले सोमरसके गतिमान् प्रवाह, अपनीही गतियोंसे इन्द्रके पास पहुंच गये ॥
यः आयुः इन्दुः सोम्यः रसः आयवे इन्द्राय	८ आनन्द देनेवाला पहिलेसे सिद्ध रखा आयु-वर्धक सोम-रस दीर्घायुवाले इन्द्रके लिये बह रहा है ॥
मधुश्चुतं सूरं पवमानं हिन्वन्ति । गिरा	९ गायें मधुरताके पदार्थोंसे चूनेवाले पवित्रायमाण सोमको छाननेके समय (अपने दूधके निमित्तसे) अधिक प्रवाहित करती हैं । वाणीसे उसकी स्तुति भी की जाती है ॥

वरन् ॥

रसके (मनीषा प्र चिकितः । मं.१) उदेशसे ऋषि गोतम बोल रहे हैं । उसकेमें बहुवचन देकर, अन्यों अनुयायियोंको भी (ऋषि । १) सम्मिलित कर लिया है । (प्रणीतो धीराः शुचं जनयन्त । १) धीर पुरुष पवित्रताको उत्पन्न करते हैं ।

सोमरसका वर्णन

सोमके दो पूर्ण सूक्त और तीसरे सूक्तके केवल तीनही ऋषिके मंत्र दिये हैं । कुल ३२ मंत्र हैं । इनमें जो वर्णन है, वह अर्थवादके लिये समझना है । इनमें उस सोमरस मादिकको उत्तेजित करनेवाला है, इसलिये उस

यह सोम (**सुक्रतुः** । २) उत्तम याग सिद्ध करनेवाला, (**सुदुक्षः**) उत्तम चातुर्य बढानेवाला, (**वृषा**) बल बढानेवाला और (**द्युम्नी**) तेज बढानेवाला है ।

यह सोम (**शुचिः** । ३) पवित्र है, पवित्रता करनेवाला है, (**मित्रः**) हितकारी और (**दक्षाय्यः**) चातुर्यका बल अथवा कर्तृत्वशक्ति बढानेवाला है ॥

यह सोम हिमालयके शिखरपर जलस्थानोंमें तथा पृथ्वीपर रहता है । हिमशिखरपर मिलनेवाला उत्तम और अन्यत्र मिलनेवाला मध्यम है । यह गुणोंकी दृष्टिसे उत्तम मध्यम भाव जानना उचित है । (मं. ४)

सोम राजा अर्थात् औषधियोंका राजा है, उसका रस पीकर इन्द्र वृत्रका वध करता है । सोमसे होनेवाला यज्ञ उत्तम यज्ञ है । (५)

यह सोमरस (**जीवातुं**) दीर्घ जीवन देनेवाला है, इससे **(न मरामहे)** अपमृत्यु दूर किया जा सकता है । इतनी इसकी योग्यता होनेसे यह सोमवल्लि बडी प्रशंसा करने योग्य है । (६)

यह सोमरस तरुण और वृद्धका भी आयुष्य बढाकर बल भी बढाती है । (७)

जिसको सोमरस मिलता है वह क्षीण नहीं होगा । यज्ञ होनेके कारण पापसे भी यह बचाता है । (८)

यह सोमरस (**मयोभुवः**) सुखदायी और **(अविता)** संरक्षक रोगादि आपत्तियोंसे बचानेवाला है । (९) यह सोमरस (**वृधे**) बल आदिको बढाता है । (१०) यह सोमरस (**अमीवहा**) रोग दूर करनेवाला, (**पुष्टि-वर्धनः**) पुष्टि बढानेवाला, **(सुमित्रः)** उत्तम मित्र जैसा सहायक है ।(१२) यह रस **(हृदि ररन्धि)** हृदयमें आनन्द उत्पन्न करता है, उत्साह उत्पन्न होनेसे यह आनन्द मिलता है । (१३) शाप और पापसे यह बचाता है । (१५) यह रस जल, दूध या दही मिलाकर (**आ प्यायस्व**) बढाया जाता है, बढानेपर भी यह (**वृष्ण्यं**) बल बढाता है । (१६)

शत्रुका पराभव (**अभिमाति-साहः**) करनेवाला यह सोम है, इससे प्रजापर धाक बढती है और शत्रुका पराभव करना सहजसे होता है । (**पयांसि संयन्तु**) उस रसमें दूध मिलाते हैं । (**वाजाः**) सातूका आटा आदि अन्न भी मिलाया जाता है, जिससे यह उत्तम (**वृष्ण्यानि**) बल बढानेवाला अन्न होता है । (**अमृताय आप्यायमानः**) अपमृत्युको दूर क के लिये इसमें दूध आदि मिलाकर यह बढाया जाता (१८) यह रस (**प्रतरणः**) रोगादि आपत्तियोंसे तारण क है, (**सुवीरः**) उत्तम वीरता लाता है, (**अ-वीर-हा**) श नाश करता है । (१९)

सोमसे उत्तम गौवें, वेगवान् घोडे, शूर संतान प्राप्त है । (२०) विजयी उत्साह मिलता है । (२१)

सब औषधियोंका सत्त्व सोमरसमें है । (२२) यह, (**सहसावान्**) शक्ति बढानेवाला, (**वीर्यस्य ईशि** वीर्य पराक्रमका स्वामी है । (२३)

इस तरह वर्णन सोमके प्रथम सूक्तमें है ।

(ऋ. ९।३१)

इस सूक्तमें सोमका वर्णन करते हुए कहा है कि (**चेतनं कृण्वन्ति**) सोमरस ज्ञानकी चेतना करते हैं, सोमरसका गुण विशेष है । (१) **(वाजानां पतिः)** सोम श्रेष्ठ अन्न है, अन्नोंमें अत्यंत उत्तम बलवर्धक अन्न है । (

तृतीय मंत्रमें (**तुभ्यं वाताः अभिप्रियः**) ऐसा कहा सोमरसमें वायु मिलानेके लिये एक बर्तनसे दूसरे बर्तनमें उन्हें जाता है । ऐसा कईवार करते हैं जिससे वायुका मिश्रण र साथ होता है और उसकी रुचिकरता बढती है । त (**तुभ्यं सिन्धवः अर्षन्ति**) तुम्हारे लिये नदियां बहती इसका भाव नदीका पानी सोमरसमें मिलाया जाता है । सब (**ते. महः वर्धयन्ति**) सोमका महत्त्व बढाते सोमका गुण इससे बढ जाता है । (३)

(**तुभ्यं गावः घृतं पयः दुदुह्रे**) गौवें सोमके लि घी और दूध देती हैं । गौका दूध तो सोमरसमें मिलानेका व कई वार इससे पूर्व आ चुका है । पर इस समयतक उसमें मिलानेका वर्णन नहीं था । यहां इस मंत्रमें वह आया है ।

(ऋ. ९।६७)

(**पवित्रे तिरः पवमानासः**) छाननीसे छाने जानेवा सोमरसोंका यह वर्णन है । छाननीके ऊपर सोम रखते हैं औ उसका रस नीचेके पात्रमें उतरता है । इस मंत्रमें (**इन्द्रस्य यामेभिः इन्द्रं आशत**) कहा है कि तीन प्रहरोंके पश्चात् रस इन्द्रको दिये जाते हैं । 'यामेभिः' का अर्थ तीन प्रह अर्थात् तीन घण्टे ऐसा भी है और 'याम' का अर्थ गति, प्रवा की चाल' भी है । रस निकालनेके बाद सब यज्ञ-कृत्य होनेके

गोतम ऋषिके दर्शनकी

विषयसूची

विषय	पृष्ठाङ्क
गोतम ऋषिका तत्त्वज्ञान	३
सूक्तवार मन्त्र-संख्या (ऋग्वेद प्रथम, नवम, दशम मण्डल)	,,
देववार मन्त्र-संख्या	,,
गोतम ऋषिका वेदोंमें नाम	५
अथर्ववेदमें गोतमके मन्त्र	,,
ब्राह्मणग्रन्थोंमें गोतमका नाम	६
राष्ट्र देनेवाली इष्टि	७
महाभारतमें गौतम	८
रामायणमें गौतम	११
गौतम और अहल्या	,,
गोतम ऋषिका दर्शन	१३
(प्रथम मण्डल, तेरहवाँ अनुवाक)	
अग्नि-प्रकरण	
(१) अग्रणीके कर्तव्य	,,
अग्रणी क्या करे ?	१४
योगक्षेम	१५
(२) लोगोंका प्रिय मित्र	१६
जनताका प्रिय मित्र अग्रणी	,,
(३) न दबनेवाला वीर	१७
दूसरा दुर्योधनी वीर	१८
हे अग्ने वीर !	,,
(४) महारथी श्रेष्ठ वीर	१९
मानवोंमें श्रेष्ठ वीर	२०
दूसरे ऋषिका नाम	२१
(५) शत्रुको हिलानेवाला वीर	,,
दूसरे ऋषिका नाम	,,
शत्रुका नाश	२२
अग्निका वीर	,,

विषयसूची

	२२
(६) बलका स्वामी	२४
बड़ा सेनापति	,,
धन कैसा चाहिये	२५
ध्रुवाधार वृष्टि	,,
सूक्तमें ऋषिका नाम	,,
अग्नि-प्रकरणमें ऋषिका आदर्श पुरुष	२६
आदर्श पुरुषका चारित्र्य	,,
आदर्श पुरुषकी वीरता	
इन्द्र-प्रकरण	२७
(७) स्वराज्यकी पूजा	३०
स्वराज्यकी पूजा	३१
वज्र एक अस्त्र है	,,
अथर्वा, मनु, दधीचि	३२
(८) निडर वीर	३३
बलकी वृद्धि और शत्रुका नाश	३४
(९) घरमें रहो	३५
रथ जोड़ो	,,
प्रिय पत्नी	३६
(१०) यज्ञका मार्ग	,,
अङ्गिरा, अथर्वा और उशना ऋषि	,,
यजमानका घर	३८
इन्द्रसे गौओंकी प्राप्ति	,,
(११) दधीचिकी अस्थिसे वज्र	४१
दधीचिकी हड्डियाँ	
मरुत्-प्रकरण	४२
वीरोंका काव्य	४२-४८
(१२-१५) वीर मरुत्	४९
वीर-काव्यमें वीर रस	
विश्वे देव-प्रकरण	५०
(१६) दीर्घायुकी प्राप्ति	५२
(१७) ऋजु नीति	५३
ऋग्वेदका दशम मण्डल	,,
(१८) वायु	,,
विश्वे देवा देवता	५४
दीर्घ आयुकी प्राप्ति	,,
कर्म कैसे करें ?	

ईश्वर-उपासना ५५
मानवी व्यवहार ,,
सदेकत्वका अनुभव ,,
नीतिका सरल मार्ग ,,

उषा-प्रकरण

(१९) उषाः ५६
उषाका उत्तम काव्य ५९
नटी, नाचनेवाली स्त्री ,,
गोतम ऋषि ६०
घरमें सेवक ,,
कसाई स्त्री ,,
जारके धनसे शोभना ,,
पदोंकी उलटी योजना ,,
(२०) बल, वीर्य और दीर्घायु ६१
सबको सुखी करो ६३

सोम-प्रकरण

(२१-२३) सोमरस ६४-६७
सोम रसका वर्णन ६७
सुपुत्रके लक्षण ६९

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(१०)

कुत्स ऋषिका दर्शन

(ऋग्वेदका १५ वाँ तथा १६ वाँ अनुवाक)

लेखक

पं० श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,

अध्यक्ष, स्वाध्याय-मण्डल, औन्ध, [जि० सातारा]

संवत् २००२

मुद्रक तथा प्रकाशक– वसंत श्रीपाद सातवळेकर, B. A.
भारत-मुद्रणालय, भोंप (जि. सातारा)

कुत्स ऋषिका तत्त्वज्ञान

कुत्सके कुलका विचार

कुत्स ऋषि अनेक हो चुके हैं, उनका वर्णन यहां करते हैं। सायनाचार्यने कहा है—

"अत्र काचिदाख्यायिका श्रूयते। रुरुनामकः श्रेष्ठराजर्षिः, तस्य पुत्रः कुत्साख्यो राजर्षिरासीत्। स च कदाचित् शत्रुभिः सह युयुत्सुः संग्रामे स्वयमशक्तः सन्, शत्रूणां हननार्थमिन्द्रस्य आह्वानं चकार। स चेन्द्रः कुत्सस्य गृहमागत्य तस्य शत्रून् जघान। तदनन्तरं मित्रतां प्रीत्या तयोः सख्यं अभवत्। सख्यानंतरं चेन्द्र एनमपि स्वकीयं गृहं प्रापयामास। तत्र शची इन्द्रं प्राप्तुमागता सती तौ समानरूपौ दृष्ट्वा, अयमिन्द्रो, अयं कुत्स इति विवेकाभावेन संशयं चकार इति। अनया आख्यायिकया प्रतीयमानोऽर्थोऽत्र प्रतिपाद्यते। आ रस्युघ्ना इत्यत्र। (ऋ. ४।१६।१०)

'एक कथा सुनी जाती है। रुरु नामक एक श्रेष्ठ राजा था। उसका पुत्र कुत्स भी श्रेष्ठ राजा था। वह एक समय अपने शत्रुओंसे लडना चाहता था, पर स्वयं उनसे लडनेमें असमर्थ था, इसलिये उसने अपनी सहायताके लिये इन्द्रको बुलाया। तब इन्द्रकी सहायताके लिये आया और उसने कुत्सके शत्रुओंका वध किया। इससे इन्द्र और कुत्सकी मित्रता हुई। पश्चात् कुत्स भी इन्द्रके घर जाता रहा। कुत्स और इन्द्र एकट्ठे बैठे थे, उस समय इन्द्रकी पत्नी शची इन्द्रसे मिलनेके लिये वहां आयी। परंतु वहां इन्द्र और कुत्स समान वेष धारण करके बैठे थे, इसलिये शची पहचान न सकी कि कौनसा इन्द्र है। यह भाव 'आ रस्युघ्ना' मंत्रमें है।' देखिये यह मन्त्र—

आ रस्युघ्ना मनसा याह्यस्तं भुवत्ते कुत्सः सख्ये निकामः। स्ये योनौ नि षदतं सरूपा वि वां चिकित्सदृतचिद्ध नारी॥
(ऋ. ४।१६।१०)

(हे इन्द्र) हे इन्द्र! (रस्युघ्ना मनसा अस्तं आ याहि) शत्रुका वध करनेकी इच्छासे तूं कुत्सके घर आया है। (कुत्सः च ते सख्ये निकामः भुवत्) कुत्स तेरी मित्रताको भी चाहताही है। (स्ये योनौ निषदतं) आप दोनों अपने घरमें बैठे हैं। (ऋतचित् नारी सरूपा वां वि चिकित्सत्) सत्य जाननेकी इच्छा करनेवाली तेरी स्त्री दोनोंका समानरूप देखकर आप दोनोंके विषयमें संदेह करने लगी।

युद्धके सेनापतिके पोषाख शरीरपर रखनेसे शची दोनोंमेंसे अपना पति कौनसा है यह न पहचान सकी, यह ठीकही है। कुत्स और इन्द्र दोनों वीर सेनापतिका कार्य करते थे। सेनापतिके लिये कवच आदि धारण करके रहना आवश्यक होता है। सब शरीरपर तथा मुखपर भी कवच रखा जाय तो वीरोंकी पहचान होना कठिन होता है। केवल आंख और नाकही खुले रहते हैं शेष शरीरपर कवच होता है। इसलिये वीरकी पोशाकमें पतिको एकदम पहचानना कठिन होना स्वाभाविक है।

कुत्सके वर्णनमें कुत्सको 'आर्जुनेय' कहा है। इसका अर्थ ऐसा होता है कि यह कुत्स 'अर्जुनी' नामक स्त्रीका पुत्र था। इस विषयमें निम्नलिखित मंत्र प्रमाण हैं—

१ याभिः कुत्सं आर्जुनेयं शतक्रतू॥ (ऋ. १।११२।२३)
२ अहं कुत्सं आर्जुनेयं न्यृञ्जे॥ (ऋ. ४।२६।१)
३ त्वं ह त्यदिन्द्र कुत्सं आयः... शुष्णं कुयवं... अरन्धय आर्जुनेयाय शिक्षन्॥ (ऋ. ७।१९।२; अथर्व. २०।३७।२)
४ वहत् कुत्सं आर्जुनेयं शतक्रतुः॥ (ऋ. ८।१।११)

कुत्सकी माताका नाम ऋग्वेदमें चार बार और अथर्ववेदमें एक बार आया है। वे मंत्रभाग ऊपर दिये हैं। कुत्सके लिये तथा वेतसुके रित करनेके लिये इन्द्रने इनका नाश किया ऐसा भाव निम्नलिखित मंत्रमें है—

अहं पितेव वेतसूरनिध्ये तुभ्यं कुत्साय स्मदिभं वध्रयश्वम्॥ (ऋ. १०।४९।४)

आवो यद्स्युहत्ये कुत्सपुत्रम् । (१०।१०५।११)
कुत्साय मन्मन्नह्याश्च दंसयः । (ऋ. १०।१३८।१)
यौ...अवथो....कुत्सम् । (अथर्व. ४।२९।५)

इस तरह ऋग्वेदमें और अथर्ववेदमें कुत्सके वर्णनके मंत्र आये हैं। अथर्ववेदमें केवल चारही वार कुत्स पद है। ऋग्वेदमें करीब ३६ वार आया है। इन मंत्रोंके वर्णनोंसे पता लगता है कि कुत्सकी सहायतार्थ इन्द्र आता था, कुत्सके शत्रुओंसे लडता था, शत्रुका पराभव करके कुत्सकी सहायता करता था। कुत्सके साथ अतिथिग्व और आयु ये दो ऋषिनाम भी यहां दीखते हैं और कुत्सके पुत्रकी सुरक्षाके लिये भी इन्द्र आता था ऐसा उक्त मंत्रमें है। कुत्सके शत्रु शुष्ण आदि यहां हैं। कुत्सके विषयमें इतनाही पता चलता है। पुराणोंमें भी कुत्सका वर्णन किसी जगह नहीं है।

वास्तवमें इसके २५१ मंत्र वेदसंहिताओंमें मिलते हैं, पर इसके अतिप्राचीन होनेके कारण इसकी कथाएं नहीं हैं। अङ्गिरस गोत्रमें कुत्सका जन्म हुआ था। रुरु उसके पिताका नाम, अर्जुनी उसकी माताका नाम था। यह इन्द्रका मित्र था, तथा अतिथिग्व और आयुका साथी था। कईयोंके मतसे रुरुका पुत्र कुत्स कोई और है और अंगिरा गोत्रका कुत्स दूसराही है। हमारे मतमें भी ऐसाही है। अब इसके मंत्र देखिये–

कुत्स (आंगिरस) ऋषिके मंत्र

ऋग्वेद प्रथम मण्डल

(पञ्चदशोऽनुवाकः)

सूक्त	देवता	मंत्रसंख्या	
१।९४	अग्निः	१६	
९५	,,	११	
९६	,, (हविर्धानौ)	९	
९७	,, (शुचिः)	८	
९८	,, (वैश्वानरः)	३	४७
१।१०१	इन्द्रः	११	
१०२	,,	११	
१०३	,,	८	
१०४	,,	९	३९

(षोडशोऽनुवाकः)

१।१०६	विश्वे देवाः	७	
१०७	,,	३	१०
१।१०८	इन्द्राग्नी	११	
१०९	,,	८	११
१।११०	ऋभवः	९	
१११	,,	५	१४
१।११२	अश्विनौ	२५	
११३	उषाः	२०	
११४	रुद्रः	११	
११५	सूर्यः	६	
९।९७।४५-५८	पवमानः सोमः	१४	
अथर्व० १०।८	आत्मा	४४	११०
	कूलमंत्र-संख्या		२५१

देवतानुसार मंत्र-संख्या

ऊपर दी मंत्रसंख्या देवतानुसारही है, तथापि वह पुनः दी जाती है—

१ अग्निः	४७
२ आत्मा	४४
३ इन्द्रः	३९
४ अश्विनौ	२५
५ इन्द्राग्नी	२१
६ उषाः	२०
७ ऋभवः	१४
८ पवमानः सोमः	१४
९ रुद्रः	११
१० विश्वे देवाः	१०
११ सूर्यः	६
कूलमंत्र संख्या	२५१

यहां ग्यारह देवताओंके सूक्त हैं। इनमें अथर्ववेदके मंत्र ११ हैं और ऋग्वेदके २०७ हैं। अथर्ववेदमें कुत्स ऋषिके और मंत्र हैं, पर वे ऋग्वेदकेही मंत्र हैं, उनके पते और स्थान दिये हैं—

	अथर्ववेद		
॥९	२०।८।१	मंत्र-संख्या	१
१	१३।३	,, ,,	१
॥१-२	१०७।१४-१५	,, ,,	२
॥४-५	१२३।१-२	,, ,,	२
		कुलमंत्र-संख्या	६

र मंत्र-संख्या यह है—

	१०१
	९४
	२४
	१८
	९
	५
	२५१

हती और गायत्रीके फुटकर भेद यहां लिये नहीं देंगे यथास्थान सूक्तके ऊपर पाठक देख सकेंगे

आत्माका सूक्त

'आत्मा' देवताका एक स्वतंत्र सूक्त इस ऋषिका अथर्ववेदमें मिलता है, यह इस ऋषिकी विशेषता है।

इस ऋषिकुलके ऋषियोंके मंत्रोंमें अग्नि, इन्द्र आदि देवताके सूक्तोंमें परमात्माका वर्णन मिलता रहा, पर इस ऋषिका एक आत्मसूक्तही स्वतंत्ररूपसे मिल रहा है। इस सूक्तमें हमें **'सर्वात्मासिद्धान्त'** अथवा **'सदैक्यसिद्धान्त'** किंवा **'सर्वेश्वरसिद्धान्त'** स्पष्टरूपसे दीखता है। पाठक इस दृष्टिसे इन मंत्रोंका मनन करें। यह आत्मसूक्त एक अच्छा उपनिषदही है। ब्रह्मविद्याका यह अद्वितीय सूक्त है, जो विद्वान् संहितामें ब्रह्मविद्या नहीं है ऐसा मानते हैं, उनको इस सूक्तका अच्छी तरह मनन करना चाहिये।

सूचना– कुत्स ऋषिके सूक्तोंमें ऋ.१।१०५यह सूक्त गिना गया है।'त्रित आप्त्यः, कुत्स आंगिरसो वा' ऐसा विकल्पसे कुत्सऋषि इस सूक्तका द्रष्टा माना जाता है, पर इस सूक्तके मंत्र ९;१७ में 'त्रित' का उल्लेख है, इसलिये ऋ. १।१०५ वां सूक्त त्रित ऋषिके दर्शनमें हमने रखा है। जो पाठक इस सूक्तका अर्थ देखना चाहें वे त्रित ऋषिके दर्शनमें इसे देखें।

स्वाध्याय-मण्डल
औंध (जि. सातारा)
ता. १।२।४७

निवेदक
श्रीपाद दामोदर सातवळेकर
अध्यक्ष, स्वाध्याय-मण्डल, औंध

भरामेध्मं कृणवामा हवींषि ते चितयन्तः पर्वणापर्वणा वयम्।
जीवातवे प्रतरं साधया धियोऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ४
विशां गोपा अस्य चरन्ति जन्तवो द्विपच्च यदुत चतुष्पदक्तुभिः।
चित्रः प्रकेत उपसो महाँ अस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ५
त्वमध्वर्युरुत होताऽसि पूर्व्यः प्रशास्ता पोता जनुषा पुरोहितः।
विश्वा विद्वाँ आर्त्विज्या धीर पुष्यस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ६
यो विश्वतः सुप्रतीकः सदृङ्ङसि दूरे चित् सन्तळिदिवाति रोचसे।
रात्र्याश्चिदन्धो अति देव पश्यस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ७
पूर्वो देवा भवतु सुन्वतो रथोऽस्माकं शंसो अभ्यस्तु दूढ्यः।
तदा जानीतोत पुष्यता वचोऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ८

४ इध्मं भरामः, पर्वणा-पर्वणा चितयन्तः वयं ते हवींषि कृणवामः। जीवातवे धियः प्रतरं साधय। अग्ने!० ॥

५ अस्य जन्तवः विशां गोपाः चरन्ति, यत् च द्विपत् उत चतुष्पद् अक्तुभिः। चित्रः प्रकेतः उपसः महान् असि। अग्ने० ! ॥

६ त्वं अध्वर्युः, उत पूर्व्यः होता असि, प्रशास्ता पोता, जनुषः पुरोहितः (असि), हे धीर ! विश्वा आर्त्विज्या विद्वान् पुष्यसि। अग्ने० ! ॥

७ यः सुप्रतीकः, विश्वतः सदृङ् असि, दूरे चित् सन् तळिद् इव अति रोचसे। हे देव ! रात्र्याः चित् अन्धः अति पश्यसि। अग्ने० ! ॥

८ हे देवाः ! सुवन्तः रथः पूर्वः भवतु। अस्माकं शंसः दूढ्यः अभि अस्तु। तत् आ जानीत, उत वचः पुष्यत। अग्ने० ! ॥

४ (हे अग्ने ! तुम्हारे लिये हम) इन्धन भर देंगे, प्रत्ये पर्वमें तुम्हें प्रदीप्त करते हुए हम तुम्हारे अन्दर हवि (अर्पण करेंगे। हमारी दीर्घायुके लिये हमारी बुद्धियोंको उत्तर बनाओ हे अग्ने ! तुम्हारी० ॥

५ इसकी किरणें प्रजाओंको सुरक्षित करती हुई (सर्वत्र चलती हैं। जो द्विपाद और चतुष्पाद है वह (इसी अग्निकी सहायतासे) रात्रीके समयमें (चल फिर सकता है)। विलक्षण तेजसे युक्त तुम ज्ञान देते हुवे उषासे भी महान् हो। हे अग्ने तुम्हारी० ॥

६ तुम अध्वर्यु, और प्राचीन कालसे होता हो, प्रशास्ता पोता, और जन्मसे पुरोहित हो। हे बुद्धिमन् ! तुम सब ऋत्विजोंके कर्तव्योंको जानते हो, (तुम सबको) पुष्ट करते हो। हे अग्ने ! तुम्हारी० ॥

७ तुम सुन्दर आदर्श हो, सब प्रकारसे दर्शनीय हो, तुम दूर होनेपर भी पासके समान प्रकाशित होते हो। हे देव ! तुम रात्रिके अन्धकारमें भी दूरका देखते हो। हे अग्ने ! तुम्हारी० ॥

८ हे देवो ! सोमयाग करनेवालेका रथ सबसे आगे रहे। हमारा भाषण दुष्ट बुद्धिवालोंको परास्त करनेवाला हो। यह ज्ञान तुम जान लो, और उससे अपना भाषण परिपुष्ट करो। हे अग्ने ! तुम्हारी० ॥

वधैर्दुःशंसाँ अप दूढ्यो जहि दूरे वा ये अन्ति वा के चिदत्रिणः ।
अथा यज्ञाय गृणते सुगं कृध्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ९

यदयुक्था अरुषा रोहिता रथे वातजूता वृषभस्येव ते रवः ।
आदिन्वसि वनिनो धूमकेतुनाऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव १०

अध स्वनादुत बिभ्युः पतत्रिणो द्रप्सा यत् ते यवसादो व्यस्थिरन् ।
सुगं तत् ते तावकेभ्यो रथेभ्योऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ११

अयं मित्रस्य वरुणस्य धायसेऽवयातां मरुतां हेळो अद्भुतः ।
मृळा सु नो भूत्वेषां मनः पुनरग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव १२

देवो देवानामसि मित्रो अद्भुतो वसुर्वसूनामसि चारुरध्वरे ।
शर्मन्त्स्याम तव सप्रथस्तमेऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव १३

वधैः दुःशंसान् दूढ्यः अप जहि, ये के चित् दूरे अन्ति वा अत्रिणः । अथ यज्ञाय गृणते सुगं कृधि । अग्ने० ॥

१० अरुषा रोहिता वातजूता रथे यत् त्वयुक्थाः, ते रवः इव । आत् वनिनः धूमकेतुना इन्वसि । अग्ने० ॥

११ अध स्वनात् उत पतत्रिणः बिभ्युः । ते द्रप्साः यवसादः यत् व्यस्थिरन्, तत् ते तावकेभ्यः रथेभ्यः सुगं । अग्ने० ॥

१२ अयं (स्तोता) मित्रस्य वरुणस्य धायसे (भवतु) अवयातां मरुतां हेळः अद्भुतः (भवति) । नः सु मृळ । एषां मनः पुनः भूतु । अग्ने० ॥

१३ देवः देवानां अद्भुतः मित्रः असि । अध्वरे वसूनां वसुः असि । सप्रथस्तमे तव शर्मन् स्याम । अग्ने० ॥

९ घातक शस्त्रोंसे दुष्टों और हिंसकोंको नष्ट-भ्रष्ट करो, जो दूर वा समीप भक्षण करनेवाले (शत्रु हों उनका नाश करो)। और यज्ञ करनेवाले उपासकके लिये मार्ग सरल कर दो। हे अग्ने ! तुम्हारी० ॥

१० तेजस्वी लालवर्णवाले, वायुसे प्रेरित हुए घोड़ोंको रथमें जब तुम जोतते हो, तब तुम्हारी गर्जना बादलके समान (होती है)। तब वनके वृक्षोंको धूमकेतु अग्निसे तुम प्रज्वलित करते हो। हे अग्ने ! तुम्हारी० ॥

११ तुम्हारा शब्द सुननेपर पक्षी भी भयभीत होते हैं। तब तुम्हारी सिंचनकी घासके लिये घोड़े इधर-उधर और फिरते हैं, तब वह (घास) तुम्हारे रथों० उपयोगके लिये सुलभ हो जाता है। हे अग्ने ! तुम्हारी० ॥

१२ यह (भक्त) मित्र और वरुणके [illegible] (यज्ञमें होवे) । [illegible] हमेशासे [illegible] अद्भुत (प्रभावशाली है) । हमें सुख [illegible] हमारे [illegible] हो । हे अग्ने ! तुम्हारी० ॥

१३ हे देव ! तुम [illegible] देवोंके अद्भुत [illegible] [illegible] यज्ञमें और [illegible] धनोंके [illegible] हो । तुम्हारे [illegible] हे अग्ने ! तुम्हारी० ॥

तत् ते भद्रं यत् समिद्धः स्वे दमे सोमाहुतो जरसे मृळयत्तमः ।
दधासि रत्नं द्रविणं च दाशुषेऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव १४
यस्मै त्वं सुद्रविणो ददाशोऽनागास्त्वमदिते सर्वताता ।
यं भद्रेण शवसा चोदयासि प्रजावता राधसा ते स्याम १५
स त्वमग्ने सौभगत्वस्य विद्वानस्माकमायुः प्र तिरेह देव ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः १६

१४ स्वे दमे समिद्धः सोमाहुतः मृळयत्तमः जरसे ते तत् भद्रं । दाशुषे रत्नं द्रविणं च दधासि । अग्ने० ! ॥

१५ हे सुद्रविणः अदिते-! सर्वताता यस्मै अनागास्त्वं त्वं ददाशः । यं भद्रेण शवसा चोदयासि, ते प्रजावता राधसा स्याम ॥

१६ हे देव अग्ने ! सः त्वं सौभगत्वस्य विद्वान्, इह अस्माकं आयुः प्र तिर । नः तत् (आयुः) मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः मामहन्ताम् ।

१४ अपने स्थानमें प्रज्वलित होकर, सोमकी आ देनेपर तुम अत्यंत सुख देनेवाले होते हो, तुम्हारा कल्याण करनेका कार्य है । दाताको रत्न और धन तु हो । हे अग्ने ! तुम्हारे आश्रयमें रहनेसे हमारा कभी नहीं होगा ॥

१५ हे उत्तम धनसे संपन्न और अखण्डनीय अदिते यज्ञोंमें तत्पर रहनेवाले मनुष्यको तुम पापसे दूर करते और उसे कल्याण करनेवाले बलसे युक्त करते हो, प्रजायुक्त धनसे हम संपन्न हों ॥

१६ हे अग्निदेव ! वे तुम उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त क मार्ग जानते हो, यहां हमारी आयु बढाओ । इसकी (आयु बढानेकी प्रार्थना) मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, और द्यौ सुफल करें ॥

मानवोंका उन्नति

मानवोंकी उन्नति किस तरह हो सकती है यही मुख्य विचारणीय विषय सब धर्म जिज्ञासुओंके सामने है । धर्म इसीलिये चाहिये । मानव उन्नत होते रहें, धर्मका ध्येय यही है । इस सूक्तमें मानवोंके उत्कर्षके कुछ निर्देश हैं जो अब यहां मनन करने योग्य हैं ।

१ अर्हते जातवेदसे मनीषया स्तोमं सं महेम (मं.१)। जो पूजनीय है और जो उत्तम ज्ञानी है उसीकी प्रशंसा मनःपूर्वक हम करेंगे । मनुष्य यही प्रतिज्ञा करें । जो सचमुच सत्कार करनेयोग्य नहीं है, उसका सत्कार नहीं होना चाहिये । (अर्हते स्तोमः) सत्कारके योग्य जो है उसकाही सत्कार करो । अयोग्यकी झूठी प्रशंसा करनेसे मनुष्यकी गिरावट होती है । सायणाय (जात-वेदसे स्तोमः) ज्ञानीकी उसके ज्ञानके लिये प्रशंसा की जावे । जो उत्पन्न हुए पदार्थोंको यथावत् जा है, जो ज्ञानविज्ञान-संपन्न है, वही सत्कारके योग्य है । तरह (मनीषया स्तोमः) मनसे अन्तःकरणपूर्वक, मनमें है वही भाव बतानेके लिये भाषण करना चाहिये । म एक भाव हो और बाहर दूसरा बताया जावे, यह ठीक यह तो गिरावटका मार्ग है । यहां उन्नतिके तीन बताये, एक सत्कार करनेयोग्यकाही समाजमें सत्कार जावे, दूसरा जो ज्ञानी हो वही श्रेष्ठ माना जावे, और तीस यह कि अन्तःकरणपूर्वक कार्य किया जावे, उसमें कपट न हो ।

२ अस्य संसदि नः प्रमतिः भद्रा— इस (ज्ञानी) की संगतिमें रहनेसे हमारी पहिलेसेही उत्कृष्ट अधिक कल्याणकारिणी बन जाती है । सत्पुरुषोंकी संगतिसे

ये हुए होकर कल्याणकारिणी हो सकती है। संगति उसकी करनी चाहिये जो (अर्हः) सुयोग्य पूजनीय हो और (जात-वेदाः) जो उत्पन्न हुए पदार्थोंको यथावत् जानता हो। और (मनीषा) अपनी बुद्धिसे दूसरोंको अपने सुविचारोंका उप-देश करता हो। (सं-सद्) उत्तम बैठक हो, उत्तम सभा हो जहां सज्जनोंका संमेलन हो, जहां सद्विचारोंकी चर्चा चलती हो, वहीं उन्नतिके इच्छुक जांय और उन सत्पुरुषोंकी संगतिसे लाभ उठावें।

३ सख्ये मा रिषाम— पूर्वोक्त सत्पुरुषोंकी मित्रतासे जो लाभ उठावेंगे, वे कभी नहीं गिरेंगे। यह तो सत्य सिद्धान्त-वाक्य है। (अर्हन्) सुयोग्य, (जातवेदाः) ज्ञानीकी मित्रतामें रहेंगे, वहीं तो निःसंदेह उत्कर्षको प्राप्त होते रहेंगे।

इस सूक्तकी देवता अग्नि है। ' अर्हन् ' (सुयोग्य) और ' जात-वेदाः ' ज्ञानी ये उसके गुण हैं। ' अग्नि ' का अर्थ अग्रणी ' है। (अग्निः कस्माद् अग्रणीः भवति। निरुक्त) जो लिया कार्य अन्ततक पहुंचा देता है, अनुयायियोंको गन्तव्य पहुंचाता है, वह अग्रणी अग्नि है। यहां ऋषिने अपने इष्ट देवता-वर्णनके लिये अग्निके मिषसे ' सत्कारके योग्य अग्रणी ' ही रखा है। सब मंत्रोंमें इसकाही अनुसंधान रूढ करें।

१ यस्मै त्वं आयजसे, सः साधति— जिस मानव-के लिये ऐसा सुयोग्य ज्ञानी सत्पुरुष अन्तःकरणपूर्वक अपने यज्ञसे सहायता करता है, वही मानव सिद्धि प्राप्त करता है, वही सिद्ध पुरुष होता है। वही ' अनर्वा क्षेति ' निर्भय होकर सुखसे रहता है और ' सुवीर्यं दधते '— उत्तम सामर्थ्यवान् बनता है। सुयोग्य ज्ञानीकी सहायतासे यह होता है। (मं. २)

२ सः तूताव, एनं अंहतिः न अश्नोति (मं. २) वह बढता है, उन्नत होता है। इसको आपत्ति नहीं सताती। यह प्रभाव सुयोग्य विद्वान् की सहायताका ही है।

३ धियः साधय (मं. ३)- (हे सुयोग विद्वन् !) तू इसकी अर्थात् बुद्धि और कर्मशक्तिको साधनसंपन्न कर। अर्थात् इसकी बुद्धिको भी बढाओ और कर्मशक्तिको भी बढाओ।

४ जीवातवे धियः प्रतरं साधय (मं. ४)— हमारी दीर्घ आयुके लिये हमारी बुद्धियों तथा कर्मशक्तियोंको उत्कृष्टतर बनाकर साधनसंपन्न करो।

८ अस्य जन्तवः यत् च द्विपत् उत चतुष्पद् अक्तुभिः विशां गोपाः चरन्ति (मं. ५)- इस (सुयोग्य ज्ञानी नेता) के अनुयायी मनुष्य (स्वयंसेवक) द्विपाद और चतुष्पाद अर्थात् मानवों और पशुओंकी सुरक्षा करनेके लिये रात्रिके समय भी (संरक्षक होकर) भ्रमण करते हैं। यह जिनका अग्रणी होता है, उनका संरक्षण करता है, जैसा दिनमें वैसाही रात्रिमें अपने अनुयायियोंसे सब प्रजा-ओंका संरक्षण करता है। यहां ' जन्तु ' ' जन्तवः ' पद प्राणिवाचक है। येही ' गो-पाः ' अथवा ' गोपाः ' हैं। अर्थात् ये अनेक है। इनका कार्य (गोपाः) संरक्षण करना है अथवा विशेषतः (गो-पाः) गौओंकी सुरक्षा करना है। क्योंकि गोरक्षाही सर्वस्वकी रक्षा है। ये रक्षक ' जन्तवः ' (प्राणी) हैं। यहां मनुष्यवाचक पद नहीं, परंतु प्राणीवाचक पद है। क्योंकि सुरक्षाके कार्यमें मनुष्य, कुत्ते, घोडे, हाथी आदि अनेक प्राणी बर्ते जाते हैं। कुत्ते तो आजकल भी बर्ते जाते हैं। वीर घोडों और हाथियोंपरसे निरीक्षण करते हैं। कबूतर भी बर्ते जाते हैं। इसीलिये प्राणीवाचक ' जन्तु ' पद यहां सुरक्षाके कार्यकर्ताओंके लिये रखा है। ये ' **जन्तवः गोपाः चरन्ति,** ' ये प्राणिरक्षा करते हुए, पहारा करते हुए, इधर उधर घूमते हैं।

९ चित्रः उषसः महान् प्रकेतः (मं. ५)— इसका विलक्षण उषा जैसा (गेरुवे रंगका) बडा ध्वज है। यह विलक्षण महान् ज्ञान देनेवाला, उषाके पश्चात् उदय होनेवाले सूर्यके समान प्रकाश देनेवाला, मार्गदर्शक है। प्रकेतः— ज्ञानी, प्रकाशक, केतु, ध्वज, झण्डा।

१० अध्वर्युः होता प्रशास्ता पोता जनुषः पुरः हितः विश्वा आर्त्विज्या विद्वान् पुष्यसि। (मं. ६)— यह सुयोग्य ज्ञानी (अ-ध्वर्-युः) हिंसारहित कर्मोंका संयो-जक, (होता) दिव्य विद्वानोंको बुलाकर अपने साथ रखनेवाला, अथवा दान कर्ता, (प्रशास्ता) सुयोग्य शासन करनेवाला, (जनुषः पुरः हितः) जन्मसेही अग्रभागमें रहनेवाला अथवा जनताका हित करनेवाला, नेता बना हुआ, सब (आर्त्विज्या) ऋतुसंधिमें यज्ञ करके ऋतु-परिवर्तनके कारण उत्पन्न होने-वाले नाना रोगोंको दूर करनेवाला है। अध्वर्युके इस कर्मने निपुण होनेके कारण वह नेता सबका पोषण करता है। ये गुण सुयोग्य ज्ञानी नेतामें हों। इससे जनताका सच्चा कल्याण होता है। वही (धीरः) सच्चा धीरज देता है अथवा (धी-रः) उत्तम बुद्धि

योग्य मंत्रणा देता है, जिससे उसके अनुयायी लोग चलकर अपना हितसाधन करते हैं।

११ सुप्रतीकः विश्वतः सदृङ् (७)– उत्तम सुन्दर, सब प्रकारसे दर्शनीय आदर्श जैसा यह नेता होता है। **(दूरे चित् सन् तळिदिव अति रोचते)**– दूर होने पर भी समीप रहनेके समान, बिजलीके समान तेजस्वी होता है। **(रात्र्याः चित् अन्धः अति पश्यति)**– रात्रीके अन्धकारमें भी वह दूरका देखता है। आगे होनेवाली बात वह अपने ज्ञानके बलसे स्वयं जानता है और जनताको पहलेसेही सावधान करता है।

१२ ये के चित् दूरे वा अन्ति वा अत्रिणः, वधैः दुःशंसान् दूढ्यः अप जहि (मं. ९)– जो कोई खाऊ दुष्ट दुर्मन दूर वा समीप रहते हैं, उन दुष्टोंका शस्त्रोंसे वध कर, उनको समाजमें रहने न दे।

१३ यजाय सुगं कृधि (९)– यज्ञ करनेवाले उदार धर्मात्माके लिये सुगम मार्ग कर, इसका मार्ग निष्कंटक हो। अर्थात् विश्वकी मंगलता यज्ञसे होनेवाली है, इसलिये यज्ञ करनेवालेके लिये सब मार्ग सुखकर होने चाहिये।

१४ अश्वा रोहिता वातजूता रथे अयुक्षाः (१०)– लालरंगके वेगवान घोडे रथको जोडो (और शत्रुपर शस्त्र इत्यादि फेंको)।

१५ वनिनः धूनुहि तपुना इन्वसि (१०)– वनोंके वृक्षोंपर कुल्हाडे चलाकर उनको गिराता है, वैसा आक्रमण यह नेता करता है, और शत्रुओंका वैसाही विध्वंस करे कि जैसा वन तोडनेवाला करता है।

१६ अयोधां मघवा दिष्टः अद्भुतः (१२) शत्रुपर [illegible] और अद्भुत होता है। सब वीर [illegible] उसके आधीन रहते हैं।

१७ देवानां अद्भुतः नियः देवः (१३,— अग्नियोंका [illegible] है, वैसा यह नेता दिव्य गुणोंसे युक्त है।

१८ [illegible] सूनृतां वसुः (१३)— दिवसदिन [illegible] देनेवाली स्थितिमें सब प्रजाजन आनन्दसे रह सकें, ऐसा प्र नेताको करना चाहिये।

१९ दाशुषे रत्नं द्रविणं च दधाति (१४)– दा लिये धन और रत्न दिया जावे।

२० सर्वताता अनागास्त्वं ददाशः(१५)– सब प्रक यज्ञीय जीवन व्यतीत करनेवालेके लिये निष्पाप जीवन प्राप्त

२१ भद्रेण शवसा चोदयासि, प्रजावता राधस स्याम (१५) सबका कल्याण करनेवाले सामर्थ्यसे जो कर्मो प्रेरणा होती है उससे शुभ संतान होती है और उत्तम मिलता है। अर्थात् अपनी शक्तिसे ऐसे कर्म किये जांय जिससे सबका कल्याण हो, तथा अपने घरमें शुभ संतान और उत्तम धन भी बढे।

२२ सौभगत्वस्य विद्वान् (१६)– उत्तम ऐश्वर्य प्र करनेका योग्य मार्ग जानना चाहिये।

२३ अस्माकं आयुः प्र तिर (१६)– हमारी दीर्घ आ हो। अपमृत्यु न हो।

यहां इस तरह इस सूक्तमें सब जनताकी सच्ची उन्नतिक मार्ग बताया है। जनताका नेता क्या करे, जनता क्या करे सब मिल किस तरह वर्ताव करें इसकी उत्तम शिक्षा यहां मिलती है। उत्तम सच्चा ज्ञान और शुभ कर्महो सबकी उन्नति का साधन यहां बताया है जो सर्वदा सब प्रकारसे सत्य है। यहां जो उपदेश किया है वह अग्निके विषये किया है, यह तो पाठक जानही सकते हैं।

अग्निको प्रदीप्त करना

इस सूक्तमें केवल अग्निके वर्णनपरक भी कई मंत्र हैं, उनका विचार अब करते हैं—

पर्वणा-पर्वणा चितयन्तः, इध्मं भराम,
वयं ते हवींषि कृणवाम। (मं. ४)

हम अग्निको प्रत्येक पर्वमें प्रदीप्त करते हैं, उसमें इन्धन डालते हैं और प्रदीप्त होनेपर हविकी आहुति देते हैं। यहां 'पर्व' पद है। अमावास्या और प्रतिपदाकी संधिके पर्व संधि हैं और इनमें दर्शपूर्ण मास आदि यज्ञ किये जाते हैं।

ग्रन्थिनो पर्वपर्वणो। (अमरकोश का.१।११)
पर्व ह्रीवे सेद ग्रन्थौ प्रस्तावे लक्षणान्तरे।
दर्शप्रतिपदोः सन्धौ विषुवत्प्रभृतिष्वपि ।
(मेदिनी)

दशेमं त्वष्टुर्जनयन्त गर्भमतन्द्रासो युवतयो विभृत्रम् ।
तिग्मानीकं स्वयशसं जनेषु विरोचमानं परि षीं नयन्ति २
त्रीणि जाना परि भूषन्त्यस्य समुद्र एकं दिव्येकमप्सु
पूर्वामनु प्र दिशं पार्थिवानामृतून् प्रशासद् वि दधावनुष्टु ३
क इमं वो निण्यमा चिकेत वत्सो मातृर्जनयत स्वधाभिः ।
बह्वीनां गर्भो अपसामुपस्थान्महान् कविर्निश्चरति स्वधावान् ४
आविष्टयो वर्धते चारुरासु जिह्मानामूर्ध्वः स्वयशा उपस्थे ।
उभे त्वष्टुर्विभ्यतुर्जायमानात् प्रतीची सिंहं प्रति जोषयेते ५
उभे भद्रे जोषयेते न मेने गावो न वाश्रा उप तस्थुरेवैः ।
स दक्षाणां दक्षपतिर्बभूवाञ्जन्ति यं दक्षिणतो हविर्भिः ६

२ अतन्द्रासः दश युवतयः त्वष्टुः गर्भं जनयन्त। इमं विभृत्रं तिग्मानीकं स्वयशसं जनेषु विरोचमानं सीं परि नयन्ति ॥

३ अस्य त्रीणि जाना परिभूषन्ति। समुद्रे एकं, दिवि एकं, अप्सु (एकं)। ऋतून् अनु प्रशासत्, पार्थिवानां पूर्वां प्र दिशं अनुष्टु वि दधौ।

४ निण्यं इमं वः कः आ चिकेत। वत्सः मातॄः स्वधाभिः जनयत। महान् कविः स्वधावान् गर्भः बह्वीनां अपसां उपस्थात् निश्चरति ॥

५ आसु चारुः आविष्टयः वर्धते। जिह्मानां उपस्थे स्वयशाः ऊर्ध्वः। उभे त्वष्टुः जायमानात् बिभ्यतुः। सिंहं प्रतीची प्रति जोषयेते ॥

६ उभे भद्रे मेने जोषयेते न। वाश्राः गावः न एवैः उप तस्थुः। यं दक्षिणतः हविर्भिः अञ्जन्ति सः दक्षाणां दक्षपतिः बभूव ॥

२ आलस्य छोड़कर दस स्त्रियाँ (अङ्गुलियाँ,) दीप्तिके (रूप अग्नि) को उत्पन्न करती हैं। इस भरण-पोषण वाले, तीक्ष्ण तेजसे युक्त, अपने यशसे शोभित, जनोंमें शमान (अग्नि) को (लोग) चारों ओर घुमाते हैं ॥

३ इस (एक अग्नि) के तीन जन्म सजाये जाते हैं। (वडवानलरूप) एक, द्युलोकमें (सूर्यरूप) एक और अन्तरि (विद्युद्रूप) एक (ये वे तीन रूप एक अग्निके हैं)। ऋतु व्यवस्था इसीने की है, पृथिवीके (ऊपरके) प्राणियोंकी व्यवस्था लिये पूर्वादि दिशाओंको भी सम्यक् रीतिसे इसीने निर्माण कि

४ गुप्त रहनेवाले इस (अग्नि)का तुममेंसे कौन जानता पुत्र (होते हुए भी इसने अपनी) माताओंको अपनी श शक्तियोंसे प्रकट किया है। बड़ा ज्ञानी, अपनी निज श शक्तिसे युक्त और सबके अन्दर रहनेवाला (सूर्य) बड़े प्रवाहोंके समीप स्थानसे निकलकर संचार करता है ॥

५ इन (पदार्थों) में सुचारु रूपसे प्रविष्ट होकर यह है। कुटिल निम्न गतिसे जानेवाले जलोंके मध्यमें भी यह स्थित रहकर अपने यशसे यह ऊर्ध्व गतिसे ऊपर चढ़ता दोनों लोक इस तेजस्वी देवके उत्पन्न होनेसे डरते हैं। (अ इस) सिंह जैसे (तेजस्वी देव)की फिरसे आकर सेवा करते

६ दोनों कल्याण करनेवाली माननीय (पूर्वोक्त वि इसकी) सेवा करती हैं। हम्भारव करनेवाली गौओंकी त अपनी गतियोंसे वे इसीके पास आती हैं। जिसके दक्षि भागमें रहकर हविद्वारा (याजक) पूजा करते हैं, वही अन्य वानोंसे भी अधिक बलिष्ठ हुआ है ॥

उद् यंयमीति सवितेवं बाहू उभे सिचौ यतते भीम ऋञ्जन् ।
उच्छुक्रमत्कमजते सिमस्मान्नवा मातृभ्यो वसना जहाति ७
त्वेषं रूपं कृणुत उत्तरं यत् संपृञ्चानः सदने गोभिरद्भिः ।
कविर्बुध्नं परि मर्मृज्यते धीः सा देवताता समितिर्बभूव ८
उरु ते ज्रयः पर्येति बुध्नं विरोचमानं महिषस्य धाम ।
विश्वेभिरग्ने स्वयशोभिरिद्धोऽदब्धेभिः पायुभिः पाह्यस्मान् ९
धन्वन्स्रोतः कृणुते गातुमूर्मिं शुक्रैरूर्मिभिरभि नक्षति क्षाम् ।
विश्वा सनानि जठरेषु धत्तेऽन्तर्नवासु चरति प्रसूषु १०
एवा नो अग्ने समिधा वृधानो रेवत् पावक श्रवसे वि भाहि ।
[illegible]मदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ११

सन्तानोंका परिपालन और संवर्धन

इस सूक्तमें 'औषस अग्नि' का वर्णन है। 'औषस अग्नि' का अर्थ उषासे प्रकट हुआ अग्नि, उषाका पुत्र सदृश सूर्य। उषासे सूर्य उत्पन्न नहीं होता, पर उषाके बाद सूर्य उदय होता है, इसलिये अलंकारिक रीतिसे सूर्यको उषाका पुत्र कहा गया है। यही 'औषस अग्नि' है। इस अलंकारसे यहाँ अपने पुत्रोंकी पालना किस तरह करनी चाहिये, यह उपदेश इस सूक्तमें किया है।

प्रथम मंत्र— इस मंत्रका प्रारंभ (**द्वे विरूपे चरतः**) इस वाक्यसे हुआ है। दो विभिन्न रंगरूपवाली स्त्रियाँ विचरती हैं, भ्रमण करती हैं, अपने नियत कर्मके लिये अपने निश्चित मार्गसे चलती हैं, किसीकी प्रतीक्षामें नहीं रहतीं, ना ही अपना कार्य छोडकर किसी स्थानपर व्यर्थ गप्पें करती हुई ठहरती हैं। सदा कार्यमग्न रहनेवाली ये दो स्त्रियाँ हैं। एक स्त्री इसमें गौरवर्ण है और दूसरी काले वर्णकी है। दिनप्रभा और रात्री ये इनके नाम हैं। ये (सु-अर्थ= स्वर्थ) ये उत्तम प्रयोजन सिद्ध करती हैं। बडा उपयोगी कार्य ये करती हैं, इसी कार्यके लिये सदा घूमती रहती हैं। दिनप्रभाका कार्य यह है कि जगत्को प्रकाश देकर मार्ग बताना, जनताको जगाना, सबका जीवन प्रकाशमय करना। रात्रीका कार्य जनताको विश्राम देना, सुख देना है। सब विश्वका इस तरह भला करनेके कार्यमें ये दो स्त्रियाँ लगी हैं और रातदिन यह इनका कार्य सतत चलता रहता है। जनताकी इस तरह सेवा करनेका कार्य ये करती हैं।

(**अन्या अन्या वत्सं उपधापयेते**) इनमेंसे एक एक स्त्री दूसरीके बच्चेका लालन, पालन, पोषण और संवर्धन करती रहती है। दिनप्रभाका बालक अग्नि है और रात्री-उषाका बालक सूर्य है। रात्रीके गर्भसे सूर्य उत्पन्न होता है, पुत्र उत्पन्न होनेही वह बिचारी रात्री अपने प्यारे सुपुत्रका पालन-पोषण करनेके लिये वहां नहीं रहती, वह विश्वके दूसरे स्थानकी जनताको आराम विश्राम देनेके लिये जाती है और अपने प्यारे सुपुत्रको दिनप्रभाके स्वाधीन करती है। इसी तरह दिनप्रभा नानक औरके गर्भसे अग्निकी उत्पत्ति होती है और वह अग्नि उसकी माता अपनी सखी रात्री देवीके अधीन कर देती है और स्वयं अन्य प्रदेशोंकी जनताको मार्गदर्शन करनेके लिये जाती है। इस तरह ये स्त्रियाँ अपने बच्चेको दूसरे अधीन करती हैं और अपना कर्तव्य करनेके लिये जह आवश्यक है वहां जाती हैं। कार्यवश होनेके कारण पुत्रका पालन स्वयं नहीं कर सकती, अपना कार्य भी छो सकतीं, ऐसी अवस्थामें प्रतिसमय प्रत्येक स्त्रीको दूसरीके पालना करनी पडती है। और यह कार्य यह स्त्री उत्तम निभाती है। दूसरीकाही पुत्र क्यों न हो वह अपने राष्ट्रका अतः उसकी पालना वैसीही उत्तमतासे होनी चाहिये अपने पुत्रकी, क्योंकि दोनों पुत्र राष्ट्रके सुपूत हैं। यह जीवनकी भावना इस मंत्रद्वारा बतायी है।

(**अन्यस्यां हरिः स्वधावान् भवति**) हरि नाम है। रस हरण करता है, दुःखोंका हरण करता है सूर्य हरि है। यह है रात्रीदेवीका पुत्र, पर इसके उत्पन्न ही रात्री इसका पालन करनेके लिये रहतीही नहीं, इसका पालन दिन-प्रभाको करना पडता है। इस दूसरी अधीन हुआ यह कुमार सूर्य (स्वधा-वान् भवति) उत्तम शक्ति बढानेवाले अन्नोंको खाकर पुष्ट होता है। प्रभा इस कुमार सूर्यको अच्छे स्वादु और पुष्टिकारक देती है जिससे यह परिपुष्ट होता जाता है। दूसरी स्त्री होनेपर भी यह दिनप्रभा उसका पालन उत्तम रीतिसे है, किसी तरह पक्षपात नहीं करती।

इसी तरह (**अन्यस्यां शुक्रः सुवर्चाः दृदृशे**) का पुत्र अग्नि भी रात्रीके अधीन होकर पाला जाता है दिनप्रभाके होते हुए उसके पुत्र अग्निका जितना तेज प्रकाश दिनप्रभाके होते हुए होता है, उससे कई गुना प्र रात्रीदेवीके अधीन होनेपर होता है। अर्थात् ये स्त्रियां दूस पुत्रका पालन अधिक दक्षतासे करती हैं, यही उपदेश मिलता है। शुक्रः-बलवान्, वीर्यवान्, सामर्थ्यवान्। **सुवर्चा** उत्तम तेजस्वी। दोनों स्त्रियोंके ये दो सुपुत्र हैं, ये दोनों आपस द्वारा पाले नहीं जाते, परस्परके पुत्रोंको परस्परकी मात पालती हैं, पर वे ऐसी पालती हैं कि जिससे पुत्रोंकी उन्नति होती रहती है।

इस प्रथम मंत्रका बोध यह है—

१ स्त्रियां अपना गृहस्थधर्म पालन करती हुई भी जनता सेवाका कार्य करें, अपना संरक्षण करती हुई वे जनताकी भी

कारण उनको अपने बालबच्चोंकी पालना करने
ा करनेके लिये समय नहीं मिलेगा, क्योंकि स्थान
नको जाना पडेगा,
केवे इस तरह विश्वसेवाके लिये बाहर गयी स्त्रीके
ी पालना, वह स्त्री करे कि जो घरमें रहती हो,
ी दूसरोंके बालबच्चोंकी ऐसी पालना करे कि जिससे उन
उन्नतिमें किसी तरह बाधा न हो, वे उन्नत होते जांय ।
इस तरह हेरफेरसे स्त्रियां समाजसेवा भी कर सकती हैं
सके परिवारका भी उत्तम प्रबंध हो सकता है ।
परका प्रबंध भी होना चाहिये और समाजसेवा भी
करिये। समाजमें ऐसा सुप्रबंध हो कि जिससे यह सेवा
ी चलता रहे और गृह-व्यवस्था भी न बिगडे ।
पर बालबच्चे समाजके हैं, उनमें यह मेरा और वह
का ऐसा आप-पर-भाव नहीं होना चाहिये । सबकी
ा पालना होनी चाहिये ।
समाजके स्त्री पुरुषोंमें यह समाज-जीवन बढे, ऐसी
इस राष्ट्रमें बढनी चाहिये । आजकल वैयक्तिक जीवन है,
स्थानपर समाज-जीवन आना चाहिये ।
सूर्य जन्म होतेही उसकी माता रात्री या उषाका अन्त
ता है, ऐसे भी वेदमें अन्यत्र वर्णन हैं । इससे 'परशुरामने
अपनी माताका वध किया था,' इस कथाकी उत्पत्ति हुई
होगी। इस सूक्तमें परस्परके पुत्रोंकी पालना परस्परकी माताएँ
करती हैं यह सामाजिक जीवनका रहस्यमय उपदेश यहां है ।

द्वितीय मंत्र

(अतन्द्रासः दश युवतयः त्वष्टुः गर्भं जनयन्त)

आलस्य छोडकर दस स्त्रियां त्वष्टा (की स्त्री वैरोचनी यशोधरा) के गर्भको उत्पन्न करती हैं, अर्थात् उत्तम रीतिसे यह दिव्य कार्य करती है । त्वष्टा दिव्य कारीगर है, दिव्य विश्वकर्मा है । इसकी स्त्री वैरोचनी यशोधरा गर्भवती होती है । प्रसूतिके समय दस स्त्रियां जो प्रसूतिशास्त्रानुसार प्रसूति कर्ममें प्रवीण हैं, उनको बुलाया जाता है, वे आती हैं, आलस्य, निद्रा अथवा सुस्तीको छोडकर कार्य करती हैं, और उससे उसके पुत्रका जन्म होता है । प्रसूति करनेके लिये उत्तम दाई सुशिक्षित रहे, वह अपने काममें आलस्य न करे, शास्त्रोक्त रीतिसे प्रसूति कर्म करे और माता तथा बालक जिस रीतिसे सुरक्षित रह सकें वैसा यत्न करें ।

यहां दस दाईयोंका उल्लेख है । आवश्यकता होनेपर एकसे अधिक दाईयाँ बुलाई जावें । एक दाई कार्य करे और अन्य दाईयाँ उसकी सहायता करें । प्रसूतिका समय बडा कठिन होता है, सहायकोंके अभावके कारण माता और पुत्रका नाश न हो यह सूचना यहां है ।

दस बहिनें

इस द्वितीय मंत्रमें (दश युवतयः) दश स्त्रियोंका वर्णन है अन्यत्र वेदमें (दश स्वसारः) दश बहिनोंका वर्णन है ।

(अग्निः) तं ईं हिन्वन्ति धीतयो दश । ऋ. १।१४४।५
,, दश क्षिपः पूर्व्यं सीमजोजनन् । ऋ. ३।२३।३
,, अजीजनन्नमृतं...दश स्वसारः ऋ. ३।२९।१३

इत्यादि मंत्रोंमें (दश धीतयः, दश क्षिपः, दश स्वसारः) दस बहिनें, स्त्रियें अग्निकी उत्पत्ति, प्रसूति कर्म, करती हैं ऐसा उल्लेख है । वैसाही यहाँ (दश युवतयः) दस स्त्रियां ऐसा है । वास्तवमें दो हाथोंकी दस अंगुलियाँही ये हैं । दो अरणीयां होती हैं, एक नीचे रहती है और उसमें दूसरी बैठती है । पीपलकी लकडीसे ये अरणियाँ बनायी जाती है । नीचेकी स्थिर होती है और उसमें ऊपरकी दोनों हाथोंकी अंगुलियोंसे घुमायी जाती हैं । अत्यंत जोरसे घुमानेसे अग्नि उत्पन्न होता है। इस बातका यह आलंकारिक और बोधप्रद वर्णन है ।

अग्नि अरणीमें-गर्भमें-रहता है, दस बहिनें उसको उत्पन्न करती हैं । यही अग्निके जन्मका वर्णन है । पुत्र भी अग्निही है । अधरारणी (नीचेकी लकडी) स्त्री है और उत्तरारणी (ऊपरकी लकडी) पुरुष है । इनसे पुत्रका जन्म होता है जैसा अरणियोंसे अग्नि । इसी तरह पृथ्वी और द्युलोकके मध्यमें सूर्य उत्पन्न होता है । यहां पृथ्वी स्त्री है और द्युलोक पिता (द्यौः पिता = द्यौष्पिता) है, इनसे सूर्यरूपी पुत्र उत्पन्न होता है ।

पृथ्वी 'काली' है और आकाश प्रभा 'गौरी' है । पृथ्वीका पुत्र अग्नि और आकाश-प्रभाका पुत्र सूर्य है । ऐसे अनेक अर्थ-वार वेदमंत्रोंमें हैं ।

(इमं विभूत्रं, निम्नानोके, स्वयशसं, जनेषु विरोचमानं स्त्री परि नयन्ति) इस उत्तम मनुष्य-लोक

करनेवाले, तीक्ष्ण शक्तिवाले अथवा तीक्ष्ण प्रकाशवाले, यशस्वी, जनतामें तेजस्वी अग्निको चारों ओर घुमाते हैं। उक्त प्रकार दोनों अरणियोंसे अग्नि सिद्ध होनेपर उसको अनेक यज्ञस्थानोंमें या स्थण्डिलोंमें ले जाकर स्थापन करते हैं।

इधर पुत्रके पक्षमें दस धाइयोंके द्वारा बालका जन्म होनेके पश्चात् उसको बड़े प्रेमसे सब संबंधी चारों ओर घुमाते हैं। बहिर्निष्क्रमण संस्कार करके उसे बाहर ले जाते हैं, चन्द्रदर्शन संस्कार करके इष्टमित्रोंके साथ चन्द्रदर्शन कराते हैं। रथारोहण, अश्वारोहण, यानारोहण, हस्त्यारोहण आदि संस्कार करके उस बालकको रथ, घोड़ा, यान, हाथी आदिपर बिठलाते हैं और घुमाते हैं। विश्वसे आनन्द लेनेकी यही रीति है।

तृतीय मन्त्र

(अस्य त्रीणि जाना परिभूषन्ति) इसके तीन जन्म होते हैं, उन जन्मोंको सब सजाते हैं, सुशोभित करते हैं। इस अग्निका एक जन्म (समुद्र एकं) समुद्रमें वडवानल रूपसे एक अग्निका जन्म माना जाता है। समुद्रके जलकी भांप होनेका दृश्य सवेरे दिखाई देता है, शीत ऋतुमें विशेषरूपसे भांप दिखाई देती है। प्रत्येक जलाशयमें भी यह दीखता है। (दिवि एकं) द्युलोकमें सूर्यरूप दूसरा अग्नि है। सूर्य अग्निकाही रूप है। (अप्सु एकं) अन्तरिक्ष स्थानमें मेघाशयमें विद्युत्‌रूपी तीसरा अग्नि है। आकाशमें सूर्य, अन्तरिक्षमें विद्युत् और पृथ्वीपर अग्नि ये तीन रूप एकही अग्निके हैं। वास्तवमें सूर्य, विद्युत् और अग्नि ये तीन पदार्थ पृथक् पृथक् दिखाई देते हैं पर ये एकही अग्निके ये तीन रूप हैं।

यहां समुद्र पद पृथ्वीस्थानका वाचक है, पृथ्वीमें भयानक प्रखर अग्नि है, पृथ्वीके पेटमें सब पदार्थ इस अग्निके कारण उबलते रसके रूपमें हैं। इस उष्णतासे पृथ्वीके जलाशयके जलकी भांप बनती है और सूर्य-किरणोंसे भी बनती है। सूर्यसे विद्युत्, विद्युतसे अग्नि होता है और काचमणिसे सूर्यकिरण केन्द्रित करनेसे भी शुष्क घासमें अग्नि उत्पन्न होता है। इस तरह ये सब आग्नेय रूप एकही अग्निके हैं अर्थात् यहां द्वैत या त्रैत नहीं है, पर एकही अग्नि अनेक रूप लेकर अनेकसा दिखाई देता है यह सदैक्य सिद्धान्त अग्निके वर्णनसे बताया है।

चतुर्थ मन्त्र

(इमं निण्यं कः चिकेत ?) इस गुप्त रहे अग्निको कौन जानता है ? अग्नि सभी वस्तुओंमें अत्यंत गुप्त है। व्याप्त है, पर दीखता नहीं। ज्ञानीही उसको जानता है।

(वत्सः मातृः स्वधाभिः जनयत) पुत्र होता भी अपनी माताओंको अपनी शक्तियोंसे प्रकट करता अग्निसे पृथ्वी प्रदीप्त होती है, विद्युत्से अन्तरिक्ष और सू यी प्रकट या दीप्तिमान होती है। पुत्र ऐसा श्रेष्ठ सामर्थ बने, कि जिससे उसकी माताका नाम विश्वमें यशस्वी पुत्रके यशसे माता, पिता, कुल और जातिका यश भी भाव यही है। पुत्रका यश बढनेसे कुलका यश बढता है।

(महान् कविः स्वधावान् गर्भः यहीनां उपस्थात् निश्चरति) बड़ा ज्ञानी सामर्थ्यवान् होकर यह रूप गर्भ बहुत जलप्रवाहोंके सामनेसे निकलकर संचार करत विद्युत्‌रूपी अग्नि वृष्टिके प्रवाहोंके मध्यमें प्रकट है। सूर्य महासागरके बीचमेंसे उदय हुआ है ऐसा जहां देख है, वहां वह जलप्रवाहोंसे प्रकट होता है ऐसा कहा जा स है। 'अपसां' का अर्थ 'प्रशस्त कर्म' ऐसा एक और अर्थ प्रशस्त कर्मोंके समीप यह बड़ा कवि ज्ञानी और अपने र्थसे प्रभावी बना कुमार पहुंचता है। प्रशस्त कर्म स्वयं और दूसरोंसे कराता हुआ विशेष श्रेष्ठ बनता है। पहिले गर्भमें था, पश्चात् प्रकट होकर जन्म लेकर बाहर आया, यह बड़ा ज्ञानी और कवि बना और (स्व-धा-वान्) धारक शक्तिसे प्रभावी बना। तब वह प्रशस्त कर्मोंको करनेका अधिकारी हुआ।

पञ्चम मन्त्र

(आसु चारुः आविष्टयः वर्धते) इन जल अन्दर, इन मेघोंके अन्दर विद्युत्‌रूपसे प्रविष्ट होकर वह बढता है। नदियोंके किनारोंपर होनेवाले वक्षोंमें वह प्रदीप्त होकर बढता है। इन प्रशस्ततम कर्मोंमें सूर्यरूपसे प्रविष्ट होकर बढता है। प्रशस्त कर्मोंको सुन्दर रीतिसे कर वह अपने प्रभावसे बढता है। अग्निरूप वर्णन और विद्वान् ज्ञानीरूप वर्णन प्रशस्त कर्मपरक मानकर स्थानोंमें अर्थ देखना चाहिये।

(जिह्मानां उपस्थे स्वयशाः ऊर्ध्वः वर्धते) चालसे चलनेवाले शत्रुओंके समीप भी अपने यशसे उन्न कर यह ज्ञानी बढता रहता है। यह ज्ञानीके पक्षमें अर्थ हुआ अब अग्निके पक्षमें देखिये। कुटिल गतिसे, निम्नगतिसे

ले नदीप्रवाहोंके समीप, नदियोंके समीप यज्ञ
निवाला अग्नि अपने निज यशसे उच्च गतिसे बढ़ता
ी गति नीचेकी ओर होती है और अग्निकी ज्वाला
ी है। इसी तरह कुटिल दुष्ट मानवोंकी तेढ़ी चाले
और ज्ञानी विद्वान्का व्यवहार सरल होता है। यह
लंकार यहां बताया है।

ो बालक माताके न होनेके कारण दाईके द्वारा
ा गया था, वही राज्यशासनद्वारा विद्यालयोंसे विद्या
ेने बाद विद्वान् होकर दुष्ट कुटिलोंको भी उत्तम शिक्षा
ा महा ज्ञानी हुआ।

उभे त्वष्टुः जायमानात् बिभ्यतुः) दोनों तेजस्वी
ं श्रेष्ठ होनेसे भयभीत होते हैं। उच्च नीच, ज्ञानी
ं, श्रेष्ठ कनिष्ठ, इन तरह इस जगत्में दो प्रकारके प्राणी
ुख होते हैं। ये दोनों प्रकारके मानव सभास्थानमें तेजस्वी
ू अनेक उससे डरते हैं। विद्वान्की विद्याके सामने अपने
न होनेका डर इनके मनमें होता है। दूसरे पक्षमें अग्नि,
ूर्य तथा सूर्य प्रकट हो जानेपर पृथ्वी और द्यौ ये दोनों भय-
ीत होते हैं। अग्नि सबको जला देगा यह भय है। विद्युत्की
ड़कसे सभी भयभीत होते हैं और सूर्यके उदयसे भी दुष्टोंको
ड़ा होता है। 'त्वष्टा' का अर्थ दिव्य कारीगर, कुशल पुरुष
ौर तेजस्वी ऐसा है।

(सिंहं प्रतीची प्रति जोषयेते) पुरुष सिंहकी, मान-
ीय पुरुषोंके पीछेसे आनेवाले सेवा करते हैं। यहांका 'सिंह'
ा श्रेष्ठका वाचक है। 'प्रतीची' का अर्थ पश्चिम है, पर यहां
ीछे रहनेवाली ऐसा भाव है। पीछे रहनेवाली जनता श्रेष्ठको
ेख कर और श्रेष्ठ बने। 'प्रतिजोषयेते' का अर्थ प्रत्येकको
ृथक् पृथक् सेवा करनेका भाव दिखाता है। श्रेष्ठ मनुष्य पीछे
ड़नेवालोंको देखे और सिंहावलोकन करके प्रत्येकका निरीक्षण
रे और प्रत्येकसे पृथक् पृथक् सेवा लेकर प्रत्येककी सहायता
रे।

षष्ठ मन्त्र

(उभे भद्रे मेने जोषयेते न) दोनों कल्याण करने
ाली मानवीय (देवपना और दानवी ये दोनों विद्या)
ोनों उत्तमसे उत्तम) सेवा करनेके लायक [illegible]
ती है। जिससे उन दोनों [illegible]

इसी तरह सब स्त्रियोंको उचित है कि वे अपने पुत्रोंकी अथवा अपने पास रखे हुए संतानोंकी योग्य रीतिसे सेवा करें और संतानकी उन्नति करना अपना कर्तव्य समझें।

(वाश्राः गावः न एवैः उप तस्थुः) हम्बारव करनेवाली गायें जैसी दौडती हुई अपने बच्चोंके पास पहुंचती है, वैसोही माताएं अपने पुत्रोंके हित-साधनका यत्न करें। गौका बछडेपर प्रेम अत्यंत होता है वैसा प्रेम अपनी संतानोंपर करें और उनकी उन्नति करनेके कष्ट सहें।

(यं दक्षिणतः हविर्भिः अञ्जन्ति, सः दक्षाणां दक्षपतिः बभूव) जिसकी हविसे पूजा करते हैं वह बलवानोंसे भी बलवान् होता है। बलवानोंसे अधिक बल प्राप्त करना यह ध्येय है। शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, विद्या-विषयक, वीर्य, शौर्य पराक्रमके संबंधका बल आदि अनेक प्रकारके बल होते हैं। ये बल बढाने चाहिये और अपना सब बल जनताकी भलाईके लिये समर्पित होना चाहिये।

सप्तम मंत्र

अग्नि अपने किरणोंको चारों ओर फेंकता है और भयंकर सामर्थ्यवाला होता है और पश्चात् वह दोनों द्यावापृथ्वीको सुभूषित करता है। अग्नि प्रदीप्त होता है और उससे यज्ञ आदिकी सिद्धि होनेके कारण वह सबके लिये भूषण बनता है। अपने तेजसे तेजस्वी और बलिष्ठ होनेकी यहां सूचना है।

(सिमस्मात् युक्षे अरुषं उत् अजते) मनुष्य अपना प्रभावी प्रकाश चारों ओर फैला देता है, सबको [illegible] देता है। मानो प्रकाशसे सब ओर फैल जाता है। **(मातृभ्यः नवा वसना जहाति)** मानो ओढनी नये [illegible] है, ये प्रकाशकी पंक्ति है। [illegible] पर अपने प्रकाशके भावी [illegible] अपने प्रकाशके [illegible]

अष्टम मंत्र

[illegible] **(सप्तभिः नामभिः अधिः संदधानः शीर्षन् धत्ते उपमीं)** [illegible]

अपना निजघर शरीर है उसमें इन्द्रियरूप गौवें रहती हैं, उनसे तथा उनकी शुद्धता, जल आदिके स्नानादिसे पवित्रता, तथा संपूर्ण अन्तःकरणकी निर्दोषता सिद्ध करनेसे जो उच्चतर सौंदर्य बनता है वह प्राप्त करना प्रत्येक मानवका ध्येय होना चाहिये।

(कविः धीः युध्मं परि मर्मृज्यते) ज्ञानी मनुष्य अपनी बुद्धिसे अपना आधारस्थान शुद्ध करता है, जिसपर वह आनंदसे रह सकता है और उन्नत भी हो सकता है। अपना स्थान अशुद्ध रहनेतक उन्नतिकी आशा करना व्यर्थ है। इस तरह स्थान-शुद्धि, गृहशुद्धि और व्यक्तिकी पवित्रता होनेपर **(समितिः बभूव)** ऐसे परिशुद्ध विचारोंके सज्जनोंकी जो सभा होती है वही सच्ची समिति कहलाती है। क्योंकि वहां **(सा देवताता)** दिव्य भावोंका, दिव्य गुणधर्म कर्मोंका फैलाव करनेका यत्न करती है। (देव-ताता) देवत्वका विकास करनेवाली संस्थाका नाम देवताता है। ऐसी उच्च समिति बननेके लिये स्थानशुद्धि गृहशुद्धि, व्यक्तिशुद्धि होनी चाहिये और जब ऐसी व्यक्तियाँ शुद्ध स्थानपर इकट्ठी होंगी तब वह पवित्रताका फैलाव करनेका कार्य कर सकेगी। मनुष्य अपनी शक्ति बढावे और अपनी संघटना करके सांघिक शक्ति भी बढावे। सब राष्ट्रकी एक समिति हो जो राष्ट्रकी संघटित शक्ति बढानेका कार्य करे।

नवम मन्त्र

(ते महिषस्य त्रयः ते विरोचमानं ऊरु युध्मं धाम परि यंति) तू बलवान् बननेपर तेरा शत्रुका पराभव करनेका सामर्थ्य तेरे तेजस्वी विस्तृत मूल स्थानको चारों ओरसे घेर लेता है। अर्थात् तेरे स्थानमें, तेरे देशमें वह सामर्थ्य भरपूर होकर निवास करता है। तेरे सामर्थ्यसे तेरा देश भर जाता है। सब जनतामें तेरा बल भरा रहता है। तेरे सामर्थ्यसे सब राष्ट्र बलवान् हो जाता है।

(रुद्रः विश्वेभिः स्वयशोभिः अदब्धेभिः पायुभिः अस्मान् पाहि) स्वयं तेजस्वी बनकर सब यशस्वी तथा न दबनेवाली रक्षाशक्तियोंसे हमारी सुरक्षा कर। तू तेजस्वी बन, यश संपादन कर, अपने पास न दबनेवाली शक्तियाँ बढा और उनसे सब राष्ट्रकी सुरक्षा कर।

दशम मन्त्र

(धन्वन्) मरुभूमिमें, रेतीले निर्जल स्थानमें भी पार्थो वीर **(गातुं)** उत्तम मार्ग बना सकता है। **(स्रोतः ऊर्मिं कृणुते)** जलप्रवाह तथा जलकी लहरें निर्माण कर सकता है। यह सब पुरुषार्थसे साध्य होनेवाली बात है। मनुष्य अपनी शक्ति बढाकर यह सब कर सकता है।

(शुक्रैः ऊर्मिभिः द्यां अभि नक्षति) बलवान् मनुष्य जलके प्रवाहोंसे निर्जल भूमिको भी भरपूर कर सकता है। **(विश्वा सनानि जठरेषु धत्ते)** भोजन करनेयोग्य अन्नोंको जनताके अनेक अंशोंमें उदरोंमें धारण करता है। अर्थात् जनताके भोजनके लिये सब प्रकारके अन्न उपस्थित कर देता है। अपने राष्ट्रमें अन्न न भी होते हों, पर वह वीर पुरुषार्थ प्रयत्नसे उनको प्राप्त करता है और जनताके नाना उदरोंतक पहुंचाता है। उससे सारे लोग हृष्ट पुष्ट और आनंदित हो जाते हैं।

(नवासु प्रसूषु अन्तः चरति) नवीन प्रसूतियोंके अन्दर भी यह शक्ति संचार करती है। नूतन उत्पन्न होनेवाले बालकोंके अन्दर यह सामर्थ्य जन्मसेही रहता है। जो शक्तिका संचार राष्ट्रमें भरपूर भरा रहता है वह उस राष्ट्रकी सुप्रजामें भी स्वयं जन्मसे उत्पन्न होता है। जैसा अग्नि सब पदार्थोंमें रहता है वैसाही यह सामर्थ्य भी उस राष्ट्रकी नूतन उत्पन्न प्रजामें दीखता है।

अन्तिम मंत्र सुबोध है इसलिये उसकी विशेष विवेचनकी आवश्यकता नहीं है। यह सूक्त अग्निका सूक्त है। और अग्निके मिषसे मानवोंको उन्नति प्राप्त करनेका उपदेश किया है। इसका अधिक मनन करनेसे मानवोंके अभ्युदय करनेके मार्गोंका अच्छी तरह ज्ञान हो सकता है।

(३) प्रजाओंका रक्षक

(ऋ. १।९६) कुत्स आङ्गिरसः। अग्निः, द्रविणोदा अग्निर्वा। त्रिष्टुप्।

स प्रत्नथा सहसा जायमानः सद्यः काव्यानि बळधत्त विश्वा।
आपश्च मित्रं धिषणा च साधन् देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् १

स पूर्वया निविदा कव्यतायोरिमाः प्रजा अजनयन्मनूनाम्।
विवस्वता चक्षसा द्यामपश्च देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् २

तमीळत प्रथमं यज्ञसाधं विश आरीराहुतमृञ्जसानम्।
ऊर्जः पुत्रं भरतं सृप्रदानुं देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ३

स मातरिश्वा पुरुवारपुष्टिर्विदद् गातुं तनयाय स्वर्वित्।
विशां गोपा जनिता रोदस्योर्देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ४

नक्तोषासा वर्णमामेम्याने धापयेते शिशुमेकं समीची।
द्यावाक्षामा रुक्मो अन्तर्वि भाति देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ५

अन्वयः— १ सहसा जायमानः सः सद्यः प्रत्नथा विश्वा काव्यानि बद् बधत्त। आपः च धिषणा च मित्रं साधन्। देवाः द्रविणोदां अग्निं धारयन्॥

२ स आयोः पूर्वया निविदा कव्यता मनूनां इमाः प्रजाः अजनयत्। विवस्वता चक्षसा द्यां अपः च। देवाः॥

३ हे आरीः विशः! तं प्रथमं यज्ञसाधनं आहुतं ऋञ्जसानं ऊर्जः पुत्रं भरतं सृप्रदानुं ईळत। देवाः॥

४ सः मातरिश्वा पुरुवारपुष्टिः स्वर्वित् विशां गोपाः रोदस्योः जनिता तनयाय गातुं विदत्। देवाः॥

५ नक्तोषासा वर्णं आमेम्याने समीची एकं शिशुं धापयेते। रुक्मः द्यावाक्षामा अन्तः वि भाति। देवाः॥

अर्थ— १ बलके साथ उत्पन्न होनेवाला वह अग्नि, तत्काल ही पूर्वकी तरह, सब काव्योंको ठीक रीतिसे धारण करता है। जीवन (जल) और बुद्धिके द्वारा (वह सबका) मित्र होता है। देवोंने ऐसे धनदाता अग्निको धारण किया है॥

२ उस अग्निने आयुके स्तोत्रोंद्वारा काव्योंसे सम्पन्न होकर मनुकी इस सब प्रजाको उत्पन्न किया। तेजसे द्युलोकको और जलोंको व्याप्त किया। देवोंने॥

३ हे प्रगतिशील प्रजाओं! उस पहिले यज्ञके साधक, हवनसे सन्तुष्ट, प्रगतिशील, बलके उत्पन्न पुत्र, बलके अन्नोंके देनेवाले, दानशील (अग्निदेव) की स्तुति करो। देवोंने॥

४ वह अन्तरिक्षमें गतिशील अनेकोंसे वरण करनेवाला, ऐश्वर्यका स्वामी, द्युलोक और पृथिवीका उत्पादक है, उसने देवोंके लिये [illegible] देवोंने॥

५ रात्रि और उषा [illegible] एक शिशुको [illegible] सुवर्ण [illegible] देवोंने॥

रायो बुध्नः संगमनो वसूनां यज्ञस्य केतुर्मन्मसाधनो वेः ।
अमृतत्वं रक्षमाणास एनं देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ६
नू च पुरा च सदनं रयीणां जातस्य च जायमानस्य च क्षाम् ।
सतश्च गोपां भवतश्च भूरेर्देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ७
द्रविणोदा द्रविणसस्तुरस्य द्रविणोदाः सनरस्य प्र यंसत् ।
द्रविणोदा वीरवतीमिषं नो द्रविणोदा रासते दीर्घमायुः ८
एवा नो अग्ने समिधा वृधानो रेवत् पावक श्रवसे वि भाहि ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ९

६ रायः बुध्नः, वसूनां संगमनः, यज्ञस्य केतुः, वेः मन्मसाधनः । एनं अमृतत्वं रक्षमाणासः देवाः ०॥

७ नू च पुरा च रयीणां सदनं, जातस्य च जायमानस्य च क्षां, सतः च भवतः च भूरेः गोपां, देवाः द्रविणोदां अग्निं धारयन् ॥

८ द्रविणोदाः तुरस्य द्रविणसः प्र यंसत् । द्रविणोदाः सनरस्य (प्र यंसत्) । द्रविणोदाः वीरवतीं इषं नः (प्रयंसत्) । द्रविणोदाः दीर्घं आयुः रासते ॥

९ हे पावक अग्ने ! समिधा एव वृधानः रेवत् नः श्रवसे वि भाहि । नः तत् मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ममहन्ताम् ॥

६ (यह अग्नि) धनका आधार, ऐश्वर्योंकी प्राप्ति क वाला यज्ञका ध्वज (जैसा सूचक), और प्रगतिशील मान लिये इष्ट सिद्धि देनेवाला है । इसे अमृतत्वकी सुरक्षा क वाले देवोंने० ॥

७ इस समय और पहिले भी जो संपत्तिका घर है, उत्पन्न हुआ है और जो उत्पन्न होगा उसका निवास करता जो है और होगा उन अनेक पदार्थोंका जो संरक्षक है, देवोंने०

८ धनदाता (अग्नि) जंगम ऐश्वर्यका (हमें) दान क ऐश्वर्यदाता (अग्नि) सेवन करनेयोग्य (स्थावर ऐश्वर्य हमें प्रदान करे) । वैभव दाता (अग्नि) वीरोंसे युक्त अ हमें देवे । संपत्तिदाता (अग्नि हमें) दीर्घ आयु देता है ॥

९ हे पवित्रता करनेवाले अग्निदेव ! समिधाओंसे बढ़त हुआ और धन देनेवाला होकर हमारे यशके लिये प्रकाशि होओ । हमारे इस अभीष्टका मित्र आदि० देव अनुमोदन करो (ऋ. १।९५ का ११ वा मंत्र यही है, वहां इसका अर्थ देखो ।

प्रजारक्षक अग्नि

इस सूक्तमें अग्निका वर्णन है, जो इस सूक्तके पाठ करनेसे सबको विदित हो सकता है । इस अग्निके वर्णनमें कुछ अन्य बातें भी कुछ शब्दोंके श्लेषार्थसे बतायी हैं । इनका मनन यहां हम करते हैं–

'विशां गोपाः' (मं. ४)— प्रजाजनोंका संरक्षण करनेवाला, **'सतः भवतः च भूरेः गोपाः'** (मं. ७)– जो है और जो होगा उस बड़े विश्वका यह संरक्षण करता है । यह **सहसा जायमानः** (मं १)— बलके साथ प्रकट होता है, बलके कार्य करनेके लियेही यह प्रकट हुआ है । **'मनूनां प्रजाः अजनयत्'** (मं. २)— मनुषे उत्पन्न हुई प्रजाक इसने भरण पोषण किया है ।

'विशः आरीः' (मं. ३)— प्रजा प्रगति करनेवाली हो । अपनी उन्नति करनेके लिये यत्नशील हो । प्रजाजनोंमें जो **'प्रथमं यज्ञसाधनं ऋञ्जसानं भरतं सुप्रदानुं ईळत'**(१) जो पहिला, यज्ञको संपन्न करनेवाला, प्रगतिशील, सबका पोषण कर्ता और दाता हो उसीकी प्रशंसा करो । यही मनुष्य प्रशंसाके योग्य है । **'पुरुवारपुष्टिः स्वर्वित् तनयाय गातुं विदत्'** (मं. ४)— जो अनेकवार प्रजाका पोषण करता है, आत्मज्ञान जानता है और बालबच्चोंके सुधारका मार्ग जानता है

...है। सुप्रजा निर्माण करना प्रत्येक विवाहित स्त्रीपुरुष...का संकल्प है।

'समीची एकं शिशुं धापयेते' (मं. ५)— एक ...रहनेवाली दो स्त्रियाँ एक बच्चेका उत्तम रीतिसे ...पोषण करती हैं। बच्चेके पालन-पोषणमें विघ्न नहीं ...। स्त्रियां बच्चेपर प्रेम करें और उसकी पालनामें दत्त-...हों।

'रायः बुध्नः' धनका आधार या आश्रय, जिसके पास ...धन रहता है ऐसा, 'वसूनां संगमनः' धनोंको मिल...करनेवाला, 'वेः मन्मसाधनः' प्रगतिशील मानवके ...करने योग्य साधनोंको प्रस्तुत करनेवाला, 'अमृ-...रक्षमाणः' अमरत्वकी सुरक्षा करनेवाला मनुष्य हो। ...ऐसेकी प्राप्ति, मननयोग्य विचारोंका संग्रह और अमृत अर्थात् मोक्ष अथवा बंधननिवृत्ति करनेके उपायोंका संग्रह करनेका विचार कहा है। (मं. ६)

'रयीणां सदनं' संपत्तिका घर अथवा स्थान, 'जातस्य जायमानस्य क्षां' उत्पन्न हुए और उत्पन्न होनेवालेका निवास कर्ता, सबका आश्रय होनेवालेका यहां वर्णन है। (मं. ७) इस सूक्तका वर्ण्य विषयही 'द्रविणोदा' धनदाता है। धन प्राप्त करके उसका दान करनेवाला यहां वर्णन किया है। 'वीरवतीं इषं नः यंसत्' (मं. ८)— वीरोंके पास जो धन रहता है वह वीरता देनेवाला धन हमें मिले। जिससे निर्बलता निर्माण होती है ऐसा धन हमें नहीं चाहिये।

इस सूक्तका यह सर्व सामान्य उपदेश है जो सबके लिये मनन करनेयोग्य है।

(४) कल्याणका मार्ग

(ऋ. १।९७) कुत्स आङ्गिरसः। अग्निः, शुचिरग्निर्वा। गायत्री।

अप नः शोशुचदघमग्ने शुशुग्ध्या रयिम् । अप नः शोशुचदघम् १
सुक्षेत्रिया सुगातुया वसूया च यजामहे । अप नः शोशुचदघम् २
प्र यद् भन्दिष्ठ एषां प्रास्माकासश्च सूरयः । अप नः शोशुचदघम् ३
प्र यत् ते अग्ने सूरयो जायेमहि प्र ते वयम् । अप नः शोशुचदघम् ४
प्र यदग्नेः सहस्वतो विश्वतो यन्ति भानवः । अप नः शोशुचदघम् ५
त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि । अप नः शोशुचदघम् ६

द्विषो नो विश्वतोमुखाति नावेव पारय । अप नः शोशुचदघम् ७
स नः सिन्धुमिव नावयाति पर्षा स्वस्तये । अप नः शोशुचदघम् ८

७ हे विश्वतोमुख ! नावा इव द्विषः नः अति पारय० ॥

८ सः नावया सिन्धुं इव स्वस्तये नः अति पर्ष० ॥

७ हे सब ओर मुखवाले (अग्निदेव) ! नौकासे (समुद्र पार होनेके) समान, सब शत्रुओंसे हमें पार ले जाओ० ॥

८ वह (तुम) नौकासे समुद्रके या नदीके पार जानेके समान हमारे कल्याणके लिये हमें (सब दुर्गतिसे) पार ले जाओ हमारा पाप दूर हो ॥

उन्नतिका सत्य मार्ग

पाप न करना, पापकी वासना दूर करना अर्थात् शुभकर्म करनाही उन्नतिका सत्य मार्ग है। (**अघं नः अप शोशुचत्**) पाप दुःख करता हुआ हमसे दूर हो जावे। हमारे पास पापके लिये कोई किसी तरह स्थान न मिलनेसे वह पाप निराधार होकर दुःख करता हुआ दूर जावे । अर्थात् हमारे पास पापके लिये कोई स्थान न मिले । हम निष्पाप हों ।

हममें तीन शुभेच्छाएं स्थिररूपसे रहें। उत्तम देशमें रहना उत्तम शुद्ध मार्गसे जाना और उत्तम धन प्राप्त करना । ये तीन शुभ इच्छाएँ मनुष्यमें स्थिर रूपसे रहें । इनके साथ यज्ञ करनेकी इच्छा भी चाहिये । क्योंकि यज्ञ मनुष्यकी उन्नति करनेवाला है। (मं. २)

(**अस्माकासः सूरयः**) हमारे सभी संबंधी विद्वान् ज्ञानी और सुविचारी हों । हमारे संबंधियोंमें एक भी ऐसा न हो कि जो निर्बुद्ध और अनाडी हो। (मं. ३-४)

जो (**सहस्वतः भानवः विश्वतः प्र यन्ति**) बलवान् है उसके तेजका फैलाव चारों ओर होता है यह नियम है। इसलिये उन्नति चाहनेवालोंको उचित है कि वे अपनेमें बल प्राप्त करें और बढावें। (मं. ५) जब बल बढेगा तब उसके यशका फैलाव चारों ओर होगाही । यह बल जो ' **सहस्-वत्** ' पदसे व्यक्त होता है वह दूसरेपर व्यर्थ आक्रमण करनेका नहीं है, प्रत्युत शत्रुके हमले होनेपर स्वयं अपने स्थानपर स्थिर रहनेका है, पराभूत न होते हुए युद्धमें अपने स्थानपर स्थिर रहनेके लिये जो बल चाहिये वह बल यह है ।

बल दो प्रकारका होता है। एक बल वह है कि जिससे शत्रुपर आक्रमण करके, उसको पराभूत करके, उसको स्थानसे उखाडकर फेंक देना और तितर-बितर कर देना होता है। और दूसरा बल वह है कि जिससे युद्धमें शत्रुसे पराभूत न होते हुए डटकर अपने स्थानमें सुस्थिर होना संभव हो सकता है। ये दो बल परस्पर भिन्न हैं और जो ' **सहस्-वत्** ' पदसे इस मंत्रमें कहा है वह बल दूसरा है। विजयके लिये दोनों बल प्राप्त करना आवश्यक है।

' **विश्वतो-मुखः** ' तथा ' **विश्वतः परिभूः** ' ये दो पद षष्ठ मंत्रमें विशेष विचारणीय हैं। ' **परिभूः** ' पदका अर्थ 'शत्रुका पराभव करना, अधीन करना, पादाक्रान्त करना, शत्रुका अपमान करना, शत्रुका नाश करना, शत्रुको घेरना, शत्रुके साथ स्पर्धा करना, मार्ग बताना ' ऐसा होता है।

' **विश्वतः परिभूः** ' का तात्पर्य 'शत्रुका सब प्रकारसे, सब ओरसे, सब तरहसे पराभव करना ' है, शत्रुका पूर्ण नाश करके उसको अपने अधीन करना और अपना प्रभाव सर्वतोपरि स्थापन करनेका भाव यहां है। इसलिये ' **विश्वतः मुखः** ' अपना मुख चारों ओर होना अत्यंत आवश्यक है। मुख चारों ओर रखनेका तात्पर्य शत्रुके चारों ओरका योग्य निरीक्षण करके, सबकी सब परिस्थिति अपने अधीन करना है। ईश्वर जैसा (विश्वतोमुख) सब ओर मुखवाला होनेके कारण सबका योग्य निरीक्षण करता है उसी तरह विजयी वीर चारों ओर दूतोंद्वारा शत्रुके चारों ओरका निरीक्षण करे और विजय संपादन करे । इस दृष्टिसे ये पद बडे मननीय हैं। (मं.६)

जिस तरह नौकासे समुद्रके पार होते हैं, उसी तरह पापके समुद्रके पार, तथा शत्रुओंके समुद्रसे पार, होनेका कर्तव्य मनुष्यको करना आवश्यक है। यह तो अपनी शक्ति बढानेसेही हो सकता है और अपनी शक्ति तब बढ सकती है कि जब अपनेमेंसे पाप अर्थात् पतनके हेतु समूल दूर हो जावेंगे। जब

ा होगा तब 'स्वस्ति' अर्थात् कल्याण होगा। कल्याण
जो मार्ग इस सूक्तमें कहा है वह संक्षेपसे नीचे दिया

-

अघं अप शोशुचत् (मं. १)— पाप अर्थात्
हेतुओंसे दूर करो, (अघ्-अशुद्ध मार्गसे जाना, अयोग्य
चलना, यही पाप है जिससे मानवका पतन होता है।)
रायि शुशुग्धि— धन प्राप्तिके मार्गका प्रकाश हो,
सुक्षेत्रिया (मं. २)— उत्तम क्षेत्रमें रहना सहना
कार्य करना,
सुगातुया— प्रगतिका उत्तम मार्ग मिले,
वसूया— धन प्राप्त हो
यजामहे— जितना धन हो उससे [श्रेष्ठोंका सत्कार,
संघ संगठना और दीनोंकी सहायता करनेके उद्देश्यसे]
यज्ञ करते रहेंगे। अर्थात् धनसे अपनेही भोग नहीं बढा-
वेंगे।

अस्माकासः सूरयः (मं. ३)— हमारे सब लोग
विद्वान ज्ञानी हों,
वयं सूरयः ते प्र जायेमहि (मं. ४)— हम
विद्वान होकर ईश्वरके भक्त बनकर बढते रहेंगे। विश्वरूप
ईश्वरकी सेवा स्वकर्मसे करेंगे।

सहस्वतः भानवः विश्वतः प्र यन्ति (मं. ५)— बलवान् वीरका प्रकाश विश्वमें फैलता है, यह नियम सब जानें। निर्बलको इस विश्वमें कोई पूछता नहीं, इसलिये अपनी शक्ति बढानेका प्रयत्न करना चाहिये।

विश्वतो-मुखः (मं. ६;७)— विश्वमें चारों ओर क्या चल रहा है वह ठीक तरह देखते रहो, चारों ओरका ठीक प्रकार निरीक्षण करो,

विश्वतः परिभूः (मं. ६)— सर्वत्र विजयी हो,

नावा सिन्धुं इव द्विषः नः अति पारय (मं. ७;८)— जिस तरह नौकासे समुद्रके पार होते हैं, वैसे शत्रुओंसे पार जाओ। अन्तःकरणके शत्रु पापभाव हैं, समाजके शत्रु सामाजिक द्वेषभाव हैं और राष्ट्रके शत्रु द्वेषभाव फैलानेवाले वैरी हैं। इन सबको दूर करना चाहिये।

स्वस्तये (सु-अस्ति)— अपना इस स्थानपरका निवास सुखकर करनेके लिये यत्न करो। पूर्वोक्त मार्ग इसी सिद्धिके लिये है।

मानवी उन्नतिके लिये यह उत्कृष्ट मार्ग है। पाठक इसका अधिक मनन करें और इसे जीवनमें उतारें। जिससे मनुष्यका पतन होता है उसका नाम अघ है, अयोग्य मार्गसे जानाही पाप है, जिससे अवनति होती है वही पाप है। इनको दूर करनेका उपाय इस सूक्तमें कहा है जो सदा मननीय है।

(७) जनताका हितकर्ता

(ऋ. १।९८) कुत्स आङ्गिरसः। अग्निः, वैश्वानरोऽग्निर्वा। त्रिष्टुप्।

वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः।
इतो जातो विश्वमिदं वि चष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण

अन्वयः- १ वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम। हि भुवनानां
२ राजा अभिश्रीः। इतः जातः वैश्वानरः इदं वि चष्टे
३ सूर्येण (४) यतते ॥

पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्यां पृष्टो विश्वा ओषधीरा विवेश ।
वैश्वानरः सहसा पृष्टो अग्निः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम् २
वैश्वानर तव तत् सत्यमस्त्वस्मान् रायो मघवानः सचन्ताम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ३

२ वैश्वानरः अग्निः दिवि पृष्टः, पृथिव्यां पृष्टः, विश्वाः ओषधीः पृष्टः आ विवेश । सहसा पृष्टः सः अग्निः नः दिवा नक्तं रिषः पातु ॥

३ हे वैश्वानर ! तव तत् सत्यं अस्तु । अस्मान् मघवानः रायः सचन्ताम् । नः तत् मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः मामहन्ताम् ॥

२ सब जनताका हित करनेवाला (नेता या राजा) [illegible] धाममें (भी) वर्णन करनेयोग्य है, भूमिपर (तो) वर्णन [illegible] योग्य है (द्यौ,) सब ओषधियोंको (वही) वर्णनीय ([illegible] प्राप्त हुआ है । बलके कारण वर्णनीय (माना हुआ [illegible] अग्नि (जैसा तेजस्वी नेता) हम सबको दिनमें तथा [illegible] दुष्टोंसे बचावे ॥

३ हे सब जनोंका हित करनेवाले नेता ! तुम्हारा वह [illegible] सफल हो । हम सबको धनीलोग (पर्याप्त) धन देवें । हम [illegible] यह मन्तव्य है, इसका अनुमोदन मित्र वरुण आदि देव [illegible]

सब मानवोंका सहायक नेता

(विश्व) सब (नर) मनुष्यमात्र, यह विश्व-नरका अर्थ है । जो सब मानवोंका हित करता है वह 'वैश्वा-नर' है । 'क्षत्रं वै वैश्वानरः' (श. ब्रा. ६।६।१।७, ९।३।१।१३) क्षात्र-भावही वैश्वानर है । क्षात्रभाव जनताके दुःखोंको दूर करता है, (क्षतात् त्रायते इति क्षत्रं) दुःखसे जनताकी सुरक्षा करता है अतः उसको क्षत्र कहते है। यह आग्नेय गुण है । सब मानवोंको दुःखों और कष्टोंसे बचाना इसका काम है, इसलिये इसको वैश्वानर कहते हैं ।

'नर' (नृणाति इति नरः) जो योग्य मार्गसे चलाता है, सब लोगोंको सच्ची उन्नतिके मार्गपरसे ले जाता है वह 'नर' है । तथा (न रमते इति नरः) जो स्वार्थी भोगोंमेंही नहीं रमता है वह नर है अर्थात् यह सब मानवोंका हित करनेके कार्योंमेंही दत्तचित्त रहता है, इसका नाम नर है । इससे विश्व-नरका ऐसा अर्थ हुआ कि- 'जो सबको सुयोग्य मार्गसे चलाता है, नेता बनकर जो अपने अनुयायियोंको उन्नतिके मार्गसे चलाता है तथा स्वयं भोगोंमें न फंसता हुआ अनासक्त रहकर जो श्रेष्ठ कार्योंमें तत्पर रहता है । ' जिसका ऐसा स्वभाव है वह नेता 'वैश्वा-नर' कहलाता है । यही सबका नेता, अग्रगामी और राजा कहलाता है ।

वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम । (मं. १) — सब मा[illegible]वोंके हित करनेके कार्यमें जो दत्तचित्त रहता है, उस नेता[illegible] शुभ आशीर्वाद हमें प्राप्त हो । अर्थात् हम सब मानव भी ऐ[illegible] उत्तम जन-हित-कारी कार्य करते रहें कि जिससे सन्तुष्ट हो[illegible] हमारा नेता हमें अपनी कृपादृष्टिमें सदैव रखे । श्रेष्ठ नेता[illegible] कृपा उसपर होगी कि जो नेताके नियोजित कार्यमें तत्परता[illegible] कार्य करता रहेगा । उसके विरोधी कार्य करनेवालेपर उस[illegible] कभी कृपा नहीं होगी । यह तो निश्चित ही है । इससे यह बो[illegible] मिलता है कि जनताका नेता सब मानवोंको उन्नतिके मार्ग[illegible] योग्य रीतिसे चलावे, स्वयं भोगोंमें न फंसे, जनताको सन्मार्ग[illegible] परसे चलावे और अनुयायी भी ऐसे हों कि जो नेताके आदेशा[illegible] नुकूल अपना नियत कर्तव्य करते जांय और अपने नेता[illegible] आयोजना सफल करके, सफलतासे उत्पन्न हुई प्रसन्नताकी कृ[illegible] के भागी बनें ।

भुवनानां के राजा अभिश्रीः । सब मानवोंको सु[illegible] देनेवाला राजा सब प्रकारसे शोभायमान होता है । 'भुवन'- उत्पन्न हुआ, प्राणी, मानव, मनुष्यमात्र, उन्नत होनेकी इच्छा करनेवाला । 'कं'— सुख, आनन्द, जीवन, जल, धन, ऐश्वर्य, अभ्युदय, समय, मन, शरीर, शब्द, प्रकाश । 'अभि श्रीः'- तेजस्वी, प्रभावी, शोभावान्, शक्तिमान्, योग्य गुणी, मित्र[illegible] वाला, सुव्यवस्थापक । मानवोंका सुख बढानेवालाही सु[illegible]

बलनेवाला है और वही शक्तिमान् और प्रभावी होता है। जो राजा प्रजाको कष्ट देता है, उन्नत होनेसे रोकता है वह राजा है और ना ही वह कभी बलशाली होना संभव है। उनके दुःखी करनाही राजाका सच्चा सामर्थ्य है, प्रजाकी हित राजाके पीछे रहेगी वही राजा या नेता प्रभावी हो सकता है।

(**एतः जातः वैश्वानरः इदं वि चष्टे**) इसी समाजसे उत्पन्न हुआ यह नेता, जनताका अगुआ है, नेता होनेके बाद वह राष्ट्रकी परिस्थितिका विशेष रीतिसे निरीक्षण करता है। अपने साथ अपने समाजकी तुलना करके देखता है, उसका विशेष निरीक्षण करता है और इसकी अधिक उन्नति करने का निश्चित करता है। इस निरीक्षणसेही नेताका कार्य सिद्ध होता है।

(**सूर्येण यतते**) सूर्यके साथ यत्न करता है, जैसा सूर्य निरन्तर सबके प्रकाश बताता है, वैसाही यह नेता आलस्य छोडकर उन्नतिके कार्यमें दत्तचित्त रहता है। 'यत्'— उन्नतिके लिये प्रयत्न करना, तत्परतासे यत्न करना, पुनः पुनः प्रयत्न करते रहना, देखना, सावधानताके साथ निरीक्षण करना, उत्साह रखना, मिलना, साथ रहना, मिलकर यत्न करना, प्रगति करना। 'यतते' क्रियाके ये अर्थ हैं। जैसा सूर्य विश्वका मार्गदर्शक हुआ है, वैसा यह नेता मानवोंको मार्ग बताता है, यह अपने सामने सूर्यका आदर्श रखता है।

(**वैश्वानरः अग्निः**) सब मानवोंका सच्चा हित करनेवाला नेता सचमुच अग्नि है, अग्निके समान जननायक यह नवचैतन्य आग उत्पन्न करता है। जैसा अग्निके पास गया (लकडी लोहा आदि) पदार्थ अग्निरूप बनता है, वैसाही नेतृत्वमें आया मनुष्य इनके सदृश उत्साही होता है। (**दिवि पृष्टः, पृथिव्यां पृष्टः**) द्युलोकमें और भूमिपर भी इसकी प्रशंसा गायी जाती है। द्युलोकमें, दिव्य विभूतियोंकी परिषदमें इसकी प्रशंसा होती है वैसी जनतामें भी होती है। (मं. २)

(**विश्वाः ओषधीः पृष्टः**) जिस तरह रोग दूर करनेके लिये सब औषधियोंकी प्रशंसा होती है, उसी तरह यह नेता सब राष्ट्रीय रोगोंकी चिकित्सा करता है और अपने राष्ट्रको रोगमुक्त करता है। मानो यह नेता राष्ट्रीय (ओषधीरूप (वनस्पति-वीरुधः) औषधीही है, राष्ट्रके दोषोंको दोषोंसे दूर करता है। राष्ट्रमें (**आ विवेश**) आवेश उत्पन्न करता है, नव चेतना फैलाता है। 'आ-विश्'– प्रवेश करना, स्वामी होना, अधिकार जमाना, प्राप्त करना, प्रभाव स्थापन करना, उठना, जागना आवेश उत्पन्न करना। यह नेता (**दिवा नक्तं रिषः पातु**) दिनरात शत्रुओंसे हमारी सुरक्षा करे (**सहसा पृष्टः**) बलके कारण इस नेताकी प्रशंसा सर्वत्र होती है। (मं. २)

जनताके नेताका (**तत् सत्यं अस्तु**) जो यह सामर्थ्य है वह सदा सत्य रहे, कभी कम न हो, सत्य मार्गकाही यह अवलंब करे, कभी असत्य मार्गपर न जावे। (**अस्मान् मघवानः रायः सचन्तां**) हमें धनवान् पर्याप्त धन दें। और यह सब हमारी आयोजना प्रभुकी कृपासे सफल होती रहे इसमें कभी त्रुटि न हो। (मं. ३)

अग्निका सूक्त

यह सूक्त वस्तुतः अग्निका वर्णन करनेवाला है। अग्नि अग्रगीही है क्योंकि यह अग्रभागतक, अन्ततक, मोक्षधामतक पहुंचाता है। यह (**वैश्वानरः**) सब विश्वका नेता है, यह (**सूर्येण यतते**) सूर्यके साथ संबंध रखता है. सूर्यसे विद्युत् और विद्युत्से अग्नि उत्पन्न होती है। इस विषयमें निरुक्तमें कहा है–

वैश्वानरः कस्मात्? विश्वान् नरान् नयति, विश्वे एनं नरा नयन्तीति वा, अपि वा विश्वानर एव स्यात्। "वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः। इतो जातो विश्वमिदं वि चष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण॥" इतो जातः सर्वमिदं अभि विपश्यति, वैश्वानरः संयतते सूर्येण, राजा यः सर्वेषां भूतानां अग्रयणीयः, तस्य वयं वैश्वानरस्य कल्याणप्रमतौ स्यामेति॥ (नि० ७।२१।१)

तत् को वैश्वानरः? मध्यम इत्याचार्याः। यज्ञकर्मणा इमं स्तौतीति० .... । असावादित्य इति पूर्वे नैरुक्ताः। ... अथैनमग्निर्वैश्वानर इति शाकपूणिः...आदित्ये कस्मे वा मनसि वा परिनिरूप्य प्रतिस्वरे यज्ञ सोमदानसंस्तवयन् धारयति, तद् प्रदीप्यते, सोऽग्निनैव संस्तवते। (नि० ७।२१।२)

[illegible]

नेता है। 'वैश्वानरस्य०' यह मंत्र इसके वर्णनका है।

मध्यस्थानीय विद्युत् वैश्वानर है ऐसा निरुक्त आचार्योंका मत है, यह दृष्टि करता है। पूर्व समयके याज्ञिक सूर्यको वैश्वानर मानते हैं। यह अग्निही वैश्वानर है ऐसा शाकपूणि ऋषिका मत है। सूर्यकिरणको नलीमें धरकर उसका केन्द्रित किरण सूखे गोबर-पर (अथवा सूखे घासपर) रखा जाय, तो आग जलने लगती है, वही वैश्वानर है' ऐसा निरुक्तमें यास्क आचार्य लिखते हैं।

यह अग्नि स्वर्गमें सूर्यरूपमें, मेघमें विद्युत्के रूपमें और [illegible] रूपमें विद्यमान है। यही ओषधि वनस्पति-योंमें तथा सब विश्वभरमें रहा है। इस तरह यह [illegible] है। यह सूक्त इस रीतिसे अग्निका वर्णन कर [illegible] 'विश्वान् नरान् नयति'– सब मानवोंको साथ ले जाता है, ऐसा अर्थ करके जनताके अग्रणी, जनताके अर्थ भी निरुक्तकारने बताया है। इस विषयका [illegible] विस्तारपूर्वक पहिलेही बताया है। अग्निके वर्णनके [illegible] तरह राष्ट्रनेताका भी साथसाथ वर्णन करता है, यह शैली देखनेयोग्य है।

यहां अग्निप्रकरण समाप्त हुआ है।

[२] इन्द्र-प्रकरण

(६) विश्वका पालक

(ऋ. [illegible]) [illegible] । इन्द्रः (१ गर्भस्राविण्युपनिषद्) । जगती; ८–१२ विपुः ।

[illegible] मन्दिने पितुमदर्चता वचो यः कृष्णगर्भा निरहन्नृजिश्वना ।
[illegible] वव्रिणं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे १
यो रंधसे जाहुषाणेन मन्युना यः शम्बरं यो अहन् पिप्रुमव्रतम् ।
इन्द्रो यः शुष्णमशुषं व्याकृणोद् मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे २
[illegible] द्यावापृथिवी यो महित्वना वृत्रे वरूथो यस्य सूरयः ।
[illegible] विश्वतः सपति व्रतं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ३

[illegible]

[illegible]

[illegible]

अर्थ— १ जिसने आंजनीके पास (हाथी) [illegible] जिसने नमुचिको नष्ट कर दिया उस आनन्दयुक्त इन्द्रके [illegible] हुए स्तुतिके वचन कहो। हम भी मित्रताके [illegible] वर्षा होनेपर जब मोर हुए, तब जैसे पास रहनेके लिए [illegible] आवाहन किया जाता है।

२ जिसने क्रोधित हुए तब, जिसने शम्बरका और [illegible] नष्ट किया, जिसने [illegible] पापी [illegible] नष्ट कर दिया, [illegible] यज्ञ [illegible] इन्द्रका मित्रताके लिए हम [illegible] है।

३ जिसके [illegible] और जिसके [illegible] यज्ञ [illegible] के लिए [illegible] इन्द्रका मित्रताके लिए हम [illegible] है।

यो अश्वानां यो गवां गोपतिर्वशी य आरितः कर्मणिकर्मणि स्थिरः ।
वीळोश्चिदिन्द्रो यो असुन्वतो वधो मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ४

यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पतिर्यो ब्रह्मणे प्रथमो गा अविन्दत् ।
इन्द्रो यो दस्यूँरधराँ अवातिरन् मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ५

यः शूरोभिर्हव्यो यश्च भीरुभिर्यो धावद्भिर्हूयते यश्च जिग्युभिः ।
इन्द्रं यं विश्वा भुवनाभि संदधुर्मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ६

रुद्राणामेति प्रदिशा विचक्षणो रुद्रेभिर्योषा तनुते पृथु ज्रयः ।
इन्द्रं मनीषा अभ्यर्चति श्रुतं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ७

यद्वा मरुत्वः परमे सधस्थे यद् वावमे वृजने मादयासे ।
अत आ याह्यध्वरं नो अच्छा त्वाया हविश्चकृमा सत्यराधः ८

---

१ यः गो-पतिः अश्वानां, यः (च) गवां वशी (अस्ति), यः आरितः कर्मणि-कर्मणि स्थिरः (भवति), यः इन्द्रः वीळोः चित् असुन्वतः वधः (अस्ति), (तं) मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥

२ यः विश्वस्य जगतः प्राणतः पतिः (अस्ति), यः ब्रह्मणे गाः अविन्दत्, यः इन्द्रः दस्यून् अधरान् अवातिरत् (तं) मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥

३ यः शूरेभिः, यः च भीरुभिः हव्यः, यः धावद्भिः, यः जिग्युभिः हूयते, विश्वा भुवना यं इन्द्रं अभि संदधुः (तं) मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥

४ रुद्राणां प्र-दिशा एति, योषा रुद्रेभिः पृथु तनुते, मनीषा श्रुतं इन्द्रं अभि अर्चति (तं) मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥

५ (हे) सत्य-राधः ! मरुत्वः ! त्वं यत् वा परमे सधस्थे यद् वा अवमे वृजने मादयासे अतः नः अच्छा आ याहि, त्वा-या हविः चकृम ॥

४ जो गायोंका स्वामी है और जो घोडों और गायोंके वशमें रखनेवाला है, जो स्तुतिको पाया हुआ इन्द्र प्रत्येक कर्ममें स्थिर रहता है, जो इन्द्र प्रयत्नसे भी यज्ञविरोधी शत्रुको दण्ड देता है, उस मरुतोंके साथ रहनेवाले इन्द्रको मित्रताके लिये हम पुकारते हैं ।

५ जो सम्पूर्ण चर और प्राणधारी जगत्का स्वामी है जिसने पहलेही ब्राह्मणके लिये गौएँ प्राप्त कर दीं, जिस इन्द्रने दुष्टोंको नीचे गिरा दिया, उस मरुतोंके साथ रहनेवाले इन्द्रको हम मित्रताके लिये बुलाते हैं ।

६ जो शूरों और जो डरपोकों के लिये [illegible] बुलानेयोग्य है, जो भागते हुए और जो [illegible] द्वारा पुकारा जाता है, और सब [illegible] करते हैं, उस मरुतोंके [illegible] पुकारते हैं ।

७ [illegible] रुद्रोंके साथ [illegible] ।

त्वायेन्द्र सोमं सुषुमा सुदक्ष त्वाया हविश्चकृमा ब्रह्मवाहः ।
अधा नियुत्वः सगणो मरुद्भिरस्मिन् यज्ञे बर्हिषि मादयस्व ९
मादयस्व हरिभिर्ये त इन्द्र वि ष्यस्व शिप्रे वि सृजस्व धेने ।
आ त्वा सुशिप्र हरयो वहन्तूशन् हव्यानि प्रति नो जुषस्व १०
मरुत्स्तोत्रस्य वृजनस्य गोपा वयमिन्द्रेण सनुयाम वाजम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ११

९ (हे) सु-दक्ष इन्द्र ! त्वा-या सोमं सुषुम । (हे) ब्रह्म-वाहः ! त्वा-या हविः चकृम । (हे) नियुत्वः ! अध स-गणः (त्वं) मरुत्-भिः (सह) अस्मिन् यज्ञे बर्हिषि मादयस्व ॥

१० (हे) इन्द्र ! ये ते (हरयः, तैः) हरि-भिः मादयस्व, शिप्रे वि स्यस्व, धेने वि सृजस्व । (हे) सु-शिप्र ! हरयः त्वा आ वहन्तु, (त्वं) उशन् नः हव्यानि प्रति जुषस्व ॥

११ वृजनस्य मरुत्स्तोत्रस्य गोपाः वयं इन्द्रेण वाजं सनुयाम । मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः तत् नः मामहन्ताम् ॥

९ हे उत्तम बलवाले इन्द्र ! हमने तेरे लिये सोम बनाया है । हे स्तुतिको स्वीकार करनेवाले ! हमने तेरे हवन-सामग्री बनाई है । हे घोड़ोंवाले ! अब तू सेनासे मरुतोंके साथ इस यज्ञमें आसनपर बैठकर सो प्रसन्न हो ।

१० हे इन्द्र ! जो तेरे अपने घोड़े हैं तू उन घोड़ों आकर हमारे यज्ञमें आनन्द मना । अपने दोनों होठोंको और अपनी वाणीको खोल दे । हे उत्तम मुखवाले ! घोड़े तुझे यहाँ ले आयें । तू चाहता हुआ हमारे अन्नो सेवन कर ॥

११ शत्रुओंके नाशक, मरुतोंके स्तोत्रोंके रक्षक हम इन्द्र साथ मिलकर धन प्राप्त करें । मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु पृथिवी और द्यौ उस कार्यमें हमारी सहायता करें ।

इन्द्रका वर्णन

यहाँसे इन्द्रका वर्णन प्रारंभ होता है । इन्द्र और वृत्रकी कथा के मिषसे प्रतापी क्षत्रियका धर्म यहाँ बताया जाता है ।

१ **कृष्ण-गर्भा** । (मं. १)- यह वर्णन वृत्रकी नगरीका है । वृत्र इन्द्रका शत्रु है, वह इन्द्रके साथ लड़ता है । अपनी नगरी-को सुरक्षित रखनेके लिये वह उस नगरीमें अन्धेरा करता है । इस अन्धेरेके कारण उस नगरीपर इन्द्रका हमला नहीं हो सकता। आजकलकी युद्धव्यवस्थामें भी बड़ी बड़ी नगरियाँ रात्रिके समय अन्धेरेसे व्याप्त रखी जाती हैं जिससे उनकी सुरक्षा होती है । (कृष्णः) अन्धेरा है (गर्भा) जिस नगरीके बीचमें वह कृष्णगर्भा नगरी है । ऐसी वृत्रकी अनेक नगरियाँ थीं । यह एक युद्ध-नीति है । इन्द्रने ऐसे प्रबल शत्रुको (निःअहन्) मारा था, यह इन्द्रका प्रभाव है ।

२ **व्यंसं (वृत्रं)**— इन्द्रने वृत्रके कन्धोंको पहिले का था । (मं. २)

३ **अव्रतं पिप्रुं अहन्**– धर्म-नियमोंका पालन न करने वाले पिप्रुको भी इन्द्रने मारा था । यह पिप्रु वृत्रका साथी था 'शंबर और शुष्ण' ये दो और वृत्रके साथी इन्द्रद्वारा मा गये थे ।

४ **यः गोपतिः, गवां वशी, अश्वानां वशी** (मं. इन्द्र गौओंका पालन करता है, गौओंको वशमें रखता है घोड़ोंकी भी उत्तम पालना करता है और घोड़ोंको उत्तम शि देकर सुशिक्षित करता है ।

५ **असुन्वतः वधः**— इन्द्र यज्ञ न करनेवालेका व करता है । यज्ञ जनसंघटनका बड़ा उपयोगी कार्य है। जो इसमें नहीं करता वह वध्यही है । जो इन्द्रकी संगठनामें रहे

को प्रेरणा करके उनताको बलवान् बना देवे ।

अस्य जगतः प्राणतः पतिः (मं. ५)— और प्राणधारी संपूर्ण विश्वका अधिपति है। सब विश्व अधीन है।

इन्द्र दस्यून् अधरान् अवातिरत्— इन्द्र शत्रुओंको निराकर परास्त करता है।

ब्रह्मणे गाः अविन्दत्— इन्द्र ब्राह्मणके लिये गौएं देता है। ब्राह्मणके घर अनेक विद्यार्थी पढते रहते हैं। ब्राह्मणका पाठशाला होती है, वहाँ विनामूल्य पढाई होती है, इन्द्र ऐसा ब्राह्मणको गौएं दी जाती हैं।

१ यः शूरोभिः भीरुभिः हव्यः (मं ६)— इन्द्र शूर और भीरुओंद्वारा साहाय्यार्थ बुलाया जाता है।

१० यः धावद्भिः जिग्युभिः हूयते — जो आक्रमण करनेवाले और विजय पानेवाले वीरोंद्वारा साहाय्यार्थ बुलाया जाता है।

११ विश्वा भुवना इन्द्रं अभि संदधुः— सब भुवन इन्द्रके साथ अपना संबंध जोडती हैं, इन्द्रके साथ संबंध रखना लाभ होगा ऐसा सबको प्रतीत होता है।

१२ सत्य-राधः (मं. ८)— जिसको निश्चित रूपसे सिद्धि मिलती है, कभी जिसका पराभव नहीं होता।

१३ सुदक्षः (मं. ९)- उत्तम बलवान्, उत्तम दक्षताके साथ अपने सब कार्य करनेवाला, जो सदा सावधान रहता है, इसलिये विजय पाता है।

१४ ब्रह्म-वाहः— जो ज्ञानका वाहक है, ज्ञानका जो फैलाव करता है।

१५ स-गणः- जो सदा अपने अनुयायियोंके समूहके साथ रहता है, जो सैनिकोंके साथ रहता है।

१६ सुशिप्रः (मं. १०)- उत्तम हनु या होंठोंवाला, उत्तम शिरस्त्राणवाला,

१७ हरयः त्वा आ वहन्तु— घोडे इन्द्रको लाते हैं, रथको घोडे जोते जाते हैं, जो इन्द्रको यज्ञ स्थानपर लाते हैं।

१८ वृजनस्य (नाशकर्ता)- पाप, दुर्भाग्य, तथा दुर्गतिका नाश करनेवाला।

१९ गोपाः— संरक्षण करनेवाला इन्द्र है। ये इन्द्रके गुण हैं। ये वीरके गुण हैं। वीरको इनसे शोभा बढती है।

(७) शत्रुरहित प्रभु

(ऋ. १।१०२) कुरस आङ्गिरसः। इन्द्रः। जगती, ११ त्रिष्टुप्।

इमां ते धियं प्र भरे महो महीमस्य स्तोत्रे धिषणा यत् त आनजे। १
तमुत्सवे च प्रसवे च सासहिमिन्द्रं देवासः शवसामदन्ननु
अस्य श्रवो नद्यः सप्त बिभ्रति द्यावाक्षामा पृथिवी दर्शतं वपुः। २
अस्मे सूर्याचन्द्रमसाभिचक्षे श्रद्धे कमिन्द्र चरतो वितर्तुरम्

अन्वयः- १ यत् ते धिषणा अस्य स्तोत्रे आनजे, महः तेमां महीं धियं प्र भरे। देवासः उत्सवे च प्रसवे च सं सासहिं इन्द्रं शवसा अनु अमदन्॥

२ सप्त नद्यः अस्य श्रवः बिभ्रति। द्यावाक्षामा पृथिवी अस्य) दर्शतं वपुः (धारयन्ति)। (हे) इन्द्र ! सूर्याचन्द्रमसा अस्मे अभि-चक्षे अहे कं वि-वर्तुरं चरतः॥

अर्थ— १ हे इन्द्र ! जो कि तेरी बुद्धि इसके स्तोत्रमें संयुक्त होती है, मैं महान् पुनवाली तेरी इस बडी बुद्धिको धारण करता हूँ। देव लोगोंने श्रेष्ठ कौन-विनाशके विधिसबके समय उस शत्रुको दबानेके इसको बलपूर्वक मारता है।

२ सात नदियां इस इन्द्रके यश देती हैं। द्यौ, पृथिवी और अन्तरिक्ष इसके दर्शनीय शरीरको धारण करते हैं। हे इन्द्र ! तेरे ये सूर्य और चन्द्रमा हमारे देखने और यश गाने देनेके लिये निश्चयसे परस्पर भिन्न बनकर विचर रहे हैं।

तं स्मा रथं मघवन् प्राव सातये जैत्रं यं ते अनुमदाम संगमे ।
आजा न इन्द्र मनसा पुरुष्टुत त्वायद्भ्यो मघवञ्छर्म यच्छ नः ३
वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माकमंशमुदवा भरेभरे ।
अस्मभ्यमिन्द्र वरिवः सुगं कृधि प्र शत्रूणां मघवन् वृष्ण्या रुज ४
नाना हि त्वा हवमाना जना इमे धनानां धर्तरवसा विपन्यवः ।
अस्माकं स्मा रथमा तिष्ठ सातये जैत्रं हीन्द्र निभृतं मनस्तव ५
गोजिता बाहू अमितक्रतुः सिमः कर्मन्कर्मञ्छतमूतिः खजंकरः ।
अकल्प इन्द्रः प्रतिमानमोजसाथा जना वि ह्वयन्ते सिषासवः ६
उत् ते शतान्मघवन्नुच्च भूयस उत् सहस्राद् रिरिचे कृष्टिषु श्रवः ।
अमात्रं त्वा धिषणा तित्विषे मह्यधा वृत्राणि जिघ्नसे पुरंदर ७

---

३ (हे) मघ-वन् ! ते यं जैत्रं (रथं) सं-गमे अनु-मदाम, सातये तं स्म रथं प्र अव । (हे) पुरु-स्तुत इन्द्र ! आजा नः मनसा (देहि) । (हे) मघ-वन् ! त्वायत्-भ्यः नः शर्म यच्छ ॥

४ (हे) मघ-वन् इन्द्र ! वयं त्वया युजा वृतं जयेम (त्वं) भरे-भरे अस्माकं अंशं उत् अव । वरिवः अस्मभ्यं सु-गं कृधि । शत्रूणां वृष्ण्या प्र रुज ॥

५ (हे) धनानां धर्तः ! नाना हि हवमानाः विपन्यवः इमे जनाः अवसा त्वा (यन्ति) । (हे) इन्द्र ! तव नि-भृतं मनः जैत्रं हि (अतः) सातये अस्माकं स्म रथं आ तिष्ठ ॥

६ (इन्द्रस्य) बाहू गो-जिता । (सः) इन्द्रः अमित-क्रतुः, सिमः, कर्मन्-कर्मन् शतं-ऊतिः खजं-करः (तथा) ओजसा प्रति-मानं अकल्पः (अस्ति) । अथ सिसासवः जनाः वि ह्वयन्ते ॥

७ (हे) मघ-वन् ! ते श्रवः शतात् भूयसः सहस्रात् च कृष्टिषु उत् उत् उत् रिरिचे । मही धिषणा अमात्रं त्वा तित्विषे । (हे) पुरं-दर ! अध (त्वं) वृत्राणि जिघ्नसे ॥

३ हे धन-सम्पन्न इन्द्र ! तेरे जिस जयशील (रथकी, हम लोग) युद्धमें प्रशंसा करते हैं, (तू धन) देनेके लिये उस रथ-की रक्षा कर । हे बहुत प्रशंसित इन्द्र ! युद्धमें, तू हमें मनः-पूर्वक (धनादि दे) । हे ऐश्वर्यवाले ! तू अपने पास आने-वाले हमको सुख प्रदान कर ॥

४ हे धन-सम्पन्न इन्द्र ! हम लोग तुझसे मिलकर घेरनेवाले शत्रुको जीतें । तू प्रत्येक युद्धमें हमारे भागकी रक्षा कर । धन हमारे लिये सुगमतासे प्राप्त होनेवाला कर और शत्रुओंके बलों-को तोड दे ॥

५ हे धनोंके धारक (इन्द्र) ! अनेक वक्ता विद्वान् लोग रक्षाके लिये तेरे पास आते हैं । हे इन्द्र ! तेरा शान्त मन जव-शील है (अतः तू हमें धन) देनेके लिये हमारेही रथपर आकर बैठ ॥

६ इन्द्रकी भुजायें गौएँ जीतनेवाली हैं । वह इन्द्र असीम कर्मोंको करनेवाला श्रेष्ठ प्रत्येक कर्ममें सैकडों रक्षाओंसे युक्त, शत्रुओंसे युद्ध करनेवाला और बलमें बराबरी करनेवालेको न माननेवाला है । इस कारण धनकी प्राप्तिकी कामनावाले मनुष्य उसे विविध प्रकारसे बुलाते हैं ।

७ हे धनिक इन्द्र ! तेरा दान प्रजा-जनोंमें सौ, सौसे अधिक और सहस्रसे भी अधिक बढ गया है । बडी बाणी असीम गुणवाले तुझ इन्द्रको अधिक तेजस्वी बनाती है । हे गढके तोडनेवाले ! तू तो वृत्रोंको सदा मारताही है ।

त्रिर्विष्टिधातु प्रतिमानमोजसस्तिस्रो भूमीर्नृपते त्रीणि रोचना ।
अतीदं विश्वं भुवनं ववक्षिथाशत्रुरिन्द्र जनुषा सनादसि ८
त्वां देवेषु प्रथमं हवामहे त्वं बभूथ पृतनासु सासहिः ।
सेमं नः कारुमुपमन्युमुद्भिदामिन्द्रः कृणोतु प्रसवे रथं पुरः ९
त्वं जिगेथ न धना रुरोधिथार्भेष्वाजा मघवन् महत्सु च ।
त्वामुग्रमवसे सं शिशीमस्यथा न इन्द्र हवनेषु चोदय १०
विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो अस्त्वपरिह्वृताः सनुयाम वाजम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ११

८ (हे) नृ-पते इन्द्र ! ओजसः त्रिर्विष्टि-धातु प्रति-मानं (असि)। (त्वं) तिस्रः भूमीः, त्रीणि रोचना, इदं विश्वं भुवनं अति ववक्षिथ । (त्वं) सनात् जनुषा अशत्रुः असि ॥

९ (हे इन्द्र !) त्वां देवेषु प्रथमं हवामहे । त्वं पृतनासु सासहिः बभूथ । सः इन्द्रः नः इमं कारुं उप-मन्युं उद्-भिदं रथं प्र-सवे पुरः कृणोतु ॥

१० (हे) मघ-वन् ! अर्भेषु महत्-सु च आजा त्वं (धनानि) जिगेथ, धना रुरोधिथ न । (वयं) त्वां उग्रं अवसे सं शिशीमसि । (हे) इन्द्र ! अथ हवनेषु नः चोदय ॥

११ इन्द्रः विश्वाहा नः अधि-वक्ता अस्तु । (वयं) परि-ह्वृताः वाजं सनुयाम । मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः तत् नः ममहन्ताम् ॥

८ हे प्रजापालक इन्द्र ! तू बलवानोंके तिगुने बलकी समानता करनेवाला है । तू तीन भूमि, तीन तेज और इस सम्पूर्ण लोकका भली-भाँति संचालन कर रहा है । तू सदासे जन्मतः शत्रु-रहित है ।

९ हे इन्द्र ! हम तुझ देवोंमें प्रथम देवको अपने यहां बुलाते हैं । तू युद्धोंमें शत्रुओंको दबानेवाला हुआ था । वह यह इन्द्र हमारे इस विजयकर्ता उत्साहवाले भेदक रथको युद्धके समय आगे करे ॥

१० हे धनशील इन्द्र ! छोटे और बड़े युद्धोंमें तू धनोंको जीतता है परन्तु धनोंको अपने पासही रोक नहीं रखता । हम तुझ उग्र इन्द्रको रक्षाके लिये अधिक शक्तिशाली बनाते हैं । हे इन्द्र ! तब युद्धके समय तू हमें प्रेरित कर, आगे बढ़ा !

११ इन्द्र सब दिन हमसे बोलनेवाला हो (अर्थात् हमसे कभी रुष्ट न हो) । हम कुटिलता-रहित होकर धन प्राप्त करें । मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्यौलोक यह सब हमें प्राप्त करायें ॥

प्रभुकी महिमा

प्रभुकी महिमा इस सूक्तमें वर्णन की है । देखिये-

१ ते महः (मं. १)- तेरी महिमा बड़ी है ।

२ उत्सवे प्रसवे सासहिः (२)- उत्सव और प्रकर्षके समय शत्रुको तू पराभूत करता है ।

३ सप्त नद्यः अस्य व्रतं विभ्रति (३)- सात नदियां इसको जल देती हैं, इसके यज्ञ या कार्यको धारण करती हैं । ये सात नदियाँ पंजाबकी पांच और दो अन्य मिल कर सात मानी जायगी, तो इन वर्णित प्रदेशको कल्पना हो सकती है । निम्नलिखित मंत्रमें अनेक नदियोंके उल्लेख हैं-

इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या । असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये शृणुह्या सुषोमया ॥ ऋ. १०।७५।५

इस मंत्रमें गङ्गा, यमुना, सरस्वती, शुतुद्रि, परुष्णी, असिक्नी, मरुद्वृधा, वितस्ता, आर्जीकीया, सुषोमा इनको नदियोंके उल्लेख हैं । इनमें शुतुद्रि (सतलज), परुष्णी (रावी), असिक्नी (चिनाब), वितस्ता (झेलम) ये आजकलके नदी

नाम हैं। गंगा, यमुना, सरस्वती ये नदियां प्रसिद्ध हैं। इसके आगेके मंत्रमें तृष्टामा, सुषर्तु, रसा, श्वेत्या, सिन्धु, कुभा, मेहत्नु कुमु, गोमती ये नाम हैं। नदियोंके वर्णनके लिये ऋ. १०।७५ वां सूक्त देखनेयोग्य है पर ये सब नदियाँ उत्तर भारतकीही हैं। दक्षिण भारतकी नदियाँ यहां नहीं हैं।

इनमेंसे सात नदियाँ कौनसी हैं यह अभी निश्चित रूपसे पता लगना है।

४ वयं वृतं जयेम (४)– हम घेरनेवाले शत्रुको को जीतें। अर्थात् कोई शत्रु हमें घेरकर परास्त न करे।

५ शत्रूणां वृष्ण्या प्र रुज–शत्रुके सब बलोंको तोड दे। और उसे निर्बल बना दे।

६ निभृतं मनः जैत्रम् (५)– भरणपोषण करनेवाला मन जयशील होता है।

७ कर्मन् कर्मन् शतं ऊतीः (६)– प्रत्येक कर्ममें सैकडों सुरक्षा करनेके सामर्थ्य हों। (**अमित-क्रतुः सिमः**) असीम कर्म करनेवालाही श्रेष्ठ होता है, परिपूर्ण वीर जाता है।

८ ओजसा प्रतिमानं अकल्पः– अपनी अतुल श कारण अपने समान दूसरे किसीको अपने बराबर मानने तैयार नहीं है। यह अति प्रचण्ड शक्तिका दर्शक है।

९ पुरं-दरः– (७) शत्रुके कोटोंको तोडने वाला,

१० जनुषा अशत्रुः असि (८)– जन्मसे शत्रु है, अजातशत्रु वह होता है कि जो बडा प्रभावी होता है

११ पृतनासु ससहिः (९)– युद्धोंमें शत्रुका प करनेवाला वीर हो।

१२ उद्भिदं कारुं पुरः कृणोतु– उन्नति करनेवाले गरको आगे बढावे, उसका सन्मान करे।

१३ आजा जिगेथ (१०)– युद्धमें जय प्राप्त करत इस प्रकारका आदर्श वीर इस सूक्तमें वर्णन किया है।

(८) शत्रु वध करनेवाला वीर

(ऋ. १।१०३) कुत्स आङ्गिरसः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्।

तत् त इन्द्रियं परमं पराचैरधारयन्त कवयः पुरेदम्।
क्षमेदमन्यद् दिव्यन्यदस्य समी पृच्यते समनेव केतुः १
स धारयत् पृथिवीं पप्रथच्च वज्रेण हत्वा निरपः ससर्ज।
अहन्नहिमभिनद्रौहिणं व्यहन् व्यंसं मघवा शचीभिः २

अन्वयः– १ (हे इन्द्र!) कवयः पुरा ते इदं परमं इन्द्रियं पराचैः अधारयन्त। समना-इव केतुः अस्य अन्यत् इदं अमः अन्यत् द्यौ दिवि ते दृश्यते।

२ सः पृथिवीं अधारयत् पप्रथत् च। (असुरान्) वज्रेण हत्वा अपः निः ससर्ज। अहिं अहन्, रौहिणं अभिनत्। अव्यं शचीभिः वि-अंसं (वृत्रं) वि अहन्।

अर्थ– १ हे इन्द्र! ज्ञानी लोगोंने पूर्वकालमें तेरे श्रेष्ठ बलको दूरसेही धारण किया। जैसे युद्धमें ध्वज, इस इन्द्रकी एक यह ज्योति पृथिवीपर और दूसरी वह द्यु में जाकर चमकती है।

२ उसने पृथिवीको धारण किया, और उसे अधिक विस्त किया। असुरोंको वज्रसे मार कर जलोंको मुक्त किया। मेघ मारा, रौहिणको तोड फोड दिया। इन्द्रने शक्तियोंद्वारा दोष दूरको मार डाला।

स जातूभर्मा श्रद्दधान ओजः पुरो विभिन्दन्नचरद् वि दासीः ।
विद्वान् वज्रिन् दस्यवे हेतिमस्यार्यं सहो वर्धया द्युम्नमिन्द्र ३

तदूचुषे मानुषेमा युगानि कीर्तेन्यं मघवा नाम बिभ्रत् ।
उपप्रयन् दस्युहत्याय वज्री यद्ध सूनुः श्रवसे नाम दधे ४

तदस्येदं पश्यता भूरि पुष्टं श्रदिन्द्रस्य धत्तन वीर्याय ।
स गा अविन्दत् सो अविन्ददश्वान्त्स ओषधीः सो अपः स वनानि ५

भूरिकर्मणे वृषभाय वृष्णे सत्यशुष्माय सुनवाम सोमम् ।
य आहत्या परिपन्थीव शूरोऽयज्वनो विभजन्नेति वेदः ६

तादिन्द्र प्रेव वीर्यं चकर्थ यत् ससन्तं वज्रेणाबोधयोऽहिम् ।
अनु त्वा पत्नीर्हृषितं वयश्च विश्वे देवासो अमदन्ननु त्वा ७

---

१ सः जातु-भर्मा ओजः श्रत्-दधानः, दासीः पुरः वि-भिन्दन् वि अचरत्। (हे) वज्रिन्! विद्वान् (त्वं) अस्य दस्यवे हेतिं (विसृज) यद्वा दस्यवे हेतिं अस्य (= प्रक्षिप) (ऐ) इन्द्र! आर्यं सहः द्युम्नं (च) वर्धय ॥

४ यत् ह सूनुः श्रवसे नाम दधे तत् वज्री मघ-वा दस्यु-हत्याय उप-प्रयन् ऊचुषे इमा मानुषा युगानि कीर्तेन्यं घन बिभ्रत् ॥

५ (येन वीर्येण) सः गाः अविन्दत्, सः अश्वान् अवि-न्दत्, सः ओषधीः, सः अपः, सः वनानि (अविन्दत्), अस्य इन्द्रस्य तत् इदं भूरि पुष्टं (वीर्यं) पश्यत, (तस्मै) वीर्याय धत्तन ॥

६ यः शूरः आ-इत्य परिपन्थी-इव अयज्वनः वेदः वि-भजन् एति (तस्मै) भूरिकर्मणे वृषभाय वृष्णे सत्य-शुष्माय सोमं सुनवाम ॥

७ (हे) इन्द्र! यत् ससन्तं अहिं वज्रेण अबोधयः तत् इत् वीर्यं चकर्थ। पत्नीः वयः च हृषितं त्वा अनु (अमद-न्), विश्वे देवासः त्वा अनु अमदन् ॥

३ वह विद्युत्रूप शस्त्रधारी (इन्द्र) बल धारण करता और शत्रुके पुरोंको तोडता हुआ विचरने लगा। वह तू हे वज्रधारी! शत्रुको जानता हुआ इसके नाशक शत्रुपर अपना बाण छोड। हे इन्द्र! आर्योंके बल और तेजको तू बढा।

४ जब कि प्रेरक इन्द्रने कीर्तिके लिये यश धारण किया तब वज्रधारी (इन्द्र) ने शत्रुके नाशके लिये उसके समीप जाते हुए ज्ञानीको ये मनुष्य सम्बन्धी युग और कीर्तनके योग्य नाम प्राप्त कराया ॥

५ (जिस पराक्रमसे) उस (इन्द्र) ने गौएँ प्राप्त कीं, उसने घोडे प्राप्त किये, ओषधियाँ, जल, इत्यादि वनस्पतिनिर्मित वन प्राप्त किये, इस इन्द्रके उस बहुत पुष्ट पराक्रमको हे मित्रो! देखो। तथा इस पराक्रमपर श्रद्धा करो।

६ जो शूर (इन्द्र) झगडोंके आकर कर शत्रुओंके समान यज्ञ न करनेवाले असुरका धन लेकर उनको बाँटता जाता है, उस बहुत कर्मोंवाले बलवान् दाता और सत्य बलवाले (इन्द्र) के लिये हम सोम निचोडें।

७ हे इन्द्र! तूने जो सोते हुए अहिको वज्रसे जगाया, तूने यह एक बडा पराक्रम कर दिखाया। इस समय देवोंकी पत्नियाँ तथा प्रजा जैसे उत्तेजनेवाले मन्त्रोंसे प्रेरणा करके तुझ इन्द्रका अनुमोदन करती थीं। तब सब देवोंने आनंदित होकर तेरा अनुमोदन किया था।

शुष्णं पिप्रुं कुयवं वृत्रमिन्द्र यदावधीर्वि पुरः शम्बरस्य ।
तत्रो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ८

८ (हे) इन्द्र ! यदा शुष्णं पिप्रुं कुयवं वृत्रं अवधीः शम्बरस्य पुरः वि (अवधीः) तत् मित्रः, वरुणः, अदितिः, सिन्धुः, पृथिवि उत द्यौः नः ममहन्ताम् ॥

८ हे इन्द्र ! जब तूने शुष्ण, पिप्रु, कुयव और वृत्र और शम्बरके नगर नष्ट किये तब उस समय मित्र अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्यौने हमें उत्साहित किया

वीरके कर्म

इस इन्द्र-सूक्तमें जो वीरके कर्म कहे हैं, वे ये हैं—

१ ते परमं इंद्रियं अधारयन्त (मं. १)- तेरे श्रेष्ठ बलको धारण किया, अर्थात् तुझमें यह बल बहुतही है।

२ समना इव केतुः- युद्धमें ध्वज खडा करते हैं, वैसा तेरा बल दूरसे प्रकट होनेवाला है।

३ अहिं, रौहिणं, व्यंसं अहन्, अभिनत् (२)- अहि, रौहिण और टूटे कन्धोंवाले वृत्रको काटा, मारा या वध किया।

४ दासीः पुरः विभिन्दन् (३)- शत्रुकी नगरियोंको तोडा,

५ दस्यवे हेतिं अस्य- शत्रुपर हथियार छोड दिया।

६ आर्यं सहः युम्नं वर्धय— आर्यके बल, सामर्थ्य और तेजको बढाया।

७ अयज्वनः वेदः वि भजन् पति (६)— करनेवाले शत्रुके धनको प्राप्त कर यज्ञ करनेवालोंको दे यज्ञका अर्थ 'श्रेष्ठोंका सत्कार, जनताकी संघटना और सहायता करनेका शुभ कर्म ' है। वीर इस कर्मको

८ ससन्तं अहिं वज्रेण अबोधयः (७)- सो अहि नामक शत्रुपर वज्र मारकर उसे जगाया और युद्धमें उसका वध किया (तत् वीर्यं) यह इन्द्रका बडा का कार्य था।

९ शुष्ण, पिप्रु, कुयव, वृत्र, शंबर ये शत्रुके नाम मंत्रमें हैं, इनको इन्द्रने मारा है। पिप्रु, शंबर, शुष्ण ऋ. १।१०१।२ में आये हैं। पूर्व सूक्त देखो। शंबरके तोडनेका वर्णन यहां है।

पूर्व सूक्तोंके साथ यह सूक्त देखनेयोग्य है।

(९) वीरता

(ऋ. १।१०४) कुत्स आङ्गिरसः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

योनिष्ट इन्द्र निषदे अकारि तमा नि षीद स्वानो नार्वा ।
विमुच्या वयोऽवसायाश्वान् दोषा वस्तोर्वहीयसः प्रपित्वे १
ओ त्ये नर इन्द्रमूतये गुर्नू चित् तान्त्सद्यो अध्वनो जगम्यात् ।
देवासो मन्युं दासस्य शश्वन् ते न आ वक्षन्त्सुविताय वर्णम् २

अन्वयः- १ (हे) इन्द्र ! ते नि-सदे योनिः अकारि, दोषा वस्तोः प्र-पित्वे वहीयसः अश्वान् अव-साय वयः वि-मुच्य स्वानः अर्वा न तं आ नि सीद ॥

२ त्ये नरः ऊतये इन्द्रं ओ गुः । (इन्द्रः) नु चित् सद्यः तान् अध्वनः जगम्यात् । देवासः दासस्य मन्युं शश्वन्, ते सुविताय वर्णं नः आ वक्षन् ॥

अर्थ— १ हे इन्द्र ! तेरे बैठनेके लिये स्थान हमने बन है, रात और दिनमें यज्ञका समय प्राप्त होनेपर ले आ वाले घोडोंको छोडकर और लगामकी रस्सी मुँहसे खोल तू शब्द करनेवाले घोडेके समान उसपर आकर बैठ ॥

२ वे लोग अपनी रक्षाके लिये इन्द्रके पास पहुँचे। इ शीघ्र उसी समय उन्हें मार्गपर पहुँचा दिया (रक्षाका मार्ग दिया)। देवलोग असुरके क्रोधको खा जायें, वे प्रेम लिये अनिष्टनाशक इन्द्रको हमारे पास ले आयें।

अव त्मना भरते केतवेदा अव त्मना भरते फेनमुद्नः । ३
क्षीरेण स्नातः कुयवस्य योषे हते ते स्यातां प्रवणे शिफायाः
युयोप नाभिरुपरस्यायो प्र पूर्वाभिस्तिरते राष्टि शूरः । ४
अञ्जसी कुलिशी वीरपत्नी पयो हिन्वाना उदभिर्भरन्ते
प्रति यत् स्या नीथादर्शि दस्योरोको नाच्छा सदनं जानती गात् । ५
अध स्मा नो मघवञ्चर्कृतादिन्मा नो मघेव निष्पपी परा दाः
स त्वं न इन्द्र सूर्ये सो अप्स्वनागास्त्व आ भज जीवशंसे । ६
मांऽन्तरां भुजमा रीरिषो नः श्रद्धितं ते महत इन्द्रियाय
अधा मन्ये श्रत् ते अस्मा अधायि वृषा चोदस्व महते धनाय ।
मा नो अकृते पुरुहूत योनाविन्द्र क्षुध्यद्भ्यो वय आसुतिं दाः ७

[३ इन्द्र-वेदाः त्मना अव भरते । उदन् फेनं त्मना अव भरते । कुयवस्य योषे क्षीरेण स्नातः, ते शिफायाः प्रवणे स्यातान् ॥

४ अपरस्य आयोः नाभिः युयोप । शूरः पूर्वाभिः प्र तिरते राष्टि (च)। उद्-भिः हिन्वानाः अञ्जसी कुलिशी वीरपत्नीः भरन्ते ॥

५ यत् स्या नीथा प्रति अदर्शि जानती ओकः न दस्योः अच्छ गात्। (हे) मघ-वन् ! अध स्म चर्कृतात् नः इत् । निष्पपी मघा-इव नः मा परा दाः ॥

६ (हे) इन्द्र ! सः त्वं सूर्ये, सः अप्-सु, अनागाः-त्वे, अंहसे नः आ भज । ते महते इन्द्रियाय अद्धितं (अतः) अन्तरां मा आ रिरिषः ॥

७ (हे) इन्द्र ! अध मन्ये ते अस्मै श्रत् अधायि । (त्वं) वृषा महते धनाय चोदस्व । (हे) पुरुहूत ! अकृते योनौ मा नः (दाः) । क्षुध्यत्-भ्यः वयः आ-सुतिं दाः ॥

३ धनको जाननेवाला कुयव अपनी शक्तिसे उनका धन छीन लाता है । वह जलमें स्थित होकर फेन युक्त जलको अपनी शक्तिसे अपने अधीन कर रहा है। कुयवकी दोनों स्त्रियाँ जलसे स्नान कर रही हैं। हे इन्द्र ! वे दोनों नदीके बहावमें कदाचित् मर जायँगी ॥

४ पत्थरपरसे जानेवाले कुयवका स्थान छिपा हुआ था। वह वीर (कुयव) पूर्वाभिमुख जलोंमें तैरता था और तेजस्वी हो रहा था। जलोंसे स्वयं तृप्त होनेवाली सुन्दर परन्तु वज्रके समान वीरोंकी पालिका (नदियाँ) उस कुयवसे जल छीन लाती हैं॥

५ जब वह ले जानेवाला पदचिन्ह दिखाई दिया, तब वह, मार्गको जाननेवाली गाय जैसे अपने घर पहुँच जाती है वैसे दस्युके घरकी ओर जा पहुँची। हे ऐश्वर्यवाले ! अब, तू बार-बार उपद्रव करनेवाले असुरसे हमारी रक्षा कर। क्षुधा-पीड़ित जैसे धनको देता है वैसे तू हमें अपनेसे दूर मत कर ॥

६ हे इन्द्र ! वह तू सूर्यमें, वह तू जलमें, पाप-रहित कर्ममें और जीव जिसकी प्रशंसा करते हैं, ऐसे धनमें हमें आश्रय दे। तेरे महान् बलके लिये हमारे भीतर श्रद्धा उत्पन्न हुई है, इसलिये तू हमारे पास रहनेवाली प्रजाको हिंसा मत कर ॥

७ हे इन्द्र ! निश्चय मैं जानता हूँ, तेरे इस बलके लिये विश्वास धारण किया गया है (लोग तेरे बलपर विश्वास करते हैं)। तू दानशील होकर हमें विपुल धनके लिये प्रेरणा कर। हे बहुतोंसे पुकारे गये इन्द्र ! इस धन-रहित स्थानमें हमें मत डाल, किन्तु भूखे-प्यासे लोगोंके लिये भी अन्न और रथ देता रह ।

मा नो वधीरिन्द्र मा परा दा मा नः प्रिया भोजनानि प्र मोषीः ।
आण्डा मा नो मघवञ्छक्र निर्भेन्मा नः पात्रा भेत् सहजानुषाणि ८
अर्वाङेहि सोमकामं त्वाऽऽहुरयं सुतस्तस्य पिबा मदाय ।
उरुव्यचा जठर आ वृषस्व पितेव न शृणुहि हूयमानः + ९

८ (हे) इन्द्र ! नः मा वधीः, परा दाः मा । नः प्रिया भोजनानि मा प्र मोषीः । (हे) मघ-वन् शक्र ! नः आण्डा मा निः भेत् । नः सह-जानुषाणि पात्रा मा भेत् ॥

९ (हे इन्द्र !) त्वा सोम-कामं आहुः, अयं सुतः, अर्वाङ् आ इहि, तस्य मदाय पिब । उरु-व्यचाः जठरे आ वृषस्व । हूयमानः पिता-इव नः शृणुहि ॥

८ हे इन्द्र ! हमें मत मार और हमें अपनेसे दूर भी कर । हमारे प्रिय भोजनोंको मत छीन । हे धन-सम्पन्न इन्द्र ! हमारे गर्भगत बच्चोंको मत नष्ट कर । हमारे जानुसे वाले बच्चोंके साथ योग्य सन्तानोंको भी मत नष्ट कर ।

९ हे इन्द्र ! लोग तुझे सोमरसकी कामनावाला कहते यह सोम बना हुआ है, तू उसके पास आ और उसे आन लिए पी । अपने पेटमें बडा स्थान बनाकर उसमें सोम डाल । बुलाये जानेपर पिताके समान हमारी बात सुन ।

शूर वीर इन्द्र

इस सूक्तमें शूरवीर इन्द्रका वर्णन है । इसका अर्थ सुबोध होनेसे इसके वाक्य लेकर मनन करनेका कोई प्रयोजन नहीं है । तृतीय और चतुर्थ मंत्रमें कुयव नामक शत्रुको परास्त करनेका वर्णन है । उसकी दो स्त्रियां हैं, वे उसको सहायता हैं । वृत्रके समानही यह कुयव भी जलप्रवाहोंको अपने अ कारमें रखता है, इसलिये इन्द्र उसका वध करके जल होंको खुला करता है । सातवें और आठवें मंत्रमें अपनी क्षाके लिये प्रार्थना है । शेष मंत्रभाग सुगम है ।

यहां इन्द्र-प्रकरण समाप्त हुआ ।

+ अथर्व. २०।८।२

[३] विश्वे देवक-प्रकरण

(१०) अनेक देवताओंकी प्रार्थना

(ऋ. १।१०६) कुत्स आङ्गिरसः । विश्वे देवाः । जगती; ७ त्रिष्टुप् ।

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमूतये मारुतं शर्धो अदितिं हवामहे ।
रथं न दुर्गाद् वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन १
त आदित्या आ गता सर्वतातये भूत देवा वृत्रतूर्येषु शंभुवः ।
रथं न दुर्गाद् वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन २
अवन्तु नः पितरः सुप्रवाचना उत देवी देवपुत्रे ऋतावृधा ।
रथं न दुर्गाद् वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ३
नराशंसं वाजिनं वाजयन्निह क्षयद्वीरं पूषणं सुम्नैरीमहे ।
रथं न दुर्गाद् वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ४
बृहस्पते सदमिन्नः सुगं कृधि शं योर्यत् ते मनुहितं तदीमहे ।
रथं न दुर्गाद् वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ५

यः- १ (वयं) ऊतये इन्द्रं, मित्रं, वरुणं, अग्निं,
र्धः, अदितिं (च) हवामहे । हे सुदानवः वसवः !
द् अंहसः, दुर्गाद् रथं न, नः निः पिपर्तन ॥

आदित्याः देवाः ! ते (यूयं) सर्वतातये आ गत ।
शंभुवः भूत ।७॥

वाचनाः पितरः नः अवन्तु । उत देवपुत्रे ऋता-
ा (नः अवताम्) ।७॥

राशंसं वाजिनं वाजयन् इह, क्षयद्वीरं पूषणं सुम्नैः
॥

बृहस्पते ! सदं इत् नः सुगं कृधि । यत् (यत्) ते
यत् यं योः हितं ईमहे ।७॥

६ (३२७)

अर्थ- १ (हम सब) अपनी सुरक्षाके लिये इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, मरुतोंका संघ, तथा अदितिकी प्रार्थना करते हैं। हे उत्तम दान करनेवाले वसु देवो ! जब सेनाएँ, जिस तरह कठिन मार्गसे रथको उभाड़कर चलाते हैं, उस तरह हमको पार करो ।

२ हे आदित्य देवो ! तुम [illegible] (हमारे) यज्ञके लिये आओ । अच्छे [illegible] बनो ।७॥

३ [illegible] और देवपुत्र [illegible] (हमारी रक्षा करें) ।७॥

४ [illegible] हमें [illegible] ।७॥

५ हे बृहस्पते ! [illegible] ।७॥

इन्द्रं कुत्सो वृत्रहणं शचीपतिं काटे निबाळ्ह ऋषिरह्वदूतये ।
रथं न दुर्गाद् वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ६
देवैर्नो देव्यदितिर्नि पातु देवस्त्राता त्रायतामप्रयुच्छन् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ७

६ काटे निबाळ्हः कुत्सः ऋषिः ऊतये वृत्रहणं शचीपतिं इन्द्रं अह्वत् । हे सुदानवः वसवः ! विश्वस्माद् अंहसः, दुर्गात् रथं न, नः निः पिपर्तन ॥

७ देवी अदितिः देवैः नः नि पातु । त्राता देवः अप्रयुच्छन् (नः) त्रायताम् । नः तत् मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ममहन्ताम् ॥

६ कुवेमें पडा हुआ कुत्स ऋषि अपनी सुरक्षाके लिये नायक तथा शक्तिशाली इन्द्रकी प्रार्थना करता रहा । हे दान देनेवाले वसु देवो ! सब संकटोंसे, जैसे कठिन मार्ग चलाते हैं, वैसे हम सबको पार करो ॥

७ देवी अदिति देवोंके साथ हमारी सुरक्षा करे । वे देव दुर्लक्ष्य न करता हुआ हमारी सुरक्षा करे । हमारे ध्येय मित्रादि देव सिद्ध करनेमें सहायक हो ॥

(११)

(ऋ. १।१०७) कुत्स आङ्गिरसः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप् ।

यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृळयन्तः ।
आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्यादंहोश्चिद्या वरिवोवित्तराऽसत् १
उप नो देवा अवसा गमन्त्वङ्गिरसां सामभिः स्तूयमानाः ।
इन्द्र इन्द्रियैर्मरुतो मरुद्भिरादित्यैर्नो अदितिः शर्म यंसत् २
तन्न इन्द्रस्तद् वरुणस्तदग्निस्तदर्यमा तत् सविता चनो धात् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ३

अन्वयः— १ यज्ञः देवानां सुम्नं प्रति एति । हे आदित्यासः ! मृळयन्तः भवत । वः सुमतिः अर्वाची आ ववृत्यात्, या अंहोः चित् वरिवो-वित्तरा असत् ॥

२ अङ्गिरसां सामभिः स्तूयमानाः देवाः अवसा नः उप आ गमन्तु । इन्द्रः इन्द्रियैः, मरुतः मरुद्भिः, अदितिः आदित्यैः नः शर्म यंसत् ॥

३ तत् चनः नः इन्द्रः, तत् वरुणः, तत् अग्निः, तत् अर्यमा, तत् सविता धात् । तत् नः मित्रः वरुणः अदितिः, सिन्धुः, पृथिवी उत द्यौः ममहन्ताम् ॥

अर्थ— १ यज्ञ देवोंको शुभबुद्धि प्राप्त करता है । हे आदित्यो ! आप हमें सुख देनेवाले बनो । आपकी सुमति हमारे पास आजावे, जो संकटोंसे बचाती और उत्तम धन (वा यश) देती है ।

२ अङ्गिरसोंके सामोंसे प्रशंसित हुए देव सुरक्षाके साथ हमारे पास आ जायं । इन्द्र अपनी शक्तियोंके, मरुत् वीरोंके तथा अदिति आदित्योंके साथ हम सबको सुख देवे ॥

३ वह मधुर अन्न हम सबको इन्द्र, वरुण, अग्नि, अर्यमा, सविता देवे । और इस हमारी इच्छाका अनुमोदन मित्र वरुण आदि देव करें ॥

द्युलोक	विश्वपुरुष	राष्ट्रपुरुष	व्यक्तिपुरुष
	द्यौः		
	सूर्य, सविता	आदित्य-ब्रह्मचारी	नेत्र, दृष्टि
	मित्र, पूषा	तपस्वी, ज्ञानी	ज्ञानशक्ति
	आदित्याः	दूरदर्शी, मार्गदर्शक	
	त्राता देवः	रक्षकगण	
	बृहस्पति	ब्राह्मण, संन्यासी	
अन्तरिक्षलोक	इन्द्र (देवराज्)	राजा, राजपुरुष	मन (इन्द्रियज्ञान)
	देवाः	व्यवहारकर्ता	इंद्रियाँ
	वरुण	शासक	
	मरुद्गण	सैनिकगण	प्राण
	अर्यमा	न्यायाधीश	
	पितरः	संरक्षक गण	प्राणादि शक्ति
भूलोक	अग्नि	वक्ता, उपदेशक	वाणी, मुख
	नराशंस	शिक्षक ज्ञानी	
	देवी अदिति	पुरंधी स्त्री	
	विष्णुः	जीवनरस	रसना
	पृथिवी	आधारस्थान	नासिका

[illegible] पृथ्वी, सिन्धु (जल), अग्नि, मरुतः (वायु) आदि [illegible] मानवोंकी सुरक्षा करनेमें शतशः रीतियोंसे उपयोगी है। [illegible] अब कहनेकी आवश्यकता ही नहीं है। पाठक विचार करके [illegible] सब जाननेका यत्न करें। तथा इनसे सुरक्षित होनेके उपाय [illegible] सोचकर जाननेका यत्न करें। यही तो वैदिक अनुष्ठान है।

संरक्षण कैसे होगा ?

प्रथम मन्त्रमें 'सुदानवः वसवः' ये पद महत्त्वके [illegible] 'सु-दानवः'— उत्तम दानी, उत्तम दान देनेवाले, उत्तम [illegible] करनेवाले। 'वसवः' बसानेवाले, बनाने होनेवाले [illegible] योग्य सुव्यवस्था करनेवाले। इन दो गुणोंका वर्णन करके [illegible] ये दोनों देकर निर्बलोंकी सहायता करते हैं, और आपको [illegible] करनेका सौभाग्य प्राप्त करते हैं। और एक बात है—

'विन्वन्तस्मान् अंहसः निः पिपर्तन' [illegible] करते हैं जिस कारण 'दुरितानि सर्वा' इतिन स्थानमें [illegible] करते हैं। यहां विचार करना है कि [illegible] उत्तम-उत्तम [illegible] दान, इससे सब [illegible]

मे मनुष्य अनेक दुष्ट कर्म करता है और पीड़ित होता है। दुःखके अवसरमें मानव चीखा आक्रन्दन करता है, परंतु स्वस्थ होकर और अभयकारक रहनेवालेको वह अनदेखे व्यवहार करता है। अतः इसी मनको संभालकर रहना' इसे बोध है।

'त्राता देवः अमृतः नः त्रायताम्'- तारक और शाश्वत रहकर इस मनकी सुरक्षा करे। सुरक्षा करनेके कार्य पर जो नियुक्त हो वह सदा सावध और सदा दक्ष रहे। दक्ष न रहनेवाला कदापि रक्षाका कार्य नहीं कर सकता।

ऋ. ११०७ सूक्तके मंत्रोंका अब विचार करते हैं। इस सूक्तके प्रथम मंत्रमें कहा है कि 'देवानां सुम्नं प्रति एति' देवोंकी शुभ बुद्धि प्राप्त करो, आचरण ऐसा करो कि जिससे श्रेष्ठोंकी सहानुभूति मिले। द्वेष बढ़ानेसे यह सिद्धि नहीं होगी, प्रत्युत वर्तमानपेक्षी यह शुभ बुद्धि प्राप्त हो सकती है।

'सुम्नायन्तः सखायः'- सुख देनेवाले बनो, अर्थात् दुःख देनेवाले न बनो। दुःख देनेसे बदला है और सुख भी देनेसे बदलाही है, इसीलिये सुख देना योग्य है।

'सुमतिः भद्रा वरिवो वितरा अस्तु'- सुमति यह है कि जो पापों और दुष्टोंसे बचाती और उत्तम धन देती है। यही सब सुखोंका देनेवाला है।

द्वितीय मंत्रमें कहा है कि 'देवा अवसा नः उपागमन्तु'- देव हमारे पास अपनी शुभ रक्षक शक्तिसे आवें, और हमारी सुरक्षा करें। जो सबकी सुरक्षा करते हैं वेही देव कहलाते हैं। तृतीय मंत्रमें अनेक देवताओंकी सहायता प्राप्त करनेका आदेश है। देवताओंकी सहायता कैसी लेनी चाहिये इस विषयमें इसी देवताके विवरणमें पहिलेमें ही लिखा है।

यहां अथर्व देव प्रकरण समाप्त है।

---

[४] इन्द्राग्नी-प्रकरण

(१२) शत्रुनाशक और अग्रणी वीर

(ऋ. ११०८) कुत्स आङ्गिरसः। इन्द्राग्नी। त्रिष्टुप्।

य इन्द्राग्नी चित्रतमो रथो वामभि विश्वानि भुवनानि चष्टे।
तेना यातं सरथं तस्थिवांसाधा सोमस्य पिबतं सुतस्य १
यावदिदं भुवनं विश्वमस्त्युरुव्यचा वरिमता गभीरम्।
तावाँ अयं पातवे सोमो अस्त्वरमिन्द्राग्नी मनसे युवभ्याम् २

अन्वयः- १ हे इन्द्राग्नी! वां चित्रतमः यः रथः विश्वानि भुवनानि अभि चष्टे। तेन सरथं तस्थिवांसा आ यातं। अथ सुतस्य सोमस्य पिबतम्॥

२ इदं विश्वं भुवनं यावत् उरुव्यचा वरिमता गभीरं अस्ति, हे इन्द्राग्नी! युवाभ्यां पातवे सोमः तावान्, मनसे अरं अस्तु॥

अर्थ— १ हे इन्द्र और अग्नि! आपका विलक्षण वह रथ (है जो) सब भुवनोंको देखता है। उस रथमें इकट्ठे बैठकर (तुम दोनों यहां) आओ। और सोमका निचोड़ा हुआ रस पीओ॥

२ यह सब विश्व जितना विस्तृत और उत्तम गंभीर है, हे इन्द्र और अग्नि! तुम्हारे पीनेके लिये (तैयार किया हुआ यह) सोमरस वैसा (ही है; यह तुम्हारी) इच्छाके लिये यह पर्याप्त हो॥

चक्राथे हि सध्य१ङ्ग्नाम भद्रं सधीचीना वृत्रहणा उत स्थः ।
तावित्रद्राग्नी सध्यञ्चा निषद्या वृष्णः सोमस्य वृषणा वृषेथाम् ३

समिद्धेष्वग्निष्वानजाना यतस्रुचा बर्हिरु तिस्तिराणा ।
तीव्रैः सोमैः परिषिक्तेभिरर्वागिन्द्राग्नी सौमनसाय यातम् ४

यानीन्द्राग्नी चक्रथुर्वीर्याणि यानि रूपाण्युत वृष्ण्यानि ।
या वां प्रत्नानि सख्या शिवानि तेभिः सोमस्य पिबतं सुतस्य ५

यदब्रवं प्रथमं वां वृणानो३ ऽयं सोमो असुरैर्नो विहव्यः ।
तां सत्यां श्रद्धामभ्या हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ६

यदिन्द्राग्नी मदथः स्वे दुरोणे यद् ब्रह्मणि राजनि वा यजत्रा ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ७

यदिन्द्राग्नी यदुषु तुर्वशेषु यद् द्रुह्युष्वनुषु पूरुषु स्थः ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ८
यदिन्द्राग्नी अवमस्यां पृथिव्यां मध्यमस्यां परमस्यामुत स्थः ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ९
यदिन्द्राग्नी परमस्यां पृथिव्यां मध्यमस्यामवमस्यामुत स्थः ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य १०
यदिन्द्राग्नी दिवि ष्ठो यत् पृथिव्यां यत् पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ११
यदिन्द्राग्नी उदिता सूर्यस्य मध्ये दिवः स्वधया मादयेथे ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य १२
एवेन्द्राग्नी पपिवांसा सुतस्य विश्वास्मभ्यं सं जयतं धनानि ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः १३

---

८ हे इन्द्राग्नी ! यत् यदुषु, तुर्वशेषु,यत् द्रुह्युषु, अनुषु, पुरुषु स्थः, अतः हे वृषणौ ! परि आ यातं हि, अथ सुतस्य सोमस्य पिबतम् ॥

९ हे इन्द्राग्नी ! यत् अवमस्यां मध्यमस्यां उत परमस्यां पृथिव्यां स्थः, हे वृषणौ ! अतः परि आ यातं हि, अथ सुतस्य सोमस्य पिबतम् ॥

१० हे इन्द्राग्नी ! यत् परमस्यां मध्यमस्यां अवमस्यां पृथिव्यां स्थः, हे वृषणौ ! अतः परि आ यातं हि, अथ सुतस्य सोमस्य पिबतम् ॥

११ हे इन्द्राग्नी ! यत् दिवि, यत् पृथिव्यां, यत् पर्वतेषु ओषधिषु अप्सु स्थः, हे वृषणौ ! अतः परि आ यातं हि, अथ सुतस्य सोमस्य पिबतम् ॥

१२ हे इन्द्राग्नी ! उदिता सूर्यस्य दिवः मध्ये यत् स्वधया मादयेथे, अतः हे वृषणौ ! परि आ यातं हि, अथ सुतस्य सोमस्य पिबतम् ॥

१३ हे इन्द्राग्नी ! सुतस्य एव पपिवांसा अस्मभ्यं विश्वा धनानि सं जयतं । नः तत् मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः मनहन्ताम् ॥

८ हे इन्द्र और अग्नि ! तुम दोनों यदु, तुर्वश, द्रुह्यु, अनु अथवा पुरु (के यज्ञोंमें) होंगे, तो वहांसे हे बलवान् देवो इधर आओ, और सोमरस पीओ ॥

९ हे इन्द्र और अग्नि ! तुम नीचले, बीचके और ऊपरके भूविभागमें होंगे, तो हे बलवान् देवो ! वहांसे इधर आओ, और यह सोमरस पीओ ॥

१० हे इन्द्र और अग्नि ! तुम ऊपरके बीचके और नीचेके भूविभागमें होंगे, तो वहांसे इधर आओ और इस सोमरसका पान करो ॥

११ हे इन्द्र और अग्नि ! जो तुम दोनों द्युलोकमें, पृथ्वीपर, पर्वतोंमें, औषधियोंमें अथवा जलोंमें होंगे, तो हे बलवान् देवो ! वहांसे यहां आओ और इस सोमरसका पान करो ॥

१२ हे इन्द्र और अग्नि ! सूर्य उदय होनेपर द्युलोकके मध्यमें (बैठकर) अन्नसेवनका आनंद लेते होंगे, तो हे बलवान् देवो ! यहां आओ, और सोमके रसका पान करो ॥

१३ हे इन्द्र और अग्नि ! सोमरसका पान करके हमें सब प्रकारके धन जीत कर देओ । हमारी इस इच्छाको मित्र और देव सहायक हों ॥

(१३)

(ऋ. १।१०९) कुत्स आंगिरसः । इन्द्राग्नी । त्रिष्टुप् ।

वि ह्यख्यं मनसा वस्य इच्छन्निन्द्राग्नी ज्ञास उत वा सजातान् ।
नान्या युवत् प्रमतिरस्ति मह्यं स वां धियं वाजयन्तीमतक्षम् १
अश्वं हि भूरिदावत्तरा वां विजामातुरुत वा घा स्यालात् ।
अथा सोमस्य प्रयती युवभ्यामिन्द्राग्नी स्तोमं जनयामि नव्यम् २
मा च्छेद्म रश्मीँरिति नाधमानाः पितॄणां शक्तीरनुयच्छमानाः ।
इन्द्राग्निभ्यां कं वृषणो मदन्ति ता ह्यद्री धिषणाया उपस्थे ३
युवाभ्यां देवी धिषणा मदायेन्द्राग्नी सोममुशती सुनोति ।
तावश्विना भद्रहस्ता सुपाणी आ धावतं मधुना पृङ्क्तमप्सु ४

अन्वयः— १ हे इन्द्राग्नी ! वस्यः इच्छन् ज्ञासः उत वा सजातान् मनसा वि हि अख्यम् । मह्यं युवत् अन्या प्रमतिः न अस्ति । सः वां वाजयन्तीं धियं अतक्षम् ॥

२ हे इन्द्राग्नी ! विजामातुः उत वा स्यालात् घ वां भूरिदावत्तरा अश्वं हि । अथ युवाभ्यां सोमस्य प्रयती नव्यं स्तोमं जनयामि ॥

३ रश्मीन् मा छेद्म इति नाधमानाः, पितॄणां शक्तीः अनुयच्छमानाः वृषणः इन्द्राग्निभ्यां कं मदन्ति । हि अद्री धिषणायाः उपस्थे ॥

४ हे इन्द्राग्नी ! युवाभ्यां मदाय देवी उशती धिषणा सोमं सुनोति । हे अश्विना ! भद्रहस्ता सुपाणी तौ आ धावतं, अप्सु मधुना पृङ्क्तम् ॥

अर्थ— १ हे इन्द्र और अग्नि ! अभीष्ट-प्राप्तिकी इच्छा करता हुआ मैं, कोई ज्ञानी और जातिबांधव (सहायार्थ मिलेंगे ऐसा) मनसे (विचार करके) देख रहा हूं। मेरे विषयमें तुम्हारी कोई विभिन्न बुद्धि नहीं है। वह (मैं) तुम्हारे सामर्थ्यका वर्णन करनेवाला स्तोत्र बनाता हूं ॥

२ हे इन्द्र और अग्नि ! आप बुरे दामाद अथवा सालेसे भी अधिक दान करनेवाले हैं ऐसा मैं सुनता हूं। तुम दोनोंके लिये सोमरसका अर्पण करके, नवीन स्तोत्र निर्माण करता हूं ॥

३ 'हमारे (संतानरूपी) किरणोंका विच्छेद न हो' ऐसी प्रार्थना करनेवाले, तथा 'पितरोंकी शक्ति (वंशजोंमें) अनुकूलतासे रहे, ऐसी इच्छा करनेवाले बलवान् (वीर) इन्द्र और अग्निकी (कृपासे) सुख आनन्दसे प्राप्त करते हैं' (यह हमें पता है । इसलिये इन देवोंको सोमरस देनेके लिये ये) दो पत्थर सोमपात्रोंके समीप (ही रखे हैं। जिनसे रस निकालकर दिया जायगा ।)

४ हे इन्द्र और अग्नि ! तुम्हारे हर्षके लिये ये दिव्य सोमपात्र सोमरस निकालकर (भरकर रखे हैं)। हे उत्तम दामादके कल्याण करनेवाले और घरेलू अश्विनौ देवो ! दौड़ते हुए इधर आओ और उसमें इस मधुर रसको मिला दो ॥

युवामिन्द्राग्नी वसुनो विभागे तवस्तमा शुश्रव वृत्रहत्ये ।
तावासद्या बर्हिषि यज्ञे अस्मिन् प्र चर्षणी मादयेथां सुतस्य ५
प्र चर्षणिभ्यः पृतनाहवेषु प्र पृथिव्या रिरिचाथे दिवश्च ।
प्र सिन्धुभ्यः प्र गिरिभ्यो महित्वा प्रेन्द्राग्नी विश्वा भुवनात्यन्या ६
आ भरतं शिक्षतं वज्रबाहू अस्माँ इन्द्राग्नी अवतं शचीभिः ।
इमे नु ते रश्मयः सूर्यस्य येभिः सपित्वं पितरो न आसन् ७
पुरंदरा शिक्षतं वज्रहस्ताऽस्माँ इन्द्राग्नी अवतं भरेषु ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ८

[illegible] हे इन्द्राग्नी ! वसुनः विभागे वृत्रहत्ये तवस्तमा [illegible] शुश्रव । हे चर्षणी ! तौ अस्मिन् यज्ञे बर्हिषि आसथ, [illegible] सुतस्य प्र मादयेथाम् ॥

६ हे इन्द्राग्नी ! पृतनाहवेषु चर्षणिभ्यः महित्वा प्र रिरि[illegible] प्र, दिवः च, सिन्धुभ्यः प्र, गिरिभ्यः प्र, [illegible] विश्वा भुवना (अति रिरिचाथे) ॥

७ हे [illegible] इन्द्राग्नी ! आ भरतं, शिक्षतं, अस्मान् [illegible] इमे [illegible] रश्मयः सूर्यस्य येभिः नः पितरः सपित्वं आसन्, ते [illegible] ॥

८ हे [illegible] पुरंदरा इन्द्राग्नी ! शिक्षतं, भरेषु अस्मान् [illegible] अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत [illegible] ॥

५ हे इन्द्र और अग्नि ! धनका बंटवारा करनेके समय तथा युद्धका वध करनेके कार्यके समय आप दोनों सबसे श्रेष्ठ [illegible] वेग (दर्शाते हैं) ऐसा हम सुनते हैं। हे फुर्तीवाले देवो ! आप दोनों इस यज्ञमें आसनपर बैठकर, सोमरससे [illegible] प्राप्त करो ॥

६ हे इन्द्र और अग्नि ! युद्धार्थ आह्वान करनेवाले [illegible] अपेक्षा महत्त्वसे तुम अधिक श्रेष्ठ हो। तथा पृथिवी, [illegible] नदियाँ, पर्वत तथा जो अन्य भुवन हैं, उनसे भी (इ[illegible] प्रभावमें अधिक हैं।)

७ वज्रके समान जिनके बाहु बलवान् हैं, ऐसे हे इन्द्र [illegible] अग्नि ! धन (हमारे घरोंमें) भर दो, (हमें) शिक्षा दो [illegible] हमें सामर्थ्यसे सुरक्षित करो। जिनके साथ हमारे पितर [illegible] रहे, वेही सूर्यके किरण ये हैं ॥

८ हे हाथमें वज्र धारण करनेवाले, शत्रुके नगर तोड़[illegible] इन्द्र और अग्नि ! हमें शिक्षित करो, युद्धोंमें हमें [illegible] करो। इस हमारी इच्छाको मित्र आदि देव महायता [illegible]

इन्द्र और अग्निके चयनमें वीरोंका स्मरण

[illegible] देवता है। प्रायः [illegible] इन्द्र' ही कहीं देवता [illegible] [illegible] ऐसा है। ये दो वीर पुरुष हैं और ये दोनों मिलकर [illegible] लोग तीनों मानवोंका कल्याण होता है।

इन दोनों सूक्तोंके मन्त्र [illegible] हैं, और दो मन्त्र [illegible] के अन्त [illegible] इन्द्राग्नी मैत्रावरुणा [illegible] अन्तमें 'हमने तैयार किया [illegible] यज्ञमें आमन्त्रित हो' ऐसा कहा है। [illegible] आदरके बुलाना और उनका सत्कार करके [illegible] देकर सन्तुष्ट करना वैदिक समयकी एक [illegible] [illegible] पूजा करना यज्ञ करनेवाले और [illegible]

अब देखिये कि ये क्या करते थे—

रथः चित्रतमः, विश्वानि भुवनानि अभि रथ्यावसा तेन रथं आ यातम् (मं. १)— रथ अत्यंत सुंदर है, उसपर बैठनेवाला सब भुवनोंका करता है, उसमें बैठते हुए तुम दोनों इधर आओ। वे वीर एकही रथमें बैठते और सब भुवनोंका निरी- ते थे, तथा इनका रथ सुन्दर था। इसी तरह वीर रथपर बैठें और सब देशों और प्रान्तोंका निरीक्षण

इदं विश्वं भुवनं उरुव्यचा वरिमता गभीरं (२)— यह सब भुवन विस्तृत और गहन तथा गभीर इसकी गभीरता देखनी चाहिये। वीर इसीका निरी- करें।

नामभद्रं सधयङ् चकार्थे (३)— वीरोंको रहे कि वे अपना नाम जनताके कल्याण करनेके कार्यमें करके प्रसिद्ध करें।

वृत्रहणा रथः— घेरनेवाले शत्रुका ये वीर वध ।

समिद्धेषु अग्निषु आनजाना (४)— प्रदीप्त अग्निमें करें। यह आत्मसमर्पणका पाठ है। जिस तरह प्रदीप्त हवि अर्पण जाता है, उस तरह वीर जनताके कल्याण के लिये अपना समर्पण करें।

यानि वीर्याणि चक्रथुः (५)— ये वीर पराक्रम है, पराक्रम करनाही वीरोंका स्वभाव है।

वृष्यानि रूपाणि चक्रथुः— बलवान् रूप बनाते अर्थात् अपने शरीर सुदृढ और बलिष्ठ बनाते हैं।

सख्या प्रतनानि शिवानि— इन वीरोंकी मित्रता और कल्याण करनेवाली होती है। एकबार इनकी हुई तो उससे स्थायी कल्याण होता है।

स्वे दुरोणे, ब्रह्मणि राजनि वा मदथः (७)— घर अपने घरमें (अपने देशमें), ज्ञानके विषयमें अथवा राजसंस्थाके कार्यमें आनंदित होते हैं। वीरोंका आनंद- मिलके ये केन्द्र हैं।

१० ये वीर यदु, तुर्वश, द्रुह्यु, अनु और पुरु नामके में रहकर उनकी सहायता करते हैं। ये नाम देशविशेष- में रहनेवाले मनुष्यसमूहके अर्थ करते हैं और ये विशेषण मानते हैं। (यदु) अहिंसक, (तुर्वश) हिंसक, (द्रुह्यु) द्रोहकारी, (अनु) प्राणके बलसे युक्त, (पुरु) नगरोंमें रहनेवाले नागरिक, इन पांच प्रकारके लोगोंमें ये वीर रहते हैं और उनकी उन्नतिके लिये यत्न करते हैं। अथवा ये पंचजनोंके वाचक पद कई मानते हैं। ये वीर इन पांच वर्णोंके मानवोंका हित करनेका यत्न करते हैं, यह भाव यहां है।

११ पृथ्वीके निम्न, मध्य, ऊंचे प्रदेशमें ये वीर जाते हैं और वहांके जनोंका उद्धार करते हैं। सभी प्रदेशमें रहनेवाले मानवों- की सेवा करते हैं, यह भाव मंत्र ९ तथा १० वे मंत्रका है। दोनों मंत्रोंका भाव एकही है। स्थानोंके नामोंमें क्रमभेद है।

१२ आकाश, पर्वत, पृथिवी, औषधि, जलस्थान आदिमें ये वीर जाते हैं। आकाशमें संचार विमानोंसे होता है। इन सब स्थानोंमें ये वीर जाते हैं और सब स्थानोंकी सुरक्षा करते हैं। (११)

उदिता सूर्यस्य दिवः मध्ये स्वधया मादयन्ते (मं. १२)— सूर्यका प्रकाश होनेपर सूर्यप्रकाशमें रहते, स्नानपान करते और आनंद मानते हैं। वीरोंका यही कार्य है। वीरोंका यही स्वभाव है। खुले स्थानोंमें ये खेलते, कूदते, खाते, पीते और आनन्दसे विचरते हैं।

विश्वा धनानि सं जयतम् (१३)— सब धन मिलकर जीतकर लाओ। वीर ऐसाही मिलकर विजय पाते और धन लाते हैं। ऋग्वेदके प्रथम मण्डलके १०८ वे सूक्तमें वीरोंके वर्णनमें ये कार्य वीरोंके बताये हैं। सभी स्वयंवेरक वीर ये कार्य करके जनताकी सेवा कर सकते और अपने जीवन यशस्वी कर सकते हैं। अब द्वितीय सूक्तका (ऋ. १।१०९) भाव देखिये—

(ऋ. १।१०९)

वस्यः इच्छन् शसः उत सजातान् मनसा वि अस्यन् (१)— धनकी इच्छा करता हुआ मैं अपनी और सजातियोंकी सदा बलकी अपेक्षा करता हूं। वह बल वीरोंकी सुरक्षामें रहते हुएही हो सकता है। यदि धन प्राप्त करनेकी इच्छा है, तो अपने सजातियोंको बलसंपन्न बनाना चाहिये और सजातियोंकी सहानुभूति कमानी चाहिये।

यावयन्तीः विरेः अनशनम्— सब बहनोंका बुद्धि विनोद करती चाहिये। बुद्धि देती रहें कि विवेक कैसे

[५] ऋभु-प्रकरण

(१४) ऋभु-कारीगर

(ऋ १।११०) कुत्स आङ्गिरसः । ऋभवः । जगती; ५, ९ त्रिष्टुप् ।

ततं मे अपस्तदु तायते पुनः स्वादिष्ठा धीतिरुचथाय शस्यते ।
अयं समुद्र इह विश्वदेव्यः स्वाहाकृतस्य समु तृप्णुत ऋभवः १

आभोगयं प्र यदिच्छन्त ऐतनापाकाः प्राज्ञो मम के चिदापयः ।
सौधन्वनासश्चरितस्य भूमनाऽगच्छत सवितुर्दाशुषो गृहम् २

तत् सविता वोऽमृतत्वमासुवदगोह्यं यच्छ्रवयन्त ऐतन ।
त्यं चिच्चमसमसुरस्य भक्षणमेकं सन्तमकृणुता चतुर्वयम् ३

विड्वी शमी तरणित्वेन वावतो मर्तासः सन्तो अमृतत्वमानशुः ।
सौधन्वना ऋभवः सूरचक्षसः संवत्सरे समपृच्यन्त धीतिभिः ४

अन्वयः— १ हे ऋभवः ! मे अपः ततं, तद् उ पुनः तायते । स्वादिष्ठा धीतिः उचथाय शस्यते । अयं समुद्रः इह विश्वदेव्यः । स्वाहाकृतस्य सं उ तृप्णुत ॥

२ अपाकाः प्राज्ञः मम आतयः के चित् आभोगयं प्रेच्छन्तः यद् प्र ऐतन । हे सौधन्वनासः ! चरितस्य भूमना दाशुषः सवितुः गृहं अगच्छत ॥

३ यद् सविता वः अमृतत्वं आसुवत्, यद् अगोह्यं अवश्रवन्तः ऐतन । असुरस्य मक्षणं त्यं चमसं एकं चित् सन्तं चतुर्वयं अकृणुत ॥

४ वावतः धीराः तरणित्वेन विड्वी शमी [illegible] मर्तासः सन्तः अमृतत्वं आनशुः । सौधन्वनाः सूरचक्षसः ऋभवः संवत्सरे धीतिभिः सं अपृच्यन्त ॥

अर्थ— १ हे ऋभुदेवो ! मेरा कर्म कर्म समाप्त हुआ है, वही (मैं) फिरसे [illegible] वर्णन करनेके लिये यहां [illegible] हैं । [illegible] यहां यज्ञ देखनेके लिये [illegible] (देखनेके) सुख ही भोगें ॥

२ अपरिपक्व बुद्धिवाले [illegible] हमारे [illegible] हे सुधन्वाके पुत्रो ! तुमने दुःखरहित [illegible] सविताके घरको [illegible] ॥

३ [illegible] (हे ऋभुदेवो) [illegible] तुम [illegible] देनेके [illegible] एक [illegible] ॥

४ [illegible] मनुष्य [illegible] ॥

क्षेत्रमिव वि ममुस्तेजनेनँ एकं पात्रमृभवो जेहमानम् ।
उपस्तुता उपमं नाधमाना अमर्त्येषु श्रव इच्छमानाः ५

आ मनीषामन्तरिक्षस्य नृभ्यः सुचेव घृतं जुहवाम विश्वना ।
तरणित्वा ये पितुरस्य सश्चिर ऋभवो वाजमरुहन् दिवो रजः ६

ऋभुर्न इन्द्रः शवसा नवीयानृभुर्वाजेभिर्वसुभिर्वसुर्ददिः ।
युष्माकं देवा अवसाऽहनि प्रिये३मि तिष्ठेम पृत्सुतीरसुन्वताम् ७

निश्चर्मण ऋभवो गामपिंशत सं वत्सेनासृजता मातरं पुनः ।
सौधन्वनासः स्वपस्यया नरो जिव्री युवाना पितराकृणोतन ८

वाजेभिर्नो वाजसाताविविड्ढ्यृभुमाँ इन्द्र चित्रमा दर्षि राधः ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ९

---

५ उपमं नाधमानाः, अमर्त्येषु श्रवः इच्छमानाः उपस्तुताः ऋभवः जेहमानं एकं पात्रं क्षेत्रमिव तेजनेनं वि ममुः ॥

६ अन्तरिक्षस्य नृभ्यः सुचा इव घृतं मनीषां विश्वना आ जुहवाम । ये ऋभवः पितुः अस्य तरणित्वा सश्चिरे । दिवो रजः वाजं अरुहन् ॥

७ शवसा नवीयान् ऋभुः । नः इन्द्रः वाजेभिः वसुभिः ऋभुः वसुः ददिः । हे देवाः ! युष्माकं अवसा प्रिये अहनि असुन्वतां पृत्सुतीः अभि तिष्ठेम ॥

८ हे ऋभवः ! चर्मणः गां निः अपिंशत, मातरं पुनः वत्सेन सं असृजत । हे सौधन्वनासः नरः ! स्वपस्यया जिव्री पितरा युवाना अकृणोतन ॥

९ हे इन्द्र ऋभुमान् ! वाजसातौ वाजेभिः अविड्ढि । चित्रं राधः आ दर्षि । नः वत् मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः मामहन्ताम् ॥

५ उपमा देनेयोग्य यशकी इच्छा करनेवाले, देवोंसे कीर्तिकी इच्छा करनेवाले, प्रशंसाको प्राप्त हुए ऋभु वर्ते जानेवाले एक पात्रको, क्षेत्रके समान, तीक्ष्ण धारवाले शस्त्रसे नापा (और बना दिया) ॥

६ अन्तरिक्षमें रहनेवाले इन मानवरूपधारी (ऋभुओं) के लिये चमससे घृतकी आहुति, मनःपूर्वक की स्तुतिके साथ, [अर्पण करेंगे । ये ऋभु इस विश्वके पिताके साथ सत्कार करनेके कारण, रहने लगे, द्युलोक और अन्तरिक्ष लोकमें बलके साथ आरोहण करने लगे ॥

७ बलसे युक्त होनेके कारण नवीन (जैसा तरुण) ऋभु हमारे लिये इन्द्रही है । बलों और धनोंके साथ रहनेवाले ये ऋभु हमें धनोंके दातेही हैं । हे देवो ! तुम्हारी सुरक्षासे (सुरक्षित हुए हम) किसी प्रिय दिनमें अयज्ञशील असुरोंके सेनापर विजय प्राप्त करेंगे ।

८ हे ऋभुदेवो ! चर्मवाली (अति कृश) गौको (तुमने) सुंदररूपवाली बना दी, तब उस गौमाताके साथ बछड़ेका संयोग भी तुमने करा दिया । हे सुधन्वाके पुत्रो ! हे नेता वीरो ! अपने प्रयत्नसे अति वृद्ध मातापिताओंको तरुण बना दिया ॥

९ हे ऋभुओंके साथ इन्द्र ! बलसे पराक्रम करनेके लिये अपने सामर्थ्यके साथ युक्त आओ । विलक्षण धन हमें देओ । यह हमारा प्रिय मित्र आदि देवोंसे अनुमोदित होवे ॥

(१५)

(ऋ. १।११२) कुत्स आङ्गिरसः । ऋभवः । जगती, ५ त्रिष्टुप् ।

तक्षन् रथं सुवृतं विद्मनापसस्तक्षन् हरी इन्द्रवाहा वृषण्वसू ।
तक्षन् पितृभ्यामृभवो युवद् वयस्तक्षन् वत्साय मातरं सचाभुवम् १
आ नो यज्ञाय तक्षत ऋभुमद्वयः क्रत्वे दक्षाय सुप्रजावतीमिषम् ।
यथा क्षयाम सर्ववीरया विशा तन्नः शर्धाय धासथा स्विन्द्रियम् २
आ तक्षत सातिमस्मभ्यमृभवः सातिं रथाय सातिमर्वते नरः ।
सातिं नो जैत्रीं सं महेत विश्वहा जामिमजामिं पृतनासु सक्षणिम् ३
ऋभुक्षणमिन्द्रमा हुव ऊतय ऋभून् वाजान् मरुतः सोमपीतये ।
उभा मित्रावरुणा नूनमश्विना ते नो हिन्वन्तु सातये धिये जिषे ४
ऋभुर्भराय सं शिशातु सातिं समर्यजिद्वाजो अस्माँ अविष्टु ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ५

अन्वयः– १ विद्मनापसः रथं सुवृतं तक्षन् । इन्द्रवाहाः हरी वृषण्वसू तक्षन् । पितृभ्यां युवत् वयः ऋभवः तक्षन् । वत्साय मातरं सचाभुवं तक्षन् ॥

२ नः यज्ञाय ऋभुमत् वयः आ तक्षत । क्रत्वे दक्षाय सुप्रजावतीं इषं (आ तक्षत) । सर्ववीरया विशा यथा क्षयाम स्विन्द्रियं नः शर्धाय सु धासथ ॥

३ हे नरः ऋभवः ! अस्मभ्यं सातिं आ तक्षत । रथाय सातिं, मर्वते सातिं (आ तक्षत) । विश्वहा नः जैत्रीं सातिं सं महेत । पृतनासु जामिं अजामिं सक्षणिम् ॥

४ ऋभुक्षणं इन्द्रं ऊतये आ हुवे । ऋभून् वाजान् मरुतः सोमपीतये (आ हुवे) । नः उभा मित्रावरुणा अश्विना नूनं धिये जिषे हिन्वन्तु ॥

५ ऋभुः सातिं भराय सं शिशातु । समर्यजित् वाजः अस्मान् अविष्टु । नः तत् मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ममहन्ताम् ॥

अर्थ– १ ज्ञानसे कुशल बने (ऋभुदेवोंने) सुंदर रथ निर्माण किया । इन्द्रके रथको जोतनेयोग्य घोडे भी बनाये । मातापिताओंके लिये तारुण्यकी आयु दी । और बछडेके लिये माताको उसके साथ रहनेयोग्य बनाया ॥

२ हमें यज्ञ करनेके लिये ऋभुओंके समान तेजस्वी (नित्य तारुण्यकी) आयु देदो । सत्कर्म करनेके लिये और बल बढानेके लिये प्रजा बढानेवाला अन्नही हमें देदो । सब वीरोंके साथ और प्रजाके साथ जिस तरह हम निवास कर सकेंगे, वैसा इंद्रियसंबंधी बल हमारी संघटनाके लिये हममें उत्पन्न करो ॥

३ हे नेता ऋभुवीरो ! हमें दीर्घ (चिरकालीन) धन दो । रथके लिये शोभा दो, घोडेके लिये बल दो । सदा हमें विजय देनेवाला धन दो । युद्धोंमें हमारे संबंधी हों अथवा अपरिचित (सामने हों), हम उनका) पराभव कर छोडेंगे ॥

४ ऋभुओंके साथ रहनेवाले इन्द्रको (हम अपनी) सुरक्षाके लिये बुलाते हैं । ऋभु, वाज, मरुत, दोनों मित्र और वरुण, दोनों अश्विदेव इन सबको सोमपानके लिये हम बुलाते हैं । हमें वे धनलाभ, बुद्धि और विजय प्रदान करें ॥

५ ऋभु हमें धनदान तत्पर करा देवें । हमारे विजयी वाज हमें उत्साह देवें । यह हमारी आकांक्षा मित्र आदि देव परिपूर्ण करें ॥

उपदेश

१ मे अपः ततं, तत् उ पुनः तायते : (११०।१)– मेरा यह व्यापक कर्म फैल गया है, मैं वही कर्म पुनः फैलाऊं गा। 'अपस्'का अर्थ सार्वदेशिक हितका कर्म है, वह कर्म कि जिसका परिणाम सब मनुष्यजातितक अच्छी तरह पहुंचता है, जिससे जनताका हित होता है ऐसा यज्ञकर्म। यह कर्म मैंने अब किया है और फिर भी ऐसाही कर्म करूंगा। मनुष्य वारंवार शुभ कर्म करते रहें।

२ मर्तासः अमृतत्वं आनशुः ।(मं. ४)— मर्त्य मानव अमरत्व—देवत्व— प्राप्त करते हैं। प्रयत्नसे देवत्व प्राप्त करना मानवोंका कर्तव्य है।

३ असुन्वतां पृत्सुतीः अभि तिष्ठेम । (मं. ७)— अयाजकोंकी सेनाओंका हम पराभव करेंगे। हम याजक होनेसे हमाराही सर्वत्र विजय होगा।

४ यथा सर्ववीरया विशा क्षयाम, तत् इन्द्रियं नः शर्धाय सु धासथ (१।१११।२)– जिस तरह हम सब वीर प्रजाजनोंके साथ निवास कर सकेंगे, उस तरहका बल हमारे संघके लिये (हम सबमें) स्थापन करो। अर्थात् हमारे चारों ओर वीरोंका निवास हो, हम भी वीर बनेंगे। इसले सबमें संघका बल स्थापन हो और बढे। (नः शर्धाय हमारे संगठनके लिये हमारा बल बढ जाय। हममें बल बढ जाय जिससे हमारी संगठना उत्तम रीतिसे बन सके

५ नः जैत्रीं सातिं सं महेत । (मं. ३)– हमारे देनेवाले वैभवका सम्मान होता रहे।

६ विश्वहा पृतनासु जामिं अजामिं सक्षणि (मं. ३)— सर्वदा युद्धोंमें हमारा संबंधी हो वा पर शत्रु हो उन सबका हम पूर्ण पराभव करेंगे और इस विजय प्राप्त करेंगे।

७ समर्यजित् वाजः अस्मान् आविषु । (मं. ५) सब शत्रुओंपर विजय प्राप्त करनेवाला बल हम सबमें हमारा बल ऐसा हो कि जिससे हम सदा विजयी होते रहें।

इस प्रकार इन सूक्तोंमें विजयके निर्देश हैं जो पाठक णमें रखे। इन दोनों सूक्तोंमें ऋभुओंका वर्णन है और संबंध ऐतरेय ब्राह्मणकी कथाके साथ दीखता है। सविता इनकी उन्नति करनेमें सहायता दी इत्यादि बातें उक्त साथ देखनेयोग्य है।

यहां ऋभु–प्रकरण समाप्त हुआ है।

[६] अश्वि-प्रकरण

(१६) अश्विदेवोंके प्रशंसनीय कार्य

(ऋ. १।११२) कुत्स आङ्गिरसः । १ (आद्यपादस्य) द्यावापृथिव्यौ, १ (द्वितीयपादस्य) अग्निः, १ (उत्तरार्धस्य) अश्विनौ; २-२५ अश्विनौ । जगती; १२-२५ त्रिष्टुप् ।

ईळे द्यावापृथिवी पूर्वचित्तयेऽग्निं घर्मं सुरुचं यामन्निष्टये ।
याभिर्भरे कारमंशाय जिन्वथस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् १

अन्वयः– १ यामन् इष्टये, पूर्वचित्तये, सुरुचं घर्मं अग्निं द्यावापृथिवी ईळे । हे अश्विना ! याभिः कारं भरे अंशाय जिन्वथः, ताभिः ऊतिभिः सु आगतं उ ॥

अर्थ–१ पहिले प्रहरमें यज्ञ करनेके लिये, तथा अपना स्थिर करनेके लिये, अच्छी दीप्तिवाले यज्ञस्वरूप अग्नि द्यावापृथिवीकी मैं स्तुति करता हूं। हे अश्विदेवो ! कुशल पुरुषको संग्राममें अपना धनविभाग पानेके लिये करते हो, उन रक्षासाधनोंके साथ तुम दोनों यहां

युवोर्दानाय सुभरा असश्चतो रथमा तस्थुर्वचसं न मन्तवे ।
याभिर्धियोऽवथः कर्मन्निष्टये ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् २
युवं तासां दिव्यस्य प्रशासने विशां क्षयथो अमृतस्य मज्मना ।
याभिर्धेनुमस्वं१ पिन्वथो नरा ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ३
याभिः परिज्मा तनयस्य मज्मना द्विमाता तूर्षु तरणिर्विभूषति ।
याभिस्त्रिमन्तुरभवद् विचक्षणस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ४
याभी रेभं निवृतं सितमद्भ्य उद्वन्दनमैरयतं स्वर्दृशे ।
याभिः कण्वं प्र सिषासन्तमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ५
याभिरन्तकं जसमानमारणे भुज्युं याभिरव्यथिभिर्जिजिन्वथुः ।
याभिः कर्कन्धुं वय्यं च जिन्वथस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ६

याभिः शुचन्तिं धनसां सुषंसदं तप्तं घर्ममोम्यावन्तमत्रये ।
याभिः पृश्निगुं पुरुकुत्समावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ७

याभिः शचीभिर्वृषणा परावृजं प्रान्धं श्रोणं चक्षस एतवे कृथः ।
याभिर्वर्तिकां ग्रसितामुमुञ्चतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ८

याभिः सिन्धुं मधुमन्तमसश्चतं वसिष्ठं याभिरजरावजिन्वतम् ।
याभिः कुत्सं श्रुतर्यं नर्यमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ९

याभिर्विश्पलां धनसामथर्व्यं सहस्रमीळ्ह आजावजिन्वतम् ।
याभिर्वशमश्व्यं प्रेणिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् १०

याभिः सुदानू औशिजाय वणिजे दीर्घश्रवसे मधु कोशो अक्षरत् ।
कक्षीवन्तं स्तोतारं याभिरावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ११

---

७ हे अश्विना ! याभिः धनसां शुचन्तिं सुसंसदं, तप्तं घर्मं अत्रये ओम्यावन्तं; पृश्निगुं पुरुकुत्सं याभिः आवतं, ताभिः ऊतिभिः सु आगतं उ ॥

८ हे वृषणा अश्विना ! याभिः शचीभिः अन्धं परावृजं चक्षसे, श्रोणं एतवे अ कृथः, असितां वर्तिकां याभिः अमुञ्चतं, ताभिः ऊतिभिः सु आगतं उ ॥

९ हे अजरौ अश्विना ! मधुमन्तं सिन्धुं याभिः असश्चतं, याभिः वसिष्ठं अजिन्वतं; याभिः कुत्सं श्रुतर्यं नर्यं आवतं, ताभिः ऊतिभिः सु आगतं उ ॥

१० हे अश्विना ! सहस्रमीळ्हे आजौ याभिः धनसां अथर्व्यं विश्पलां अजिन्वतं, याभिः प्रेणिं अश्व्यं वशं आवतं, ताभिः ऊतिभिः सु आगतं उ ॥

११ हे सुदानू अश्विना ! औशिजाय दीर्घश्रवसे वणिजे याभिः कोशः मधु अक्षरत्, स्तोतारं कक्षीवन्तं याभिः आवतं, ताभिः ऊतिभिः सु आगतं उ ॥

७ हे अश्विदेवो ! जिनसे धनदान करनेवाले शुचन्ति उत्तम घर दिया; तपे हुए कारागृहको अत्रिके लिये शान्त दिया; पृश्निगु और पुरुकुत्सको जिनसे सुरक्षित किया, उन र साधनोंसे तुम यहां पधारो ॥

८ हे बलवान् अश्विदेवो ! जिन शक्तियोंसे तुमने अन्धे परावृक्को दृष्टिसंपन्न किया, लंगडे लूलेको चलने फिरनेको बनाया, तथा (भेडियेके मुखसे) ग्रस्त चिडियाको मुक्त किया, उन रक्षासाधनोंसे तुम यहां पधारो ॥

९ हे जरारहित अश्विदेवो ! मीठे जलवाले नदीको जि तुमने प्रवाहित किया, जिनसे वसिष्ठको सन्तुष्ट किया, जि कुत्स, श्रुतर्य तथा नर्यका संरक्षण किया, उन रक्षासाधनो तुम यहां पधारो ॥

१० हे अश्विदेवो ! सहस्रों सैनिकोंकी लडाईमें जिन शक्ति योंसे धनदान करनेवाली अथर्वकुलमें उत्पन्न विश्पलाको तुमने सहायता की, जिनसे प्रेरक अश्वपुत्र वशको सुरक्षित किया उन रक्षासाधनोंके साथ तुम यहां पधारो ॥

११ अच्छे दान देनेवाले अश्विदेवो ! उशिक् पुत्र दीर्घश्र नामक वणिक्के लिये जिनसे तुमने मधुका भण्डार दिया, म कक्षीवान्को जिनसे सुरक्षित किया, उन शक्तियोंसे तुम य पधारो ॥

याभी रसां क्षोदसोद्वः पिपिन्वथु रनश्वं याभी रथमावतं जिषे ।
याभिश्चिशोक उस्रिया उदाजत ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् १२
याभिः सूर्यं परियाथः परावति मन्धातारं क्षैत्रपत्येष्वावतम् ।
याभिर्विप्रं प्र भरद्वाजमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् १३
याभिर्महामतिथिग्वं कशोजुवं दिवोदासं शम्बरहत्य आवतम् ।
याभिः पूर्भिद्ये त्रसदस्युमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् १४
याभिर्वभ्रं विपिपानमुपस्तुतं कलिं याभिर्वित्तजानिं दुवस्यथः ।
याभिर्व्यश्वमुत पृथिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् १५
याभिर्नरा शयवे याभिरत्रये याभिः पुरा मनवे गातुमीषथुः ।
याभिः शारीराजतं स्यूमरश्मये ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् १६
याभिः पठर्वा जठरस्य मज्मनाग्निर्नादीदेच्चित इद्धो अज्मन्ना ।
याभिः शर्यातमवथो महाधने ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् १७

---

१२ हे अश्विना ! रसां याभिः क्षोदसा उद्नः पिपिन्वथः, याभिः अनश्वं रथं जिषे आवतं, त्रिशोकः याभिः उस्रियाः उदाजत, ताभिः ऊतिभिः सु आगतं उ ॥

१३ हे अश्विना ! परावति सूर्यं याभिः परियाथः, क्षैत्रपत्येषु मन्धातारं आवतं, याभिः विप्रं भरद्वाजं प्र आवतं, ताभिः ऊतिभिः सु आगतं उ ॥

१४ हे अश्विना ! शम्बरहत्ये याभिः अतिथिग्वं, कशोजुवं, महां दिवोदासं आवतं, याभिः त्रसदस्युं पूर्भिद्ये आवतं, ताभिः ऊतिभिः सु आगतं उ ॥

१५ हे अश्विना ! याभिः विपिपानं उपस्तुतं वभ्रं, याभिः वित्तजानिं कलिं दुवस्यथः, उत याभिः व्यश्वं पृथिं आवतं, ताभिः ऊतिभिः सु आगतं उ ॥

१६ नरा अश्विना ! याभिः शयवे, याभिः अत्रये, याभिः मनवे पुरा गातुं ईषथुः, स्यूमरश्मये याभिः शारीः आजतं, ताभिः ऊतिभिः आगतं उ ॥

१७ हे अश्विना ! इद्धः चित् अग्निः न, पठर्वा याभिः अज्मन् जठरस्य मज्मना आ अदीदेत्, महाधने याभिः शर्यातं अवथः, ताभिः ऊतिभिः सु आगतं उ ॥

१२ हे अश्विदेवो ! तुमने जिनसे नदीको जलसे किनारोंको तोडनेवाली बना दिया, जिनसे घोडेरहित रथको विजय पानेयोग्य सुरक्षित बना दिया, त्रिशोक जिनसे गौवें पासका, उन शक्तियोंसे तुम यहां पधारो ॥

१३ हे अश्विदेवो ! दूर गये सूर्यके चारों ओर जिनसे तुम जाते हैं, क्षेत्रोंका संरक्षण करनेके कार्यमें मन्धाताको तुमने सुरक्षित रखा, जिनसे ज्ञानी भरद्वाजको तुमने रक्षा की, उन शक्तियोंसे तुम यहां पधारो ॥

१४ हे अश्विदेवो ! शंबरका वध करनेके युद्धमें जिनसे अतिथिग्व कशोजुव, और और दिवोदासकी तुमने रक्षा की, जिनसे त्रसदस्युकी पुरुंदर नगर तोडनेके युद्धमें सहायता की, उन शक्तियोंके साथ तुम यहां पधारो ॥

१५ हे अश्विदेवो ! जिनसे सोम पीनेवाले वभ्रुको, जिनसे विरहित कलिको तुमने सुरक्षित रखा और जिनसे घोडेसे विहीन पृथिको रक्षा की, उन शक्तियोंके साथ तुम यहां पधारो ॥

१६ हे नेता अश्विदेवो ! जिनसे शयुको, जिनसे अत्रिको, जिनसे मनुको, पूर्व समयमें तुमने मार्ग बताया, जिनसे स्यूमरश्मिको शारीर आजको दान दिये थे, उन शक्तियोंके साथ तुम यहां आओ ॥

१७ हे अश्विदेवो ! जैसे अग्नि काष्ठमें, वैसा पठर्वा जिनसे अपने उदरमें अन्नको पचाने के लिये अग्नि प्रदीप्त करता है और अपने शरीरमें अग्नि प्रदीप्त करता है, महान् युद्धमें जिनसे शर्यातकी रक्षा की, उन शक्तियोंके साथ तुम यहां पधारो ॥

याभिरङ्गिरो मनसा निरण्यथोऽयं गच्छथो विवरे गोअर्णसः ।
याभिर्मनुं शूरमिषा समावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् १८
याभिः पत्नीर्विमदाय न्यूहथुरा च वा याभिररुणीरशिक्षतम् ।
याभिः सुदास ऊहथुः सुदेव्यं१ ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् १९
याभिः शंतातौ भवथो ददाशुषे भुज्युं याभिरवथो याभिरध्रिगुम् ।
ओम्यावतीं सुभरामृतस्तुभं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् २०
याभिः कृशानुमसने दुवस्यथो जवे याभिर्यूनो अर्वन्तमावतम् ।
मधु प्रियं भरथो यत् सरड्भ्यस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् २१
यामिर्नरं गोषुयुधं नृषाह्ये क्षेत्रस्य साता तनयस्य जिन्वथः ।
याभी रथाँ अवथो याभिरर्वतस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् २२

---

१८ हे अश्विना ! याभिः मनसा अंगिरः निरण्ययः गो-अर्णसः विवरे अग्रं गच्छथः, शूरं मनुं याभिः इषा सं आवतं, ताभिः ऊतिभिः सु आगतं उ ॥

१९ हे अश्विना ! याभिः विमदाय पत्नीः नि ऊहथुः, याभिः वा अरुणीः घ आ अशिक्षतं, याभिः सुदासे सुदेव्यं ऊहथुः, ताभिः ऊतिभिः सु आगतं उ ॥

२० हे अश्विना ! ददाशुषे याभिः शन्तातौ भवथः, याभिः भुज्युं, याभिः अध्रिगुं अवथः, सुभरां ओम्यावतीं ऋतस्तुभं, ताभिः ऊतिभिः सु आगतं उ ॥

२१ हे अश्विना! असने कृशानुं याभिः दुवस्यथः याभिः यूनः अर्वन्तं जवे आवतं, यत् सरड्भ्यः प्रियं मधु भरथः, ताभिः ऊतिभिः सु आगतं उ ॥

२२ हे अश्विना ! याभिः गोषु-युधं नरं नृषाह्ये, क्षेत्रस्य तनयस्य साता जिन्वथः, याभिः रथान्, याभिः अर्वतः अवथः, ताभिः ऊतिभिः सु आगतं उ ॥

१८ हे अश्विदेवो! तुम दोनों मनसे किये अंगिराके स्तोत्रोंसे सन्तुष्ट हुए, और जिनसे तुम वंद रखे गौओंके जुगड़को पानेके लिये शत्रुकी गुंफामें जानेके लिये आगे बढने लगे, और मनुको जिन शक्तियोंसे अन्न प्राप्त कराके सुरक्षित रख चुके, उन शक्तियोंके साथ तुम यहां पधारो ॥

१९ हे अश्विदेवो ! विमदके लिये उसके घर जिन शक्तियोंसे तुम उसकी धर्मपत्नीको पहुंचा दिया, जिनसे तुमने अरुण रंग-वाली घोडियोंको सिखाया, जिनसे सुदासके घर दिव्य अन्न तुमने पहुंचाया, उन रक्षाशक्तियोंके साथ तुम दोनों यहां पधारो ॥

२० हे अश्विदेवो ! दाता पुरुषको जिनसे तुम सुख देते हो, जिनसे भुज्युको, जिनसे अध्रिगुकी रक्षा करते हो, जिनसे पुष्टि-कारक और सुखदायक अन्नसामग्री ऋतस्तुभको तुमने दी, उन शक्तियोंके साथ तुम यहां आओ ॥

२१ हे अश्विदेवो ! युद्धमें कृशानुकी जिनसे सहायता की, जिनसे तरुण घोडोंको अति वेगवान् बनकर सुरक्षित किया, जिनसे प्रिय मधु मधुमक्षिकाओंके लिये तुमने भर दिया, उन शक्तियोंके साथ तुम यहां पधारो ॥

२२ हे अश्विदेवो ! जिनसे गौओंके लिये लडनेवाले नेताको युद्धमें तथा क्षेत्रकी उपजका बंटवारा करनेके समय वीरोंको सुरक्षित रखते हो, जिनसे रथों और जिनसे घोडोंको सुरक्षित रखते हो, उन शक्तियोंके साथ तुम यहां पधारो ॥

याभिः कुत्समार्जुनेयं शतक्रतू प्र तुर्वीतिं प्र च दभीतिमावतम्।
याभिर्ध्वसन्तिं पुरुषन्तिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् २३
अप्नस्वतीमश्विना वाचमस्मे कृतं नो दस्रा वृषणा मनीषाम्।
अद्यूत्येऽवसे नि ह्वये वां वृधे च नो भवतं वाजसातौ २४
द्युभिरक्तुभिः परि पातमस्मानरिष्टेभिरश्विना सौभगेभिः।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः २५

२३ हे शतक्रतू अश्विना ! याभिः आर्जुनेयं कुत्सं, तुर्वीतिं दभीतिं च प्र आवतं, याभिः ध्वसन्तिं पुरुषन्तिं च आवतं, ताभिः ऊतिभिः सु आगतं उ ॥

२४ हे दस्रा वृषणा अश्विना ! नः मनीषां अस्मे अप्नस्वतीं वाचं कृतं, वां अद्यूत्ये अवसे निह्वये, वाजसातौ च नः वृधे भवतम् ॥

२५ हे अश्विना ! द्युभिः अक्तुभिः अरिष्टेभिः अस्मान् परि पातं, नः तत् मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ममहन्ताम् ॥

२३ हे सैकड़ों कार्य करनेवाले अश्विदेवो ! जिनसे तुमने अर्जुनीके पुत्र कुत्सकी तथा तुर्वीति दभीतिकी रक्षा की, जिनसे ध्वंसन्ति और पुरुषन्तिकी रक्षा की, उन शक्तियोंके साथ तुम यहा आओ ॥

२४ हे शत्रुनाशक बलवान् अश्विदेवो ! हमारी इच्छाको पूर्ण करो, हमारी वाणीको प्रयत्न युक्त करो, तुम दोनोंको मैं अन्धकारके मार्गमें सुरक्षाके लिये बुलाता हूं। अन्नके दान करनेके समय हमारी वृद्धि करनेवाले बनो ॥

२५ हे अश्विदेवो ! दिन और रात, क्षीण न हुए ऐश्वर्योंसे हमें सुरक्षित रखो। इस हमारी इच्छाकी सहायता मित्र आदि देव करें ॥

अश्विदेवोंके कार्य

इस सूक्तमें २५ मंत्र हैं और इनमें अश्विदेवोंके शुभकार्योंका वर्णन है। "जिन रक्षाकी शक्तियोंसे अश्विदेवोंने रेभ कक्ष कुत्सादिकोंकी रक्षा की थी, उन संरक्षक साधनोंके साथ ये अश्विदेव हमारे पास आजांय और हमारी सुरक्षा करें।" इतनीही इस प्रार्थना इस संपूर्ण सूक्तमें है।

१ अस्यं धेनुं पिन्वथ (मं. १)— प्रसूत न होनेवाली गौको पुष्ट किया, फिर वह गर्भधारणक्षम हुई, पश्चात् अच्छी तरह दुधारू बन गयी। ऋभुओंके सूक्तमें भी इस ढंगके दुधारू बननेका वर्णन है। अश्विदेव और ऋभुदेव इन देवोंको इसमें समानता है।

२ इसके बाद रेभ, वंदन, कक्ष (मं. ५), अन्तक, भुज्यु, कक्षीवन्, कक्ष (मं. ६), शुचन्ति, अत्रि, पृश्निगु, पुरुमीळ्ह, (मं. ७), परावृज, श्रोण, वर्तिका (चिड़िया) (मं. ८), रेभ, कुत्स, श्रुतर्य, नर्य (मं. ९), विश्वला, अक्ष्य वंश, (मं. १०), औशिज् दीर्घश्रवा वसिष्ठ कक्षीवान् (मं. ११), त्रिशोक (मं. १२), मन्धाता, भरद्वाज (मं. १३), अतिथिग्व, कशोजुव, दिवोदास, त्रसदस्यु (मं. १४), उपस्तुत, वस्र, व्यश्व पृथि (मं. १५) शयु, अत्रि, मनु, स्यूमरश्मी (मं. १६), पठर्वा, शर्यात (मं. १७), अंगिरा, मनु, (मं. १८), विमद, सुदास (मं. १९), भुज्यु, अग्निगु, ऋतस्तुभ (मं. २०), कुत्सानु (मं. २१): आर्जुनेय कुत्स, तुर्वीति, दभीति, ध्वसन्ति, पुरुषन्ति (मं. २२), इनकी सहायता अश्विदेवोंने की ऐसा यहां इस सूक्तमें कहा है। यहा अत्रि, भुज्यु ये नाम दो बार आये हैं। वे नाम दो बार क्यों आये हैं इसका पता नहीं लगता। इन नामोंमें कई ऋषि हैं, कई क्षत्रिय हैं, कई वणिक् वैश्य भी हैं, वर्तिका (चिड़िया) भी इसमें है। इनमें एकाध नाम हो तो हटना चाहिये।

भुज्यु जबसे डूब रहा था, तबसे बचाया। रेभ और

वंदन जलप्रवाहमें या कूवेमें मर रहा था, इनको बचाया। **अत्रि**को स्वराज्यकी हलचल करनेके कारण कारागृहमें अपुरोंने डाला था, वहां उसकी सहायता की। **चिडिया**को भेडिया खाना चाहता था, वह भेडियाके मुखमें पहुंची थी, उस समय उसका बचाव किया। **विश्पला**की टांग युद्धमें कट गयी थी, उसको लोहेकी टांग लगाकर युद्ध करनेयोग्य बनाया। इस तरह अश्विदेवोंकी सहायताके वर्णन हैं। ऐसे सामर्थ्यवान् अश्विदेव हमारे सहायक हों, हमें धन दें, अन्न दें, वीरता हममें बढ़ावें और इन गुणोंसे संपन्न होकर हम सुखी बनें, यह इस सूक्त तात्पर्य है।

---

[७] उषा-प्रकरण

(१७) उषाका काव्य

(ऋ. १।११३) कुत्स आङ्गिरसः। १ (उत्तरार्धस्य) रात्रिश्च; २-२० उषाः। त्रिष्टुप्।

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिराऽगाच्चित्रः प्रकेतो अजनिष्ट विभ्वा।
यथा प्रसूता सवितुः सवायँ एवा रात्र्युषसे योनिमारैक् १
रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्यागादारैगु कृष्णा सदनान्यस्याः।
समानबन्धू अमृते अनूची द्यावा वर्णं चरत आमिनाने २
समानो अध्वा स्वस्रोरनन्तस्तमन्यान्या चरतो देवशिष्टे।
न मेथेते न तस्थतुः सुमेके नक्तोषासा समनसा विरूपे ३

अन्वयः- १ ज्योतिषां इदं ज्योतिः श्रेष्ठं आ अगात्। चित्रः विभ्वा प्रकेतः अजनिष्ट। यथा रात्री प्रसूता, उषसे, सवितुः सवाय, (च) योनिं अरैक्।

२ रुशती श्वेत्या रुशद्वत्सा आ अगात्। अस्याः कृष्णा सदनानि अरैक् उ। समानबन्धू अमृते अनूची वर्णं आमिनाने द्यावा चरतः॥

३ स्वस्रोः अध्वा समानः अनन्तः। तं देवशिष्टे अन्या-अन्या चरतः। सुमेके विरूपे नक्तोषासा समनसा न मेथेते, न तस्थतुः॥

अर्थ- १ तेजोंमें यह श्रेष्ठ तेज अब प्रकट हुआ है देखो! यह आश्चर्यकारक सर्वत्र फैलनेवाला प्रकाश अवतरित हुआ है। जैसी रात्रिसे (उषा) उत्पन्न हुई, (वैसीही उषाको, सूर्यकी उत्पत्ति करनेके लिये भी अब स्थान होगया है।

२ यह तेजस्विनी गौरी (उषा अपने) तेजस्वी बछडा (सूर्य) को धारण करके आगयी है। इसके लिये काले रंगकी (रात्रि) सब स्थान खुले कर रही है। ये बहिनें अमर हैं और परस्पर साथ रहनेवाली, जगत्का रंग बदलती हुई आकाशमार्गसे संचार करती हैं॥

३ इन दोनों बहिनोंका मार्ग एकही है और उसका अन्त नहीं है। उसपरसे ईश्वरकी आज्ञानुसार एकके पीछे एक ऐसी ये संचार करती हैं। सुन्दर अवयववाली परंतु विरुद्ध रूपवाली ये रात्रि और उषा एक मनसे रहती हुई परस्परका घात नहीं करती और नाही बीचमें कभी ये ठहरती हैं।

उषो यदग्निं समिधे चकर्थ वि यदावश्चक्षसा सूर्यस्य ।
यन्मानुषान् यक्ष्यमाणाँ अजीगस्तद् देवेषु चकृषे भद्रमद्यः ९
कियात्या यत् समया भवाति या व्यूषुर्याश्च नूनं व्युच्छान् ।
अनु पूर्वाः कृपते वावशाना प्रदीध्याना जोषमन्याभिरेति १०
ईयुष्टे ये पूर्वतरामपश्यन् व्युच्छन्तीमुषसं मर्त्यासः ।
अस्माभिरू नु प्रतिचक्ष्याभूदो ते यन्ति ये अपरीषु पश्यान् ११
यावयद् द्वेषा ऋतपा ऋतेजाः सुम्नावरी सूनृता ईरयन्ती ।
सुमङ्गलीर्बिभ्रती देववीतिमिहाद्योषः श्रेष्ठतमा व्युच्छ १२
शश्वत् पुरोषा व्युवास देव्यथो अद्येदं व्यावो मघोनी ।
अथो व्युच्छादुत्तराँ अनु द्यूनजरामृता चरति स्वधाभिः १३

९ हे उषः ! त्वं अग्निं समिधे यत् चकर्थ । सूर्यस्य चक्षसा यत् वि आवः । मानुषान् यक्ष्यमाणान् यत् अजीगः, देवेषु भद्रं तत् अद्यः चकृषे ॥

१० याः व्यूषुः, नूनं याः च व्युच्छान् यत् समया कियति भवाति ? पूर्वाः वावशाना अनु कृपते । प्रदीध्याना अन्याभिः जोषं एति ॥

११ ये मर्त्यासः व्युच्छन्तीं पूर्वतरां उषसं अपश्यन्, ते ईयुः । अस्माभिः नु प्रतिचक्ष्या अभूत् उ । अपरीषु ये पश्यान् ते आ उ यन्ति ॥

१२ हे उषः ! यावयद् द्वेषाः ऋतपाः ऋतेजाः सुम्नावरी सूनृता ईरयन्ती सुमङ्गलीः देववीतिं बिभ्रती, श्रेष्ठतमा इह अद्य व्युच्छ ॥

१३ उषाः देवी पुरा शश्वत् व्युवास । अथो अद्य मघोनी इदं व्यावः । अथो उत्तरान् द्यून् अनु व्युच्छात् । अजरा अमृता स्वधाभिः चरति ॥

९ हे उषा ! तूने अग्निको प्रदीप्त किया है । सूर्यकी आंखोंसे (तूने) प्रकाश किया है । मानवोंको यज्ञकर्मके लिये जगा दिया है, यह देवोंमें अत्यंतही कल्याण करनेवाला कर्म (तूने) किया है ।

१० जो उषाएं चलीं गयीं, और जो सचमुच आनेवाली हैं, उनमें हमारे साथ (रहनेवाली यह आजकी उषा) कितनी (थोडीसी) है ? पूर्व उषाओंका स्मरण करानेवाली (यह आजकी उषा हमारे लिये) अनुकूल होकर हमें आनंद दे रही है । और प्रकाशती हुई अन्य (गत उषाओंके साथही अपना) प्रेमसंबंध जोडती हुई जाती है ॥

११ जिन मानवोंने प्रकाशनेवाली प्राचीन उषाओंको देखा था, वे चल बसे । हमने तो यह उषा देखी है (हम भी देखकर ही चले जायँगे ।) आनेवाली उषाओंको जो देखेंगे, वे भी ऐसेही जायँगे ॥

१२ हे उषा ! तू शत्रुका नाश करनेवाली, सत्यका करनेवाली, सरल व्यवहारके लियेही उत्पन्न हुई, वैभव सत्यभाषणी, सत्कर्मकी प्रेरणा करनेवाली, मंगलकारिणी, लिये हविर्भाग लेनेवाली अत्यंत श्रेष्ठ है, (ऐसी तू) यहां प्रकाश कर ॥

१३ यह उषादेवी पहिले शाश्वत कालसे प्रकाशती है आज भी उस वैभवशालिनी (उषा) ने प्रकाश किया और वैसाही भविष्यके दिनोंमें भी यह प्रकाश देगी। यह रहित और मरणरहित (उषादेवी) अपनी शक्तियोंके साथ करती है ॥

व्य१श्निभिर्दिव आतास्वद्यौदप कृष्णां निर्णिजं देव्यावः ।
प्रबोधयन्त्यरुणेभिरश्वैरोषा याति सुयुजा रथेन १४

आवहन्ती पोष्या वार्याणि चित्रं केतुं कृणुते चेकिताना ।
ईयुषीणामुपमा शश्वतीनां विभातीनां प्रथमोषा व्यश्वैत् १५

उदीर्ध्वं जीवो असुर्न आऽगादप प्रागात् तम आ ज्योतिरेति ।
आऽरैक् पन्थां यातवे सूर्यायागन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः १६

स्यूमना वाच उदियर्ति वह्निः स्तवानो रेभ उषसो विभातीः ।
अद्या तदुच्छ गृणते मघोन्यस्मे आयुर्नि दिदीहि प्रजावत् १७

या गोमतीरुषसः सर्ववीरा व्युच्छन्ति दाशुषे मर्त्याय ।
वायोरिव सूनृतानामुदर्के ता अश्वदा अश्नवत् सोमसुत्वा १८

दिवः आतासु अञ्जिभिः वि अद्यौत् । देवी कृष्णां अव आवः । अरुणेभिः अश्वैः सुयुजा रथेन उषाः याति आ याति ॥

पोष्या, वार्याणि आवहन्ती, चेकिताना उषाः चित्रं कृणुते । ईयुषीणां शश्वतीनां उपमा, विभातीनां प्रथमा, व्यश्वैत् ॥

१ उत् ईर्ध्वं, नः असुः जीवः आ अगात् । तमः अप अगात् । ज्योतिः आ एति । सूर्याय यातवे पन्थां अरैक् । (तस्मिन्) अगन्म, यत्र आयुः प्रतिरन्ते ॥

१७ वह्निः रेभः विभातीः उषसः स्तवानः वाचः स्यूमना उदियर्ति । हे मघोनि ! अद्य गृणते तत् उच्छ । अस्मे आयुः प्रजावत् नि दिदीहि ॥

१८ दाशुषे मर्त्याय गोमतीः सर्ववीराः याः उषसः वि उच्छन्ति । वायोः इव सूनृतानां उदर्के, अश्वदाः ताः सोमसुत्वा अश्नवत् ॥

१४ आकाशकी सब दिशाओंमें आभूषणोंसे शोभित होकर (यह उषा) प्रकाश रही है । इस देवीने (विश्वके ऊपरका) काला वस्त्र दूर किया है । और आरक्त रंगके घोड़ोंसे जुते रथ पर बैठकर यह उषा (जगत्को) जगाती हुई आ रही है ॥

१५ पोषण करनेवाली, स्वीकारके योग्य धनोंको लाती हुई, ज्ञानसंपन्न उषा चित्रविचित्र तेज प्रकट करती है । अनेक शाश्वत (उषाओंमें) अन्तिम, प्रकाशित होनेवाली (यह उषा यहां) प्रकाशित हो रही है ॥

१६ उठो, हमारा चैतन्य देवताओं [illegible] । अन्धकार दूर हुआ है । प्रकाश आ रहा है । सूर्यके [illegible] मार्ग खुला हुआ है । [illegible] हम पहुंचे हैं, कि जहां [illegible] दीर्घ होता है ॥

१७ [illegible] हुआ अन्न [illegible] । हे [illegible] ! [illegible] हो । हमें [illegible] ॥

१८ [illegible] ॥

माता देवानामदितेरनीकं यज्ञस्य केतुर्बृहती वि भाहि ।
प्रशस्तिकृद् ब्रह्मणे नो व्युच्छा नो जने जनय विश्ववारे १९
यच्चित्रमप्न उपसो वहन्तीजानाय शशमानाय भद्रम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः २०

१९ देवानां माता, अदितेः अनीकं, यज्ञस्य केतुः बृहती वि भाहि । नः ब्रह्मणे प्रशस्तिकृत् व्युच्छ । हे विश्ववारे ! नः जने आ जनय ॥

२० यत् चित्रं अप्नः उपसः ईजानाय शशमानाय भद्रं वहन्ति । नः तत् मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ममहन्ताम् ॥

१९ देवोंकी माता, अदितिका बल, यज्ञका ध्वज, जैसी विशाल होकर तू प्रकाशित हो । हमारे स्तोत्रकी प्रशंसा करती हुई प्रकाशित हो । हे सबके प्यारी (उषा) ! हमारे लोगोंमें नवजीवन उत्पन्न कर ॥

२० जो विलक्षण ऐश्वर्य उषाएं याजक और स्तोताके कल्याण करनेके लिये लाती हैं, हमारे उस ऐश्वर्यके लिये मित्र आदिदेव अनुमोदन दें ॥

यह उषाका काव्य बडाही मनोरंजक और उत्साह बढानेवाला है । पाठक इसका पाठ वारंवार और काव्यरसका स्वाद लेते हुए करें । मनमें उत्साहका स्फुरण देनेवाला यह काव्य है, इसका बोध वारंवार पाठ करनेवालोंके मनमें स्वयं स्फुरित हो सकता है । इसलिये इसका विवरण करनेकी आवश्यकता नहीं है ।

[८] रुद्र-सूक्त

(१८) शत्रुको रुलानेवाला महावीर

(ऋ. १।११४) कुत्स आङ्गिरसः । रुद्रः । जगती; १०-११ त्रिष्टुप् ।

इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्र भरामहे मतीः ।
यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम् १
मृळा नो रुद्रोत नो मयस्कृधि क्षयद्वीराय नमसा विधेम ते ।
यच्छं च योश्च मनुरायेजे पिता तदश्याम तव रुद्र प्रणीतिषु २

अन्वयः— १ यथा अस्मिन् ग्रामे विश्वं पुष्टं अनातुरं असत्, तथा द्विपदे चतुष्पदे शं, तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय रुद्राय इमाः मतीः प्रभरामहे ॥

२ हे रुद्र ! नः मृळ, उत नः मयः कृधि । क्षयद्वीराय ते नमसा विधेम । हे रुद्र ! मनुः पिता यत् शं च योः च आयेजे । तव प्रणीतिषु तत् अश्याम ॥

अर्थ— १ जिस प्रकार इस गांवमें सब प्राणिमात्र हृष्टपुष्ट और नीरोग रहें, तथा द्विपाद और चतुष्पादके लिये शांति प्राप्त हो, उस प्रकार बलवान् जटाधारी, वीरोंके आश्रय देनेवाले रुद्रके लिये ये मंत्र हम गाते हैं ॥

२ हे रुद्र ! हम सबको सुखी कर, और हम सबको नीरोग कर । वीरोंको आश्रय देनेवाले तेरा हम सब नमस्कारसे सत्कार करते हैं। मनुष्योंका पालक यह वीर शांति और रोगनिवारक शक्ति देता है। हे रुद्र ! तेरी विशेष नीतिसे उसको हम सब प्राप्त होंगे ।

अश्याम ते सुमतिं देवयज्यया क्षयद्वीरस्य तव रुद्र मीढ्वः ।
सुम्नायन्निद् विशो अस्माकमा चरारिष्टवीरा जुहवाम ते हविः ३
त्वेषं वयं रुद्रं यज्ञसाधं वङ्कुं कविमवसे नि ह्वयामहे ।
आरे अस्मद् दैव्यं हेळो अस्यतु सुमतिमिद् वयमस्या वृणीमहे ४
दिवो वराहमरुषं कपर्दिनं त्वेषं रूपं नमसा नि ह्वयामहे ।
हस्ते बिभ्रद् भेषजा वार्याणि शर्म वर्म च्छर्दिरस्मभ्यं यंसत् ५
इदं पित्रे मरुतामुच्यते वचः स्वादोः स्वादीयो रुद्राय वर्धनम् ।
रास्वा च नो अमृत मर्तभोजनं त्मने तोकाय तनयाय मृळ ६
मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम् ।
मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः ७
मा नस्तोके तनये मा न आयौ मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः ।
[illegible] मा नो वधीर्हविष्मन्तः सदमित् त्वा हवामहे ८

उप ते स्तोमान् पशुपा इवाकरं रास्वा पितर्मरुतां सुम्नमस्मे ।
भद्रा हि ते सुमतिर्मृळयत्तमाथा वयमव इत् ते वृणीमहे ९
आरे ते गोघ्नमुत पूरुषघ्नं क्षयद्वीर सुम्नमस्मे ते अस्तु ।
मृळा च नो अधि च ब्रूहि देवाधा च नः शर्म यच्छ द्विबर्हाः १०
अवोचाम नमो अस्मा अवस्यवः शृणोतु नो हवं रुद्रो मरुत्वान् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ११

९ हे मरुतां पितः ! पशुपा इव अस्मे सुम्नं रास्व । ते स्तोमान् उप अकरं । हि ते सुमतिः मृळयत्तमा । अथ वयं ते अवः इत् वृणीमहे ॥

१० हे क्षयद्वीर ! ते गोघ्नं उत पुरुषघ्नं आरे । अस्मे ते सुम्नं अस्तु । नः मृळ च । हे देव ! च अधि ब्रूहि । द्विबर्हाः शर्म यच्छ ॥

११ अवस्यवः अवोचाम । अस्मै नमः । मरुत्वान् रुद्रः नः हवं शृणोतु । नः तत् मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ममहन्ताम् ॥

९ हे मरनेके लिये सिद्ध हुए वीरोंके संरक्षक वीर! पालक गवालियेके समान हम सबके लिये उत्तम सुख दे तेरी प्रशंसा करते हैं । क्योंकि तेरी उत्तम सन्मति अ देनेवाली है । इसलिये हम सब तेरेसे संरक्षण प्राप्त

१० हे वीरोंके आश्रय देनेवाले! तेरा गायका घातक व्यका घातक शत्रु हमसे दूर रहे । हम सबके लिये तेरा प्राप्त हो। और हम सबको सुखी कर । हे देव! हमें औ कर तथा दो तुरोंवाला तू हम सबके लिये शांति प्रदान

११ रक्षाकी इच्छा करनेवाले हम सब कहते हैं कि के वीरके लिये हमारा नमस्कार है । मरनेतक लडनेवा साथ रहनेवाला यह महावीर हमारी प्रार्थना सुने वरुण, अदिति, सिंधु, पृथिवी और द्युलोक हम सब प्रकार हमारी उस इच्छाका अनुमोदन करें ॥

रुद्र सूक्तकी व्याख्या

१।११४ सूक्तमें 'रुद्र' शब्दके अनेक अर्थोंमें एक अर्थ 'वैद्य' है। क्योंकि इस सूक्तके मंत्र ५ में लिखा है कि "रुद्र हाथमें रोग-निवारक औषधियां धारण करता हुआ, मनुष्योंको आंतरिक शांति, बाह्य संरक्षण और प्राप्त रोगोंका वमनविरेचनादिद्वारा निवारण करता है।"

इस सूक्तकी 'रुद्र' मुख्य देवता है, परंतु अंतिम मंत्रमें मित्र, वरुण, अदिति, सिंधु, पृथिवी और द्यौ ये देवताओंके नाम आये हैं। इनका विचार अंतिम मंत्रके विचारके समय किया जायगा।

मंत्र १- नगरका आरोग्य- ग्राम, नगर, पत्तन, पुरी आदिमें रहनेवाले मनुष्योंको तथा इतर प्राणिमात्रोंको आरोग्यसंपन्न रखकर, हृष्टपुष्ट, सुदृढ और उत्साही रखना राज्यके आरोग्यविभागका कर्तव्य है। यह बात इस प्रथम मंत्रमें स्पष्टतासे कही है । जो इस प्रकार नागरिक अ व्यवस्था उत्तम प्रकारसे करता है, अथवा नागरिक ठीक करनेके प्रबंधोंका उपदेश नगरवासियोंको कर उसीकी प्रशंसा करना योग्य है, यह इस मंत्रका तात नगरवासियोंको उचित है कि वे इस प्रकारके प्रबंधकर्ताके रिक स्वास्थ्य-विभागकी व्यवस्थापर नियुक्त करें और संमतिके अनुसार नगरवासियोंके स्वास्थ्यकी रक्षा करें।

नागरिक स्वास्थ्यकी परीक्षा

नागरिक आरोग्यकी परीक्षा नगरवासियोंके आयुर्म होती है। सवा सौ वर्षतक आयुवाले मनुष्य जिस नगरमें रहते हैं, उस नगरका आरोग्य उत्तम है। सौ सौ वर्षके आयुवाले मनुष्य जिस नगरमें रहते हैं, उस नगरका आ मध्यम समझना उचित है, तथा इससे अल्प आयुमें जिस में मृत्यु होती है, उस नगरका आरोग्य निकृष्ट है,

ना उचित है।

इस प्रथम मंत्रमें कई शब्दोंका विशेष मनन करना आवश्यक । देखिये निम्न शब्द—

(१) **तवस्**— वृद्ध, बलवान्, शक्तिशाली; बडा, महान्। वैद्य वृद्ध और धैर्यवान् होना चाहिए। वृद्ध होनेका तात्पर्य अनुभव प्राप्त होनेमें है। जिसको अधिक अनुभव होता है, वही अच्छा वैद्य होता है। वही नागरिक-स्वास्थ्य-विभागमें कार्य करनेके लिये योग्य है।

(२) **क-पर्दिन्**— (कुत्सितं पर्दयति गमयति) 'पर्द्' धातुका अर्थ 'पेटकी हवामें गति उत्पन्न करके उस बुरी हवाको अपानरूपमें परिणत करके नीचे फेंकना' है। 'क' शब्दका अर्थ 'बुराई' है। पेटमें जो बुरी हवा होती है, उसको अपानवायुके रूपमें बाहिर निकालना 'क-पर्दिन्' का कार्य है। बुरा वायु भरनेसे पेट फूल जाता है, और रोगीको बडा कष्ट होता है। इसलिये औषधियोजनाद्वारा अपानवायुको ठीक प्रकार रखना अर्थ वैद्यका है। इस अर्थसे यह नाम वैद्यके लिये आता है।

'कपर्द' का दूसरा अर्थ शिखा है। जो शिखा धारण करता है उसको भी 'कपर्दिन्' कहते हैं। जटाधारी, शिखाधारी, बडी शिखावाला।

'पृ, पृद्' धातुका अर्थ 'गति देना, फेंकना' है। बुरी अवस्थामें रहे बीमारको भी जो औषधोंद्वारा हलचल करनेकी शक्ति देता है। अथवा शरीरके अंदर प्राप्त हुए विषम पदार्थोंको अथवा कुत्सित पदार्थोंको बाहिर फेंकता है। उसका भी नाम 'कपर्दी' होता है।

'पर्द्' धातुका लंघन करना अर्थ है। बुरी अवस्थामें पडे हुए मरीजे लंघनद्वारा जो ठीक करता है उसका 'कपर्द, कपर्दिन्' नाम होता है। इस शब्दके विविध अर्थ हैं इसलिये पाठकोंको विचार करना चाहिए कि यहां कौनसा विवक्षित है।

(३) **क्षयद्-वीर**— 'क्षय, क्षयत्,' आदिका अर्थ निवास करनेवाला, आश्रय देनेवाला है। 'वीर' शब्दका अर्थ रोगका निवारण करनेवाला प्रतिबंधक, अथवा निवारक है। जो रोगोंसे आश्रय देता है, वह क्षयद्वीर है।

'क्षयद्वीर' शब्दके अनेक अर्थ हैं। 'क्षयत्' शब्दका 'निवासक' ऐसा अर्थ होता है। 'क्षि' धातुका 'निवास करना, रखना, रहना' यह अर्थ है। 'वीरोंका निवासक' ऐसा अर्थ आश्रय होता है। मनुष्यों पर शासन करनेवाला, वीरोंका नायक, शूरोंका सेनापति आदि अर्थ इसके होते हैं।

श्री सायणाचार्यजी इसका अर्थ निम्न प्रकार करते हैं।

(१) **'निवसद्भिः.....वीरैः पुत्रादिभिरुपेतः।'** (ऋ. ८।१९।१०) वीर अथवा पुत्रोंके साथ रहनेवाला। (२) **'यस्मिन्त्सर्वे वीराः क्षीयन्ते।** (ऋ. १।१०६।४)जिसमें सब वीर होते हैं। (३) **' क्षयन्तो विनश्यन्तो वीरा यस्मिन्.....। यद्वा क्षयतिरैश्वर्यकर्मा। क्षयन्तः प्राप्तैश्वर्या वीराः...पुत्राः.....यस्य।'** (ऋ. १।११४।१) जिसमें वीर नष्ट होते हैं। अथवा 'क्षि' धातुका अर्थ ऐश्वर्यवान् होना है। जिसके वीर पुत्र ऐश्वर्यवान् हुए हैं।

श्री महीधराचार्य **'क्षयन्तो निवसन्तो वीरा यत्र।'** (वा.य. १६।४८) जिसके साथ शूर रहते हैं। किंवा **'क्षयन्तो नश्यन्तो वीरा रिपवो यस्मात्।'**(वा.य.१६।४८)जिसके कारण शत्रु नाशको प्राप्त होते हैं, ऐसा अर्थ करते हैं।

'शत्रुका नाश करनेवाला' यह अर्थ वैद्यके विषयमें भी ठीक लग सकता है। रोगरूपी शत्रुओंका नाश करनेवाला वैद्य होता है। शत्रुका निवारण करनेवालेको भी वीर करते हैं।

श्री० स्वा० दयानंद सरस्वतीजी निम्नप्रकार अर्थ करते हैं। **'क्षयन्तो दोषनाशका वीरा यस्य।'** (ऋ. १।११४।१) जिसके दोषोंके नाश करनेवाले वीर पुरुष विद्यमान हैं।

पाठकोंको उचित है, कि वे इन सब अर्थोंका मनन करके संपूर्ण मंत्रका आशय समझ लें।

मंत्र २- स्वास्थ्य और व्याधि-निवारण— इस मंत्रमें **'शं'** और **'योः'** ये दो शब्द मुख्य हैं। **'शं'** शब्द स्वास्थ्य, नीरोगता, मानसिक शांति आदि भाव बताता है और **'योः'** शब्द बाहिरसे आनेवाले आपत्तियोंको रोकना बताता है।

शं-रोगाणां शमनं, **योः**-भयानां यावनं। } इति सायणाचार्यः (ऋ. १।११४।२)

पहिला शब्द नीरोगताकी अवस्था बताता है और दूसरा शब्द आनेवाले आपत्तिका प्रतिबंध बताता है। मनुष्यको अपने स्वास्थ्यकी रक्षा करना उचित है तथा भविष्यकालमें रोगोंका उद्भव न होनेकी व्यवस्था करना भी उचित है। शांति और रोगप्रतिरोधक शक्ति हरएक मनुष्यको प्राप्त करना उचित है।

पिता मनुः— शब्द विशेष महत्त्वपूर्ण है। 'मनु' शब्द मननशील मनुष्यका वाचक है। शासन करनेवालेका

नाम पिता है । अपनी रक्षा करनेवाला तथा विचारपूर्वक अपना व्यवहार करनेवाला मनुष्य अपना स्वास्थ्य ठीक रख सकता है । यह भाव इन शब्दोंद्वारा इस मंत्रमें सूचित किया है । मनुका मनुष्यमात्र ऐसा अर्थ कोशोंमें है । विचारशक्ति भी इसका एक अर्थ है ।

नीति– मार्ग बताना। **प्रणीति** (प्र-नीति) विशेष प्रकार-से व्यवहार करना । आचार व्यवहार विशेष रीतिसे विधिनियमपूर्वक करनेका तात्पर्य इस शब्दसे बोधित होता है । स्वास्थ्य-रक्षाके विशेष तत्त्वोंका शास्त्र इस शब्दसे सूचित होता है । वैद्यको उचित है कि वह सबको स्वास्थ्य-नीतिका उपदेश करे और लोगोंको उचित है कि वे स्वास्थ्य-नीतिके अनुसार अपना आचारव्यवहार करते रहें ।

मंत्र ३– सब प्रजाका आरोग्य– उदार वैद्यकी संमति-के अनुसार सब लोक आचरण करें । यह सूचना इस मंत्रके, पूर्वार्धमें है । उदार वैद्यही योग्य सूचना कर सकता है । स्वार्थी वैद्य अपने स्वार्थके कारण लोगोंको ठीक उपदेश नहीं देगा । इसलिये उदार परोपकारी वैद्यका उपदेशही सबको सुनना उचित है ।

देव-यज्या— इस मंत्रमें यह शब्द विशेष अर्थसे प्रयुक्त किया है । **'देव'** शब्दका 'इंद्रिय' अर्थ है । 'यज्' का अर्थ 'सत्कार-संगति-दान' है । इंद्रियोंका सत्कार करना अर्थात् इंद्रियोंकी प्रसन्नता रखना । विद्वानोंका सत्कार, तथा पृथिवी जल, वायु आदिकी प्रसन्नता रखना भी इसका अर्थ है । वास्तविक मनुष्योंका कल्याण इंद्रियों, विद्वानों तथा जलवायु आदिकोंकी प्रसन्नतापर निर्भर है । यही देवयजन है ।

अरिष्टवीर— 'अरिष्ट-वीर' का अर्थ दुःखोंका निवारण करना है । तथा 'अ-रिष्ट-वीर' का अर्थ जिसके शूरवीरोंका नाश नहीं हुआ है । दोनों अर्थोंके साथ इस मंत्रका विचार करना चाहिए ।

हविः— हविका मुख्य यौगिक धात्वर्थ 'दान' है क्योंकि दान अर्थके 'हु' धातुसे यह शब्द बनता है । (हु-दान-आदानयोः) इसलिये 'दान' ऐसा इसका मुख्य अर्थ है, और यज्ञ, जल, घी, हवनसामग्री आदि अर्थ लाक्षणिक हैं । वैद्यकी सहायताके लिए उसको उचित दान देना सबको योग्य है, यह आशय मंत्रके अंतिम भागका है ।

मंत्र ४– क्रोधादि विकारोंको दूर रखो— आरोग्यके लिये क्रोध, द्वेष आदि विकारोंको दूर रखना उचित आदि दुष्ट मनोविकार आरोग्यका सर्वथा घात करते कारण शीघ्रही, तारुण्यमेंही वृद्ध अवस्था प्राप्त होती इन सब मनोविकारोंको दूर करना उचित है । यही

आरे अस्मद्द्वेष्यं हेळो अस्यतु ।

'दूर हमारेसे इंद्रियोंका क्रोध फेंका जावे ।' ऐस भागमें कहा है । हेळ, हेड, द्वेषका भाव यहां है ।

हेड— शब्दका अर्थ अनादर, अपमान; भूल, लता; भूल जाना, अधुरा छोडना । ये सब भाव बुरे इन सब भावोंको दूर करना चाहिए, तभी स्वास्थ्य सकता है । मनकी शुद्ध अवस्थापर स्वास्थ्य निर्भर लिये बुरे भावोंको दूर करके मनको शुद्ध करना आव

द्वेष आदि बुरे भावोंको दूर करना और 'सु मनमें स्थापन करना, यही आरोग्यका मुख्य साधन है मंत्रके उत्तर अर्धने बताया है ।

मंत्रके प्रथम अर्धमें वैद्यके कई गुण वर्णन किये हैं। सत्कर्मका साधन करनेवाला, फुर्तीला ज्ञानी वैद्य निस्तेज, मरियल, दुराचारी, आलसी, अनपढ जो हो पास कोई भी न जायँ, क्योंकि उससे सच्चा आरोग्य हो सकता ।

मंत्र ५– औषधियोंकी योजना— इस मंत्र युरोपीयन पंडित बडा विलक्षण करते हैं । **'दिवो** दो पद अलग मानकर उन्हींका अर्थ आकाशका जंगली ऐसा करते हैं। (देखिए म. ग्रिफिथ साहबका अंग्रेजी ऋ. १।११४।५) डा. मूर साहब आकाशका लाल सूवर अर्थ करते हैं । परंतु यहां **'वराह'** का अर्थ सूवर नहीं

श्री सायणाचार्य **'वराह'** का अर्थ (१) **'वराहं हारं उत्कृष्ट-भोजनं'** उत्तम भोजन करनेवाला, ऐसा हैं । और (२) **'वराहवद् दृढांगं'** सूवरके समान बलवान् शरीर है, ऐसा भी करते हैं ।

'वर+आहार' शब्दोंसे 'वराह' शब्द बनाया जाता है, लिये यही अर्थ इस स्थानपर उचित है । वैद्यप्रकरणमें पथ्य और उत्तम श्रेष्ठ भोजनका संबंध प्रकरणानुकूलही है

इस मंत्रके पूर्वार्धमें तेजस्वी और सुंदर वैद्यकोही बुला कहा है । वैद्य यदि कुरूप, मरियल, बीमार, अशक्त, हुआ तो उसके व्यक्तित्वका असर रोगीपर क्या हो सकता

सुंदर और प्रसन्न मूर्तिको देखकर रोगीके मनमें यह भाव
ता है कि, 'हां, यह वैद्य मुझे नीरोग बना सकता है।'
ये मंत्रमें जो कहा है कि सुंदर और तेजस्वी वैद्यकोही
ो, वह बिलकुल योग्य है। वैद्यके सुंदर मूर्तिका तथा
वहारका परिणाम रोगीके मनपर निश्चयसे अच्छा हो
ा है।

वैद्य अपने हाथमें रोगनिवारक औषधियां लेकर आता है।'
यात मंत्रमें आगे कही है। जिस समय वैद्य बीमारके पास
ता है उस समय उसके साथ थोडीसी उत्कृष्ट औषधियाँ
ास रहनी चाहिए। रोगीकी अवस्थाके अनुकूल यदि कोई
षधि वैद्यके प्रेममय हाथसे रोगीको प्राप्त होगी, तो उसका
रिणाम बहुतही अच्छा हो सकता है। रोग दूर करनेमें मनकी
वस्थाका विचार करना वैद्यका मुख्य कार्य है। यदि
गीके निश्चय हो जायगा, कि 'अब मैं अच्छा हो रहा हूं,' तो
उस मानसिक अवस्थासे ठीक होनेका मार्ग सुगम हो जाता है।

'शर्म' नाम उस अवस्थाका है कि, जो आरोग्यसे मानसिक
ांति प्राप्त होती है। 'वर्म' नाम उस शक्तिका है कि जो
हरसे आनेवाले बीमारीको रोकती है। वीरोंके कवचका नाम
र्म' होता है, इसलिये कि उससे शत्रुके शस्त्रोंका आघात शरीर-
र नहीं होता और शरीरका बचाव उससे होता है। शरीरकी
र्म' शक्ति भी वही है कि जो रोगोंके आक्रमणसे शरीरका
क्षण करती है। वमन विरेचन स्वेदन आदिको 'छर्दि' कहते
रीरमें प्रविष्ट हुए विषको बाहर निकालना 'छर्दि' का
है। (छर्दृ- वमने) वमन अर्थात् कय करना, (छृदृ-
ने) संदीपन और दीप्ति अर्थात् भूख प्रदीप्त करना तथा इन
ोंद्वारा शरीरके सब व्यवहार ठीक करना 'छर्दि' का
र्थ है। मनको शांत रखना, बाहरसे आनेवाले विषोंका प्रति-
ध करना तथा शरीरमें प्राप्त हुए विषोंको बाहर निकालना और
तीन प्रकारोंसे प्राणिमात्रका स्वास्थ्य ठीक रखना वैद्यक
ास्त्र है।

मंत्र ६ — मनुष्योंके लिये योग्य अन्न— 'मरुत, मर्य, मर्त' आदि शब्द एकही गोत्रके हैं और इनका अर्थ 'मर्त्य, मर्य, मर्त' आदि शब्द एकही गोत्रके हैं और इनका अर्थ 'मरणधर्मवाला मनुष्य' ऐसा है। 'मरुतां पिता' इन शब्दोंका अर्थ 'मनुष्योंका संरक्षक' इतनाही नहीं है। वैद्य मनुष्योंका रक्षण करता है, इस विषयमें किसीको शंका नहीं हो सकती। क्योंकि मनुष्योंका आरोग्य वैद्यके उपदेशपर बहुत अंशमें निर्भर है।

इस मंत्रके पूर्वार्धमें 'वैद्यको सबसे मीठा उपदेश' किया है और सूचित किया है, कि वैद्यकी भलाई अथवा उन्नति इसी बातसे होगी। वह मीठा उपदेश यही है कि 'रोगी मनुष्योंके लिये मनुष्योंके योग्य अन्न (मर्त-भोजनं) ही दिया जावे।' कई वैद्य रोगीको हिंस्र पशुके योग्य अन्न देते हैं। ऐसा करना योग्य नहीं है। मनुष्य फलभोजी, शाकाहारी तथा धान्यभोजी प्राणी है, इसलिये उसको पथ्य ऐसाही कहना चाहिए कि जो उसके लिये योग्य हो। और इस प्रकारके योग्य अन्नद्वारा बालबच्चोंको तथा बडे मनुष्योंको भी आरोग्य प्राप्त कराके सुखी करना चाहिए।

मंत्रके उत्तरार्धमें 'अ-मृत' शब्दसे वैद्यको संबोधित किया है। लोगोंको मृत्युसे दूर रखनेका कार्य वैद्यका है. यह बात इस शब्दसे सूचित होती है।

मरुत्का अर्थ मरनेतक उठकर लडनेवाला वीर भी है। यह अर्थ लेकर इसका वीरोचित अर्थ भी पाठक देखें।

मंत्र ७-८- वैद्य प्रमाद न करे— वैद्यके भूल अथवा दोषसे, आलस्यसे, क्रोध और अज्ञानसे रोगी मर जाते हैं। इसलिये सदा सावध रहनेकी जिम्मेवारी वैद्यपर है। इन दोषोंके कारण यदि किसीकी मृत्यु हो गई, तो उसका उत्तरदाता वैद्य होगा। यह बात अष्टम मंत्रके उत्तरार्धसे सूचित की है।

मंत्र सातमें यह आशय है, कि वैद्य अपनी असावधानताके कारण न किसीको क्रुश करे तथा न किसीका घात करे। वैद्यकी थोडीसी भूलके कारण दूसरोंके बालबच्चे अथवा मातापिता मृत्युके वशमें होना कोई अशक्य बात नहीं है। इसलिये वैद्यको उचित है कि वह सदा सावध रहे।

न केवल मनुष्यों परंतु पशुओंके विषयमें भी वैद्यको बडी दक्षता धारण करना चाहिए। दक्षता और सावधानता न रखनेके कारणही वैद्य बडेबडे प्रमाद कर सकता है और वैद्यके दोषके कारण दूसरोंको मरना पडता होता है।

'भामितो मा वधीः।' अर्थात् मनके दोषोंके कारण दूसरोंका वध न कर। यह वाक्य बडा सुंदर है। क्रोध, ईर्षा, द्वेष, चित्तका वेग अथवा क्षोभ आदिके कारण किसीका वध नहीं होना चाहिए। सब वैद्योंको उचित है कि वे इस उपदेशकी ओर अपना विशेष ध्यान देवें। अपनेसे जितना संभव हो उतनेही बीमार देखें। वैसेही बालबच्चे रोगियोंका भार न लें।

[९] सूर्य-प्रकरण

(१९) जगत्प्रदीप सूर्य

(ऋ. १।११५) कुत्स आङ्गिरसः । सूर्यः । त्रिष्टुप् ।

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आऽप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ×१

सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात् ।
यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम् +२

भद्रा अश्वा हरितः सूर्यस्य चित्रा एतग्वा अनुमाद्यासः ।
नमस्यन्तो दिव आ पृष्ठमस्थुः परि द्यावापृथिवी यन्ति सद्यः ३

तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्वितितं सं जभार ।
यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॐ४

अन्वयः— १ देवानां अनीकं, मित्रस्य वरुणस्य अग्नेः चक्षुः उदगात् । (तत्) द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं आप्राः । सूर्यः जगतः तस्थुषः च आत्मा ॥

२ सूर्यः देवीं रोचमानां उषसं, मर्यो योषां न, पश्चात् एति । यत्र देवयन्तः नरः युगानि (तत्र) वितन्वते प्रति भद्राय ॥

३ सूर्यस्य अश्वाः भद्राः हरितः चित्राः अनुमाद्यासः एताः । नमस्यन्तः दिवः पृष्ठं आ अस्थुः । द्यावापृथिवी परि यन्ति ॥

४ सूर्यस्य तत् देवत्वं । तत् महित्वं । कर्तोः मध्या वितितं सं जभार । यदा इत् हरितः सधस्थात् अयुक्त, आत् रात्री वासः सिमस्मै तनुते ॥

अर्थ— १ देवोंका मुख्य तेज, मित्र वरुण और अग्निका दिव्य क्षण नेत्र (ऐसा यह सूर्य अब) उदय हुआ है। (इसने) द्युलोक, पृथ्वीलोक और अन्तरिक्षलोकको (प्रकाशद्वारा) भरपूर [illegible] लिया है। सचमुच सूर्य जंगम और स्थावरका आत्मा है ॥

२ सूर्य प्रकाशमान् उषादेवीके पीछे आता है, जिस तरह [illegible] (युवा) पुरुष (युवती) स्त्रीके [illegible] देवत्व-प्राप्तिके इच्छुक मनुष्य [illegible] उनका एक वस्त्रासमान [illegible] (यह सूर्य प्रकाशता है) ॥

३ सूर्यके अश्व [illegible] परमेश्वरके, आनंद देनेवाले [illegible] जाते हुए ये सूर्यके [illegible] जोरसे [illegible]

[illegible]

× अथर्व. १३,२,१५ २०,१०७,१ ।
+ ,, २०,१०७,१५ ।
ॐ ,, २०,१२३,१ ।

तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे ।
अनन्तमन्यद् रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति ×५
अद्या देवा उदिता सूर्यस्य निरंहसः पिपृता निरवद्यात् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ६

५ तत् मित्रस्य वरुणस्य अभिचक्षे द्योः उपस्थे सूर्यः रूपं कृणुते । अस्य हरितः अनन्तं रुशत् अन्यत् पाजः सं भरन्ति, कृष्णं अन्यत् ॥

६ हे देवाः ! अद्य सूर्यस्य उदिता अवद्यात् अंहसः निः निः पिपृत । नः तत् मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ममहन्ताम् ॥

५ वह मित्र और वरुणका रूप दीखे, इसलिये द्युलोकके समीप सूर्य अपना रूप प्रकट करता है । इसके किरण (घोडे) अनंत तेजस्वी ऐसा एक प्रकारका रूप (दिनके समय) धारण करते हैं और दूसरा काला (रूप रात्रिके समय धारण करते हैं)।

६ हे देवो ! आज सूर्यके उदयके समयही आप संकटों और पापसे हमारी सुरक्षा कीजिये और यह हमारी स्तुति मित्र आदि देवोंद्वारा अनुमोदित हो जावे ॥

उषाके पश्चात् सूर्य

उषाके पश्चात् सूर्यका उदय होता है । इस सूक्तमें सूर्यका वर्णन है । सूर्यका उदय हुआ है, सबके आंखोंको प्रकाशका मार्ग दीखने लगा है । सूर्य स्थावर जंगम वस्तु जातका आत्मा-ही है । सूर्य न रहा तो कुछ भी नहीं रहेगा ।

सब प्रकारका जीवन सूर्यसेही मिल रहा है मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष, वनस्पति, औषधि, तृण आदि सबका जीवन सूर्यके प्रकाशपरही अवलंबित है ।

प्रथम उषा देवी आती है, उसके पश्चात् सूर्य आता है । इसलिये कविने रूपक किया कि तरुणीके पीछे तरुण भाग रहा है । ब्रह्माकी अपनी पुत्रीके पीछे भागनेकी कथा भी इसी दृश्य-पर रची है । सूर्यप्रकाशसेही सब मानवोंके उत्तमसे उत्तम कल्याणकारी यज्ञ सिद्ध होते हैं । इसीलिये कहते हैं कि 'यह सूर्य मनुष्योंके कल्याणके कर्म कराता है ।'

सूर्यके किरण रोगजंतुओंका नाश करके मानवोंको आरोग्य देते हैं, इसलिये कल्याणकारी हैं, जलका हरण करके अन्तरिक्ष-में बादलोंको निर्माण करते और वृष्टि भी कराते हैं । येही सब शुभ कर्मोंके प्रेरक हैं ।

सूर्यप्रकाशमें मनुष्य सब अच्छे कर्म करते हैं, पर वह सूर्य किसीके लिये ठहरता नहीं । समयपर अपने किरण समेटता है और चला जाता है और लोगोंको अपने कर्म बंद करके सुप्त रहना पडता है । इसलिये वे सूर्यका उदय होनेतक विलाप करते हैं ।

सूर्य द्युलोकपर आगया तो सबके लिये प्रकाश होता है और अस्तको गया तो रात्रि होती है । प्रकाशमय दिन और अंधकारमयी रात्रि ये दोनों रूप सूर्यकेही दो रूप हैं । सूर्यके होने-वाले ये कालखण्ड हैं ।

यह सूर्य मानवोंका संरक्षक है । वह संकटों, आपत्तियों और रोगोंसे मानवोंकी सुरक्षा करता है । इसीलिये वह सबका उपास्य है ।

सूर्य जैसा सबको प्रकाशका मार्ग दिखाता है, वैसाही सबको सच्चा उन्नतिका मार्ग दिखावे । मानवके सन्मुख सूर्यका आदर्श वेदने रखा है । सावित्रीकी उपासनाका तत्त्व यही है । यही सूर्य उपासना है । गायत्रीमंत्रका रहस्य भी सूर्यमें ही है । श्रेष्ठ ब्रह्मचारी 'आदित्य ब्रह्मचारी' ही कहलाता है । अस्तु । इस तरह यह सूक्त बडा बोध दे सकता है । इसका मनन करें और बोध अपना लें ॥

॥ यहां सूर्य-प्रकरण समाप्त हुआ ॥

× अथर्व. २०,१२३,२ ।

[१०] सोम-प्रकरण

(नवम मण्डल)

(२०) सोम

(ऋ. ९।९७ ४५-५८) पवमानः सोमः । कुत्स आङ्गिरसः । त्रिष्टुप् ।

१ सोमः सुतो धारयात्यो न हित्वा सिन्धुर्न निम्नमभि वाज्यक्षाः ।
आ योनिं वन्यमसदत्पुनानः समिन्दुर्गोभिरसरत्समद्भिः ४५

२ एष स्य ते पवत इन्द्र सोमश्चमूषु धीर उशते तवस्वान् ।
स्वर्चक्षा रथिरः सत्यशुष्मः कामो न यो देवयतामसर्जि ४६

३ एष प्रत्नेन वयसा पुनानस्तिरो वपाँसि दुहितुर्दधानः
वसानः शर्म त्रिवरूथमप्सु होतेव याति समनेषु रेभन् ४७

४ नू नस्त्वं रथिरो देव सोम परि स्रव चम्वोः पूयमानः ।
अप्सु स्वादिष्ठो मधुमाँ ऋतावा देवो न यः सविता सत्यमन्मा ४८

अन्वयः— १ सुतः वाजी सोमः धारया, अत्यः न, हित्वा सिन्धुः न, निम्नं अभि अक्षाः । पुनानः वन्यं योनिं आ असदत् । इन्दुः गोभिः सं, सं अद्भिः असरत् ॥४५॥

२ हे इन्द्र ! उशते ते धीरः तवस्वान् स्वः एषः सोमः चमूषु पवते । स्वर्चक्षाः रथिरः सत्यशुष्मः यः देवयतां कामः न असर्जि ॥४६॥

३ प्रत्नेन वयसा पुनानः, दुहितुः वपाँसि तिरः दधानः, त्रिवरूथं शर्म वसानः, एषः अप्सु, होता इव, रेभन्, समनेषु याति ॥४७॥

४ हे देव सोम ! रथिरः त्वं नः चम्वोः पूयमानः अप्सु परि स्रव । स्वादिष्ठः मधुमान् ऋतावा सविता यः देवः सत्यमन्मा ॥४८॥

अर्थ- १ निचोड़ा हुआ बलवर्धक सोमरस घोड़ेके समान और उतारपरसे चलनेवाली नदीके समान, वेगसे चलता है। छाना जानेपर काष्ठके पात्रमें जाकर रहता है। यह सोमरस गोदुग्धके साथ, तथा जलके साथ, मिलता है ॥ ४५ ॥

२ हे इन्द्र ! इच्छा करनेवाले तेरे लिये यह बुद्धिवर्धक और बलवर्धक सोमरस पात्रोंमें छाना जाता है। तेजस्वी दृष्टि-वाला, रथवान्, सत्त्व-सामर्थ्यसे युक्त और देवत्व-प्राप्तिके इच्छुकोंकी कामनाके अनुसार जो (यह सोम) बनाया गया है ॥ ४६ ॥

३ प्राचीन अन्नरसके साथ छाना जानेवाला, पुत्रीके पुत्री (उषा)के आभूषणोंको भी आच्छादित करनेवाला, तीनों स्थानोंमें शान्ति रखनेवाला, यह जलोंमें (मिलाया जाता है) और स्तोताके समान शब्द करता हुआ, जलोंमेंही संचार करता है ॥ ४७ ॥

४ हे सोम देव ! रथमेंसे जानेवाला तू हमारे पात्रोंमें छाना जाता हुआ जलोंमें मिल जा। तेजिष्ठ, मधुर, सत्यबलके और तेरह ऐसा जो तू देव है, वही तू सोम सत्यपूर्ण विचार (हमारे पास आने दे) ॥ ४८ ॥

५ अभि वायुं वीत्यर्षा गृणानोऽभि मित्रावरुणा पूयमानः ।
अभी नरं धीजवनं रथेष्ठामभीन्द्रं वृषणं वज्रबाहुम् ४९

६ अभि वस्त्रा सुवसनान्यर्षाभि धेनूः सुदुघाः पूयमानः ।
अभि चन्द्रा भर्तवे नो हिरण्याऽभ्यश्वान् रथिनो देव सोम ५०

७ अभी नो अर्ष दिव्या वसून्यभि विश्वा पार्थिवा पूयमानः ।
अभि येन द्रविणमश्नवामाभ्यार्षेयं जमदग्निवन्नः ५१

८ अया पवा पवस्वैना वसूनि माँश्चत्व इन्दो सरसि प्र धन्व ।
ब्रध्नश्चिदत्र वातो न जूतः पुरुमेधश्चित्तकवे नरं दात् ५२

९ उत न एना पवया पवस्वाधि श्रुते श्रवाय्यस्य तीर्थे ।
षष्टिं सहस्रा नैगुतो वसूनि वृक्षं न पक्वं धूनवद्रणाय ५३

---

५ गृणानः वीती वायुं अभि अर्ष । पूयमानः मित्रावरुणा अभि । नरं धीजवनं रथेष्ठां अभि (अर्ष) । वृषणं वज्रबाहुं इन्द्रं अभि (अर्ष) ॥४९॥

६ हे सोम ! सुवसनानि वस्त्रा अभि अर्ष । पूयमानः सुदुघाः धेनूः अभि । चन्द्रा हिरण्या भर्तवे नः अभि । हे देव सोम ! रथिनः अश्वान् अभि (अर्ष) ॥५०॥

७ पूयमानः दिव्या वसूनि नः अभि अर्ष । पार्थिवा विश्वा अभि । येन द्रविणं अभि अश्नवाम । आर्षेयं जमदग्निवत् नः अभि (अर्ष) ॥५१॥

८ हे इन्दो ! अया पवा एना वसूनि पवस्व । मांश्चत्वे सरसि प्र धन्व । अत्र ब्रध्नः चित्, वातः न, जूतः पुरुमेधः चित् नरं तकवे दात् ॥५२॥

९ उत श्रवाय्यस्य श्रुते तीर्थे नः एना पवया अधि पवस्व । नैगुतः षष्टिं सहस्रा वसूनि, रणाय, वृक्षं न पक्वं धूनवत् ॥५३॥

५ स्तुति होनेपर पीनेके पूर्व वायुके साथ मिल जा होनेपर मित्रावरुणोंके पास जा। नेता बुद्धिमान् और रथमें वाले वीरके पास जा और बलिष्ठ वज्रबाहु इन्द्रके जा ॥ ४९ ॥

६ हे सोम ! उत्तम पहननेयोग्य वस्त्र हमें दे। छाना पर उत्तम दूध देनेवाली गौवोंके पास जा। उत्तम तेजस्वी हमारे पोषणके लिये हमें मिले। हे देव सोम ! रथयुक्त हमें दे ॥ ५० ॥

७ छाना जाता हुआ तू दिव्य धन हमें ला दे। सब पृथ्वी संपत्ति हमें दे, जिससे हम सब धनका उपभोग लेंगे। योंका तेज जमदग्निके समान हमें प्राप्त हो ॥ ५१ ॥

८ हे सोम ! इस शुद्ध धाराके साथ सब धन हमें आह्लाददायक सरोवरमें (रहकर तू) धन्य हो। यहां (सब मूल आधार, वायुके समान (वेगवान्), पूजनीय, इ समान वीर नेता (पुत्र) प्रगतिशीलको प्राप्त हो ॥ ५२ ॥

९ (हे सोम !) कीर्तिमान् सोमके प्रसिद्ध यज्ञमें हमारे स इस शुद्ध धारासे छाना जा। शत्रुओंका नाश करनेवाला (से साठ सहस्र प्रकारके धन, युद्धमें विजयप्राप्तिके लिये, फलवाला वृक्ष हिलाते हैं उस तरह, हिलाकर हमें देदो ॥

१० महीमे अस्य वृषनाम शूषे माँश्चत्वे वा पृशने वा वधत्रे ।
अस्वापयन्निगुतः स्नेहयच्चापामित्राँ अपाचितो अचेतः ५४

११ सं त्री पवित्रा विततान्येष्यन्वेकं धावसि पूयमानः ।
असि भगो असि दात्रस्य दाताऽसि मघवा मघवद्भ्य इन्दो ५५

१२ एष विश्ववित्पवते मनीषी सोमो विश्वस्य भुवनस्य राजा ।
द्रप्साँ ईरयन्विदथेष्विन्दुर्वि वारमव्यं समयाति याति ५६

१३ इन्दुं रिहन्ति महिषा अदब्धाः पदे रेभन्ति कवयो न गृध्राः ।
हिन्वन्ति धीरा दशभिः क्षिपाभिः समञ्जते रूपमपां रसेन ५७

१४ त्वया वयं पवमानेन सोम भरे कृतं वि चिनुयाम शश्वत् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ५८

---

१० इमे अस्य महि वृषनाम शूषे । मांश्चत्वे वा पृशने वा वधत्रे । निगुतः अस्वापयत्, स्नेहयत् च । अमित्रान् अप चच । अचितः इतः अप ॥५४॥

११ हे इन्दो ! विततानि त्री पवित्रा सं एषि । पूयमानः एकं अनु धावसि । भगः असि । दात्रस्य दाता असि । मघवद्भ्यः मघवा असि ॥

१२ विश्ववित् मनीषी विश्वस्य भुवनस्य राजा एषः सोमः पवते । विदथेषु द्रप्सान् ईरयन् इन्दुः अव्यं वारं समया वि अति याति ॥५६॥

१३ महिषाः अदब्धाः इन्दुं रिहन्ति । कवयो न गृध्राः पदे रेभन्ति । धीराः दशभिः क्षिपाभिः हिन्वन्ति । रूपं अपां रसेन सं अञ्जन्ते ॥५७॥

१४ हे सोम ! पवमानेन त्वया भरे शश्वत् कृते, वयं वि चिनुयाम । तत् नः मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः मामहन्ताम् ॥५८॥

१० ये इसके दो बडे (कर्म हैं, एक शत्रुपर बाणोंका) वर्षण (करना और दूसरा शत्रुको) नम्र (करना, ये प्रजाको) सुख देनेवाले हैं । अश्वयुद्धमें तथा बाहुयुद्धमें (शत्रुका) वधही (होता है)। शत्रुओंको (मारकर यह सोम उनको) सुलाता है, अथवा भगाता है । शत्रुओंको भगा दो । अनाजकों-को यहांसे दूर करो ॥५४॥

११ हे सोम ! विस्तृत तीन छाननियोंपर तू चलता है । शुद्ध होनेवाला तू एक छाननीपर दौडता है । तू ऐश्वर्यवान् है । तू धनका दाता है । धनवानोंसे भी ऐश्वर्यवान् है ॥५५॥

१२ सर्वज्ञ, मननशील, सब भुवनोंका राजा यह सोम छान जाता है । यज्ञोंमें बूंदोंसे गिरनेवाला सोम, उनकी छाननीमेंसे सब ओरसे टपक रहा है ॥५६॥

१३ महान् अहिंसनीय सोमका स्वाद (देव) लेते हैं । कवि लोग शुद्ध जलोंके समान पवित्र गान करते हैं । ज्ञानी लोग दसों अंगुलियोंसे रस निकालते हैं । वह सुंदर (रस) जलके रसके साथ मिला देते हैं ॥५७॥

१४ हे सोम ! छाने गये तुझके द्वारा तुझमें भराई (हमने जो पराक्रम) किये, (उस पराक्रमको) हम संपूर्ण करते रहेंगे । वह हमारी रक्षा सफल करनेके लिये मित्र आदि देव अनुमोदन करें ॥५८॥

सोमरसका पान

सोमरसका पान करनेके विषयमें इस सूक्तमें निम्नलिखित निर्देश हैं—

१ **रथिरः**। (मं. २, ४) सोमवल्लीको रथमें रखकर यज्ञ-स्थानतक बड़े समारोहसे लाते हैं।

पश्चात् इस सोमवल्लीको फट्टेपर रखकर पत्थरोंसे कूटते हैं, अच्छी तरह कुटा जानेपर—

२ **धीराः दक्षभिः क्षिपाभिः हिन्वन्ति**। (१३)— ज्ञानी लोग उस कूटे हुए सोमको दोनों हाथोंकी दसों अंगुलियों-से अच्छी तरह दबाते और उससे रस निकाल लेते हैं।

३ **इन्दुः द्रप्सान् ईरयन्**। (१२)– सोमसे इस समय रसकी बूंदें नीचे टपकने लगती हैं। इन बूंदोंकी आगे धारा बनती है—

४ **अया पवा पवस्व**। (८)– इस धारासे नीचे जा—

५ **एना पवया अधिपवस्व**। (९) ,, ,,

६ **सुतः सोमः धारया निम्नं अभि अक्षाः** (१)– सोमसे रस निचोड़कर धारासे वह नीचे उतरता है, (**सिन्धुः न**) जैसी नदी नीचे आती है।

७ **पुनानः वन्यं योनिं आसदत्**। (१)– छाना जाकर लकड़ीके पात्रमें वह रहता है, रखा जाता है।

८ **एषः सोमः चमूषु पवते** (२)– यह सोम पात्रोंमें छाना जाता है।

९ **चम्वोः पूयमानः**। (४)– पात्रोंमें छाना जाता है, इस तरह छाननेके लिये यह—

१० **इन्दुः अव्यं वारं वि अति याति**। (१२)— सोमरस ऊनकी छाननीपरसे नीचे आता है, ऊनकी छननीसे, कंबलमेंसे छाना जाता है।

११ **पूयमानः एकं अनु धावसि वितता त्री पवित्रा सं एषि**। (११) छाननेके समय एक छाननीसे यह रस नीचे दौड़ता है, और फैलाये तीन छाननियोंसे छाना जाता है। इस समय यह—

१२ **इन्दुः अद्भिः सं असरत्**। (१)– सोमरस जलके साथ मिलाया जाता है।

१३ **हे सोम! अप्सु परि चव**। (४) हे सोम! जलके साथ मिल। सोम जलके साथ मिलाया जाता है। इस तरह सोमरस जलके साथ मिलाया जाता है।

१४ **रूपं अपां रसेन सं अक्तं** (११)— रूप जलोंके रसके साथ मिल जाता है, रसमें जल मिलाया है पश्चात्—

१५ **इन्दुः गोभिः सं असरत्**। (१)— गौओंके साथ मिलकर चलता है, गौके दूधसे मिलाया है।

१६ **पूयमानः सुदुघाः धेनूः अभि अर्ष**। (छाना जानेवाला सोम उत्तम दूध देनेवाली गौओंके पास है, गौओंके दूधसे मिलाया जाता है।

इस तरह जल और गोदुग्धके साथ सोमरस मिलनेके बाद–

१७ **वीती वायुं अभि अर्ष**। (५)– पीनेके लिये उसे उत्तेजना जाय। एक पात्रसे दूसरे पात्रमें सोमरस डाला गया तो उसमें वायु मिलती है और पीनेके लिये स्वादु होता है। पश्चात् वह मित्रावरुण, नेता अश्विदेव, बलिष्ठ इन्द्र देवताओंको अर्पण किया जाता है और इसके पश्चात् ऋत्विज इसका पान करते हैं।

१८ यह सोम (**धीरः** २) बुद्धिवर्धक, (**तवस्वान्** शक्ति बढ़ानेवाला, (**स्वः-चक्षाः** २) दृष्टि-शक्ति बढ़ानेवाला, (**सत्य-शुष्मः**) स्थिर बलवाला, स्थायी बल देनेवाला, (**स्वादिष्ठः** ४) रुचिकर, स्वादु, (**मधुमान्**) मधुर, (**ऋतावा** ४) सरल भाव बढ़ानेवाला, (**ब्रह्मः** ८) आधार, बलका आधारस्तंभ, (**नैगुतः** ९, **निगुतः** ३) शत्रुओंका नाश करनेवाला, (**विश्वावित् मनीषी** १२) सब ज्ञानी, बुद्धिवर्धक ये सोमके गुण इस सूक्तमें वर्णन किये हैं।

१९ **त्रिवरूथं शर्म वसानः**। (३)– स्थूल सूक्ष्म और कारण शरीरोंमें शान्ति सुस्थिर करनेवाला है।

इसके पीनेसे शक्ति बढ़ती है, शत्रुसे युद्ध किये जाते हैं और शत्रु परास्त किये जाते हैं–

२० **नैगुतः षष्टिं सहस्रा वसूनि धूनवत्**। (९)– शत्रुके साठ हजार प्रकारके धन बलसे प्राप्त किये, जिस तरह (**वृक्षं न पक्वं**) पक्व फलवाले वृक्षको हिलाकर उसके फल प्राप्त किये जाते हैं, उस तरह शत्रुको हिलाकर उससे सब धन छीन लिये गये।

२१ पवमानेन भरे कृतं, वयं विजयाम (१४)= सोम पीने युद्धमें बडा शौर्य दिखाया, उसके फलोंको हम इकट्ठा करके अपने पास रखते हैं।

२२ अस्य महि वृष-नाम (१०)= इस सोमके दो बडे कर्म हैं, एक (वृष) शत्रुपर बाणोंका वर्षण करना और (नाम) दूसरा शत्रुको नम्र करना। ये सोम पीनेसे होते हैं ये दोनों (शूषे) सुखदायी हैं, जनताका सुख बढाते हैं।

२३ माँध्रत्वे, पृशने वा वधत्रे (१०)= अश्वयुद्धमें, गोयुद्धमें (मल्लयुद्धमें), तथा वध करनेके अन्य प्रकारके कार्योंमें सोमपानसे बल बढता है। और—

२४ निगुतः अस्वापयत् (१०)= सोम शत्रु-सैनिकोंका वध करके उनको सुलाता है,

२५ अमित्रान् अप अघ (१०)= शत्रुको दूर भगाता है,

२६ अचितः इतः अप अघ (१०)= अजानकों, नास्तिकोंको भगा देता है,

२७ अमित्रान् स्नेहयत् (१०)= शत्रुओंका वध करता है (स्निह्-वध करना)

सोमके वर्णनमें जो अन्य मंत्रभाग है, वे पाठक अर्थोंके मननसे समझ सकते हैं, इसलिये उनका अधिक विवरण करनेकी आवश्यकता नहीं है।

॥ यहां सोम-प्रकरण समाप्त हुआ ॥

---

(११) ब्रह्म-विद्या

(२१) ज्येष्ठब्रह्मवर्णनम्।

१-४४ कुत्सः। आत्मा। त्रिष्टुप्; १ उपरिष्टाद्विराड्बृहती २ बृहतीगर्भानुष्टुप्, ३ भुरिग्नुष्टुप्, ६, १४, १९-२१, २३, २५, २९, ३१-३४, ३७-३८, ४१, ४३ अनुष्टुप्, ४ पुर उष्णिक्, १० अनुष्टुब्गर्भा; ११ जगती; १२ पुरोबृहती त्रिष्टुब्गर्भोपरिष्टाज्ज्योतिः, १५, २८ भुरिग्बृहती; २२ पुरउष्णिक्; २६ अनुष्टुब्गर्भानुष्टुप्; ३० पुरस्ताद्बृहती; ३९ बृहतीगर्भा; ४२ विराड् नाम्नी।

यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति। स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥१॥
स्कम्भेनेमे विष्टभिते द्यौश्च भूमिश्च तिष्ठतः। स्कम्भेन इदं सर्वमात्मन्वद्यत्प्राणन्निमिषच्च यत्॥२॥

अन्वयः- १ यः भूतं च भव्यं च यः च सर्वं अधि- [illegible]
तिष्ठति। स्वः च केवलं यः, तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥१॥ [illegible]
२ इमे स्कम्भेन विष्टभिते द्यौः च भूमिः च तिष्ठतः। [illegible]
स्कम्भेन इदं सर्वं आत्मन्वत् यत् प्राणत् निमिषत् च यत्॥२॥ [illegible]

तिस्रो ह प्रजा अत्यायमायन्न्य१न्या अर्कमभितोऽविशन्त ।
बृहन्ह तस्थौ रजसो विमानो हरितो हरिणीरा विवेश ३
द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत ।
तत्राहतास्त्रीणि शतानि शङ्कवः षष्टिश्च खीला अविचाचला ये ४
इदं सवितर्वि जानीहि षड्यमा एक एकजः ।
तस्मिन्हापित्वमिच्छन्ते य एषामेक एकजः ५
आविः सन्निहितं गुहा जरन्नाम महत्पदम् ।
तत्रेदं सर्वमार्पितमेजत्प्राणत्प्रतिष्ठितम् ६
एकचक्रं वर्तत एकनेमि सहस्राक्षरं प्र पुरो नि पश्चा ।
अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं क्व१ तद् बभूव ७
पञ्चारेचक्रे वहतयमेषां प्रष्टयो युक्ता अनुसंवहन्ति ।
अयातमस्य दद्रुशे न यातं परं नेदीयोऽवरं दवीयः ८

३ तिस्रः ह प्रजा अत्यायं आयन् अन्या अर्कं अभितः नि [illegible] । बृहत् ह रजसः विमानः तस्थौ हरिणीः हरितः [illegible] ॥ ३ ॥

४ द्वादश प्रधयः चक्रं, एकं चक्रे, त्रीणि नभ्यानि, कः उ तत् [illegible] तत्र आहताः त्रीणि शतानि षष्टिः च शङ्कवः अविचाचलाः खीलाः [illegible] ॥ ४ ॥

५ हे सवितः इदं विजानीहि, षड् यमाः एकः एकजः । यः [illegible] एषां एकः एकजः अस्ति तस्मिन् ह अपित्वं इच्छन्ते ॥ ५ ॥

६ [illegible] आविः सन्निहितं गुहा, यत् नाम महत् पदं सन्निहितं । एजत् [illegible] तत्र इदं सर्वं अर्पितं प्रतिष्ठितम् ॥ ६ ॥

७ [illegible] एकचक्रं वर्तते एकनेमि सहस्राक्षरं प्र पुरः नि पश्चा । [illegible] अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यत् अस्य अर्धं क्व तत् बभूव ॥ ७ ॥

८ [illegible] पञ्चारे चक्रे वहतयं एषां प्रष्टयः युक्ताः अनुसंवहन्ति [illegible] अयातं अस्य ददृशे न यातं परं नेदीयः अवरं दवीयः ८ ।

३ तीन प्रकारकी प्रजाएं अतिक्रमणको प्राप्त होती हैं, एक प्रकारकी सूर्यको प्राप्त होती है, दूसरी वेग रजोलोकको प्राप्त हुए रहती है, और तीसरी हरण करनेवाली हरिवर्ण-भूमिको प्राप्त होती है ॥ ३ ॥

४ बारह परिधियां हैं, एक चक्र है, तीन नाभियां हैं, [illegible] इसे जानता है ? इस चक्रमें तीन सौ साठ सूइयां [illegible] हैं और इतने ही खील लगाये हैं, जो हिलनेवाले नहीं हैं ॥ ४ ॥

५ हे सवितः ! यह तू जान, कि यहां छः भोगे हैं [illegible] अकेला है । जो इनमें अकेला एक है उसमें लिपटने [illegible] पुरुषगण जो उनकी इच्छा अन्य करते हैं ॥ ५ ॥

६ पुरुषमें विचार करनेवाला जो बड़ा प्रसिद्ध स्थान है, [illegible] प्रकट होने योग्य संनिध भी है, जो कांपनेवाला और [illegible] चलने वाला है, वह सभी इस पुरुषमें समर्पित और प्रतिष्ठित है ॥ ६ ॥

७ एक चक्र एकही मध्यनाभिवाला है, जो हजारों [illegible] पूर्व ओर और पीछे होता है । सामने यह पुरुष [illegible] और जो इसका आधा भाग है, वह कहां रहा है ? ॥ ७ ॥

८ इनमें जो पांचोंमें उत्तरकी नाभिवाली है, वह [illegible] पहुंचती है । जो जोड़े जोते हैं, वे [illegible] इनका 'न लौटना' ही दीखता है, परन्तु [illegible] यहां बहुत दूरका बहुत पासका है और जो नीच है, [illegible] दूर है ॥ ८ ॥

तिर्यग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नस्तस्मिन्यशो निहितं विश्वरूपम् ।
तदासत ऋषयः सप्त साकं ये अस्य गोपा महतो बभूवुः ९
या पुरस्ताद्युज्यते या च पश्चाद्या विश्वतो युज्यते या च सर्वतः ।
यया यज्ञः प्राङ् तायते तां त्वा पृच्छामि कतमा सर्चाम् १०
यदेजति पतति यच्च तिष्ठति प्राणदप्राणन्निमिषच्च यद्भुवत् ।
तद्दाधार पृथिवीं विश्वरूपं तत्संभूय भवत्येकमेव ११
अनन्तं विततं पुरुत्रानन्तमन्तवच्चा समन्ते ।
ते नाकपालश्चरति विचिन्वान्विद्वान्भूतमुत भव्यमस्य १२
प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरदृश्यमानो बहुधा वि जायते ।
अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं कतमः स केतुः १३
ऊर्ध्वं भरन्तमुदकं कुम्भेनेवोदहार्यम् ।
पश्यन्ति सर्वे चक्षुषा न सर्वे मनसा विदुः १४

९ तिर्यग्बिलः ऊर्ध्वबुध्नः चमसः, तस्मिन् विश्वरूपं यशः निहितं। तत् सप्त ऋषयः साकं आसत, ये अस्य महतः गोपाः बभूवुः ॥ ९ ॥

१० या पुरस्तात् युज्यते, या च पश्चात्, या विश्वतो युज्यते या च सर्वतः। यया यज्ञः प्राङ् तायते तां त्वा पृच्छामि ऋचां का कतमा ? ॥ १० ॥

११ यत् एजति, पतति, यत् च तिष्ठति, यत् प्राणत् अप्राणत् निमिषत् च भुवत्, तत् विश्वरूपं पृथिवीं दाधार, तत् संभूय एकं एव भवति ॥ ११ ॥

१२ अनन्तं पुरुत्रा विततं, अनन्तं अन्तवत् च समन्ते। अस्य भूतं उत भव्यं ते विचिन्वन् विद्वान्, नाकपालः चरति ॥ १२ ॥

१३ प्रजापतिः अदृश्यमानः गर्भे अन्तः चरति, बहुधा विजायते, अर्धेन विश्वं भुवनं जजान, यत् अस्य अर्धं सः कतमः केतुः ? ॥ १३ ॥

१४ कुम्भेन उदकं उर्ध्वं भरन्तं उदहार्यं इव। सर्वे चक्षुषा पश्यन्ति, सर्वे मनसा न विदुः ॥ १४ ॥

९ तिरछे मुखवाला और ऊपर पृष्ठभागवाला एक पात्र है। उसमें नाना रूपवाला यश रखा है। वहां साथ साथ सात ऋषि बैठे हैं जो इस महानुभावके संरक्षक हैं ॥ ९ ॥

१० जो आगे और पीछे जुती रहती है, जो चारों ओरसे सब प्रकार जुती रहती है। जिससे यज्ञ पूर्वकी ओर फैलाया जाता है, इस विषयमें मैं तुझसे पूछता हूं ऋचाओंमें वह कौनसी है ? १०

११ जो कांपता है, गिरता है, और जो स्थिर रहता है, जो प्राण धारण करनेवाला, प्राणरहित और जो निमेषोन्मेष करता है और जो होता है, वह विश्वरूपी संसार इस पृथ्वीको धारण करता है, वह सब मिलकर एक ही होता है ॥ ११ ॥

१२ अनन्त चारों ओर फैला है, अनन्त और अन्तवाले दोनों एक दूसरेसे मिले हैं। एकके भूतकाल और भविष्यत्कालीन तथा वर्तमानका ज्ञान सब वस्तुओंके भेदोंमें विविध करता हुआ और सब ओरको जाता हुआ, मुख्य नाकपाल चलता है ॥ १२ ॥

१३ प्रजापति अदृश्य होता हुआ गर्भके अन्दर संचार करता है, और वह अनेक प्रकारसे उत्पन्न होता है। सर्व संसार सब भुवनोंको उत्पन्न करता है, जो इसका आधा है, उसका आधा कौन है ? ॥ १३ ॥

१४ जैसे कोई जलसे भरकर ऊपर ले जानेवाला घड़ा [illegible] सब आंखसे देखते हैं, परन्तु सब मनसे नहीं [illegible]

दूरे पूर्णेन वसति दूर ऊनेन हीयते ।
महद्यक्षं भुवनस्य मध्ये तस्मै बलिं राष्ट्रभृतो भरन्ति १५
यतः सूर्य उदेत्यस्तं यत्र च गच्छति ।
तदेव मन्येऽहं ज्येष्ठं तदु नात्येति किं चन १६
ये अर्वाङ्मध्य उत वा पुराणं वेदं विद्वांसमभितो वदन्ति ।
आदित्यमेव ते परि वदन्ति सर्वे अग्निं द्वितीयं त्रिवृतं च हंसम् १७
सहस्राक्ष्यं वियतावस्य पक्षौ हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गम् ।
स देवान्त्सर्वानुरस्युपदद्य संपश्यन्याति भुवनानि विश्वा १८
सत्येनोर्ध्वस्तपति ब्रह्मणार्वाङ् वि पश्यति ।
प्राणेन तिर्यङ् प्राणति यस्मिन् ज्येष्ठमधि श्रितम् १९
यो वै ते विद्यादरणी याभ्यां निर्मथ्यते वसु ।
स विद्वान् ज्येष्ठं मन्येत स विद्याद्ब्राह्मणं महत् २०
अपादग्रे समभवत्सो अग्रे स्व१राभरत् । चतुष्पाद्भूत्वा भोग्यः सर्वमादत्त भोजनम् २१

१५ पूर्णेन दूरे वसति, ऊनेन दूरे हीयते, भुवनस्य मध्ये महत् यक्षं, तस्मै राष्ट्रभृतः बलिं भरन्ति ॥ १५ ॥

१६ यतः सूर्यः उदेति, यत्र च अस्तं गच्छति, तत् एव अहं ज्येष्ठं मन्ये, तत् उ किं चन न अत्येति ॥ १६ ॥

१७ ये अर्वाङ् मध्ये उत वा पुराणं वेदं विद्वांसं अभितः वदन्ति, ते सर्वे आदित्यं एव परि वदन्ति, द्वितीयं अग्निं त्रिवृतं च हंसम् ॥ १७ ॥

१८ अस्य हरेः हंसस्य स्वर्गं पततः पक्षौ सहस्राक्ष्यं वियती, सः सर्वान् देवान् उरसि उपदद्य विश्वा भुवनानि संपश्यन् याति ॥ १८ ॥

१९ सत्येन ऊर्ध्वः तपति, ब्रह्मणा अर्वाङ् विपश्यति, प्राणेन तिर्यङ् प्राणति, यस्मिन् ज्येष्ठं अधि श्रितं ॥ १९ ॥

२० यः वै ते अरणी विद्यात्, याभ्यां वसु निर्मथ्यते, सः विद्वान् ज्येष्ठं मन्यते, सः महत् ब्राह्मणं विद्यात् ॥ २० ॥

२१ अग्रे अपात् सं अभवत्, सः अग्रे स्वः आभरत्, चतुष्पाद् भोग्यः भूत्वा सर्वं भोजनं आदत्त ॥ २१ ॥

१५ पूर्ण होने पर भी दूर रहता है, न्यून होनेपर भी दूर ही रहता है । विश्वके बीचमें बडा पूज्य देव है, इसके लिये राष्ट्रसेवक अपना बलिदान करते हैं ॥ १५ ॥

१६ जहांसे सूर्य उगता है, और जहां अस्तको जाता है, वही श्रेष्ठ है, ऐसा मैं मानता हूं, उसका अतिक्रमण कोई नहीं करता ॥ १६ ।

१७ जो उरेवाले बीचके अथवा पुराणे वेदवेत्ताओंकी ओरसे प्रशंसा करते हैं, वे सब आदित्यकी ही प्रशंसा करते हैं, दूसरा अग्नि और त्रिवृत हंसकी ही प्रशंसा करते हैं ॥ १७ ॥

१८ इस हंसको स्वर्गको जाते हुए इसके दोनों पक्ष सहस्र दिनोंतक फैलाये रहते हैं । वह सब देवोंको अपनी छातीपर लेकर सब भुवनोंको देखता हुआ जाता है ॥ १८ ॥

१९ सत्यके साथ ऊपर तपता है, ज्ञानसे नीचे देखता है, प्राणसे तिरछा प्राण लेता है, जिसमें श्रेष्ठ ब्रह्म रहता है ॥ १९ ॥

२० जो इन दोनों अरणियोंको जानता है, जिनसे धन निर्माण किया जाता है; वह ज्ञानी ज्येष्ठ ब्रह्मको जानता है और वह बडे ब्रह्मको भी जानता है ॥ २० ॥

२१ प्रारंभमें पादरहित आत्मा एकही था । वह प्रथम स्वःसानंद भरता रहा । वही चार पांववाला भोग्य होकर सब भोजनको प्राप्त करने लगा ॥ २१ ॥

भोग्यो भवदथो अन्नमदद्बहु । यो देवमुत्तरावन्तमुपासाते सनातनम् २२
सनातनमेनमाहुरुताद्य स्यात्पुनर्णवः ।
अहोरात्रे प्र जायेते अन्यो अन्यस्य रूपयोः २३
शतं सहस्रमयुतं न्यर्बुदमसंख्येयं स्वमस्मिन्निविष्टम् ।
तदस्य ध्नन्त्यभिपश्यत एव तस्माद्देवो रोचत एष एतत् २४
बालादेकमणीयस्कमुतैकं नेव दृश्यते । ततः परिष्वजीयसी देवता सा मम प्रिया २५
इयं कल्याण्यजरा मर्त्यस्यामृता गृहे । यस्मै कृता शये स यश्चकार जजार सः २६
त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी ।
त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः २७
उतैषां पितोत वा पुत्र एषामुतैषां ज्येष्ठ उत वा कनिष्ठः ।
एको ह देवो मनसि प्रविष्टः प्रथमो जातः स उ गर्भे अन्तः २८
पूर्णात्पूर्णमुदचति पूर्णं पूर्णेन सिच्यते ।
उतो तदद्य विद्याम यतस्तत्परिषिच्यते २९

---

२२ भोग्यः अभवत्, अथो बहु अन्नं अदत्, यः सनातनं उत्तरावन्तं देवं उपासाते ॥ २२ ॥

२३ एनं सनातनं आहुः, उत अद्य पुनः नवः स्यात्, अन्यः अन्यस्य रूपयोः अहो-रात्रे प्रजायते ॥ २३ ॥

२४ शतं सहस्रं अयुतं न्यर्बुदं असंख्येयं स्वं अस्मिन् निविष्टम् । अस्य अभिपश्यतः एव तत् घ्नन्ति, तस्मात् एष देवः एतत् रोचते ॥ २४ ॥

२५ एकं बालात् अरणीयस्कं उत एकं नैव दृश्यते, ततः परिष्वजीयसी देवता सा मम प्रिया ॥ २५ ॥

२६ इयं कल्याणी अजरा मर्त्यस्य गृहे अमृता, यस्मै कृता शये, यः चकार सः अजार ॥ २६ ॥

२७ त्वं स्त्री त्वं पुमान् असि, त्वं कुमारः उत वा कुमारी, त्वं जीर्णः दण्डेन वञ्चसि, त्वं जातः विश्वतो मुखः भवसि ॥ २७ ॥

२८ उत एषां पिता उत वा एषां पुत्रः, एषां ज्येष्ठः उत वा कनिष्ठः, एकः ह देवः मनसि प्रविष्टः प्रथमः जातः सः उ गर्भे अन्तः ॥ २८ ॥

२९ पूर्णात् पूर्णं उदचति, पूर्णं पूर्णेन सिच्यते, उतो अद्य [illegible] परिषिच्यते ॥ २९ ॥

२२ वह भोग्य हुआ, बहुत अन्न खाने लगा । जो सनातन और श्रेष्ठ देवकी उपासना करता है ॥ २२ ॥

२३ इसे सनातन कहते हैं, और वह आज ही फिर नया होता है । इसके परस्पर विरुद्ध रूपके दिन और रात होते हैं ॥ २३ ॥

२४ सौ, हजार, दस हजार, लाख अथवा असंख्य रूप इसमें हैं । इसके देखते देखते ही वह अन्न आदि खाता है, इसीसे यह देव इसको प्रकाशित करता है ॥ २४ ॥

२५ एक बालसे भी सूक्ष्म है, और दूसरा दीखता ही नहीं । इसीसे जो दोनोंको आलिंगन देनेवाली देवता है, वह मुझे प्रिय है ॥ २५ ॥

२६ यह कल्याण करनेवाली अजर है, मरणधर्मके घरमें अमर है । जिसके लिये यह सोती है, वह वैसा है, और जो करता है वह वैसा होता है ॥ २६ ॥

२७ तू स्त्री है और तू ही कुमार है । तू जन्मता है और बालकों भी तू है । तू वृद्ध होकर लाठीके सहारे चलता है, तू सब ओर मुखवाला होता है ॥ २७ ॥

२८ इनका पिता, और इनका पुत्र इनमें श्रेष्ठ अथवा कनिष्ठ, यह एक देव मनमें प्रविष्ट है वह पहिले जो हुआ था, वही फिर भीतर आता है ॥ २८ ॥

२९ पूर्णसे पूर्ण देह है, पूर्ण पूर्णसे [illegible] है,

एषा सनत्नी सनमेव जातैषा पुराणी परि सर्वं बभूव ।
महीं देव्युषसो विभाती सैकेनैकेन मिषता वि चष्टे ३०
अविर्वै नाम देवतर्तेनास्ते परीवृता ।
तस्या रूपेणेमे वृक्षा हरिता हरितस्रजः ३१
अन्ति सन्तं न जहात्यन्ति सन्तं न पश्यति ।
देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति ३२
अपूर्वेणेषिता वाचस्ता वदन्ति यथायथम् ।
वदन्तीर्यत्र गच्छन्ति तदाहुर्ब्राह्मणं महत् ३३
यत्र देवाश्च मनुष्याश्चारा नाभाविव श्रिताः ।
अपां त्वा पुष्पं पृच्छामि यत्र तन्मायया हितम् ३४
येभिर्वात इषितः प्रवाति ये दद्रन्ते पञ्च दिशः सधीचीः ।
य आहुतिमत्यमन्यन्त देवा अपां नेतारः कतमे त आसन् ३५

---

३० एषा सनत्नी, सनं एव जाता, एषा पुराणी सर्वं परि बभूव, मही देवी उषसः विभाति, सा एकेन-एकेन मिषता विचष्टे ॥३०॥

३१ आविः वै नाम दैवता ऋतेन परिवृता आस्ते, तस्याः रूपेण इमे वृक्षाः हरिताः हरितस्रजः ॥३१॥

३२ अन्ति सन्तं न जहाति, अन्ति सन्तं न पश्यति, देवस्य पश्य काव्यं, न ममार न जीर्यति ॥३२॥

३३ अपूर्वेण इषितः वाचः, ताः यथायथं वदन्ति, वदन्तीः यत्र गच्छन्ति, तत् महत् ब्राह्मणं आहुः ॥३३॥

३४ देवाः च मनुष्याः च, नाभौ आराः इव यत्र श्रिताः, अपां पुष्पं त्वा पृच्छामि, यत्र तत् मायया हितम् ॥३४॥

३५ येभिः इषितः वातः प्रवाति, ये सधीचीः पञ्च प्रदिशः दद्रन्ते, ये देवाः आहुतिं अति अमन्यन्त, ते अपां नेतारः कतमे आसन् ॥३५॥

३० यह सनातन शक्ति है, सनातन कालसे विद्यमान है यही पुरानी शक्ति सब कुछ बनी है, यही बडी उषाओंको प्रकाशित करती है, वह अकेले अकेले प्राणीके साथ दीखती है ॥३०॥

३१ रक्षणकर्त्री नामक एक देवता है, वह सत्यसे घेरी हुई है। उसके रूपसे ये सब वृक्ष हरे और हरे पत्तोंवाले हुए हैं ॥ ३१ ॥

३२ समीप होनेपर भी वह छोडता नहीं, और वह समीप होनेपर भी दीखता नहीं। इस देवका यह काव्य देखो, वह नहीं मरता और नहीं जीर्ण होता है ॥ ३२ ॥

३३ जिसके पूर्व कोई नहीं है, इस देवताने प्रेरित की ये वाचाएं हैं, वह वाणियां यथायोग्य वर्णन करती हैं। बोलती हुई जहां पहुंचती हैं, वह बडा ब्रह्म है, ऐसा कहते हैं। ३३।

३४ देव और मनुष्य नाभिमें आरे लगनेके समान जहां आश्रित हुए हैं, इस आपः तत्त्वके पुष्पको मैं तुझे पूछता हूं, कि जहां वह मायासे आच्छादित होकर रहता है ॥ ३४ ॥

३५ जिनसे प्रेरित हुआ वायु बहता है, जो मिली हुई पांचों दिशायें धारण करते हैं, जो देव आहुतिको अधिक मानते हैं, वे जलोंके नेता कौनसे हैं ? ॥ ३५ ॥

इमामेषां पृथिवीं वस्त एकोऽन्तरिक्षं पर्येको बभूव ।
दिवमेषां ददते यो विधर्ता विश्वा आशाः प्रति रक्षन्त्येके ३६
यो विद्यात्सूत्रं विततं यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः ।
सूत्रं सूत्रस्य यो विद्यात्स विद्याद् ब्राह्मणं महत् ३७
वेदाहं सूत्रं विततं यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः ।
सूत्रं सूत्रस्याहं वेदाथो यद् ब्राह्मणं महत् ३८
यदन्तरा द्यावापृथिवी अग्निरैत्प्रदहन्विश्वदाव्यः ।
यत्रातिष्ठन्नेकपत्नीः परस्तात्क्वेऽवासीन्मातरिश्वा तदानीम् ३९
अप्स्वाऽसीन्मातरिश्वा प्रविष्टः प्रविष्टा देवाः सलिलान्यासन्
बृहन्ह तस्थौ रजसो विमानः पवमानो हरित आ विवेश ४०
उत्तरेणेव गायत्रीममृतेऽधि वि चक्रमे । साम्ना ये साम संविदुरजस्तद्दद्दृशे क्व ४१
निवेशनः संगमनो वसूनां देव इव सविता सत्यधर्मा ।
इन्द्रो न तस्थौ समरे धनानाम् ४२

३६ एषां एकः इमां पृथिवीं वस्ते, एकः अन्तरिक्षं परिबभूव, एषां यः विधर्ता दिवं ददते, एके विश्वाः आशाः प्रति रक्षति ॥३६॥

३७ यस्मिन् इमाः प्रजाः ओताः, यः विततं सूत्रं विद्यात्, सूत्रस्य सूत्रं यः विद्यात्, सः महत् ब्राह्मणं विद्यात् ॥३७॥

३८ यस्मिन् इमाः प्रजाः ओताः, अहं विततं सूत्रं वेद, सूत्रस्य सूत्रं अहं वेद, अथो यत् महत् ब्राह्मणम् ॥३८॥

३९ यत् द्यावापृथिवी अन्तरा विश्वदाव्यः प्रदहन् अग्निः ऐत्, यत्र परस्तात् एकपत्नीः अतिष्ठन्, तदानीं मातरिश्वा क्व इव आसीत् ॥३९॥

४० मातरिश्वा अप्सु प्रविष्टः आसीत्, देवाः सलिलानि प्रविष्टाः आसन् बृहन्, ह रजसः विमानः तस्थौ, पवमानः हरितः आविवेश ॥४०॥

४१ उत्तरेण इव अमृते अधि गायत्रीं अधिविचक्रमे ये साम्ना साम संविदुः, तत् अजः क्व ददर्श ॥४१॥

४२ सत्यधर्मा सविता देवः इव वसूनां संगमनः निवेशनः, धनानां समरे इन्द्रः न तस्थौ ॥४२॥

३६ इनमेंसे एक इस पृथ्वीपर रहता है, एक अन्तरिक्षमें व्यापता है, इनमें जो धारक है, वह द्युलोकको धारण करता है और कुछ सब दिशाओंकी रक्षा करते हैं ॥ ३६ ॥

३७ जिसमें ये सब प्रजा पिरोयी है, जो इस फैले सूत्रको जानता है, और सूत्रके सूत्रको जो जानता है, वह बड़े ब्रह्मको जानता है ॥ ३७ ॥

३८ जिसमें ये प्रजाएं पिरोयी है, मैं वह फैला हुआ सूत्र जानता हूं। सूत्रका सूत्र भी मैं जानता हूं और जो बड़ा ब्रह्म है, वह भी मैं जानता हूं ॥ ३८ ॥

३९ जो द्युलोक और पृथ्वीके बीचमें विश्वको जलानेवाला अग्नि होता है, जहां दूर तक एकपत्नीयां रहती हैं, उस समय वायु कहां था ? ॥ ३९ ॥

४० वायु जलोंमें प्रविष्ट था, सब देव जलोंमें प्रविष्ट थे, उस समय बड़ा ही रजका विशेष प्रमाण था, और वायु सूर्यकिरणोंके साथ था ॥ ४० ॥

४१ उत्तरेय द्युलोके अमृतमें गायत्रीको विशेष रीतिसे प्राप्त करते हैं। जो साम्नसे साम जानते हैं, वह अजन्माने कहां देखा ? ॥ ४१ ॥

४२ सत्यके धर्मसे युक्त सविताके समान सब धनोंका देनेवाला और निवासका हेतु है, वह धनोंके युद्धमें इन्द्रके समान स्थिर रहता है ॥ ४२ ॥

पुण्डरीकं नवद्वारं त्रिभिर्गुणेभिरावृतम्। तस्मिन्यद्यक्षमात्मन्वत्तदै ब्रह्मविदो विदुः ॥१॥
अकामो धीरो अमृतः स्वयंभू रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः।
तमेव विद्वान्न बिभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम् ॥२॥

१. नवद्वारे पुण्डरीके त्रिभिः गुणेभिः आवृतः, तस्मिन् यत् आत्मन्वत् यक्षं तत् ते ब्रह्मविदः विदुः ॥१॥

२. अकामः धीरः अमृतः, स्वयंभूः रसेन तृप्तः न कुतश्चन ऊनः, तं एव विद्वान् मृत्योः न बिभाय, आत्मानं धीरं अजरं युवानं ॥२॥

१. नव द्वारोंवाले पुण्डरीक (कमल) में तीन गुणोंसे आवृत, जो आत्मवान् यक्ष है, उसे ब्रह्मवेत्ता जानते हैं ॥ १ ॥

२. अकाम, धीर, अमर, स्वयंभू, रससे तृप्त, न किसीसे भी न्यून नहीं है। ऐसे आत्मस्वरूप धीर, अजर, युवा को जानकर मृत्युसे डर नहीं रहता है ॥ २ ॥

ज्येष्ठ ब्रह्मका सम्यक् दर्शन

गोपथ अथर्ववेदमें (काण्ड १०, सूक्त ८ म) तथा शौनकीय अथर्ववेदमें (काण्ड १५, सूक्त १०१ से १०३ तीन सूक्तोंमें) ज्येष्ठ ब्रह्म का उत्तम वर्णन है। जिन को श्रेष्ठ ब्रह्मका दर्शन करना हो, उन को इस मन्त्रभाग का मनन करना उचित है। इस मन्त्रभागमें पाठकों को कई प्रकारके मन्त्रों का देखना होगा। कई मन्त्र तो सरल होनेपर भी गाम्भीर्य की दृष्टिसे बड़े ही गम्भीर प्रतीत होंगे, परन्तु कई मंत्रोंके मन्त्र और वाक्य कठिन और क्लिष्ट प्रतीत होने पर भी उन का आशय बिलकुलही सरल होगा। मंत्रोंके अर्थ और आशय ज्ञात करके हम सब को ब्रह्म का दर्शन करने का यत्न करना चाहिये। देखिये; इस सूक्त का यह प्रारम्भ है—

ज्येष्ठ ब्रह्म

यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति।
स्वः यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥१

' (यः भूतं भव्यं च सर्वं) भूत और भविष्य तथा वर्तमान कालमें जो है, उस सबमें (अधितिष्ठति) अधिष्ठित होता है, (यस्य च केवलं स्वः) जिसका अपना निज तेज है, (तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः) उस श्रेष्ठ ब्रह्मके लिये हमारा प्रणाम है। ' इसी ज्येष्ठ ब्रह्मका हमें इस लेखमें दर्शन करना है।

' तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ' यह चरण स्कम्भसूक्त में मन्त्र ३२–३४, ३६ इन चारों मंत्रोंमें है। इस चरणसे इस सूक्तके पूर्वके स्कम्भसूक्तके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध प्रतीत होता है। (स्कम्भ सूक्त, अथर्व० १०।७)

भूत कालमें जो हो चुका था, वर्तमान समयमें जो हो रहा है और भविष्य कालमें जो होगा, इन सबमें ब्रह्मतत्त्व ओतप्रोत हुआ है। कालकृत विविध भावोंमें अखण्ड ब्रह्मतत्त्व एकरस हुआ है, सर्वव्यापक होता है। पूर्व वेदमें बताया है कि, यज्ञका आत्मरूप पहिले मिट्टीके यज्ञपात्र अर्थात्-निमित्त-प्रयोजन-कारणको सोचना पड़ता है।

इस दृष्टिसे तिसरा मन्त्र देखिये—

ब्रह्ममें सब समर्पित है

स्कम्भेन इमे विष्टभिते द्यौश्च भूमिश्च तिष्ठतः।
स्कम्भ इदं सर्वं आत्मन्वत् यत् प्राणत् निमिषत् च यत्।। २ ॥

' (स्कम्भेन वि-स्तभिते) उसके आधारस्तम्भने विशेष रीतिसे धारण किये हैं द्युलोक और भूलोक (तिष्ठतः) अपने स्थानपर ठहरे हैं। (यत् आत्मन्वत् निमिषत् सर्वं) जो आत्मवान्, निमेष उन्मेष करनेवाला तथा आत्मावाला है, वह यह सब (स्कम्भे) इस आधारस्तम्भमें ठहरा है। '

जो प्राण धारण करता है, आँखोंकी पलकें हिलाता है, जिसमें आत्मा है, वह सब इस श्रेष्ठ ब्रह्ममें है। जिस तरह घड़ा मिट्टीमें रहता है, जिस तरह जेवर सोनेमें रहते हैं, वैसे ही यह सब ब्रह्ममें रहा है। यहां प्राणधारी सजीव जगत् सब ब्रह्ममें है, ऐसा कहा है। यह कहनेका कारण यही है कि ' जीव ' ब्रह्मसे सर्वथा पृथक् सत्तावाला है, ऐसा कईयोंका मत है, उसके निराकरण करनेके लिये सब प्रकारका सजीव जगत् भी उसीमें समाविष्ट हुआ है, ऐसा यहां कहा है। द्यावापृथिवीमें रहा सब विश्व उसीमें है, यह ऊपर कहा ही है।

एकही सनातन, पुरातन अथवा सबसे प्राचीन देवता है। यह देवताही स्वयं (सर्वं परि बभूव) सब कुछ बन जाती है। सब ओरसे अथवा सब प्रकारसे स्वयं सब कुछ बनती है। वही एक देवता अपनी शक्तिसे इस विश्वमें प्रकाश करती है और अपनी दूसरी शक्तिसे आंखसे देखती भी है। अर्थात् प्रकाश देनेवाला सूर्य भी वही बनी है और पलकें मूंदनेवाली आंख अर्थात् द्रष्टाका नेत्र भी वही बनी है। और एकही सत्से ये दोनों रूप हुए हैं। उषा, सूर्य अर्थात् प्रकाश भी उसीका रूप है और दृश्य देखनेवाली आंख भी उसीका दूसरा रूप है। दृश्य विश्व (सर्वं बभूव), देखनेवाली आंख (एकेन मिषता वि चष्टे) और दर्शनका साधन प्रकाश (उषसो विभातीः) यह सब एकही सनातन देवतासे होता है। वही सनातन देवता (१) दृश्य विश्व, (२) दर्शन साधन प्रकाश और (३) द्रष्टाकी आंख यह सब त्रिपुटी बनती है।

सनातनं एनं आहुः उताद्य स्यात् पुनर्णवः।
अहोरात्रे प्र जायेते अन्यो अन्यस्य रूपयोः॥२३॥

' (एनं सनातनं आहुः) इस देवताकोही सनातन कहते हैं। (उत अद्य पुनः नवः स्यात्) परन्तु यह आजही फिर नया बनता है। अर्थात् यह नया बननेपर भी सनातनही है। जैसे (अन्यो अन्यस्य रूपयोः) भिन्न भिन्न रूपवाले (अहोरात्रे) दिन और रात्रिके विभिन्न रूप [एक सूर्यसेही] (प्रजायेते) होते हैं।'

जैसे एकही सूर्यसे दिनका प्रकाश और रात्रिका अन्धकार ये परस्पर विरुद्ध गुणधर्मवाले दो विभिन्न रूप बनते हैं, उसी तरह इसी एक सनातन देवसे एक पुनः पुनः नया बननेवाला रूप और दूसरा पुराना बनकर नाशको प्राप्त होनेवाला रूप, ऐसे दो रूप बनते हैं। एकही सनातन देवसे यह सब हो रहा है। इस विषयमें अगला मंत्र देखिये—

प्रजापतिका गर्भवास

प्रजापतिः चरति गर्भे अन्तः अदृश्यमानो बहुधा वि जायते। अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यद् अस्य अर्धं कतमः स केतुः॥ १३॥

' (अदृश्यमानः प्रजापतिः) न दीखनेवाला प्रजापालक ईश्वर (गर्भे अन्तः चरति) गर्भके अन्दर संचार करता है और (बहुधा वि जायते) बहुत प्रकार विशेष रीतिसे उत्पन्न होता है। इस तरह उसने (अर्धेन) अपने आधे भागसे (विश्वं भुवनं जजान) सब भुवनोंको उत्पन्न किया है और (यत् अस्य अर्धं) जो इसका आधा भाग है, उस आधे भागको जाननेका (सः केतुः कतमः ?) वह चिह्न कौनसा समझना है ? ' अर्थात् किस पद्धतिसे उसका संपूर्ण ज्ञान हो सकता है ?

इस मन्त्रमें कहा है कि प्रजापति परमेश्वरही गर्भमें आकर, जन्म लेकर, नाना प्रकारकी योनियोंमें विशेष रीतिसे उत्पन्न होता है। वह स्वयं अदृश्य है, तथापि विशेष रीतिसे नाना योनियोंमें उत्पन्न होनेपर वही दृश्यमान होता है और वह दीखने लगता है। इसी ढंगसे उसने अपने एक अंगसे संपूर्ण विश्वका सृजन किया है। विश्वके सृजन करनेकी उसकी रीति मन्त्रके पूर्वार्धमें वर्णन की है। स्वयं ही गर्भमें आकर नाना योनियोंमें जाकर नाना रूपोंका धारण करनाही वह रीति है।

प्रजापतिके गर्भ धारण करनेके विषयमें वेदमें अन्यत्र भी ऐसाही कहा है—

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते। तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरा तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा। (वा. य.३१।१९)

' प्रजापति परमेश्वर गर्भके अन्दर संचार करता है। वह न जन्मनेवाला होनेपर भी अनेक प्रकारसे विविधताके साथ उत्पन्न होता है। उसके मूल स्थानको ज्ञानी लोग देखते हैं। उसीमें निश्चयसे सब भुवन रहते हैं।'

यहां भी प्रजापति परमेश्वर गर्भमें बालक-रूपसे जन्म लेता है, यह बात कही है। इसी तरह सब संसारका सृजन इसने होता है। सब भुवन इस परमेश्वरमें वैसेही हैं कि जिस तरह मृत्तिकामें घडे रहते हैं। यही मन्त्र तैत्तिरीय आरण्यकमें आया है—

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तः। अजायमानो बहुधा विजायते। तस्य धीराः परिजानन्ति योनिं। मरीचीनां पदं इच्छन्ति वेधसः॥
(तै. आ. ३।१३)

अम्भस्य पारे भुवनस्य मध्ये। नाकस्य पृष्ठे महतो महीयान्। शुक्रेण ज्योतींषि समनुप्रविष्टः। प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तः। (तै. आ. १०।१।१; महानारा. उ. ३।१)

आत्मवान् पूजनीय यक्ष रहता है। इसे ब्रह्मज्ञानी जानते हैं।' यक्ष पदका अर्थ आत्मा अथवा परमेश्वर है। इस विषयमें निम्नलिखित मन्त्र देखिये—

महद् यक्षं भुवनस्य मध्ये तपसि क्रान्तं सलिलस्य पृष्ठे । तस्मिन्छ्रयन्ते य उ के च देवा वृक्षस्य स्कन्धः परित इव शाखाः ॥

(अ० १०।७।३८)

'भुवनके मध्यमें एक बडा यक्ष (पूजनीय देव) है, वह तेजस्वितामें विशेष है, और जो प्राकृतिक जलके पृष्ठपर विराजता है। इसमें जो कोई देव हैं वे रहते हैं, जैसी वृक्षकी शाखायें वृक्षके स्तम्भके आधारसे रहती हैं।'

इस तरह 'यक्ष' पदसे आत्मा परमात्माका बोध होता है। पूर्वोक्त स्थानमें वर्णित नौ द्वारोंवाली सुंदर नगरीमें रहनेवाला यक्ष शरीरधारी आत्मा है, क्योंकि इंद्रियोंसे काम लेनेवाला यह है। यह विश्वात्माका अंश है। 'अनन्त' और 'सान्त' का भाव बतानेके लिये तथा जीव और शिवका विचार जाननेके लिये ये मन्त्र बडे उपयोगी हैं। इससे जीवात्माकी योग्यता का पता लग सकता है।

अकामो धीरो अमृतः स्वयंभू रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः । तमेव विद्वान्न बिभाय मृत्योरात्मानं धीरं अजरं युवानम् ॥ ४४ ॥

'यह आत्मा (अ-कामः) निष्काम, (धी-रः, धीरं,) बुद्धिको प्रकाशित करनेवाला, (अ-मृतः) अमर, (स्वयं-भूः) स्वयंही नाना रूपोंमें प्रकट होनेवाला, स्वयं होनेवाला, (रसेन तृप्तः) रससे तृप्त, (न कुतश्चन ऊनः) कहीं भी न्यून नहीं अर्थात् सर्वत्र पूर्णतया भरपूर, (अजरं) जरारहित, कभी क्षीण न होनेवाला, (युवानं) युवा, सदा तरुण है। (तं आत्मानं एव विद्वान्) उस आत्माको जाननेवाला (मृत्योः न बिभाय) मृत्युसे डरता नहीं।' मृत्युका भय उससे दूर हो जाता है, क्योंकि मैं 'अजर अमर हूं' यह सत्य ज्ञान उसको अपने अनुभवसे मालूम होता है।

यहां नवद्वार शरीरमें रहनेवाले जीवात्माके वर्णनके साथ साथही परमात्माका वर्णन किया गया है। इसका कारण यह है कि परमात्माका अंशही जीवात्मा है, वह सर्वथा पृथक् अथवा सर्वथा विभिन्न नहीं है। अतः तत्त्वतः ये दोनों एकही हैं। इसलिये साथ साथ और एकही रीतिसे दोनोंका वर्णन हुआ करता है। पाठक वेदके मंत्रोंमें सर्वत्र यही बात [illegible] सकते हैं।

शतं सहस्रं अयुतं न्यर्बुदं असंख्येयं स्वं अस्मिन्निविष्टम् । तदस्य घनन्यभिपश्यत एव तस्मादेवो रोचत एष एतत् ॥२४॥

'सौ, हजार, लक्ष, करोडों अथवा असंख्येय इसके (स्वं) अपने निज बल (अस्मिन् निविष्टं) इसमें अर्थात् इस विश्व प्रविष्ट हुए हैं। (अभिपश्यतः) सब ओर देखनेवाले सब [illegible] (अस्य तत्) इसका वह बल (घ्नन्ति) प्राप्त करते, भोगते हैं। (तस्मात् एष देवः) इसलिये यह देव (एष रोचते) इसको प्रकाशित करता है।'

इस परमात्मामें अनन्त प्रकारके बल हैं। वे बल इस विश्व नाना पदार्थोंमें फैले हैं, जैसा सूर्यमें प्रकाश, अग्निमें दाहकत्व वायुमें प्राणशक्ति, जलमें शांति, अन्नमें तृप्ति, दूधमें पुष्टि औषधियोंमें रोग दूर करनेकी शक्ति, आदि अनन्त शक्तियां इस विश्वके अनन्त पदार्थोंमें संप्रहित हुई हैं। ये सब बल परमेश्वरके (स्वं) निज बल हैं और परमेश्वरसेही यह विश्व [illegible] नेके कारण इसके वे बल (निविष्टं) भरपूर भर गये हैं। ये बल इस विश्वमें हैं, यह बात परमेश्वर देखता और जानता है। उसके देखते देखते सब प्राणी इन बलोंको प्राप्त करते, इन [illegible] पर हमला करते, उनको भोगते और (घ्नन्ति) उनको [illegible] समाप्त करते हैं, जिस तरह अन्न खाकर समाप्त करते हैं। परन्तु इससे उसका असंख्येय बल कम नहीं होता, प्रभु इससे उस प्रभुका (रोचते) तेज बढता है और वह प्रभु इस विश्वको अधिकाधिकही तेजस्वी बनाता है अर्थात् उसका [illegible] अपरिमित और अक्षय है।

बालादेकं अणीयस्कं उतैकं नैव दृश्यते । ततः परिष्वजीयसी देवता सा मम प्रिया ॥२५॥

'(एकं बालात् अणीयस्कं) एक विभाग बालसे भी सूक्ष्म है और (एकं न एव दृश्यते) दूसरा विभाग दीखता नहीं है। (ततः परिष्वजीयसी देवता) इन दोनोंको आलिंगन देनेवाली वह देवता (सा मम प्रिया) मुझे प्रिय है।'

एक देवता है, वह दोनोंको आलिंगन देकर रहती है। यहां आलिंगन देनेका तात्पर्य दोनोंको अपने अन्दर समा लेना है। जिस तरह 'तेला' और 'मिठास' इन दोनोंमें 'मिठास'

आलिंगन देकर रहती है, अपने अन्दर समा लेती है, इस तरह यहां समझना उचित है। इस देवताके अन्दर जो जो विभाग समाये हैं, उनमेंसे एक बालसे भी सूक्ष्म है, परन्तु 'दृश्य' है और दूसरा 'अदृश्य' है। दृश्य और अदृश्य विश्वको अपने अन्दर समा लेनेवाला जो है, वही आनन्दरूप प्रिय प्रभु है। यह समस्या इस तरह समझना उचित है—

ढेला+मिठास = मिश्री. खडी शक्कर
क्षर+अक्षर = पुरुषोत्तम (गीता अ. १५।१५-१८)
दृश्य+अदृश्य = परिष्वजीयसी प्रिय देवता
(अथर्व. १६।८।२५)
जड+चेतन = परमेश्वर

इस तालिकासे मन्त्रका वर्णन स्पष्ट हो जायगा। पाठक इस ढंगसे इस समस्याको समझ लेनेका यत्न करें।

इयं कल्याण्यजरा मर्त्यस्यामृता गृहे।
यस्मै कृता, शये स, यश्चकार, जजार सः ॥२५॥

'(इयं) यह प्रिय देवता (कल्याणी) कल्याण करनेवाली, (अ-जरा) जरारहित अर्थात् कभी क्षीण न होनेवाली (मर्त्यस्य गृहे अमृता) मर्त्यके घरमें अमर है। (यस्मै कृता) जिसके लिये यह देवता है, (सः शये) वह सो रहा है, (यः चकार) जो बनाता है, (सः जजार) वह जीर्ण अथवा क्षीण होता जाता है।'

पूर्वोक्त २५ वें मन्त्रमें (१) प्रिय परिष्वजीयसी देवता, (२) अतीयरूक दृश्य रूप, (३) अदृश्य तत्त्व, ऐसे तीन स्वभाव कहे हैं। ये परस्पर सर्वथा पृथक् हैं, या पृथक नहीं हैं, यह प्रश्न यहां उत्पन्न होता है। पूर्व मंत्रमेंही कहा है कि जो एक प्रिय देवता है, वही अन्य दोनों भावोंको अपने अन्दर समा लेती है। देखिये—

१ **तत् विश्वरूपं संभूय एकमेव भवति** (११)= यह सब विश्वरूप मिलकर एकही तत्त्व होता है, अर्थात् भेदिकता इसमें नहीं रहती।

२ **आविः, सन्निहितं गुहा, तत्र सर्वं प्रतिष्ठितं** (१)= प्रकट और गुप्त ऐसा जो है, वह सब उसमें रहता है।

३ **सनाभी सर्वं परि बभूव** (२०)= [illegible] एक हुआ रहा है।

४ **महीं देवीं एकेन विभातीं, एकेन वि चष्टे** (३०)= बडी देवी एक शक्तिसे प्रकाश देती है और दूसरी शक्तिसे देखती है। [अर्थात् दृश्य, दर्शन, द्रष्टा एकही है।]

५ **अहोरात्रे प्रजायेते** (२३)= जैसे एकही सूर्यसे दिन और रात्रि यह द्वन्द्व उत्पन्न होता है, [वैसेही अन्य द्वन्द्व एकसेही बनते हैं।]

६ **प्रजापतिः गर्भे अन्तश्चरति, बहुधा विजायते, विश्वं जजान** (१३)= प्रजापति गर्भमें प्रविष्ट होकर नाना रूपोंमें उत्पन्न होता है, इस तरह उन्होंने सब विश्व उत्पन्न किया है।

७ **स एव जातः, स जनिष्यमाणः** (बा. य.३२।४) = बना विश्व भी वही है और बननेवाला विश्व भी वही है।

८ **अनन्तं, अन्तवत् च, समन्ते** (१२)= अनन्त और सान्त इकट्ठे मिले हैं।

इन सब मंत्रोंका भाव ठीक तरह ध्यानमें लानेसे सब विश्वके 'संपूर्ण पदार्थ मिलकर एकही सत्-तत्त्व होता है,' यह सदैक्यवादका अथवा सर्वेश्वरवादका सिद्धांत अच्छी तरह समझमें आ सकता है। वेदके सूक्तोंमें यह सर्वेश्वरवाद अनेक वचनोंद्वारा बताया है, वैसाही इस उपरि उद्धृत सूक्तमें भी कहा है।

कुमार कुमारी एकही देव

त्वं स्त्री, त्वं पुमानसि, त्वं कुमार, उत वा कुमारी। त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि, त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः। [illegible] पितोत वा पुत्र एषां, उतैषां ज्येष्ठ उत वा कनिष्ठः। एको ह देवो मनसि प्रविष्टः, प्रथमो जातः, स उ गर्भे अन्तः ॥२६॥

[illegible]

है; तू इनका पिता है और तूही इनका पुत्र है, इनमें तू श्रेष्ठ है और कनिष्ठ भी तूही है, एकही देव (मनसि प्रविष्टः) मनमें प्रविष्ट होकर (प्रथमः जातः) पहिले जन्मा था, (सः उ गर्भे अन्तः) वही गर्भमें अब पुनः जन्मा है । '

जैमिनीय उपनिषद्ब्राह्मणमें यह मन्त्र इस तरह आता है—

उतैषां ज्येष्ठ उत वा कनिष्ठ उतैषां पुत्र उत वा पितैषाम् । एको ह देवो मनसि प्रविष्टः पूर्वो ह जज्ञे स उ गर्भेऽन्तः ॥

[जै. उप. भा. ८५ (३।१०।१२)]

श्वेताश्वतर उपनिषद्में यह ' त्वं स्त्री० ' मंत्र अथर्ववेदके मंत्रके समानही है । पिप्पलाद संहितामें इस तरह है—

उतैव ज्येष्ठोत वा कनिष्ठोतैव भ्रातोत वा पितैवः ।

' यही भ्राता तथा पिता भी यही देव है, ' ऐसा स्पष्ट कहा है । अर्थात् परमेश्वरही पिता, माता, पुत्र, भाई, बहिनके रूपमें आया है, यह विशेष स्पष्ट भाव पिप्पलाद शाखाके मंत्रने बताया है । यदि सभी रिश्तेके पदार्थ परमात्माके रूप हैं, तब तो अपने घरके लोग भी उसीके रूप हैं, यह क्या कठिन होगा ? सब रिश्तेमें घरके सब लोग आनेसे वे सब देवस्वरूपही हैं, अतः माता, पिता, चचा, भाई, बहिन, पुत्र, पुत्री, पत्नी, इष्टमित्र, नौकर-चाकर, गणगोत, [illegible] अन्य ईश्वरकेही रूप हैं, अतः उनको वैसा [illegible] यथायोग्य सेवा करनी चाहिये । अब [illegible] इस दृष्टिसे परिशुद्ध और पवित्रतायुक्त होगा, [illegible] वैदिक धर्मके सिद्धान्तपर आरूढ समझा [illegible] और लिखते—

सबका एक जीवन-स्रोत

[illegible] पूर्णात् पूर्ण उदचति, पूर्णं पूर्णेन सिच्यते ।
[illegible] तद्देव विद्याम, यतस्तत् परिषिच्यते ॥२२॥

[illegible] है, पूर्णके द्वारा पूर्णको सिंचित [illegible] (तस्य तत् विद्याम) इसका वह [illegible] (यतः तत् परिषिच्यते) जिससे इस- [illegible] ' इसी आशयका एक मन्त्र बृ. आ. १।५ [illegible] में है—

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्ण उदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण एव अवशिष्यते ॥

(बृ. उ. ५।१)

' यह ब्रह्म पूर्ण है, यह विश्व भी पूर्ण है, क्योंकि उस पूर्ण ब्रह्मसे ही इस पूर्णका उदय हुआ है । पूर्णसे पूर्ण लेनेपर पूर्णही अवशिष्ट रहता है । '

दोनों मन्त्रोंका तत्त्वज्ञान एकसाही है । पूर्ण ब्रह्मसे पूर्ण विश्वका उदय होता है, इस पूर्ण विश्वको उस पूर्ण ब्रह्मसे जीवन मिलता है; अतः इस पूर्ण विश्वके मूल कारणरूप उस ब्रह्मको जानना है जिससे इसको जीवन मिल रहा है । जीव और जगत्का मूल स्रोत एक है और सबका जीवनसत्त्व वही है । क्योंकि सब मिलकर एकही सत्-तत्त्व होता है । '

अन्ति सन्तं न जहाति, अन्ति सन्तं न पश्यति ।
देवस्य पश्य काव्यं, न ममार, न जीर्यति ॥१०॥
अपूर्वेणेषिता वाचः, ता वदन्ति यथायथम् ।
वदन्तीर्यत्र गच्छन्ति, तदाहुर्ब्राह्मणं महत् ॥११॥

' (अन्ति संतं न जहाति) पास रहनेवालेको वह त्यागता नहीं, पर (अन्ति संतं न पश्यति) पास रहनेवालेको वह देखता नहीं । (देवस्य काव्यं पश्य) इस देवताका यह काव्य देखो, वह (न ममार) मरता नहीं और (न जीर्यति) जीर्ण भी नहीं होता ॥ (अ-पूर्वेण इषिताः वाचः) जिसके पूर्व नहीं है, ऐसे आत्मदेवने प्रेरित की हुई वे वाणियाँ (ताः यथायथं वदन्ति) यथायोग्य बोलती हैं (यत्र वदन्तीः गच्छन्ति) जहां वे वाणियाँ जाती हैं और बोलती हैं, वे एकही (आहुः) कहती हैं कि (तत् महत् ब्राह्मणं) वही एक ब्रह्म है । '

वह ब्रह्म सबके पास है, तथापि दीखता नहीं, पर उसे [illegible] भी नहीं जा सकता । विश्वकी इस [illegible] उसकी दिव्य चतुराई दीखती है, [illegible] उसका ज्ञान सदा एकसा रहनेवाला है । [illegible] द्वारा सबकी वाणियाँ प्रेरित होती हैं और [illegible] प्रकट होता है । वे सब वाणियाँ एकही ' यहां एकही सत्य ब्रह्म है ' और कुछ [illegible] है और उसीके सब रूप हैं ।

ब्रह्म सब पदार्थोंके रूप धारण कर [illegible] मिट्टीके समान सब पदार्थोंमें वह है । सबही [illegible] के रूप हैं, तथापि वह इनमें [illegible] दीखता नहीं, पर होई उसका इन्कार भी [illegible]

इसमें वही एक सत्य है। यह उसकी चतुराई है, यह उसीका अपूर्व ज्ञान है, वह शाश्वत टिकनेवाला ज्ञान है, इसमें घटबढ़ नहीं होगा। जो मनुष्य योगसाधनादि द्वारा इस ब्रह्मकी प्रेरणा को अपने अन्दर अनुभव कर सकता है, वही इस यथातथ्य ज्ञानको जान सकता है। आत्माकी शुद्ध प्रेरणासेही मनुष्यमें सत्य ज्ञान स्फुरित होता है। किसी बाह्य प्रमाणोंके विना प्राप्त होनेवाला सत्य ज्ञान यही है। इस ज्ञानसे एकही घोषणा होती रहती है। वह है– 'एकही ब्रह्म सर्वत्र ओतप्रोत भरा है, दूसरा कुछ भी यहां नहीं है।' यह एकत्वदर्शनही मुख्य और सत्य-दर्शन है। (सर्वं खलु इदं ब्रह्म) 'सबही सचमुच ब्रह्म है।' यहां ब्रह्मके विना दूसरा कुछ भी नहीं है।

देखना और जानना

ऊर्ध्वं भरन्तं उदकं कुम्भेनेव उदहार्यम्।
पश्यन्ति सर्वे चक्षुषा, न सर्वे मनसा विदुः ॥१४॥

'(कुम्भेन इव उदहार्यं) घडेसे भरकर लानेयोग्य (उदकं ऊर्ध्वं भरन्तं) जल घडेसे भरकर ऊपर उठाकर लानेके समान सर्वे चक्षुषा पश्यन्ति) सब लोग अपने आंखसे उसको देखते तो हैं, पर (सर्वे मनसा न विदुः) सब मनसे उसे ठीक तरह जानते नहीं।'

जल घडेमें भरकर उस घडेको सिरपर रखते हैं और लाते हैं। लानेवाले लोग घडेको तो देखते हैं, पर जलको नहीं देखते। इसी तरह सब लोग ब्रह्मकोही देखते और ब्रह्मके साथही व्यवहार करते हैं, परन्तु सब लोग यथायोग्य रीतिसे सब वस्तुको ब्रह्मस्वरूप अपने मनसे अनुभव नहीं करते।

वस्तुतः सबका सब व्यवहार ब्रह्मसेही हो रहा है, क्योंकि सब विश्वही ब्रह्म है, अतः सबका सब व्यवहार ब्रह्मके साथ विश्वसे हो रहा है। परन्तु इस सत्य बातको सब लोग नहीं जानते। सब समझते हैं कि 'हम व्यवहार तो ब्रह्मसे भिन्न जगत्से कर रहे हैं।' परन्तु सब लोग चक्षुसे जो देख रहे हैं, वह ब्रह्मही है, अतः व्यवहार भी उसीसे किया जा रहा है। परन्तु कोई भी इस सत्यको जानते नहीं। जब इस सत्यको जानेंगे, तभी उनका व्यवहार परिशुद्ध होगा।

दूरे पूर्णेन वसति दूर ऊनेन हीयते।
महद् यक्षं भुवनस्य मध्ये, तस्मै बलिं राष्ट्रभृतो भरन्ति ॥ १५ ॥

'(पूर्णेन दूरे वसति) पूर्णके साथ दूरतक रहता है, वह (ऊनेन दूरे हीयते) न्यूनतासे दूरतक विरहित है अर्थात् उसमें न्यूनता नहीं है, परन्तु सर्वत्र पूर्णताही है। ऐसा बडा (यक्षं) पूजनीय देव भुवनके मध्यमें है, इसीके लिये राष्ट्रका भरणपोषण करनेवाले सब देव उसीको बलि अर्पण करते हैं।'

इस विश्वमें सर्वत्र पूर्णता है, किसी स्थानपर न्यूनता नहीं है, क्योंकि सब विश्व ब्रह्मकाही रूप है। यही पूजनीय देव इस विश्वमें है। इसको छोडकर यहां दूसरा कुछ भी नहीं है। सब अन्य देवताएं जो भी यहां हैं, वे सब इसीके रूप हैं और वे इसके तेजको धारण करती हैं और अपने कर्मसे इसीकी पूजा करती हैं।

शरीरमें जिस तरह इंद्रियां, कर्मों और ज्ञान द्वारा आत्माकी ही उपासना करती हैं, इसी तरह विश्वमें सूर्यादि सभी देव परमात्माकी शक्तिसे प्रकाशित होते हैं और परमात्माके लिएही आत्मार्पण करते हैं अर्थात् जो करते हैं, वह उसीके लिये करते हैं।

यतः सूर्य उदेति, अस्तं यत्र च गच्छति।
तदेव मन्येऽहं ज्येष्ठं, तदु नात्येति किञ्चन ॥१६॥

'जहांसे सूर्यका उदय होता है और जहां सूर्य अस्त हो चला जाता है, वही श्रेष्ठ ब्रह्म है, ऐसा मैं मानता हूं। (तद् उ किंचन न अत्येति) उसका उल्लंघन कोई नहीं कर सकता।'

सृष्टिके प्रारम्भमें सूर्यकी उत्पत्ति और सृष्टिके अन्तमें सूर्यका अस्त होना, इसी तरह अन्यान्य देव-गणोंकी निर्मिति और उनका प्रलय, यह सब इस महद् ब्रह्मके अधीन रहनेसेही होता है, इसलिये यह ब्रह्म सबसे श्रेष्ठ है और उसके नियमोंका उल्लंघन कोई भी नहीं कर सकता। यह इस ब्रह्मका सामर्थ्य है।

चार प्रकारकी प्रजाएं

(ऋषिः । अग्निः । त्रिष्टुप्)

तिस्रो ह प्रजा अत्यायं आयन्, न्यन्या अर्कमभितोऽविशन्त। तूष्णीं ह तस्थौ मनसा विजानन्, कस्तद् वधं चक्रुषो जग्म्यो हरिः ॥ १ ॥

(अथर्व. १-१-१)

इस सूक्तके ऋषि कुत्स नामके सूक्तद्रष्टा हैं, वह कहते हैं–

(जमदग्निर्भार्गवः । पवमानः । त्रिष्टुप्)

प्रजा ह तिस्रो अत्यायं ईयुः न्यन्या अर्क अभितो विविश्रे । बृहत् ह तस्थौ भुवनेष्वन्तः पवमानो हरित आ विवेश ॥

(ऋ. ८।१०१।१४)

इस मंत्रका विवरण शतपथब्राह्मणमें निम्नलिखित प्रकार आता है–

प्रजापतिर्ह वा इदमग्र एक एवास ।...स प्रजा असृजत, ता अस्य प्रजाः सृष्टाः परावभूवुः, तानीमानि वयांसि... ॥ १ ॥ ...स द्वितीयाः ससृजे ता अस्य परावभूवुः, तदिदं क्षुद्रं सरीसृपं यदन्यत्सर्पेभ्यस्तृतीयाः ससृजे...ता अस्य परैव बभूवुः, त इमे सर्पाः...॥२॥... स प्रजा असृजत, ता अस्य प्रजाः सृष्टाः स्तनमेवाभिपद्य तास्ततः संबभूवुस्ता इमा अपराभूताः ॥ ३ ॥ तस्मादेतदृषिणाभ्यनूक्तं । ' प्रजा ह तिस्रो अत्यायमीयुरिति । '

(श. ब्रा. २।५।१।१-७)

' प्रजापति प्रारम्भमें अकेलाही था... उसने प्रजाएँ उत्पन्न कीं, उत्पन्न होतेही वे मर चुकीं, ऐसा तीन वार हुआ । ये पक्षी, जन्तु और सर्प आदि प्राणी थे । प्रजापतिने विचार किया कि ये प्रजाएं क्यों मरती हैं ? तब उसको मालूम हुआ कि इनको अन्न मिलता नहीं, इसलिये मरती हैं। तब उन्होंने चौथी वार स्तनवाली प्रजा उत्पन्न की । स्तनमें दूध होनेसे यह प्रजा जीवित रहने लगी । इस वृत्तान्तको दर्शानेके उद्देश्यसे ऋषिने **'प्रजा ह तिस्रो अत्यायं ईयुः०** ' इत्यादि मन्त्र कहा है ।' इस स्पष्टीकरणको सामने रखते हुए ऊपरके मन्त्रका अर्थ हम करते हैं–

' (तिस्रः प्रजाः अत्यायं आयन् = ईयुः) तीन प्रकारकी प्रजाएं पूर्व समयमें नाश को प्राप्त हुईं, पश्चात् (अन्याः अर्क अभितः न्यविशन्त) चौथी वार उत्पन्न हुई प्रजा सूर्यप्रकाशमें अथवा अग्निके सन्निध रहने लगी । (रजसः विमानः बृहत् तस्थौ) अन्तरिक्षका मापन करनेवाला बडा देव वहां रहता है, (हरितः हरिणीः आ विवेश) हराभरापन हरेभरे वनस्पतियोंमें उसीसे हुआ है । '

(ऋग्वेद-पाठका अर्थ)- ' (भुवनेषु अन्तः बृहत् तस्थौ) भुवनोंके मध्यमें एक बडा देव है, वह (पवमानः हरितः आ विवेश) वायु हरेभरे वृक्षोंमें प्रविष्ट हुआ है । '

तीन प्रकारकी प्रजाएं प्रथम उत्पन्न हुईं, पश्चात् चौथी मानवी प्रजा उत्पन्न हुई । यह मानवी प्रजा सूर्यकी तथा अग्निकी उपासना करती हुई समाज संगठन करके रहने लगी । सूर्य और अग्नि इनका उपास्य है, वायु भी इनका उपास्य है । ये देव औषधिवनस्पतियोंमें प्रविष्ट होकर प्राणियोंकी सहायता करते हैं । यह इस मंत्रका आशय है ।

ये सब प्रजाएं प्रजापतिने अपनेमेंसे उत्पन्न कीं, क्योंकि केवल प्रजापति अकेलाही था, अतः उसने जो प्रजाएं उत्पन्न कीं, वह अपनेसेही कीं । सूर्य, अग्नि तथा वायु भी उसीसे उत्पन्न हुए और वे प्रजाओंके सहायक हुए । इसी तरह वनस्पतियाँ भी प्रजाओंकी सहायक हुई हैं ।

यहां प्रजापतिके प्रजाओंके सृजनके विषयमें कहा है । सूर्यकी उत्पत्तिके पश्चात् उससे विद्युत् अग्नि वनस्पतिके सृजनकी बात कही है । ये सब विभिन्न पदार्थ नहीं हैं, परन्तु ये प्रजापतिके ही रूप हैं, यही यहांके कहनेका तात्पर्य है ।

अपाद् अग्रे समभवत्, सो अग्रे स्वराभरत् ।
चतुष्पाद् भूत्वा भोग्यः, सर्वं आदत्त भोजनम् ॥११॥
भोग्योऽभवद् अथो अन्नं अदद् बहु ।
यो देवं उत्तरावन्तं उपासाते सनातनम् ॥ १२ ॥

' (अग्रे अपात् सं अभवत्) सृष्टि उत्पत्तिके प्रारंभमें पादहीन सृष्टि उत्पन्न हुई । (अग्रे सः स्वः आभरत्) प्रारंभमें उसने उसमें चैतन्य भर दिया । (चतुष्पाद् भोग्यः भूत्वा) चतुष्पाद् भोगनेयोग्य होकर (सर्वं भोजनं आदत्त) सब पदार्थ भोजनके लिये उसने प्राप्त किये ॥११॥ (भोग्यः अभवत्) भोग भोगने योग्य वह बना; (अथो बहु अन्नं अदत्) और उसने बहुत अन्न खाया । वह सनातन (उत्तरावन्तं देवं) श्रेष्ठ देवकी उपासना करेगा । '

प्रारंभमें पादहीन सृष्टि, मछली सांप आदि होती है । उस सृष्टिमें चैतन्य कार्य करने लगता है । पश्चात् गाय आदि चतुष्पाद सृष्टि होती है, वह सब घास आदि खाती है । परमेश्वर सब प्राणियोंके रूपोंमें अवतीर्ण होकर सब पदार्थोंका भोग करता है, स्वयं भोगोंको भोगता है और दूसरोंका भोग्य भी बनता है । जैसी मछली छोटी मछलीको खाती है और स्वयं

मछलीका भोजन बनती है। आगे मानवप्राणीमें यही ब्रह्मकी उपासना करके स्वयं ब्रह्म होनेका दावा करता मछलीसे मानवतक यह विविध सृष्टि उसीकी है।

यहां सूर्यकी उत्पत्तिका वर्णन अंशमात्र है। इस सूर्यके वर्णनके मंत्र इसके आगे आते हैं—

सूर्यचक्र = कालचक्र

द्वादश प्रधयः, चक्रमेकं, त्रीणि नभ्यानि, क उ तच्चिकेत। तत्राहताः त्रीणि शतानि शंकवः षष्टिश्च खीला अविचाचला ये ॥ ४ ॥

'(द्वादश प्रधयः) चक्रकी बारह हालें हैं, (एकं चक्रं) एक चक्र है, (त्रीणि नभ्यानि) तीन नाभियां हैं, (तत् कः उ चिकेत) इसको कौन ठीक तरह जानता है ? (तत्र त्रीणि शतानि शंकवः आहताः) उस चक्रमें तीन सौ शंकु लगाये हैं, (षष्टिः च खीलाः ये अविचाचलाः) और साठ खीले जो स्थिर रूपसे लगाये हैं।'

सूर्यचक्रका यह वर्णन है। कालचक्र भी इसे कहते हैं। चक्कर लोहेकी हाल होती है, वैसी १२ हालें इस कालचक्रपर शिशिर ये छः ऋतु हैं, क्योंकि एक ऋतुमें दो महिने होते हैं; अतः इनको छः जुडवे भाई कहा है। ये १२ महिने हुए। एक अकेला है, यह अकेलाही जन्मा है। यह तेरहवां महिना है। अधिक मास अथवा मलमास इसको कहते हैं, क्योंकि या पुरुषोत्तम मास भी इसको कहते हैं।

इस तेरहवें महिनेके साथ अन्य बारह महिने अथवा छः ऋतु अपना सम्बन्ध जोडना चाहते हैं। इसका अर्थ इतना ही है कि चान्द्र वर्षके ३५४ दिन हैं और सौर वर्षके ३६५ दिन हैं। इन दोनों वर्षोंमें ११ दिनोंका फेर है। अतः चान्द्र वर्षका सौर वर्षके साथ मेल रखनेके लिये तीन चान्द्र वर्षोंके अन्तमें एक अधिक मास मानते हैं, यह तेरहवां महिना है। इस तरह इसका ६ ऋतुओं और १२ महिनोंसे सम्बन्ध है। इस मेलका यह वर्णन है।

(कुत्सः । आत्मा । त्रिटुप्)

एकचक्रं वर्तत, एकनेमि, सहस्राक्षरं प्र पुरो नि पक्षा। अर्धेन विश्वं भुवनं जजान, यदस्यार्धं कव तद् बभूव। १ ॥

(अथर्व. १०।८।१)

जो पूर्व पश्चिम घूमता रहता है तथा सबको प्रकाश देता हुआ आयुका मापन करता है।

रथके सात घोडे

पञ्चवाही वहत्यग्रमेषां प्रष्टयो युक्ता अनुसंवहन्ति। अयातं अस्य ददृशे न रूपं, परं नेदीयोऽवरं दवीयः ॥ ८ ॥

'(पञ्चवाही एषां अग्रं वहति) पांच घोडोंवाला रथ इसको आगे खींचता है, (युक्ताः प्रष्टयः अनुसंवहन्ति) जोडे हुए घोडे इसको साथ साथ खींचते हैं। (अस्य अयातं रूपं न ददृशे) इसका आक्रमित न हुआ रूप कोई देखता नहीं। (परं नेदीयः) दूरका पास और (अवरं दवीयः) पासवाला दूर है।'

सूर्यके रथके सात घोडे हैं। यहां कहा है कि पांच घोडे रथको जोडे हैं और दो घोडे बाजूसे जोडे हुए चलाते हैं। इस तरह कुल सात घोडे हुए हैं। ये सूर्यके सात किरणही हैं। मुख्य पांच और बाजूके अस्पष्ट दो मिलकर सात किरण हैं। येही सूर्यके घोडे हैं। इसकी गति कोई देख नहीं सकता और इसको रोकनेवाला भी कोई नहीं है।

एकके तीन देव

ये अर्वाङ् मध्य उत वा पुराणं वेदं विद्वांसं अभितो वदन्ति। आदित्यमेव ते परि वदन्ति सर्वे, अग्निं द्वितीयं, त्रिवृतं च हंसम् ॥ १७ ॥

'(ये) जो (अर्वाङ् मध्ये उत वा पुराणं) अबके, मध्य कालके अथवा प्राचीन कालके (वेदं विद्वांसं) वेदके ज्ञाताकी (अभितः वदन्ति) प्रशंसा करते हैं, (ते सर्वे) वे सब (आदित्यं एव परि वदन्ति) सूर्यकीही प्रशंसा करते हैं, तथा (द्वितीयं अग्निं) दूसरे अग्निकी और (त्रिवृतं हंसं) तीसरे हंसकीही प्रशंसा करते हैं।'

सूर्य, अग्नि और हंसकी प्रशंसा सर्वत्र की जाती है। हंस भी प्रातःकालका सूर्य है और अग्नि रात्रिके समय सूर्यका प्रतिनिधि है। इस तरह सूर्य, विद्युत्, अग्नि, एक ही हैं। यज्ञमें इनकी प्रशंसा होती है। इस तरह यज्ञ, सूर्य और वेदकी प्रशंसाका तत्त्व सूर्यके वर्णनके साथ संबंधित हुआ है।

सहचात्यं वियतावस्य पक्षौ हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गम्। स देवान् सर्वानुरस्युपदद्य, संपश्यन् याति भुवनानि विश्वा ॥ १८ ॥

(अथर्व. १०।८।१८; १३।२।३८; १३।३।१८)

'(स्वर्गं पततः अस्य हरेः हंसस्य) स्वर्गको उडनेवाले इस हरे हंसके (सहस्र-अर्यं पक्षौ वियतौ) सहस्र दिनके उड्डानके लिये पंख फैले हैं। वह हंस सब देवोंको (उरसि उपदद्य) अपनी छातीपर धारण करके (विश्वा भुवनानि संपश्यन्) सब भुवनोंको देखता हुआ (याति) जाता है।'

(यही मन्त्र अथर्ववेदमें ३ बार आया है, दशम काण्डमें एक बार और तेरहवें काण्डमें दो बार।)

यहांका हंस सूर्यही है। यह ब्रह्माण्डके मध्यमें है। सूर्यसे जो किरण ऊपरकी ओर जाता है, उसको ब्रह्मांडके अन्ततक पहुंचनेके लिये एक सहस्र दिन लगते हैं, ऐसा इस मन्त्रका अर्थ कई मानते हैं। कइयोंका ऐसा मत है कि अधिक मासकी अवधि १००० दिनोंके अनंतर होती है। इस विषयकी विशेष खोज होनेकी आवश्यकता है, तबतक यह मन्त्र अज्ञातही रहेगा।

सत्येनोर्ध्वस्तपति, ब्रह्मणाऽवाङ् विपश्यति। प्राणेन तिर्यङ् प्राणिति, यस्मिन् ज्येष्ठं अधिश्रितम् ॥ १९ ॥

'(सत्येन ऊर्ध्वः तपति) सत्यसे अग्नि ऊर्ध्व गतिसे जलता रहता है, (ब्रह्मणा अवाङ् विपश्यति) ब्रह्मसे ज्ञानसे नीचेकी ओर सूर्य देखता रहता है, (प्राणेन तिर्यङ् प्राणिति) प्राणके साथ वायु तिरछा श्वसन करता है, (यस्मिन् ज्येष्ठं अधिश्रितं) जिसमें ज्येष्ठ ब्रह्म व्यापक है।'

अग्निका ज्वलन ऊर्ध्वभागमें होता है। जो सत्यनिष्ठ होते हैं, वे ऐसेही सीधे सरल रहते हैं। सूर्य अपने प्रकाशसे नीचेकी ओर देखता रहता है। वायु तिरछा भ्रमण करता हुआ बहता रहता है। सूर्य, अग्नि और वायुसे सब विश्व भरा है, जो ज्येष्ठ ब्रह्मसे परिपूर्ण है अर्थात् ज्येष्ठ ब्रह्मके ही सूर्य, वायु और अग्नि ये रूप हैं।

येभिर्वात इषितः प्रवाति ये ददन्ते पञ्च दिशः सधीचीः। य आहुतिमत्यमन्यन्त देवाः अपां नेतारः कतमे त आसन् ॥ ३५ ।

'(येभिः इषितः वातः प्रवाति ?) किनसे प्रेरित हुआ वायु बहता है ? (ये सधीचीः पञ्च दिशः ददन्ते ?) कौन पांचों दिशाओंको इकट्ठा स्थान देते हैं ? (ये देवाः आहुतिं अत्यमन्यन्त ?) कौन देव हैं जो आहुतियोंकी पर्वाह नहीं करते ? (कतमे ते अपां नेतारः आसन्) कौनसे वे देव हैं कि जो जलोंको प्रवाहित करते हैं ? '

इन सब प्रश्नोंका एकही उत्तर है। वह यह कि ' वह सर्व

एकही ब्रह्मके द्वारा हो रहा है।' एकही ब्रह्मके बने ये देव , जो नाना कर्म करते हैं।

इमां एषां पृथिवीं वस्त एको, अन्तरिक्षं पर्येको बभूव। दिवं एषां ददते यो विधर्ता, विश्वा आशाः प्रति रक्षन्त्येके ॥ ३६ ॥

'(एषां एकः इमां पृथिवीं वस्ते) इनमेंसे एक अग्नि पृथिवीमें बसता है, (एकः अन्तरिक्षं परि बभूव) दूसरा वायु अन्तरिक्षमें व्यापता है। (एषां यः विधर्ता दिवं ददते) इनमें जो उनका धारणकर्ता है, वह द्युलोक सूर्यका धारण करता है और (एके विश्वाः आशाः प्रति रक्षन्ति) दूसरे देव सब दिशाओंकी रक्षा करते हैं।'

अग्नि पृथ्वीमें, विद्युत् अन्तरिक्षमें, सूर्य द्युलोकमें और अन्य सब सब दिशाओं रहते हैं और सबकी रक्षा करते हैं। ये सब देव एकही ज्येष्ठ ब्रह्मकी महिमा हैं, यह पहिले कहाही है।

यदन्तरा द्यावापृथिवी अग्निरैत् प्रदहन् विश्वदाव्यः। यत्रातिष्ठन्नेकपत्नीः परस्तान् क्वेवासीन्मातरिश्वा तदानीम् ? ॥ ३९ ॥
अप्स्वासीन्मातरिश्वा प्रविष्टः प्रविष्टा देवाः सलिलान्यायन्। बृहन् ह तस्थौ रजसो विमानः, पवमानो हरित आ विवेश ॥ ४० ॥

'(यत् विश्वदाव्यः अग्निः द्यावापृथिवी अन्तरा) जब सबको जलानेवाला अग्नि द्युलोक और पृथिवीके बीचमें जो है, सबको (प्रदहन् ऐत्) जलाता हुआ जाता है, तब (यत्र एकपत्नीः परस्तात् अतिष्ठन्) एक देवकी देवपत्नियां आगे कहां रही थीं ? और (तदानीं मातरिश्वा क्व इव आसीत्) वायु कहां था ?'

'(मातरिश्वा अप्सु प्रविष्टः आसीत्) वायु जलोंमें प्रविष्ट होकर रहा था, (देवाः सलिलानि प्रविष्टाः आसन्) सब देव अन्तरिक्षस्थ उनमें प्रविष्ट हुए थे, (रजसः विमानः बृहन् ह तस्थौ) अन्तरिक्षका मापन करता हुआ बडा देव बडी दृढता था, (पवमानः हरितः आ विवेश) दौडता हुआ हरनेवाला देव दोनों रूपोंमें आविष्ट हुआ था।'

जब अग्नि सब विश्वको जलाने लगे और सब देव [illegible] सबको हो जावें, तब वायु क्या करता है जब अग्नि सब है, तब वायु उसमें प्रविष्ट होता है।

यो वै ते विद्यादरणी याभ्यां निर्मथ्यते वसु। स विद्वान् ज्येष्ठं मन्येत स विद्यात् ब्राह्मणं महत् ॥ २० ॥

'(यः ते अरणी विद्यात्) जो उन दोनों अरणियोंको जानता है, (याभ्यां वसु निर्मथ्यते) जिनसे अग्नि नामक वसुदेव मन्थनद्वारा निर्माण किया जाता है, (स मन्येत) वह माने कि (ज्येष्ठं विद्वान्) मैं ज्येष्ठ ब्रह्म जानता हूं, (स महत् ब्राह्मणं विद्यात्) वह बडे ब्रह्मको निःसंदेह जानता है।'

जिस तरह अरणियोंमें अग्नि रहता है और घर्षणसे वह प्रकट होता है, अरणिकी लकडियां सदा अग्निमय रहती हैं, उसी प्रकार सब विश्व ब्रह्ममय है, यह जो जानता है, वह ब्रह्मको यथावत् जानता है।

मन्त्र, छन्द और यज्ञ

या पुरस्ताद् युज्यते या च पश्चाद्, या विश्वतो युज्यते, या च सर्वतः। यया यज्ञः प्राङ् तायते तां त्वा पृच्छामि कतमा सर्चाम् ॥ २१ ॥

'जो ऋचा यज्ञके प्रारम्भमें बोली जाती है और जो अन्तमें कही जाती है, जो सर्वत्र बोली जाती है और जो पशुबंध कर्ममें कही जाती है, जिससे यज्ञका विस्तार किया जाता है, वह कौनसी ऋचा है ? यह मैं तुमसे पूछता हूं।'

वेदमंत्रोंसे यज्ञ सिद्ध होता है और यज्ञ किसीको आता है। यज्ञ दिनके समय होता है। इसलिये सूर्य जैसा यज्ञ है, वैसाही वेदप्रवर्तक भी है।

उत्तरेणेव गायत्री अमृतेऽधि वि चक्रमे। साम्ना ये साम संविदुः बृहस्तद् दधिरे क्व ? ॥ ४१ ॥

'(सामज्ञाः उत्तरेण इव) सामज्ञोंके ऊपर, [illegible] अमर लोकके ऊपर (वि चक्रमे) वह देव विक्रम करता है। (साम्ना ये सामसंविदुः) सामसे अच्छी तरह जो [illegible] जानते हैं, उन (बृहः तत् दधिरे) [illegible] देव बडा धारण करते हैं ?'

[illegible]

होती है, उसी तरह वेदमंत्रोंके पाठसे तथा यज्ञक्रियाके करनेसे उनमें प्रवीणता प्राप्त होती है। इससे अजन्मा एक देव का जो सर्वत्र गुप्त रूप है, वह जाना जा सकता है।

फलश्रुति

निवेशनः संगमनो वसूनां देव इव सविता सत्यधर्मा। इन्द्रो न तस्थौ समरे धनानाम् ॥ ४२ ॥

'(वसूनां संगमनः) धनोंका दाता, (निवेशनः) सब का निवेश करनेवाला, (सविता देवः इव सत्यधर्मा) सविता देवके समान सत्यधर्मका प्रवर्तक ज्येष्ठ देव (धनानां समरे) धनोंके जीतनेके युद्धमें (इन्द्रः न तस्थौ) इन्द्रके समान स्थिर रहता है।'

अर्थात् इस ज्येष्ठ ब्रह्मके ज्ञानसे सर्वत्र विजय होता है, जैसा इन्द्र सदा विजयी रहता है।

विशेष स्पष्टीकरण

इस लेखके अन्तिम विभागमें रखे १८ मंत्रों का स्पष्टीकरण यहां थोडासा अधिक करना आवश्यक है। **'चार प्रकारकी प्रजाएं'** इस शीर्षकके आगेके मंत्र ऐसे हैं कि जिनमें मंत्रस्थ पद तो आधान हैं, पर इनका आशय और इन मन्त्रोंका प्रयोजन प्रकृत विषयके साथ क्या है, यह समझना मुश्किल है। इसलिये 'ज्येष्ठ ब्रह्म' के साथ इन मंत्रोंका क्या संबंध है, इतनाही इस स्पष्टीकरणमें बताना है। मंत्रस्थ उपदेशका अर्थ विवरण यहां बताना नहीं है। इन मंत्रोंसे 'ज्येष्ठ ब्रह्म' का वर्णन किस प्रकारसे हुआ है, इतनाही अब हम यहाँ बताते हैं—

'चार प्रकारकी प्रजाएं' इस शीर्षकके नीचे इस सूक्तके (मंत्र २, २१, २२) ये तीन मंत्रों हैं। इन मंत्रोंमें यह बताया है कि, 'प्रारम्भमें एकही परमात्मा था, उसने अपनेमें प्रजाओंका सर्जन किया। सब विश्व जो तेजस्वी और हरामरा दीखता है, वह उसकी सामर्थ्यसेही है। प्रथम सृष्टि पादरहित थी, जिसको नदी, नक्षत्रों आदि कहते हैं। पश्चात् पादवाली सृष्टि हुई। सब सृष्टिमें उसी का चैतन्य संचारित हुआ। वही प्रभु अज हुआ और वही नाना अर्थात् अनेकवाला हुआ। इस तरह सत्य और मिथ्या वही एकही हुए हैं।' सर्वेश्वरवाद का यह तत्त्व यह बताता है।

'अहं अन्नं, अहं अन्नादः' ऐसा तैत्तिरीय उपनिषद् (३-१०-५) में कहा है। पाठक इस वेदवचनसे उपनिषद्के साथ तुलना करके देखें।

'सूर्यचक्र, कालचक्र' का वर्णन इसके आगे है। इस वर्णनके मंत्र तीन हैं। 'कालचक्र' के विषयमें विचार इस लेखमालामें इससे पहले विस्तारपूर्वक किया है, वहीं नोट यहां देखें। काल एक और अखंड है उसके ऋतु, मास, आदि विभाग कल्पित हैं। यद्यपि ये व्यवहारके आधार हैं, तथापि उनके कारण कालकी अखंडितता नष्ट नहीं होती। यह मुख्य बात यहां बतानी है।

'रथके सात घोडे' सूर्यकिरणके सात रंग हैं, उनमें पांच रंग स्पष्ट हैं और आजूबाजूके दो अस्पष्ट हैं। इन सात रंग सूर्यके श्वेत किरणमें हैं। सात रंग परस्पर भिन्न होते हुए भी वे अकेले श्वेत रंगमें समत्व पाये हैं। एक श्वेत रंगके पृथक्करणसे सात रंग होते हैं और सात रंगोंके मेलसे एक श्वेत रंग बनता है, यह बात सूर्यके रथके साथ घोडोंके बतायी है। एक आत्मासे पंच भूत, अहंकार और बुद्धि ये सात तत्त्वों का होना और सात तत्त्वोंका आत्मामें लीन होना, इस वर्णनसे स्पष्ट दीखता है। यह बात ८ वें मंत्रमें पढके देख सकते हैं। 'यह सब मिलकर एकही होता है' यह ११ वें मंत्र का कथन इस आठवें मंत्रमें उदाहरणसहित दर्शाया है।

'एकके तीन देव' का वर्णन करनेवाले आगे चार मंत्र हैं। सूर्य, विद्युत्, अग्नि ये आधिभौतिक तत्त्वके तीन देव हैं, परन्तु ये एकही अग्नितत्त्वके रूप हैं। सूर्यमेंही अन्तरिक्षके मेघमण्डलमें विद्युत् संचार करती है और वह भूमिपर जिसमें अग्नि उत्पन्न होती है। सूर्य-किरण मणिमेंसे गुजर कर कुछ घास पर डालनेसे भी सूर्यकिरण का रूपान्तर अग्निमें होता है। इस तरह द्युलोक का सूर्य, अन्तरिक्षका विद्युत् और भूलोकका अग्नि ये तत्त्वतः एकही हैं। इसलिये मंत्रमें कहा है कि यह सब वर्णन अकेले आदित्यका ही वर्णन है। (मंत्र १०)

अन्तरिक्षमें वायु, विद्युत्, मेघ, जल आदि देवता हैं। ये सभी सूर्यके ही रूप हैं और सब देवोंका एकत्व सूर्यमें है

है। ज्येष्ठ ब्रह्मसे सूर्य, सूर्यसे विद्युत् और अग्नि होते हैं। तरह ज्येष्ठ ब्रह्मसे सब देव उत्पन्न होते हैं, अर्थात् ज्येष्ठ ही सब देवोंके रूप धारण किये खड़ा है।

सब मंत्रोंके वर्णनमें यह भाव प्रमुख है। अरणीद्वारा मन्थनसे न होनेवाले अग्नि का वर्णन २० वें मन्त्रमें है। लकड़ीमें न अग्नि का प्रकटीकरण इस तरह होता है। लकड़ीमें भी कोई उत्पत्ति संगृहीत होती है, जो अग्निरूपसे प्रकट होती । अर्थात् ये सभी देव सूर्यके ही रूप हैं, इस सदैक्यवादको पुष्ट ये सब मन्त्र कर रहे हैं। इन मंत्रोंमें जो अन्य वर्णन , उसका हमारे प्रस्तुत विषयसे सम्बन्ध नहीं है, अतः सूक्त न मुख्य वर्णन का ही आशय यहां दिया है।

'मन्त्र, छन्द और यज्ञ' विषयका वर्णन करनेवाले आगे दो मन्त्र हैं। जिस मन्त्रसे यज्ञका प्रारंभ किया जाता है और जिससे यज्ञकी समाप्ति होती है, वह मन्त्र ओंकार है। इसका तत्त्व यह है—

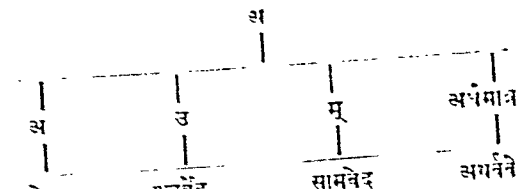

इस तरह 'अ' कारसे 'ओंकार' और ओंकारसे सब देव होते हैं। सब वाणीमें अकारही नाना अक्षरोंके रूप लिये रहा है, जैसा ज्येष्ठ ब्रह्म विश्वरूप बना है। यह दोनोंकी समानता पाठक देखें।

'फलश्रुति' का वर्णन अन्तिम मन्त्रमें है। सविता सब विश्व का उत्पादन अपनेमेंसे करता है, इसके ये सब नियम इसीमें स्थायी रहते हैं। ज्येष्ठ ब्रह्मसे सविता और सविता से सब विश्वकी उत्पत्ति होती है। इसी तरह सब वस्तुओंका संगमन एक देवमें होता है, यही ज्येष्ठ ब्रह्म है। जो यह तत्त्व-ज्ञान जानता है, वह इन्द्रके समान युद्धोंमें विजेता होता है। वह निर्भय होता है और विजयी होता है।

सर्वेश्वरवाद अथवा सदैक्यवादका तत्त्वज्ञान ऐसा गंभीर तत्त्व-ज्ञान है और वेदका यही ज्ञानसर्वस्व है। पाठक इसका ग्रहण करें।

कुत्स ऋषिके दर्शनकी

विषयसूची

विषय	पृष्ठांक
कुत्स ऋषिका तत्त्वज्ञान	३
इसके कुलका विचार	,,
कुत्स (आंगिरस) ऋषिके मन्त्र	६
[ऋग्वेद प्रथम मण्डल, पञ्चदशोऽनुवाकः षोडशोऽनुवाकश्च]	,,
देवतानुसार मन्त्र-संख्या	,,
छन्दानुसार मन्त्र-संख्या	,,
सम्पूर्ण सूक्त	७
कुत्स ऋषिका दर्शन	९
(प्रथम मण्डल, १५ वाँ तथा १६ वाँ अनुवाक)	,,
[१] अग्नि-प्रकरण	
(१) उन्नतिका मार्ग	१२
मनुष्योंका उन्नति	१३
अग्निको प्रदीप्त करना	१५
ऋत्विजोंका सम्मान	१५
(२) पुत्रोंकी पालना और राष्ट्रका उत्थान	१५
सन्तानोंका परिपालन और संवर्धन	१८
प्रथम मन्त्र	,,
द्वितीय ,,	१९
दसवें ,,	,,
तृतीय मन्त्र	२०
चतुर्थ ,,	,,
पञ्चम ,,	,,
षष्ठ ,,	२१
सप्तम ,,	,,
अष्टम ,,	,,
नवम ,,	२२
दशम ,,	,,
[२] प्रजाओंका रक्षक	२३
[३] [illegible]	२४

(४) कल्याणका मार्ग
उन्नतिका सत्य मार्ग
(५) जनताका हितकर्ता
सब मानवोंका सहायक नेता
अग्निका सूक्त
[२] इन्द्र-प्रकरण
(६) विश्वका पालक
इन्द्रका वर्णन
(७) शत्रुरहित प्रभु
प्रभुकी महिमा
(८) शत्रु-वध करनेवाला वीर
वीरके कर्म
(९) वीरता
शूरवीर इन्द्र
[३] विश्वे देव-प्रकरण
(१०-११) अनेक देवताओंकी प्रार्थना
विश्वे देव क्या है ?
इस सूक्तके देवता, प्रार्थनाका उद्देश्य
द्युलोक, अन्तरिक्ष लोक, भूलोक
संरक्षण कैसे होगा ?
[४] इन्द्राग्नी-प्रकरण
(१२-१३) शत्रुनाशक और अग्रणी वीर
इन्द्र और अग्निके वर्णनमें वीरोंका स्वरूप
[५] ऋभु-प्रकरण
(१४- १५) ऋभु-कारीगर
कारीगरोंका महत्त्व
ऋभुओंकी कुशलता
(१) एक चमसके चार चमस बनाये
(२) क्षीण गौको दुधारू बनाया
(३) वृद्धोंको तरुण बनाना
(४) सुन्दर रथ बनाना
(५) घोड़ोंको सिखाना
(६) प्रजा देनेवाला अन्न
मर्त्योंको देवत्व-प्राप्ति
ऋभुओंकी देवत्व-प्राप्ति
उपदेश

२५ [६] अश्वि-प्रकरण
२६ (१६) अश्विदेवोंके प्रशंसनीय कार्य
२७ अश्विदेवोंके कार्य
२८ [७] उषा-प्रकरण
२९ (१७) उषाका काव्य
[८] रुद्र-प्रकरण
३० (१८) शत्रुको रुलानेवाला महावीर
३२ रुद्र सूक्तकी व्याख्या
३३ नागरिक स्वास्थ्यकी परीक्षा
३५ [९] सूर्य-प्रकरण
३६ (१९) जगत्प्रदीप सूर्य
३८ उषाके पश्चात् सूर्य
,, [१०] सोम-प्रकरण
४० (२०) सोम
सोमरसका पान
४१ [११] ब्रह्म-विद्या
४३ (२१) ज्येष्ठब्रह्मवर्णनम् ।
(अथर्व० १०।८।१-४४)
४४ ज्येष्ठ ब्रह्मका सम्यक् दर्शन
,, ज्येष्ठ ब्रह्म, ब्रह्ममें सब समर्पित हैं
सब मिलकर एकही तत्त्व है
४६ पुरातन तत्त्व
५० सनातन देवता
प्रजापतिका गर्भवास
५३ ऋषियोंका आश्रम और देवोंका मंदिर
५६ ताना और बाना, चक्रमें आरे
,, उसके रूपसे विश्वका रूप
,, कमलमें यक्ष
,, कुमार कुमारी एकही देव
,, सबका एक जीवन-स्रोत
,, देखना और जानना
५७ चार प्रकारकी प्रजाएं
,, सूर्यचक्र = कालचक्र
,, रथके सात घोड़े
,, एकके तीन देव
५८ मन्त्र, छन्द और यज्ञ

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(११)

त्रित ऋषिका दर्शन

(ऋग्वेदका १६ वाँ अनुवाक)

लेखक

पं० श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,

अध्यक्ष, स्वाध्याय-मण्डल, औन्ध, [जि० सातारा]

संवत् २००४

मूल्य १॥) रु०

मुद्रक तथा प्रकाशक— **वसंत श्रीपाद सातवळेकर**, B. A.
भारत-मुद्रणालय, औंध (जि. सातारा)

त्रित ऋषिका तत्त्वज्ञान

—×—

त्रित आप्त्य एक ऋषि था। जिसके देखे सूक्त ऋग्वेदमें हैं। उसके नामका उल्लेख जैसा ऋग्वेदमें है, वैसाही अथर्ववेदमें भी है। 'त्रित' पदका अर्थ 'तीर्णतमः' अर्थात् अज्ञानसे पूर्ण-तया मुक्त, परम ज्ञानी, क्लेशोंसे पूर्णतया छूटा हुआ है। ज्ञान और विज्ञानसे संपन्न ऐसा इसका अर्थ है। 'अपां पुत्रः आप्त्यः' जलोंका पुत्र विद्युत् अग्नि है, वही आप्त्य त्रित है। अग्नि जैसा तेजस्वी ऋषि ऐसा इसका भाव है। यह विभावसुका पुत्र है ऐसा एक मंत्रमें कहा है, वह मंत्र यह है—

विभावसुका पुत्र त्रित

(वत्सप्रिः भालन्दनः। अग्निः)

इमं त्रितो भूरि अविन्दद् इच्छन् वैभूवसो मूर्धनि अघ्न्यायाः। स शेवृधो जात आ हर्म्येषु नाभिः युवा भवति रोचनस्य ॥(ऋ. १०।४६।३)

'(वैभूवसः त्रितः) विभावसुके पुत्र त्रितने इस भूमिके ऊपर अग्निको प्राप्त करनेकी इच्छा की। वह अग्नि घरोंमें उत्पन्न हुआ और पश्चात् वह प्रकाशका केन्द्र बना।'

यहां त्रितका पिता विभावसु है ऐसा लिखा है। 'आप्त्य त्रित' और 'वैभूवस त्रित' ये एकही हैं, या दो विभिन्न हैं, इसकी खोज होनी चाहिये। इसके विषयमें वेदमंत्रोंमें पता नहीं मिला। यदि अन्यत्र किसीको कुछ पता लगा तो वह अवश्य प्रसिद्ध करे। त्रितकी स्त्रियोंके विषयमें आगे दिये मंत्रमें उल्लेख है—

त्रितकी स्त्रियाँ

(इषाबाश्व आत्रेयः। पवमानः सोमः)

आदीं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्ति अद्रिभिः। इन्दुं इन्द्राय पीतये ॥ (ऋ. ९।३२।२)

(रहूगण आंगिरसः। पवमानः सोमः)

एतं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्ति अद्रिभिः। इन्दुं इन्द्राय पीतये ॥ (ऋ. ९।३८।२)

'(ये त्रितस्य योषणः) त्रितकी स्त्रियाँ पत्थरोंसे हरितवर्ण सोमको कूटती और इन्द्रके पीनेके लिये रस निकालती हैं।' यहां त्रितकी स्त्रियाँ सोमरस निकालती हैं और इन्द्रके लिये तैयार करती हैं ऐसा लिखा है। अन्यत्र यज्ञमें ऋत्विज सोमरस निकालते हैं। यहां घरमें घरकी स्त्रियाँ सोमरस निकालनेका वर्णन है। अर्थात् यह पेय घरेलू है।

त्रित यज्ञ करता था, इससे उसकी गणना देवोंमें की जाती थी, ऐसा अगले मंत्रसे प्रतीत होता है—

देवोंमें त्रितकी गणना

(गृत्समदो भार्गवः शौनकः। विश्वे देवाः)

अहिर्बुध्न्योऽज एकपादुत। त्रित ऋभुक्षाः सविता चनो दधेऽपां नपात् ॥
(ऋ. २।३१।६)

"अहिर्बुध्न्यः, अज एकपात्, त्रितः, ऋभुक्षाः, सविता, अपां नपात्" इन देवोंमें त्रितकी गणना की है। अर्थात् त्रित ऋषि भी है और देव भी है। अथवा ऋषि होता हुआ देवत्वको प्राप्त हुआ था। क्योंकि यह त्रित इन्द्रके समान शूर था, देखो—

त्रितके समान इन्द्रका शौर्य

(सप्त आंगिरसः। इन्द्रः)

इन्द्रो यद् वज्री धृषमाणो अन्धसा भिनद् वलस्य परिधींरिव त्रितः ॥
(ऋ. १।५२।५)

'अन्नसे उत्साहित हुए वज्रधारी इन्द्रने, त्रितके समानही वलके दुर्गकी दिवारोंको तोड दिया।' इस मन्त्रमें कहा है कि इन्द्रने जो शत्रुके कोटे तोड दिये, वह कर्म त्रितके कर्मके समान-ही था। यहां इन्द्रके शौर्यके साथ त्रितके शौर्यकी तुलना की है। त्रित और इन्द्रकी युद्धशौर्यके विषयमें समता यहां दिखायी है। देववीरोंके समान ऋषि भी शूर, वीर, धीर तथा युद्धमें निपुण होते थे ऐसा इस मंत्रसे विदित होता है। यही भाव अगले मंत्रमें देखो—

लडनेवाला वीर त्रित

(पुनर्वत्सः काण्वः। मरुतः)

अनु त्रितस्य युध्यतः शुष्मं आवन् उत क्रतुम्। अन्विन्द्रं वृत्रतूर्ये ॥ (ऋ. ८।७।२४)

'इन्द्रके साथके युद्धमें इन्द्रके साथ रहकर युद्ध करनेवाले वित्तके बलको और कर्तृत्वशक्तिको तुमने बढाया, या सुरक्षित किया।' यहां वित इन्द्रके साथ रहकर युद्धके साथ लडता है। इसलिये मरुतोंने वितकी सहायता की और वितका बल बढाया। जैसे मरुत् इन्द्रकी सहायता करते थे वैसेही वे वितकी भी सहायता करते थे। इससे भी यह सिद्ध हो रहा है कि वित इन्द्रके समानही शूर वीर था। वित युद्ध करनेके लिये [illegible] करके तय्यार रखता था, इस विषयमें [illegible]—

शत्रु नाश करनेवाला वित

([illegible] । अत्रिः)

[illegible] सम्यक् संयन्ति धूमिनः ।
[illegible] धमति ॥ (ऋ. ५।५।५)

[illegible] रोतेवे करके [illegible] ग्रामको [illegible] करता है।" यहां [illegible] करके [illegible] माता है [illegible] वित [illegible] जाता [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

प्राप्त हुआ। मातापिताओंके समीप रहकर उनकी सेवा करनेवाला और अपना भ्रातृत्वका संबंध कहनेवाला वित [illegible] शस्त्रोंको भी प्राप्त करता रहा। उस वितने अपने [illegible] किये शस्त्रोंको अच्छी तरह जाना, और इन्द्रकी प्रेरणासे [illegible] वितने बडा युद्ध किया। स्वधाके पुत्र त्रिशिरा [illegible] मारा और वितने गौओंको मुक्त करके और [illegible] वितने मातापिताकी सेवा की, उनसे शस्त्र प्राप्त किये, [illegible] प्रयोग करना जान लिया, पश्चात् इन्द्रकी प्रेरणासे युद्ध [illegible] शत्रुको मारा और उसने बंद रखी गौवें छोडकर मुक्त [illegible]

शत्रुभेदक वित

(गौपोऽत्रिः । इन्द्राग्नी)

उज्झदा चित् स प्र भेदति पृक्षा वाणी इव वितः ॥ (ऋ. ५।८६।१)

'वित शत्रुके तर्कोंका खण्डन करता है, जैसे शत्रुके सुदृढ किलेभी तोड देता है।' यहां वितके दो वर्णन किये हैं, एक शत्रुके किलोंको तोडना, और विचारोंका अपनी युक्ति-प्रयुक्तियोंसे निराकरण करके [illegible] गौवोंका है और दूसरा विद्वत्ताका है। उसका [illegible]—

पृक्षको काटनेवाला वित

(अग्नयो गौपायनाः । अग्निः)

[illegible] वितो व्योतवा पृक्षं विपर्वसि ॥ (ऋ. [illegible])

'[illegible] ([illegible]) [illegible] करके [illegible] वित [illegible] है। [illegible] करनेवाला [illegible] है। [illegible] वित [illegible] है, जिससे यहां [illegible] है, [illegible] [illegible]

[illegible] करनेवाला वित

[illegible]

[illegible]

'इन्द्रकी शक्तिसे बलिष्ठ बने हुए त्रितने कोलादके अपके लिये वराहका वध किया।' वराह एक राक्षस था जिसको त्रितने मारा था। त्रित इतना शूर, वीर, साहसी, विद्वान् और बहुत था इसलिये उसके आश्रयमें बहुत लोग आदर रहा करते थे, इस विषयमें अगला मंत्र देखनेयोग्य है—

त्रितके पास अनेकोंका आना

(उपस्तुतः वार्षिदव्यः । अग्निः)

आ रण्वासो युयुधयः न सत्वनं
त्रितं नशन्त प्र शिषन्त इष्टये ॥

(ऋ. १०।११५।४)

'युद्धमें आनंद माननेवाले वीर जिस तरह बलवान् सेनापतिके पास जाते हैं, उस तरह इष्टकामनाकी पूर्ति करनेके लिये त्रितके पास आकर उसकी सेवा करते हैं।'

त्रितके पास आनेसे इस तरह लाभ होता है, इस तरह त्रितका महत्त्व बढनेसे 'त्रित' पद सन्मानके लिये प्रयुक्त होने लगा। घोडेका सन्मान करनेके लिये घोडेको भी त्रित कहना योग्य माना गया। इस विषयमें एक उदाहरण अब देखो—

अश्वही त्रित है

(दीर्घतमा औचथ्यः । अग्निः)

असि यमो, असि आदित्यो अर्वन्,
असि त्रितो गुह्येन व्रतेन। (ऋ. १।१६३।३)

'गुप्त व्रतके अनुसार हे अश्व! तू यम है, तू आदित्य है, और त्रित भी तूही है।' यहां अश्वही यम, आदित्य और त्रित है ऐसा कहा है। सर्वात्मभावसे यह वर्णन है। एकही ब्रह्म वस्तुका बना यह सब संसार है, इसलिये त्रित, यम, अश्व, आदित्य ये सब एकहीं रूप हैं। गीतामें भी ऐसाही कहा है—

ब्रह्मार्पणं, ब्रह्म हविः ब्रह्माग्नौ, ब्रह्मणा हुतम्।
(भ.गी. ४।२४)

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाऽहमहमौषधम्।
मंत्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम्॥ (भ.गी. ९।१६)

'अर्पण, रवि, अग्नि, आहुति, यज्ञ, क्रतु, स्वधा, औषधि, मंत्र, घी यह सब ब्रह्म (अथवा मैं, किंवा सत् वस्तु) है।' इन मंत्रका भावही इन गीताके श्लोकोंमें कहा है।

सर्वात्मभाव, सर्वैक्यभावसे यह वर्णन देखनेयोग्य है। त्रित युद्धमें जाता था, वह वीर था, इसलिये घोडेको जोतना सजाना आदि भी जानता था, देखो—

त्रितने घोडेको सजाया

(दीर्घतमा औचथ्यः । अग्निः)

यमेन दत्तं त्रित एनं आयुनगिन्द्र एणं
प्रथमो अध्यतिष्ठत्। गन्धर्वो अस्य रशनां
अगृभ्णात् सूरादश्वं वसवो निरतष्ट॥

(ऋ. १।१६३।२)

'यमने दिये इस (घोडे) को त्रितने सज्ज किया, और स्वयं इन्द्रने सबसे प्रथम उसपर आरोहण किया। गन्धर्वने उसकी रस्सियां पकडी थीं, ऐसे घोडेको, हे वसुओं! तुमने सूर्यसे बना दिया था।' यमने घोडा दिया, त्रितने उस घोडेको सजाया अर्थात् उसकी पीठपर आसन आदि ठीक तरह लगाकर तैयार किया, गन्धर्वने उसके लगाम पकडे और उसपर इन्द्र चढकर बैठा। इससे त्रितका इन्द्रसे संबंध क्या था इसका पता लगता है।

त्रित इतना श्रेष्ठ बननेके कारण उसकी स्तुति भी विशेष रूपसे होने लगी, देखो—

त्रितकी सामुदायिक स्तुति

(नाभाकः काण्वः । वरुणः)

त्रितं जूती सपर्यत व्रजे गावो न संयुजे।

(ऋ. ८।४१।६)

'जिस तरह गौवें गोशालामें इकट्ठी होती हैं, वैसे तुम इकट्ठे होकर त्रितका वर्णन करो।' यहां त्रितकी सामुदायिक स्तुति होनेका वर्णन है। इस सूक्तका देवता वरुण है, इसलिये यहांका 'त्रित' पद वरुणका वाचक भी माना जा सकता है। तथा—

(गयः प्लातः । विश्वे देवाः)

त्रितं··· उषसं अक्तुम्॥ (ऋ. १०।६४।३)

'त्रित, उषा, रात्रीका मैं स्तवन करता हूं' यहां अन्य देवोंमें त्रितकी गणना की है। इस विषयमें पूर्व स्थानमें दिया मंत्र भी यहां देखनेयोग्य है। 'देवोंमें त्रितकी गणना' शीर्षक देखो।

इतना होनेपर भी त्रित स्वयं प्रार्थना करता था। देखो—

त्रितकी छननीपर सोम

(रहूगण आंगिरसः । पवमानः सोमः)

स त्रितस्याधि सानवि पवमानो अरोचयत् ।
जामिभिः सूर्य सह ॥ (ऋ. ९।३७।४)

'त्रितके उच्च छननीपर वह छाना जानेवाला सोम चमकने लगा, बहिनों (स्त्रियों या अंगुलियों) के द्वारा वह निचोडा गया।' तथा और भी देखो–

त्रितका सोमरसमें जल मिलाना

(प्रस्कण्वः काण्वः । पवमानः सोमः)

त्रितो विभर्ति वरुणं समुद्रे । (ऋ. ९।९५।४)

'त्रित (समुद्रे) जलमें (वरुणं) वरणीय स्वीकारके योग्य सोमरसको (बिभर्ति) धारण करता है, मिलाता है।' सोमरसमें पीनेके पूर्व जल मिलाते हैं, त्रित वही कार्य कर रहा है। इसके पश्चात् उसके यज्ञमें इन्द्र आता है—

त्रितके यज्ञमें इन्द्र

(आयुः काण्वः । इन्द्रः)

यथा त्रिते छन्द इन्द्र जुजोषसि ।
(ऋ. ८।५२।१)

'हे इन्द्र! जैसा त्रितके यज्ञमें मंत्र-गान सुनता था।' यहां त्रितके घर, या यज्ञमें इन्द्र जाता था और प्रेमसे वेदमंत्रोंका गान सुनता था, ऐसा कहा है। इसमें इन्द्र और त्रितका सख्य बताया है, वही बात और अगले मंत्रमें देखो–

त्रितका सख्य

(गृत्समदः भार्गवः शौनकः । इन्द्रः)

सनेम ये त ऊतिभिस्तरन्तो विश्वाः स्पृध आर्येण दस्यून् । अस्मभ्यं तत् त्वाष्ट्रं विश्वरूपं अरन्धयः साख्यस्य त्रिताय ॥
(ऋ. २।११।१९)

'जो तेरी सुरक्षाओंसे सुरक्षित हुए सब शत्रुओंको दूर करते हैं, आर्योंके द्वारा सब दस्युओंका नाश करते हैं। हमारे हितके लिये उस त्वष्टाके पुत्र विश्वरूप (राक्षस) का नाशकर और त्रितका हित कर।" यहां त्रितके साथ सख्य करनेका उल्लेख है। त्रितका हित करने, त्रितके साथ जो मित्रता है उसको सुरक्षित करनेके लिये इन्द्र यत्न करता है ऐसा इस मंत्रमें कहा है। इन्द्र त्रितकी सहायता करता था इसके कई उदाहरण वेदमंत्रोंमें हैं, देखो—

त्रितको कूवेंसे ऊपर निकाला

(कुत्स आंगिरसः । विश्वे देवाः [बृहस्पतिः])

त्रितः कूपेऽवहितो देवान् हवत ऊतये ।
तच्छुश्राव बृहस्पतिः कृण्वन्नंहूरणादुरु ॥
(ऋ. १।१०५।१७)

'त्रित कूवेंमें गिरा, तब उसने अपनी सुरक्षाके लिये देवोंकी प्रार्थना की, तब बृहस्पतिने वह प्रार्थना सुनी, और उसका आपत्तिसे बचाव किया।' यहां बृहस्पतिने त्रितको कूवेंसे ऊपर निकाला और आपत्तिसे बचाया ऐसा कहा है। त्रितने अनेक (देवान्) देवोंकी प्रार्थना की, उनमेंसे बृहस्पतिने वह सुनी और अन्धकारमय कूवेंसे उस त्रितको ऊपर निकाल दिया और बचाया।

इस मंत्रका भाव आलंकारिक भी हो सकता है। अज्ञानको अन्धेरा कुआ और बृहस्पतिने–ज्ञानदेवने–ज्ञानकी सहायतासे अज्ञानसे मुक्त किया। यह अर्थ भी यहां संभव है। इसी तरह और भी देखो—

त्रितके लिये अर्बुदका वध

(गृत्समदः भार्गवः शौनकः । इन्द्रः)

अस्य सुवानस्य मन्दिनः त्रितस्य न्यर्बुदं वावृधानो अस्तः । अवर्तयत् सूर्यो न चक्रं भिनद् वलमिन्द्रो अङ्गिरस्वान् ॥
(ऋ. २।११।२०)

'इस आनन्ददायक सोमके पीनेसे बढे हुए उत्साहमें त्रितका हित करनेके लिये अर्बुद नामक शत्रुका नाश (इन्द्रने) किया। अंगिरोंके साथ रहनेवाले इन्द्रने, सूर्यके समान अपना चक्र घुमाते हुए, वल नामक शत्रुका नाश किया।'

यहां कहा है कि त्रितके लिये इन्द्रने अर्बुदका वध किया। इस तरह त्रितकी सहायता इन्द्र करता रहा दीखता है। ऐसी सहायता करके इन्द्रने त्रितको बढाया, देखो—

त्रितका यश बढाया

(अहृय आंगिरसः । पवमानः सोमः)

त्रितस्य नाम जनयन् मधु क्षरद् इन्द्रस्य वायोः सख्याय कर्तवे ॥
(ऋ. ९।८६।२०)

' इन्द्र और वायुके साथ मित्रता करनेके लिये मधुर रस निकाला गया, जिससे त्रितका यश बढ गया । ' इन्द्रको सोम देनेसे और त्रितके घर आकर इन्द्रके सोमपान करनेसे त्रितका यश बढ गया यह इस मंत्रका भाव है ।

त्रितको धन-प्राप्ति

(त्रित आप्त्यः । पवमानः सोमः)

उप त्रितस्य पाष्यो: अभक्त यद् गुहा पदम् ॥
त्रीणि त्रितस्य धारया पृष्ठेषु आ ईरया रयिम् ॥

(ऋ. ९।१०२।२-३)

'त्रितके घर सोम कूटनेका गुप्त स्थान है। त्रितकी पीठपर तीन स्थानोंमें धन रख दे।' यहां त्रितने सोम कूटकर सोमरस तैयार किया वह इन्द्रने लिया और त्रितको धन दिया ऐसा वर्णन है । इन्द्रके भक्तको इसी तरह धन प्राप्त होता है । तथा और भी देखो—

त्रितके लिये गौवें दीं

(इन्द्रो वैकुण्ठः । इन्द्रः)

अहं इन्द्रो रोधो वक्षः अथर्वणः
त्रिताय गां अजनयं अहेः अधि ॥ (ऋ. १०।४८।२)

' मैं इन्द्र हूं, अथर्वाका अन्तःकरण मैंही हूं । त्रितके लिये मैंनें गौवें अहि नामक शत्रुसे प्राप्त कीं । ' और त्रितको दीं। इस तरह इन्द्रने त्रितकी बहुतवार सहायता की ।

अब कई मंत्र ऐसे दिये जाते हैं कि जिनका स्पष्टीकरण और यथार्थ ज्ञान इस समयतक नहीं हो सका । देखो—

त्रितमें स्वप्न

(यमः । दुःस्वप्ननाशनम्)

त्रिते स्वप्नमदधुराप्त्ये नरः । (अथर्व. १९।५६।४)

' नरोंनें त्रित आप्त्यमें निद्रा—स्वप्न-रख दिया है।'

त्रितमें पाप

(अथर्वा । पूषा)

त्रिते देवा अमृजत एतद् एनः
त्रित एनन्मनुष्येषु ममृजे ॥१॥
द्वादशधा निहितं त्रितस्यापमृष्टं
मनुष्यैनसानि ॥२॥ (अथर्व. ६।११३।१,३)

' त्रितमें देवोंने यह पाप धोकर रख दिया । त्रितने उसको मानवोंमें शुद्ध करके रखा । बारह प्रकारसे रखा हुआ, त्रितसे धोया हुआ, पाप मानवोंसे भी शुद्ध किया गया । '

त्रित सूर्य

(पृथ्विद्यौऽथर्वा । वरुणः)

त्रितो घतां दाधार त्रीणि ॥ (अथर्व. ५।१।१)

' सबका आधार त्रित तीनोंका धारण करता है । ' पृथ्वी अन्तरिक्ष और द्युलोकका धारण करनेवाले सूर्यका अर्थात् वरुणका यह वर्णन है । पूर्व स्थानमें वरुणके वर्णनमें त्रित आया है उसके साथ इस मंत्रकी संगति लग सकती है ।

त्रित=गर्जना करनेवाला मेघ

(श्यावाश्व आत्रेयः । मरुतः)

सं विद्युता दधति वाशति त्रितः । (ऋ. ५।५४।४)

' विद्युत्के साथ मिलता है और त्रित बडा शब्द करता है । ' यहां त्रित शब्द मेघवाची प्रतीत होता है । इस रीतिसे त्रितका वर्णन वेदमंत्रोंमें है । पाठक इसका मनन करके त्रितका यथार्थ स्वरूप जाननेका प्रयत्न करें ।

अब इस स्थानपर जो त्रितके सूक्त दिये जाते हैं उनका विवरण देवतावार और छन्दवार करते हैं—

त्रितके मंत्रोंकी क्रमवार गणना

(ऋग्वेद प्रथमं मण्डलं)

सूक्त	१०५	विश्वे देवाः	मंत्रसंख्या १९	१९

(ऋग्वेद अष्टमं मण्डलं)

सूक्त	४७	आदित्याः, उषसः	१८	१८

(ऋग्वेद नवमं मण्डलं)

सूक्त	३३	पवमानः सोमः	६	
	३४	,, ,,	६	
	१०२	,, ,,	८	
	१०३ (द्वितः)	,, ,,	६	२६

(ऋग्वेद दशमं मण्डलं)

सूक्त	१	अग्निः	७	
	२	,,	७	
	३	,,	७	
	४	,,	७	
	५	,,	७	
	६	,,	७	
	७	,,		४९
				११९

इनमें त्रितके मंत्र १०६ हैं और द्वितके ६ हैं। मिलकर ११२ हुए। अब इनकी देवतावार गणना नीचे देते हैं।

त्रितके मंत्रोंकी देवतावार गणना

१ अग्निः	मंत्रसंख्या	४९
२ पवमानः सोमः	,,	२६
३ विश्वे देवाः	,,	१९
४ आदित्याः, उषसः	,,	१८
		११२

इस प्रकार अग्निके मंत्र सबसे अधिक और आदित्योंके सबसे कम हैं। अब छन्दवार गणना देखिये—

त्रितके मंत्रोंकी छन्दवार गणना

१ त्रिष्टुप्	मंत्रसंख्या	५०
२ महापंक्तिः	,,	१८
३ पंक्तिः	,,	१७
४ उष्णिक्	,,	१४
५ गायत्री	,,	१२
६ (यवमध्या) महाबृहती	,,	१
		११२

इस तरह यह छन्दो-गणना है। त्रितके मंत्र त्रिष्टुप् छन्दमें अधिक हैं और अन्य छन्दोंमें कम हैं।

अब इनके मंत्रोंका भाव देखो जो आगे दिया जाता है।

स्वाध्याय-मण्डल
औंध (जि. सातारा)
ता. १।१।४८

निवेदक
श्रीपाद दामोदर सातवळेकर
अध्यक्ष, स्वाध्याय-मण्डल, औंध.

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

त्रित ऋषिका दर्शन

(ऋग्वेदका १६ वाँ अनुवाक)

[१] विश्वेदेव प्रकरण

(१) अनेक देवोंकी प्रार्थना

(ऋ. १।१०५) त्रित आप्त्यः (कुत्स आंगिरसो वा)। विश्वे देवाः । पंक्तिः; ८ यवमध्या महाबृहती, १९ त्रिष्टुप् ।

चन्द्रमा अप्स्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।
न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी १
अर्धमिद् वा उ अर्धिन आ जाया युवते पतिम् ।
तुञ्जाते वृष्ण्यं पयः परिदाय रसं दुहे वित्तं मे अस्य रोदसी २
मो षु देवा अदः स्वरवः पादि दिवस्परि ।
मा सोम्यस्य शंशुवः शूने भूम कदा चन वित्तं मे अस्य रोदसी ३

अन्वयः— १ अप्सु अन्तः चन्द्रमाः (आ धावते), दिवि (च) सुपर्णः आ धावते । हिरण्य-नेमयः विद्युतः वः पदं न विन्दन्ति । हे रोदसी ! मे अस्य (स्तोत्रस्य) वित्तम् ॥१॥

२ अर्धिनः अर्धं इत् वै उ । जाया पतिं आ युवते । (सा जायापती) वृष्ण्यं पयः तुञ्जाते । (सा) रसं परिदाय (दुग्धं) दुहे । मे० ॥

३ हे देवाः ! स्वः अदः दिवः परि मो षु अव पादि । हे-दुरः सोम्यस्य शंशुवः शूने कदा चन मा भूम । मे० ॥

अर्थ- १ अन्तरिक्षमें चन्द्रमा [illegible] दौड़ रहा है। [illegible] को स्थान [illegible] प्रार्थना (करते) [illegible]

२ [illegible] पत्नी [illegible] (वे जायापती) [illegible] (वे) [illegible] ॥

३ [illegible] ॥

यज्ञं पृच्छाम्यवमं स तद् दूतो वि वोचति ।
क ऋतं पूर्व्यं गतं कस्तद् बिभर्ति नूतनो वित्तं मे अस्य रोदसी ४
अमी ये देवाः स्थन त्रिष्वा रोचने दिवः ।
कद् व ऋतं कदनृतं क प्रत्ना व आहुतिर्वित्तं मे अस्य रोदसी ५
कद् व ऋतस्य धर्णसि कद् वरुणस्य चक्षणम् ।
कदर्यम्णो महस्पथाति क्रामेम दूढ्यो वित्तं मे अस्य रोदसी ६
अहं सो अस्मि यः पुरा सुते वदामि कानि चित् ।
तं मा व्यन्त्याध्यो वृको न तृष्णजं मृगं वित्तं मे अस्य रोदसी ७
सं मा तपन्त्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः ।
मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यः स्तोतारं ते शतक्रतो वित्तं मे अस्य रोदसी ८
अमी ये सप्त रश्मयस्तत्रा मे नाभिरातता ।
त्रितस्तद् वेदाप्त्यः स जामित्वाय रेभति वित्तं मे अस्य रोदसी ९

४ अवमं यज्ञं पृच्छामि, तत् सः दूतः वि वोचति । (ते) पूर्व्यं ऋतं क्व गतम् ? कः नूतनः तत् विभर्ति ? मे० ॥

५ हे देवाः ! ये अमी त्रिषु स्थन, (ते) दिवः आ रोचने (वर्तन्ते) । वः ऋतं कत् ? अनृतं कत् ? वः प्रत्ना आहुतिः क्व ? मे० ॥

६ वः ऋतस्य धर्णसि कत् ? वरुणस्य चक्षणं कत् ? मदः अर्यम्णः पथा कत् दूढ्यः अति क्रामेम । मे० ॥

७ पुरा सुते यः अहं कानि चित् वदामि, सः अहं अस्मि । तं मा आध्यः व्यन्ति, तृष्णजं मृगं वृकः न । मे० ॥

८ पर्शवः मा अभितः, सपत्नीः इव संतपन्ति । हे शतक्रतो ! मूषः शिश्ना न, ते स्तोतारं मा आध्यः वि अदन्ति । मे० ॥

९ ये अमी सप्त रश्मयः, तत्र मे नाभिः आतता । आप्त्यः त्रितः तत् वेद । सः जामित्वाय रेभति । मे० ॥

४ मैं समीपके यज्ञसे प्रश्न पूछता हूं, उसका (उत्तर) [illegible] दूत (अग्नि) देगाही । (तुम्हारा) वह पुरातन ([illegible] चला आया) सरल भाव कहां गया है ? किस नवीनने [illegible] धारण किया है ? । ० ॥

५ हे देवों ! जो (ये देव) तीनों (स्थानों) में हैं, (वे) द्युलोकके प्रकाश (स्थान) में (रहते हैं) । आपका [illegible] कहां है ? आपका असत् कहां है ? आपकी वह पुरातन आहुति कहां है ? । ० ॥

६ आपका सत्यका धारण करना कहां है ? वरुणकी [illegible] दृष्टि कहां है ? बडे श्रेष्ठ अर्यमाका मार्ग कौनसा है जिससे हम दुष्टोंका अतिक्रमण कर सकेंगे ? । ० ॥

७ पुरातन समयमें सोमयागमें जिस यज्ञमें मैंने कई [illegible] पढे थे, वही मैं हूँ । उसी मुझको मानसिक व्यथाएँ खा रही हैं, जैसी तृप्ति मृगको भेडिया खाता है । ० ॥

८ पसलियाँ मुझे चारों ओरसे पत्नियोंके समान संतप्त [illegible] हैं । हे शतक्रतु ! जिस तरह चुहे कांजी जैसे तन्तुओंको खाते हैं, वैसीही ये व्यथाएँ तेरी उपासना करनेवाले मुझे खा रही हैं । ० ॥

९ जो ये सात किरण हैं, वहांतक मेरा घर है । आप्त्य त्रितको इसका ज्ञान है । इसलिये वह [illegible] भावके लिये प्रार्थना करता है । ० ॥

अमी ये पञ्चोक्षणो मध्ये तस्थुर्महो दिवः ।
देवत्रा नु प्रवाच्यं सधीचीना नि वावृतुर्वित्तं मे अस्य रोदसी १०

सुपर्णा एत आसते मध्य आरोधने दिवः ।
ते सेधन्ति पथो वृकं तरन्तं यह्वतीरपो वित्तं मे अस्य रोदसी ११

नव्यं तदुक्थ्यं हितं देवासः सुप्रवाचनम् ।
ऋतमर्षन्ति सिन्धवः सत्यं तातान सूर्यो वित्तं मे अस्य रोदसी १२

अग्ने तव त्यदुक्थ्यं देवेष्वस्त्याप्यम् ।
स नः सत्तो मनुष्वदा देवान् यक्षि विदुष्टरो वित्तं मे अस्य रोदसी १३

सत्तो होता मनुष्वदा देवाँ अच्छा विदुष्टरः ।
अग्निर्हव्या सुषूदति देवो देवेषु मेधिरो वित्तं मे अस्य रोदसी १४

ब्रह्मा कृणोति वरुणो गातुविदं तमीमहे ।
व्यूर्णोति हृदा मतिं नव्यो जायतामृतं वित्तं मे अस्य रोदसी १५

---

१० अमी ये पञ्च उक्षणः महः दिवः मध्ये तस्थुः, देवत्रा नु प्रवाच्यं सधीचीनाः नि ववृतुः । मे० ॥

११ एते सुपर्णाः आरोधने दिवः मध्ये आसते । ते यह्वतीः अपः तरन्तं पथः वृकं सेधन्ति । मे० ॥

१२ हे देवासः ! नव्यं उक्थ्यं सुप्रवाचनं तत् हितं, सिन्धवः ऋतं अर्षन्ति, सूर्यः सत्यं ततान । मे० ॥

१३ हे अग्ने ! तव त्यत् उक्थ्यं आप्यं देवेषु अस्ति । सः विदुष्टरः नः सत्तः मनुष्वत् देवान् आ यक्षि । मे० ॥

१४ मनुष्वत् सत्तः होता विदुष्टरः देवः देवेषु मेधिरः अग्निः, देवान् अच्छ हव्या सुषूदति । मे० ॥

१५ वरुणः ब्रह्म कृणोति, तं गातुविदं ईमहे । हृदा मतिं वि कृणोति । नव्यः ऋतं जायताम् । मे० ॥

१० ये वे पांच प्रबल बैल हैं (जो) बड़े द्युलोकके मध्यमें रहते हैं, देवोंके संबंधका स्तोत्र पढ़तेही (वे) साथ साथही निवृत्त हुए हैं । ० ॥

११ ये सुन्दर पक्षी द्युलोकके मध्यभागमें रहते हैं, वे विस्तृत जलमें तैरनेवाले मेघिरेको मार्गसे दूर करते हैं । ० ॥

१२ हे देवो ! यह नवीन स्तोत्र उत्कृष्ट स्तोत्र हितकारक है । नदियाँ जलको ला रही हैं और सूर्यने यज्ञ फैलाया है । ० ॥

१३ हे अग्ने ! तेरा वह प्रशंसनीय [illegible] है । वह तू विशेष ज्ञानी हमारे यज्ञमें मनुष्यके समान बैठकर देवोंको यज्ञमें ला । ० ॥

१४ मनुष्यके समान यज्ञमें बैठनेवाला ज्ञानी होता और देवोंमें अधिक बुद्धिमान् अग्निदेव देवोंके लिये हव्य [illegible] पहुंचाता है । ० ॥

१५ [illegible] है, उस गातुवित्तम [illegible] हृदयसे मति [illegible] है । [illegible] ० ॥

असौ यः पन्था आदित्यो दिवि प्रवाच्यं कृतः ।
न स देवा अतिक्रमे तं मर्तासो न पश्यथ वित्तं मे अस्य रोदसी १६
त्रितः कूपेऽवहितो देवान् हवत ऊतये ।
तच्छुश्राव बृहस्पतिः कृण्वन्नंहूरणादुरु वित्तं मे अस्य रोदसी १७
अरुणो मा सकृद् वृकः पथा यन्तं ददर्श हि ।
उज्जिहीते निचाय्या तष्टेव पृष्ट्यामयी वित्तं मे अस्य रोदसी । १८
एनाङ्गूषेण वयमिन्द्रवन्तोऽभि ष्याम वृजने सर्ववीराः ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामादितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः १९

१६ यः असौ आदित्यः पन्थाः दिवि प्रवाच्यं कृतः । हे देवाः ! सः न अतिक्रमे । हे मर्तासः ! तत् न पश्यथ । मे० ॥

१७ कूपे अवहितः त्रितः ऊतये देवान् हवते । बृहस्पतिः तत् शुश्राव । अंहूरणात् उरु कृण्वन् । मे० ॥

१८ अरुणः वृकः मा सकृत् पथा यन्तं ददर्श हि । तष्टा पृष्ट्यामयी इव निचाय्य उत् जिहीते । मे अस्य तत् हे रोदसी । वित्तम् ॥

१९ एना अंगूषेण इन्द्रवन्तः सर्ववीराः वयं वृजने अभि ष्याम । तत् नः मित्रः वरुणः आदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ममहन्ताम् ॥

१६ यह जो आदित्यरूपी मार्ग द्युलोकमें स्तुतिके लि योग्य किया गया है, हे देवो ! उसका अतिक्रमण नहीं करना चाहिये । हे मानवों ! वह मार्ग तुम देख भी नहीं सकते । ०

१७ कूएमें पडे हुए त्रितने अपनी सुरक्षाके लिये देवोंसे प्रार्थना की । बृहस्पतिने वह सुनी और कष्टोंसे छूटनेके लिये विस्तृत मार्ग बना दिया । ० ॥

१८ लाल रंगके भेडियेने एक बार (मुझे) मार्गसे जाते हुए देखा । पीठमें दर्द होनेवाले बढाईके समान उठकर वह मुझे बचाने लगा । हे भूलोक और द्युलोको ! यह मेरी प्रार्थना जान लो ॥

१९ इस स्तोत्रसे (हम) इन्द्रके सामर्थ्यसे युक्त होकर, हम सब वीर बनकर युद्धमें (शत्रुको) परास्त करेंगे । इस मेरी इच्छाका मित्र आदि सब देव अनुमोदन करें ॥

हमारी उन्नति हो

मनुष्यकी उन्नतिका मार्ग इस सूक्तमें बताया है । ' एक कूएमें पडे मनुष्यका उद्धार किया गया ' यह कथा इस सूक्तमें वर्णन की है, इस तरह सभी पतितोंका उद्धार हो सकता है, यह इसका आशय है ।

' विश्वे देवाः ' देवताका यह सूक्त है । अनेक देवताओंका यहां संबंध है । प्रत्येक मंत्रके अन्तिम चरणमें ' रोदसी ' पद है जो द्युलोक और भूलोकका वाचक है । इसका आशय केवल पृथ्वी और आकाश इतना नहीं है, परंतु पृथ्वीसे आकाश-तक जो भी कुछ है, वह सब इस देवताके अन्दर समाविष्ट होता है । जो पृथ्वीपर है, जो अन्तरिक्षमें है और जो आकाशमें है, वह सब ' रोदसी वा द्यावापृथिवी ' देवतामें समाविष्ट होता है । इस देवतासे सर्वात्मभाव प्रकट होता है । सब वस्तुमात्र जो भी कुछ इस विश्वमें है, वह सब द्यावापृथिवीमें है । ऐसी एक भी वस्तु नहीं है कि जो द्यावा-पृथिवीसे बाहर रह सकती हो । द्यावापृथिवी, रोदसी यह द्विवचनी देवता है, पर यह एकही अखण्ड वस्तु है । प्रकाश-अन्धकार, पृथ्वी-आकाश, जड-चेतन, स्थूल-सूक्ष्म मिलकर एकही विश्व बनता है । वह इस देवतासे व्यक्त होता है, उसको उद्देश करके यह सूक्त मानवोंके मनोभाव प्रकट कर रहा है ।

मानव इस विश्वका अंश है । मानव इस विश्वसे सर्वथा पृथक् नहीं है । मानव विश्वसे अनन्य है । इस अनन्य भावके मनोभाव इस सूक्तमें प्रकट हुए हैं ।

इस सूक्तमें संपूर्ण विश्वरूप देवताकी प्रशंसा है, तो भी

लेखित देवताओंका स्पष्ट निर्देश भी यहां है—(मंत्र १) चन्द्रमाः, सुपर्णः, द्यौः, विद्युतः; (२) जाया, पतिः, (३) देवाः, स्वः, द्यौः, सोमः; (४) यज्ञः, ऋतं; (५) , द्यौः, ऋतं, अनृतं, आहुतिः; (६) ऋतं, वरुणः अर्यमा; सुतः (सोमः), अहं; (८) शतक्रतुः, स्तोता; (९) सप्त वः, नाभिः, त्रितः आप्त्यः; (१०) पञ्च उक्षणः, द्यौः;) सुपर्णाः, द्यौः, पन्थाः, आपः; (१२) देवासः, सिन्धवः, , सूर्यः, सत्यं; (१३) अग्निः, देवाः; (१४) होता, देवः, तिः; (१५) वरुणः, ब्रह्म, मतिः, ऋतं; (१६) आदित्यः, ाः, द्यौः, देवाः, मर्तासः, (१७) त्रितः, देवाः, बृहस्पतिः; ८) अरुणः वृकः, पन्थाः, तष्टा; (१९) मित्रः, वरुणः, दितिः, सिन्धुः, पृथिवी, द्यौः, इतनी देवताएं इस सूक्तमें हैं, सलिये इस सूक्तका देवता ' विश्वे देवाः ' माना गया है। विश्वे देवाः ' का अर्थ ' अनेक देवता ' है।

इनमेंसे पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युस्थानमें देवताएं किस तरह ामक होती हैं, वह देखिये—

पृथ्वी–स्थानमें

आपः, जाया, पतिः, पयः, देवाः, सोमः, यज्ञः, ऋतं, अनृतं, आहुतिः, सुतः (सोमरसः), अहं, स्तोता, नाभिः, त्रितः आप्त्यः, पन्थाः, सिन्धवः, अग्निः, होता, मतिः, मर्तासः, वृकः, तष्टा, अदितिः, पृथिवी।

अन्तरिक्ष–स्थानमें

आपः, चन्द्रमाः, विद्युतः, पयः, देवाः, सोमः, ऋतं, वरुणः, अर्यमा, नाभिः, पन्थाः, अरुणः।

द्यु–स्थानमें

सुपर्णः, द्यौः, देवाः, स्वः, सोमः, शतक्रतुः, सप्त रश्मयः, पञ्च उक्षणः, सूर्यः, सत्यं, ब्रह्म, आदित्याः, बृहस्पतिः, मित्रः, वरुणः।

ऐसी देवताओंकी गणना होती है। [illegible] इनमें ये देवताएं तथा अन्य सब [illegible] जाती है। [illegible] [illegible] इस देवतामें [illegible] होता है। [illegible] है वह [illegible] सूक्तके विचार करनेके पूर्व [illegible] है।

[illegible]

मानवका उद्धार होता है। यह तत्त्व इस सूक्तमें प्रतिपादित किया गया है। अब क्रमशः मंत्रोंका विवरण देखिये—

मन्त्र १— (अप्सु अन्तः चन्द्रमाः) अन्तरिक्षमें चन्द्रमा भाग रहा है ऐसा दीखता है और (दिवि सुपर्णः) आकाशमें सूर्य चलता है ऐसा दिखाई देता है। पर बीचमें (विद्युतः) बिजलियाँ हैं इनका (पदं) स्थान निश्चयसे (न विन्दन्ति) कोई नहीं जानता। चन्द्रमाका तथा सूर्यका स्थान तो सब जानते हैं, यद्यपि ये दोनों गतिमान् हैं, तथापि इनका स्थान ज्ञानी जानते हैं, पर विद्युत् कहांसे चमकेगी यह कोई नहीं जान सकता। यह सदा गुप्त रहती है और अचानक एकदम चमक उठती है। सब विश्वमें एकही अग्नि भरपूर भरा है, उसके अग्नि, चन्द्रमा, विद्युत् और सूर्य ये रूप हैं, पर विद्युत् रूप सदा गुप्त रहता है, अन्य रूप प्रकट दीखते हैं। मैं इस तेजकी उपासना करता हूं, आकाश पृथ्वीरूप प्रभु मेरे इस प्रार्थनाका आशय जानें।

स्थूलसे सूक्ष्म जाना जा सकता है। इसी तरह चन्द्र और सूर्य ये स्थायी अग्नि हैं। अग्नि [illegible] उपायोंसे प्रकट होता है, और विद्युत् सदा गुप्त रहती है। [illegible] सूक्ष्मका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये और [illegible] अग्नि एकही है, यह जानना चाहिये और [illegible] अग्नि गुप्तमें है यह जानकर [illegible] एकता जाननी चाहिये।

इच्छा करनेसे प्राप्ति

मन्त्र ६— [illegible]

पत्नीमें गर्भाधान करता है, अपना वीर्य प्रदान करता है और पत्नी उसका स्वीकार करती है, इस तरह गर्भकी स्थापना होती है, (रसं परिदाय दुहे) वह पत्नी रसरूपी वीर्यका धारण करके पुत्ररूपको प्रसवती है। अथवा पतिके रसरूप पुत्रको निर्माण करती है। यह सब गृहस्थाश्रमका कार्य पति-पत्नीकी प्रबल इच्छासेही होता है। इसलिये शुभ इच्छा अवश्य धारण करनी चाहिये। शुभ इच्छाके विना इस जागतिक व्यवहारमें सिद्धि प्राप्त होना असंभव है।

हमारी अवनति न हो

मं. ३—(स्वः अदः दिवः मो परि सु अव पादि) हमारा निज तेज इस स्वर्गके मार्गसे गिरकर नीचे न पडे, अर्थात् हमारा तेज सदा ऊंचा फडकता रहे, उच्च मार्गसे ऊपर होकर उच्च स्थानमेंही विराजे। हम उच्च हों, कदापि अवनत न हों। सभी कार्यक्षेत्रोंमें हमारी उन्नति होती रहे, कदापि अवनति न हो। ऐसी इच्छा प्रत्येक मनुष्य अपने मनमें सदा धारण करे।

(शं-भुवः शूने कदा चन मा भूम) सुख उत्पन्न करनेके साधन जहां न हों, वहां कदापि हम न रहें। अर्थात् सुखके सब साधन जहां हों वहीं हम रहें। हम अपने पास सब सुखके साधन जमा करें। सब अन्न पेय, वस्त्रप्रावर्ण, औषधि-वनस्पति, गृह-उद्यान, सुरक्षाके सब साधन आदि सब हमारे पास रहें। समयपर इनका उपयोग करके हम सदा आनन्द-प्रसन्न हों।

पूर्व और नूतनका मेल

मं. ४— मैं (अवमं यज्ञं पृच्छामि) पास रहनेवाले यजनीय देवसे पूछता हूं। समीपस्थ ज्ञानी पुरुषसे ही जो कुछ पूछना हो वह पूछना चाहिये। क्योंकि शंका समाधान करना, वारंवार उससे सहायता प्राप्त करना आदि समीपस्थ ज्ञानीसेही हो सकता है। (सः विवोचति) वही मुझे कहेगा, समझा देगा, समझा देगा अथवा बता देगा।

(पूर्व्यं ऋतं क गतं ? कः नूतनः तत् विभर्ति ?) प्राचीन सत्यत्व किस दिशासे जाता था ? और कौन नवीन उसको आज धारण करता है ? प्राचीन कर्तव्यके मार्ग कैसे थे और उनका स्थान आजके किन धुरीणोंने किस तरह लिया है ? वृद्ध किस तरह आचरण करते थे और नवीन तरुण उसका कितना स्वीकार कर रहे हैं ? समाजका विचार करना इसका विचार करना चाहिये। पूर्व समयमें लोगोंके (ऋतं) सरलता कितनी थी और नवीनोंमें कितनी इसका विचार होना चाहिये। प्राचीन ज्ञानियोंके दोष आचरणोंमें न रहें, पर उनकी (ऋतं) सरलता, सचाई, पन, अकुटिलता तो नवीनोंके व्यवहारमें होनीही चाहिये कितनी है, इसका विचार करना चाहिये। व्यक्ति और सुधर रहा है या बिगड रहा है, इसका निर्णय इससे जिसके पास वह (पूर्व्यं ऋतं) प्राचीन सरलता होगी, अपना अगुवा करना चाहिये। ऋतवादीही नेता बने, वादी नेता न बने, क्योंकि उसपर विश्वास रखना अशक्य हैं। इसलिये ' ऋतं ' (सरलता) ही सबका मार्गदर्शक

सत्य और अनृतका स्वरूप जानो

मं. ५— (वः ऋतं कत्, अनृतं कत् ?) सत्यधर्म कौनसा है और असन्मार्ग तुम्हारा कौनसा है, विचार करनेयोग्य प्रश्न है। प्रत्येक मनुष्य अपनेको कह सकता है, पर उसके सत्यका स्वरूप और असत्यका निश्चित होना चाहिये। अर्थात् एक कहेगा कि इस शत्रुसे मिलनेसे लाभ है और दूसरा कहेगा कि शत्रुसे करनाही इस समय योग्य है। ऐसे विभिन्न मार्ग हो और विभिन्न मनुष्योंको वे विभिन्नतया प्रिय भी हो इसलिये केवल ' ऋत और अनृत ' का विचार करना नहीं है, प्रत्युत उसके ' ऋत ' का अभिप्राय क्या है उसके ' अनृत ' का भाव क्या है, यह प्रथम जानना क्योंकि आर्य, दस्यु, राक्षसोंके दृष्टिकोन विभिन्न होनेसे ध्येय और साध्य भी विभिन्न होंगे, इसलिये उनके सत्यका भाव क्या है, यह पहिले जानना चाहिये।

(ये त्रिषु स्थन, (ते) दिवः आ रोचने) लोग तीनों स्थानोंमें रहते हैं, वे द्युलोकके पवित्र प्रकाशमें सकते हैं। यदि वे सच्चे सन्मार्गसे चलेंगे तो अवश्यही वे प्रकाशमें परम उच्च स्थानमें रहेंगे। उनको निकृष्ट जानेयोग्य कोई हीन वर्ताव कभी करना नहीं चाहिये। मनुष्यको सदा ऐसाही व्यवहार करना चाहिये कि उसकी योग्यता अधिक उच्च होती जाय।

(वः प्रत्ना आहुतिः क ?) हमने तुम्हें जो पूर्व में अर्पण किया था वह कहां है ? हमने जो तुम्हें पूर्व

लका या उसका क्या बना ? इसका विचार करना चाहिये। ...समय जो किया था उसका परिणाम क्या हुआ, उससे हित ...ा या अहित, यह विचारपूर्वक देखना चाहिये। ऐसा कभी ...होना चाहिये कि हम देतेही रहें और उसका परिणाम ...देही होता रहे, तथापि हम उसका विचार न करते हुए ...ही करते जायँ। यह तो मूर्खताकी बात होगी। अतः पूर्वके ...रमका परिणाम क्या हुआ इसका विचार करके आगेका ...रण करना चाहिये।

हमारा ध्येय

मंत्र ६—(दुष्कृतः अति क्रामेम) दुष्ट बुद्धिवालोंका ...तिक्रमण करके हम सुबुद्धिवालोंकी संगतिमें रहेंगे। हम ...ोंका दमन करेंगे, जो दुष्ट होंगे उनको पीछे रखकर हम ...गे बढ़ेंगे और उत्तम अवस्थामें रहेंगे। यह हमारा ध्येय है। ...मंत्रमें कहा है कि **(विनाशाय च दुष्कृतां)** दुष्टोंका नाश ...ना चाहिये। दुष्ट मानव सब समाजको कष्ट देते हैं, इसलिये ...न्का दमन करना चाहिये, उनको बढ़ने नहीं देना चाहिये, ...न्को प्रतिबंधमें रखना चाहिये, वे समाजको उपद्रव नहीं ...ें सकेंगे ऐसी स्थितिमें उनको दबाकर रखना चाहिये। यह ...ज्जनोंका ध्येय है, यह सत्पुरुषोंका साध्य है, यही श्रेष्ठ लोग ...ार्य लोग चाहते हैं। इस साध्यके सिद्ध करनेके तीन उपाय ...ं—

१ **ऋतस्य धर्णसिः**— सत्यका समर्थ आधार,

१ **वरुणस्य चक्षणं**— वरिष्ठ द्रष्टाका निरीक्षण, और

१ **अर्यम्णः पथाः** (गमनं)—आर्य मनवालेके मार्गसे गमन.

ये तीन साधन हैं कि जिनसे दुष्टोंको दूर करके सज्जनों...का मार्ग सुगम होना संभव है। (**ऋतस्य धर्णसिः**) सत्य और सरलताका सामर्थ्ययुक्त आधार प्राप्त करना चाहिए। अपने कार्यके लिये सत्यका आधार हो, अपना पक्ष सत्यके आधारपर स्थित हो, अपने पक्षमें किसी तरह भी देशी चाल, कुटिलता, ढोंग या अनाचार न हो। (**वरुणस्य चक्षणं**) वरिष्ठ या श्रेष्ठको वरुण कहते हैं, उसका निरीक्षण हो। कार्यकर्ताओंपर श्रेष्ठका निरीक्षण हो, श्रेष्ठ सत्पुरुषके निरीक्षणके कारण कोई भी कार्यकर्ता दोन कार्य न कर सके, ऐसा होनेसे सब लोग उत्तम कार्य करेंगे और दुष्ट दबे रहेंगे। (**अर्यम्णः पन्थाः**) आर्य मनवाला जिसको होता है, वह श्रेष्ठ मनवाला होता है वह अर्यमा है। उसका [illegible] एक श्रेष्ठ मार्ग होता है, उसी मार्गसे चलना चाहिये। [illegible] मार्गसे कदापि नहीं जाना चाहिये, परंतु आर्योंके सन्मार्गसेही जाना चाहिये।

आर्यमार्गसे जाना, सत्यका आधार प्राप्त करना और श्रेष्ठ पुरुषके निरीक्षणमें अपना कर्तव्य योग्य रीतिसे करना, यह मार्ग है जिससे मनुष्यकी उन्नति होती है। इसीलिये इस मंत्रमें ये तीन प्रश्न किये हैं— (१) तुम्हारा सत्यधर्मका आधार कैसा है ? (२) तुमपर श्रेष्ठ पुरुषका निरीक्षण कैसा है ? और (३) तुम श्रेष्ठोंके विस्तृत मार्गसे जाते हो या नहीं, तो देखो और जान लो कि तुम दुष्टोंका अतिक्रमण कर सकते हो या नहीं !

यदि तुम्हें सत्यधर्मका आधार नहीं है, यदि तुम्हारे ऊपर श्रेष्ठ सत्पुरुषका निरीक्षण नहीं है और यदि तुम आर्योंके श्रेष्ठ और विस्तृत मार्गसे नहीं जाते, तो तुम समझ लो कि तुम्हें स्थायी यश नहीं मिलेगा। असत्यका आश्रय करना, दुष्टोंके पीछे चलना और अनार्योंके मार्गसे जाना ये अपने नाशको प्राप्त होनेके साधन हैं। पाठक इस मंत्रका बहुत विचारपूर्वक मनन करें और अपने व्यवहारको देखें। इससे उनको सच्ची उन्नतिके मार्गका पता लग सकता है।

मानसिक अशान्तिका दूर करना

मन्त्र ७—(सः अहं अस्मि) कहो मैं हूँ कि **(यः पुरा सुते वदानि)** जो पूर्व सवनमें पहले वेदमंत्रोंका गान करता था। अर्थात् मैं बड़ा विद्वान् हूं तथापि (तृष्णाजं मृगं वृकः न) प्यासे हिरनको जैसा भेड़िया खा देता है, उस तरह (**आभ्यः मा व्यन्ति**) मानसिक व्यथा मुझे खा रही है। विद्वत्ता प्राप्त करनेपर भी मेरा मन शान्त नहीं हुआ, मानस-तृष्णा मुझे सता रही है, क्लेश मुझे अशान्त कर रहा है, इसी तरह मानसिक कष्टोंसे अनेक प्रकार मुझे दुःख हो रहा है। यह क्यों हो रहा है ? यहां पर इस बातका विचार करना चाहिये कि, केवल विद्या पढ़नेसेही मानसिक शांति नहीं प्राप्त हो सकती। पहिले उठे मंत्रमें कहे अनुसार आचरण करनेसे शांति प्राप्त होती। मानसिक व्यथाको दूर करनेके लिये अविद्या, नवेदत्व, क्लेशोंके नाश करना, दुःखों आदि दोषोंको दूर करना चाहिये। इस अभ्यासके सब लोग प्रयत्न करेंगे और सबको शांति प्राप्त होगी। जिस प्रकार यह अभ्यास होगा, उसी प्रकार शांति प्राप्त होगी।

मंत्र ८— इस मंत्रके [illegible] मंत्र सू. १०, मं. ३ [illegible] करेंगे। (**आभ्यः स्तोतारं मा नूः**

शिक्षा न व्यदन्ति) मैं उपासक हूं तथापि मानसिक आपत्तियां मुझे खाती हैं, जिस तरह चूहे काजी लगाये सूत्रको खाते हैं। स्तुति, प्रार्थना, उपासना, भजन, पूजन करनेवालेको भी मानसिक शान्ति नहीं मिलती, वह भी मानसिक आपत्तियोंकी अग्निमें जलता रहता है। मानो मनोव्यथाएँ उसको वैसी खा जाती हैं जैसे काजी लगे सूतके चूहे खाते हैं। स्तुति-प्रार्थना-उपासना करनेमात्रसे मानसिक शान्ति नहीं मिलती, यह यहांके मंत्रभागका तात्पर्य है। सूतपर काजी लगानेसे वह सूत्र चूहे खा जाते हैं, वैसा कौनसा लेप अपने ऊपर लगानेसे मानसिक व्यथारूपी चूहे अपनेको खा सकते हैं इसका विचार करना चाहिये। जिस तरह सूत्रपर कांजीका लेपन होनेसे चूहे काटते हैं, उसी प्रकार हमपर प्रबल भोगेच्छाका लेप लगनेसे कामक्रोधादि चूहे काटने लगते हैं। इसलिये यदि हम भोगवासनासे अलिप्त रहेंगे तो कामक्रोधादि चूहे हमें नहीं खायेंगे, यह इस मंत्रार्थका तात्पर्य है।

(सपत्नीः इव पर्शवः मा अभितः सं तपन्ति) सौतिनियोंके समान ये फरसे मुझे चारों ओरसे संतप्त करते हैं। जिस तरह सौतिनियां पतिको कष्ट देती हैं, उस तरह ये फरसे, ये शस्त्रसंभार, मुझे कष्ट देते हैं। अपनी सुरक्षाके लिये मैंने अपने चारों ओर अनेक फरसे खडे किये, अनेक शस्त्र बढा दिये, पर वेही मुझे सता रहे हैं, उस शस्त्रसंभारके नीचे मैं दब गया हूं। उन शस्त्रधारियोंके सामने मुझे डरना पड रहा है। जिस तरह सुख बढानेके लिये मैंने अनेक क्रियाँ कीं, पर उनके आपसके ईर्ष्याद्वेषके और झगडोंके कारण मुझेही कष्ट हो रहे हैं, वैसेही ये सुरक्षाके साधनही मेरे सिरपर चढकर अब मुझे दया रहे हैं। जो मैंने अपने हितके लिये किया, वही मेरा दुःख बढा रहा है।

मनुष्यका ऐसाही व्यवहार चल रहा है। मनुष्य जो सुखके लिये करता है, वही उसके स्वाधीन न रहा तो वही उसका दुःख बढा देता है। इसलिये पत्नियाँ भी अधिक नहीं करनीं चाहिये, फरसों अर्थात् शस्त्रसंभारके अधीन भी नहीं होना चाहिये और भोगोंका लेपन भी अपने ऊपर नहीं लगाना चाहिये। तब मनुष्यको मानसिक व्यथाएं कष्ट नहीं दे सकेंगी।

विश्वकुटुंबका भाव

मंत्र ९— (ये अमी सप्त रश्मयः) जो ये रश्मियाँ सूर्यकी फैली हैं, जहांतक सूर्यके किरण प्रका (तत्र मे नाभिः आतता) वहांतक मेरा घर, कुटुंबभाव फैला है। वहांतक संपूर्ण विश्वको मैं अपना अपना परिवार अनुभव करता हूं। आप्त्य त्रित ऋ इसका अनुभव हुआ, अतः वह सर्वत्र बंधुभावकी स्थ करनेके लिये (जामित्वाय रेभति) प्रवचन करत आप्त्य त्रित ऋषिकी जीवनकी इच्छाही यह है कि इस वि सर्वत्र बन्धुभाव स्थापित हो। जहांतक सूर्यके किरण हैं वहांतक अपना एकही कुटुंब है ऐसा सब मानें उसमें संपूर्णतया बंधुभाव स्थापन करनेका सब यत्न विश्वशान्तिका यह एकमात्र उपाय है।

मंत्र १०—ये जो पांच (पञ्च उक्षणः) बैल हैं, वे द्युलो मध्यमें ठहरे हैं। शरीरमें द्युलोक सिर है, इस शिरमें इन्द्रिय रहते हैं, वे महा शक्तिशाली हैं। आंख, नाक, मुख, और त्वचा ये पांच बडे शक्तिशाली हैं। इनको वृषभ, पंच प्राण, पंच अग्नि आदि नाम हैं। (देवत्रा प्रवा देवताओंकी उपासना प्रारंभ होतेही ये पांचों (साध्रीचीः निववृतुः) एकदम विषयोंसे निवृत्त होते हैं। जब मन उ सनामें तल्लीन होता है, उसके साथ साथ ये सब इन्द्रिय बैल विषयोंसे निवृत्त होते हैं और येभी उपासनामें मग्न होते मन तथा इन्द्रियोंकी शुभ प्रवृत्ति करनेका यह साधन है।

मंत्र ११— ये (सुपर्णाः) उत्तम पंखवाले पक्षी द्युलो मध्यभागमें बैठे हैं, (यह्वतीः अपः तरन्तं) वेगसे चलनेवा जलप्रवाहोंमें तैरनेवाले (वृकं पथः सेधन्ति) भेडियेको मार्गमें ही वे हटाकर एक ओर करते हैं, मार्गमें रहने न देते। यहां सूर्यकिरण पक्षी हैं और भेडिया अन्धकार है। ये सूर्यकिरण अन्धकारको दूर करके प्रकाशका मार्ग खो देते हैं। इससे मनुष्य जायँ और मुक्तिका आनंद प्राप्त करें। यहां अज्ञानरूप अन्धकारको दूर करके प्रकाशके मार्गको प्राप्त करना दुःखसे मुक्त होनेका साधन बताया है।

हितकारी स्तोत्र

मंत्र १२— यह (नव्यं उक्थ्यं) नवीन स्तोत्र (सु-प्र वाचनं) वारंवार पढकर मनन करनेयोग्य (हितं) और

क है। जिस तरह (सिन्धवः ऋतं अर्षन्ति) ें जल बहता है और जैसा (सूर्यः सत्यं ततान) काश फैलता है, उस प्रकार यह नया सूक्त (विद्यारूप) शान्ति और (ज्ञानसूर्यका) प्रकाश देकर सबका करता है। इस मंत्रमें ' सु-प्र-वाचन ' पद है। उत्तम सुभाषित, शुभवचन ऐसा इसका अर्थ है। यदि इसका (सु-प्र-वाचन) उत्तम वाचन, उत्तम पढना हो सकेगा, स पदसे सूक्त लिखे जाते थे और उनका वाचन किया था ऐसा भाव उससे निकलेगा और लेखनकी कलाकी भी इसीसे हो सकेगी। पर यहां ' वाचन ' पद 'वचन' र्थमें है ऐसी विद्वानोंकी संमति है।

सज्जनोंकी संगतिमें रहो

मंत्र १३— (देवेषु उक्थ्यं आप्यं) दैवी संपत्तिवाले ुषोंके साथ जो बंधुभाव होता है वही प्रशंसनीय होता है। र्थात् दुष्टोंके साथ अपना संबंध रखना उचित नहीं है। (विदुस्-तरः) अत्यंत ज्ञानी बन और (देवान् आ यक्षि) वोंको, दिव्य विबुधोंको यहां ला और उनका सन्मान कर।

मंत्र १४— अत्यंत ज्ञानी बुद्धिमान् अग्नि जैसा तेजस्वी ुरुष, दिव्य विबुधोंका अन्नपानादि द्वारा सत्कार करता है।

ज्ञानीके मार्गदर्शनमें रहो

मंत्र १५— (वरुणः ब्रह्म कृणोति) वरिष्ठ ज्ञानी त्र या काव्य करता है, बिना ज्ञानके मार्गदर्शन करना संभव है। इसलिये (गातु-विदं ईमहे) जो मार्गदर्शन सकता है उसीको हम प्राप्त करना चाहते हैं, उसके मार्ग-र्शनसे हम उन्नतिके मार्गपर चलेंगे और उन्नतिको प्राप्त ोंगे। वह ज्ञानी— (हृदा मतिं वि ऊर्णोति) अपने रूपसे सद्बुद्धिको प्रकट करके जनताका मार्गदर्शन करता है। नव्यः ऋतं जायतां) नयी रीतिसे सत्य मार्ग बतलाता । अपनी नयी आयोजना प्रकट करता है जिससे जीवोंके र्वथा कल्याण होता है। इसलिये अच्छे सज्जनकी संगतिमें रहना योग्य है।

मंत्र १६— यह जो सूर्यका प्रकाशमार्ग द्युलोकमें प्रशंसित हुआ है, उसका (न अतिक्रमे) उल्लंघन करना योग्य नहीं है। (मर्तासः, तत् न पश्यथ) हे मानवो! क्या आप यह नहीं देखते? अर्थात् प्रकाशके मार्गसेही मनुष्योंको जाना चाहिये, कभी उसका उल्लंघन करना किसीको भी उचित नहीं है। सब मानव इसका महत्त्व अनुभव करें और समझें कि यही हमारी उन्नतिका साधन है।

मंत्र १७— कूपमें पडा त्रित अपने उद्धारके लिये देवोंकी प्रार्थना करता है। बृहस्पति-ज्ञानी देवने वह उसकी पुकार सुनी और अधोगतिसे उसको ऊपर उठा कर उन्नत किया।

दुःखके अन्दर रहनेवाला अपने दुःखसे मुक्त होनेके लिये दिव्य विबुधों-ज्ञानियों-की प्रार्थना करता है। उनमेंसे जो ज्ञानी उसकी सहायता करते हैं, वे उसकी सहायतार्थ उसके पास आते हैं और उसका उद्धार करते हैं अर्थात् दुःखसे उन्मुक्त करते हैं।

मंत्र १८— लाल रंगके (वृकः) भेडियेने, अर्थात् उदयकालके अंधेरेने, मुझे देखा कि मैं ठीक मार्गसे चल रहा हूं। और (निचाय्य उत् निर्दीत) [illegible] ऊपर उठाया, मेरा उद्धार किया, जिस तरह पीठमें बड़ा होकर [illegible] पीठकी पीडासे मुक्त होता है।

मंत्र १९— [illegible] (यथा मनोरावृजने अनि ष्याम) [illegible] सज्जनोंसे परिचय करेंगे और [illegible] देव हमारी इस [illegible] अनुकूल हो।

[illegible]

[२] आदित्य-प्रकरण

विजय, लाभ और निष्पापीपन प्राप्त करना

(ऋ. ८।४७) त्रित आप्त्यः । आदित्याः, १४-१८ आदित्योपसः (दुःस्वप्ननं) । महापङ्क्तिः ।

महि वो महतामवो वरुण मित्र दाशुषे ।
यमादित्या अभि द्रुहो रक्षथा नेमघं नशदनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः १
विदा देवा अघानामादित्यासो अपाकृतिम् ।
पक्षा वयो यथोपरि व्य१से शर्म यच्छतानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः २
व्य१से अधि शर्म तत्पक्षा वयो न यन्तन ।
विश्वानि विश्ववेदसो वरूथ्या मनामहेऽनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ३
यस्मा अरासत क्षयं जीवातुं च प्रचेतसः ।
मनोर्विश्वस्य घेदिम आदित्या राय ईशतेऽनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ४
परि णो वृणजन्नघा दुर्गाणि रथ्यो यथा ।
स्यामेदिन्द्रस्य शर्मण्यादित्यानामुतावस्यनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ५

अन्वयः– १ हे मित्र वरुण ! (हे अर्यमन् !) महतां वः अवः दाशुषे महि । हे आदित्याः ! यं द्रुहः अभि रक्षथ, इदं अघं न नशत् । वः ऊतयः अनेहसः, वः ऊतयः सु-ऊतयः ॥

२ हे देवाः आदित्यासः ! अघानां अपाकृतिं विद । वयः यथा पक्षा उपरि (कुर्वन्ति), अस्मे शर्म यच्छत । वः ऊतयः ० ॥

३ अस्मे अधि तत् शर्म (अस्ति तत्) पक्षा वयो न वि यन्तन । हे विश्ववेदसः विश्वानि वरूथ्या मनामहे । वः ऊतयः ० ॥

४ हे प्रचेतसः ! यस्मै क्षयं जीवातुं च अरासत, (तस्मै) इमे आदित्याः विश्वस्य घेत् मनोः रायः ईशते । वः ऊतयः ० ॥

५ दुर्गाणि यथा नः अघा परि वृणजन् । इन्द्रस्य शर्मणि स्याम । उत आदित्यानां अवसि । वः ऊतयः ० ॥

अर्थ — १ हे मित्र, वरुण (और अर्यमा) ! आप श्रेष्ठोंका संरक्षण दाताके लिये बहुत (ही प्राप्त होता है) । हे आदित्यो ! जिसको द्रोही शत्रुसे आप सुरक्षित रखते हैं, उसे पाप कष्ट नहीं देता । क्योंकि आपकी सुरक्षाएँ निष्पाप हैं, आपकी रक्षाएं उत्तम हैं ॥

२ हे देव आदित्यो ! हमारे पापोंका नाश करनेका ज्ञान तुम्हें है । पक्षी जिस तरह अपने बच्चोंपर (पंखोंकी छाया) करते हैं, वैसा हमें सुख देओ । आपकी ० ॥

३ हमारे ऊपर आपका वह सुख (रहे), जैसा पंखोंसे पक्षी (अपने बच्चोंको) देते हैं । हे सर्वज्ञो ! सब प्रकारके संरक्षण हम चाहते हैं । आपकी० ॥

४ हे ज्ञानी देवो ! जिसके लिये आश्रय और जीवनबल तुम देते हो, उसके लियेही, (उसको धन देनेके लियेही) हे आदित्य सब मानवोंके धनोंपर अधिकार स्थापित करते हैं । आपकी० ॥

५ जिस तरह कठिनताओंको दूर करते हैं, वैसे हम पापोंको दूर करते हैं । इन्द्रके आश्रयमें हम रहेंगे और आदित्योंकी सुरक्षामें भी रहेंगे । आपकी० ॥

परिह्वृतेदना जनो युष्मादत्तस्य वायति ।
देवा अदभ्रमाश वो यमादित्या अहेतनानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ६

न तं तिग्मं चन त्यजो न द्रासदभि तं गुरु ।
यस्मा उ शर्म सप्रथ आदित्यासो अराध्वमनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ७

युष्मे देवा अपि ष्मसि युध्यन्तइव वर्मसु ।
यूयं महो न एनसो यूयमर्भादुरुष्यतानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ८

अदितिर्न उरुष्यत्वदितिः शर्म यच्छतु ।
माता मित्रस्य रेवतोऽर्यम्णो वरुणस्य चानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ९

यद्देवाः शर्म शरणं यद्भद्रं यदनातुरम् ।
त्रिधातु यद्वरूथ्यं१ तदस्मासु वि यन्तनानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः १०

आदित्या अव हि ख्यताधि कूलादिव स्पशः ।
सुतीर्थमर्वतो यथाऽनु नो नेषथा सुगमनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ११

---

१ परिह्वृता इव अना जनः युष्मादत्तस्य (धनं) वायति । हे आशवः देवा ! यं अहेतन (सः) अदभ्रं (वायति), वः ऊतय० ॥

२ तं तिग्मं चन त्यजः न द्रासत् । तं गुरु (न द्रासत्) । हे आदित्यासः! सप्रथः यस्मा उ शर्म अराध्वं, वः ऊतयः० ॥

३ हे देवाः ! (यथा) युध्यन्तः वर्मसु, युष्मे अपि (स्थ) स्मसि । यूयं नः महः एनसः उरुष्यत । यूयं अर्भात् (उरुष्यत) । वः ऊतयः० ॥

४ वः अदितिः उरुष्यतु । अदितिः शर्म यच्छतु । माता मित्रस्य रेवतः अर्यम्णः वरुणस्य च (शर्म यच्छतु) वः ऊतयः० ॥

५ हे देवाः ! यत् शर्म शरणं, यत् भद्रं, यत् अनातुरं, यत् त्रिधातु, यत् वरूथ्यं, तत् अस्मासु वि यन्तन । वः ऊतयः० ॥

६ हे आदित्याः ! यूयं अधि स्थः अव हि ख्यत । सुतीर्थं अर्वतः यथा । नः सुगं अनुनेषथ । वः ऊतयः० ॥

६ दुःखी अवस्थामें रहकर (तुम्हारी भक्तिमें) जीवित रहा (भक्त) मानव तुम्हारे दिये (धन) को प्राप्त करता है । हे शीघ्रगामी देवो ! जिसके पास तुम आते हो वह वीर पुरुष (धन प्राप्त करता है) । आपकी० ॥

७ उसको तीक्ष्ण शस्त्र भी नहीं काट देता । बड़ा दुःख भी उसे नहीं सताता । हे आदित्यो ! जिसके तुम आश्रय होते हो (वह सुखी होता है) । आपकी० ॥

८ हे देवो ! जैसे युद्ध करनेके [illegible] में ([illegible] होते हैं) उस तरह तुम्हारे [illegible] हम रहते । तुम हमें बड़े पापसे बचाओ और तुम जैसे ([illegible] बचाओ) । आ[illegible] ॥

नेह भद्रं रक्षस्विने नावयै नोपया उत ।
गवे च भद्रं धेनवे वीराय च श्रवस्यतेऽनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः १२
यदाविर्यदपीच्यं१ देवासो अस्ति दुष्कृतम् ।
त्रिते तद्विश्वमाप्त्य आरे अस्मद्दधातनानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतवः १३
यच्च गोषु दुष्वप्न्यं यच्चास्मे दुहितर्दिवः ।
त्रिताय तद्विभावर्याप्त्याय परा वहानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः १४
निष्कं वा घा कृणवते स्रजं वा दुहितर्दिवः ।
त्रिते दुष्वप्न्यं सर्वमाप्त्ये परि दद्मस्यनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः १५
तदन्नाय तदपसे तं भागमुपसेदुषे ।
त्रिताय च द्विताय चोषो दुष्वप्न्यं वहानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः १६
यथा कलां यथा शफं यथ ऋणं संनयामसि ।
एवा दुष्वप्न्यं सर्वमाप्त्ये सं नयामस्यनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः १७

---

१२ इह भद्रं रक्षस्विने न, अवयै न, उत उपयै न । गवे च भद्रं, धेनवे, वीराय, श्रवस्यते च (भद्रं भवतु) । वः ऊतयः ० ॥

१३ हे देवासः ! यत् आविः अस्ति, यत् दुष्कृतं अपीच्यम्, तत् विश्वं आप्त्ये त्रिते (मयि मा भूत्), अस्मत् आरे दधातन । वः ऊतयः ० ॥

१४ हे दिवः दुहितः ! यत् च गोषु यत् च अस्मे, दुष्वप्न्यं, हे विभावरि ! तत् आप्त्याय त्रिताय परा वह । वः ऊतयः ० ॥

१५ हे दिवः दुहितः ! निष्कं वा घ कृणवते दुष्वप्न्यं, वा स्रजं, (तत्) सर्वं आप्त्ये त्रिते परि दद्मसि । वः ऊतयः ० ॥

१६ तदन्नाय, तदपसे, तं भागं उपसेदुषे त्रिताय द्विताय च हे उषः ! दुष्वप्न्यं वह । वः ऊतयः ० ॥

१७ यथा कलां, यथा ऋणं, यथा शफं, संनयामसि, एव सर्वं दुष्वप्न्यं आप्त्ये सं नयामसि । वः ऊतयः ० ॥

१२ यहां राक्षसी लोगोंका कल्याण न हो, बकरोंका कल्याण न हो और उपद्रवी लोगोंका भी न हो । गौ, गाय, वीर और यज्ञके लिये यत्न करनेवालोंका कल्याण हो । आपकी० ॥

१३ हे देवो ! जो प्रकट (पाप) हुआ हो, जो कुछ बुरा स्वप्न हो, वह सब मुझ त्रित आप्त्यमें न रहे, वह दूर भेजो । आपकी० ॥

१४ हे द्युलोककी पुत्री (उषा) ! जो गौओंमें और हममें बुरा स्वप्न बाधाकारी हो, हे तेजस्विनी उषा ! उसको त्रित आप्त्यसे– मुझसे– दूर कर ॥ आपकी० ॥

१५ हे द्युलोककी पुत्री ! अलंकार करनेवाले (सुवार) के अथवा माला बनानेवाले (माली) के पास जो दुष्ट स्वप्न हो वह सब (मुझ) आप्त्य त्रितको छोड़कर दूर चला जाय । आपकी० ॥

१६ वह अन्न लेनेवाला, वह कर्म करनेवाला, अपना भोगका अंश स्वीकार करनेवाला त्रित और द्वित है, हे उषः ! उसके पाससे वह दुष्ट स्वप्न (का कारण पाप) दूर बहा दो । आपकी० ॥

१७ जैसा सूद, जैसा ऋण और जैसा मूल्य वह (बकरा) हम पूर्णतया दे डालते हैं, वैसाही सब दुष्ट स्वप्न आपके पाससे पूर्णतया ले जाते हैं । आपकी० ॥

अजैष्माद्यासनाम चाभूमानागसो वयम् ।
उषो यस्माद्दुष्वप्न्यादभैष्माप तदुच्छत्वनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः १८

१८ वयं अद्य अजैष्म । असनाम च । अनागसः अभूम । हे उषः ! यस्माद् दुष्वप्न्यात् अभैष्म, तत् अप उच्छतु । वः ऊतयः ० ॥

१८ हमने आज विजय प्राप्त किया है। हमने लाभ प्राप्त किया है। हम निष्पाप बने हैं। हे उषादेवी! जिस दुष्ट स्वप्नसे हम भयभीत हो चुके थे, वह (भय) दूर हो। आपकी० ॥

विजयी बनना, लाभ प्राप्त करना और निष्पाप होना

इस सूक्तका श्रेय अन्तिम मंत्रमें कहा है, वह यह है। (मंत्र १८)

१ अद्य वयं अजैष्म—आज हम विजयी होंगे, आजही शत्रुको परास्त करेंगे,

१ अद्य वयं असनाम— आजही हम लाभ प्राप्त करेंगे, धनादि ऐश्वर्य प्राप्त करेंगे,

१ अद्य वयं अनागसः अभूम—आज हम सब निष्पाप बनेंगे, निर्दोष व्यवहार करेंगे,

पापसे दोष होते हैं, दोषसे बुरे कर्म होते हैं, बुरे कर्म हुए तो उनके दोषोंसे लाभ नहीं होता, और विजय भी नहीं मिलता। इसलिये सबसे पहिला कर्तव्य निष्पाप होना है, यही सब उन्नतिका आधार है। इसलिये इस सूक्तमें प्रायः अनेक मंत्रोंमें यही विषय कहा है—

मं. १— यं अभि रक्षथ, ईं अघं न नशत्— जिसको (देव) सुरक्षा करते हैं उसको पाप नहीं लगता,

१— अघानां अपाकृतिं विद— तुम पापोंका निराकरण करनेका उपाय जानते हैं,

५— नः अघा परि वृणजन्— हमारे पापोंको दूर करो,

८— यूयं नः महः अर्भात् एनसः उरुष्यत— तुम हमें बडे और छोटे पापसे बचाओ,

११ यत् आविः अपीच्यं सुकृतं, तत् अस्मद् आरे दधातन— जो प्रकट अथवा गुप्त पाप हुआ हो वह सब हमसे दूर करो,

१८ वयं अद्य अनागसः अभूम— हम आज निष्पाप बनेंगे, निर्दोष होंगे।

इस तरह १८ मंत्रोंमेंसे ६ मंत्रोंमें निष्पाप होनेकी सूचना दी है। क्योंकि यही मानवी उन्नतिके लिये अत्यावश्यक है। इसके साथ साथ पापसे बुरा स्वप्न होता है और मानवोंको सताता है, पाप न हुआ तो बुरा स्वप्न भी नहीं सतायेगा, यह भाव मंत्र १४—१७ तकके चार मंत्रोंमें कहा है—

१४ दुष्वप्न्यं परा वह— दुष्ट स्वप्न हमसे दूर बहा दो,

१५ दुष्वप्न्यं परि दृशसि— दुष्ट स्वप्न चारों ओरसे दूर करो,

१६ दुष्वप्न्यं वह— दुष्ट स्वप्न दूर बहा दो,

१७ दुष्वप्न्यं संनयामसि— दुष्ट स्वप्नको पूर्णतया विनष्ट करो,

इस तरह दुष्ट स्वप्नका जो मूल कारण पाप है वह दूर करनेकी सूचना यहां है। कायिक, वाचिक, मानसिक दोषोंसे दुष्ट संस्कार और दुष्ट स्वप्न होते हैं। मन नहीं प्रसन्नताके स्वप्नके सूचक स्वप्न हैं, यदि स्वप्न दुष्ट होते हों, तो समझना चाहिये कि मनुष्यके व्यवहार और संस्कार बुरे हैं, उनको सुधार करना चाहिये।

इस तरह इस सूक्तके १८ मंत्रोंमेंसे १० मंत्रोंमें दोषों और बुरे संस्कारोंके, तथा उनके सूचक दुष्ट स्वप्नोंको दूर करनेका आदेश दिया है। इनके अलावा अन्य कथन नहीं है।

ईश्वरसे प्राप्त होनेवाली सुखकारी (अरिष्टघ्नी) शक्तियां हैं और उनका संरक्षक सुकृत-कर्म (पुण्य) भी है, ऐसा अनेक मंत्रोंमें कहा है। इसका तात्पर्य यह है कि जीव ईश्वरीय शक्ति प्राप्त करने और उसको उन्नतिके लिये उपयोगमें लाने के लिये पुण्य संचय करें और पापसे दूर रहें।

मं. १— वयः पक्षा उपरि क्रुर्वते-पक्षी अपने छोटे-छोटे बच्चोंपर अपने पंख फैलाकर उनकी सुरक्षा करते हैं,

३— पक्षा वयो न— पंखोंसे पक्षी अपने छोटे बच्चोंकी सुरक्षा करते हैं,

वैसी सुरक्षा ईश्वर भक्तोंकी करता है। भक्ति करके लोग उस सुरक्षाको प्राप्त करें। और

मं. १— द्रुहः अभि रक्षथ- द्रोही घातपात करनेवालोंसे बचाव करो,

२— अस्मे शर्म यच्छ- हमें सुख अथवा आश्रयस्थान मिले,

३— विश्वानि वरूथ्या मनामहे-सब प्रकारके कवच, संरक्षण हमें चाहिये,

४— क्षयं जीवातुं च अरासत- निवास और जीवन-साधन प्राप्त हो,

५— विश्वस्य रायः ईशते— सब धनोंका स्वामी है,

७— तं तिग्मं गुरुं स्पृशः न द्वेषसम्— उसे तीक्ष्ण और बड़ा घातक अस्त्र भी न छू सके,

८— वर्मसु युध्यतः— कवच धारण करके युद्ध करते हुए,

९— शर्म यच्छतु— सुख, आश्रय और आधार दे,

१०— शर्म, भद्रं, अनातुरं, बलम्,

अस्मासु वि यन्तन— सुख, कल्याण, निरोगिता, ये तीन धारक शक्तियां हमें प्राप्त हों,

११— नः सुगं अनुनेषथ— हमें सुखसे (कल्याणकी) ले चलो,

१२—गवे, धेनवे, वीराय, अवस्यते मह्रं-गौ, वीर और यशकी इच्छा करनेवालोंका कल्याण हो,

१७— जैसा (कलौ) सूद, जैसा (अक्षे) द्यूत, (यथा शके गंजनामसि) जैसा जुए, पांसे या जड़ मूल निःशेष किया जाता है, वैसेही हमारी दुर्मति निःशेष हुई हो।

इस सूक्तका इस तरह मनन करके पाठक आवश्यक योग्य बोध प्राप्त करें।

[३] सोम-प्रकरण

(ऋ. ९।३३) त्रित आप्त्यः। पवमानः सोमः। गायत्री।

प्र सोमासो विपश्चितोऽपां न यन्त्यूर्मयः । वनानि महिषा इव १
अभि द्रोणानि बभ्रवः शुक्रा ऋतस्य धारया । वाजं गोमन्तमक्षरन् २
सुता इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः । सोमा अर्षन्ति विष्णवे ३

अन्वयः- १ विपश्चितः सोमासः, अपां ऊर्मयः नः वनानि महिषा इव, (च) प्र यन्ति ॥

२ बभ्रवः शुक्राः ऋतस्य धारया, गोमन्तं वाजं द्रोणानि अभि अक्षरन् ॥

३ सुताः सोमाः इन्द्राय, वायवे, वरुणाय, मरुद्भ्यः विष्णवे (च) अर्षन्ति ॥

अर्थ— १ ये ज्ञानी सोमरस, जलप्रवाहोंके समान (अथवा) वनोंमें भैंसों (के जानेके) समान, चलते हैं।

२ भूरे रंगवाले स्वच्छ (सोमरस), जलकी धाराके साथ, गौओंसे उत्पन्न (दुग्धरूपी) अन्नको (लेकर) कलशोंमें बहते हैं ॥

३ निचोडे सोमरस इन्द्र, वायु, वरुण, मरुत् और विष्णुके लिये बहते हैं॥

तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः । हरिरेति कनिक्रदत् ४
अभि ब्रह्मीरनूषत यह्वीर्ऋतस्य मातरः । मर्मृज्यन्ते दिवः शिशुम् ५
रायः समुद्रांश्चतुरोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः । आ पवस्व सहस्रिणः ६

४ तिस्रः वाचः उदीरते । धेनवः गावः मिमन्ति । हरिः कनिक्रदत् एति ॥

४ तीन वचन (ऋक्, यजु और साम) गाये जाते हैं । दुधारू गौवें शब्द करती हैं। हरे (रंगका सोम) शब्द करता हुआ पात्रमें जाता है ॥

५ ब्रह्मीः यह्वीः ऋतस्य मातरः अभि अनूषत । दिवः शिशुं मर्मृज्यन्ते ॥

५ ज्ञानमय प्रगतिशील सत्यज्ञानकी माताएं जैसी (वेद-वाणियां) गायी जाती हैं । द्युलोकके पुत्र (सोम) को (जलसे) शुद्ध करते हैं ॥

६ हे सोम ! रायः चतुरः समुद्रान् सहस्रिणः अस्मभ्यं विश्वतः आ पवस्व ॥

६ हे सोम ! धनके चार समुद्र और सहस्रों ऐश्वर्य हमारे पास चारों ओरसे ले आ ॥

(ऋ. ९।३४) त्रित आप्त्यः । पवमानः सोमः । गायत्री ।

प्र सुवानो धारया तनेन्दुर्हिन्वानो अर्षति । रुजद्दृळ्हा व्योजसा १
सुत इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः । सोमो अर्षति विष्णवे २
वृषाणं वृषभिर्यतं सुन्वन्ति सोममद्रिभिः । दुहन्ति शक्मना पयः ३
भुवत्त्रितस्य मज्यो भुवदिन्द्राय मत्सरः । सं रूपैरज्यते हरिः ४
अभीमृतस्य विष्टपं दुहते पृश्निमातरः । चारु प्रियतमं हविः ५
समेनमह्ता इमा गिरो अर्षन्ति सस्रुतः । धेनूर्वाश्रो अवीवशन् ६

२. कूट कूट कर रस निकालना

१ सोमं वृषभिः अद्रिभिः सुन्वन्ति- सोमको बलवाले पत्थरोंसे कूटकर रस निकालते हैं। (९।३४।३)

२ पाष्योः पदं उप अभक्त- दो पत्थरोंमें सोम अपना स्थान प्राप्त करता है, कूटा जाता है। (९।१०२।२)

कूटनेके विषयमें ये मंत्र-भाग हैं। इसके पश्चात् छाननेका वर्णन देखो—

३. सोमरसको छानना

१ गोभिः अञ्जानः अव्यया वाराणि परि अर्षति- गौओंके दूधके साथ मिलकर भेडीकी ऊनसे छाना जाता है। (९।१०३।२)

२ अव्यये वारे मधुश्चुतं कोशं परि अर्षति-भेडीकी ऊनकी छाननीसे नीचे चूता हुआ सोमरस पात्रमें भरा जाता है। (९।१०३।३)

३ पुनानः चम्वोः परि विशत्- छाना गया सोमरस पात्रोंमें भरा गया है। (९।१०३।४)

४ पुनानः परि याहि- छाना जानेके बाद पात्रमें रखो। (९।१०३।५)

५ पवमानः परि विश्वावति- छाना जानेके बाद सोमरस पात्रोंमें दौड कर जा कर रहता है। (९।१०३।६)

४. सोमरसमें दूध आदिका मिलाना

सोमरसका पान करनेके पूर्व उसमें जल, दूध या सत्तूका अर्घ मिलाया जाता है और पश्चात् पीया जाता है—

१ सोमासः, अपां ऊर्मयः न, प्र यन्ति— सोमरस जलोंकी लहरोंके समान बनकर प्रवाहित होते हैं, इतने रसीले बनाये जाते हैं। (९।३३।१)

२ वभ्रवः शुक्राः, ऋतस्य धारया, गोमन्तं वाजं, द्रोणानि अभि अक्षरन्— भूरे रंगके छाने गये सोमरस, जलकी धाराके साथ मिलाये जाते हैं, और गौके दूधके साथ तथा गोदुग्धके साथ मिलाये, अन्नके साथ मिलाकर पात्रोंमें रखे जाते हैं। (९।३३।२)

३ धेनवः गावः मिमन्ति, हरिः कनिक्रदत् पति- दुधारू गौवें शब्द करती हैं, दुहकर दूध निकाला जाता है और हरे रंगके सोमरसके साथ वह मिलाया जाता है, मिलानेके समय एक प्रकारका शब्द होता है। (९।३३।४)

४ रूपैः हरिः सं अज्यते— हरे रंगका सोम दूध आदिके मिलानेके बाद विविध रूपोंसे शोभता है। (९।३३।४)

५ धेनूः वाश्रः अवीवशत्— दुधारू गौवें शब्द करती हैं और सोमरसको चाहती हैं, सोममें अपना दूध मिलाना चाहती हैं। (९।३४।३)

६ गोभिः अञ्जानः— गोदुग्धके साथ मिला हुआ सोम। (९।१०३।२)

७ पुनानः स्वधा अनु परि याहि— छाना जानेके बाद अन्नोंके साथ सोमको मिलादो। (९।१०३।५)

इस तरह सोमरस तैयार करते हैं, देवोंको अर्पण करते हैं (देखो ९।३३।३; ९।३४।२,४; ९।१०३।६) और पश्चात् पीते हैं। पात्रोंमें रखते हैं आदि बातें स्पष्ट हैं। अतः अधिक विवरण अनावश्यक है।

॥ यहां सोम-प्रकरण समाप्त हुआ ॥

[४] अग्नि-प्रकरण

(अथ दशमं मण्डलम् ।)

(ऋ. १०।१) त्रित, आप्त्यः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

अग्ने बृहन्नुषसामूर्ध्वो अस्थान्निर्जगन्वान्तमसो ज्योतिषाऽगात् ।
अग्निर्भानुना रुशता स्वङ्ग आ जातो विश्वा सद्मान्यप्राः ॥ १
स जातो गर्भो असि रोदस्योरग्ने चारुर्विभृत ओषधीषु ।
चित्रः शिशुः परि तमांस्यक्तून्प्र मातृभ्यो अधि कनिक्रदद्गाः ॥ २
विष्णुरित्था परममस्य विद्वाञ्जातो बृहन्नभि पाति तृतीयम् ।
आसा यदस्य पयो अक्रत स्वं सचेतसो अभ्यर्चन्त्यत्र ॥ ३
अत उ त्वा पितुभृतो जनित्रीरन्नावृधं प्रति चरन्त्यन्नैः ।
ता ईं प्रत्येषि पुनरन्यरूपा असि त्वं विक्षु मानुषीषु होता ॥ ४

अन्वयः— १ बृहन् (अग्निः) उषसां अग्रे ऊर्ध्वः स्थात् । तमसः निर्जगन्वान् । ज्योतिषा आ अगात् । [अग्निः] रुशता भानुना विश्वा सद्मानि आ अप्राः ॥

२ हे अग्ने ! ओषधीषु विभृतः जातः चारुः सः रोदस्योः गर्भः असि । चित्रः शिशुः तमांसि अक्तून् परि (भवसि) मातृभ्यः अधि कनिक्रदत् प्र गाः ॥

३ विद्वान् जातः बृहन् विष्णुः इत्था अस्य परमं तृतीयं पदं अभि पाति । अस्य आसा स्वं पयः यत् अक्रत, अत्र सचेतसः अभि अर्चन्ति ॥

४ अतः उ पितुभृतः जनित्रीः अन्नावृधं त्वा अन्नैः प्रति चरन्ति । ईं ताः पुनः अन्यरूपाः प्रत्येषि । मानुषीषु विक्षु त्वं होता असि ॥

अर्थ—१ यह श्रेष्ठ (अग्नि) उषःकालके पूर्वही उठकर खड़ा हुआ है (प्रज्वलित हो रहा है।) यह अब अन्धकारसे बाहर हुआ है, प्रकाशके साथ प्रकट हुआ है। सुन्दर अंगवाला यह प्रदीप्त हुआ अग्नि अपने तेजस्वी प्रकाशसे सब स्थानोंको व्यापता है॥

२ हे अग्ने ! तू ओषधियोंमें (लकड़ियोंमें) भरपूर भर कर उत्तम प्रकट हुआ है, यह तू अब इस द्यावा-पृथिवीका गर्भ (केन्द्र) ही है। विचित्र प्रभावाला तू बालक जैसा अन्धकारों और रात्रियोंको पराभूत करता है और (ओषधि-लकड़ियों) माताओंको गोदमें बैठनेके लिये गर्जना करता हुआ जाता है।

३ विद्वान् प्रकट हुआ बड़ा विष्णु (जैसा यह अग्नि) इस तरह तीसरे परम स्थानका पालन करता है। (लोग) इसके सुखमें अपना दुःख अर्पण करते हैं। यहां विशेष ज्ञानी इसका पूजन करते हैं॥

४ इस कारण अन्न पालन करनेवाली माताएँ (ओषधियाँ, अन्नियाँ) अन्नकी वृद्धि करनेवाले तुझ (अग्नि) को अन्नोंसे सेवा करती हैं। (अतः मैं) इस विविध रूप बननेवाले (ओषधिरूपोंके) पास आता हूँ। क्योंकि मानवी प्रजाओंमें तू ही देवोंका है॥

मं. ३— (**विद्वान् जातः**) वह आदर्श तरुण विद्या कर बड़ा विद्वान् ज्ञानी और चतुर बनता है। (**बृहन्**) वह बातोंमें श्रेष्ठ होता है। (**विष्णुः**) वह सर्वत्र गमन करके का निरीक्षण करता है। (**तृतीयं परमं अभि पाति**) सरे श्रेष्ठ स्थानको, सबसे श्रेष्ठ स्थानको सुरक्षित करता है। र्थात् सभी स्थानोंकी सुरक्षा करता है। (**अस्य आसा स्वं पयः अक्रत**) इसके पीनेके लिये गौवें अपना दूध देती हैं, सब लोग इसको यथेच्छ दूध पिलाते हैं। (**सचेतसः अर्चन्ति**) ानी इस आदर्श तरुणकी प्रशंसा करते हैं अर्थात् ज्ञानियोंके आदरके लिये वह योग्य होता है।

मं. ४—(**पितुभृतः जनित्रीः अन्नावृधं अन्नैः प्रतिचरन्ति**) सुयोग्य अन्न लेकर माताएँ अन्नसेही पुष्ट होनेवाले अपने बालकको उत्तम अन्नोंसे पुष्ट करती हैं। अपने बालकके योग्य अन्नोंसे समझो सेवा करती हैं। अपने बालकका अन्नोंसे सत्कार करती हैं। (**पुनः ता अन्यरूपाः प्रत्येषि**) फिरसे वह बाल बड़ा होकर उन माताओंका सत्कार करनेके लिये उनके पास पहुंचता है। अर्थात् अपनी माताओंका सत्कार करने योग्य बड़ा होनेपर करता है। इस तरह यह अन्योन्य सेवासे अपूर्व यज्ञ होता है। (**मानुषीषु विक्षु होता**) मानुषी समाजमें यज्ञरूपी जीवन व्यतीत करनेवाला यह आदर्श होता होता है।

मं० ५— यह आदर्श तरुण (**अध्वरस्य होता**) हिंसा रहित कर्मोंका करनेवाला, (**यज्ञस्य केतुः**) सब प्रकारके सत्कार- संगति- दानात्मक कार्योंका कर्ता (**रुशन्, चित्ररथः**) तेजस्वी और सुंदर रथमें बैठनेवाला, (**मह्ना देवस्य-देवस्य शर्धिः**) अपने निज महत्त्वसे प्रत्येक विबुधके लिये हितकारी कर्म करनेवाला, (**जनानां अतिथिः**) जनोंके घरोंमें अतिथिवत् पूज्य होकर उनके हितके कर्म करनेके लिये जानेवाला हो। (**श्रिया**) इसकी यशस्विताके कारण वह सदा प्रशंसायोग्य होता है।

मं० ६— वह आदर्श तरुण अनेकानेक तेजस्वी वस्त्र पहनता है, पृथ्वीमें वह केन्द्र-स्थानमें रहता है, जहां वह रहता है वही केन्द्र- सब हलचलोंका केन्द्र बनता है, इसी स्थानमें वह सबका विशेष हित करता है, वह मानो सब ज्ञानियोंको इकट्ठा करता है और उनके द्वारा शुभ कर्म करता है।

मं० ७— वह आदर्श तरुण सब विश्वको अपने तेजसे भर देता है, मातापितरोंका नाम अधिक यशस्वी करता है। बलवान् तरुण बनकर जिनको चाहिये उनकी सहायता करता है और दिव्य ज्ञानियोंको एकत्रित करके उनसे सत्कर्मोंको सिद्ध कराता है।

इस तरह आदर्श बलवान् सत्कर्म-प्रेरक तरुणका वर्णन इस सूक्तमें अग्निके मिषसे किया गया है। सब तरुण इसका मनन करें, इन गुणोंको अपनाएँ और अपना जीवन दिव्य बनावें।

(ऋ. १०।२) त्रित आप्त्यः। अग्निः। त्रिष्टुप्।

पिप्रीहि देवाँ उशतो यविष्ठ विद्वाँ ऋतूँरृतुपते यजेह।
ये दैव्या ऋत्विजस्तेभिरग्ने त्वं होतॄणामस्यायजिष्ठः १

वेषि होत्रमुत पोत्रं जनानां मन्धातासि द्रविणोदा ऋतावा।
स्वाहा वयं कृणवामा हवींषि देवो देवान्यजत्वग्निरर्हन् २

अन्वयः— २ हे यविष्ठ! उशतः देवान् पिप्रीहि। हे ऋतुपते! ऋतून् विद्वान् इह यज। हे अग्ने! ये दैव्याः ऋत्विजः तेभिः (वेषां) होतॄणां (मध्ये) त्वं मायजिष्ठः असि॥

२ जनानां होत्रं उत पोत्रं वेषि। मन्धाता, ऋतावा द्रविणोदा असि। वयं हवींषि स्वाहा कृणवाम। अर्हन् अग्निः देवः देवान् यजतु॥

अर्थ— १ हे युवा! इच्छा करनेवाले देवोंको तृप्त कर। हे ऋतुओंके स्वामिन्! ऋतुओंको जाननेवाला तू यहां यजन कर। हे अग्ने! जो दिव्य ऋत्विज् हैं उनके साथ रहनेवाला तू, उन होताओंके मध्यमें तूही पूजनीय है॥

२ तेजोंसे यजन तथा पवित्र कर्म तू प्राप्त करता है। तू ध्यानकर्ता, सत्कर्म करनेवाला और धनदाता है। हम हविका अर्पण स्वाहाकरके सदा करते हैं। सदैव अग्निदेव सब देवोंका यजन करे॥

आ देवानामपि पन्थामगन्म यच्छक्नवाम तदनु प्रवोळ्हुम् ।
अग्निर्विद्वान्त्स यजात्सेदु होता सो अध्वरान्त्स ऋतून्कल्पयाति । ३

यद्वो वयं प्रमिनाम व्रतानि विदुषां देवा अविदुष्टरासः ।
अग्निष्टद्विश्वमा पृणाति विद्वान्येभिर्देवाँ ऋतुभिः कल्पयाति । ४

यत्पाकत्रा मनसा दीनदक्षा न यज्ञस्य मन्वते मर्त्यासः ।
अग्निष्टद्धोता क्रतुविद्विजानन्यजिष्ठो देवाँ ऋतशो यजाति ५

विश्वेषां ह्यध्वराणामनीकं चित्रं केतुं जनिता त्वा जजान ।
स आ यजस्व नृवतीरनु क्षाः स्पार्हा इषः सुमतीर्विश्वजन्याः ६

यं त्वा द्यावापृथिवी यं त्वाऽऽपस्त्वष्टा यं त्वा सुजनिमा जजान ।
पन्थामनु प्रविद्वान्पितृयाणं द्युमदग्ने समिधानो वि भाहि ७

---

३ देवानां पन्थां अपि आ अगन्म । यत् शक्नवाम तत् अनु प्रवोळ्हुं (समर्थाः भवेम) । विद्वान् सः अग्निः यजात् । स इत् उ होता, सः सः अध्वरान् ऋतून् कल्पयाति ॥

३ देवोंने निश्चित किये मार्गोंसेही हम जाते हैं। [illegible] सकता है वह करनेके लिये (हम समर्थ हों)। [illegible] अग्नि यह यजन करे । वही होता है, वही हिंसारहित [illegible] ऋतु नियत करता है ॥

४ हे देवो ! अविदुष्टरासः वयं वः विदुषां यत् व्रतानि प्रमिनाम । विद्वान् अग्निः तत् विश्वं आ पृणाति । येभिः ऋतुभिः देवान् कल्पयाति ॥

४ हे देवो ! अज्ञानी हम आप ज्ञानियोंके नियमोंका [illegible] करते हैं, (यह सत्य है)। यह ज्ञानी अग्नि उस [illegible] परिपूर्ण करे । उन ऋतुओंके अनुकूल वह देवोंके लिये ([illegible] सिद्ध करता है ॥

५ यत् पाकत्राः मन्दधियः मर्त्यासः मनसा यज्ञस्य यत् न मन्वते, तत् । विजानन् होता ऋतुविद् यजिष्ठः अग्निः ऋतुशः देवान् यजति ॥

५ दीन बुद्धिवाले मनुष्य बुद्धिकी अपरिपक्वताके कारण [illegible] भी जिस यज्ञका विचारतक नहीं करते, उस यज्ञको [illegible] वाला, हवनकर्ता, ऋतुज्ञाता, यजनकर्मोंमें प्रवीण अग्नि [illegible] अनुसार देवोंका यजन करता है ॥

६ विश्वेषां अध्वराणां अनीकं हि चित्रं केतुं यज्ञानां जनिता त्वा जजान । सः तु आ यजस्व नृवतीः अनु क्षाः स्पार्हाः सुमतीः विश्वजन्याः इषः अनु आ यजस्व ।

६ सब दिव्यगुणोंसे युक्त, विद्वानोंका [illegible] पवित्र, ऐसे तुझको जगज्जनकने उत्पन्न किया है। [illegible] पुरु, मनुष्योंके पास रहनेवाले, स्पृहणीय, यज्ञ [illegible] यज्ञोंके लिये अन्नके उत्पादनके लिये अनुकूल यजन [illegible]

७ त्वं द्यावापृथिवी, त्वं आपः, त्वं त्वष्टा, सुजनिमा यथा त्वा जजान, हे अग्ने ! विद्वान् त्वं पन्थां अनु प्रविद्वान् [illegible], पितृयाणं द्युमत् वि भाहि ।

७ तुझे द्यावापृथिवीने उत्पन्न किया है, [illegible] उत्पन्न किया है। उत्तम पुत्र जन्मानेवाले [illegible] ने तुझे निर्माण किया है। हे अग्ने ! तू विद्वान् [illegible] अनुसार है, पितृयाण मार्ग [illegible] मार्गसे [illegible]

युवाके कर्तव्य

मंत्र १— (देवान् पिप्रीहि) देवोंका संतोष प्राप्त करना चाहिये। दिव्य विबुध सदाचारसेही संतुष्ट होते हैं। लिये देवोंके समान सदाचारसंपन्न होना चाहिये। (ऋतून् द्वान्) ऋतुओंको यथावत् जान, किस ऋतुमें क्या होता उनमें कैसा व्यवहार करना चाहिये, इसका ज्ञान प्राप्त करना हिये, तथा (ऋतून् यज) ऋतुओंके अनुकूल यजन कर। स ऋतुमें जो यजन करना चाहिये वैसा यजन कर। होतृणां त्वं आयजिष्ठः) होताओंमें तू यजनीय हो। न करनेकी विद्यामें तू सबसे विशेष ज्ञानवाला बन, जिससे तुझे अनुकूल यजन करके तू नीरोग, बलवान् और उत्साही रेगा।

मंत्र २--(जनानां होत्रं पोत्रं वेषि) लोगोंके हवन और वन कर्मोको तू करता है। (मन्धाता, ऋतवा द्रविणोदा तसि) मनको ध्यानमें लगानेवाला, सत्कर्म करनेवाला और नका दाता है। (देवः देवान् यजतु) वह स्वयं देव है ह देवोंका सत्कार करे।

मं. ३— (देवानां पन्था अगन्म) देवोंके मार्गसे हम लते हैं। सन्मार्गसेही हम चलते हैं। (यत् शकनवाम) जितनी हमारी शक्ति होगी उतना (तत् अनु प्रवोळ्हुं) हम कर्म करनेके लिये बल करेंगे। अर्थात् शक्ति होनेपर हम न्मार्ग नहीं छोडेंगे। (विद्वान् यजात्) विद्वानही यज्ञ करे, यज्ञ-प्रक्रिया जाननेवाला यज्ञ करे। (स अध्वरान् कल्पयाति) वह हिंसारहित कर्मोको यथानांग करता है।

मं. ४— (अ-विदुष्टरासः वयं विदुषां व्रतानि प्र मिनाति) हम अज्ञानके कारण विद्वानोंके निर्मित किये मार्गमें विघ्न करते हैं, हमारे अज्ञानके कारण मार्गमें दोष होता रहता है। इसीलिये अज्ञान दूर करना चाहिये और ज्ञानी बनना चाहिये। (विद्वान् विश्वं पृणाति) जो विद्वान् होता है वह सब कुछ कर्तव्य यथायोग्य रीतिसे करता है। उसमें दोष रहने नहीं देता; (ऋतुभिः देवान् कल्पयाति) ऋतुओंके अनुकूल वह देवोंके लिये यज्ञ करता है और उनको प्रसन्न करता है।

मं. ५— (दीन-दक्षाः पाकत्राः मर्त्यासः मनसा यज्ञस्य न मन्वते) क्षीणबल अपरिपक्व मानव मनसे भी यज्ञ करनेकी बात नहीं सोच सकते। जो बलवान् पूर्ण ज्ञानी पुरुष हैं वेही यज्ञ करनेके विषयमें सोचते हैं। इसीलिये कहते हैं कि (विजानन् ऋतुवित् यजिष्ठः ऋतुशः देवान् यजाति) ज्ञानी यज्ञशास्त्रवेत्ता पवित्र यज्ञकर्ता ऋतुके अनुसार देवोंका यजन करता है और कृतकृत्य होता है।

मं. ६— (विश्वेषां अध्वराणां केतुं त्वा जनिना जजान) सब हिंसारहित कर्मोका ध्वज तू है, ऐसा मानकरही संसारके जनकने तुझे- तुझको-उत्पन्न किया है। यह आदेश अग्नि सिमसे प्रत्येक मानवके लिये है। प्रत्येक मानव हिंसारहित कर्म करे और ऐसे शुभ कर्मोका ध्वज जैसा केन्द्र भी बने। (सः त्वं नृवतीः स्पाहाः शुमतीः इषः यजस्व) वह तू सब सज्जनोंको इच्छा करके इच्छा करनेयोग्य बलवर्धक अन्नोंका यजन कर अर्थात् सबको पहुंचाओ। ऐसा अन्न सबको मिले कि जिस सबकी पुष्टि हो, बल बढे, तथा सब लोग इकट्ठे हों अर्थात् आपसमें सुसंगठित हों।

मं. ७— (पितृयाणं पंथां अनु प्र विद्वान् विभाहि) अपने पूर्वजोंके मार्गको जानकर अपने तेजसे चमकता रह। अपना तेज चारों ओर फैला दे।

संक्षेपसे यह उपदेश इस सूक्तमें किया है। सायणने पुरा ना करे, उसके निर्देश अनेकके वर्णनके लिये इस सूक्तमें किये है।

(ऋ. १०।३) वित आप्त्यः। अग्निः। त्रिष्टुप्।

इनो राजन्नरतिः समिद्धो रौद्रो दक्षाय सुषुमाँ अदर्शि।
चिकित्वि भाति भासा बृहतासिक्नीमेति रुशतीमपाजन्॥ १

अन्वयः— १ हे राजन्! इनः अरतिः समिद्धः रौद्रः सुषुमान् दक्षाय अदर्शि। चिकित्वि विभाति। बृहता भासा रुशतीं अक्निक्नीं एति॥

अर्थ— १ हे राजन्! तू प्रभु अग्निरूपसे, प्रगतिशील, अग्रनेता तथा उत्तम रस निर्माण करनेवाला है ऐसा अनुभवमें आनेके लिये अपना तेज चारों ओर फैलाता है। स्वयं तेजस्वी होकर प्रकाशमान है। बडे तेजसे तेजस्विनी (उषा) को प्रकट करता हुआ सबको देखने योग्य बनाता है।

कृष्णां यदेनीमभि वर्पसा भूज्जनयन्योषां बृहतः पितुर्जाम्।
ऊर्ध्वं भानुं सूर्यस्य स्तभायन्दिवो वसुभिररतिर्वि भाति २

भद्रो भद्रया सचमान आगात्स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात्।
सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन् रुशद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात् ३

अस्य यामासो बृहतो न वग्नूनिन्धाना अग्नेः सख्युः शिवस्य।
ईड्यस्य वृष्णो बृहतः स्वासो भामासो यामन्नक्तवश्चिकित्रे ४

स्वना न यस्य भामासः पवन्ते रोचमानस्य बृहतः सुदिवः।
ज्येष्ठेभिर्यस्तेजिष्ठैः क्रीळुमद्भिर्वर्षिष्ठेभिर्भानुभिर्नक्षति द्याम् ५

अस्य शुष्मासो ददृशानपवेर्जेहमानस्य स्वनयन्नियुद्भिः।
प्रत्नेभिर्यो रुशद्भिर्देवतमो वि रेभद्भिररतिर्भाति विभ्वा ६

---

२ यत् कृष्णां एनीं बृहतः पितुः जां योषां जनयन् वर्पसा अभि भूत्। अरतिः दिवः वसुभिः सूर्यस्य भानुं ऊर्ध्वं स्तभायन् वि भाति॥

२ यह काली रात्रिको, बड़े (सूर्यरूपी) पितासे उत्पन्न हुई (उषारूपी) स्त्रीको प्रकट करके, अपनी शरीरकान्तिसे सम्पन्न करता है। यह प्रगतिशील देव, द्युलोकमें वसनेहारे सूर्यके किरणोंको ऊपरही ऊपर थांब कर, स्वयं प्रकाशित होता है॥

३ भद्रः भद्रया सचमानः आगात्। पश्चात् जारः स्वसारं अभि एति। सुप्रकेतैः द्युभिः वितिष्ठन् अग्निः रुशद्भिः वर्णैः रामं अभि अस्थात्॥

३ कल्याणकर्ता (अग्नि) कल्याण करनेवाली (उषा) के साथ प्रकट हुआ है। जार (सूर्य) अपनी बहिन (उषा) के पीछे पीछेसे जाता है। उत्तम तेजस्वी ज्वालाओंसे ठहरनेवाला अग्नि अपने तेजस्वी किरणोंसे प्रत्येक रमणीय वस्तुमें प्रवेश करता है।

४ अस्य बृहतः अग्नेः इन्धानाः यामासः वग्नून् न (वाधन्ते)। सख्युः शिवस्य ईड्यस्य वृष्णः बृहतः स्वासः अक्तवः भामासः यामन् चिकित्रे॥

४ इस बड़े अग्निके प्रकाशकिरण वक्ता मनुष्योंको कष्ट नहीं देते। मित्र कल्याणकारी स्तुत्य बलिष्ठ श्रेष्ठ और दर्शनीय अग्निके तेजस्वी किरण चारों ओर व्यापते हुए दीखते हैं।

५ रोचमानस्य बृहतः सुदिवः यस्य भामासः, स्वनाः न, पवन्ते। यः ज्येष्ठेभिः तेजिष्ठैः क्रीळुमद्भिः वर्षिष्ठेभिः भानुभिः द्यां नक्षति॥

५ देदीप्यमान श्रेष्ठ तेजस्वी इस अग्निकी ज्वालाएँ, वक्ताके समान शब्द करती हुई फैलती हैं। जो (अग्नि) श्रेष्ठ तेजस्वी उत्तम क्रीडनशील ऊपरकी ओर जानेवाले किरणोंसे आकाशको जाकर पहुंचता है॥

६ ददृशानपवेः जेहमानस्य अस्य शुष्मासः नियुद्भिः स्वनयन्। देवतमः अरतिः विभ्वा यः प्रत्नेभिः रुशद्भिः रेभद्भिः विभाति॥

६ जिसके रथके पहिये दिखाई देते हैं, जो इठलाता चलता है, उसके बलवान् किरण वायुके समान शब्द करते हैं। वह अतिश्रेष्ठ प्रगतिशील देव चारों ओर व्यापता हुआ पुरातन तेजस्वी किरणोंके साथ प्रकाशता है॥

स आ वक्षि महि न आ च सत्सि दिवस्पृथिव्योररतिर्युवत्योः ।
अग्निः सुतुकः सुतुकेभिरश्वै रभस्वद्भी रभस्वाँ एह गम्याः ७

७ सः नः महि आ वक्षि । युवयोः दिवस्पृथिव्योः अरतिः
। सत्सि । सुतुकः रभस्वान् अग्निः सुतुकेभिः रभस्वद्भिः
श्वैः इह आगम्याः ॥

७ वह तू हम सबको महत्त्वके स्थानमें पहुंचा दे । तू तरुण द्युलोक और भूलोकका प्रगतिकर्ता होकर यहां निवास कर । तू प्रगति करनेवाला गतिशील अग्नि वेगवान् हिनहिनानेवाले घोडोंके साथ यहां आ ॥

तरुण राजाके कर्तव्य

इस सूक्तमें सर्वसामान्यतः अग्निके वर्णनके मिषसे राजाके कर्तव्य कहे हैं । राजा अग्निके समान तेजस्वी, मार्गदर्शक, प्रगतिशील और जनताका प्रमुख नेता हो । राजगद्दीपर आये तरुण राजाके सामने अग्निका आदर्श रखा गया है । देखिये यह सूक्त राजाका वर्णन किस तरह कर रहा है—

मंत्र १—(**राजन्, राजा**) राजगद्दीपर आया तरुण राजा प्रशस्य धन करनेवाला हो, तेजस्वी हो, (**इनः**) सब राज्यका शासन करनेवाला हो, समर्थ शक्तिशाली अधिपति हो, (**अरतिः**) गतिमान्, प्रगति करनेवाला, हलचल करनेवाला, सुपर हमला करनेवाला, सहायता करनेवाला, पर्यवेक्षक, [illegible] योजक हो, (**समिद्धः**) प्रदीप्त, तेजस्वी और प्रतापी [illegible] प्रकाशित करता है, विद्यासे प्रजामें नवजीवन निर्माण करता है, विद्यादानकी आयोजनासे प्रजाको नवीन उत्साहमय जीवन देता है । (**अरतिः**) यह प्रगति करनेवाला राजा (**विभाति**) चमकता है, जैसा (**सूर्यस्य भानुं ऊर्ध्वं स्तभायन्**) सूर्यके किरण आकाशमें फैलकर सूर्यका तेज बढाते हैं, उस प्रकार प्रजाकी उन्नति करनेवाला राजा सब प्रकार राष्ट्रभरमें प्रकाशित होता है ।

मं. २— (**भद्रः भद्रया सचमानः आगात्**) [illegible] कल्याण करनेवाला (राजा) [illegible] करनेके साथमें मान रहनेवाली प्रजाके साथ मिलकर आगे बढता है, [illegible] तथा उन्नतिका साधन करता है । (जारः [illegible] प्रियकर या इस मनुष्य [illegible] सूर्य जैसा [illegible]

सनाय बलिष्ठ बडे मित्र राजाके (**स्वासः अक्तवः भामासः यामन् चिकित्रे**) उत्तम मुखवाले अन्धकार दूर करनेवाले तेजस्वी मार्ग (प्रजाका दुःख) दूर करते हैं। (**भामः**– तेज, प्रकाश, सूर्य, क्रोध) राजा और सब राजपुरुष शुभ कार्य करनेवाले, प्रशंसायोग्य, बलवान्, बडे विचारवाले, और प्रजाके मित्र हों, उनके मुख आनन्द प्रसन्न रहें, वे अज्ञान दीनता दारिद्र्यको प्रजासे दूर करें और ऐसे कार्य करें कि जिससे प्रजाका सुख बढता जाय।

मं. ५– (**रोचमानस्य बृहतः अस्य**) तेजस्वी इस बडे राजाके (**भामासः स्वनाः न पवन्ते**) प्रकाश शब्दोंके समानही पवित्र करते हुए चले जाते हैं। अर्थात् इस राजाके प्रगतिके मार्ग और ज्ञानके उपदेश सबको शुद्ध और पवित्र करते हुए उन्नत करते हैं। राजा ऐसी कार्यकी आयोजनाएँ करे कि सब लोग उन्नतिपथपरही बढते रहें। (**ज्येष्ठेभिः तेजिष्ठैः क्रीळुमद्भिः वर्षिष्ठेभिः भानुभिः द्यां नक्षति**) श्रेष्ठ तेजस्वी क्रीडाकुशल वरिष्ठ तेजोंके साथ वह स्वर्गको पहुंचता है। इस तरहके साथियोंसे वह भूमिपर स्वर्गधाम लाता है।

मं. ६— जिसके रथके पहिये सदा चलते रहते हैं, ऐसे इस राजाके (**शुष्मासः**) बल-संवर्धनके प्रयत्न (**नियुद्भिः स्वनयन्**) वायुवेगसे चलते हैं। ऐसा यह (**देवतमः अरतिः विभ्वा**) देवोंमें भी श्रेष्ठ प्रगतिशील प्रभावी र (**प्रत्नेभिः रुशद्भिः रेभद्भि विभाति**) पुरातन पर जैसे तेजस्वी किरणोंसे प्रकाशता है। उसके मार्ग प्राचीन परा को सुरक्षित रखते हैं और नया तेज उनमें भर देते हैं, लिये वह सबकी उन्नति कर सकता है।

मं. ७– (**सः नः महि आ वक्षि**) वह राजा महत्त्वके स्थानको पहुंचा देवे, हमारी सब प्रकार उन्नति करे (**अरतिः आ सत्सि**) सबकी प्रगति करनेके लिये तत्प होकर बैठे। कभी आलस्य न करे। (**सुतुकः रभस्वान्** उत्तम प्रगति करनेवाला गतिशील वीर राजा (**सुतुकेभि रभस्वद्भिः इह आगम्याः**) प्रगतिशील वेगवान् वीरोंके सा यहां आवे और हमारा सहायक हो। अर्थात् स्वयं पुरुषार्थ बनकर अपने जैसे पुरुषार्थी साथियोंके साथ राष्ट्रकी प्रगतिके कार्यमें लगे।

इस तरह यह सूक्त युवा राजाके कर्तव्य बता रहा है वास्तवमें यह अग्निकाही वर्णन कर रहा है, पर पहिलेही मंत्रमें अग्निको 'राजा' कहकर सब सूक्तका सूक्त राजापरक देखनेकी सूचना मिली है। प्रत्येक पदके अर्थ अग्निपरक और राजापरक लगाकर जो विचार करेंगे, वे इस सूक्तके मर्मको अच्छी प्रकार जान सकते हैं।

(ऋ. १०।४) त्रित आप्त्यः। अग्निः। त्रिष्टुप्।

प्र ते याक्षि प्र त इयर्मि मन्म भुवो यथा वन्द्यो नो हवेषु।
धन्वन्निव प्रपा असि त्वमग्न इयक्षवे पूरवे प्रत्न राजन् १
यं त्वा जनासो अभि संचरन्ति गाव उष्णमिव व्रजं यविष्ठ।
दूतो देवानामसि मर्त्यानामन्तर्महाँश्चरसि रोचनेन २

अन्वयः— १ ते प्र यक्षि। मन्म ते प्र इयर्मि। नः हवेषु यथा वन्द्यः भुवः। हे प्रत्न राजन् अग्ने! त्वं इयक्षवे पूरवे, धन्वन् इव प्रपा, असि॥

२ हे यविष्ठ! यं त्वा जनासः अभि संचरन्ति। गावः उष्णं इव व्रजं। देवानां मर्त्यानां दूतः असि। अन्तः महान् रोचनेन चरसि॥

अर्थ— १ तेरे लिये मैं यजन करता हूँ। तेरे लिये मनन-नीय स्तोत्र करता हूँ। हमारे यज्ञोंमें तू वंदनीय होकर रह। हे प्राचीन राजन् अग्ने! तू याजक मानवके लिये, निर्जल प्रदेशमें पियाऊके समान, हो॥

२ हे तरुण! तेरी सब लोग सेवा करते हैं। जैसी (शीतसे पीडित) गौवें उष्ण गोशालामें जाती हैं। तू देवों और मानवोंका दूत है। इस विश्वके अन्दर बडा होकर अपने तेजसे तू संचार करता है॥

मं. ५— (**सनयासु नव्यः जायते**) सनातन या पुरातन प्रजाओंमें ही नवीन विचार उत्पन्न होता है और सुदृढ होता है जिस तरह सूखी लकडियोंमें अग्नि प्रदीप्त होता है। इसलिये सनातन विचारमाला सुदृढ रखनी चाहिये और उसमें नवीन सुयोग्य विचारोंके लिये स्थान भी होना चाहिये। इस तरह प्राचीन तथा नवीनका मेल हो जानेसे समाज तथा राष्ट्र उन्नत होता रहता है। **(वने धूमकेतुः पलितः तस्थौ)** वनमें-लकडियोंमें-अग्नि प्रज्वलित होकर रहता है। लकडियां न हुई तो अग्नि नहीं होगा। अग्नि ही उत्साही युवकोंका प्रतीक है। उसके लिये उत्साह-वृद्धि होनेयोग्य साधन चाहिये। **(अस्नाता आपः प्रवेति)** जिसने स्नान नहीं किया वही जलस्थानपर स्नान करनेके लिये जाता है; अर्थात् स्नान करनेकी आवश्यकता उसको स्नान करनेके स्थानके पास पहुंचाती है। इसी तरह अज्ञानी ज्ञानीके पास, निर्धन उद्योग धंदोंके स्थानमें, और इसी तरह अन्यान्य आवश्यकताओंवाले अपनी इच्छापूर्ति करनेके लिये योग्य स्थानपर जाते हैं। अज्ञानी ज्ञानीके पास जाकर ज्ञान कमाता है, निर्धन कारीगर धनिकोंके पास जाकर धन प्राप्त करता है, इसी तरह अपनी अपनी कामनापूर्ति लोग करते रहते हैं। राजाने अपने राज्यमें इस तरह सबको अपनी कामनापूर्ति सुयोग्य रीतिसे करानेकी सहूलियत करकेलिये खुली रखना चाहिये।

(यं सचेतसः मर्ताः प्रणयन्तः) जिसके पास उत्साही मनुष्य जायँ, उसे प्रसन्न करें और अपनी कामना सुयोग्य मार्गसे पूर्ण करें। यह मार्ग सब मानवोंकी उन्नतिके लिये योग्य है।

मं. ६— (**वनर्गू ननुत्यजाः**) वनोंमें जानेवाले और जीवका त्याग करके भी अपना कर्तव्य करनेवाले रक्षक **तस्कराः रशनाभिः अभि अधीतां**) चोर डाकू लोगोंको रस्सीयोंसे पकडते और बांध देते हैं। इसी तरह सब राष्ट्र-पुरुष अपना कर्तव्य-पालन करते जायँ। यही राजाकी **(नव्यसी मनीषा)** प्रकट इच्छा होनी चाहिये। नवीन इच्छा यही है, पुरानी जीर्ण अथवा क्षीण इच्छा नहीं। नयी, प्रबल सुदृढ इच्छा यही है कि सब गुण्डोंका दमन हो और सज्जनोंका पालन हो। यह कार्य करनेके **(शुचयद्भिः अंगैः रथं युक्ष्व)** पवित्र अंगोंसे युक्त रथको जोतकर तैयार हो जा। रथके सब अङ्ग पवित्र अर्थात् निर्दोष हों, किसीमें किसी तरहका दोष न हो। ऐसेही सब राजपुरुष अपना कर्तव्य-पालन करनेके लिये तैयार रहें।

मं. ७— (**जात-वेदाः**) ज्ञान और धन बढानेवाला इनकी वृद्धि करनेवाला राजा हो। (**ब्रह्म वर्धनी भूत्**) ज्ञान राष्ट्रके संवर्धन करनेवाला हो, सब प्रकारका ज्ञान वर्धनका कार्य करे। (**नमः च**) अन्न और शस्त्र राष्ट्रका अच्छी तरह संवर्धन करे। (**नमः**— अन्न, शस्त्र, नमन, स्तोत्र, ज्ञान)। **(इयं गीः सदं इत् वर्धनी भूत्**) यह वाणी, यह ग्रंथरचना सदा राष्ट्रका संवर्धन करनेवाली हो। राष्ट्रमें ऐसे ग्रंथ न बनें कि जिनकी विचारधारा राष्ट्रकी उन्नतिमें विघ्न करनेवाली हो। (**तनयानि तोक रक्ष**) बालबच्चोंकी सुरक्षा हो, क्योंकि राष्ट्रका भविष्यकाल इन्हींपर अवलंबित रहता है। बालबच्चे जैसे होंगे, वैसाही राष्ट्र होगा। (**अप्रयुच्छन् नः तन्वः रक्ष**) अशुद्धि अथवा प्रमाद न करते हुए हमारे शरीरोंकी सुरक्षा कर। यहां 'तन्वः' पद है। स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर अर्थात् क्रमशः शरीर, मन और बुद्धिकी सुरक्षा हो ऐसा भाव यहां है। राष्ट्रके मानवोंके शरीर, इंद्रियां, मन और बुद्धिकी सुरक्षा हो, यह इसका आशय है।

अग्निके वर्णनके निमित्त जो राष्ट्रसंवर्धनका उपदेश और राजाके कर्तव्योंका उपदेश यहां किया है, उनका यह संक्षिप्त स्पष्टीकरण है।

(ऋ. १०।५) त्रित आप्त्यः। अग्निः। त्रिष्टुप्।

एकः समुद्रो धरुणो रयीणामस्मद्ह्रदो भूरिजन्मा वि चष्टे।
सिषक्त्यूधर्निण्योरुपस्थ उत्सस्य मध्ये निहितं पदं वेः ॥

अन्वयः— १ रयीणां धरुणः भूरिजन्मा एकः समुद्रः, अस्मद् ह्रदः वि चष्टे। निण्योः उपस्थे ऊधः सिषक्ति। उत्सस्य मध्ये वेः पदं निहितम् ॥

अर्थ— सब धनोंका आधार, अनेक बन्धुओंमें जन्म लेनेवाला ऐसा एक अन्तरिक्ष समुद्र है, वह हमारे सब दुःखोंको देखता है। दोनों जल भरी मेघोंके स्थानमें वह रहता है। उस स्थानके मध्यमें पक्षीका स्थान है।

समानं नीळं वृषणो वसानाः सं जग्मिरे महिषा अर्वतीभिः ।
ऋतस्य पदं कवयो नि पान्ति गुहा नामापि दधिरे पराणि २
ऋतायिनी मायिनी सं दधाते मित्वा शिशुं जज्ञतुर्वर्धयन्ती ।
विश्वस्य नाभिं चरतो ध्रुवस्य कवेश्चित्तन्तुं मनसा वियन्तः ३
ऋतस्य हि वर्तनयः सुजातमिषो वाजाय प्रदिवः सचन्ते ।
अधीवासं रोदसी वावसाने घृतैरन्नैर्वावृधाते मधूनाम् ४
सप्त स्वसॄररुषीर्वावशानो विद्वान्मध्व उज्जभारा दृशे कम् ।
अन्तर्येमे अन्तरिक्षे पुराजा इच्छन्नग्निमविदत्पूषणस्य ५
सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्तासामेकामिदभ्यंहुरो गात् ।
आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीळे पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ ६

२ समानं नीळं वसानाः महिषाः वृषणः अर्वतीभिः सं जग्मिरे । कवयः ऋतस्य पदं नि पान्ति । गुहा पराणि नामानि दधिरे ॥

२ एक वरमें रहनेवाले भैंसेके समान बलवान् और अश्वियोंके साथ इकट्ठे होते हैं। कवि सत्यके स्थानकी सुरक्षा करते हैं। (और अपने) हृदयमें श्रेष्ठ नामोंका धारण करते हैं ॥

३ ऋतायिनी मायिनी सं दधाते । मित्वा शिशुं वर्धयन्ती जज्ञतुः । विश्वस्य ध्रुवस्य चरतः नाभिं कवेः तन्तुं मनसा वियन्तः ॥

३ सत्य-प्रवर्तिका और कुशलकारिणी (वे दो अरणियाँ अग्निके पुत्रका) मिलकर धारण करती हैं। समयपर पुत्रको (अग्निको) निर्माण करती हैं और बढ़ाती हैं। सब स्थावरजंगमका मध्य और कविके (अन्तरात्मा के अग्नि) धागा है, वह वे मनसे निश्चित करते हैं। (अतएव इसको उपास्य मानते हैं) ॥

४ ऋतस्य वर्तनयः प्रदिवः सुजातं वाजाय इषः सचन्ते हि । वावसाने रोदसी अधीवासं मधूनां घृतैः अन्नैः वावृधाते ॥

४ सत्यके प्रवर्तक, इष्ट वस्तु प्राप्त करनेवाले दिव्य नियम उत्तम जन्मे हुए (इस अग्नि) को बल प्राप्त करनेके लिये उपासना करते हैं। सबको बसानेवाले द्यावापृथिवी ये दोनों (लोक अपने अन्दर रहनेवाले अग्निको) मधुर घृत अन्नसे बढ़ाते हैं ॥

५ वावशानः विद्वान् अरुषीः सप्त स्वसॄः मध्वः कं दृशे उज्जभार । पुराजाः अन्तरिक्षे अन्तः येमे । पूषणस्य वित्तं इच्छन् अविदत् ॥

५ सबको वशमें रखनेवाले ज्ञानी (अग्नि) ने अपने रंगकी (ज्वालारूपी) सात मीठी बहिनोंको अपने सुंदर स्वरूपको दिखानेके लिये ऊपर उठाया। पहिले ही देखकर उत्पन्न होनेवाला (यह अग्नि) अन्तरिक्षके अन्दर (सबका) नियमन करता है । पूषाका स्वरूप प्राप्त करनेकी इच्छासे (विशाल रूप उसने) प्राप्त किया ॥

६ कवयः सप्त मर्यादाः ततक्षुः । तासां एकां इत् अभि अगात् अंहुरः (भवति) । आयोः स्कम्भः पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ ॥

६ कवियोंने सात मर्यादाएँ बनायी हैं। उनमेंसे एकका जो उल्लंघन करता है वह पापी (बनता है)। जो सबका आधारस्तंभ है, जहाँसे नाना मार्ग चलते हैं उस उस स्थानोंमें, इन धैर्यमय सर्वाधारके स्थानोंमें (पवित्रात्मा) रहता है ॥

असच्च सच्च परमे व्योमन्दक्षस्य जन्मन्नदितेरुपस्थे ।
अग्निर्ह नः प्रथमजा ऋतस्य पूर्व आयुनि वृषभश्च धेनुः ७

७ असत् च सत् च परमे व्योमन्। पूर्वे आयुनि अदितेः उपस्थे दक्षस्य जन्मन्। नः ऋतस्य प्रथमजाः अग्निः ह। वृषभः धेनुः ॥

७ असत् और सत् परम स्थानमें (इकट्ठे) रहते हैं। पहिले समयमें अखंडितके समीप बलका जन्म हुआ है। वहीं हमारा यज्ञप्रवर्तक प्रथम उत्पन्न हुआ अग्नि है। वहीं वृषभ और धेनु (पुरुष और स्त्री शक्तियाँ) रहती हैं ॥

सत्य तत्त्वका ज्ञान

इस सूक्तमें सत्य तत्त्वका ज्ञान प्रकट हुआ है। अतः इसका मनन विशेष रीतिसे करना चाहिये। **(रयीणां धरुणः)** एक (आत्मा) है जो सब प्रकारकी शोभाओं, धनों और जीवनोंका धारक अथवा आधार है। इसीके कारण संपूर्ण विश्वमें सब प्रकारकी शोभा, रमणीयता, मनोहारिता तथा आनन्दमयता प्राप्त हो रही है, इसका आधार न होनेसे यह सब शोभा दूर होगी, ऐसा एक आत्मा है अथवा एक तत्त्वकी सत्ता है। यह **(एकः समुद्रः)** एकही एक अखण्ड अविभक्त समुद्र जैसा सर्वत्र एकरस भरा हुआ है, सर्वत्र समत्वभावसे व्यापता है, सारी ओर एक जैसा फैला है, कोई जगह इन्होंने अव्याप्त ऐसी छोड़ी नहीं है। इस तरह यह सर्वव्यापक होनेके कारणही (भूरि-जन्मा) अनन्त पदार्थोंमें, उन उन पदार्थोंके रूपोंमें जन्मता है, इसी कारण इसको 'विश्वरूप, सर्वरूप, अनन्तरूप' कहते हैं, क्योंकि जो भी रूप इस विश्वमें हैं वे सबके सब रूप इसीके नहीं, प्रत्युत जो अरूप वस्तुएँ हैं वे भी इसीके रूप या इसीके भाव हैं। यह सर्वरूप धारण करनेवाला आत्मा **(असत् इदः वि चष्टे)** हमारे सबके अन्तःकरणोंमें रहता है और सब देख रहा है। परमात्मा सबके अन्तःकरणोंमें है, सब वस्तुओंमें सब वस्तुओंका रूप धारण करके रहा है और सब विश्वका व्यवहार देख रहा है।

(निण्योः उपस्थे ऊधः सिषक्ति) 'निण्य' का अर्थ है 'गुप्त, गूढ, ढंका, आच्छादित' और 'ऊध' का अर्थ है 'दूध का स्थान, जहाँ माताके पेटमें दूध रहता है, उसका आशय'। इसका शब्दार्थ यह है कि-'दो गुप्त वस्तुओंके निकटके रसाशयके पास वह रहता है।' इसका विचार ऐसा करना चाहिये। दो लकडियोंके घर्षणसे अग्नि उत्पन्न होती है, उत्पत्तिके पूर्व वह इन लकडियोंमें गुप्त रहती है। ये लकडियां दो रहती हैं, एक अधर-अरणी और दूसरी उत्तर-अरणी। अग्निको अपने अन्दर आच्छादित रखनेवाली इन दो अरणियोंमें यह अग्नि रहती है। इनके पास सोमरसका स्थान होता है, उसके समीपवर्ती स्थानमें इन दो लकडियोंमें गुप्त रूपसे यह अग्नि रहती है। दो वस्तुओंमें गुप्त रूपसे रहनेवाली यह अग्नि है यह मुख्य आशय यहां है।

स्त्री पुरुष ये दो वस्तुएं गृहमें रहती हैं, उनमें गुप्त रूपसे पुत्ररूप अग्नि है। पूर्वोक्त मंत्रका यह भी एक आशय है। इसी तरह जड और चेतन ये दो वस्तुएं हैं, इनमें गुप्त रूपसे व्यापनेवाली आत्मा है, यह मुख्य आशय यहां है। प्रत्येक स्थानमें (ऊधः- रसका स्थान) विभिन्न होगा इसमें संदेह नहीं है। यज्ञाग्निके समीप सोमरसका पात्र, गृहस्थाश्रमी स्त्रीपुरुषोंके समीप पुष्टिकारक अन्नस्थान और जडचेतनमें हृदय अथवा जीवनस्थानही यह स्थान होगा। जडचेतनमें जीवन (अदृष्ट। प्रकृति रूप जड+जीवभावरूप चेतनमें= व्यापक आत्मतत्त्व) किस तरह रहता है यह तत्त्व यहां बताया है। इसी विषयमें और अधिक स्पष्टीकरण आगे करते हैं—

मंत्र १- (**उत्सस्य मध्ये वेः पदं निहितं**) जलाशयके मध्यमें पक्षीका स्थान नियत हुआ है। पक्षी जीव है, उसका स्थान जलाशयके मध्यमें है। यह जलाशय हृदय है, इसीको 'मानस' अथवा 'मानस सरोवर' कहते हैं। इस तरह मंत्रका आशय यह हुआ, जीवका स्थान हृदयमें है, वही जीव भाव है। जड और जीव इन दो भावोंमें व्यापक एक आत्मा रहता है, जीवनरस इसीके साथ संबंधित रहता है। वह सबके हृदयोंके अंतर्बाह्य स्थितिका निरीक्षण करता है। वस्तुतः यह एक समुद्र जैसा व्यापक आत्मा है, जो अनेक वस्तुओंमें धारण करता है, एक होता हुआ

अनेक रूप धारण करता है और इसीके आधारसे सब विश्वकी शोभा और रमणीयता रहती है। इसके कारणही यह विश्व सुंदर और रमणीय दिखाई देता है।

मंत्र २— (समानं नीळं वसानाः महिषाः वृषणः अर्वतीभिः सं जग्मिरे) एक घरमें रहनेवाले भैंसे और बैल घोडियोंके साथ संमिलित हुए। एक शरीरमें रहनेवाले प्रबल इंद्रिय वेगवाली शक्तियोंसे संयुक्त हुए हैं। शरीर यह एक घर, घोंसला अथवा स्थान है, जहां इंद्रियाँरूप भैंसे और मनरूप बैल रहते हैं। इनका मेल प्रबल शक्तियोंके साथ यहीं होना है। पतिशरीरमें यह चमत्कार दिखाई देता है।

(कवयः श्रुतस्य पदं नि पान्ति) कवि ज्ञानी जन श्रुतके, आत्माके, स्थानकी सुरक्षा करते हैं। ज्ञानीही इस आत्माके स्थानको जानने, समझने और उपदेश करते हैं, अर्थात् इस आत्मज्ञानको सुरक्षित रखते हैं। ज्ञानियोंमेंही यह आत्मज्ञान सुरक्षित रहता है। और ये ज्ञानीही इस आत्माके वर्णन करनेके **(पराणि नामानि)** श्रेष्ठ नामोंको **(गुहा दधिरे)** अपने अन्तःकरणमें धारण करते हैं। एक एक नाम आत्माके एक या अधिक गुणोंका बोध करता है और इन नामोंसे आत्माके स्वरूपका बोध होता है। इन नामोंके मननसे आत्माका स्वरूप विदित हो जाता है, यह नामोंका महत्त्व है।

मंत्र ३— **(छलायिनी मायिनी सं दधाते)** [illegible] दूसरी कुशल कर्म करनेवाली ऐसी [illegible] हैं, वे दोनों साथ साथ रहकर (गर्भका) धारण [illegible] हैं। वेदमें अनेक स्थानोंपर दिन और रात्रीकी निशा ये [illegible] वर्णन किया जा सकता है। 'मायिनी' [illegible] अर्थ बनानेके कारण रात्रीका वाचक [illegible] दिनका वाचक है, क्योंकि अनका [illegible] आदि है जो दिनका सूचक है। दिन [illegible] रात्री [illegible] और चन्द्रका पालन-पोषण [illegible] दूसरा अर्थ दोनों अरणियोंसे [illegible] है, जो पवित्र और पोषक माना है [illegible] वर्धनशक्ति [illegible] दुष्टता, अशुद्धि [illegible] दोनों [illegible] हैं जो एक स्थानपर रहती हैं और समाज या राष्ट्रकी धारणा करती हैं। ज्ञान और कौशल्यही राष्ट्रका संरक्षण करती है।

(मित्वा शिशुं जज्ञतुः वर्धयन्ती) [illegible] अनुसार बालकको जन्म देती हैं और उसका संवर्धन करती हैं। प्रथम गर्भधारण होता है, प्रसव उसके पश्चात् होता है, तदनंतर बाल, तरुण आदि कालके प्रमाणसे उसका संवर्धन होता है। दो अरणियोंसे उत्पन्न हुआ बाल 'अग्नि' है, जो [illegible] यज्ञोंमें नाना कर्म करता है। विद्या और कुशलतासे राष्ट्रका [illegible] तथा अनुयायी ये भी राष्ट्रभूमिपर उत्पन्न होते और [illegible] कार्य करते हैं। माता-पितासे उत्पन्न बाल इसी तरह बढता है। ऐसे विविध क्षेत्रोंमें जो विविध बालक होते हैं उनका विचार इस तरह करना चाहिये और बोध प्राप्त करना चाहिये।

(ध्रुवस्य चरस्य विश्वस्य नाभिं) स्थावर जंगम विश्वके केन्द्रको **(कवेः तन्तुं)** ज्ञानियोंने जो सूत्र-आत्मा जाना है उसको **(मनसा वियन्तः)** मनसे वस्त्ररूपमें बुना देखते हैं। अर्थात् ज्ञानी अपने मनके मननसे जानते हैं, कि एकही यहां सूत्रात्मा है जो इस स्थावरजंगम विश्वके [illegible] है और उसीसे यह सब विश्व निर्माण हुआ है। अर्थात् [illegible] विश्वरूपी वस्त्रके ताने और बानेके तन्तु एकही सूत्रात्मा है, एकही सूत्रात्मा विश्वरूप बना है। प्रथम मंत्रमें 'भूरि-रेता' [illegible] है। अनेक वस्तुओंके रूपमें जन्म लेनेवाला, एक होकर अनेक रूप बननेवाला ऐसा उसका अर्थ है। वही भाव यहां है, एक आत्माके सूत्रसे विश्वरूप वस्त्र बना है। **(विश्वस्य नाभिं तन्तुं वियन्तः)** विश्वरूपी वस्त्रके बीचके धागे बनते हैं।

मंत्र ४— (ऋतस्य वर्तनयः) सत्कर्मोंके पथ [illegible] **(प्रदिवः सुजातं)** दिव्य स्थानमें उत्पन्न हुए **(यज्ञस्य [illegible] सचन्ते)** अपने बलको बढानेके लिये योग्य मार्गका सेवन करते हैं। यज्ञरूपी सत्कर्म करनेवाले उत्तम प्रकारसे [illegible] होनेसे सेवा करनेके लिये और अपना बल बढानेके लिये [illegible] होने और सेवन करते हैं। यज्ञसे समाज और राष्ट्रका [illegible] बढता और योग्य अनेक सेवनसे शारीरिक बल बढता है। वैचारिक और आध्यात्मिक बल बढानेका यह उपाय है।

(रोदसी यावसाने) ये भूलोक और द्युलोक [illegible] का बखान हैं। बखानके लिये पर्याप्त स्थान देते हैं। [illegible] पथ बनते हैं।

अधीवासं मधूनां घृतैः अन्नैः वावृधाते) यहां ...वालेको मधुर घृतमिश्रित अन्नोंसे बढाते, पुष्ट करते हैं। ...र भूमि यहां रहनेवालोंको अन्नादि द्वारा पुष्ट करते हैं। ...को घी और मिष्ट अन्नकी आहुतियां देकर प्रदीप्त करते हैं। ...को स्निग्ध और मिष्ट अन्नोंसे पुष्ट करते हैं।

...त्र ५—(वावशानः विद्वान्) बडा वक्ता ज्ञानी अग्नि ...रुपीः सप्त स्वसृः) लाल रंगकी सात ज्वालारूपी ...नोंको (मध्वः कं दृशे उज्जभार) मधुरिमासे सुंदर ...का दर्शन होनेके लिये ऊपर उठाता है। अग्नि प्रदीप्त ...कर उसकी ज्वालाएँ ऊपर उठती हैं, जब मधुर घीकी ...हुतियाँ उसमें डाली जाती हैं। इसी तरह इंद्रियां आत्मा-... ज्वालाएँ हैं जो आत्माकी प्रभासे प्रकाशती हैं।

(पुराजाः अन्तरिक्षे येमे) सबसे प्रथम जन्मा यह ...त्मा या अग्नि अन्तरिक्षमें प्रज्वलित होता है, रहता है, ...सका नियमन करता है। ' पुरा+जाः ' सबसे प्रथम जो ..., सबसे पूर्व जो उत्पन्न हुआ, वह आत्मा है, इस विषयमें ...ष्योंको कोई संदेह नहीं हो सकता। यह आत्मा इस आकाश-...समें व्यापक है। और सब स्थावर जंगमका नियमन करता ...। विश्वकी प्रतिष्ठा इसी कारण होती है। यज्ञमें अग्नि भी ...थम उत्पन्न होता है, तत्पश्चात् उसमें तथा उससे सब ...ज्ञक्रियाएं होती हैं। इसलिये अग्निको 'पुरा-जाः' कहते हैं।

(पूषणस्य वव्रिं इच्छन् अविदत्) पूषाके रूपको ...प्त करनेकी इच्छा करता हुआ वह उस स्वरूपको प्राप्त ...हुआ। 'पूषा' नाम सूर्यका है। सूर्य जैसा तेजस्वी बननेकी ...च्छा अग्निने की, और पश्चात् वैसा बना। जीवने भी ... नारायण बननेकी इच्छा की और नरका नारायण बना। ...यही अन्तिम उन्नति है। जीवकी अन्तिम उन्नति–मुक्ति–शिव ... बन जाना है। वह जीव पूषाका चोगा पहनता है, पूषाही ... बनता है।

मंत्र ६— अब आचार-धर्म कहते हैं। (सप्त मर्यादाः ततक्षुः) ज्ञानियोंने सात मर्यादाएं मानवके लिये ...र्माण की हैं। १ चोरी, २ गुरुकी मर्यादाके साथ अव्यवहार, ... ३ ब्रह्महत्या, ४ मद्यपान, ५ पुनः पुनः दुष्कर्म करना, ६ ... और ७ उसे छिपानेके लिये [illegible] ... [illegible] मर्यादाएँ [illegible] ... [illegible] ये मर्यादाएँ कही हैं— १ [illegible] असद्व्यवहार, ४ मृगया, ५ दण्ड (राजाको छोडकर अन्योंने अपने हाथमें लेना), ६ कठोर व्यवहार करना, ७ दूसरोंको दूषण देते रहना। इस तरह ७ मर्यादाएँ मानवी आचारके लिये ज्ञानी पुरुषोंने कही हैं। (तासां एकां इत् अभि अगात्, अंहुरः) इनमेंसे एक मर्यादाका भी जो उल्लंघन करता है वह पापी होता है। यह बात सबके ध्यानमें आ सकनेवाली है। जो इन सातों मर्यादाओंका उल्लंघन नहीं करता वह पुण्यात्मा होकर उच्चतम अवस्थामें विराजता है। पापीकी अधोगति होती है।

(आयोः स्कम्भः) यह पुण्यात्मा मनुष्यत्वका आधार-स्तम्भ है। संपूर्ण मानवता इसपर रहती है। जहांसे (पथां विसर्गे) अनेक मार्ग विभिन्न दिशाओंमें जाते हैं वह केन्द्र यही पुण्यात्मा है। इसका एकही धर्मपद है, इससे भिन्न भिन्न दिशाओंमें जानाही अधर्मके विभिन्न पथ हैं जो मनुष्यको गिराते हैं। मध्य केन्द्रमें कोई मार्ग नहीं होता, मार्ग तो वहांसे विरुद्ध दिशाओंमें मानवको ले जाते हैं। मध्य केन्द्रमें कोई मार्ग नहीं है, वहां मार्गका होना भी संभव नहीं। वह स्थिर पद है जो केवल धर्मरूपही है। धर्म स्तम्भ और उससे चलनेवाले विभिन्न मतोंके मार्गोंका [illegible]

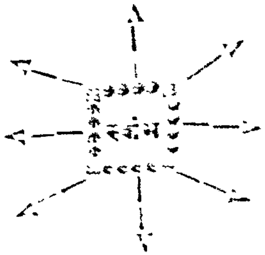

[illegible]

मं. १– यज्ञप्रवर्तक कभी न दबनेवाला तेजस्वी अग्नि दिव्य किरणोंसे चमकता है। जिस तरह बलवान घोडा घुडदौडमें दौडता है, बीचमें थकता नहीं, उसी तरह यह अग्नि अपने उपासककी सहायता करनेके लिये दौडता है, कभी पीछे नहीं हटता।

मं. २— अग्निही सब यज्ञोंका अधिपति है, उषःकालमें होनेवाले हवनोंका भी वही स्वामी है। कोई शत्रु इस अग्निको परास्त नहीं कर सकते। इसीमें समस्त हवनीय द्रव्योंका हवन होता है।

मं. ४— यह अग्नि हविष्यद्रव्योंको लेता और स्तोत्रोंको सुनता है और देवोंमें जाकर विराजता है। यह स्थूल हवनकर्ता देवोंको बुलाकर लानेवाला पवित्र देव अग्नि सब देवोंको घृतयुक्त अन्न पहुंचाता है।

मं.५—ज्वालाओंसे प्रदीप्त अग्निको इन्द्रके समान स्तुतियों और हवनोंसे संतुष्ट करो। सभी विद्वान् इस देवोंको बुलानेवाले ज्ञानी अग्निकी स्तोत्रोंसे प्रशंसा करते है॥

मं.६— जिस तरह घुडस्वार युद्धभूमि इकट्ठे होते हैं, उस तरह जिसके पास सब धन इकट्ठे होते हैं। वह अग्नि हमें इन्द्रसे प्राप्त होनेवाले संरक्षणोंके समान उत्तम संरक्षण हमें देवे और हमें सुरक्षित रखे।

मं. ७—अग्नि अपने वेदीपर बैठकर अपने महत्त्वसे हवनके योग्य प्रदीप्त होता है। सब देव उसके पास पहुंचते है और उसीसे उत्तम संरक्षण सबको प्राप्त होते हैं।

मानव धर्म

इस तरह अग्निका वर्णन इस सूक्तमें है। इस सूक्तके कई वाक्यांश मानव धर्मका बोध कराते हैं उनको अब नीचे देते हैं—

१ अवोभिः शर्मन् एधते (मं. १) = उत्तम संरक्षणोंसे अपने स्थानमेंही उत्तम संवर्धन होता है। अर्थात् सुरक्षाकी शक्ति न रही तो वृद्धि नहीं होती।

२ विभावा ज्येष्ठेभिः भानुभिः पर्येति— तेजस्वी पुरुष श्रेष्ठ तेजोंसे तेजस्वी बनकर सर्वत्र जाता है, सबको अपने तेजसे प्रभावित करता है।

३ अतावा विभावा अजस्रः विभाति (मं.२ सरल, तेजस्वी और पराजित न होकर प्रकाशित होता

४ अपरिह्वृतः सखिभ्यः सख्या आ विवाष– करनेके लिये न थकनेवाला और मित्रोंका हित करनेके लिये भावसे प्रयत्न करता है।

५ शूषैः अरिष्टरथः आ स्कभ्नाति (मं. ३)– शत्रु अपराजित वीरही सबको आधार दे सकता है। पराजित वाला आधार देनेमें कभी समर्थ नहीं है।

६ वृधः देवान् जिगाति (मं. ४)— जो उन्नत होत वही देवोंको प्राप्त करता है। दिव्यता उसीको प्राप्त होती

७ उक्षां रेजमानं नमोभिः आ कृणुध्वम्(मं. ५) तेजसे चमकनेवालेको नमनपूर्वक अपने सामने आदर्शक रखो।

८ विप्रासः सहानां जुह्वं जातवेदसं मतिभिः अ गृणन्ति– जो ज्ञानी होते हैं वे बलिष्ठ वीरोंको इकट्ठे करते औ उनको संगठित करते और ज्ञान प्रकाश करनेवालेकी बुद्धिपूर्व प्रशंसा करते हैं।

९ यस्मिन् विश्वा वसूनि सं जग्मुः, ऊतीः अस्मे अवाचीनाः आ कृणुष्वं (मं.६)– जिसके पास सब प्रकारके धन हैं वही हमें सब प्रकारके संरक्षण देवे। जिसके पास सामर्थ्यही नहीं है वह क्या सहायता करेगा?

१० महा जज्ञानः हव्यः बभूथ (मं ७)— जो अपन महत्त्व प्रकट करता है वही प्रशंसनीय होता है। जिसके पास महत्त्व नहीं उसकी कौन प्रशंसा करेगा?

११ देवासः केतं अनु आयन्— दिव्य विबुध ज्ञानके पास अवश्य पहुंचते हैं। ज्ञानीही देव कहलाते हैं।

१२ प्रथमासः ऊमाः अवर्धन्त— जो सबसे प्रथम अर्थात् उत्तम होता है, उसीसे सब प्रकारके संरक्षण प्राप्त होते हैं। जो स्वयं अधम होगा, वह किसीका भी संरक्षण नहीं कर सकता।

यहां पूर्वोक्त मंत्रोंसे सामान्य मानव धर्म किस तरह जान जाता है वह बताया है, ये वर्णन अग्निकेही हैं, वे पृथक् वाक्यमें पढनेसे वेही मानव धर्मको बताते हैं। कहीं कहीं क्रिया आदिके रूपमें अल्प परिवर्तन करना आवश्यक होता है, यह सहजहीसे पाठकोंके समझमें आ सकता है।

(ऋ. १०।७) त्रित आप्त्यः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

स्वस्ति नो दिवो अग्ने पृथिव्या विश्वायुर्धेहि यजथाय देव ।
सचेमहि तव दस्म प्रकेतैरुरुष्या ण उरुभिर्देव शंसैः ॥ १

इमा अग्ने मतयस्तुभ्यं जाता गोभिरश्वैरभि गृणन्ति राधः ।
यदा ते मर्तो अनु भोगमानड्वसो दधानो मतिभिः सुजात ॥ २

अग्निं मन्ये पितरमग्निमापिमग्निं भ्रातरं सदमित्सखायम् ।
अग्नेरनीकं बृहतः सपर्यं दिवि शुक्रं यजतं सूर्यस्य ॥ ३

सिध्रा अग्ने धियो अस्मे सनुत्रीर्यं त्रायसे दम आ नित्यहोता ।
ऋतावा स रोहिदश्वः पुरुक्षुर्द्युभिरस्मा अहभिर्वाममस्तु ॥ ४

द्युभिर्हितं मित्रमिव प्रयोगं प्रत्नमृत्विजमध्वरस्य जारम् ।
बाहुभ्यामग्निमायवोऽजनन्त विक्षु होतारं न्यसादयन्त ॥ ५

अन्वयः— १ हे देव अग्ने ! दिवः पृथिव्याः नः विश्वायुः स्वस्ति यजथाय धेहि । सचेमहि । हे दस्म देव । उरुभिः शंसैः तव प्रकेतैः नः उरुष्य ॥

२ हे अग्ने ! इमाः मतयः तुभ्यं जाताः । गोभिः अश्वैः राधः अभि गृणन्ति । यदा मर्तः ते भोगं अनु आनट् । हे वसो सुजात ! मतिभिः दधानः ॥

३ (अहं) अग्निं पितरं, अग्निं आपिं, अग्निं भ्रातरं, सदं इत् सखायं मन्ये । बृहतः अग्नेः अनीकं सपर्यं । दिवि यजतं सूर्यस्य शुक्रम् ॥

४ हे अग्ने ! सनुत्रीः अस्मे धियः सिध्राः । दमे आ नित्यहोता, यं त्रायसे सः ऋतावा रोहिदश्वः पुरुक्षुः । अस्मै द्युभिः अहभिः वामं अस्तु ॥

५ द्युभिः हितं मित्रं इव प्रयोगं प्रत्नं ऋत्विजं अध्वरस्य जारं अग्निं आयवः बाहुभ्यां अजनन्त । विक्षु होतारं न्यसादयन्त ॥

अर्थ— १ हे अग्निदेव ! द्युलोक और पृथ्वीलोकसे हमारे लिये संपूर्ण आयु और कल्याण (तथा सब प्रकारका अन्न) यज्ञ करनेके लिये दे दीजिये । (इससे हम तुम्हारी) सेवा करेंगे । हे दर्शनीय देव ! तुम्हारे बहुत प्रशंसनीय ऐसे ज्ञानोंसे हमारी सुरक्षा कर ॥

२ हे अग्ने ! ये हमारी बुद्धियां तुम्हारे लिये ही हैं । ये गायों और घोड़ोंके साथ रहनेवाले धनकी प्रशंसा करते हैं । जब मनुष्य तुम्हारेसे भोग प्राप्त करता है । हे बसानेवाले अग्ने ! (हमारी) बुद्धियोंसे (तुम्हारी ही प्रशंसा) धारण होता है ॥

३ मैं अग्निको पिता, आप्त, भाई और सदा साथ रहनेवाला मित्र मानता हूँ । बड़े अग्निके बड़े सामर्थ्य (तेज, बल) का हम सत्कार करते हैं । जैसे दूरसे दर्शनीय सूर्यके शुभ्र प्रकाशका सत्कार होता है ॥

४ हे अग्ने ! स्तुति करनेवाली हमारी बुद्धियाँ सिद्ध हैं । घरमें नित्य हवन करनेवाला तू जिसकी सुरक्षा करता है, वह सत्यवान्, अच्छे घोड़ोंवाला और अधिकवान् होता है । इसके लिये दिन-रात अनेकोंके धन प्राप्त हों ॥

५ [illegible] के समान हितकारक, सबके यज्ञ [illegible] यज्ञोंके [illegible] अग्निको मनुष्योंने [illegible] स्थापन किये हैं और [illegible] देवोंको बुलानेके [illegible] स्थापन किये हैं ॥

स्वयं यजस्व दिवि देव देवान्किं ते पाकः कृणवदप्रचेताः ।
यथाऽयज ऋतुभिर्देव देवानेवा यजस्व तन्वं सुजात ६
भवा नो अग्नेऽवितोत गोपा भवा वयस्कृदुत नो वयोधाः ।
रास्वा च नः सुमहो हव्यदातिं त्रास्वोत नस्तन्वो३ अप्रयुच्छन् ७

६ हे देव ! दिवि देवान् स्वयं यजस्व । पाकः अप्रचेताः ते किं कृणवत् । हे देव ! ऋतुभिः देवान् यथा अयजः । एव हे सुजात ! तन्वं यजस्व ॥

७ हे अग्ने ! नः अविता भव । उत गोपाः । उत वयस्कृत् वयोधाः भव । हे सुमहः । हव्यदातिं नः रास्व च । उत नः तन्वः अप्रयुच्छन् त्रास्व ॥

६ हे देव ! द्युलोकमें देवोंका स्वयं यजन कर । पूर्ण होनेवाला अज्ञानी तेरा क्या करेगा ? हे देव ! ऋतुके अनुकूल जैसे देवोंका यजन करता है वैसाही ऋतुके अनुसार अपने शरीरका भी यजन कर ॥

७ हे अग्ने ! हमारी सुरक्षा करनेवाला हो । और रक्षण करनेवाला हो । और आयु बढानेवाला और अन्न देनेवाला हो । हे पूज्य अग्ने ! हविष्यान्न हमें दो । और हमारे शरीरोंकी विना प्रमाद किये सुरक्षित रखो ॥

मानव धर्मका संदेश

इस सूक्तमें जो मानव धर्मका संदेश दिया है वह अब हम नीचे देते हैं—

१ नः विश्वायुः स्वस्ति यजथाय धेहि (मं. १)—हमें पूर्ण आयु चाहिये और सुखसे रहनेकी परिस्थिति भी चाहिये, क्योंकि इनसे हम जीवनभर यज्ञीय आयु बिताना चाहते हैं । मनुष्य दीर्घ आयु बनें, सुखसे रहें और जीवनभर सब जनोंके हितार्थ शुभ कर्म करें ।

२ उरुभिः शंसैः प्रकेतैः उरुष्य— बहुत बडे प्रशंसनीय ज्ञान और विज्ञानसे सुरक्षा प्राप्त करें ।

३ मतयः गोभिः अश्वैः राधः अभि गृणन्ति (मं. २) जो धन गायों और अश्वोंके साथ रहता है, उसकी प्रशंसा सब बुद्धियाँ करती हैं । घरमें गौवें, घोडे और सब प्रकारका धन रहे ।

४ मर्तः मतिभिः दधानः भोगं अनु आनट्—मनुष्य अपनी बुद्धियोंसे (उन धनोंका धारण करता है और उनका) भोग प्राप्त करता है । धनका उपयोग सद्बुद्धिसे करे और धर्मानुकूल भोग भोगे ।

५ अग्निं पितरं आप्तिं भ्रातरं सखायं मन्ये (मं. ३) तेजस्वी प्रभुको मैं पिता, आप्त, भाई और मित्र मानता हूं ।

६ बृहतः अनीकं सपर्य । — बडे वीरके सैन्यका सत्कार करना योग्य है ।

७ धियः सिध्राः (मं. ४)— हमारी बुद्धियां सिद्धिको जानेवाली हों । कोई मनुष्य शुभ कर्मको बीचमेंही न छोडे ।

८ दमे यं त्रायसे सः ऋतावा रोहिद्भ्वः पुरुवारः घरमें जो सुरक्षित होता है वह सत्कर्म करता, घोडोंको रखता और बहुत अन्न प्राप्त करता है । प्रजाकी सुरक्षा होगी तो वह प्रजा अनेक कर्म करके धनधान्य प्राप्त कर सकते हैं ।

९ अस्मै द्युभिः अहोभिः कामं अस्तु— हमें प्रतिदिन उत्तम प्रशंसनीय धन मिले ।

१० हितं प्रत्नं मित्रं अध्वरस्य जारं आयवः अजनन्त (मं. ५)— हित करनेवाला पुराना मित्र, जो अहिंसक कर्म करता है, उसीको मनुष्य प्रकट रूपसे स्वीकार करते हैं ।

११ होतारं विश्वु न्यसादयन्त— दाताको प्रजाओंमें (मुख्य स्थानपर) रखते हैं ।

१२ अप्रचेताः पाकः किं कृण्वन् (मं. ६)— अज्ञानी और अपरिपक्व (इस जगत्में) क्या कर सकेगा ?

१३ ऋतुभिः देवान् अयजः, तन्वं यजस्व— ऋतुओंके अनुकूल विद्वानोंका सत्कार कर, तथा अपने शरीरकी भी सुरक्षा कर ।

नः अविता, गोपाः, वयस्कृत्, वयोधाः भव
)= हमारा संरक्षक, पालक, दीर्घायु देनेवाला, अन
ा हो।
नः तन्वः अप्रयुच्छन् रास्व— हमारे शरीरोंको
न करते हुए सुरक्षित रखो।

मंत्र भागोंका मनन करनेसे अनेक प्रकारके मानव-धर्मोंके विदित हो सकते हैं। मंत्रों या सूक्तोंसे देवता वर्णनके ा सामान्य पद हैं उनका मनन करनेसे मानव धर्म सिद्ध है। 'जैसा देव करते हैं वैसा मनुष्य करें' यह नियम है ा अनुवर्त्तत्कारवानि)। अतः देवोंके गुण मनुष्य धर्मके होते हैं। इस तरह वेदमूलकही सब स्मृतियाँ सिद्ध हैं। देवोंके गुण मनुष्य अपनेमें धारण करे और उन्नत हुआ देव बने, नरका नारायण हो, यह वेद धर्मका उद्देश्य है। जो एकएक मंत्रोंका मनन इस तरह कर सकते ही वेद धर्मका गूढ तत्त्व जान सकते हैं।

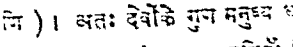

त्रित ऋषिका आदर्श पुरुष

त्रित ऋषिने जिस वर्णनीय आदर्श पुरुषको अपने काव्यमें ीय रूपसे प्रकट किया वह आदर्श पुरुष यह है।— प्रथम र्श पुरुषमें प्रबल इच्छा-शक्ति रहनी चाहिये। क्योंकि इच्छा-केही सब श्रेष्ठ कर्म होते हैं और इच्छाही नहीं हुई तो भी नहीं बन सकता। प्रतिदिनके कार्य सिद्धिके प्रति चते हैं वे इच्छाशक्तिकेही बलसे पहुंचते हैं—

इच्छाशक्तिका बल

इच्छाशक्तिके बलके विषयमें जिन स्थानमें दर्शाये मन्त्रभाग चार करनेयोग्य हैं—

१ अर्थिनः अर्थं इत् वै (हुवन्ते) [ऋ. १।१०५।२]= र्थको प्राप्तिकी इच्छा करनेवालेही अपने अर्थके साथ संयुक्त होते हैं अर्थात् इच्छा करनेसे प्रयत्न होता है और पश्चात् सिद्धि प्राप्त होती है। इच्छाही न हो तो सिद्धिकी आशा करना व्यर्थ है।

जाया पतिं आ युवते= स्त्री पतिकी इच्छा करती और उसे प्राप्त करती है। वे दोनों पुत्रकी इच्छा करते हैं और (वृष्ण्यं पयः तुञ्जाते) बलवर्धक वीर्यको प्रेरित करते हैं, अर्थात् गर्भाधान करते हैं। (रसं परिदाय दुहे) रसरूप वीर्यका दान करके पुत्रका उत्पादन अथवा दोहन करते हैं। यह सब पति और पत्नीकी इच्छाशक्तिका फल है।

विवाह करना, पुत्र उत्पन्न करना, धन प्राप्त करना आदि कार्य भी इच्छाशक्तिसेही सफल और सुफल होते हैं। इसी तरह इससे भी महान् महान् कार्य इसी शक्तिसे होते हैं, इसलिये अपनी इच्छाशक्ति बलवती और संस्कृत बनानी चाहिये। आदर्श पुरुष संस्कृत और उत्साहमयी इच्छाशक्तिसे संपन्न होना चाहिये।

बहुपत्नी करनेका निषेध

त्रित ऋषि बहुपत्नियाँ करनेकी कुरीतिका निषेध करता है देखो—

सपत्नाः पर्शव इव मा अभितः सं तपन्ति। (ऋ. १।१०५।८)= चारों ओरसे कुल्हाडे जैसे काटने लगते हैं, वैसी सपत्नियाँ मुझे कष्ट देती हैं। अर्थात् आदर्श पुरुष बहुपत्नीयाँ न करे। एकपत्नी व्रत आदर्श व्रत है।

अनेक पत्नियाँ करनेसे घरमें अनेक प्रकारके कलह होते हैं और सबको क्लेश होते हैं। राजा दशरथके घरमें कैकेयीके कारण कैसा वैरभाव उत्पन्न हुआ, और उसका परिणाम कितना भयानक हुआ, यह सबको विदितही है। इसलिये एकपत्नी व्रत पालन करना योग्य है।

दुष्ट बुद्धियोंका निग्रह

दुर्जनोंका दमन करनेसे समाजमें सुख और शान्ति स्थापित हो सकती है इसलिये कहा है—

दूळ्यः अति क्रामेम (ऋ. १।१०५।३)= दुष्टबुद्धि-वालोंका अतिक्रमण करना चाहिये। उनको पीछे हटाकर आगे बढना चाहिये। उनको आगे बढने नहीं देना चाहिये। यही उनका निग्रह करना है। आदर्श पुरुष यह करे।

दुर्जनोंका निर्दालन करना और सज्जनोंका पालन करना चाहिये। यही आदर्श राज्यशासन है। आदर्श पुरुष ऐसाही करते रहते हैं।

उन्नतिका पथ

समाजकी उन्नति किस नियमसे होती है इसका विचार निम्न-लिखित मन्त्रभागों द्वारा बताया है—

१. क्रतस्य धर्णसि= सत्यका धारण करना,
२. वरुणस्य चक्षणं= श्रेष्ठके निरीक्षणमें कार्य करना और

स्वयं यजस्व दिवि देव देवान्किं ते पाकः कृणवदप्रचेताः ।
यथाऽयज ऋतुभिर्देव देवानेवा यजस्व तन्वं सुजात ६
भवा नो अग्नेऽवितोत गोपा भवा वयस्कृदुत नो वयोधाः ।
रास्वा च नः सुमहो हव्यदातिं त्रास्वोत नस्तन्वो३ अप्रयुच्छन् ७

६ हे देव ! दिवि देवान् स्वयं यजस्व । पाकः अप्रचेताः ते किं कृणवत् । हे देव ! ऋतुभिः देवान् यथा अयजः । एव हे सुजात ! तन्वं यजस्व ॥

७ हे अग्ने ! नः अविता भव । उत गोपाः । उत वयस्कृत् वयोधाः भव । हे सुमहः । हव्यदातिं नः रास्व च । उत नः तन्वः अप्रयुच्छन् त्रास्व ॥

६ हे देव ! तुझी हमें देवोंका स्वयं यजन कर। तूं होनेवाला अज्ञानी तेरा क्या करेगा ? हे देव ! ऋतुके अनुकूल जैसा देवोंका यजन करता है वैसाही ऋतुके अनुसार अपने शरीरका भी यजन कर ॥

७ हे अग्ने ! हमारी सुरक्षा करनेवाला हो। और रक्षण करनेवाला हो। और आयु बढानेवाला और अन्न देनेवाला हो हे पूज्य अग्ने ! हविष्यान्न हमें दो। और हमारे शरीरोंकी विना प्रमाद किये सुरक्षित रखो ॥

मानव धर्मका संदेश

इस सूक्तमें जो मानव धर्मका संदेश दिया है वह अब हम नीचे देते हैं—

१ नः विश्वायुः स्वस्ति यजथाय धेहि (मं. १)—हमें पूर्ण आयु चाहिये और सुखसे रहनेकी परिस्थिति भी चाहिये, क्योंकि इनसे हम जीवनभर यज्ञीय आयु बिताना चाहते हैं। मनुष्य दीर्घ आयु वनें, सुखसे रहें और जीवनभर सब जनोंके हितार्थ शुभ कर्म करें।

२ उरुभिः शंसैः प्रकेतैः उरुष्य— बहुत बडे प्रशंसनीय ज्ञान और विज्ञानसे सुरक्षा प्राप्त करें।

३ मतयः गोभिः अश्वैः राधः अभि गृणन्ति (मं. २) जो धन गायों और अश्वोंके साथ रहता है, उसकी प्रशंसा सब बुद्धियाँ करती हैं। घरमें गौवें, घोडे और सब प्रकारका धन रहे।

४ मर्तः मतिभिः दधानः भोगं अनु आनट्—मनुष्य अपनी बुद्धियोंसे (उन धनोंका धारण करता है और उनका) भोग प्राप्त करता है। धनका उपयोग सद्बुद्धिसे करे और धर्मानुकूल भोग भोगे।

५ अग्निं पितरं आप्तिं भ्रातरं सखायं मन्ये (मं. ३) तेजस्वी प्रभुको मैं पिता, आप्त, भाई और मित्र मानता हूं।

६ बृहतः अनीकं सपर्य। — बडे वीरके सैन्यका सत्कार करना योग्य है।

७ धियः सिध्राः (मं. ४)— हमारी बुद्धियां सिद्धिको जानेवाली हों। कोई मनुष्य शुभ कर्मको बीचमेंही न छोडे।

८ दमे यं त्रायसे सः ऋतावा रोहिद्भ्वः पुरुवारः घरमें जो सुरक्षित होता है वह सत्कर्म करता, घोडोंको रखता और बहुत अन्न प्राप्त करता है। प्रजाकी सुरक्षा होगी तो वह प्रजा अनेक कर्म करके धनधान्य प्राप्त कर सकते हैं।

९ अस्मै द्युभिः अहोभिः कामं अस्तु— हमें अनेक दिन उत्तम प्रशंसनीय धन मिले।

१० हितं प्त्नं मित्रं अध्वरस्य जारं आप्यं अजनन्त (मं. ५)— हित करनेवाला पुराना मित्र, जो अहिंसक कर्म करता है, उसीको मनुष्य प्रकट रूपसे स्वीकार करते हैं।

११ होतारं विश्वु न्यसादयन्त— दाताको प्रजाओंमें (मुख्य स्थानपर) रखते हैं।

१२ अप्रचेताः पाकः किं कृण्वन् (मं. ६)— अज्ञानी और अपरिपक्व (इस जगत्में) क्या कर सकेगा ?

१३ ऋतुभिः देवान् अयजः, तन्वं यजस्व— ऋतुओंके अनुकूल विबुधोंका सत्कार कर, तथा अपने शरीरकी भी सुरक्षा कर।

१४ नः अविता, गोपाः, वयस्कृत्, वयोधाः भव मं. ७)- हमारा संरक्षक, पालक, दीर्घायु देनेवाला, अन्न देनेवाला हो।

१५ नः तन्वः अप्रयुच्छन् रास्व— हमारे शरीरोंको क्षति न करते हुए सुरक्षित रखो।

इन मंत्र भागोंका मनन करनेसे अनेक प्रकारके मानव-धर्मोंके नियम विदित हो सकते हैं। मंत्रों या सूक्तोंसे देवता वर्णनके जो जो सामान्य पद हैं उनका मनन करनेसे मानव धर्म सिद्ध होता है। 'जैसा देव करते हैं वैसा मनुष्य करें' यह नियम है यद्देवा अकुर्वंस्तत्करवाणि)। अतः देवोंके गुण मनुष्य धर्मके बोधक होते हैं। इस तरह वेदमूलकही सब स्मृतियाँ सिद्ध होती हैं। देवोंके गुण मनुष्य अपनेमें धारण करे और उन्नत होता हुआ देव बने, नरका नारायण हो, यह वेद धर्मका उन्नतिका मार्ग है। जो पाठक मंत्रोंका मनन इस तरह कर सकते हैं. वेही वेद धर्मका गुह्य तत्त्व जान सकते हैं।

त्रित ऋषिका आदर्श पुरुष

त्रित ऋषिने जिस वर्णनीय आदर्श पुरुषको अपने काव्यमें वर्णनीय रूपसे प्रकट किया वह आदर्श पुरुष यह है।— प्रथम आदर्श पुरुषमें प्रबल इच्छा-शक्ति रहनी चाहिये। क्योंकि इच्छा-शक्तिसेही सब श्रेष्ठ कर्म होते हैं और इच्छाही नहीं हुई तो कुछ भी नहीं बन सकता। प्रतिदिनके कार्य सिद्धिके प्रति पहुंचते हैं वे इच्छाशक्तिकेही बलसे पहुंचते हैं—

इच्छाशक्तिका बल

इच्छाशक्तिके बलके विषयमें निम्न स्थानमें दर्शाये मन्त्रभाग विचार करनेयोग्य है—

१ अर्धेनः अर्धं इत् वै (युवन्ते) [ऋ. १।१०५।२]= अर्थको प्राप्तिकी इच्छा करनेवालेही अपने अर्थके साथ संयुक्त होते हैं अर्थात् इच्छा करनेसे प्रबल होता है और पश्चात् वस्तु प्राप्त होती है। इच्छाही न हो तो वस्तुकी प्राप्ति करना व्यर्थ है।

जाया पतिं आ चुवते= स्त्री पतिकी इच्छा करती और उसे प्राप्त करती है। वे दोनों पुत्रकी इच्छा करते हैं और (वृष्ण्यं पयः तुआते) वीर्यरूप दूधको देते करते हैं अर्थात् गर्भाधान करते हैं। (रसं परिदाय ऊधः) [illegible]

वीर्यका दान करके पुत्रका उत्पादन अथवा दोहन करते हैं। यह सब पति और पत्नीकी इच्छाशक्तिका फल है।

विवाह करना, पुत्र उत्पन्न करना, धन प्राप्त करना आदि कार्य भी इच्छाशक्तिसेही सफल और सुफल होते हैं। इसी तरह इससे भी महान् महान् कार्य इसी शक्तिसे होते हैं, इसलिये अपनी इच्छाशक्ति बलवती और सत्प्रवृत्त बनानी चाहिये। आदर्श पुरुष सत्प्रवृत्त और उत्साहमयी इच्छाशक्तिसे संपन्न होना चाहिये।

बहुपत्नी करनेका निषेध

त्रित ऋषि बहुपत्नियाँ करनेकी कुरीतिका निषेध करता है देखो—

सपत्नाः पर्शव इव मा अभितः सं तपन्ति। (ऋ. १।१०५।८)= चारों ओरसे कुल्हाडे जैसे काटने लगते हैं, वैसी सपत्नियाँ मुझे कष्ट देती हैं। अर्थात् आदर्श पुरुष बहुपत्नीयाँ न करे। एकपत्नी व्रत आदर्श व्रत है।

अनेक पत्नियाँ करनेसे घरमें अनेक प्रकारके कलह होते हैं और सबको क्लेश होते हैं। राजा दशरथके घरमें कैकेयीके कारण कैसा वैरभाव उत्पन्न हुआ, और उसका परिणाम कितना भयानक हुआ, यह सबको विदितही है। इसलिये एकपत्नी व्रत पालन करना योग्य है।

दुष्ट बुद्धियोंका निग्रह

दुर्जनोंका दमन करनेसे [illegible] हो सकती है इसलिये कहा है—

दुष्टरः अति क्रामेम (ऋ. [illegible])= दुष्ट [illegible] अतिक्रमण करें [illegible] बढ़ न [illegible] उनको [illegible] उनको [illegible] करते हैं। [illegible]

दुर्जनोंका निरोधन करके [illegible] पाये। [illegible] रोध करते हैं।

उपनिषद् रत्न

[illegible] [illegible] [illegible]

१. [illegible]= [illegible]

२. [illegible]= [illegible]

३. **अर्यम्णः पथा** (गमनं)- आर्यमनके योग्य मार्गसे गमन करना

ये मार्ग उन्नतिके लिये आवश्यक हैं। आदर्श पुरुष यही मार्ग अपने आचरणमें लाता है।

मानवोंकी उन्नति करना बडा कठिन कार्य है। उसका आधार सत्य-पालन है, सत्पुरुषोंके निरीक्षणमें रहना और आर्यधर्मके अनुसार चलना उसके लिये अत्यंत आवश्यक है। जो ऐसे व्रतसे चलेंगे वेही आदर्श पुरुष हो सकते है।

विद्या-व्यासङ्ग

मनुष्य ज्ञानी पुरुषका आश्रय करे, ज्ञान प्राप्त करे और सबका आदर्श हो उनका मार्गदर्शक बने, इस विषयमें ऋ. १।१०५ का १७ वाँ मन्त्र अच्छा मार्गदर्शन करता है—

१ कूपे अवहितः त्रितः ऊतये देवान् हवते। तत् बृहस्पतिः शुश्राव। अंहूरणात् उरु कृण्वन्। (ऋ.१।१०५।१७) परतंत्रताकी गर्तमें त्रित ऋषि पडा था, उसने अपने उद्धारके लिये देवोंसे सहायताकी प्रार्थना की, बृहस्पति- ज्ञानदेवने वह प्रार्थना सुनी और पापपूर्ण परतंत्रताकी गर्तसे उसको निकालनेके लिये बडा विस्तृत ज्ञानका मार्ग बनाया, जिससे त्रित बाहर आया और स्वतंत्र हुआ।

विद्याका महत्त्व इस तरह त्रित ऋषि अपने अनुभवसे वर्णन कर रहा है। ज्ञानी पुरुषको गुरु करके अज्ञानमें पडे अज्ञानी अपनी मुक्तिका, स्वतंत्रताका मार्ग जान सकते हैं। इस तरह विद्याका महत्त्व यहां बताया है।

२ तमसा निर्जगन्वान्। (ऋ. १०।१।१)- अज्ञान अन्धकारसे दूर होना चाहिये। तमस् अज्ञानका वाचक है। अन्धारमें कोई मार्ग दीखता नहीं वह अन्धकार हटनेपर दीखता है।

३ ज्योतिषा आ अगात्। (ऋ. १०।१।१)—प्रकाशके साथ, अर्थात् ज्ञानी बनकर प्रकट होना चाहिये। ज्ञानके मार्गसे आगे बढना चाहिये, प्रगति करनी चाहिये। ज्ञानही उत्कर्षका सहायक है।

४ दधना नाभुना विश्वा सजानि आ अग्राः। (ऋ. १०।१।१)- तेजस्वी ज्ञानके प्रकाशसे सभी सभा-स्थान अपने वशमें करें। सभाओंमें व्याख्यान-प्रवचनद्वारा ऐसे ज्ञानका प्रकाश करो कि जिससे वहांके सब सदस्य झुकने लगे और अपना अभ्युदय करनेमें सिद्ध हो जाय।

५ विद्वान् बृहन् जातः। (१०।१।३)- बडा भारी ज्ञानी होना चाहिये। ऐसाही बडा भारी ज्ञानी सबका मार्गदर्शक अग्रणी होता है।

६ विद्वान् विश्वं पृणाति। (ऋ. १०।२।४)-विद्वान् ही सब प्रकारका कर्तव्य योग्य रीतिसे करता है।

७ विजानन् कृतुवित् याजिष्ठः। (ऋ.१०।२।५)- ज्ञानीही कर्म करनेकी विधि जान सकता है और कुशलतासेही कर्म करके भी दिखा सकता है। ज्ञानसेही यह सिद्ध होता है। ज्ञानसेही कर्ममें कुशलता प्राप्त होती है।

८ पन्थां अनु प्र विद्वान् विभाहि। (ऋ. १०।२।७)- मार्गका जाननेवाला बनकर प्रकाशित हो। अर्थात् जो मार्गका जानकार है वही उस मार्गमें सहायकारी हो सकता है। वही मार्गके आक्रमण करनेमें सहायक होता है।

९ चिकित् विभाति। (ऋ. १०।३।१)— ज्ञानीही प्रकाशता है, अर्थात् ज्ञानका प्रकाश सबसे अधिक है।

१० चिकित्वः अमूढः। (ऋ. १०।४।४)- ज्ञानीको ही मूढता दूर होती है। ज्ञानी मूढ नहीं होता है। ज्ञानसे मूढत्व दूर होता है।

११ ब्रह्मवर्धनीः भूत्। (ऋ १०।४।७)- ज्ञानही सबकी उन्नति करनेवाला होता है। ज्ञानसेही सब शक्तियोंका संवर्धन होता है।

१२ देवासः केतं अनु आयन्। (ऋ. १०।३।४)— दिव्य विबुध ज्ञानके मार्गकाही अनुसरण करते हैं

ज्ञान प्राप्त करना, अज्ञानसे मुक्त होना, घरघरमें ज्ञान प्रसार करना, इसीसे राष्ट्रकी उन्नति होती है। जो ज्ञानी होता है वही कर्तव्य और अकर्तव्य जानता है और योग्य पुरुषार्थ योग्य कर्तव्य करके, अपना और राष्ट्रका नेता बनकर सबकी उन्नति करता है। यही आदर्श पुरुष है।

शूरता, वीरता और युद्धसिद्धता

वीरताके विषयमें त्रित ऋषिके निर्देश अत्यंत सरल हैं देखिये—

१ वयं सर्ववीराः वृजने अभिष्याम । (ऋ. १।१०५।१२)

हम सब सब प्रकारसे शूर वीर धीर और युद्धनिपुण बनकर युद्धमें शत्रुके सन्मुख खडे रहेंगे और शत्रुको परास्त करेंगे । शत्रुका पराभव करनेयोग्य जो समर्थ बनता है वही आदर्श वीर कहलाता है ।

२ अद्य वयं अनागसः अभूम, अजैष्म, असनाम । (ऋ. ८।४७।१८)— आज हम सब निर्दोष बनेंगे, विजयी होंगे और धन प्राप्त करेंगे । विजयी होनेके पूर्व अपने अन्दरके सब दोष दूर करने चाहिये, समाजके दोष दूर हुए तोही वह सामर्थ्यवान बनता है और विजयी होता है और विजयी होनेसे-ही सब प्रकारके ऐश्वर्य प्राप्त कर सकता है ।

३ द्रुहः अभि रक्षथ । (ऋ. ८।४७।१)— द्रोहकारी शत्रुओंसे सुरक्षा करो । अर्थात् द्रोहकर्ताओंको दूर करो ।

४ वर्मसु युध्यन्तः । (ऋ. ८।४।७८)— कवच धारण करके युद्ध करो जिससे वीर सुरक्षित रहेंगे और वे शत्रुका पराभव कर सकेंगे ।

५ शर्म, भद्रं, अनातुरं, वरूथ्यं, त्रिधातु अस्मासु वि यन्तन । (ऋ. ८।४७।१०)— सुख, कल्याण, नीरोगिता और सुरक्षितता करनेवाली तीन धारक शक्तियां हमे प्राप्त हों । शारीरिक, मानसिक और आत्मिक ये तीन शक्ति सबल हुई तो उनसे यह सब प्राप्त हो सकता है ।

६ दक्षाय आ ददर्शि । (ऋ. १०।३।१)— बल बढानेके लिये वह अपने राष्ट्रमें चारों ओर निरीक्षण करता है ।

७ अवोभिः शर्म यच्छते । (ऋ. १०।६।१)— संरक्षण देनेहीसे प्रजाका सुख बढता है । बलसे और शूरतासे यह संरक्षण होता है ।

८ शूषैः अरिष्टरथः आरकन्नाति । (ऋ. १०।६।३)— शत्रुओंसे अपराजित वीरही सबको सुरक्षा देकर आधार या आश्रय देता है ।

९विप्रासः सहानां जुवं मतिभिः आ गृणन्ति । (ऋ. १०।६।५)— ज्ञानी लोग बलिष्ठ वीरोंकी संघटना करते है और उनकी विचारपूर्वक प्रशंसा करते हैं ।

१० ऊतीः असे अवाचीनाः आकृणुष्व । (ऋ. १०।६।६)— सब प्रकारके संरक्षण हमारे पास सुसज्ज स्थितिमें रहें ।

११ ऊमाः अवर्धन्त, प्रथमासः । (ऋ. १०।६।७)- जो अपनी संरक्षक शक्तियोंका संवर्धन करते है वेही प्रथम वंदनीय नेता होते हैं ।

१२ बृहतः अनीकं सपर्य । (ऋ. १०।७।२)— बडे वीरोंके सेनाबलका सत्कार करना योग्य है ।

राष्ट्रके कल्याण करनेमें दुष्टोंको दूर करनेका कार्य प्रमुख स्थान रखता है । सज्जनोंका परित्राण और दुष्टोंका नाश करना आवश्यक है । यही ईश्वरके कर्तव्य है शूरता, वीरता, धीरता आदिसे यह हो सकता है । इसीलिये आदर्श पुरुषमें ये गुण होने चाहिये ।

इस तरह त्रित ऋषिके कथने और वर्णनकिये आदर्श पुरुषमें ये सब गुण होने चाहिये । इन सूक्तोंका विचार करके पाठक और भी अधिक गुणोंकी गणना कर सकते हैं । ऐसा वर्णनके प्रसंगमें जो जो गुण वर्णन किये गये है, वे सब उच्चतम मानवमें रहनेयोग्य हैं । ये गुण जहा होंगे वही आदर्श पुरुष होगा । इसी तरह वेद अनुकरणीयके सब आदर्श पुरुषको रखता है, मनुष्य इसे देखे, जाने और वैसा बननेका यत्न करे ।

त्रित ऋषिके दर्शनकी

विषयसूची

विषय	पृष्ठाङ्क
त्रित ऋषिका तत्त्वज्ञान	३
विभावसुका पुत्र त्रित, त्रितकी स्त्रियाँ	,,
देवोंमें त्रितकी गणना, त्रितके समान इन्द्रका शौर्य	,,
लड़नेवाला वीर त्रित	,,
शस्त्र तीक्ष्ण करनेवाला त्रित	४
त्रितका युद्ध करना, शत्रुभेदक त्रित	,,
वृत्रको काटनेवाला त्रित, वराहवध करनेवाला त्रित	,,
त्रितके पास अनेकोंका आना	५
अश्वही त्रित है, त्रितने घोड़ेको सजाया	,,
त्रितकी सामुदायिक स्तुति	,,
त्रित प्रार्थना करता है	६
प्रजाओंमें जानेवाला त्रित, कण्व-होता त्रित	,,
इन्द्रके साथ सोमपान करनेवाला त्रित	,,
त्रित सोमको स्वच्छ करता है	,,
त्रितकी छननीपर सोम	७
त्रितका सोमरसमें जल मिलाना	,,
त्रितके यज्ञमें इन्द्र, त्रितका सख्य	,,
त्रितको कूपसे ऊपर निकाला	,,
त्रितके लिए अर्बुदका वध, त्रितका यश बढ़ाया	,,
त्रितको धन-प्राप्ति	८
त्रितके लिए गौवें दीं, त्रितमें खप्न	,,
त्रितमें पाप, त्रित सूर्य	,,
त्रित = गर्जना करनेवाला मेघ	,,
त्रितके मंत्रोंकी क्रमवार गणना	,,
(ऋग्वेद प्रथम, अष्टम, नवम, दशम मण्डल)	
त्रितके मंत्रोंकी देवतावार गणना	९
,, ,, छन्दवार गणना	,,
त्रित ऋषिका दर्शन	११
(दशम मण्डल, १३ वाँ अनुवाक)	
[ ] ये देव-	,,
[illegible] र्शना	,,
[illegible]	१४

विषय	पृष्ठाङ्क
पृथ्वी-स्थानमें, अन्तरिक्ष-स्थानमें, द्यु-स्थानमें इच्छा करनेके प्राप्ति	
हमारी अवनति न हो, पूर्व और नूतनका मेल	
सत्य और अनृतका स्वरूप जानो	
हमारा ध्येय, मानसिक अशान्तिका दूर करना	
विश्व-कुटुंबका भाव, हितकारी स्तोत्र	
सज्जनोंकी संगतिमें रहो	
ज्ञानीके मार्गदर्शनमें रहो	
[२] आदित्य-प्रकरण	
विजय, लाभ और निष्पापीपन प्राप्त करना	
(ऋ० अष्टम मण्डल)	
विजयी बनना, लाभ प्राप्त करना और निष्पाप होना	
[३] सोम-प्रकरण	
(ऋ० नवम मण्डल)	
सोमरसका पान	
(१) सोमको धोकर स्वच्छ करना	
(२) कूटकूटकर रस निकालना	
(३) सोमरसको छानना	
(४) सोमरसमें दूध आदिका मिलाना	
[४] अग्नि-प्रकरण	
(ऋ० दशम मण्डल)	
आदर्श यशस्वी तरुण	
युवाके कर्तव्य	
तरुण राजाके कर्तव्य	
राजाके कर्तव्य	
सत्य तत्त्वका ज्ञान	
अग्निका वर्णन	
मानव धर्म	
मानव धर्मका संदेश	
त्रित ऋषिका आदर्श पुरुष	
इच्छा-शक्तिका बल, बहुपत्नी करनेका निषेध	
[illegible]ओंका निग्रह, उन्नतिका पथ	
[illegible], शूरता, वीरता और युद्ध-विद्या	